पुस्तक मिलने का पता
योगनिकेतन ट्रस्ट
डाकघर—स्वर्गाश्रम, रेलवे स्टेशन—ऋषिकेश
जिला देहरादून, भारत ।

प्रथम संस्करण
१९६६
मूल्य ८) आठ रुपये

मुद्रक
रायसीना प्रिंटरी
४, चमेलियन रोड, दिल्ली-६

राजयोगाचार्य ब्रह्मनिष्ठ योगीश्वर श्री १००८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द
सरस्वतीजी महाराज

ॐ
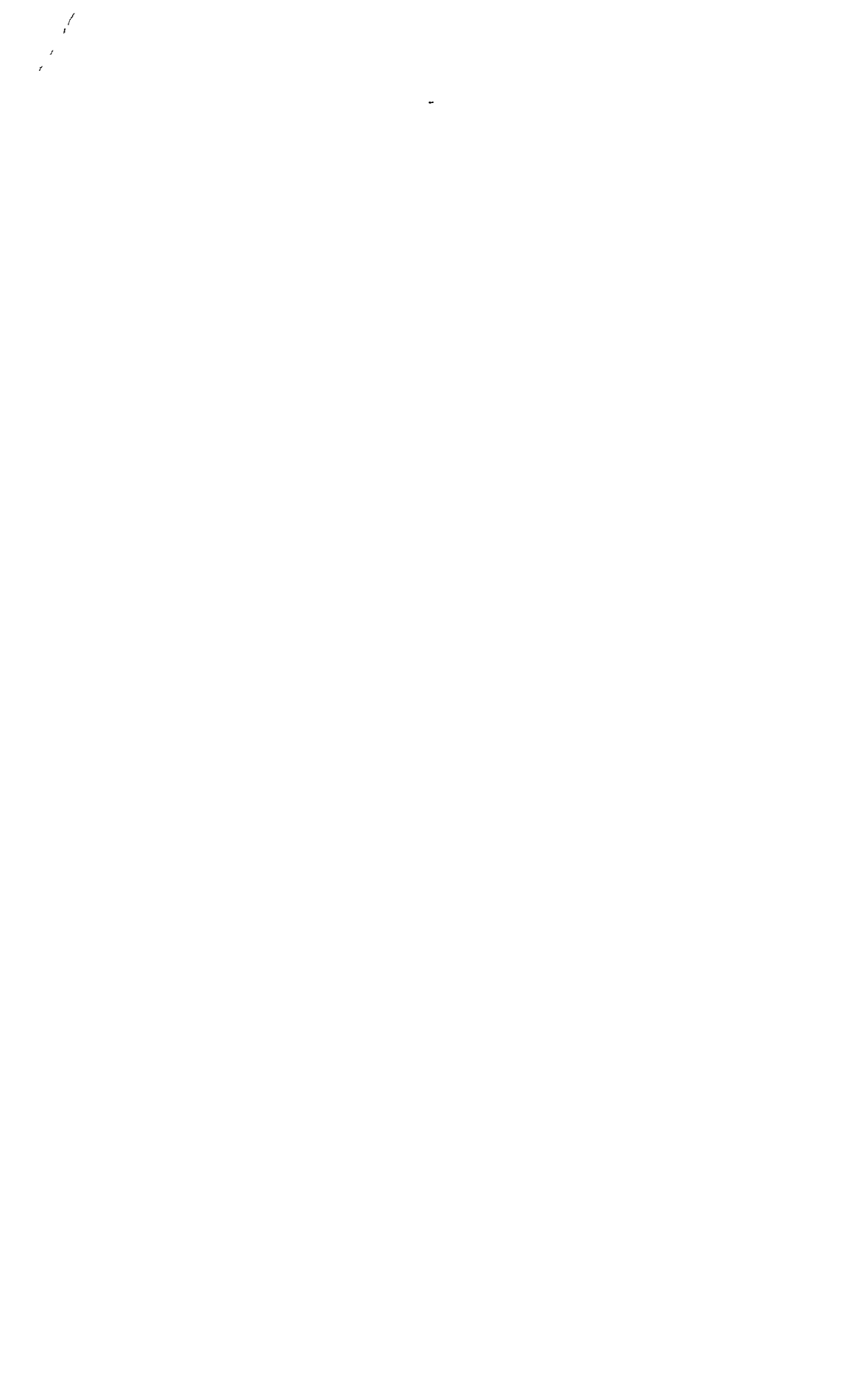
ईश्वर-वन्दना

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ (यजु० २२।२२)

प्रथम ईश्वर को नमस्कार करके, सर्वशक्तिमान् दयामय भगवान् की सेवा में प्रार्थना है कि हे हर प्रकार की विद्या के दाता ! सबसे बड़े परमेश्वर ! आप हम पर कृपा करें कि हमारे राज्य में ब्रह्मविद्या से प्रकाश को प्राप्त, वेद और ईश्वर को अच्छा जानने वाले, आत्मदर्शी ब्राह्मण उत्पन्न होते रहें; अस्त्र जो दूर अति दूर तक मार करने वाले हों उनके चलाने में उत्तम गुणवान्, शत्रुओं को अतीव ताड़ना देने का स्वभाव रखने वाले महारथी, अत्यन्त बली और वीर, निर्भय राजपुत्र शासक, वाणी द्वारा उपद्रवियों का दमन करने वाले नीतिनिपुण विद्वान्, दूध से पूर्ण करने वाली गौ, भार ले जाने में समर्थ बड़े बलवान बैल, शीघ्र चलने हारे घोड़े, जो बहुत व्यवहारों को धारण करती हैं वे स्त्रियां, हर प्रकार के रथ वा यान बनाने वा स्थिरता से चलाने वाले विशेषज्ञ वा शत्रुओं को जीतने वाले, सभा में उत्तम सभ्य, जवान पुरुष, जो यह विद्वानों का सत्कार करता है वा सुखों की संगति करता है वा सुखों को देता है ऐसे राजा के राज्य में विशेष ज्ञानवान्, शत्रुओं को हटानेवाले पुरुष उत्पन्न हों; हम लोगों के निश्चययुक्त काम में अर्थात् जिस-जिस काम के लिए प्रयत्न करें उस-उस काम में मेघ वर्षें; औषधियां बहुत उत्तम फलवाली हमारे लिए पकें; हमारा अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति लखाने वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों की प्राप्ति समर्थ हो; वैसा विधान करो अर्थात् वैसे व्यवहार को प्रकट कराइए ।

शुभ-कामना और धन्यवाद

श्रीमती प्रेमदेवी (विहार मे धनवाद निवासी स्वर्गीय दीवानवहादुर श्री वली-राम तनेजा की धर्मपत्नी) ने पूज्यपाद श्री गुरुदेव स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज के श्रीचरणो मे वैठकर अध्यात्म साधना की है। आप विदुषी, कवियित्री, धर्मात्मा, भगवद्परायणा और साध्वी महिला हैं। आप दयालु तथा दानशीला है।

आपके पतिदेव भी धर्मात्मा, परोपकारी, उदार तथा दानी थे। समाज-कल्याण के कार्यों मे वडी उदारता से दान दिया करते थे। इनके सुपुत्र श्री विजय-प्रताप और नन्दकुमारजी भी अपने माता-पिता के समान धर्म, दान और परोपकार परायण है।

श्रीमती प्रेमदेवी तनेजा योगनिकेतन की तन, मन तथा धन से सेवा कर रही है। इस 'हिमालय का योगी' ग्रथ के प्रकाशन का सव व्यय इन्होने देने की कृपा की है। इसके लिए हम आपके अत्यन्त आभारी हैं और भक्तवत्सल भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आप तथा आपके सुपुत्र सदैव दान, धर्म और परोपकार के कार्य करते हुए आरोग्य, सुख-समृद्धि तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करे और वढे, फूले तथा फलें!

व्यवस्थापक

योग निकेतन ट्रस्ट

श्रीमती प्रेमदेवी (धर्मपत्नी स्वर्गीय दीवानबहादुर श्री बलीरामजी तनेजा तथा माता श्री विजयप्रतापजी और श्री नन्दकिशोरजी)
धनबाद (बिहार)

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

उत्तरार्द्ध

विषय पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

पूर्वार्द्ध

नहीं की अपितु सम्पूर्ण जीवन की रक्षा की है। इन्होंने अपना सारा जीवन तपश्चर्या, साधना और योग के अर्पण कर दिया, इसीलिए वे युगपुरुष हैं। तप पूत तपस्वी हैं। महान् योगी तथा सिद्ध महात्मा हैं। राजयोगाचार्यजी ने योग द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्त किया है। जिस प्रकार आधुनिक विज्ञानवेत्ता विज्ञान की प्रयोगशाला मे विविध लौकिक अनुसधान करता है, उसी प्रकार से महाराजश्री ने अपनी देहरूपी भगवान् की पुरी को प्रयोगशाला बनाकर आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान का अनुसधान किया है और पाचो कोशो के साक्षात् दर्शन करके ब्रह्म-दर्शन लाभ किया है। यह पूज्य महाराजजी की विश्व को एक महान् देन है। उनका यह उपकार वर्तमान तथा भावी सन्ततियो के हृत्पटल पर सदैव अङ्कित रहेगा।

योगीराजजी अन्य बालको के समान ही एक साधारण बालक थे। अपने परम पुरुषार्थ, तप, त्याग, जाप, साधना तथा योगाभ्यास के द्वारा एक ही जन्म मे विद्वान्, योगी, आत्मज्ञानी तथा ब्रह्मज्ञानी बन गए। उनका सारा जीवन आबालवृद्ध सभी के लिए एक महान् उपदेश है। उनके बताए मार्ग पर चलकर मानव अपना कल्याण कर सकता है।

"हिमालय का योगी" पाच अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे वैराग्योत्पत्ति, बाल्यकाल मे गृह-त्याग, सस्कृताध्ययन, कई योगियो के सान्निध्य मे रहकर योगाभ्यास, वैराग्य भावना का दृढीकरण, विविध सघर्षो पर विजय तथा योगियो की खोज मे उत्तरोत्तर भ्रमणादि का विषद वर्णन है।

दूसरे अध्याय में योगी परमानन्दजी से साक्षात्कार, उनके श्रीचरणो मे बैठ कर योग-साधना, उचित मार्ग दर्शन, १२ घण्टे तक की शून्य समाधि का अभ्यास, कई वर्ष तक मौन व्रत धारण करके उसे दृढभूमि करना, उनके प्रशिक्षण के आधार पर कई घण्टे तथा कई-कई दिन की शून्य समाधि का अभ्यास, दर्शनोपनिषदादि ग्रथो का अध्ययन, अनेक सन्तो तथा महात्माओ के सत्सग के लाभादि का वर्णन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे पूर्ण ब्रह्मज्ञानी योगी की खोज, ब्रह्मज्ञानी आत्मानन्दजी महाराज का साक्षात्कार, उनके श्रीचरणो की कृपा से सप्रज्ञात समाधि द्वारा कारण रूप प्रकृति और उसके समस्त कार्यो का साक्षात्कार, और आत्म-ज्ञान तथा ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति और साक्षात्कार, कई वर्षो का मौन, अनेक उपायो तथा ध्यान-समाधि द्वारा प्राप्त विज्ञान को दृढभूमि करने का सविस्तार वर्णन है।

चौथे अध्याय मे लगभग २५ वर्ष तक हिमालय मे निवास, योग के विद्यार्थियो को योगविद्या का प्रशिक्षण, अष्टाग योग द्वारा ध्यान और समाधि से आत्म-

साक्षात्कार करवाना, 'वहिरङ्ग-योग' तथा 'आत्म-विज्ञान' ग्रथो की रचना, सन् १९६२ मे वैशाख की सक्रान्ति के दिन वृहद् यज्ञ करके सन्यास आश्रम मे प्रवेश का वर्णन है।

पचम अध्याय मे बद्रीनाथ मे ४ मास का काष्ठ मौन तथा 'ब्रह्म-ज्ञान' की रचना, ब्रह्मसाक्षात्कार का अभ्यास कराना, सन् १९६४-६५ मे भारत के बड़े-बडे नगरो का परिभ्रमण, आत्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान का प्रचार, अनेक व्याख्यानो, नगरो मे लोगो मे योग के प्रति अभिरुचि और योगाभ्यास के साधनो का प्रचार, पुन हिमालय-आगमनादि का वर्णन है।

इस ग्रथ के लेखक के रूप में किसी व्यक्ति विशेष का नाम न देने का कारण किसी व्यक्ति विशेष का लेखक न होना ही है। विभिन्न लेखो का सग्रह करके योगनिकेतन ट्रस्ट ने जनकल्याणार्थ पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है।

व्यवस्थापक
योगनिकेतन ट्रस्ट

स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश
जिला देहरादून
१९-३-१९६६
वि० सवत् ६ चैत्र २०२३

भूमिका

भारतवर्ष योग की परम्पराओ को भूल चुका था। महर्षि पतजलि के नाम से भी इने-गिने विद्वान् ही परिचित थे। जो सस्कृत के विद्वान् षड् दर्शन का अध्ययन करके पाण्डित्य प्राप्त करना चाहते थे वे ही इसे पढते थे। पातजल योग भी एक महत्वपूर्ण दर्शन है। इसके बिना दर्शन-ज्ञान अधूरा है। इस दर्शन को पाण्डित्य के लिए पढा जाता था, योगाभ्यास के लिए नही। आधुनिक युग मे योगियो का प्राय अभाव सा ही है। पूज्यपाद श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज ने योग की प्राचीन परम्पराओ तथा योग की प्राचीन परिपाटी को इस युग मे प्रारभ करके इसका पुनरुद्धार किया है।

श्री योगीराज के सपर्क मे बहुत वर्ष तक रहने का पुण्य-लाभ किया है। इनके जीवन की अनेक घटनाए प्रत्यक्ष देखी तथा सुनी हैं। इनके अद्भुत मनोबल, आश्चर्य-चकित कर देने वाली सिद्धियो, अनुभूतियो और चमत्कारो को देख सहसा विश्वास नही होता कि इस पतन के युग मे भी ऐसे महान् योगी का जन्म हो सकता है। इनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओ तथा यौगिक अनुभूतियो को पढकर जनता की योग मे आस्था तथा श्रद्धा उत्पन्न होगी, इसके प्रति रुचि मे वृद्धि होगी, तथा योगोन्मुख युवक योगियो को मार्ग-दर्शन लाभ होगा, इस उद्देश्य से "हिमालय का योगी" को लिखने का प्रयास किया गया है। इसमे महाराजश्री के जीवन की प्रमुख-प्रमुख घटनाओ तथा योगानुभूतियो का सग्रह किया गया है। आशा है, यह ग्रथ पाठको के नैतिक स्तर को उन्नत करने, उनके जीवन को धार्मिक बनाने, उच्चादर्शों को समझने, व्यावहारिक जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने, अतीत की ओर ध्यान आकर्षित करने तथा योग के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए अग्रसर होगा।

मानव मात्र के जीवन का तीन-चौथाई भाग सर्वसाधारण मानव के समान ही होता है। प्रत्येक प्राणी माता के गर्भ से उत्पन्न होता है। माता-पिता से लालित और पालित होकर विकास और वृद्धि को प्राप्त करता है। विद्यालयो तथा महाविद्यालयो मे अध्ययन करके उपाधि ग्रहण करता है या यू ही साधारण व्यावहारिक ज्ञान का अर्जन करता है। युवावस्था मे आजीविका की चिन्ता करता है। विवाह होता है। परिवार बन जाता है। उसका उत्तरदायित्व सभालता है। वार्धक्य को प्राप्त करता है, और इसी प्रकार जीवन सघर्ष करता हुआ अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देता है। आयु का एक-चौथाई भाग ही ऐसा है जो उसे देव अथवा दानव बना देता है। महाराजश्री ने अपने जीवन के केवल एक-चौथाई भाग की ही रक्षा

विषय | पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

ॐ

हिमालय का योगी

प्रथम अध्याय

वैराग्य का उदय

महापुरुष सभ्यता, संस्कृति और धर्म के स्रोत होते है। वास्तव मे ये किसी भी देश अथवा राष्ट्र की अलौकिक निधि हैं। इनके द्वारा ही मानव आत्मा का रक्षण और पोषण होता है। विश्व-कल्याण के लिए वे सदैव चिन्तित रहते है। अज्ञान के गहन गर्त मे डूबे जीवो की दयनीय दशा को देखकर वे द्रवित होते है और अपनी अहैतुकी कृपा की वर्षा वे उन पथभ्रष्टो और किंकर्त्तव्यविमूढ प्राणियो पर शाश्वत-रूपेण करते रहते है। जब मानव धर्म के प्रति उदासीन हो जाता है, अधर्म की अभिवृद्धि होने लगती है, पापाचरण का समर्थन होता है, भगवद्भक्तो का उपहास और अपमान होने लगता है, तब आर्तो की आर्ति हरण करने तथा दुखितो के दुखो को दूर करने और पतितो के परित्राण, धर्म के उद्धार, सभ्यता तथा संस्कृति के सुधार, पावन परम्पराओ की पुन स्थापना और लोक कल्याण के लिए जगन्नियन्ता अपनी किसी न किसी विभूति को संसार मे प्रेरित किया करते है। महात्मा ब्रह्मर्षि प्रात स्मरणीय पूज्यपाद नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती जी उन दिव्य विभूतियो मे से एक हैं।

योग का पुनरुद्धार—अनेक विमल धाराओ सहित भक्ति की जान्हवी तो किसी न किसी रूप मे हमारे देश मे गत कई शताब्दियो से प्रवाहित होती रही। समय-समय पर इसका विभिन्न सहायक धाराओ से परिपोषण और परिवर्धन होता रहा। कबीर, रविदास, नानक, नामदेव, एकनाथ, रामदासादि इसी भक्त परम्परा के प्रतीक थे। किन्तु योग-परम्परा को हमारा राष्ट्र बिल्कुल भूल गया था। भक्ति-मार्ग की सरलता और सुगमता मे आकर्षण था। यह बडी सुबोध थी और आसानी से समझ मे आ जाती थी। सहजगम्य होने से यह लोकप्रिय थी। भक्ति पापात्माओ को भी उल्टा-सुल्टा भगवन्नाम स्मरणमात्र से ही परित्राण की आशा दिलाती थी। अत यह सर्वाधिक लोकप्रिय बनी रही। योग बडा कठिन मार्ग है। इसी के विषय मे उपनिषद् ने कहा है "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया"। यह पथ बडा दुर्गम है। इसमे साधक को योगाग्नि मे अपने को स्वाहा करना होता है। कठिनतम तपस्या करनी होती है, इसकी साधना की समाप्ति किसी एक या दो जन्म मे नही होती। योग मे सिद्धि प्राप्त करने के लिए जन्मजन्मान्तरो तक साधना करनी पडती है। इसीलिए यह मार्ग लोकप्रिय नही रह सका था। योग भारतवर्ष की अमूल्य निधि है। समस्त विद्याए योगाभ्यासजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के ही मधुर और मनोहर फल है। हमारे शास्त्रो मे सभी धर्मो का मुख्य साधन योग माना गया है। वेद, उपनिषद्, गीतादि शास्त्रो मे योग के महत्व को यत्र-तत्र बडी महत्ता दी गई है। महाभारत तथा पुराणो

मे भी योग का विपुल तथा विस्तृत वर्णन पाया जाता है। किन्तु वर्तमान युग मे भारतीय अपने महान योग को भूल गए थे। योग का नाम ही लोगो को भयभीत करता था। इसीलिए हमारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पतन हो रहा था। इसी पुरातन योग की परम्पराओ की रक्षा और योग का पुनरुद्धार करने के लिए योगीराज योगेश्वरानन्दजी महाराज का आविर्भाव हुआ।

जन्म—योगीराज का पूर्व नाम व्यासदेवजी था। आपने अपने जन्म से एक उच्च कुल को गौरवान्वित किया था। इनके माता-पिता तथा वहिन-भाईयो का इनसे अत्यधिक स्नेह था। ये माता-पिता के दुलारे तथा अपने सहोदरो के प्यारे थे। वडे लाड और प्यार से आपका लालन-पालन और पोपण हुआ था। यह वालक प्रतिभा-सम्पन्न था। सहन-शीलता, सहानुभूति, आज्ञापालनादि आपके सहज गुण थे। अपने गुणो तथा शिशुस्वभाव सुलभ चाञ्चल्य तथा माधुर्य और सौन्दर्य के कारण वे दिन प्रति दिन सर्वप्रिय वनते गए। पास-पडौस के आवाल वृद्ध नर-नारियो के ये वडे स्नेहभाजन वन गए। जहा कही भी ये जाते वही सव उनसे प्रेम करते तथा उनकी भोली और मीठी-मीठी वातो से आनन्द लाभ करते। उनकी वाल-लीलाए वालगोविन्द के वाल्य-काल का सहसा स्मरण दिला देती है। इस प्रकार वडे वात्सल्यपूर्ण वातावरण मे वालक व्यासदेव चन्द्रकला की भाति विकास को प्राप्त करने लगा।

विचारशीलता—व्यासदेवजी स्वभाव मे ही विचारशील तथा एकान्तप्रिय थे। घर हो या वाहिर, वे किसी न किसी एकान्त स्थान मे वैठते थे। समुदाय मे रहना उन्हे पसन्द न था। इसीलिये कभी-कभी उन्हे अपने पारिवारिक जनो तथा सह-पाठियो का कोप-भाजन वनना पडता था। वे एकान्त मे अपने घर के किसी कोने मे या उद्यान मे, पाठशाला के सुदूर किसी क्रीडाङ्गन मे अथवा किसी एकान्त कमरे मे वैठे कुछ सोचा करते थे। सदैव विचारमग्न दृष्टिगोचर होते थे। यह किसी को पता नही था कि वे क्या सोचते है और किन विचारो मे डूवे रहते है। ग्यारह या वारह साल के वालक से किसी प्रकार की विचारशीलता की आशा भी नही की जा सकती थी। वालक क्या सोचता है, किस विचार मे डूवा है, किस चिन्ता ने इसे घेरा है, इसे क्या पीडा है तथा क्या दु ख है, इसे कोई समझ नही सका। यह वात सवके लिए एक पहेलिका थी। माता-पिता वालक के इस प्रकार के रुख से दु खी थे और कुछ चिंतित से रहने लगे। वे इस वात की कभी कल्पना भी नही कर सकते थे कि उनका वारह वर्ष का वालक सृष्टि, उसका स्रष्टा तथा जीवो के पारस्परिक सम्वन्ध के विषय मे तथा तत्सम्वन्धित अन्य विषयो के विचारो मे डूवा रहता है। व्यासदेवजी के सामने यह एक जटिल समस्या थी। इसका समाधान उनके पास न था, इसीलिए वे आतुर तथा व्याकुल रहते थे। माता-पिता को क्या मालूम था कि उनका नन्हा वालक किन जटिल समस्याओ को सुलझाने मे व्यस्त है।

स्वामी रामानन्दजी से सपर्क—जव व्यासदेवजी को व्रह्म, प्रकृति और जीव तथा ससार, और उसके दु खो के कारण समझ मे न आए तव वह किसी ऐसे महा-पुरुष की खोज करने लगे जो उन्हे जीव, व्रह्म और प्रकृति के पारस्परिक सम्वन्ध और ससार के दु खो की निवृत्ति के विषय मे पूर्ण ज्ञान प्रदान कर सके और ऐसा मार्ग वता सके जिसपर चलकर ससार के दु खो को दूर किया जा सके। जव वे इस खोज मे

घर-उधर भ्रमण कर रहे थे तब एक दिन उन्हे पता चला कि स्वामी रामानन्दजी गिरि उनके नगर मे आए हुए है। अपने एक मित्र के साथ वे उनके दर्शन करने के लिए गए। स्वामीजी महाराज ने द्वादशवर्षीय बालक व्यासदेव के व्यक्तित्व को तुरत पहिचान लिया। उन्होने बालक की तिरोहित शक्तियो को जाना और यह समझ लिया कि यह बालक एक दिन महापुरुष होगा और पथभ्रष्ट लोगो का पथप्रदर्शक बनेगा।

सस्कृताध्ययन की प्रेरणा—व्यासदेव की शिक्षा का प्रारम्भ उर्दू और अग्रेजी से हुआ था। जब वह स्वामी रामानन्दजी महाराज से मिले थे तब उनकी आयु केवल बारह वर्ष की थी और छठी कक्षा मे पढते थे। स्वामीजी महाराज के चरणारविन्दो मे प्रणाम करके पास बैठ गये। बालक की पढाई-लिखाई के विषय मे बातचीत करने के पश्चात् महाराज को विदित हुआ कि बालक केवल अग्रेजी और उर्दू ही पढता है और सस्कृत तथा आर्यभाषा मे नितान्त अनभिज्ञ है, अत उसे ये दोनो भाषाए पढने की आज्ञा दी। व्यासदेव ने असमर्थता प्रकट करते हुए निवेदन किया कि पाठशाला मे अब ये दोनो भाषाए पढना असभव है क्योकि उन्होने प्रारम्भ से इन दोनो भाषाओ को पढा ही नही था। अनेक प्रकार के प्रश्नोत्तरो से स्वामीजी महाराज ने यह समझ लिया था कि बालक कुशाग्रबुद्धि है, और इसमे महानता के चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित हो रहे है, अत उसमे कहा कि अपने खाली समय मे हमारे पास आया करो, हम तुम्हे ये दोनो भाषाए पढाया करेंगे। प्रत्येक आर्य के लिए इन दोनो भाषाओ का पढना अनिवार्य है। सस्कृत देववाणी है। इसी मे हमारी सभ्यता और सस्कृति निहित है। यही हमारे धर्म का आदिस्रोत है। सस्कृत भाषा के अध्ययन के बिना जीव, ब्रह्म और प्रकृति के सम्बन्ध तथा ससार के दु खो से मुक्त होने के बारे मे ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। इसी भाषा मे हमारे वेद, दर्शन, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषदादि ग्रथ लिखे गए है। उनके पढे बिना निजधर्म को समझना असभव है।

स्वामीजी से सस्कृताध्ययन—व्यासदेवजी पर स्वामीजी के उपदेश का गहरा प्रभाव पडा। वह स्वामीजी से पढने के लिए नित्यप्रति आने लगे। स्वामीजी ने सर्वप्रथम बालक को ब्रह्मचर्य का महत्त्व बताया और ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने के लिए कहा। बालक ने उसी दिन आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करने का व्रत धारण किया। स्वामीजी के व्यक्तित्व का व्यासदेवजी पर बडा प्रभाव पडा। पाठशाला से छुट्टी होते ही वे तुरन्त स्वामीजी के पास पढने के लिए आ जाते। तीन-चार महीने मे ही आर्यभाषा की चार-पाच पुस्तके पढ ली और लिखने का भी बहुत अच्छा अभ्यास होगया। व्यासदेव की इस प्रकार की अद्भुत प्रतिभा से स्वामीजी बडे प्रभावित हुए और उनके अध्ययन मे अधिकाधिक रुचि लेने लगे। इसी काल मे व्यासदेवजी की सस्कृत मे भी अच्छी गति होगई।

तीन जीवन-चरितो का प्रभाव—स्वामीजी महाराज ने व्यासदेव को स्वामी शकराचार्य, भगवान् बुद्ध तथा स्वामी दयानन्दजी महाराज के जीवन-चरित पढाए। इन तीनो जीवन-चरितो का व्यासदेवजी पर बडा प्रभाव पडा। उन्होने यह निश्चय किया कि वह भगवान् शकर के समान प्रकाण्ड पडित, भगवान् बुद्ध के समान त्यागशील और ऋषि दयानन्द के समान नैष्ठिक ब्रह्मचारी और महान् योगी बनेगे।

बुद्ध ने देखा कि ससार मे चारो ओर दु ख ही दु ख है। इस दु खित तथा पीडित ससार के दु ख का क्या कारण है तथा इस दु ख से ससार को कैसे बचाया जा सकता है—इसका पता लगाने के लिए बुद्ध ने गृह-त्याग किया और दु खार्णव मे डूबे हुए ससार को इससे बचने का उपाय बताया। शकर ने बुद्ध के शून्यवाद तथा अकर्मण्यता-वाद के नाश करने का बीडा उठाया और बुद्ध द्वारा प्रचारित अनीश्वरवाद को नष्ट कर ब्रह्मवाद की स्थापना की। ऋषि दयानन्द ने तत्कालीन भारतवर्ष की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दयनीय दशा से द्रवित होकर अज्ञान के गहन गर्त मे गिरे हुए भारत के उद्धार के लिए गृह-त्याग किया और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करके भारत मे नवचेतना का प्रसार किया। प्राचीन पावन परम्पराओ की स्थापना की, अतीत का गौरव बताया, नवीन शिक्षा-प्रणाली प्रचलित की, कुरीतियो रूपी विविध कुष्ठ से पीडित समाज को जीवन दान दिया, राष्ट्रीय भावना को जागृत किया और वैदिक ज्ञान की ओर भारत का ध्यान आकर्पित किया। ऋषि दयानन्द के समान नैष्ठिक ब्रह्मचारी और महान् योगी बनकर पथभ्रष्ट समाज का पथ-प्रदर्शन करने के लिए हमारे चरितनायक व्यासदेवजी ने भी १५-१६ वर्ष की आयु मे गृह-त्याग किया।

स्वामीजी का प्रभाव—व्यासदेवजी ने स्वामी रामानन्दजी के पास रह कर आर्यभाषा की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और सस्कृत का भी ज्ञान प्राप्त किया। सध्या और गायत्री के अतिरिक्त विविध सुभाषित तथा श्लोक याद किए। रामानन्दजी का व्यासदेव के हृदय पर बहुत बडा प्रभाव पडा। बालक-हृदय बडा कोमल, सरल और भावुक होता है। फिर व्यासदेव के प्राक्तन सस्कार उत्तम थे, घर का वातावरण भी ठीक था। अन्त करण निर्मल था, अत स्वामीजी का उपदेश उनके हृदय-पटल पर सदैव के लिए अङ्कित हो गया, स्वामीजी के आदेश से पिताजी ने व्यासदेव का यज्ञोपवीत सस्कार भी करा दिया था। व्यासदेवजी का चित्त अब स्कूल से उपरास होगया। अग्रेजी और उर्दू पढने मे अरुचि होगई। कई-कई दिन स्कूल नही जाते थे। स्वामीजी महाराज के सत्सग मे आनन्दानुभव करते थे और प्राय उन्ही के आश्रम मे रहते थे। इस पर पिता बडे क्रुद्ध हुए और बालक व्यासदेवजी की ताडना की और धिक्कारा। उसको स्वामीजी के पास जाने से मना किया और नियमानुसार नित्यप्रति स्कूल जाने का कठोर आदेश दिया।

गृह-त्याग तथा योग के प्रति रुचि

व्यासदेव ने जैसे-तैसे बडी कठिनाई से छठी कक्षा पास की। अब स्कूल से अरुचि होगई। स्कूल जाना बिल्कुल छोड दिया। पिताजी स्वामीजी के पास जाने नही देते। सस्कृत सीखने का और कोई साधन नही। स्वामीजी के सत्सग तथा उपदेश सुनने के लिए पिताजी ने उनके पास न जाने की कठोर आज्ञा दे दी। पिता ने यह दृढ धारणा बना ली थी कि यदि व्यासदेव स्वामी रामानन्दजी के पास जाता रहेगा तो वह पक्का साधु हो जाएगा। व्यासदेवजी के लिए यह स्थिति असह्य हो उठी। वे बडे आतुर और व्याकुल रहने लगे। जो पुस्तकें स्वामीजी से पढी थी उनकी पुनरावृत्ति करने तथा गायत्री जाप मे समय व्यतीत करने लगे। स्वामीजी ने व्यास-देवजी को बताया था कि गायत्री जाप से शीघ्र कार्यसिद्धि प्राप्त होती है। घण्टो ही गायत्री जाप मे व्यतीत करते। खान-पान की चिन्ता भी उन्हे न रहती थी।

माता भोजन के लिए बुलाती तो भोजन करने चले जाते थे। यदि वह न बुलाती तो जाप चलता रहता था। व्यासदेव के पिता के लिए यह बात असह्य थी। बालक को उस मार्ग से हटाने के लिए तथा स्वामीजी का सत्संग छुड़ाने और उस वातावरण से दूर रखने के लिए व्यासदेवजी को उनकी बहिन के पास भेज दिया और उसे आदेश दिया कि वह अपने जीजाजी की दुकान पर दुकान का काम सीखे। गुरु नानकदेव के पिता ने भी उसे भक्ति-मार्ग से हटाने और संसार में आसक्त करने के लिए तथा सन्त-समागम से दूर रखने के लिए उसे उसकी बहिन के पास व्यापारादि सीखने के लिए भेजा था किन्तु इससे उनकी उपरामता में किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं आया था। इसी प्रकार व्यासदेवजी को बहिन के घर पर भेजने पर भी उनकी चित्तवृति पूर्ववत् उपराम बनी रही। वहां से पिता ने व्यासदेव को पुन अपने पास बुला लिया। यह पूर्ववत् गायत्री जाप करने तथा उदासीन वृत्ति से रहने लगे। पारिवारिक सदस्यों से दूर घर के किसी एक कोने में बैठ कर या तो जाप करते या चुपचाप कुछ चिन्तन करते रहते। न तो किसी से अधिक वार्तालाप करते और न किसी के पास बैठते। भाई-बहिन सभी उनका उपहास करते। व्यासदेव ने अब यह दृढ निश्चय कर लिया था कि घर पर रह कर न तो संस्कृत पढने की कोई व्यवस्था हो सकती है और न योग ही सीखा जा सकता है। अत घर से भाग जाने की योजनाएं बनाने लगे। योग सीखने की प्रबल अभिलाषा उन्हें गृह-परित्याग के लिए बार-बार प्रेरित करती थी। तेरह-चौदह वर्ष के बालक में योग की इतनी उत्कट अभिलाषा उसके प्राक्तन संस्कारों के प्रबल प्रभाव के परिणामस्वरूप ही मालूम होती थी। इससे यह स्पष्ट है कि व्यासदेव पूर्वजन्म के योगभ्रष्ट थे। स्वामी रामानन्दजी उससे प्राय कहा करते थे कि योग के बिना आत्म-साक्षात्कार असंभव है।

स्वामीजी से सहायता की प्रार्थना—व्यासदेवजी अभी तक अपना भावी कार्य-क्रम निश्चित न कर सके थे। घर से भाग जाने का निश्चय तो कर लिया था किन्तु गन्तव्य स्थान तथा योग सीखने और संस्कृत पढने की व्यवस्थादि के बारे में कोई निर्धारित रूपरेखा न बना सके थे। अत चिन्तित तथा व्याकुल रहना स्वाभाविक था। एक दिन अत्यन्त आतुरता तथा व्याकुलता के साथ स्वामी रामानन्दजी के पास गए और उनके चरणों पर गिर कर अपनी सारी व्यथा उन्हें कह सुनाई। अपने गृह-परित्याग के विचार से भी उन्हें अवगत किया और सहायता के लिए प्रार्थना की। स्वामीजी ने दो चार दिन में विचार करके अपनी सलाह देने का वायदा किया।

माता का उपदेश—व्यासदेवजी की माता उनसे अत्यन्त स्नेह करती थी। एक दिन पास बिठाकर वात्सल्य भाव से उससे पूछने लगी, "बेटा, तुम्हें क्या होगया है? तुमने स्कूल जाना छोड दिया। रात-दिन न जाने किस चिन्ता में डूबे रहते हो। भोजन भी तुम रुचिपूर्वक नहीं करते हो। रात-दिन किन्हीं गहरे विचारों में खोए से रहते हो। न तुम अपने बहिन-भाईयों और मित्रों से कभी हंसते-बोलते हो और न कभी उनसे खेलते ही हो। सारा दिन घर के किसी कोने या मन्दिर में बैठे माला लेकर जाप किया करते हो। यह तुम्हारी अवस्था माला फेरने की नहीं है अपितु पढने और भावी जीवन के लिए तैयारी करने की है जिससे तुम सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सको।" व्यासदेव ने कहा, "मैं पढना तो माताजी अवश्य चाहता

हू किन्तु उर्दू और अंग्रेज़ी पढने मे मेरी रुचि नही है। मै तो सस्कृत पढना चाहता हू। इसी मे तो हमारे धर्म की बाते लिखी है। इसी को पढकर वास्तव मे मनुष्य अपने जीवन को उन्नत कर सकता है और भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है। इस-लिए आप मुझे किसी सस्कृत विद्यालय मे सस्कृत अध्ययन करने के लिए भेज दो। यदि आप ऐसा न करोगी तो मै स्वय ही किसी सस्कृत पाठशाला मे पढने चला जाऊगा और ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करके सस्कृत पढूगा और योग साधन के द्वारा आत्मविज्ञान प्राप्त करूगा।" माता ने स्नेहपूर्वक उसका आलिगन करके कहा, "पुत्र! ब्रह्मचर्य-व्रत को आजीवन धारण करना अत्यन्त कठिन है। कोई विरले ही लडके आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर सकेंगे। इनकी गणना अगुलियो पर की जा सकती है। यह व्रत बडा कठिन है। तुम इसका पालन न कर सकोगे। तुम्हे सदा वनो मे रहना होगा। स्त्रियो के दर्शन मात्र से भी दूर रहना पडेगा। गद्देदार पलगो का परित्याग करके तुम्हे ज़मीन पर सोना होगा और मृगचर्म धारण करना होगा। भिक्षाचर्या करनी पडेगी और गुरुजी के पास रह कर वेदाध्ययन करना होगा। बेटे! ब्रह्मचर्य-साधना बडी कठिन है। इसको धारण करना तो लोहे के चने चबाना है। तुम इस हठ को छोड दो। जिस प्रकार से तुम्हारे भाई हसते-बोलते और पढते-लिखते है तथा बडे सुख से घर मे रहते है तुम भी इसी प्रकार से रहो। इससे तुम्हारे पिताजी तुमसे प्रसन्न रहेगे और सारा परिवार भी इसी मे अपना सुख मानेगा। तुम इतने बडे परिवार मे उत्पन्न हुए हो। यहा पर सभी सुख तथा ऐश्वर्य के साधन प्राप्त है। तुम क्यो इन सबका परित्याग करके कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहते हो? तुम अंग्रेजी और उर्दू पढना क्यो छोड रहे हो? इनको पढकर ही तो तुम राज्य मे ऊचा पद प्राप्त कर सकोगे और अपने भावी जीवन को सुखी बना सकोगे। मेरे दुलारे बेटे! अपनी प्यारी माता की बात को मानो और अपने हठ को छोडो। यह अच्छा नही है। तुम्हारे पिताजी ये सब बाते सुनेंगे तो तुमसे बहुत नाराज होगे। तुम उनके स्वभाव को जानते ही हो। ऐसा काम मत करो जिससे घर मे अशान्ति उत्पन्न हो और तुमसे सब नाराज़ हो। किन्तु बालक व्यासदेव अपने विचारो पर हिमालय के समान अटल रहा। माता अपने प्रेमभरे वचनो से उसे अपने निश्चित मार्ग से हटा न सकी। व्यासदेव ने ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके योग साधन करने का जो निश्चय किया था उससे वह उसे डिगा न सकी। उसने माता से निवेदन किया कि वे उसे इस व्रत के पालनार्थ वन मे जाने की आज्ञा प्रदान करे किन्तु माता ने कहा कि मैं ऐसी निर्दयी माता नही हू जो अपने प्यारे बेटे को वन मे भेजू। व्यास-देव ने मदालसा का उदाहरण देकर माता को समझाया और कहा कि "इस ब्रह्म-वादिनी तथा ब्रह्मवर्चस्विनी माता ने अपने पुत्रो को आत्म-ज्ञान प्राप्त्यर्थ वन मे भेजा था। आप भी उस देवी का अनुकरण करे और मुझे योग-साधना द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेज दे। आपके पास आपके चार पुत्र तो रहेगे ही, केवल एक ही तो नही रहेगा। माताजी! आप अपने पाचवे पुत्र को भगवान् के चरणो मे अर्पण कर दो। इसी मे सबका कल्याण है।"

व्यासदेव की माता पढाई के प्रति पुत्र की उपरति, जीवन के प्रति उदासीनता और उसकी चिन्तितावस्था को देखकर अत्यन्त दु खी रहती थी। उसका मन्त्र-जाप

उसे बिल्कुल पसन्द न था। वह अपने पुत्र को साधु या सन्यासी देखना नही चाहती थी। वह तो उसे लौकिक दृष्टि से बहुत ऊचे पद पर देखना चाहती थी। वह उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में देखकर सन्तुष्ट नही थी, वह तो उसे ऐश्वर्यवान्, समृद्धिमान और पुत्रवान् देखना चाहती थी। उसे भला व्यासदेव के ऐसे रगढग किस प्रकार रुचिकर हो सकते थे! जब वह किसी प्रकार भी व्यासदेव को समझा-बुझाकर ठीक रास्ते पर न ला सकी तो उसने उसके पिता को सारी स्थिति से अवगत कराया और कहा कि लडका स्कूल मे जाना नही चाहता, सस्कृत पढना चाहता है और योग सीखना चाहता है। यदि इसकी व्यवस्था न हो सकी तो वह घर से भाग जाने की धमकी देता है। उस पर कडी निगरानी रखने की आवश्यकता है, कही सचमुच ही भाग न जाए। पिता को यह सब जानकर महान् दुःख हुआ। व्यासदेव को अपने पास बुलाया और स्कूल जाने की प्रेरणा दी। किन्तु वह स्कूल जाने के लिए तैयार न हुआ और निवेदन किया कि उसे सस्कृत पढने के लिए किसी गुरुकुल मे भेज दिया जाए। किन्तु पिता को यह बात पसन्द नही आई और उसको बहुत डाटा फटकारा। व्यासदेवजी अपने पिता से बहुत डरते थे अत एक लम्बी चुप साधकर सामने खडे रहे, किन्तु अपने निश्चय से पिता उन्हें डिगा नही सके।

चार दिन पश्चात् पुन स्वामी रामानन्दजी के पास गये और अपने घर छोडने के निश्चय से अवगत कराकर भविष्य मे सहायता करने और मार्ग दर्शन की प्रार्थना की। स्वामीजी ने उन्हें तीन-चार स्थानो के पते बता दिए और परिचय-पत्र लिखकर उन्हे दे दिए।

दृढप्रतिज्ञ तथा व्रतशील ब्रह्मचारी व्यासदेवजी ने १५ या १६ साल की आयु मे अपने घर से ७०० रु० और एक कम्बल लेकर वैसाख मास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को गृह त्याग किया। चन्द्रमा अस्त हो गया था। सारा परिवार निद्राग्रस्त था। बालक व्यासदेव अकेला जागरूक था। माता का वात्सल्य, पिता का प्रेम तथा भाई-बहनो का स्नेह और सौहार्द उसे अपने प्रण से किंचिन्मात्र भी डिगा न सका। ससार के प्रलोभन, परिवार का प्रेम, घर का सुख और आराम उसे पथभ्रष्ट न कर सके। वह गगनचुम्बी हिमालय के समान अचल, अडिग और स्थिर रहा। वह ससार के सघर्षो, घातो तथा प्रतिघातो को सहकर भी अचल चट्टान की भाति स्थिर रहा और उसका चरित्र निखरता रहा। ऐसा मालूम होता था मानो बालक व्यासदेवजी ने "घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धम्" का जो पाठ स्वामी रामानन्दजी के पास पढा था उसे चरितार्थ कर रहे थे। चन्दन को जितना घिसा जाता है उतना ही वह सुगन्धित होता जाता है। जितना बारीक मेहदी को पीसा जाता है उतना ही वह अधिक रगयुक्त हो जाती है। भट्टी मे तप कर ही स्वर्ण कुन्दन बनता है। षोडषवर्षीय बालक व्यासदेवजी ने अपने आपको तपस्या की भट्टी मे तपा-तपाकर अपने चरित्र को चमकाने और योग द्वारा अध्यात्म तत्त्व को प्राप्त करने का दृढ निश्चय कर लिया था। ससार का कोई ऐसा प्रलोभन न था जो उसे अपने गन्तव्य-पथ से विचलित कर सकता।

सारे परिवार को निद्राविभूत देखकर व्यासदेवजी ने इस अवसर से लाभ उठाया और एक कम्बल, एक लोटा तथा ७०० रुपये के पोण्ड लेकर घर से प्रस्थान

किया। वालक कभी अकेला घर से वाहिर न निकला था। चारो ओर रात्रि का अन्धकार छाया हुआ था इसलिए उसे कभी-कभी भय भी लगता था। सामने वियाबान जगल था। हिंसक जीवो का भय था किन्तु व्रतशील, दृढनिश्चयी तथा निज उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दृढप्रतिज्ञ व्यासदेवजी को यह भय पथभ्रष्ट नही कर सका। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि "कार्य वा साधयामि शरीर वा पातयामि।" सान्द्रान्धकाराच्छादित भयकर रात्रि मे दृढप्रतिज्ञ यह वालक घनघोर जगल की किंचिन्मात्र भी परवाह न करके निज लक्ष्य पूर्त्यर्थ अग्रसर हो रहा था। भूमि असम थी। कही ऊची थी और कही नीची। कही खड्ढा था और कही नाला। जैसे-तैसे गिरते-पडते व्यासदेवजी ने इस तिमिराच्छादित घने जगल को पार किया। गन्तव्य पथ का निर्णय करना कठिन था। किस पथ का अनुसरण करना चाहिए, किस दिशा का अवलम्बन ठीक होगा, इत्यादि के विपय मे वह कुछ निश्चय न कर सके।

शोकातुर परिवार—इधर प्रात काल व्यासदेवजी के माता, पिता, भाई-वन्धु जव जगे तो व्यासदेव को अपने विस्तर पर न पाकर एकदम घवरा उठे। वालक की खोज मकान तथा वाग मे इधर-उधर सर्वत्र की गई किन्तु कही उसका पता न चला। पास-पडौस मे, हाट-वाजार मे, गली-कूचे मे सव स्थानो पर उसे ढूढा किन्तु वह वहा पर था ही नही, मिलता कैसे! वह तो प्रात काल होने मे पूर्व ही नगर मे वहुत दूर चला गया था। जव उसका कही पता नही चला तो सारे परिवार मे हाहाकार मच गया। माता अपने लाडले वच्चे के लिए करुण क्रन्दन कर रही थी जिसे सुनकर पत्थर भी रोते हुए से प्रतीत हो रहे थे। पिता यद्यपि इस महान आघातजनित दु ख को प्रकट नही कर रहे थे किन्तु पुत्र वियोग की वेदना उनके चेहरे से स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। वहिन-भाइयो की दयनीय दशा को देखकर पापाण-हृदय भी दु खित हो रहा था। इतना ही नही, आसपास के नर-नारी भी मधुर और सरल प्रकृति वाले भोले-भाले शीलवान सीधे-साधे व्यासदेव के गृह-त्याग पर दु खी हो रहे थे। उसके समवयस्क वालक उसकी वातें याद करके आसू वहा रहे थे। वडा कारुणिक दृश्य था। पिता ने वालक का पता लगाने के लिए इधर-उधर पैदल और गाडी से लोगो को भेजा।

गन्तव्य पथ के विपय मे किकर्त्तव्यविमूढ व्यासदेवजी ने एक नहर के किनारे-किनारे चलना प्रारम्भ किया। घोर अन्धकार के कारण किनारे के झाड-झखाड भी कभी-कभी भालू, शेर आदि हिंस्र जीव-से मालूम होते थे और प्रतिपल चोरो और डाकुओ का भी भय वना हुआ था। उनके पास ७००) के पोण्ड थे, उसकी रक्षा की उन्हें वडी चिन्ता थी। वे भयभीत थे कि कही चोर या डाकू आकर उनको मारकर रुपया न छीन ले। भगवान् का स्मरण करते हुए वडी कठिनाई से रात्रि व्यतीत की। रात्रि के लगभग तीन वजे व्यासदेवजी रेल की पटडी पर पहुचे। जगल के कठिन रास्ते मे दयानिधि जगदीश्वर ने ही वालक की रक्षा की। क्यो न करते, यह उनका भक्त जो था। गृहत्याग उनके साक्षात्कार के उद्देश्य से ही तो किया था। भगवान् सदैव भक्तो को आश्रय देते हैं। वही निर्वलो के वल, निर्धनो के धन तथा निर्जनो के जन, और अनाश्रितो के आश्रय हैं। वे असहाय वालक व्यासदेवजी को कैसे भूल सकते थे! अन्धकाराच्छन्न वीहड वन मे भक्तवत्सल भगवान् ने ही वालक-भक्त

व्यासदेवजी की रक्षा की और उसे इस कठिनाई मे बल, शक्ति, साहस और उत्साह प्रदान किया ।

एक वृद्धा माता द्वारा आतिथ्य—प्रात काल हुआ । देवी उषा ने अपने प्रकाश मे वसुन्धरा को प्रकाशित किया । व्यासदेवजी घनघोर अन्धकार मे चलते-चलते थक गये थे । जीवनदायिनी उषा का उन्होने हार्दिक भावो से स्वागत किया । अब उन्हें मार्ग स्पष्ट दिखाई देने लगा । उन्होने अपनी गति तेज कर दी और लम्बे-लम्बे डग भरने लगे । रेल की पटडी के साथ-साथ एक पगडण्डी-सी थी, उसी पर वे द्रुत-गति से चलने लगे । उन्हे यह भय था कि कही कोई जान-पहिचान का व्यक्ति न मिल जाए । कही पिताजी उन्हें वापिस लौटा ले जाने के लिए किसी को न भेज दे । इस प्रकार के विचार कभी-कभी उन्हें बेचैन-सा कर रहे थे, इसलिए जब स्टेशन आने को होता तो वे पगडण्डी को छोडकर दूर चले जाते थे और स्टेशन निकल जाने के पश्चात् पुन पगडण्डी पर आ जाते थे । इसी प्रकार से अट्ठारह मील का रास्ता तय करके वे ६ बजे एक गाव मे पहुचे । सुबह से कुछ खाया पीया नही था । थक भी रहे थे । इसलिए किसी ऐसी दुकान की खोज करने लगे जहा कुछ खाने के लिए मिल सके, किन्तु कही भी भोजन प्राप्त न हो सका । इतने मे ही एक वृद्धा अपने सिर पर दूध का पात्र लेकर जाती हुई दिखाई दी । व्यासदेवजी ने उससे भोजन की दुकान पूछी । वृद्धा ने कहा बेटे, यहा तो कोई ऐसी दुकान है नही, तुम मेरे साथ मेरे घर पर चलो, मैं तुम्हें भोजन बनाकर खिलाऊगी । व्यासदेवजी अत्यन्त क्षुधार्त थे अत ये वचन सुनकर उनकी जान मे जान आई और वे उसके पीछे-पीछे चलने लगे । घर पहुच कर वृद्धा महिला ने व्यासदेवजी के लिऐ भोजन बनाया और मक्खन और शक्कर के साथ कराया । भोजनोपरान्त जब व्यासदेवजी उसको धन्यवाद देकर चलने लगे तब वृद्धा ने पूछा कि "तुम पैदल क्यो चल रहे हो ? यदि तुम्हारे पास किराये के लिए रुपये नही है तो इसकी व्यवस्था मैं कर दूगी, तुम रेलगाडी से जाओ ।" वृद्धा के ऊपर बालक व्यासदेवजी का बडा प्रभाव पडा । वह उन्हें अपने पास ही रखना चाहती थी क्योकि वह पुत्रहीना थी, पर व्यासदेवजी को कोई भी प्रलोभन अपने पथ से विचलित न कर सकता था । उन्होने अपनी माता का त्याग इसलिए नही किया था कि वह किसी अन्य मातृतुल्या महिला को अपनी माता बनाकर उसके पास रहे। एक महान् आदर्श की पूर्ति के लिए उन्होने गृह त्याग किया था और जबतक वे उस आदर्श को प्राप्त नही कर लेते तबतक वे न तो कही शान्ति पा सकते थे न विश्राम । उस वृद्धा माता ने कई दिनो तक उन्हे अपने पास रखा । नित्यप्रति स्वादिष्ट भोजन उन्हे खिलाती । उन्हें अपने पास रखने के लिए अनेक प्रलोभन देती । कभी धन का प्रलोभन, कभी खेती-बाडी का और कभी जमीन और जायदाद का, कभी विवाह का और कभी सुख और आराम का । व्यासदेव ने उसे समझाया और कहा, "माताजी ! ये सभी सुख के साधन मेरे घर पर भी है, मेरे पिताजी भी बडे आदमी हैं और सम्पन्न है। मैंने एक उद्देश्य से अपना घर छोडा है । उस उद्देश्य की पूर्ति मेरे घर पर नही हो सकती थी इसीलिए उसका परित्याग करके हरिद्वार जा रहा हू, अत आप मुझे क्षमा करे । मैं यहा आपके पास न रह सकूगा । आपकी कृपा के लिए मैं आपका आभारी हू ।" यह बातचीत हो ही रही थी कि वृद्धा के पतिदेव भी बाहर से आ

गए। वृद्धा ने व्यासदेवजी की उनसे बडी प्रशंसा की और निवेदन किया कि इसे हरिद्वार का टिकट दिलवाकर गाडी मे बिठा दीजिए और व्यासदेवजी से कहा, "तुम पढ-लिखकर मेरे पास आना। तुम मुझे बहुत प्यारे लगते हो। जब कभी रुपये की आवश्यकता हो तो मुझे लिखना, मैं तुरन्त भेज दूगी। तुम किसी प्रकार का कष्ट मत पाना।" व्यासदेवजी ने कृतज्ञता प्रकट की और धन्यवाद देकर और प्रणाम करके वहा से विदा हुए।

हरिद्वार मे सस्कृताध्ययन और योगसाधन

मोहन आश्रम मे निवास—जिस रेलगाडी से व्यासदेवजी यात्रा कर रहे थे उसी मे तीन चार साधु भी उनके डिब्बे मे बैठे थे और हरिद्वार ही जा रहे थे। जब व्यासदेवजी से वार्तालाप करने के पश्चात् उन्हे मालूम हुआ कि वे सस्कृत पढने और योगाभ्यास सीखने हरिद्वार जा रहे है तब वे बडे प्रसन्न हुए और उन्हे कवलदास की कुटिया मे अपने साथ ले गए और तीन चार दिन तक उन्हे अपने पास ही रखा। इन सन्तो ने व्यासदेवजी का परिचय स्वामी तेजनाथजी योगी से करवाया। स्वामी तेजनाथ पातञ्जलाश्रम मे रहते थे। व्यासदेवजी के विचार और भावनाए देखकर उन्हें बडी प्रसन्नता हुई और उन्हे योग सिखाना सहर्ष स्वीकार किया। इसके पश्चात् ये ही सन्त व्यासदेवजी को मोहन आश्रम मे स्वामी हितानन्दजी के पास ले गए। ये उनसे मिलकर इतने प्रसन्न हुए कि उनके सस्कृत पढने की सब व्यवस्था कर दी। यहा पर एक सस्कृत विद्यालय था, जिसमे नानूरामजी शास्त्री सस्कृत पढाते थे। स्वामी हितानन्दजी इस सस्कृत विद्यालय के अधिष्ठाता थे। श्री सेठ बलदेवसिंह देहरादून वालो ने अपने पुत्र मोहन के नाम पर इस मोहन आश्रम का निर्माण किया था।

योगी तेजनाथ से सपर्क—व्यासदेवजी ने सर्वप्रथम योगी तेजनाथ से योग सीखना चाहा। परिचय हो जाने के पश्चात् दूसरे दिन समित्पाणी हो उनके पास पहुचे और योग सिखाने के लिए प्रार्थना की। स्वामी तेजनाथ व्यासदेवजी की लगन, निष्ठा और प्रखर बुद्धि और व्यवहार को देखकर बडे प्रसन्न हुए और सहर्ष योग सिखाना स्वीकार किया, किन्तु एक शर्त ब्रह्मचारी व्यासदेवजी के सम्मुख रखी कि वे सर्वप्रथम उनके सप्रदाय की मत्र-दीक्षा ले, तभी उन्हे योग सिखाया जा सकता है। ब्रह्मचारीजी ने सप्रदाय की गतिविधि, रीति-ढग और व्यवस्थादि से परिचित होने के उपरान्त सप्रदाय की मत्र-दीक्षा लेने के लिए निवेदन किया। तेजनाथजी बडे विद्वान और योगी थे और व्यासदेव कभी-कभी उनके सत्सग मे जाया भी करते थे, किन्तु नाथ प्रथा के अनुसार कान फडवाकर मुद्रा पहिनना उन्हे पसन्द नही था, इसीलिए नाथ सप्रदाय की दीक्षा उन्होने नही ली।

मोहन आश्रम के विद्यालय मे प्रवेश

स्वामी हितानन्दजी की आज्ञा से ब्रह्मचारी व्यासदेवजी विद्यालय मे प्रविष्ट हो गये और पडित नानूरामजी से लघुकौमुदी पढना प्रारभ कर दिया। इस विद्यालय मे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासी विद्याध्ययन किया करते थे।

योग-शिक्षा—व्यासदेव की योग मे अत्यधिक रुचि देखकर स्वामी हितानन्द ने ब्रह्मचारी सत्यव्रत को उन्हे योग सिखाने की आज्ञा दी। बहुत शीघ्र ही ब्रह्मचारी

सत्यव्रतजी को व्यासदेवजी से बड़ा स्नेह हो गया। वे नित्यप्रति गंगाजी के किनारे पर लेजाकर उन्हें योग-साधना करवाने लगे। प्रातः आसन और प्राणायाम सिखाते और गायत्री मंत्र का जाप करवाते। इस प्रकार व्यासदेवजी प्रातः योगाभ्यास करते तथा दिन में 5-6 घण्टे संस्कृताध्ययन करते। लघुकौमुदी, संस्कृत साहित्य तथा अनुवादादि सीखते। योग सीखने की इतनी उत्कट अभिलाषा थी कि रात के दो बजे ही गंगाजी के तट पर अभ्यास करने चले जाते थे। अभ्यास करते-करते कभी-कभी निद्रा आ दबाती थी, उस विघ्न को दूर करने के लिए व्यासदेवजी अपनी लम्बी चोटी को एक रस्सी से उस वृक्ष की शाखा में बांध देते थे जिसके नीचे बैठकर वे अभ्यास किया करते थे। ज्यों ही नींद आती और सिर नीचे को झुकता तो रस्सी के झटके से नींद खुल जाती थी और मेरुदण्ड भी इससे सीधा रहता था। रात्रि के दो बजे से आठ बजे तक नित्यप्रति योगाभ्यास करते थे और इसके पश्चात् स्नानादि से निवृत्त होकर आश्रमवासी ब्रह्मचारियों के साथ मिलकर यज्ञ करते। यज्ञ के बाद स्वामी हितानन्द अथवा अन्य जो भी सन्त वहां उपस्थित होते उनके उपदेश का श्रवण करते और उनके उपरान्त पण्डित नानूरामजी से संस्कृताध्ययन करते। व्यासदेवजी का यूं तो धीरे-धीरे आश्रमवासी सभी ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों और सन्यासियों से परिचय हो गया किन्तु उनका विशेष परिचय स्वामी वेदानन्द, स्वामी शिवानन्द भारती, स्वामी विज्ञान भिक्षु, स्वामी विज्ञानानन्द, स्वामी चिदानन्द, ब्रह्मचारी सत्यव्रत, मनुदत्त, ब्रह्मानन्दादि से था। इस अभ्यासकाल में सत्यव्रत और व्यासदेवजी दोनों ब्रह्मचारी एक ही समय भोजन करते थे। रात्रि को ये भोजन नहीं करते थे। अब सायंकाल भी 6 बजे से 10 बजे तक गंगाजी के किनारे योगाभ्यास प्रारम्भ कर दिया था। ये दोनों 10 बजे के बाद गंगाजी के किनारे से मोहन आश्रम में आते थे। केवल चार घण्टे ही सोते थे। प्रातः दो बजे ही उठकर योगाभ्यास के लिए चले जाते थे। गंगाजी मोहन आश्रम से केवल तीन सौ या चार सौ फुट की दूरी पर ही थी अतः बहुत दूर जाना नहीं पड़ता था। व्यासदेवजी ने कई महीनों तक अपनी शिखा को अभ्यास के समय पेड़ की टहनी से नींद रोकने के लिए बांधा था, अतः अब उन्हें निद्रा पर विजय प्राप्त हो गई थी। अब अभ्यास के समय कभी निद्रा नहीं आती थी। लगभग 10 घण्टे योगाभ्यास करते थे और 6 घण्टे संस्कृत पढ़ते थे। दो साल में संस्कृत में व्यासदेवजी की बड़ी गति हो गई थी। लघुकौमुदी सम्पूर्ण पढ़ ली थी, साहित्य के भी कई ग्रंथ समाप्त कर लिए थे और संस्कृत पढ़ने, लिखने और बोलने का बहुत अच्छा अभ्यास हो गया था।

एक योगी से समागम

ब्रह्मचारी व्यासदेवजी सदैव उत्कृष्ट योगियों की खोज में रहा करते थे क्योंकि इस विषय में उनकी बड़ी रुचि थी। वे स्वयं भी आठ-दस घण्टे तक योगाभ्यास किया करते थे। एक दिन उनका ब्रह्मचारी सत्यदेव से साक्षात्कार हुआ। ये ब्रह्मचारीजी गंगा पार कजली वन में रहकर योगाभ्यास किया करते थे। व्यासदेवजी का उनसे योग के विषय में गंगा के तट पर चिरकाल तक वार्तालाप हुआ। सत्यदेव के त्याग और वैराग्य, साधना तथा श्रद्धा, तितिक्षा और एकान्तसेवन तथा निष्ठापूर्वक योगाभ्यास का व्यासदेवजी के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

कजली वन मे योगाभ्यास का निश्चय—सत्यदेवजी के साथ कजली वन मे रहकर योगाभ्यास का निश्चय किया। युवक योगी सत्यदेवजी ने जगल मे एकान्तसेवन की अनेक कठिनाइयो से व्यासदेवजी को अवगत किया और कहा कजली वन मे रहकर कठिन तपस्या का जीवन व्यतीत करना पडेगा। वहा खाने को अन्न का सर्वथा अभाव है अत केवल बिलो को खाकर ही निर्वाह करना होगा। इस वन मे बाघो, चीतो, शेरो तथा हाथी आदि हिंस्र जीवो का बाहुल्य है। मचान बनाकर पेडो पर ही रहना पडता है। रात्रि को शयन भी इसी पर करना होगा। व्यासदेवजी इन बातो से तनिक भी भयभीत नही हुए और साहसपूर्वक निर्भय होकर कहा मैं विधिपूर्वक यम-नियमो का पालन करता हू, अत मुझे किसी भी हिंस्र जीव से भय नही है। अहिंसा मे मेरी पूरी निष्ठा है। मेरा किसी से वैर-भाव नही है, मैं मनसा वाचा कर्मणा अहिंसा का पालन करता हू, फिर मुझे किसी से भय होना ही क्यो चाहिए! फिर आप भी तो वहा रहते है। जब आपको वहा कुछ भय नही तो मुझे ही भय क्यो होगा! ऐसा मालूम होता है कि अभी आपकी अहिंसा मे प्रतिष्ठा नही हुई। यदि हो गई होती तो आप पेड पर मचान बनाकर निवास न करते। भूमि पर ही कुटिया बनाकर रहते। सत्यदेवजी ने उत्तर दिया कि अभी अहिंसा मे मेरी पूर्णरूपेण प्रतिष्ठा नही हुई है। प्राणीमात्र के प्रति अभी सख्यभाव सम्पादित नही कर सका हू, इसीलिए थोडा भय शेष है। दिन मे तो मैं नीचे ही रहता हू किन्तु रात्रि के समय सोने के लिए तथा योगाभ्यास के लिए मचान पर चला जाता हू।

सत्यदेवजी व्यासदेवजी की बातचीत और योगनिष्ठा मे तो बहुत प्रसन्न हुए किन्तु वन मे एकान्तसेवन की कठिनाइयो पर विचार करके वे उन्हे अपने साथ ले जाना नही चाहते थे। व्यासदेवजी ने बडा आग्रह किया। इस पर वे साथ ले जाने के लिए तैयार हो गए। जब स्वामी हितानन्दजी को व्यासदेवजी के कजली वन मे जाने का विचार मालूम हुआ तो वे बडे दु खित हुए। वे व्यासदेवजी से बडे प्रसन्न थे और अपने विद्यालय का उन्हे अलकार समझते थे। इनके रहन-सहन, व्यवहार, आचरण, अध्ययन के प्रति रुचि और योगनिष्ठा का आश्रमवासी विद्यार्थियो पर बडा अच्छा प्रभाव पडता था। इसलिए वे नही चाहते थे कि यह बालयोगी कही अन्यत्र जाए पर उसके दृढ निश्चय को देखकर उसे कजली वन जाने की आज्ञा दे दी। सत्यदेवजी के यह कहने पर कि तुम प्रथम बार वन मे जा रहे हो और तुम्हे अन्न खाने की आदत है इसलिए कुछ सत्तू अपने साथ ले चलो, व्यासदेव ने जौ और गेहू भुनवा कर पिसवा लिए, कुछ गुड तथा नमक भी साथ रख लिया और उनके साथ चल दिए।

सत्यदेवजी तथा व्यासदेवजी दोनो ने मामूली-सा सामान साथ लिया और नील गगा को पार करके कजली वन पहुच गए। व्यासदेव के निवास के लिए सत्यदेव ने अपने मचान के समान ही एक वृक्ष पर मचान बना दी। मचान के पास ही एक जलाशय था जिसमे दोपहर को बाघ, चीते तथा हाथियो के झुण्ड पानी पीने आया करते थे। इसलिए सत्यदेवजी ने उसे समझाया कि किसी वन्य पशु से कभी छेड-छाड मत करना और उसके पास भी कभी मत जाना और यदि कोई जानवर स्वय ही पास आ जाए तो उसके प्रति उदासीन रहना, भयभीत भी मत होना, हिंसा की

भावना भी मन मे मत लाना, सत्यभाव रखना। ऐसा करने पर कोई भी हिंस्र जीव आक्रमण न करेगा। व्यासदेवजी तो पहिले से ही अहिंसा व्रत का पूरी तरह से पालन करते थे इसलिए निर्भीक वृत्ति से रहते थे।

व्यासदेवजी ने बिल कभी-कभी खाए तो थे पर उन पर कभी निर्वाह नही किया था, अत बिल खाकर ही क्षुधा की शान्ति करने की आदत डालने के लिए वह सत्तुओ के साथ-साथ बिल भी नित्यप्रति खाने लगे। कुछ दिनो के बाद व्यासदेवजी ने सत्तू खाना बिल्कुल छोड दिया और बिलो से ही अपनी क्षुधापूर्ति करने लगे। बिल अभी पूरी तौर पर पके नही थे अत वे कनस्तर में डालकर उन्हे उबाल लेते और गूदा निकाल कर खा लेते थे। उबाल लेने पर बिलो का गूदा आसानी से निकाला जा सकता था।

व्यासदेवजी आवश्यक कार्य के लिए ही मचान पर से उतरते थे। छ बजे से दस बजे तक अपना सारा कार्य कर लिया करते थे क्योकि इसके बाद हिंस्र जीव जलाशय मे पानी पीने आते थे। वन मे लकडी लाने के लिए वे सत्यदेव के साथ जाया करते थे। मार्ग मे हाथियो के झुण्ड प्राय मिला करते किन्तु सत्यदेवजी कभी भयभीत नही हुए और व्यासदेवजी को भी निर्भीक भाव मे रहने का आदेश दिया। कभी-कभी बाघ, हिरण, सूअर भी देखने मे आते थे।

सत्यदेवजी का उपदेश—सत्यदेवजी बडे विद्वान् थे। शास्त्री पास कर लेने के पश्चात् उन्हें वैराग्य हो गया था और घर छोड कर योगाभ्यास के लिए कजली वन मे रहते थे। वे बडे साहसी और पराक्रमशील थे। प्रसिद्ध विद्वानो मे आपकी गणना थी। दर्शन-शास्त्र तथा वैदिक साहित्य के आप पण्डित थे। उच्च कोटि के वैराग्यवान् थे। ब्राह्मण वंश मे आपका जन्म हुआ था और जम्बू स्टेट के रहने वाले थे। शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही ३२ वर्ष की आयु मे आपको वैराग्य हो गया था। आपका शरीर बडा सुगठित था। गौर वर्ण था। आपका व्यक्तित्व बडा प्रभावशाली था। संस्कृत भाषण करने का आपका व्रत था। वे स्वय १६ घण्टे तक योगाभ्यास करते थे। उन्होने व्यासदेवजी को वैराग्यजनक विविध उपदेश देकर उनके वैराग्य को दृढतर कर दिया था। वे प्रेय तथा श्रेय मार्ग की व्याख्या करके प्राय व्यासदेवजी को सुनाया करते थे और कहा करते थे कि सासारिक लोग भोग-विलास तथा इन्द्रियो की दासता का मृत्युपर्यन्त त्याग नही करते। वे वृद्ध हो जाते है किन्तु उनकी तृष्णा सदैव युवती बनी रहती है, किन्तु योगीजन जीवन काल मे ही साधिकार इन्द्रिय-सुख को विष्टावत् त्याग देते हैं। ये बडे जितेन्द्रिय थे। रसनेन्द्रिय बडी दुर्जयी है। इस पर विजय पाने के लिए बडे-बडे साधको को भी कठिन तपस्या करनी पडती है। इस इन्द्रिय के दमन करने के लिए ही आपने नमक और चीनी तथा गुडादि का परित्याग कर दिया था। केवल कन्द, मूल, आवले और बिलादि खाकर ही निर्वाह करते थे। उनके गुरुदेव ने उन्हे उत्तराखण्ड मे तपस्या करने के लिए भेजा हुआ था।

ये व्यासदेवजी के साथ पुत्रवत् व्यवहार करते थे। बडी तत्परता के साथ उन्हे योगाभ्यास करवाते थे। उन्होने व्यासदेवजी के लिए १२ घण्टे योगाभ्यास के लिए नियत कर दिए थे। इनका भी नमक तथा चीनी छुडवा दी गई थी। सत्यदेवजी के व्यक्तित्व

का बालयोगी व्यासदेवजी पर बड़ा प्रभाव था। वे जैसे उन्हे करते देखते वैसे ही करने लगते थे। गीता, छ दर्शन तथा ११२ उपनिषदो का एक गुटका ही सत्यदेवजी का पुस्तकालय था। ये सभी ग्रथ मूलमात्र थे। छ दर्शन भी गुटके के रूप मे ही थे। दो कनस्तर, एक कमण्डल, एक छोटा-सा पतीला, दो कौपीन और एक धोती ही उनकी लौकिक सम्पत्ति थी। व्यासदेवजी इनकी तपस्या से बड़े प्रभावित थे। सत्यदेवजी इन्हे दर्शनो और उपनिषदो को कथा के रूप मे सुनाया करते थे। योग-दर्शन के सूत्र भी व्यासदेवजी को कण्ठस्थ करवा दिए थे। कभी-कभी वे विनोदपूर्ण ढग मे व्यासजी से पूछा करते थे कि क्या कभी स्वादिष्ट पदार्थो को खाने के लिए भी तुम्हारा मन करता है। उस समय व्यासजी बड़ा सुन्दर उत्तर दिया करते थे। वे कहा करते कि जब यहा वन मे कुछ मिलता ही नहीं, यहा पर कन्द-मूल के अतिरिक्त और कोई भोज्य पदार्थ है ही नही तो भला चित्त करे भी क्या। चित्त की परीक्षा तो तब हो जब खाने के पदार्थ तो पास हो और उनको खाने के लिए कभी मन न करे। तब तो मन की कुछ विशेषता भी है। उपभोग्य पदार्थो के सुलभ होने पर भी इन्द्रिया उधर आकृष्ट न हो तभी जितेन्द्रियता मानी जा सकती है। आजकल तो इनके अभाव मे ही मुझे योगी की सज्ञा मिल रही है। सत्यदेवजी व्यासदेवजी से प्राय कहा करते थे कि स्वाद और काम पर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। योगी को सर्वप्रथम इन दोनो पर विजय-लाभ करनी चाहिए। जो इन्द्रियो का दास है वह कभी योगी नही बन सकता। जितेन्द्रियता योग का प्रथम पाठ है।

मचान पर निवास—सत्यदेवजी ने अपने बालयोगी के लिए एक बड़े मोटे और ऊचे वृक्ष पर एक बड़ा-सा मचान निवासार्थ बना दिया था क्योकि उस वन मे हाथी, शेर, बाघ, चीता, नीलगायादि हिंस्र जीव बहुत रहते थे। मचान पर नर्म-नर्म पत्ते और घास बिछा दी गई थी। इस मचान को वृक्षो के पत्तो और टहनियो से आच्छादित कर दिया गया था जिससे वर्षा के पानी से यत्किचित् बचाव हो सके। मचान के नीचे एक बड़ी धूनी लगी रहती थी जिससे वन्य पशु वृक्ष के समीप न आने पाए। व्यासदेवजी इस धूनी मे बिलो को भून कर खाया करते थे। वन मे हाथियो की जलक्रीडा देखना ही हमारे बालयोगी का एकमात्र विनोद था। प्राय हाथियो के झुण्ड इस वन मे घूमा करते थे। एक झुण्ड का सरदार प्राय भूरे रग का होता था। सारे हाथी उसका अनुगमन करते थे। ये प्राय व्यासदेवजी की मचान के पास वाले जलाशय मे पानी पीने जाया करते थे। सरदार हाथी के पानी पी चुकने के पश्चात् अन्य हाथी अपनी प्यास बुझाया करते थे। इस वन मे कई छोटी-छोटी पहाड़िया थी। जब कभी हाथी इनमे से किसी ढालू पहाडी पर से फिसल कर नीचे आ गिरते तो इन्हें देखकर हमारे चरित्रनायक बड़े प्रसन्न हुआ करते। रात के समय शेरो की गर्जना तथा हाथियो की चिघाड से वन के सारे पशु-पक्षी भयभीत हो जाते थे किन्तु अहिंसा मे प्रतिष्ठित हमारे बालयोगी वन मे निर्भीक भाव से विचरण करते थे।

व्यासदेव कई मास तक योगी सत्यदेव के पास रहे। प्रतिदिन के अभ्यास से इनका आसन दृढ हो गया था। योगाभ्यास करते-करते जब श्रान्त हो जाते थे तब गायत्री तथा प्रणव जाप किया करते थे। भ्रूमध्य-ध्यान से एकाग्रता लाभ करते तथा सदैव अपने मन को शान्त रखते थे।

सत्यदेवजी ने एक बार दो-तीन दिन के लिए हरिद्वार मे भीमगोडे जाने का विचार व्यासदेवजी पर प्रकट किया क्योकि वहा पर उनके गुरुदेव का कभी-कभी पत्र उनके नाम पर आदेश रूप मे आया करता था। व्यासदेवजी को भी हरिद्वार मे आए कई मास हो गए थे और वे स्वामी हितानन्दजी से कुछ दिनो के लिए ही आज्ञा लेकर आए थे, अत उन्होने भी हरिद्वार जाने की इच्छा प्रकट की। इसलिए सत्यदेवजी उन्हे भी अपने साथ भीमगोडे ले गए।

कजली वन से पुन मोहन आश्रम गमन

सत्यदेवजी तथा व्यासदेवजी कजली वन मे ग्यारह मास मे हरिद्वार पहुचे। सत्यदेवजी ने भीमगोडे वाले हलवाई से अपने पूज्य गुरुदेव का पत्र प्राप्त किया जिस मे आदेश दिया गया था कि अब कठोर तपश्चरण मे इन्द्रियो और अन्त करण की पवित्रता साध लेने के उपरान्त तुम मुझसे विज्ञान सीखने के अधिकारी बन गए हो, अत तुम तुरन्त चले आओ, जिससे तुम्हें आध्यात्मिक विज्ञान की शिक्षा प्राप्त हो सके। यह पत्र सत्यदेवजी ने व्यासदेवजी को भी पढाया। उन्हे आत्म-विज्ञान सीखने की उत्कट अभिलाषा थी। इसी उद्देश्य से अपने पारिवारिक सुख, भोग और आराम को तिलाञ्जलि दी थी। उन्होने हाथ जोड कर साथ चलने की आज्ञा मागी किन्तु सत्य-देव ने अपने गुरुदेव से आज्ञा प्राप्त किए बिना ब्रह्मचारी जी को अपने साथ ले जाना उचित नही समझा। उन्हें बडी निराशा हुई।

स्वामी हितानन्दजी से भेंट—व्यासदेवजी निराश होकर अब मोहन आश्रम चले गए। कठोर तपस्या के कारण उनका शरीर बडा कृश हो गया था। गाल पिचक गए थे। आखो मे गड्ढे पड गए थे। बाल बढ गए थे। उन्हे इस अवस्था मे देखकर आश्रमवासियो को महान् आश्चर्य हुआ। व्यासदेव अध्ययन छोडकर योग सीखने चले गए थे अत अध्ययनशील विद्यार्थियो ने उनका बडा उपहास किया किन्तु, योगानुरा-गियो ने उनके तप और योगाभ्यास की भूरि-भूरि प्रशसा की। व्यासदेव विद्यालय के अधिष्ठाता हितानन्दजी के पास गए। सादर प्रणाम करके विद्यालय मे पुन प्रवेशार्थ प्रार्थना की। वे उनसे बडे प्रसन्न थे। उनकी योग-निष्ठा, अध्ययन-शीलता, तपश्चर्या, वैराग्य-भावना तथा सत्यपरायणतादि गुणो से बडे प्रभावित थे। अत उन्हे विद्यालय मे सहर्ष प्रविष्ट कर लिया और नानूरामजी को उन्हें रुचिपूर्वक पढाने का आदेश दिया। स्वामी हितानन्दजी ने व्यासदेवजी को ब्रह्मचारी सत्यव्रत के पास ठहरा दिया। व्यासदेवजी ब्रह्मचारी जी से पहिले से ही परिचित थे। इनके साथ ही योगाभ्यासादि किया करते थे। अब फिर मोहन आश्रम मे आने के बाद उनके साथ गगा के किनारे जाकर पूर्ववत् कई-कई घण्टे योग-साधना करने लगे। सत्यव्रत से लघुकौमुदी तथा पचतन्त्र पढना प्रारम्भ कर दिया। नानूरामजी उस समय सिद्धान्तकौमुदी तथा साहित्य मे जो ग्रथ विद्यार्थियो को पढा रहे थे वही व्यासदेवजी भी पढने लगे।

स्वामी रामानन्दजी का पत्र—व्यासदेवजी ने सस्कृताध्ययन तथा योग सीखने के उद्देश्य से जबसे गृह-त्याग किया था तबसे स्वामी रामानन्द तथा अन्य किसी को अपना कोई समाचार नही दिया था। वह अपनी लक्ष्यपूर्ति पर डटे हुए थे। चट्टान के सदृश अटल थे। उनके माता-पिता को यदि उनके निवास का पता लग जाता तो

वे आकर इन्हे वापिस घर ले जाते। इसी भय से इन्होने अपना परिचय किसी को नही दिया। यही कारण था कि इन्होने अपने प्रारम्भिक गुरु स्वामी रामानन्दजी महाराज को कभी कोई पत्र नही लिखा। स्वामीजी महाराज बालक व्यासदेवजी की धर्मनिष्ठा, सस्कृत के प्रति रुचि, परिश्रमशीलता, सहानुभूति, समवेदना, कर्त्तव्य-पालन और जापादि से बडे प्रसन्न थे और उससे बडा स्नेह करते थे। जबसे इन्होने गृह-परित्याग किया था तब से ही वे इनका पता लगाने के लिए बडे चिन्तित रहा करते थे। इन्होने इधर-उधर सर्वत्र उनकी खोज की। कई स्थानो पर पत्र लिखे। बहुत परिश्रम के पश्चात् वे अपने प्यारे शिष्य व्यासदेवजी का पता लगाने मे सफल हो गए। उन्होने मोहन आश्रम के पते से इन्हे पत्र लिखा और उनकी योग-निष्ठा, सस्कृताध्ययन, स्वास्थ्य और निवासादि के विषय मे सब हाल पूछा और आवश्यकता पडने पर आर्थिक सहायता भेजने के लिए लिखा। ब्रह्मचारी व्यासदेवजी ने सस्कृत, व्याकरण और साहित्य का पर्याप्त अध्ययन कर लिया था। सस्कृत लिखने और बोलने का अभ्यास खूब हो गया था। अत अपने गुरुदेव के पत्र का उत्तर सस्कृत मे ही दिया। अपना सारा वृत्तान्त लिखने के पश्चात् निवेदन किया कि मुझे इस समय आर्थिक सहायता की आवश्यकता नही है। मेरी केवल एक ही प्रार्थना है कि आप ऐसा उपाय करे जिससे मेरे माता-पिता, सम्बन्धियो तथा अभिभावको को मेरे विषय मे कुछ भी ज्ञात न हो सके। यदि उन्हे मेरे हरिद्वार रहने का किसी तरह पता चल गया तो वे मुझे तग करेगे। मेरे अध्ययन और योगाभ्यास मे बाधा डालेंगे और सभव है मुझे वापिस घर ही ले जाए।

व्यासदेवजी के पिता का हरिद्वार आगमन—भ्रमण करते हुए स्वामी रामानन्दजी एक दिन व्यासदेवजी के पिताजी के घर पहुच गए। माता ने स्वामीजी को प्रणाम किया और आतुर तथा व्याकुल होकर अपने पुत्र के लिए करुण-क्रन्दन तथा विलाप करने लगी। अनेक उलाहने देकर उसने कहा —

'महाराज मैंने सदैव महात्माओ को दयालु और सहानुभूतिपूर्ण पाया है किन्तु आपका हृदय बडा कठोर है। आपने मेरे दुलारे पुत्र को मुझसे छीना है। आपने पुत्र को माता से विलग किया है। आप इस बात की कल्पना भी नही कर सकते कि पुत्र के विछोह मे माता को कितना दुख होता है। आप मातृ-हृदय से परिचित नही। आपसे प्रेरणा पाकर ही मेरे प्यारे पुत्र ने गृह-परित्याग किया है। आपने मेरे बच्चे को मेरी गोद से छीना है। उसे दर-दर का भिखारी बनाया है। न जाने वह कहा है! क्या खाता है! कहा रहता है! शीतकाल मे कुछ ओढने-बिछाने के लिए भी उसके पास कुछ नही है। हाय! किस प्रकार से सर्दी की राते मेरा बच्चा बिताता होगा! जब से वह गया है मैंने कभी पेट भर कर भोजन नही किया और अब भी जब तक आप उसे मुझे लाकर नही देंगे मैं अन्न नही खाऊगी और विलाप करके मर जाऊगी, पाषाण-हृदय स्वामी जी! आप जाओ और मेरे बालक को मुझे लाकर दो।"

स्वामीजी माता का विलाप सुनकर द्रवीभूत हो गए और उसे विश्वास दिलाया कि तुम्हारा पुत्र सकुशल और सानन्द है और सस्कृताध्ययन कर रहा है। तुम व्यथित और व्याकुल मत हो।

माता की दयनीय दशा को देखकर स्वामीजी महाराज का हृदय दयार्द्र हो गया और उसके बार-बार प्रार्थना करने पर व्यासदेवजी के पिता और दो अन्य सज्जनो को साथ लेकर स्वामी रामानन्द हरिद्वार पहुचे । मोहन आश्रम मे जाकर स्वामी हितानन्दजी से व्यासदेवजी के विषय मे पूछ-ताछ की । यह जानकर कि ब्रह्मचारी व्यासदेवजी साधना के लिए गगा के तट पर गए हुए है वे सब वहा पहुचे । गगा के तट पर ब्रह्मचारी जी एक वृक्ष के नीचे नेत्र बन्द करके ध्यानावस्थित होकर बैठे हुए थे । स्वामी रामानन्द, व्यासदेवजी के पिता और अन्य दो सज्जन ध्यानावस्थित व्यासदेवजी को देखकर उनके पास ही खडे होकर वार्तालाप करने लगे किन्तु उस कोलाहलपूर्ण वार्तालाप मे व्यासदेवजी की समाधि नही टूटी । यह देखकर स्वामीजी ने व्यासदेवजी के पिता से कहा कि देखो कैसी कडी समाधि है । कैसे एकान्त स्थान मे साधना करने आया है । भगवदाराधना मे ऐसा मग्न है । वातावरण का उस पर कुछ प्रभाव नही पड रहा । इस समय यह ससार के भोगो को हेय समझ रहा है । प्रभु के प्रेम और आनन्द मे विभोर हो रहा है । यह अब लौकिक नश्वर भोग-विलास मे नही फस सकता । आप इसे घर ले जाने की चेष्टा मत करो । आप इस पुत्र को भगवदर्पण कर दे । आपके अन्य कई पुत्र है, आप उन्ही से सन्तोष करे । इसी अवसर पर आसपास मे बडा जन-कोलाहल होने लगा । उससे बालब्रह्मचारी जी की समाधि तो टूट गई किन्तु समाधि का समय पूरा नही हुआ था । अभी आठ नही बजे थे, अत आखे बन्द करके समाधिस्थ अवस्था मे बैठे रहे । जब स्वामीजी ने देखा कि बालक की समाधि भग नही हो रही है तो उनके पिता को ज्ञान और वैराग्य के सम्बन्ध मे उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया । समाधिस्थ बालक भी उस उपदेश का श्रवण करता रहा । जब आठ बज चुके तब व्यासदेवजी अपने आसन से उठे और पास खडे हुए अपने गुरुदेव तथा पिता को प्रणाम किया । गुरु तथा पिता दोनो ने उनको आलिगन करके प्यार किया और आशीर्वाद दिया । पुत्र को देखकर पिता ने बडा विलाप किया । उसकी अश्रुधारा बह निकली । पिता और पुत्र के मिलाप ने एक अपूर्व दृश्य उपस्थित कर दिया । सारा वातावरण द्रवीभूत हो गया । ऐसा मालूम होता था मानो सारी प्रकृति पिता के साथ मिलकर रुदन कर रही है और उसके साथ समवेदना प्रकट कर रही है ।

गगाजी के किनारे से पुत्र को लेकर सभी मोहन आश्रम मे स्वामी हितानन्द के पास पहुचे । स्वामी रामानन्दजी ने उनसे कहा कि व्यासदेवजी घर से भाग आये है उनके पिता उन्हे लेने आए है । हितानन्दजी ने कहा, "यहा पर जो विद्यार्थी आते है उनके भोजन, वस्त्र और निवासादि की यहा पर पूरी व्यवस्था की जाती है । उन्हे विद्याभ्यास करवा कर विद्वान् बनाने का प्रयत्न किया जाता है । उनके नैतिक धरातल को उन्नत किया जाता है । हम किसी को यहा पर घर से निकाल कर नही लाते है आप इसे ले जाना चाहते है तो ले जाइए । व्यासदेवजी जो पास ही खडे थे विनयपूर्वक बोले, "मै घर जाना नही चाहता । वहा पर सस्कृत पढने और योगाभ्यास करने की कोई व्यवस्था नही है । यदि होती तो मै घर से भागता ही नही ।" स्वामी रामानन्द और व्यासदेवजी के पिता ने विश्वास दिलाया कि वे एक सस्कृत पाठशाला खोलेंगे और सस्कृत पढने की सब व्यवस्था कर देंगे । इस पर व्यासदेवजी उनके साथ चलने को तैयार हो गए । आश्रम का एक

और विद्यार्थी भी व्यासदेवजी के साथ हो लिया। हरिद्वार से धर्मदेव नामक एक सस्कृत के विद्वान् को ४०) मासिक पर सस्कृत पढाने के लिए वे साथ ले गए।

व्यासदेवजी का घर पर पुनरागमन

व्यासदेवजी ने विवश हो कर इस पुनरावर्तन को स्वीकार तो कर लिया था किन्तु सदैव मानसिक चिन्ता मे डूबे रहते थे। उन्होने अपने पिताजी से हाथ जोड कर निवेदन किया कि वह घर पर नही रहेगे। या तो वह स्वामी रामानन्दजी के पास रहेगे या अपने उद्यान मे। पिताजी ने इस बात को स्वीकार कर लिया और कहा, "तुम यहा से तो चलो, जैसी तुम्हारी इच्छा होगी वैसा ही सब प्रबन्ध कर दिया जाएगा। व्यासदेवजी और उनके पिताजी आदिक सबने स्वामी हितानन्दजी से जाने की आज्ञा प्राप्त की और उन्हे कुछ रुपये भेट रूप से प्रदान किए। स्वामीजी ने सम्मान-पूर्वक सबको विदा किया। हरिद्वार से चलकर सब तीन दिन मे घर पहुचे। व्यासदेवजी की माता उन्हे देखकर फूट-फूटकर रोई, बडी आतुर और व्याकुल हुई। चिरकाल तक रुदन करती रही। बालक को गोद मे लिया, उसका आलिंगन किया और बार-बार मुख चुम्बन किया। उसके साधना और तप के परिणामस्वरूप कृश शरीर को देखकर बडी दुखी हुई। पास-पडौस के लोगो को जब व्यासदेव के आगमन का समाचार मिला तब सब अपना-अपना कार्य छोडकर वहा एकत्रित हो गए। उनमे से किसी ने उसकी भर्त्सना की, किसी ने उसे डाटा फटकारा, किसी ने सहानुभूति का प्रदर्शन किया, किसी ने आलिगन करके प्यार किया, किसी ने कहा कि अब जाने का नाम मत लेना और बहुतो ने उसका उपहास किया। इसके अतिरिक्त किसी ने कहा, "अब यह वेदो का विद्वान् बनकर आया है।" किसी ने कहा कि अब व्यासदेव बडा योगी बन गया है। व्यासदेवजी बडे लज्जित हुए और मूकवत् सब बाते सुनते रहे। इन लोगो के बहुत समझाने-बुझाने पर माता ने कई दिनो बाद पुत्र के आने पर भोजन किया।

स्वामी रामानन्द के आश्रम मे अध्ययन की व्यवस्था—व्यासदेवजी स्वामी रामानन्दजी के पास गए और निवेदन किया कि घर पर मुझे लोग बहुत तग करते है अत मेरा अध्ययन वहा नही हो सकता। आपसे प्रार्थना है कि आप पण्डित धर्मदेवजी शास्त्री को अपने पास बुला ले और यही पर एक पाठशाला की व्यवस्था कर दें। स्वामी रामानन्दजी ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और अपने आश्रम पर ही एक पाठशाला की स्थापना कर दी। चार अथवा पाच अन्य विद्यार्थी भी वहा आकर व्यासदेवजी के साथ अध्ययन करने लगे। लगभग बीस दिन तक यह कार्यक्रम सुचारुरूपेण चलता रहा। एक दिन पण्डितजी ने स्वामीजी से १४ या १५ दिवस के लिए हरिद्वार जाकर अपने परिवार की व्यवस्था करने के लिए जाने की इच्छा प्रकट की और विश्वास दिलाया कि वे घर का पूर्ण प्रबन्ध करके यहा आकर स्थायी रूप से रहने लगेगे। पण्डितजी के चले जाने के पश्चात् से पठन-पाठन बन्द हो गया। व्यासदेवजी को बडी चिन्ता हुई पर कर क्या सकते थे। अब उन्होने अपना सारा समय साधना, अभ्यास, जाप और ध्यान मे लगाना प्रारम्भ कर दिया।

माता को उपदेश—व्यासदेवजी की माता स्वामी रामानन्दजी के आश्रम मे प्रात नित्य ही उनसे मिलने आया करती थी और कहा करती थी, "बेटा, तुम्हारे

पढने की व्यवस्था तुम्हारी इच्छा के अनुरूप कर दी गई है। अब तुम घर से भागकर कही अन्यत्र मत जाना। तुम तीन वर्ष के बाद घर आए हो। यह समय तुम्हारे वियोग मे विलाप करके व्यतीत किया है। तुम बडे पाषाण-हृदय हो। तुम्हे अपनी माता, पिता तथा भाई-बहिनो के प्रेम का कभी स्मरण नही हुआ। मेरी आतुरता तथा व्याकुलता, मेरे रोने और चिल्लाने और मेरे दुःख तथा दर्द का तुम्हे तनिक भी ध्यान नही आता। मेरे और भी सन्तान है किन्तु जितना मोह और ममता मेरी तुझमे है इतनी अन्य किसी मे नही है। बेटा! अब मुझे तुम छोडकर कभी मत जाना।"

माता प्राय इसी प्रकार की बाते नित्य व्यासदेवजी को सुनाया करती। व्यासदेवजी ने इन बातो से तग आकर एक दिन माता से कहा, "आप नित्यप्रति यहा न आया करें। इससे मेरे कार्य मे विक्षेप होता है और पढने मे भी बाधा उपस्थित होती है। मेरी सस्कृताध्ययन तथा ईश्वर-भक्ति मे बडी रुचि है। घर मे रहकर ये दोनो ही कार्य असभव थे क्योकि पिताजी को ये पसन्द न थे। यदि मेरे सस्कृताध्ययन की ठीक-ठीक व्यवस्था हो जाती, मुझे स्वामी रामानन्दजी के सत्सग से न रोका जाता, और मुझे यथानियम जाप तथा ध्यान की आज्ञा मिल जाती तो सभवत मैं गृह-त्याग कर अन्यत्र न जाता। यह कोई निन्दनीय कार्य तो था नही। मैं तो अपना अधिक समय पढने और जाप तथा ध्यान मे ही व्यतीत करता था। इससे तो परिवार की प्रतिष्ठा मे वृद्धि ही होती। अपने पुत्र को भगवदाराधन मे तत्पर देखकर आपको प्रसन्न होना चाहिए था और कुल को गौरवान्वित समझना चाहिए था। मैं अपने कल्याण के लिए प्रयत्नशील हू। आपको भी इसमे अपना कल्याण समझना चाहिए। यह ससार नाशवान है। इसके विषयोपभोग मनुष्य को पतन की ओर ले जाने वाले हैं। ये सब अनित्य है। शाश्वत रहने वाले नही है। अनित्य विषयो से अनुराग श्रेयस्कर नही है। इनका परित्याग करना ही उचित है। प्राय सभी महानात्माओ ने गृह-परित्याग करके साधना तथा तपस्या और अपनी विद्वत्ता से ससार का कल्याण किया और स्वय अमरत्व को लाभ किया है। महात्मा बुद्ध, महावीर, स्वामी शकराचार्य तथा महर्षि दयानन्दादि महापुरुषो ने घर तथा परिवार के ममत्व का परित्याग करके ही ससार का उद्धार किया है। नवीन चेतना का प्रसार किया है। धर्म, देश और जाति की रक्षा की है। ससार को नई विचारधारा और नया सदेश दिया है। मनुष्य वह है जो किसी उच्च लक्ष्य की पूर्ति के लिए जीवित रहता है और जो इसी जन्म मे आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त करता है, अन्यथा माताजी 'मृतो को वा न जायते।' सदैव श्रेय-मार्ग ही श्रेयस्कर है, प्रेय नही। आप मुझे प्रेय-मार्ग पर घसीटकर ले जा रही हो। मुझे कल्याणकारी श्रेय-मार्ग पर चलने के लिए कटिबद्ध होने दो। आप देवी मदालसा को क्यो भूल गई जिसने अपने पुत्र को पालने मे अध्यात्म का पाठ पढाया था और जब वह अपने बाल-स्वभाव के कारण रोया तो उसने कहा था, 'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरजनोऽसि ससारमायापरिवर्जितोऽसि।' माताजी, आज मैं आपसे इसी प्रकार के उपदेश की इच्छा करता हू। आप भी माता मदालसा की तरह मुझे अध्यात्म का उपदेश देकर इस पथ पर अग्रसर करे। मैने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करने की प्रतिज्ञा की है और श्रेय-पथ पर चलने का मेरा दृढ निश्चय है। इसी पथ का पथिक बनने मे मेरा और आपका कल्याण साधन होगा। यदि आपका आशीर्वाद

इस कार्य मे मुझे प्राप्त हुआ तो मै अपने को धन्य समझूगा । मै जानता हू यह मार्ग कठिन है । इसी के लिए उपनिषद मे कहा है, 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम पथस्तत् कवयो वदन्ति ।' पर आपका आशीर्वाद सब कठिनाइयो को दूर कर देगा और मेरा पथ प्रशस्त हो जाएगा" ।

अपने पुत्र के वार्तालाप से माता वडी प्रभावित हुई और उसे आलिगन करके आशीर्वाद दिया और उसके मार्ग मे कटकरूप न वनने के लिए वचन दिया । किन्तु उससे कहा कि वह वही रहकर सस्कृत पढे और ईश्वर-भक्ति करे । व्यासदेवजी ने दु खी माता को ढाढस वधाया और कहा कि जव तक कोई विशेष विघ्न उपस्थित न होगा तव तक वह गृह-त्याग नही करेगा ।

इसके वाद व्यासदेवजी ने माता को भगवदाराधना का उपदेश दिया और निवेदन किया कि उनकी और पिताजी की अव वानप्रस्थाश्रम मे प्रविष्ट होने की आयु है । इस आश्रम मे प्रवेश पाकर आप दोनो को ईश्वरभक्ति मे सलग्न रहना चाहिए । पुत्र की उपदेशप्रद वातो को सुनकर माता वडी प्रफुल्लित हुई और घर लौट गई ।

घर जाकर उसने अपने पुत्र-पुत्रियो तथा वन्धुओ और पास-पडोस मे व्यासदेव की भूरि-भूरि प्रशसा की और उन सवसे उससे मिलने जाने की प्रेरणा दी ।

पारिवारिक स्त्रियो का दर्शनार्थ आगमन—ब्रह्मचारी व्यासदेवजी रात्रि के दो वजे ही उठकर ध्यान मे वैठ जाया करते थे । लगभग ग्यारह घण्टे तक ध्यान, जाप तथा योगाभ्यास किया करते थे । इनके वागीचे मे एक वहुत वडा आम का वृक्ष था । इसकी शाखाए और प्रशाखाए भूमि तक फैली हुई थी । इनसे एक गुफा-सी वन गई थी । धूप इसमे नही आती थी और वायु भी कम आती थी, जिससे व्यासदेवजी के ध्यान और अभ्यास मे किसी प्रकार की वाधा उपस्थित नही होती थी । वे प्राय सारा दिन इसी गुफा मे रहते थे, केवल स्वामी रामानन्दजी के सत्सग मे और पढने के लिए जाते थे और रात्रि को सोने के लिए भी मकान पर चले जाते थे । ये केवल चार घण्टे ही शयन करते थे । यह वालयोगी जी अपने वाल्यकाल से ही एकान्तप्रिय थे । जन-सपर्क से ये वडे घवराते थे । सारा समय चितन और ध्यान मे ही व्यतीत करते थे । इसीलिए घर से दूर एक वागीची मे रहते थे जिससे अभ्यास मे किसी प्रकार की वाधा उपस्थित न हो । एक दिन सुवह के दस वजे इनके परिवार की कुछ महिलाए इनके दर्शन करने के लिए वागीची मे आई । उस समय ये ध्यानावस्थित थे । इन देवियो के कोलाहल से उनका ध्यान भग हो गया । यह इस अचानक शोर से घवरा उठे किन्तु ध्यान की स्थिति मे ही वैठे रहे । इनकी सम्वन्धिनी महिलाओ ने इनका वडा उपहास किया और अनेक उलाहने दिए, किन्तु व्यासदेवजी पर इनका कुछ भी प्रभाव नही पडा । वे निस्तव्ध भाव से वैठे रहे । कुछ समय के पश्चात् व्यासदेवजी ने हाथ जोडकर प्रार्थना के मत्र पढे और भगवान् से प्रार्थना करके अपना अभ्यास समाप्त कर दिया । जो देविया वागीची मे आई थी वे सव चुपचाप व्यासदेवजी की प्रार्थना सुनती रही और वे वडी प्रभावित होकर वहा से गई ।

आगन्तुक देवियो को उपदेश—इनमे से कई देवियो ने व्यासदेवजी से भक्ति, ईश्वर तथा गृहस्थ धर्म तथा ईश्वर के प्रति गृहस्थियो के कर्त्तव्यादि के सम्वन्ध मे

अनेक प्रश्न पूछे। सबके प्रश्न पूछ लेने के पश्चात् उन्होने सबके प्रश्नो का एक साथ उत्तर दिया। ईश्वर सर्वव्यापक है। सभी स्थानो पर उसे प्राप्त किया जा सकता है। यदि तुमसे पूछा जाए कि दूध मे मक्खन किस स्थान पर निहित है तो आप मे से कोई भी निश्चित रूप से यह नही कह सकती कि वह कहा पर है, किन्तु दूध मे मक्खन है अवश्य। वह दीखता नही क्योकि उसको पाने के लिए जिस साधन की आवश्यकता है उसका प्रयोग नही किया गया है। मक्खन को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम दूध को जमाया जाता है, फिर उसका मथन किया जाता है। तब मक्खन की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से सर्वव्यापक भगवान् को पाने के लिए बडी साधना, तप, तितिक्षा और निष्ठा की आवश्यकता है। पहिले ध्यान और समाधि करो, तभी उसे प्राप्त कर सकोगी। राजा भर्तृहरि ने राजसी ठाठबाठ, सुखसमृद्धि, भोगविलास और गगनचुम्बी प्रासादो का परित्याग करके परमयोगी बनकर पारब्रह्म को प्राप्त किया था। आचार्य शकर, महर्षि दयानन्द, गुरु नानकदेव, एकनाथ, नामदेवादि महापुरुषो ने अपना सर्वस्व त्यागकर, घर के सब सुखो को तिलाजलि देकर चितन और समाधि के द्वारा भगवद्प्राप्ति की। तुम्हे मीरा का नाम तो स्मरण होगा। वह उदयपुर की रानी थी। राज-महलो मे उसका पालन-पोषण हुआ था और राजमहलो मे ही रही थी, किन्तु उसने ईश्वर की प्राप्ति के लिए महलो के सभी सुखो का हसते-हसते परित्याग किया। राजसी सुख-समृद्धि और धनैश्वर्य की किंचिन्मात्र भी परवाह नही की। वह गगनचुम्बी अट्टालिकाओ से बाहिर निकली और वृन्दावन के कुजो और गलियो का राज-प्रासादो की अपेक्षा अधिक मान किया और अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। घर मे तुम लोगो से सदा घिरे रहने के कारण साधना मे बाधा उपस्थित होती थी इसीलिए मैने घर का त्याग किया था। एक महिला ने पूछा था कि गृहस्थियो का कल्याण किस प्रकार से हो सकता है। उसका उत्तर देते हुए व्यासदेवजी ने कहा कि गृहस्थियो को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। उत्तरदायित्व को समझना चाहिए। सब सुखो के दाता जगदीश्वर को सदैव स्मरण रखना चाहिए। सब सुखोपभोग को उसका प्रसादरूप मानकर भोगो। यह ससार नाशवान् है। इसके सब पदार्थ नश्वर है। यह शरीर अनित्य है। जिसने इस ससार मे जन्म लिया है उसका मरण भी अवश्यम्भावी है। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने "जन्ममृत्युजराव्याधिदु खदोषानुदर्शनम्" का उपदेश दिया है। तुम लोग ससार मे अत्यधिक आसक्ति मत रखो। साय-प्रात भगवद्भजन और साधना करो। पच महायज्ञो का यथावत् अनुष्ठान करो। पतिव्रत धर्म का सदा पालन करो। यह उपदेश सुनकर वे बडी प्रभावित हुई और उन्होने उनका जो उपहास और भर्त्सना की थी उसपर उन्हे बडा पश्चात्ताप हुआ। व्यासदेवजी के लिए जो भोजन वे लाई थी उसे देकर क्षमा-याचना करती हुई वहा से चली गई। व्यासदेवजी ने उन्हे आदेश दिया कि अब वे भविष्य मे वहा आने की कृपा न करे क्योकि इससे उनकी साधना और अभ्यास मे बाधा उपस्थित होती थी।

व्यासदेवजी का पुनः गृह-त्याग

सासारिक पाशो मे न फसना—एकान्तप्रिय, योगनिष्ठ और तपश्चर्यापरायण व्यासदेवजी का ससारी लोगो मे निवास करना असभव था। माता-पिता उसे ससार के मायाजाल मे फसाना चाहते थे। लौकिकता के कडे पाश मे बाधकर उसे एक

ससारी जीव बना देना चाहते थे। भाई-बधुओ तथा सगे सम्बन्धियो की ममता मे फसा देने की उनकी उत्कट अभिलाषा थी। महात्मा बुद्ध के तीव्र वैराग्य के प्रवाह मे बाध लगाने के लिए महाराजा शुद्धोदन ने उन्हें विवाह के बधन मे बाधना चाहा था किन्तु यह बधन उन्हे बाध न सका और वे अपनी पत्नी यशोधरा और बालक राहुल को रात मे सोता छोडकर, ससार मे दु ख क्यो है, इस दु ख का कारण क्या है, तथा इसका नाश करके प्राणी-मात्र को किस प्रकार से सुखी बनाया जा सकता है, इसके अन्वेषण के लिए चल पडे थे। महर्षि दयानन्द के पिता भी उन्हे इसी प्रकार के बधन मे बाधकर उनसे सासारिक जीवो की भाति जीवन व्यतीत करवाना चाहते थे, किन्तु वे उन्हें इस जटिल पाश मे फसाने में सफल न हो सके थे। आचार्य शकराचार्य, कुमारिलभट्ट तथा महावीर वर्धमान के अभिभावक भी उन्हे ससार के कल्याण के मार्ग से च्युत नही कर सके थे। हमारे चरितनायक व्यासदेव, जो आगे चलकर नवीन पावन परम्पराओ के प्रवर्तक, नूतन दार्शनिक विचारधाराओ के सस्थापक और धार्मिक क्षेत्र मे नवयुग के निर्माता बने, उन्हे मायाजाल मे फसाना असभव था। दु खनिवृत्यर्थ ससार को योगनिष्ठ बनाना, योग-परम्पराओ की स्थापना करना, तथा किंकर्त्तव्यविमूढ तथा पथभ्रष्ट ससार के कर्त्तव्य की रेखाओ को प्रकाशित करके उन्हे कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ करना जिन्होने अपना जीवन-लक्ष्य बना लिया हो, भला वे बालक किस प्रकार से सासारिक सुखो को महत्ता दे सकते थे और माता-पितादि की ममता मे फस सकते थे। व्यासदेवजी के पिता उन्हे सस्कृताध्ययन तथा साधनादि का प्रलोभन देकर घर पर ले आए थे। सस्कृत पढाने के लिए एक शास्त्री अध्यापक की व्यवस्था भी कर दी गई थी और उनकी इच्छा के अनुरूप ही उनके निवास का प्रबन्ध घर से दूर अपने उद्यान मे कर दिया गया था। किन्तु धर्मदेव शास्त्री छुट्टी लेकर अपने घर की व्यवस्था करने गया। कितने ही दिन व्यतीत होगए, वह लौटा ही नही। सस्कृताध्ययन बन्द होगया। उद्यान मे भी कोई न कोई भाई-बहिन तथा परिचित लोग आकर साधना-जापादि मे बाधा पहुँचाते रहते थे। इससे वे घबरा उठे और इस बधन से मुक्त होकर पुन गृह-त्याग की योजना बनाने लगे।

स्वामी रामानन्दजी से परामर्श—एक दिन भोजन करने के उपरान्त व्यासदेवजी स्वामी रामानन्दजी के पास गए और निवेदन किया कि आपकी आज्ञा से मैं घर आ गया था। मुझे यह विश्वास दिलाया गया था कि मेरे सस्कृताध्ययन तथा साधना की व्यवस्था सन्तोषप्रद रूप से कर दी जाएगी किन्तु पडित धर्मदेवजी का यहा पर मन नही लगता। उन्हें अपने पारिवारिक जनो की चिन्ता घेरे रहती है। उनकी छुट्टी भी अब समाप्त हो गई है किन्तु वे अभी तक लौटे नही है। उनका लौटना कुछ अनिश्चित सा ही मालूम होता है। मुझे अब विश्वास नही है कि सस्कृत पढने की कोई और व्यवस्था हो सकेगी। प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यानादि की साधना मे नित्य नई बाधाए उपस्थित हो रही है। सारा दिन कोई न कोई उद्यान मे मिलने के लिए आता रहता है। कभी-कभी बहुत से लोग मिलकर भी आ जाते है और सारे उद्यान मे इतना कोलाहल मचाते है कि मेरी साधना भग हो जाती है। ये लोग घटो ही वहा पर बाते करते रहते हैं। जब मैं उनसे बातचीत नही करता तो वे परस्पर बाते करने लगते हैं और जब मैं उनसे जाने के लिए निवेदन करता हू तो वे नाराज हो जाते है। इस

प्रकार मेरे अमूल्य समय का एक बहुत बड़ा भाग प्रतिदिन व्यर्थ जाता है। इसलिए मेरा विचार अब पुनः गृह-परित्याग का हो रहा है। मैं तो केवल आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए आ गया था। मैं पहिले से ही इस बात को समझ गया था कि पिताजी केवल मुझे वापिस घर ले जाने के लिए पढ़ाई और साधना की व्यवस्था करने की बाते करते हैं किन्तु उनसे यह बन न सकेगा। स्वामीजी को व्यासदेवजी के विचार सुनकर प्रथम तो दुःख हुआ और कहने लगे मैं तो मोहन आश्रम मे तुम्हारे अध्ययन तथा साधना की व्यवस्था देखकर बड़ा सन्तुष्ट था किन्तु तुम्हारी माता ने बहुत दिनो से तुम्हारे वियोग मे अन्न छोड रखा था। अहर्निश तुम्हारी चिन्ता करती थी, आतुर और व्याकुल रहती थी, सदा विलाप करती रहती थी, बडी कृश हो गई थी। उसकी दयनीय दशा को देखकर मेरा दिल द्रवित हो गया और मैं तुम्हारे पिता के साथ तुम्हे लेने के लिए हरिद्वार चला गया। लोग तुम्हारे योगाभ्यास की साधना मे बाधा उपस्थित करते हैं यह जानकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। मेरी यह अभिलाषा है कि तुम एक महान् योगी बनकर दुनिया को दुःख से मुक्त करो। मैं तुम्हे आज्ञा देता हू और तुम्हारे श्रेय की प्रभु से प्रार्थना करता हू। यदि सस्कृत पढाने की कोई व्यवस्था दूसरी हो भी जाए तो भी यहा तुम्हे शान्ति नही मिल सकेगी। तुम्हारे माता-पिता को यह शका है कि कही तुम साधु न बन जाओ, इसीलिए तुम्हारी साधना मे विभिन्न बाधाए उपस्थित की जा रही हैं और सभी तुम्हारे गृहस्थ मे प्रवेश के लिए प्रयत्नशील हैं। तुम्हारी उन्नति घर के वातावरण से दूर रहकर ही हो सकती है।

स्वामी रामानन्दजी से आज्ञा प्राप्त करके व्यासदेवजी ने उनसे निवेदन किया कि अब वह आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए कठिन साधना करेगे और योगाभ्यास मे मार्गदर्शन लाभ करने के लिए किसी महान् योगी की तलाश करेगे। उनके सहपाठी मनुदत्त ने भी वापस मोहन आश्रम जाने का विचार किया।

व्यासदेवजी का पुनः हरिद्वार के लिए प्रस्थान

व्यासदेवजी ने अपने गृह-त्याग के विचार को किसी पर भी प्रकट नही किया। केवल स्वामी रामानन्दजी तथा उनके सहपाठी मनुदत्त ही को इनके इरादे का पता था। एक दिन रात को छिपकर स्टेशन पर आए और हरिद्वार का टिकट लेकर वहा पहुच गए। मनुदत्त तो पूर्ववत् मोहन आश्रम मे रहने लगा किन्तु व्यासदेवजी को अपने पिताजी के वहा उनकी तलाश मे आ जाने का भय था। अतः उन्होने मोहन आश्रम से रहना उचित नही समझा। व्यासदेवजी ने मनुदत्त को समझा दिया था यदि उनके पिता उन्हे ढूढने आए तो वह उनका पता न बताए। व्यासदेवजी ने अब हरिद्वार से कुछ मील दूर सप्तसरोवर जाकर कठिन तपस्या, साधना और योगाभ्यास करने का निश्चय किया।

व्यासदेव की खोज—व्यासदेव के चले आने के बाद घर मे पूर्ववत् आतुरता और व्याकुलता छा गई। सारा वातावरण शोक से आच्छादित हो गया। घर आया बेटा पुनः हाथ से निकल गया यह विचार सबको दुःखित कर रहा था। माता-पिता, भाई-बधु सभी परस्पर एक दूसरे को उलाहना दे-देकर रुदन कर रहे थे। अब पिता ने पुनः हरिद्वार तथा उसके आसपास व्यासदेव को ढूढकर घर वापिस लाने का दृढ विचार किया। बालयोगी व्यासदेवजी इस बात को जानते थे इसीलिए इच्छा होने पर भी वे अबकी बार मोहन आश्रम नही ठहरे और सप्तसरोवर चले गये थे। पिता

व्यासदेवजी के गृह-परित्याग से दूसरे या तीसरे दिन ही उन्हे ढूढने के लिए मोहन आश्रम पहुचे। वहा मनुदत्त से उनका पता लगाया पर व्यासदेवजी के आदेश के अनुसार उसने उनका कुछ भी पता नही बताया और निवेदन किया कि व्यासदेवजी तो किसी दिन बडे भारी विख्यात योगी बनेगे। वह किसी प्रसिद्ध योगी से योग सीखने के लिए उसकी तलाश मे कही गए है। अब उनका पता लगाना बडा कठिन है। हिमालय मे रहकर योगाभ्यास करने का उनका विचार है। आप उनके विचारो और उनकी स्थिति से परिचित ही है। अब आप उनको छोड दीजिए। वह आपके पास घर पर नही रहेगे। उन्होने ससार के बधन काट दिए है। किसी प्रकार का ममत्व अब उन्हे बाध नही सकता। वह सासारिक प्रलोभनो से बहुत ऊचे उठ चुके है, अत आप लौट जाइए और शान्तिपूर्वक अपने गृहस्थ धर्म का पालन कीजिए। मनुदत्त ने पिता के आने की सूचना व्यासदेवजी को सप्तसरोवर पहुचा दी और वे सतर्क और सावधान होगए।

कठिन तपश्चर्या का प्रारम्भ

ब्रह्मचारी व्यासदेवजी किसी बडे योग्य योगी की खोज मे थे। सप्तसरोवर मे कुछ दिन वास करने के पश्चात् वे इस खोज मे निकल पडे। सप्तसरोवर से ऋषिकेश की ओर गगा के किनारे-किनारे प्रस्थान किया। दस-पन्द्रह दिन तक हरिद्वार और ऋषिकेश के बीच मे ही घूमते रहे। अभी घर से निकले तीन-चार वर्ष ही हुए थे। इसलिए भिक्षाचर्या करने मे सकोच होता था। उनके पास कुछ रुपये थे जो वे अपने घर से ही साथ लाए थे। उन्हीसे अपना निर्वाह करते थे। भोजन केवल एक ही समय करना प्रारम्भ कर दिया था। अभी गेरुए वस्त्र धारण नही किए थे। उनके पास केवल एक कटिवस्त्र, एक कम्बल तथा दो पात्र थे। हरिद्वार और ऋषिकेश के बीच भ्रमण करते हुए कई सन्तो तथा महात्माओ के दर्शन लाभ हुए। उनमे से कइयो से योग-सम्बन्धी विज्ञान के विषय मे वार्तालाप हुआ किन्तु इनमे से कोई भी व्यासदेवजी की परीक्षा की कसौटी पर पास नही हुआ। इनमे से प्रत्येक उन्हे अपना चेला बनाना चाहता था पर व्यासदेवजी चेला बनना स्वीकार न करते थे। भला ऐसे-वैसे साधारण से सन्तो का चेला बनना उन्हे कैसे पसन्द आ सकता था! अब व्यासजी ने वीरभद्र के मदिर के पास अपना आसन जमा लिया और गगा के किनारे योगाभ्यास करने मे तत्पर होगए। उन दिनो ऋषिकेश की आबादी बहुत कम थी। इसलिए यत्र-तत्र हाथी, बाघादि वन्य जानवर फिरा करते थे। सन्त और महात्मा लोग कोयल घाटी और झाडियो मे निवास करते थे। व्यासदेवजी इनके दर्शन करने के लिए कभी-कभी वहा जाया करते थे किन्तु इन्हे कोई ऐसा योगी नही मिला जो इनका पथप्रदर्शन कर सकता। अब व्यासदेवजी ने वस्त्र पहिनना बहुत कम कर दिया। केवल कौपीन धारण किया करते थे। कभी आटा, दालादि लेने यदि बस्ती मे जाना पडता तो कटि-वस्त्र धारण कर लेते थे। देहाध्यास को कम करने का प्रयत्न करते थे। बाल बहुत बढ गए थे। अब उनकी अवस्था एक अवधूत के समान होगई थी। चित्त मे उदासी-नता और वैराग्य की भावना सदैव बनी रहती थी। सारा समय जाप और ध्यान मे ही लगे रहते थे। गगा के किनारे पर घास और पत्तो की एक छोटी-सी कुटिया बना ली थी, उसी मे रहा करते थे। पढने-लिखने की यहा कोई विशेष व्यवस्था न

थी। केवल वैराग्यशतक ही पढा करते थे। अब दाल-शाकादि बनाना भाररूप-सा मालूम होने लगा, अत केवल दो रोटी बनाकर दोपहर के समय खा लेते थे। इन दिनो अधिकतर मौन ही रहते थे और आध्यात्मिक मस्ती के आनन्द मे विभोर रहते थे। इस प्रकार एक वर्ष व्यासदेवजी ने जाप और ध्यान तथा योगाभ्यास मे व्यतीत किया।

नीलकठ गमन—इधर-उधर भ्रमण करते हुए तीन-चार महात्माओ के साथ व्यासदेवजी नीलकण्ठ महादेव चले गए। यह स्थान स्वर्गाश्रम से छ या सात मील की दूरी पर है। यह स्थान बडा एकान्त था और यहा का वातावरण भी बहुत शात था। यहा पहुचने का मार्ग बडा दुर्गम था। यहा पर हाथी, शेर, बाघ, चीते आदि हिंस्र जीव बहुत रहते थे। अकेले भ्रमण करना अत्यन्त कठिन था। जो सन्त इनके साथ नीलकण्ठ महादेव गए थे वे वापिस लौट गए परन्तु व्यासदेवजी निर्भय होकर वही रहने लगे। यहा पर उन्होने आकार मौन धारण कर लिया था और तीव्र तपस्या प्रारभ कर दी थी। उन दिनो बाल इतने बढ गए थे कि इनकी जटाए-सी बन गई थी। अब बदन पर विभूति भी लगाने लग गए थे। यह आवश्यक भी थी क्योकि वस्त्र धारण करना प्राय त्याग ही दिया था। शीतकाल में विभूति लगाने से शीत से रक्षा हो जाती थी। अब इनका देहाध्यास बहुत कम हो गया था किन्तु वैराग्य अभी पूर्णतया दृढभूमि नही हुआ था क्योकि अभी भी भिक्षाचर्या करने मे सकोच होता था और इसी लिए अपने पास भोजनार्थ कुछ रुपये रखे हुए थे।

पुन. कजली वन गमन—कजली वन मे आबादी बहुत कम थी इसलिए व्यासदेवजी ने उस स्थान को प्रत्याहार, धारणा, ध्यानादि के लिए उपयुक्त समझा और यही आकर रहने लगे। स्वर्गाश्रम और नीलकण्ठ से लेकर गुरुकुल कागडी तक का सारा प्रदेश निर्जन-सा ही था। उस बीहड वन मे घूमते-फिरते व्यासदेव कभी-कभी भयभीत हो जाया करते थे। किन्तु यहा रहने का उन्होने दृढ निश्चय कर लिया था। वे सोचा करते थे कि मृत्यु तो एक न एक दिन आएगी ही लेकिन वह आएगी तब जब जीवन की अवधि समाप्त हो जाएगी, उससे पूर्व नही। यदि किसी हिंस्र जीव के द्वारा मृत्यु ही प्रारब्ध मे है तो फिर उससे भयभीत होने से भी क्या लाभ! इसलिए इसी वन मे रहकर तपश्चर्या का अनुष्ठान क्यो न किया जाए! इन दिनो बिल पकने प्रारभ होगए थे। कन्द-मूल फल भी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो जाते थे और कुछ थोडे से सत्तू भी उनके पास थे। यहा पर चण्डी मन्दिर और चिल्ला के बीच मे एक जलस्रोत बहता था। उससे थोडी-सी दूर एक पेड के नीचे व्यासदेवजी ने टहनियो और पत्तो की एक छोटी-सी कुटिया बना ली और उसके पास मे धूनी लगा दी। अभी यहा निवास करते कुछ ही दिन हुए थे, एक रात्रि को जब वे समाधिस्थ होकर धूनी के पास बैठे थे तब उन्हे बडे जोर की हाथी की चिंघाड सुनाई दी। उनकी आख खुल गई। उन्होने धूनी तेज कर दी और सामने से आते हुए हाथी को देखा। वह स्रोत से पानी पीकर आया और व्यासदेवजी की ओर बढने लगा। धूनी से थोडी दूर पर आकर खडा हो गया।

हाथी से सामना—यह हाथी बडा बलवान था। वह अपनी सूड से पानी निकालकर धूनी की ओर फेकने लगा। व्यासदेवजी भी उससे लोहा लेने के लिए तैयार होगए और निर्भीक भाव से उसके विरुद्ध डटे रहे। उन्होने तुरन्त धूनी मे से एक

जलती हुई लकडी उठाकर वलपूर्वक हाथी की सूड पर मारी। इससे हाथी कुछ पीछे हट गया और वहा से पुन अपनी सूड से धूनी पर पानी फेंकने लगा। इस पर व्यासदेवजी ने धूनी पर से दो लकडी और उठाकर हाथी की ओर फेंकी। वह वहा से भागकर पानी के स्रोत की ओर गया। व्यासदेवजी ने सोचा कि अब हाथी कही अन्यत्र चला गया है किन्तु वह थोडी ही देर मे पुन वहा आया और पूर्ववत् धूनी पर पानी फेंकने लगा। इस पर व्यासदेवजी एक लम्बी-सी जलती हुई लकडी लेकर खडे होगए और दूसरे हाथ से कई पत्थर हाथी पर मारे। पर छोटे-छोटे पत्थरो का हाथी पर क्या असर होता। वह बराबर पानी फेंकता ही रहा। अब व्यासदेवजी की धूनी आधी से भी अधिक बुझ चुकी थी। अब वह चिन्तित हुए और हाथी द्वारा अपनी मृत्यु निश्चित समझ ली। व्यासदेवजी विपत्ति मे धैर्य रखना जानते थे और वडे प्रत्युत्पन्नमति थे। जब हाथी की सूड का पानी समाप्त होगया और वह तीसरी वार पानी लेने गया तब सुअवसर देखकर व्यासदेव सब सामान नीचे छोडकर एक ऊचे वृक्ष पर चढ गये। हाथी सूड मे पानी भरकर लाया। सारी धूनी बुझा दी। जो सामान उसे नीचे दिखाई दिया सब तोड-फोड दिया। जिस कपडे मे सत्तू बचे हुए थे उसे भी फाड दिया और सत्तू खागया। कम्बल और धोती को फाडकर उनके टुकडे-टुकडे कर दिए किन्तु अभी भी उसका क्रोध शान्त नही हुआ। जिस वृक्ष पर व्यासदेव ने आश्रय लिया था हाथी उसकी टहनिया तोड-तोडकर उसे मारने लगा। अब व्यासदेवजी पेड की चोटी पर चढ गये। जब पेड की सब शाखाए और प्रशाखाए समाप्त होगई तब वह क्रुद्ध होकर पेड को ही वडे वेग से वलपूर्वक हिलाने लगा। उसकी टक्करो से सारा वृक्ष कम्पायमान होगया पर व्यासदेवजी वडी दृढता से उसपर बैठे रहे। प्रातःकाल जब कुछ प्रकाश-सा हुआ तब वह हाथी उस वृक्ष को छोड दूर जगल मे चला गया। व्यासदेव प्रात छ बजे पेड से नीचे उतरे और सारा सामान टूटा-फूटा पाया। अब व्यासदेवजी बचे-खुचे सामान को लेकर पुन कुनाऊ की ओर चले गये और वही पर आबादी से थोडी दूर निवास करके कई मास तक साधना की।

योगी स्वरूपानन्द से भेंट—वर्षा बीत चुकी थी। शीतकाल का समागम होने ही वाला था। कुनाऊ से व्यासदेवजी चण्डी पर्वत पर कुछ दिनो के लिए चले गए और वहा से गुरुकुल कागडी को देखने गए। इसको स्थापित हुए अभी थोडे ही वर्ष हुए थे। इस भ्रमण के पश्चात् वह कनखल आकर चेतनदेव की कुटिया मे रहने लगे। इस कुटिया के पास ही स्वामी स्वरूपानन्दजी रहा करते थे। व्यासदेवजी ने इनका सत्सग करना प्रारभ कर दिया। इन दिनो यह दिन मे तीन घण्टे तक आसन और प्राणायाम करते थे तथा रात्रि को ध्यान योग का अभ्यास करते थे। स्वरूपानन्दजी ने व्यासदेवजी को ३-४ घण्टे प्रतिदिन अपने पास आने की प्रेरणा दी और कहा कि योग साधना के लिए युवावस्था सर्वोत्तम काल है। इसका सदुपयोग करो। व्यासदेवजी ३ घण्टे प्रतिदिन इनके पास जाकर आसन, प्राणायाम, और ध्यानयोग का अभ्यास किया करते। स्वरूपानन्दजी हठ-योग की वहुत-सी क्रियाए जानते थे। ये क्रियाए भी व्यासदेवजी ने इनसे सीखी और ४ मास तक प्रतिदिन इनसे योगाभ्यास सीखते रहे। इसके बाद स्वामीजी कही अन्यत्र कार्यार्थ चले गए और व्यासदेव को लौटने पर योगाभ्यास करवाने का वचन दे गए।

पुन सप्तसरोवर गमन—यहा पर सन्त रामदासजी रहते थे। ये वडे पहुचे हुए साधु थे। इनका शरीर पजाव का था। व्यासदेवजी ने इनकी ख्याति सुनी थी, अत उनके दर्शनार्थ ये पुन सप्तसरोवर आए थे। सन्त रामदासजी लगभग १२ साल से एक पैर पर खडे होकर तपस्या कर रहे थे। ये कई स्थानो पर रहकर कठिन तपस्या कर चुके थे। आजकल सप्तसरोवर मे आकर तपश्चर्या प्रारभ की थी। इन्होने अपना एक पैर रस्सी मे रखकर उसके दूसरे सिरे को ऊपर वृक्ष से वाधकर लटका रखा था और दूसरे पैर के सहारे भूमि पर खडे थे। जिस पैर को वृक्ष मे लटकाया हुआ था वह सूखकर एक पतली लकडी के समान हो गया था और दूसरा जिसके सहारे मे वे खडे रहते थे सूज कर वहुत मोटा हो गया था। व्यासदेवजी पर उनकी कठोर तपस्या का वहुत वडा प्रभाव पडा। इनके चित्त मे उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति हो जाना स्वाभाविक ही था। इसलिए व्यासदेवजी ने इनके थोडी दूर ही जगल मे एक छोटी-सी कुटिया अपने निवास के लिए वना ली और नित्यप्रति उनके दर्शन और सत्सग के लिए आना प्रारभ कर दिया। सन्त रामदासजी विद्वान् तो न थे किन्तु उनका वैराग्य वडा तीव्र था और ये वडे अनुभवशील तपस्वी थे।

उत्तराखण्ड के चारो धाम की यात्रा

जमनोत्री-यात्रा—किसी योग्य योगी की खोज मे व्यासदेवजी ने हरिद्वार, सप्तसरोवर, ऋषिकेश, स्वर्गाश्रम तथा नीलकण्ठ महादेवादि अनेक स्थानो का भ्रमण किया था किन्तु उसमे उन्हे सफलता लाभ न हो सकी। उनकी योग सीखने की प्रवृत्ति मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी अत इस उत्कट योग-पिपासा को प्रशान्त करने के लिए एक सच्चे गुरु की तलाश करने के लिए उत्तराखण्ड की यात्रा का निश्चय किया। भगवती प्रकृति तथा स्रष्टा की सृष्टि के सौन्दर्य की अनुभूति प्राप्त करने की भी इच्छा थी और साथ ही चारो धामो की यात्रा मे पुण्य-लाभ करने की अभिलाषा भी थी। इन भावनाओ के साथ व्यासदेवजी हरिद्वार से ऋषिकेश पहुचे। यहा से टिहरी लगभग ५० मील है। सर्वप्रथम यह वही गए और वहा पर दो-तीन दिवस ठहरे। इसके पश्चात् गगा के किनारे-किनारे धरासू गए। यहा से जमनोत्री लगभग ५० मील है। व्यासदेवजी ने सर्वप्रथम जमनोत्री जाने का निश्चय किया। मार्ग मे सिमली, गगनाणी, यमुना, हनुमान आदि चट्टियो मे ठहरते हुए लगभग १५ दिन मे जमनोत्री पहुचे। यहा पर एक छोटी-सी धर्मशाला के अतिरिक्त और कोई ठहरने के लिए स्थान न था। अत व्यासदेवजी इसी धर्मशाला मे ठहरे। यहा पर एक छोटा-सा मन्दिर है और तीन-चार गर्म जल के कुण्ड है। इनका जल इतना गर्म होता है कि यदि कपडे मे वाधकर आलू इनके जल मे लटका दिए जाए तो वे भी पक जाते है। यहा से दो मील की दूरी पर यमुनाजी का वास्तविक उद्गम स्थान है। लगभग दो मील के फासले पर वहुत ऊचे-ऊचे पहाड है जो सदा वर्फ से आच्छादित रहते है। यही से यमुना का उद्गम है। इन पहाडो के नीचे जहा पर गर्म कुण्ड है इसी स्थान को जमनोत्री कहते है। जब कभी हिम-जल का प्रवाह अत्यधिक बढ जाता है तो ये गर्म जल के कुण्ड नष्ट-भ्रष्ट हो जाते है तथा धर्मशालादि भी गिरकर पानी मे वह जाते है। जव कभी ग्लेशियर का कोई भाग टूटकर यमुनाजी

मे गिर जाता था और यमुना का प्रवाह रुकने से वाध टूट जाता था तो बाढ आ जाती थी और मन्दिर, धर्मशाला, गर्म जल के कुण्डो आदि को नष्ट कर देती थी। व्यासदेवजी लगभग चार-पाच दिन तक जमनोत्री रहे। वहा अन्य कोई साधु न रहता था, केवल चार-पाच यात्रार्थ आए हुए साधु ही वहा अस्थायी रूप से रहते थे। व्यासदेवजी ने अव वहा से उत्तरकाशी जाने का विचार किया।

उत्तरकाशी मे १५ दिन तक निवास—उत्तरकाशी यमुनोत्री से लगभग ४३ मील है। इस यात्रा मे तीन-चार और सन्त भी व्यासदेवजी के साथ थे। इसलिए यह यात्रा अधिक कष्टदायक नही थी। मार्ग मे फूलचट्टी, गगनाणी, सिंगोट तथा नाकोरी चट्टियो पर ठहरते हुए व्यासदेवजी तथा उनके साथी उत्तरकाशी पहुचे। इस यात्रा मे एक वडी रोचक घटना हुई। व्यासदेवजी तथा उनके साथियो मे मे दो सन्त प्रात चार वजे से पूर्व ही चल दिए। मार्ग एक सघन वन मे से जाता था। जब ये इस मार्ग से जा रहे थे तव एक भयानक व्याघ्र उनका मार्ग रोककर खडा हो गया। व्यासदेवजी घवराए तो नही किन्तु उन्हे इस घटना से कजली वन मे उनका हाथी से जो सघर्ष हुआ था उसका स्मरण हो आया और वडे विनोदपूर्ण ढग मे उस लडाई का वृत्तान्त अपने साथी सन्तो को सुनाया। उन दोनो सन्तो को तो अपनी जान के लाले पड रहे थे अत उन्होने रुचिपूर्वक व्यासदेवजी की लडाई की कहानी को नही सुना। व्याघ्र वास्तव मे वडा खूखार था। उसने आस-पास के कई आदमियो को मार डाला था। व्यासदेवजी ने जिस प्रकार से कजली वन मे हाथी मे लडाई की थी उसी प्रकार से अव इस वाघ के साथ भी पत्थरो मे लडाई करने लगे। हाथी मे धूनी की जलती लकडियो से लडाई की थी और इस वाघ के साथ पत्थरो मे। व्यासदेवजी ने वाघ पर डट कर निर्भीक भाव से पत्थरो की वर्षा की। इसी बीच मे यह देखकर कि वेचारा युवक साधु अकेला ही वाघ से भिड रहा है, कुछ यात्री लोग डण्डे हाथ मे लेकर भाग आए। उन्होने जोर से हाहुल्लड और शोर मचाया जिससे भयभीत होकर वह वाघ भाग गया। चार दिन की यात्रा के पश्चात् व्यासदेवजी तथा दोनो सन्त उत्तरकाशी पहुच गए। यहा ये सव विश्वनाथजी के मन्दिर मे ठहरे। यह मन्दिर पत्थरो का वना हुआ है और वहुत प्राचीन है। पूर्वकाशी (वनारस) के समान ही यह तीर्थस्थान भी विविध मन्दिरो से अलकृत है। उत्तरकाशी भी पूर्वकाशी के समान ही वडा तीर्थ माना जाता है। प्रतिवर्ष हजारों यात्री यहा पर यात्रा करने आते हैं। उत्तरकाशी से लगभग दो मील पर गंगाजी और वरुणा नदी का अत्यन्त रमणीय सगमस्थान है। और यहा से तीन मील की दूरी पर अस्सी और गगा का सगम है। पूर्वकाशी मे भी अस्सी और गगा का सगम है। पूर्वकाशी के समान ही यहा पर भी गगा पर किदार घाट, जड भरत तथा मणिकरणादि प्रसिद्ध घाट वने हुए है। यहा पर व्यासदेवजी को कई सन्तो का समागम तो प्राप्त हुआ किन्तु वडी खोज के वाद भी किसी महान् योगी के दर्शन-लाभ न हो सके।

गगोत्री-यात्रा—व्यासदेवजी ने अव अपने उद्देश की पूर्तियत के लिए गगोत्री के लिए प्रस्थान किया। यह स्थान वहुत उचाई पर है। उनका विचार था कि इस

स्थान पर अनेक योगी योगाभ्यास करते होगे क्योकि ध्यान और समाधि के लिए शीतप्रधान प्रदेश अधिक उपयुक्त होते है।

उत्तरकाशी से चलकर मनेरी होते हुए व्यासदेवजी भटवाडी पहुचे। यहा आकर एक मन्दिर मे ठहरे। यहा से गगनाणी गए और वहा एक ब्रह्मचारी के पास तीन दिन तक निवास किया। यहा पर तीन प्रसिद्ध तप्त कुण्ड है जिनका जल वडा उष्ण है। यह स्थान वडा रमणीक है अत व्यासदेवजी जव तक यहा रहे नित्य इन कुण्डो मे घण्टो ही स्नान करते थे। इसके पश्चात् सुक्खी और भाला चट्टियो के पास से चलकर हर्सिल पहुचे। यहा पर व्यासदेवजी के परिचित एक सज्जन रहते थे। ये ब्रह्मचारी थे किन्तु हर्सिल आकर इन्होने गृहस्थ मे प्रवेश कर लिया था। ये जम्बू के निवासी थे। इनका नाम राजाराम था। यहा पर व्यासदेवजी राजाराम के पास ठहरे। राजाराम ने इनसे हर्सिल मे ही स्थायी रूप से निवास करने का आग्रह किया किन्तु व्यासदेवजी ने वहा रहना पसन्द नही किया। उसके सहवास मे वे रहना ही नही चाहते थे। वे राजाराम के विवाह कर लेने से प्रसन्न नही थे। उसने ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर उसको भग कर दिया था। वे इसमे राजाराम का वडा पतन समझते थे, इसलिए स्थायी रूप से तो भला ठहरना ही क्या था, वहा से दो दिन मे ही गगोत्री के लिए प्रस्थान कर दिया। यहा से चलकर व्यासदेवजी धराली ठहरे। यह स्थान हर्सिल से केवल दो ही मील की दूरी पर था। यह एक वडा रमणीक स्थान है। गगाजी के किनारे वसा हुआ है। अच्छा सुन्दर गाव है। यहा पर गगोत्री मे आते-जाते सन्त ठहरा करते थे। यहा के निवासी सन्तो-महात्माओ के लिए भोजनादि की व्यवस्था करते थे और उनका वडा सम्मान करते थे। यहा प्राचीन मन्दिर पत्थरो से वना हुआ शकरजी का है। और भी पहले कई मन्दिर यहा थे। यहा पर सन्तो और महात्माओ के रहने के लिए गुफाए भी वनी हुई थी। सन्त सुदासिंह जव कभी गगोत्री और गोमुख से आते तो यही ठहरा करते थे। यहा से चलकर व्यासदेवजी गगोत्री पहुच गए। यहा आकर वह एक धर्मशाला मे रहने लगे। यहा एक छोटा-सा गगाजी का मन्दिर था। व्यासजी के गगोत्री आने के कई वर्ष पश्चात् जयपुरनरेश ने दो-तीन लाख रुपया व्यय करके इस मन्दिर को एक विशाल रूप दे दिया था। उस समय यहा पर न कोई आश्रम था और न कोई कुटिया। सभी सन्त और महात्मा गुफाओ मे रहा करते थे। व्यासदेवजी ने यहा पर गगाजी के मन्दिर के दर्शन किए। गगा-स्नान किया और भगीरथ शिला, गौरी कुण्ड तथा पटागना देखने के लिए गए। उन्हे किसी योगी का दर्शन या सत्सग प्राप्त न हो सका। किसी अन्य साथी के न मिलने के कारण अभी गोमुख की यात्रा भी न कर सके। कुछ दिन यही ठहरना पडा। जव व्यासदेवजी को गोमुख यात्रा के लिए तीन साथी मिल गए तव उन्होने इस यात्रा के लिए प्रस्थान किया। एक पण्डा भी उनके साथ हो लिया।

गोमुख-यात्रा—व्यासदेवजी तथा इनके तीनो साथी प्रात ८ वजे गोमुख के लिए चल दिए। गोमुख का मार्ग वडा विकट था। सडक तो क्या कोई पगडण्डी भी वहा न थी। ऊवड-खावड इधर-उधर पडे हुए पत्थरो पर चलना पडा। सायकाल चीडवासा मे पहुच गए। अत्यधिक शीत था अत धूनी लगाकर उसके पास वैठकर

शीत को थोडा शान्त किया। दूसरे दिन लगभग १२ बजे गोमुख पहुचे और गगाजी के उद्गम स्थान पर स्नान किया। बर्फ गल-गलकर बर्फ के पहाड के नीचे मे वह रहा था। जल का वेग अति तीव्र था। इस तीव्र वेग मे हाथी भी वह सकता था। पण्डा से विदित हुआ कि जिस 'ग्लेशियर' से गगाजी निकली है वह प्रतिवर्ष कम होता जा रहा है। गगाजी के उद्गम के स्थान पर एक बर्फ का ग्लेशियर है जो लगभग सौ फुट ऊचा और आधा मील चौडा था। इसकी लम्बाई का अनुमान लगाना कठिन था क्योकि यहा से ऊपर हिमाच्छादित बडे-बडे विशाल पर्वत खडे थे। ये विशालकाय पर्वत एक ओर बद्रीनाथ से जा मिले थे और दूसरी ओर केदार-नाथ से। यहा से बद्रीनाथ १५ मील है और केदारनाथ केवल १२ या १५ मील है। बद्रीनाथ तो यहा से जाया जा सकता था किन्तु केदारनाथ का मार्ग मिलना अत्यन्त कठिन था क्योकि सामने मार्ग रोककर हिमालय खडा है। व्यास-देवजी के साथी यात्रियो को प्राकृतिक दृश्य देखने की बडी उत्सुकता थी। उन्होने पण्डे को कुछ रुपये दिए और उसे साथ चलने को कहा। यहा से तपोवन और नन्दन-वन जाने की अब तैयारी की। भोजनोपरान्त चलने का विचार किया। मार्ग के लिए कुछ पाथेय साथ ले लिया और तपोवन के लिए प्रस्थान किया। यहा से तपोवन केवल तीन-चार मील था। रात्रि तपोवन मे व्यतीत करने का सकल्प किया क्योकि दूसरे दिन प्रात नन्दनवन जाने का निश्चय था। दोपहर के दो बजे तपोवन पहुचे। यहा पर वृक्ष नाममात्र को भी न थे। केवल एक छोटा-सा मैदान था जो आधा मील लम्बा और इससे कुछ कम चौडा था। इसके उत्तर भाग मे गगाजी का ग्लेशियर है और दक्षिण भाग मे शिवलिग पर्वत है। इसकी ऊचाई लगभग इक्कीस हजार फीट है। इसके सामने एक नदी है जो केदारनाथ की ओर से आ रही है। इसके किनारे भी एक बडा विशाल पर्वत है। यह हिम से आच्छादित है। इसी पर्वत के दूसरी ओर केदारनाथ है। इस नदी को पार करके गगाजी के ग्लेशियर के किनारे-किनारे लगभग दो मील जाना पडा। यहा से वापिस लौटकर तपोवन मे ही आगए। रात एक पत्थर के नीचे गुफा मे व्यतीत की। लकडिया वहा पर बिल्कुल उपलब्ध न हो सकी। भूमि से कुछ जडे-सी उखाडकर आग जलाई और जैसे-तैसे कठिनाई से रात व्यतीत की। तपोवन की ऊचाई लगभग तेरह हजार तथा गोमुख की बारह हजार नौ सौ फीट है।

दूसरे दिन गगाजी के ग्लेशियर को देखने के लिए चल दिए। बडी कठिनाई से इसे पार किया। इसकी चौडाई लगभग आधा मील थी। कही-कही बर्फ गल गई थी और वहा एक प्रकार का तालाब-सा बन गया था। ये लोग लगभग दोपहर के बारह बजे नन्दनवन मे पहुचे। इसके एक ओर एक नदी है तथा दूसरी ओर चौखम्भा पर्वत। यह पर्वत सदा ही हिम से आच्छादित रहता है। इस पर सारा साल बर्फ पडती रहती है। नन्दनवन की ऊचाई लगभग चौदह हजार फीट है। ये लोग दो घण्टे तक यहा रहे। इस समय आषाढ का महीना था, अत आसमान स्वच्छ था। नन्दनवन से गोमुख और तपोवन सामने ही दिखाई देते थे। गगाजी के ऊपर लग-भग आध मील तक बर्फ जमी हुई थी। बडी कठिनाई से इस मार्ग को पार किया। व्यासदेवजी तो एक स्थान पर बर्फ की दरार मे फस गए। उनके साथियो ने बडी

कठिनाई से इन्हें बाहर निकाला। तपोवन से हिमालय का दृश्य अत्यन्त मनोहर दिखाई देता है। सामने हिमाच्छादित बडे-बडे विशाल पर्वत दृष्टिगोचर होते हैं।* यहा के दृश्यो की अनुपम सुन्दरता और मोहकता वर्णनातीत है। इसकी आनन्दानुभूति तो स्वय यात्रा करके ही प्राप्त करनी चाहिए। सायकाल व्यासदेवजी अपने साथियो सहित गोमुख लौट आए और गोमुख के पास ही एक गुफा मे निवास किया। इधर-उधर से भोजपत्र की लकडिया बीनकर इकट्ठी की और उनकी धूनी बनाई। रात भर वहा विश्राम किया। प्रात काल गोमुख से निकली हुई धारा मे स्नान किया। इस गोमुख के विषय मे इधर कई प्रकार की किवदन्तिया प्रसिद्ध है। कई लोगो ने बताया कि गगा की हिमधारा के ऊपर जो पर्वत है इन सबको मिलाकर गाय के मुख के समान एक आकृति-सी बनी हुई है। इसे ही गोमुख कहते है। कोई कहते थे कि बर्फ के पहाड से जहा से गगाजी निकली है उसकी आकृति गाय के मुख से मिलती-जुलती है, इसलिए यह गोमुख कहलाता है। कइयो का विचार था कि जिस स्थान से गगाजी निकली हैं वहा गोमुख की आकृति-सी बनी हुई है। किन्तु व्यासदेवजी को इन सब बातो मे कोई तथ्य मालूम नही पडा। इनके विचार से तो वेद मे गो नाम पृथिवी का है। निघण्टु मे इसके २२ पर्याय दिए हैं। इनमे गो शब्द भी आता है। इसलिए गो नाम पृथिवी का है। पृथिवी के मुख को फाडकर गगाजी का उद्गम हुआ है। गगा के ऊपर का भाग लगभग आधा मील तक हिम से आच्छादित है। इसे हिम की धारा भी कह सकते है। इसका सम्बन्ध निश्चितरूपेण आसपास के हिमाच्छादित पर्वतो से है। ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु गगा के वास्तविक उद्गम स्थान का आज तक किसी को पता नही लग सका है। जहा कही भी इसका उद्गम होगा वह अदृश्य है, प्रत्यक्ष नही। गगाजी के ऊपर जो बर्फ है इसका सम्बन्ध एक ओर बद्रीनाथ से है और दूसरी ओर केदारनाथ से। इतना बडा ग्लेशियर कहीं पर भी किसी नदी के ऊपर नही है। बद्रीनाथ की ओर से इसी ग्लेशियर से अलखनन्दा, ऋषिगगादि नदिया निकलती है और दूसरी ओर से केदारगगादि कई नदिया निकल रही है।

गोमुख स्नान करने के पश्चात् सायकाल गगोत्री लौट आए। तीन-चार दिन तक यहा रहे। यहा पर सन्तो-महात्माओ के दर्शन किए और अनेक दर्शनीय स्थानो का अवलोकन किया। गगोत्री मे केदारगगा और गगा का सगम है। इसमे स्नान करने का बडा महत्त्व माना जाता है। यहा से लगभग एक मील की दूरी पर रुद्र-गगा का गगा के साथ सगम होता है। पकोडी गगा भी लगभग एक मील की दूरी पर गगा से मिलती है। आधे मील की दूरी पर लक्ष्मी वन है जिसे गगाजी का बागीचा भी कहते हैं। मदिर के पास भगीरथ शिला है। यहा पर महाराजा भगीरथ ने तपस्या की थी। गौरी कुण्ड का दृश्य वास्तव मे दर्शनीय है। यहा पर बहुत ऊचे से गगाजी

*(१) मेरु शिखर २१८५० फीट ऊचा, (२) शिवलिंग २१४०० फीट, (३) कीर्ति-स्तम्भ २०५७० फीट, (४) चतुरगी हिमधारा (केदारनाथ का शिखर) २२९९० फीट, (५) सुमेरु पर्वत २०९९० फीट, (६) भगीरथी पर्वत (इसके नीचे से गगाजी निकल कर बह रही है) २२४९५ फीट, (७) वासुकी शिखर २२२५८ फीट, (८) चन्द्र पर्वत २२०७३ फीट, (९) कालिन्दी १९५७० फीट, (१०) चौखम्भा पर्वत—इसके चार शिखर —(क) २३४२०, (ख) २३१९०, (ग) २२२८०, (घ) २२४८५, (११) मन्थरी पर्वत २०३२० फीट, (१२) नीलकण्ठ २११४० फीट।

इस कुण्ड मे गिरती है। ऐसी किंवदन्ती है कि भगवान् शंकर का वरण करने के लिए पार्वतीजी ने यहां घोर तपस्या की थी, जिसके परिणामस्वरूप शंकर उसकी तपस्या से और दृढ निश्चय से प्रभावित होकर स्वयं यहां आए थे। गंगोत्री का मंदिर शीताधिक्य के कारण छः मास तक बन्द रहता है। मूर्ति को पण्डे मुखवा मे ले जाते है, और वहां इसकी स्थापना कर देते है। यहीं पर गंगाजी की पूजा छः मास तक होती रहती है। यह स्थान बडा एकान्त है। वातावरण बडा शान्त और आध्यात्मिक है। तपश्चर्या के लिए बहुत उत्तम स्थान है।

केदारनाथ की यात्रा—भटवाडी के पास मल्ला नामक एक स्थान है। यहां से केदारनाथ को रास्ता जाता है अतः व्यासदेवजी ने भटवाडी जाने का निश्चय किया। गंगोत्री से प्रस्थान करके ये मुखवा पहुंचे। मुखवा पण्डों का गांव है। यहां मार्कण्डेय का मंदिर है। यहां पर मार्कण्डेय ऋषि ने तपस्या की थी। मातंग ऋषि ने भी यहीं आकर साधना की थी। इसलिए इसका नाम मुखवा पडा है। इसे मुखीमठ भी कहते हैं। यहां के ब्राह्मण सन्तो-महात्माओं की खूब सेवा तथा आदर करते है, इसलिए कोई न कोई सन्त यहां निवास किया ही करते है। व्यासदेवजी ने मार्कण्डेय के मंदिर मे एक रात तथा एक दिन व्यतीत किया। दूसरे दिन हर्सिल, झाला, सुक्खी, लुहारीनाग, गंगनाणी, भटवाडी होते हुए मल्ला पहुंचे। यहां से बूढा केदार लगभग ३० मील है। मार्ग मे छोटी-छोटी कई चढ़ाइयां आती हैं। व्यासदेवजी ने ३० मील के मार्ग को दो दिन मे तय किया। इस मार्ग मे देवदार के बहुत बडे-बडे पेड है। यहां एक बडा भारी वन है। इसमे आबादी बहुत कम है। व्यासदेवजी ने बूढे केदार पहुंचकर एक दिन विश्राम किया। यहां पर धर्मनदी का गंगाजी के साथ संगम होता है। बूढे केदार का मंदिर बडा सुन्दर है। एक धर्मशाला बनी हुई है। अत्यन्त मनोरम स्थान है। यहां से एक मार्ग घुत्तू से त्रियुगीनारायण होकर केदारनाथ जाता है। इस मार्ग मे चढाई बहुत है। दूसरा मार्ग गुप्तकाशी की ओर से होकर जाता है। यह मार्ग कुछ लम्बा है, किन्तु चढाई नही है। जंगल का मार्ग है। आबादी बहुत कम है। किसी-किसी स्थान पर तो बिल्कुल ही आबादी नही है। इसलिए इधर से यात्री बहुत कम जाते हैं। व्यासदेवजी ने इसी मार्ग से जाने का निश्चय किया। इस मार्ग से जाने वाला साथी व्यासदेवजी को कोई नहीं मिला। वर्षा की ऋतु थी इसलिए यात्रियो का आना-जाना कम हो गया था। लगभग ७-८ मील चल पाए थे कि एक स्थान पर दो पगडण्डियां दिखाई दी। अब उनके सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हो गई। वे यह निश्चय नहीं कर पाए कि कौन से मार्ग से जाना चाहिए। व्यासदेवजी ने जिस रास्ते से जाना निश्चय किया उसमे जंगली जानवर बहुत रहते थे। मार्ग बडे बीहड जंगल मे से गुजरता था। कोई यात्री उस मार्ग मे व्यासदेवजी को नही मिला। कुछ दूरी पर व्यासदेवजी को एक छोटी सी नदी दिखाई दी। इसके ऊंचे किनारे की एक खोह मे पत्ते आदि बिछाकर अपना आसन लगा लिया, और यहीं पर रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया। थोडी खाद्य सामग्री व्यासदेवजी के पास थी। इसे ही कई दिनो से खा रहे थे। आज भी इसमे से थोडा खाया। जिस वस्त्र मे यह भोजन सामग्री बंधी हुई थी उसे ही पत्तो पर बिछा कर सो गए। इस खोह मे आने के लिए दो मार्ग थे। एक मार्ग बडा था जिसमे आदमी आसानी से भीतर बैठ कर प्रवेश कर सकता था, किन्तु दूसरा केवल एक फुट चौडा

था। व्यासदेवजी ने दोनो ही द्वार भली प्रकार से बन्द कर दिए थे। चारो ओर जब अंधेरा छा गया तब वह सो गये।

चोर-भालू से रक्षा—अर्धरात्रि मे छोटे मार्ग से किसी ने उनके नीचे बिछे हुए वस्त्र को खीचना प्रारभ किया। व्यासदेव अंधेरे मे ही कुछ आवाज करके उसे भगाने का प्रयत्न करते रहे। जब उसने बडे-बडे बालो का उनके पावो पर स्पर्श किया तब मालूम हुआ वह कोई हिंस्र-जीव है, अत उसे भगाने के लिए कई दियासलाइया जलाई और पुन आत्मरक्षार्थ बहुत-सी दियासलाइया जला कर उसके ऊपर फेंक दी। दियासलाइयो के प्रकाश मे उन्हे पता लगा कि यह भालू था। अग्नि एकदम भालू के सारे बालो मे फैल गई। वह जितना ही इधर-उधर भागकर उसे बुझाने का यत्न करता था उतना ही वायुवेग से अग्नि उसके शरीर पर फैलती गई। उसका सारा शरीर झुलस गया और अब उसने एक ऊची-सी पहाडी पर से नीचे नदी मे छलाग लगा दी। व्यासदेवजी अपनी खोह मे चले गए किन्तु नीद नही आई। सारी रात बैठकर ही व्यतीत की। उन्हें भालू के झुलस जाने पर पश्चात्ताप हो रहा था लेकिन उनका कार्य कुछ अनुचित न था। जो कुछ भी किया वह आत्मरक्षार्थ था।

दिशा-भ्रम—प्रात काल उन्हे कुछ समझ नही आया कि किधर जाना चाहिए। मार्ग भूल गए थे। दिशा की भी भ्रान्ति-सी होगई थी। केदारनाथ किस दिशा मे है इसका भी ज्ञान नही रहा था, वरना वही वापिस लौट जाते। पास ही एक पहाडी थी, उस पर चढकर आबादी का पता लगाया, किन्तु कही मनुष्य का पता ही न चला। एक पगडण्डी-सी पास से ही जा रही थी। उसी पर चल दिए। मध्यान्ह तक उस पहाडी के शिखर पर पहुच गए। उसके आगे एक और पहाडी दृष्टिगोचर हुई, किन्तु आबादी कही नाम-मात्र को भी दिखाई न दी। बहुत थक गए थे अत धूप मे ही सो गए। बडी गहरी नीद आई। बहुत देर तक सोते रहे क्योकि गतरात्रि को भालू के आने के कारण सो नही सके थे। सायकाल हो चला था अत आस-पास से लकडिया एकत्रित करके धूनी रमा कर बैठ गए। रात को अत्यधिक वर्षा हुई थी और ओले भी बहुत पडे थे। तपस्वी युवक ने धूनी के सहारे जैसे-तैसे रात काटी। प्रात काल उठकर सामने एक पहाडी दिखाई दी, इसी पर चढना प्रारम्भ कर दिया और दोपहर तक उसके शिखर पर पहुच गए। यहा से चारो ओर दृष्टिपात करने पर सुदूर पहाडी के नीचे धुआ-सा दिखाई दिया। यह धूआ दूर तो बहुत था किन्तु भूले-भटके युवक के लिए यह एक आशा की किरण थी, उन्होने उसी दिशा की ओर चलना प्रारभ किया। मार्ग मे एक हिरणो और बारहसीगो का बडा झुण्ड दिखाई दिया। इसे भगाने का व्यासदेवजी ने बडा प्रयत्न किया किन्तु वे वही डटे रहे, अत उन्होंने अब दूसरे मार्ग से जाना प्रारम्भ किया। उस ओर कोई पगडण्डी न थी। बडे घने वृक्षो के बीच मे से जैसे-तैसे निकले। कुछ दूर जाने के बाद एक बहुत बडी चट्टान दिखाई दी। उसी पर चढकर विश्राम करने का विचार किया किन्तु इसके नीचे से बडी दुर्गन्ध आरही थी। नीचे झाककर देखने से मालूम हुआ कि यहा पर बहुत हड्डिया, मास तथा खालें पडी हुई है। व्यासदेवजी ने अनुमान लगाया कि यहा पर कोई हिंस्र-जीव अवश्य होना चाहिए जिसने इन जानवरो को मारा है। इधर-उधर देखा और खूब शोर किया, पत्थर भी उठा-उठा कर नीचे फेंके। पत्थरो की चोट खाकर एक बाघ सामने आया और उसने जोर-जोर

से गर्जना प्रारभ किया। उस वन के सब जीव-जन्तु भयभीत होगए। व्यासदेवजी उस चट्टान के ऊपर खडे होकर बाघ मे लडते रहे। वह थोडी देर बाद नीचे उतरकर कही चला गया। व्यासदेवजी सूर्यास्त से किंचित् पूर्व आबादी मे पहुच गए। इस आबादी का नाम घुनूचट्टी था। यह केदारनाथ के मार्ग पर ही थी। मार्ग का ठीक-ठीक पता न चल सकने के कारण व्यासदेवजी तीन दिन तक भूखे, प्यासे तथा हिंसक जानवरो मे लडते हुए भटकते रहे। इस प्रकार लगभग ४० मील चले होगे। घुनू मे त्रियुगीनारायण केवल १४ मील ही था। यदि सीधा मार्ग मिल जाता तो यह एक दिन मे पहुच सकते थे। किन्तु मार्ग भूल जाने के कारण इस कठिनाई का सामना करना पडा। किन्तु इससे इन्हे एक बडा लाभ हुआ। जगली हिंस्र-जानवरो का मुकाबिला करते-करते अब ये इनसे सघर्ष करने मे सिद्धहस्त और निपुण हो गए थे। अब वे इन जानवरो को कुत्ते बिल्ली के समान समझने लग गए थे। वन मे बिल्कुल निर्भीक भाव मे विचरते थे। घुनूचट्टी पर व्यासदेवजी ने पूरा एक दिन विश्राम किया क्योकि वनो मे इधर-उधर भटकने के कारण अत्यधिक थक गए थे।

त्रिगुणीनारायण-गमन—यहा से त्रिगुणीनारायण १४ मील था किन्तु चढाई बडी विकट थी। व्यासदेवजी एक ही दिन मे इस चढाई को पार करके त्रिगुणीनारायण पहुच गए और वहा धर्मशाला मे विश्राम किया। यहा पर त्रिगुणीनारायण का विशाल मदिर है। मूर्ति की नाभि मे से गगा और सरस्वती की दो धाराए निकल रही हैं। यहा पर कई जल के कुण्ड भी है। एक छोटा-सा बाजार है। एक यज्ञशाला है जिसमे सदा अग्नि प्रज्वलित रहती है। ऐसी किवदन्ती प्रसिद्ध है कि यहा पर शकर और पार्वती का विवाह हुआ था। ब्रह्मकुण्ड तथा विष्णुतीर्थ भी यही पर है। पास ही हरिद्रा नदी बहती है। इस स्थान से केदारनाथ १२ मील था। अब व्यासदेवजी ने केदारनाथ के लिए प्रस्थान किया। दो घण्टे मे गौरीकुण्ड पहुच गए। यह मन्दाकिनी नदी के तट पर है। यहा पर दो जल के गर्म कुण्ड है। सायकाल व्यासदेवजी केदारनाथ पहुचे। यहा पर पत्थर का बना हुआ एक विशाल मदिर है। इससे दो फर्लांग पर भैरो का मदिर है। इससे कुछ ही दूरी पर एक स्रोत है जिसमे मे मन्दाकिनी निकली है। केदारनाथ के मदिर से पाच या छ मील की दूरी पर एक ब्रह्मगुफा है जिसमे ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था। केदारनाथ से एक मार्ग भृगु पथ को जाता है। यह सदा हिमाच्छादित रहता है। ऐसा कहा जाता है कि शकराचार्यजी महाराज ने इसी पथ पर गमन किया था और फिर वहा से नही लौटे थे। यह किवदन्ती प्रसिद्ध है कि लोग यहा जाकर प्राण त्यागने मे बडा पुण्य समझते थे। व्यासदेवजी ने केदारनाथ मे एक सप्ताह ठहर कर सारे दर्शनीय स्थान देखे। केदारनाथ ११७०० फीट की ऊचाई पर है। यहा शीत बहुत होता है। वायु बहुत ठण्डी चलती है। आस-पास के सारे पर्वत बर्फ मे ढके रहते है, इसलिए यात्री यहा बहुत कम ठहरते हैं।

बद्रीनारायण की यात्रा—अब ब्रह्मचारी व्यासदेवजी ने बद्रीनारायण के लिए प्रस्थान किया। प्रात केदारनाथ से चलकर दोपहर को नारायण कोटी पहुच गए। यहा मे गुप्तकाशी केवल दो मील है अत प्रथम उसे देखने गए। यहा पर एक कुण्ड है। गगा और यमुना इस कुण्ड के नीचे से गुप्तरूपेण इसमे गिरती हैं। यहा शिवजी का एक मदिर है और कुछ दुकाने भी है। यहा पर व्यासदेवजी ने एक दुकान पर दूध

पीया था। उनके पास ही एक युवक खड़ा था जिसने ब्रह्मचारीजी को दूध के दाम चुका कर शेष रुपये रखते हुए ध्यानपूर्वक देखा था। इसका नाम कर्मसिंह था। यह व्यासदेवजी के पास आया और कहा कि वह भी बद्रीनारायण जा रहा है। एक पगडण्डी से जाने मे मार्ग छोटा पडता है। आप भी इसी मार्ग से चले। व्यासदेवजी पगडण्डी मे चलने को तैयार हो गए। कर्मसिंह के मन मे क्या पाप छिपा था इसे वे समझ नही सके। कर्मसिंह और उसका साथी फूलसिंह व्यासदेवजी को मन्दाकिनी गगा के किनारे एक घने जगल मे ले गए और उनका रुपया छीनने लगे। व्यासदेवजी इनसे भयभीत होने वाले व्यक्ति न थे। उनमे ब्रह्मचर्य का ओज, बल और शक्ति थी। जब जगली हिंस्र जानवरो से भी वे कभी भयभीत नही हुए, जहा कोई जानवर मिला वही उसे पछाड देते थे, तो भला इन दुबले-पतले शक्तिहीन पहाडी व्यक्तियो से भयभीत होने का अवसर ही क्या था। कर्मसिंह ने जब यह देखा कि व्यासदेवजी रुपया चुपचाप नही देगें तब उसने छीना-झपटी प्रारभ करने की कोशिश की और अपनी सोटी व्यासदेवजी के सिर पर मारी। किन्तु व्यासदेवजी ने स्कूल मे लाठी गतका चलाना सीखा था और ब्रह्मचर्य के बल से वह सम्पन्न थे, अत तुरन्त उन्होने वार को रोककर अपनी सोटी कर्मसिंह की कनपटी पर ऐसे जोर से मारी कि वह बेहोश होकर गिर गया। यद्यपि वह पापी था और चोर था किन्तु व्यासदेवजी पाप से घृणा करते थे पापी से नही, अत कर्मसिंह को बेहोश देखकर उन्होने उसके सिर पर ठण्डे जल के छीटे दिए। बडे प्रयत्न से उसे होश दिलाया। यह सब देखकर फूलसिंह तो भाग गया। व्यासदेवजी कर्मसिंह को बाधकर ओखी मठ ले गए और वहा उसे पुलिस के सुपुर्द कर दिया। पुलिस वालो ने उनका बडा सम्मान किया।

ओखी मठ मे निवास—व्यासदेवजी यहा पर तीन दिन ठहरे। ओखी मठ मे श्रीकेदारनाथजी की गद्दी है। गद्दी पर पचमुखी स्वर्ण मुकुट रखा रहता है। यहा का मदिर बडा विशाल है। उसके पास ही राजा मान्धाता की काले पत्थर की मूर्ति है ओकारेश्वर के मदिर मे अनेक मूर्तिया है। यह स्थान बडा सुन्दर, मनोहर और दिव्य है। अब व्यासदेवजी ने यहा से प्रस्थान किया। मार्ग मे कई चट्टियो के पास से होते हुए वाणियाकुण्ड पहुचे। यहा से तुगनाथ केवल दो मील था। यहा पर एक दिन ठहरकर गोपेश्वर भगवान् के दर्शन करने गोपेश्वर गए। यहा से चमोली गए। इसे लालसागा भी कहते है। अलखनन्दा गगा के किनारे पर है और बडा सुन्दर स्थान है। यहा से बद्री-नारायण ८८ मील रह जाता है। यहा पर पुलिस की चौकी है और डिप्टी कलक्टर भी यहा रहता है। डाकखाना और अस्पताल भी यहा पर है। यहा पर एक दिन ठहरकर पीपल कोटी पहुचे और फिर गरुड गगा और पाताल गगा की बडी कठिन चढाई चढने के बाद ज्योतिमठ पहुचे। मार्ग मे सैकडो यात्रियो से समागम हुआ किन्तु व्यासदेवजी जन-सपर्क से बचकर दूर भागते थे। उनको यात्रियो से कोई प्रयोजन नही था। वे विचार और चिन्तन करते हुए अकेले ही चलते थे। ज्योतिर्मठ मे नारायण का मदिर है। शीतकाल में बद्रीनारायण की प्रतिमा को यहा पधराया जाता है और यही उसकी पूजा होती है। उसमे अनेक मदिर है। शकराचार्यजी महाराज ने जब भारतवर्ष मे चार मठो की स्थापना की थी तब उत्तर मे ज्योतिर्मठ की स्थापना की थी। बद्रीनारायण यहा से केवल १८ मील रह जाता है। यहा से प्रातः चलकर विष्णुप्रयाग पहुचे। यहा

पर अलखनन्दा गगा और धौली गगा का सगम है। इस सगम पर स्नान का वडा माहात्म्य समझा जाता है। केदारनाथ और वद्रीनाथ की यात्रा के मार्ग मे पाच प्रयाग आते है —देवप्रयाग, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग, नन्दप्रयाग तथा विष्णुप्रयाग। यहा से चलकर पाण्डुकेश्वर पहुचे। इस स्थान पर योगवद्री और वासुदेव भगवान् के मदिर है। ऐसा प्रसिद्ध है कि पाण्डुराजा ने यहा पर अपनी दोनो रानियो कुन्ती और माद्री के साथ निवास किया था। इसी कारण से यह स्थान पाण्डुकेश्वर कहलाता है। हनुमान चट्टी से वद्रीनारायण तक लगातार कठिन चढाई है। वद्रीनाथ से एक मील इधर कचन गगा है। इसके आगे अलखनन्दा गगा का पुल पार करके ऋषिगगा आती है। इसके पश्चात् वद्री-नारायण का बाजार प्रारभ हो जाता है। बाजार केअन्तिम भाग मे वद्रीनारायणजी का मदिर है। यहा पर धर्मशाला मे व्यासदेवजी ठहरे। वद्रीपुरी चौथा धाम है और यह अलखनन्दा गगा के किनारे मन्दराचल पर्वत पर वसा हुआ है। यहा के मकान प्राय पक्के दो मजले बने हुए है। इसमे लगभग ढाई-तीन-सौ मकान और दूकानें है। जीवन के लिए सभी आवश्यक वस्तुए प्राय मिल जाती हैं। वद्रीनाथजी का मदिर वडा विशाल है। यह लगभग ४५ फीट ऊचा है। ध्यानावस्थित वद्रीनारायण की मूर्ति काले रग की है। इसके मस्तक पर वडा चमकदार हीरा लगा हुआ है। श्री शकराचार्यजी महाराज ने इस मूर्ति को नारद कुण्ड से निकलवाकर इस मदिर मे स्थापित किया था। मदिर के सामने ही अलखनन्दा गगा वहती है। मदिर और गगा के वीच मे गर्म जल के कुण्ड हैं। मदिर के उत्तर की ओर ब्रह्मकपाल नामक शिला है। यहा आकर यात्री पिडदान करते हैं। इससे थोडी-सी दूर माता का मदिर है। यहा पर प्रतिवर्ष मेला लगता है। इसके थोडा आगे माणागाव है। यही पर वह व्यासगुफा है जिसमे वैठकर श्री व्यास भगवान् ने महाभारत और १८ पुराणो की रचना की थी। माणागाव से ही कैलाश तथा मानसरोवर को मार्ग जाता है। ऋषिगगा के किनारे-किनारे जाने से आगे वडे-वडे विशाल पर्वत वर्फ से ढके रहते है, इसलिए आगे जाने का मार्ग वन्द हो जाता है। यहा पर ब्रह्मकमल वहुत होते है जिनसे वडी मधुर सुगध आया करती है। वद्रीनाथ मे ४ मील लम्बा और डेढ मील चौडा मैदान है। श्रावण तथा भाद्रपद मासो मे विभिन्न प्रकार के पुष्प खिलते है किन्तु इस मैदान मे वृक्ष नही हैं। वद्रीनाथ की ऊचाई दस हजार तीन सौ फीट है। गगोत्री की अपेक्षा यहा वर्षा अधिक होती है। यहा पर ब्रह्मचारी व्यासदेवजी दो मास तक रहे थे। वद्रीनाथ के आस-पास और भी कई तीर्थ-स्थान हैं। इनमे शतपथ और स्वर्गारोहण मुख्य है। व्यासदेवजी ने इन तीर्थो की यात्रा करने का भी सकल्प किया। एक अन्य महात्मा भी इनके साथ चलने के लिए तैयार होगए किन्तु वह इन तीर्थों का मार्ग नही जानते थे अत किसी जानकार की खोज मे इधर-उधर फिरते रहे। अन्त मे माणागाव का ही एक व्यक्ति व्यासदेवजी के साथ जाने के लिए तैयार हो गया।

शतपथ और स्वर्गारोहण की यात्रा

वसुधारा-गमन—ब्रह्मचारी व्यासदेव, शिवानन्द गिरी तथा माणागाव के धर्मसिंह ने चार-पाच दिन का भोजन साथ लेकर प्रस्थान किया। माणागाव से मार्ग जाता था। इस गाव से थोडी दूर वसुधारा है जो एक बहुत ऊचे पहाड से निकलती है। इसके पास ही सरस्वती गगा का अलखनदा गंगा से संगम होता है। इसके पास

ही अलकापुरी का पहाड है। इसका रग धूसर है। यहा से थोडी-सी दूरी पर हिमाच्छादित हिमालय पर्वत दिखाई देने लगता है। बद्रीनाथ से शतपथ केवल १८-१९ मील ही था। बद्रीनाथ से प्रस्थान करके सर्वप्रथम माता मूर्ति के मदिर के दर्शन किए और उसके बाद वसुधारा पहुचे। कुछ मील तक यात्रा करने के पश्चात् एक गुफा मे विश्राम किया क्योकि दूसरे दिन का सारा मार्ग बर्फ से ढका हुआ था। इसलिए इस गुफा मे एक दिन तक विश्राम करना उचित समझा। आगामी दिवस एक अत्यन्त वेगवती नदी को बडी कठिनाई से पार किया। व्यासदेवजी तथा इनके दोनो साथियो ने परस्पर एक दूसरे के हाथ पकडकर इस नदी मे प्रवेश किया। यहा से आगे का मार्ग चारो ओर हिमाच्छादित था। अलखनन्दा सारी बर्फ से ढक गई थी और बर्फ मे ही लुप्त-सी हो गई थी। उसका कही कोई चिह्न भी दृष्टिगोचर नही हो रहा था। व्यासदेवजी के साथी कुछ आगे निकल गए और ये पीछे रह गए। व्यासदेवजी को बर्फीले मार्ग पर चलना था। सर्वत्र ही बर्फ बिछी हुई थी।

बर्फ की दरार में फंसना——बर्फ मे एक स्थान पर एक दरार फट गई थी, किन्तु इसके ऊपर पतली-सी एक तह बर्फ की छा गई थी। व्यासदेवजी को इस दरार का पता न चल सका और वे बर्फ के ऊपर से चलते-चलते इस दरार मे फस गए और कटिभाग तक बर्फ के नीचे चले गए। बडे घबराए। ज्यो-ज्यो बर्फ से बाहिर निकलने का प्रयत्न करते थे त्यो-त्यो अधिकाधिक नीचे डूबते जाते थे। बर्फ के कारण उनका शरीर निश्चेष्ट-सा होता जा रहा था। उनके पैर बर्फ मे बिल्कुल दब गए थे। ऊपर निकलने की शक्ति उनमे न रही थी। बर्फ के अन्दर से ही उन्होने अपने साथियो को जोर-जोर से आवाजें लगाईं, पर वे कुछ दूर निकल गए थे अत वे सुन न सके। थोडी दूर जाने के बाद उन्होने देखा कि व्यासदेवजी उनके पीछे नही आ रहे है, तो वे घबराए और पीछे लौटे। जब वह बर्फ की दरार के पास पहुचे तब उन्हे व्यासदेवजी की आवाज सुनाई दी। धर्मसिह भाग कर आया पर ज्योही वह व्यासदेवजी के समीप पहुचा त्योही वह भी बर्फ में धसने लगा। तब वह ठहर गया। उसने अपनी धोती उतार कर ब्रह्मचारीजी के पास दरार के नीचे फेकी किन्तु वह नीचे तक नही पहुची। फिर उस धोती के साथ एक बडी रस्सी बाध कर नीचे लटकाई और जब व्यासदेवजी ने इसे पकड लिया तब धर्मसिह और शिवानन्द ने खीच कर उन्हें ९-१० फीट गहरी बर्फ मे बाहिर निकाला। इनके शरीर मे उष्णता का अभाव-सा होगया था, और बिल्कुल निश्चेष्ट हो गए थे। दोनो साथियो ने मिलकर इनके शरीर को दबाया और अपने हाथो से रगडा, तब कही इसमे गर्मी आई। यदि ये दोनो व्यासदेवजी को बाहिर न निकालते तो ये भी पाण्डवो के समान ही बर्फ मे गल जाते। जैसे-तैसे ये तीनो शतपथ के पास जाकर एक गुफा मे ठहरे। सर्वत्र बर्फ ही बर्फ थी अत वहा लकडी नाममात्र को भी न थी। इसलिए अग्नि जलाकर शरीर को उष्ण करने का कोई साधन वहा न था। जिन स्थानो पर बर्फ नही थी उनको तथा उनके आसपास के सरोवरो को इधर-उधर भ्रमण करके देखा। पाण्डवो मे से जो-जो इस बर्फ मे गल गया था उस-उसके नाम से यहा पर ताल बने हुए है। किसी ताल का नाम भीमताल तथा किसी का अर्जुनताल तथा किसी का द्रौपदीताल आदि था। स्वर्गारोहण विष्णुताल से लगभग ३ मील था, और यही से ऊपर जाने के लिए सीढिया बनी हुई थी।

किन्तु बर्फ के कारण स्वर्गारोहण पर चढना अत्यन्त कठिन था। मार्ग भी दृष्टिगोचर नही हो रहा था। शतपथ के मार्ग हिमाच्छादित थे। तीन दिन तक त्रिगुणुताल मे रहे। यहा के सौन्दर्यपूर्ण दृश्य का अवलोकन करके बडा आनन्द-लाभ किया। शतपथ के दाई ओर स्वर्गारोहण के पार गोमुख है, और बाईं ओर केदारनाथ। इन तीनो अर्थात् स्वार्गारोहण, केदारनाथ और गोमुख के बीच हिमालय स्थित है। महाराजा युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण की सीढियो पर चढकर ऊपर हिमालय पर जाकर या तो अपने शरीर को बर्फ मे गला दिया होगा या स्वर्गलोक को पधार गए होगे। शेष पाण्डव तो शतपथ की हिम मे ही गल गए थे। व्यासदेवजी तथा उनके साथी प्रात काल ही यहा से लौट आए। मार्ग देखा हुआ ही था। इसके अतिरिक्त अब उतराई भी थी, अत कोई कष्ट प्रतीत नही हुआ और सायकाल ४ बजे के लगभग बद्रीनाथ पहुच गए। यहा पर गर्म कुण्ड मे स्नान करके सारी थकावट दूर हो गई। व्यासदेवजी योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना चाहते थे, इसीलिए किसी अनुभव प्राप्त बडे योगी की खोज मे इस प्रकार की महान् कठिनाइया उठाई, किन्तु उन्हे किसी भी योगी के दर्शन न हो सके।

अलखनन्दा के किनारे गुफा मे अभ्यास—व्यासदेवजी ने अलखनन्दा के पुल को पार करके एक गुफा को घास-फूस बिछाकर निवास के योग्य बना लिया और इसमे योगाभ्यास करने लगे। यह स्थान अत्यन्त एकान्त था। नित्य कई-कई घण्टो तक यहा पर व्यासदेवजी साधना करते रहे। ये क्षेत्र से भोजन लेने नही जाते थे। स्वय ही गुफा के बाहिर भोजन बनाया करते थे। एक दिन कलकत्ते के मारवाडी सेठ बृजमोहन व्यासदेवजी से मिलने आए। ब्रह्मचारीजी प्रात ६ बजे से १२ बजे तक ६ घण्टे एक ही आसन पर बैठ कर साधना किया करते थे। सेठ बृजमोहन जब आए तब अभी केवल ८ ही बजे थे। व्यासदेवजी समाधिस्थ थे। सेठजी उनकी प्रतीक्षा करते रहे। जब व्यास-देवजी समाधि से उठे तब सेठ ने उनके चरण पकड लिए और प्रश्न किया कि आपके सासारिक सुख और समृद्धि, भोग और विलास के परित्याग का क्या कारण है और किस देव तथा शक्ति की उपासना ने आपको इस महान् त्याग के लिए प्रेरित किया है। व्यासदेवजी ने उत्तर दिया कि सर्व सृष्टि के स्रष्टा, धर्ता, सहारकर्त्ता, पालक-पोषक और रक्षक भगवान् ही मेरे परमदेव है। मै उन्ही की उपासना और भक्ति करता हू। सर्वदु खहर्ता वे ही भगवान् है। इन्ही की प्राप्ति के लिए मै विरक्त होकर साधना कर रहा हू। इस समय मैं किसी विद्वान् आत्मवित् योगी की खोज मे इस हिमालय मे घूमता फिर रहा हू जिससे अन्तर्यामी भगवान् से मिलने का सीधा और छोटा मार्ग उपलब्ध हो सके। व्यासदेवजी के उत्तरो से सेठजी बडे प्रभावित हुए। उन्होने ब्रह्म-चारीजी को भोजन के लिए आमन्त्रित किया किन्तु इन्होने स्वीकार नही किया क्योकि ये नगर मे नही जाते थे। स्वय ही भोजन बनाकर खा लिया करते थे। दूसरे दिन सेठजी अपनी पत्नी और बच्चो को साथ लेकर साढे ग्यारह बजे भोजन लेकर व्यासजी की गुफा मे उपस्थित होगए। व्यासजी ने और सेठजी के परिवार ने इकट्ठे बैठकर भोजन किया। व्यासदेवजी ने सेठ तथा उसके परिवार को बडा सारगर्भित उपदेश दिया। सेठजी ने व्यासदेवजी को ५०० रुपये भेट करना चाहा। बहुत अनुनय और विनय की। किन्तु उन्होने यह धनराशि लेना स्वीकार नही किया क्योकि वे बडे विरक्त थे और सच्चे साधु थे।

पुन सप्तसरोवर आगमन

व्यासदेवजी बद्रीनाथ के पट बन्द होने तक तो उस गुफा मे साधना करते रहे, किन्तु पट बन्द होने पर शीत की मात्रा अत्यधिक हो जाती है अत वे वहा से नीचे उतर आए। किसी योगी की उपलब्धि न हो सकने के कारण वे बडे निराश थे। मार्ग मे श्रीनगर चट्टी पर दो दिन ठहरकर वहा से तीसरे दिन ऋषिकेश पहुच गए। यहा पर एक साधु की कुटिया खाली थी, इसीमे कुछ दिन निवास करने के पश्चात् सप्तसरोवर पहुच गए। यहा पर साधना करने के लिए एक कुटिया बना ली। यहा पर तीन-चार महात्मा और भी रहते थे। यहा से लगभग आधे मील की दूरी पर सन्त रामदास एक पैर खडे होकर तपस्या कर रहे थे। व्यासदेवजी इनसे सुपरिचित थे। पहिले जब ये सप्तसरोवर मे रहकर तपस्या कर रहे थे तब भी ये सन्त उसी प्रकार से एक पैर पर खडे होकर तपस्या कर रहे थे। व्यासदेवजी प्राय इनके सत्सग मे जाया करते थे। रामदासजी की एक शिष्या थी। इसका नाम रामप्यारी था। यह नित्यप्रति अपने नौकर के साथ इनके लिए भोजन लाया करती थी। नित्य कई-कई घण्टे तक यह देवी उनके पास बैठी रहती थी। इनका पारस्परिक ससर्ग बहुत बढ गया। व्यासदेवजी ने इसके अनौचित्य के बारे मे सन्त रामदासजी को बहुत समझाया। मर्यादाहीनता के दोषो को दिखाया। सन्तो के उच्च आदर्श का उन्हे बोध करवाया। उनकी अपनी कठोर तपस्या की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। उनकी भूल का अनेक ऐतिहासिक तथा पौराणिक उदाहरण देकर दिग्दर्शन कराया। पर उनके कान पर जू न रेंगी। उन पर किंचिन्मात्र भी इन उपदेशो का असर नही हुआ। परिणामस्वरूप कुछ दिनो बाद यह सुनने मे आया कि सन्त रामदास ने रामप्यारी से विवाह कर लिया है और वे दोनो पेशावर चले गए हैं। रामप्यारी पेशावर की एक धनाढ्य विधवा महिला थी। हरिद्वार मे भक्तिपूर्वक अपना शेष जीवन व्यतीत करने के लिए आई थी। व्यासदेवजी को जब रामदास के पतन का पता चला तो वे उससे मिलने गए। उनकी दशा देखकर उन्हे बहुत धमकाया और फटकारा। उनकी बडी भर्त्सना की "क्या आपकी १९ साल की तपस्या का यह परिणाम है ? इतनी कठोर तपस्या के पश्चात् भी आप हाड-मास के पुतले के प्रलोभन को रोक न सके। हीरे के भ्रम मे काचमणि पर ही मुग्ध होगए। आपके इस पतन ने आपके सब सेवको और भक्तो का सिर नीचा कर दिया है। आपने हमे कही मुह दिखाने के योग्य भी नही छोडा। आप दोनो को इस पवित्र भूमि को छोडकर कही अन्यत्र चले जाना चाहिए।" सन्त रामदास लज्जित होकर व्यासदेवजी की भर्त्सना को चुपचाप नीचा सिर करके सुनते रहे। व्यासदेवजी दु खी होकर वहा से लौट आए।

पुन उत्तरकाशी गमन—सन्त रामदासजी के पतन का व्यासदेवजी के हृदय पर बडा आघात पहुचा था और अब उनका मन हरिद्वार मे नही लगता था। इसलिए वे यहा से देहरादून, मसूरी, धनोल्टी, कानाताल और धरासू होते हुए उत्तरकाशी पहुच गए। यहा पर नेखला मे जाकर एक गुफा मे निवास करने लगे। व्यासदेवजी गायत्री-जाप के महत्त्व को खूब समझते थे। हमारी सभ्यता और सस्कृति का मूल आधार वेद है। गायत्री चारो वेदो का सार है। यह वेद माता है। योगीराज भगवान्

कृष्ण ने इसी मत्र के लिए कहा है "गायत्री छन्दसामहम्" । इसलिए व्यासदेवजी अपनी गुफा मे अव दस हजार गायत्री-जाप प्रतिदिन करते थे । वे चार मास तक वरावर जाप करते रहे । केवल खाद्य-सामग्री लेने के लिए उत्तरकाशी जाते थे । आटे मे नमक डालकर केवल दो मोटी रोटिया वनाकर एक समय दोपहर को खा लेते थे । प्राय मौन ही रहते थे । जव कभी आटा, नमक और घी लेने वाजार जाते थे तभी थोडा दुकानदार से वोलते थे । वडी उपराम-वृत्ति से रहते थे । सन्त रामदासजी के पतन से उनके चित्त को वडी ठेस पहुची थी और इसीलिए वडे उदासीन से रहा करते थे । इधर वडी खोज के पश्चात् भी कोई योग्य योगी न मिल सका था इसलिए भी वडे निराश हो गए थे ।

पुन हरिद्वार गमन—वेदव्यासजी दीवाली तक उत्तरकाशी मे रहे । उसके वाद टीहरी के रास्ते से ऋषिकेश आगए और शीतकाल मे वीरभद्र मे रहने का विचार किया । यहा से व्यासदेवजी स्वामी स्वरूपानन्द के दर्शन करने कनखल गए । किन्तु उनके दर्शन न हो सके क्योकि वे कही अन्यत्र गए हुए थे । जव वे हर-की-पौडी पर स्नान कर रहे थे तव वहा पर उन्हे स्वामी हितानन्दजी के दर्शन हुए । व्यासदेवजी ने इनके चरण स्पर्श किए । स्वामीजी ने उनकी वढी हुई जटाए देखकर आश्चर्य किया और पूछा, "किसी योगी का समागम लाभ हुआ या नही ?" व्यासदेवजी ने वडा निराशापूर्ण उत्तर दिया । स्वामीजी ने वहुत स्नेह और प्यार से व्यासदेवजी का आलिगन किया और मोहन आश्रम मे चलने के लिए आदेश दिया और कहा कि वहा पर वार्तालाप करके तुम्हे ठीक मार्ग वताऊगा । व्यासदेवजी स्वामी हितानन्द के साथ मोहन आश्रम चले गए । स्वामीजी उन्हे भोजन करवाकर गगाजी के किनारे ले गए और कहा, "महर्षि दयानन्द सरस्वती के मैंने ५-६ उपदेश सुने थे । उनका मेरे जीवन पर वडा प्रभाव पडा और मैंने सन्यास ले लिया । मेरे अध्ययन की कोई व्यवस्था नही हो सकी । मैंने शास्त्राध्ययन नही किया इसका मुझे वडा पश्चात्ताप है । शास्त्र ज्ञान के विना मनुष्य पशु के समान ही रहता है । जिसके पास ज्ञान-चक्षु नही है वह अधे के समान है । शास्त्राध्ययन के विना अध्यात्म-विज्ञान समझने की योग्यता भी तो प्राप्त नही होती । इस दीपक के विना अन्धकार के गर्त मे गिरने की प्रतिपल सम्भावना रहती है । जो महापुरुष विद्वान् है वही अपना तथा मानव जाति का उद्धार कर सकता है । तुम युवक हो । कई वर्ष तुम्हे जगलो और वनो मे भटकते हो गए है । अनेक प्रकार के कष्ट तुमने सहे हैं और कठिन तपस्या की है । तुम अव तक न तो पूर्ण योगी वन सके और न शास्त्राध्ययन ही किया । यह वात उचित नही है । यदि तुम विद्वत्ता-लाभ कर लोगे तो तुम्हे आत्म-विज्ञान प्राप्त करने मे विलम्व नही लगेगा । योगियो की तो हमारे देश मे कमी नही किन्तु उनकी परख वडी कठिन है । उनके विज्ञान को समझने के लिए किसी भाषा विशेष पर या सस्कृत पर तो अधिकार होना चाहिए । तुम्हे न अभी अच्छी हिन्दी आती है, न सस्कृत और न उर्दू, न अग्रेजी । इसलिए मेरा आदेश है कि तुम सस्कृताध्ययन करो, शास्त्र पढो और फिर योगी वनो ।" हितानन्दजी ने व्यासदेवजी की जटाए कटवा दी और विद्यालय मे आए एक देहली के विद्यार्थी रामचन्द्र द्वारा उनके पढने तथा निवासादि का प्रवन्ध देहली मे करवा दिया ।

देहली मे विद्याध्ययन

देहली मे निवासादि की व्यवस्था—प० रामचन्द्र ने व्यासदेवजी के पढने और निवास का प्रबन्ध ज्योति पाठशाला मे कर दिया तथा दो-चार समृद्ध व्यक्तियो से कहकर उनके खानपानादि की व्यवस्था भी कर दी। व्यासदेवजी ने पण्डितजी से पुन लघुकौमुदी तथा प्राज्ञ परीक्षा के ग्रथ पढने प्रारम्भ कर दिए। कुछ काल के पश्चात् वे पण्डितजी किसी कारण से पाठशाला छोडकर चले गए। कोई दूसरा प्रबन्ध कई मास तक नही हो सका। पाठशाला बन्द हो गई। अब व्यासदेवजी ने रामजस हाई स्कूल मे पढना प्रारम्भ कर दिया क्योकि वहा पर सस्कृत परीक्षाओ की तैयारी करवाई जाती थी। व्यासदेवजी रहते तो ज्योति पाठशाला मे ही थे किन्तु पढने स्कूल मे जाते थे। ये इन दिनो विशारद परीक्षा के ग्रथ पढा करते थे। पाठशाला मे नए अध्यापक की नियुक्ति हो गई। पाठशाला चिरकाल तक बन्द रही थी अत इसमे केवल दो-चार विद्यार्थी ही पढने आते थे। अत पण्डितजी छात्र-सख्या बढाना चाहते थे जिससे पाठशाला चलती रहे और उनको भली प्रकार से वृत्ति मिलती रहे। उन्होने व्यासदेवजी से इसी पाठशाला मे पढने का आग्रह किया किन्तु उनकी पढाई रामजस स्कूल मे ठीक-ठीक चल रही थी अत उन्होने पाठशाला मे आना स्वीकार नही किया। इस पर यह अध्यापक व्यासदेवजी को बहुत तग करने लगा। लडको से उन्हे तग करवाता और वे उनकी चीजे चुरा लेते। उन्होने पाठशाला के मत्री तथा नारायणदास ठेकेदार से इस कष्ट के निवारण के लिए प्रार्थना की। उन्होने व्यासदेवजी को अपने निवास का कही अन्यत्र प्रबन्ध कर लेने की सम्मति दी। उन्हे भय था कि कही यह अध्यापक भी छोडकर न चला जाए और पाठशाला पुन बन्द हो जाए। अब व्यासदेवजी ने अपने निवास की व्यवस्था चावडी बाजार मे एक पुस्तकालय मे कर ली और लगभग दो-तीन वर्ष इसमे रहे।

व्यासदेवजी द्वारा पीडितो की सहायता

देहली मे काग्रेस का बडा बोलबाला था। यही एकमात्र ऐसी सस्था थी जो विदेशी सत्ता द्वारा देश को शोषण से बचाने और इसकी पराधीनता की बेडियो को काटने का प्रयत्न कर रही थी। किन्तु व्यासदेवजी को राजनैतिक कार्यों मे रुचि नही थी। उनका ध्यान तो अहर्निश योग सीखने मे लगा रहता था। योग सीखने के लिए ही वे सस्कृताध्ययन करने दिल्ली आए थे। इन दिनो प्रथम महायुद्ध चल रहा था। उधर स्वराज्य प्राप्ति का आन्दोलन भी जोरो पर था। इन्ही दिनो देहली मे बडे जोर का प्लेग फैला। सैकडो आदमी प्रतिदिन इसका शिकार बनकर मृत्यु का ग्रास बन रहे थे। बाजार और गलियो मे शव इधर-उधर पडे रहते थे। स्कूल और कालेज बन्द हो गए थे। व्यासदेवजी का कोमल हृदय इस दयनीय दृश्य को देखकर द्रवित हो उठा और उन्होने सेवार्थ विद्यार्थियो की एक समिति बनाई और घरो, गलियो और बाजारो मे जो लावारिस शव पडे रहते थे उनके दाहकर्म की व्यवस्था की। एक बैलगाडी इसके लिए किराए पर खरीदी। इस कार्य के लिए चन्दा एकत्रित किया। दिन-रात घूम-घूमकर देहली की जनता की सेवा की। अपने शरीर और स्वास्थ्य का किचिन्मात्र भी ध्यान न कर अनेक प्रकार के कष्ट सहकर भी दूसरो को सुख पहुचाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे।

जिस पुस्तकालय मे व्यासदेवजी ने अपने रहने की व्यवस्था की थी उसमे और भी कई विद्यार्थी रहते थे। इसमे एक विद्यार्थियो की सभा होती थी जिसमे विद्यार्थी व्याख्यान देने का अभ्यास किया करते थे। व्यासदेवजी ने भी व्याख्यान देने का अभ्यास किया। यहा पर एक विद्यार्थी अष्टाध्यायी पढा करता था। इन्होने भी अष्टाध्यायी कठाग्र कर ली। कोई पढाने वाला वहा था नही इसलिए विना समझे ही उसे रट डाला। गणपाठ, धातुपाठ, उणादिकोप और निघण्टु आदि कई ग्रथ कठस्थ कर लिए।

व्यासदेवजी घरवार छोड चुके थे, अत माता-पिता का शासन उन पर नही रहा था। किसी वडे विद्यालय या ऋषिकुल मे भी वे नही पढे थे और न किसी आचार्य के शासन मे ही रहते थे। ऐसे विद्यार्थी प्राय उच्छृखल और स्वेच्छाचारी हो जाते है और यदि उनके धार्मिक सस्कार न हो तो वे प्राय कुमार्गगामी भी हो जाया करते है। व्यासदेवजी पर शासन किसी का भी नही था किन्तु उनकी भावनाए और प्रवृत्तिया वहुत ऊची थी। वे पूर्ण ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय थे। ज्ञान और वैराग्य की भावना थी। उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि मै पढ-लिखकर विद्वान् वनू और आत्म-विज्ञान प्राप्त करू। परीक्षा देने का कोई विचार नही था, किन्तु विद्वान् वनने का अवश्य था। व्यासदेवजी को तीन वर्ष दिल्ली मे विद्याध्ययन करते हो गए थे।

पारिवारिक सदस्यो का आगमन—इनके परिवार वालो को कही से व्यासदेवजी के वहा रहने का पता चल गया, और वे लेने के लिए आ गए। जब व्यासदेवजी ने जाने से इन्कार कर दिया तव उन्होने कहा कि तुम ६-७ मास मे एक वार हमे मिलने तो आ जाया करो और आवश्यकतानुसार हमसे अपने व्यय के लिए रुपये भी मगवा लिया करो। किन्तु व्यासदेवजी अपने परिवार से किसी प्रकार का सम्वन्ध नही रखना चाहते थे। पारिवारिक वधनो मे वे दूर ही रहना चाहते थे, क्योकि इनमे ममता के पाश उत्तरोत्तर अधिक कठोर होते जाते है और फिर इनको काटना असभव हो जाता है। इतना ही नही, अव वे यह भी समझने लगे थे कि ममता के कर्कश कोलाहल मे अध्यात्म की वीणा का मधुर सगीत श्रवण नही किया जा सकता। अत वे ऐसी कोई वात नही करना चाहते थे जिससे ममता के वन्धन मे वृद्धि हो।

काश्मीर-प्रस्थान

दिल्ली से भागकर कही अन्यत्र जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय इस वधन से बचने का उन्हें नही सूझा। एक अन्य ब्रह्मचारी, जिसका नाम राम था, उनके साथ चलने को तैयार होगया। दोनो ने मिलकर काश्मीर जाने का निश्चय किया। माघ का महीना था। मैदानो मे ही इस मास मे अत्यधिक शीत होता है। यह काश्मीर जाने का समय नही था किन्तु अवकी वार वे इतनी दूर चले जाना चाहते थे जहा उनके पिता तथा परिवार वाले कभी भी उन्हे ढूढ नही सके और उनकी उद्देश्य-प्राप्ति मे वाधक न हो सके, अत वे अपने काश्मीर जाने के निश्चय पर दृढ रहे। उन्हे किसी ने यह भी बताया था कि काश्मीर मे अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढाने वाले एक वडे विद्वान् पण्डित रहते है। उनके काश्मीर प्रस्थान करने के विचार मे यह भी एक वडा कारण था। इन्होने रेलगाडी के समय से वहुत पहिले ही दो टिकट मगवा लिए और थोडा-बहुत जो कुछ सामान वहा पर जरूरी उनके पास था वह भी स्टेशन पर भिजवा

दिया। बाजार से दूध खरीदने का बहाना करके एक लोटा लेकर निवास-स्थान से बाहर चले गए। जब दो घण्टे हो चुके और वे नही आए तब उनके पिताजी को बडी चिन्ता हुई। ज्यो-ज्यो समय बीतता जाता था त्यो-त्यो उनकी आतुरता और व्याकुलता बढती जाती थी। इसलिए अब उन्होने पूछताछ प्रारभ कर दी। एक विद्यार्थी ने उनके भाग जाने का समस्त वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। वे दो-चार और आदमियो को साथ लेकर स्टेशन पर पहुचे। सारी रेलगाडी के १०-१२ चक्कर लगाए किन्तु उन्हे व्यासदेवजी कही भी दिखाई न दिए। देते भी कैसे! यह समझकर कि पिताजी उनकी तलाश करने स्टेशन पर अवश्य आएगे, वे पहिले से ही रेलगाडी की एक बैंच के नीचे छिपकर लेट गए थे। यह भी तब किया जब गाडी अभी प्लेटफार्म पर नही आई थी। रेलगाडी के डिब्बो मे अभी बिजली नही जलाई गई थी, इसलिए उनके बैंच के नीचे छिपकर लेटने का किसी भी यात्री को पता नही लग सका था। व्यासदेवजी के पिताजी तथा उनके साथी निराश होकर वापस लौट गए। जब कई स्टेशन निकल चुके और गाडी को दिल्ली से चले ३-४ घण्टे होगए तब व्यासदेवजी और उनके मित्र राम बैंच के नीचे से निकलकर ऊपर बैठ गए। उन्हे देखकर यात्रियो ने बहुत बुरा-भला कहा, गालियो की बौछार की, किन्तु ब्रह्मचारीजी ने मौन धारण कर लिया। उनकी किसी भी बात का कोई उत्तर नही दिया।

प्रात काल सूर्योदय के पश्चात् रेलगाडी रावलपिडी पहुची। दोनो ब्रह्मचारी स्टेशन पर उतरे और अपना-अपना सामान कधो पर रखकर पैदल यात्रा प्रारभ कर दी। प्रथम दिन १५ मील की यात्रा की। इसके आगे कोहमरी पर्वत तक बर्फ पडी हुई थी। सारी सडक बर्फ से आच्छादित थी। दोनो नगे पैर थे। बडी कठिनाई से नगे पैर ही बर्फ पर चलना प्रारभ कर दिया। व्यासदेवजी को बर्फ पर चलने की कठिनाई का अनुभव था। जब इन्होने उत्तराखण्ड के चारो धामो की और स्वर्गारोहणादि स्थानो मे पर्यटन किया था तब इन्हे बडी कठिनाई का सामना करना पडा था, पर राम इस कठिनाई से बिल्कुल अनभिज्ञ था। उसे बर्फ पर चलने का बिल्कुल अनुभव नही था। चलते-चलते मार्ग मे उन्हें एक सिक्ख युवक मिल गया। इसका नाम शिवसिह था।

व्यासदेवजी के रुपयो की चोरी—व्यासदेवजी ने मार्ग मे एक स्थान पर दूध पिया था और इसके दाम शिवसिह के समक्ष दुकानदार को दिए थे। शेष रुपयो को इसके सामने ही इन्होने अपनी धोती के एक पल्ले मे बाधा था। रुपये देखकर शिवसिह के मन मे पाप आया और उसने रुपये चुराने की योजना बनाना प्रारभ कर दिया। रात हो जाने पर दोनो ब्रह्मचारी और शिवसिंह एक दुकान पर ठहरे और वही रात्रि व्यतीत की। दोनो के पास केवल दो-दो कम्बल थे। इनसे शीत का निवारण नही हो सकता था। दिनभर के थके हुए थे, पैरो में फफोले पड गए थे, अत रातभर उन्हे नीद नही आई। चुपचाप लेटे रहे। शिवसिंह ने सोचा कि ये सो गए है, अब रुपये चुराने का अच्छा अवसर है। वह चुपके से उठा और व्यासदेवजी के कम्बल के ऊपर धीरे-धीरे हाथ का स्पर्श करके रुपये ढूढने लगा। व्यासदेवजी तो जग ही रहे थे। झट चिल्लाकर बोले—कौन है? शिवसिह भयभीत होकर झट पीछे होगया। व्यासदेवजी समझ गए कि शिवसिंह रुपये चुराने के लिए चेष्टा कर रहा है। अब वह सचेत होकर लेट गए

और नीद का वहाना करके जोर-जोर से खुर्राटे भरने लने। शिवसिह ने सोचा कि इस स्वर्णावसर को हाथ से नही खोना चाहिए, अत वह धीरे से उठा और शनै -शनै व्यासदेवजी के बिस्तर के पास पहुचकर इधर-उधर रुपये टटोलने लगा। ज्योही उसने अपना हाथ कम्बल के भीतर डाला कि ब्रह्मचारीजी ने अपने दोनो हाथ कम्बल मे बाहर निकाल कर एक हाथ से शिवसिह की दाढी जोर मे पकड ली और दूसरे से उसके सिर के बाल पकडकर उसे खूब झकझोरा और धक्के-मुक्के लगाकर नीचे गिरा दिया। शिवसिह ब्रह्मचारीजी के वल को आक नही सका। वह समझ रहा था कि दुवला-पतला सा व्यक्ति है, वह उसका मुकावला नही कर सकेगा। उसको यह नही मालूम था कि यह युवक केवल ऊपर से देखने मे ही कृश और कमजोर मालूम होता है, वास्तव मे इसके अन्दर ब्रह्मचर्य का वल, तेज और वर्चस्व है। आस-पास के लोगो के बीचवचाव करने पर ब्रह्मचारीजी ने उस चोर को छोडा।

धर्मशाला मे निवास—जैसे-तैसे रात व्यतीत करके प्रात काल कुहाले के लिए प्रस्थान किया। मार्ग हिमाच्छादित था। रात को नीद न आने के कारण विश्राम नहीं किया था, अत थकान दूर नही हुई थी। पैर भी नगे थे। वडी कठिनाई का सामना था पर हिम्मत नही हारी और साहसपूर्वक उस मार्ग पर चल दिए। कभी-कभी पैर वर्फ मे धस जाते थे और वृक्षो पर से वर्फ के वडे-वडे ढेले उनके शरीर पर आकर गिर जाते थे। शीत के कारण पैर निश्चेष्ट हो रहे थे। शरीर मे मानो उष्णता नाम-मात्र को भी न रह गई थी। वडी कठिनाई से कुहाले का रास्ता तय किया। इसके वाद जैसे-तैसे वारहमूला पहुचे। यहा आते-आते पैरो मे घाव होगए थे और उनसे रुधिर स्रवित हो रहा था। वारहमूला से आगे का मार्ग सीधा था। अब किसी प्रकार की चढाई तथा उतराई नही थी। दोनो ब्रह्मचारी नौवे दिन रात्रि के आठ वजे श्रीनगर पहुचे और अमीराकदल सिक्ख धर्मशाला मे ठहरे। चौकीदार ने इनके लिए एक अच्छा-सा कमरा खोल दिया और उनकी सव व्यवस्था ठीक-ठाक कर दी।

चौकीदार की मूर्खता—ब्रह्मचारी व्यासदेवजी वडे रूपवान थे। शरीर वडा सुडौल था। मुख पर कान्ति थी। गौर वर्ण थे। शरीर मे ब्रह्मचर्य का तेज था। अनेक कठिनाइयो के सहने और अत्यन्त परिश्रमशील होने के कारण शरीर मे चर्वी वढने का अवकाश ही नही था, अत शरीर कृश था। इस सौन्दर्य की साकार प्रतिमा को देखकर भला कौन उनकी ओर आकृष्ट न होता होगा! दोनो ही युवक केश नही रखते थे। मूर्ख चौकीदार ने सोचा कि ये दोनो हिन्दु साधनिया हैं! इसलिए वह उन्हे माईजी कहकर पुकारने लगा। जव वह इन्हे इस प्रकार से सम्बोधन करता तो दोनो ब्रह्मचारी मन ही मन मे खूव हसते। ये दोनो उसे मूर्ख समझते थे, अत इस सम्वन्ध मे उससे कुछ न कहकर चुप रहते थे। इस धर्मशाला मे एक और नौकर भी था। चौकीदार ने इसे बुलाया और कहा कि ये दोनो महिलाए हिन्दू साधनिया प्रतीत होती है। इनमें से जो अधिक सुन्दर है उससे मैं विवाह कर लूगा और दूसरी से तू कर लेना। हम दोनो के घर वस जाएगे और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करेगे। इस भ्रम का कारण केवल इन ब्रह्मचारियो का सौन्दर्य ही नही था किन्तु उनके वस्त्र धारण करने का ढग भी था। पुरुष प्राय धोती की लाग लगाते है किन्तु ये ब्रह्मचारी लाग नही लगाते थे और शीत के कारण अपना मुह और सिर ढापे रहते थे। केवल

आखें खुली रहती थी। जब चौकीदार उन्हे माई कहकर सम्बोधन करने लगा तब वे विनोद मे आकर अपने को अधिकाधिक स्त्रीवत् दर्शाने लगे। इसलिए यह भ्रम और अधिक पक्का होता गया। इनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए दोनो नौकर इनकी खूब सेवा करते। उनके लिए सब सामान बाजार से लाकर देते। इसके दाम भी उनसे नही लेते थे। व्यासदेवजी दाम चुकाने के लिए बहुत प्रयत्न करते पर वे सदैव लेने से इन्कार कर देते थे। चार-पाच दिन तक पूरी खाते रहे, अत अब इनसे चित्त कुछ उपराम-सा होगया था। इसके अतिरिक्त यह भी विचार आया कि चौकीदार हमे ४-५ दिन से पूरिया खिला रहा है। हमसे दाम नही लेता है। हमे वह स्त्रिया समझ रहा है। सभव है इसके चित्त मे कोई विकार पैदा होगया हो। यदि इसको पता लग गया कि हम स्त्रिया नही, पुरुष है, तो इसका शेखचिल्ली के समान बना-बनाया खेल सब समाप्त हो जाएगा और यह अपनी करनी पर बडा पश्चात्ताप करेगा। अत कही अन्यत्र जाने का विचार किया।

तारासिह से परिचय—दोनो ब्रह्मचारी दस बजे के लगभग धर्मशाला से बाहिर निकले। बाजार मे सर्वत्र बर्फ जमी हुई थी। बडी कठिनाई से माई सेवा नामक बाजार मे गए और कोई ऐसा होटल या दुकान ढूढने लगे जहा पर निरामिष भोजन प्राप्त हो सके। उन्हे धर्मशाला के चौकीदार ने बताया था कि श्रीनगर मे सभी होटलो और रेस्टोरेंटो मे मास पकता है। इसलिए वे बडे चिन्तित भाव से बाजार मे घूम रहे थे। दो घण्टे बाजार मे घूमते होगए किन्तु कही भी निरामिष भोजन प्राप्त न हो सका। अत्यन्त क्षुधार्त होकर एक दुकान से दूसरी दुकान पर जाते थे किन्तु निराश होकर लौट आते थे। गत रात्रि को दुग्ध-पान नही किया था और थक भी बहुत गए थे क्योंकि इधर-उधर भ्रमण करते रहे थे और धर्मशाला मे आकर सो गए थे। चौकीदार ने दूध पीने के लिए बहुत अनुनय विनय की किन्तु इन्होने दूध पीने से सर्वथा इन्कार कर दिया। दिन के बारह बजे तक उनकी भोजन की समस्या सुलझ नही सकी। किसी दुकान, ढाबे, होटल अथवा रेस्टोरेंट मे भोजन करना पसन्द नही किया क्योंकि प्रत्येक दुकान और होटल आदि मे मास बनाया जाता था। बाजार मे चिन्तित भाव से दोनो मित्र खडे थे। इतने मे पास ही एक सज्जन आ पहुचे और इन दोनो नवयुवको को चिन्तित और उदासीन देखकर उत्सुकतापूर्वक उनकी चिन्ता और उदासीनता का कारण पूछने पर मालूम हुआ कि ये दोनो भूख से व्याकुल थे और श्रीनगर की दुकानो पर भोजन करना नही चाहते थे क्योंकि उनमे निरामिष भोजन प्राप्य नही था। उस सज्जन का नाम तारासिह था। यह आर्यसमाजी था अत इसने विश्वास दिलाया कि इसके घर मे मास नही बनता है और दोनो ब्रह्मचारियो से निवेदन किया कि वे उसके साथ उसके घर पर चले और भोजन करे। यह भी कहा कि उसके पास केवल उसकी माता रहती है इसलिए मकान मे स्थान खाली है, उसीमे वे दोनो निवास भी कर सकते हैं। दोनो ब्रह्मचारी बडे प्रसन्न हुए और तारासिह के साथ हो लिए। इनकी माता ने दोनो को बडे प्रेम से भोजन करवाया। इनके पास ये दोनो कई दिनो तक रहे। तारासिह ने बडे आग्रह से इनके लिए जूते और गर्म वस्त्र बनवा दिए तथा ओढने बिछाने के लिए भी पर्याप्त वस्त्र खरीद कर दे दिए। एक दिन तारासिह इन्हे आर्यसमाज मे अपने साथ ले गए और प्राय सभी सदस्यो से इनका परिचय करवा

दिया। इस आर्यसमाज मे आर्य कुमार सभा प्रति रविवार को सायकाल लगा करती थी। यहा कुछ विद्यार्थियो ने व्यासदेवजी से इस सभा मे भाषण देने की प्रार्थना की। इनके पाण्डित्यपूर्ण भाषण की सब ने भूरि-भूरि प्रशसा की और सब लोग इनका सम्मान करने लगे। कई विद्यार्थी इनके मित्र बन गए जिनमे केशवदेव, योगेन्द्र, महेन्द्र, ताराचन्द, जानकीनाथ, माधोराम आदि प्रमुख थे। इनमे से केशवदेव एक धनाढ्य परिवार का लडका था। उसने तारासिंह से कहा कि इन ब्रह्मचारियो के दूध का प्रबध मैं करूगा और वह नित्यप्रति दो सेर दूध इन दोनो के लिए भेजने लगा। एक दिन व्यासदेवजी ने सस्कृत के विद्वान् पण्डितो से मिलने की इच्छा तारासिंह से प्रकट की। वह इन्हे पडित सुखानन्द और नित्यानन्द के पास ले गए। व्यासदेवजी को सस्कृत में भाषण करने और लिखने का खूब अभ्यास था। इन्होने इन पण्डितो मे सस्कृत मे ही सम्भाषण किया। सुखानन्दजी सस्कृत मे इनके वार्तालाप को सुनकर गद्गद् हो गए। उनसे पता चला कि उस समय काश्मीर मे कोई अष्टाध्यायी और महाभाष्य को पढाने के लिए योग्य विद्वान् नही है और यह सलाह दी कि बनारस मे हरनारायण तिवारी नाम के सभी प्रकार के व्याकरण ग्रथो के परम विद्वान् पण्डित रहते हैं, आप उन्ही के पास जाकर इन दोनो ग्रथो का अध्ययन करो।

शालामार बाग मे एक अग्रेज से मुठभेड—ब्रह्मचारी व्यासदेवजी बडे निर्भीक व्यक्ति थे। सदा न्यायपथ पर निर्भय होकर डटे रहते थे और अन्याय के प्रतिशोध के लिए सदैव कटिबद्ध रहते थे। जिन दिनो ये काश्मीर मे थे उन दिनो अग्रेज सरकार का भारतवर्ष मे, विशेषकर पजाब मे, बडे जोरो का दमन चक्र चल रहा था। इसके द्वारा वह स्वतत्रता के आन्दोलन का समूलोन्मूलन करना चाहती थी। पजाब में सैनिक कानून लगा दिया गया था। जितना ही दमन किया जाता था उतना ही विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड रूप धारण करती जाती थी। इसकी ज्वालाए यत्र-तत्र-सर्वत्र फैलती जा रही थी। अमृतसर मे जलियावाले बाग के हत्याकाण्ड का दु खद स्मरण आज भी दिल को दहला देता है। राष्ट्र के बडे नेताओ को कारावास मे बन्द कर दिया गया और सत्याग्रह आन्दोलन को बुरी तरह से कुचला गया। अग्रेजी सरकार का सर्वत्र आतक छा गया था। सभी रियासतो मे काग्रेस का दमन किया गया। प्रमुख नेताओ को कैद किया गया। काग्रेस के सम्बन्ध मे रेजिडेटो ने रियासतो मे बडे कडे कानून जारी किए थे। काश्मीर इससे अछूता कैसे रह सकता था! यहा पर भी महाराजा प्रतापसिंह ने किसी भी काग्रेस के नेता को सिर नही उठाने दिया। किन्तु प्रजा मे भीतर ही भीतर विद्रोह की अग्नि सुलगती रही।

एक दिन व्यासदेवजी अपने मित्र राम के साथ शालामार बाग देखने के लिए गए। जब वे एक सडक पर घूम रहे थे तब एक अग्रेज और उसकी पत्नी भी उसी सडक पर सामने से आ रहे थे। उन्हे देखकर इन दोनो ने सडक को छोड दिया और एक तर्फ को होकर खडे होगए, लेकिन उन दिनो के अग्रेज अपने को भगवान् के बेटे नही समझते थे बल्कि अपने को भगवान् का बाप समझते थे। उस अग्रेज युवक को इन ब्रह्मचारियो को देखते ही क्रोध आ गया और जान-बूझकर इन दोनो को नीचे बाग की एक क्यारी मे धक्का दे दिया। भला व्यासदेवजी इस अपमान और अन्याय को किस प्रकार सहन कर सकते थे! उन्होने तुरन्त उस अग्रेज को धर दबाया और

उसे नीचे गिराकर घूसो और लातो से खूब पीटा। अग्रेज महिला ने अपने पति के बचाव के लिए उनसे बडी अनुनय और विनय की, तव कही उन्होने इसे छोडा। अग्रेज़ दम्पति ने श्रीनगर जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दी कि महाविद्यालय (प्रताप कालेज) के दो विद्यार्थियो ने उनका शालामार वाग मे घोर अपमान किया और मारा है। सारे नगर मे अग्नि के समान यह समाचार फैल गया और महाविद्यालय मे तो विशेप रूप से आतक छा गया। विद्यार्थियो तथा प्राध्यापको से नित्यप्रति इस दुर्घटना के सम्वन्ध मे पूछताछ होती थी। अग्रेज़ युवक नित्य महाविद्यालय के विद्यार्थियो मे से अपने अपमानकर्ता को पहिचानने के लिए जाता किन्तु पहिचानता तो तव जव वह वहां होता। वह तो कालेज का विद्यार्थी ही नही था तो भला वहा मिलता ही कैसे! व्यासदेवजी तो वहा के प्रताप महाविद्यालय के विद्यार्थी ही नही थे। अमृतसर मे जलियावाले वाग मे गोली चले कुछ दिन ही हुए थे।

महाराजा प्रतापसिंह से भेंट, कि महाराजा तो सर्व प्रकार से सुखी होगे—व्यासदेवजी की काश्मीर-नरेश से भेट करने की चिरकाल से इच्छा थी। केशवदेव ने एक काश्मीरी पडित के द्वारा महाराजा से निवेदन करवाकर मिलने का समय निश्चित करवा दिया। नरेश ने प्रात दस वजे पूजागृह मे ही मिलने के लिए बुला लिया। प्रणाम करके सम्मानपूर्वक पास विठाया। विविध विषयो पर वार्तालाप हुआ। इसी वीच मे व्यासदेवजी के राजपरिवार तथा प्रजा की प्रसन्नता और सुख के विपय मे पूछने पर महाराजा ने निवेदन किया, "मुझे इस समय दो प्रकार के दु ख पीडित कर रहे है। मैं अव तक पितृ-ऋण से मुक्त नही हो सका हू। दूसरा दु ख काश्मीर के भावी शासन का है। जव तक ये दो महान् चिन्ताए मुझे सता रही है मैं अपने को कैसे सुखी मान सकता हू? राजकुमार हरिसिंह मेरे भाई के लडके है। यदि वे सिंहासन पर वैठ भी जाते है तो उनमे शासन की योग्यता नही है। और उनसे मैं पितृ-ऋण से उऋण भी नही हो सकता। ये दो चिन्ताए मुझे घुण की तरह से भीतर ही भीतर खा रही है।" राजा की ये सव वाते सुनकर व्यासदेवजी को वडा आश्चर्य हुआ। यदि यह महती सुख-सम्पत्ति, धन, वैभव, गगनचुम्वी प्रासाद, असख्य धनराशि, सैकडो दास-दासिया, महान् प्रभुत्व और विस्तृत राज्य पाकर भी सुख नही है तो फिर ससार के सर्वसाधारण व्यक्तियो को तो सुखी कहा ही कैसे जा सकता है! इन्होने सुख और दु ख के सम्वन्ध में महाराजा को वडा सारगर्भित उपदेश देकर समझाया कि —

> न चेन्द्रस्य सुख किंचिद् न सुख चक्रवर्तिन।
> सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तवासिनः॥

सुख और दु ख पदार्थ नही है। इस सज्ञा मे वे आते ही नही। ये दोनो तो केवल अन्त करण की वृत्तिया है। वृत्ति और चित्त उसके साथ तादात्म्य भाव ही सुख और दु ख का कारण है। कभी दु ख सुख-रूप मे प्रतीत होने लगता है और जिसे हम सुख समझने लगते है वह भी परिणाम भाव को प्राप्त होकर दु ख मे ही परिणत हो जाता है। ये दोनो ही एक-दूसरे के सापेक्ष है। इन दोनो का अभाव चित्तवृत्ति के निरोध मे ही हो सकता है, अन्यथा नही। जिस प्रकार समुद्र की सतह से वुलवुले और लहरें उठती है इसी प्रकार से चित्त-समुद्र से ये वृत्तिया उठती है। जैसे सूर्य से किरणे निकलती है उसी प्रकार चित्तरूपी सूर्य से वृत्तिरूपी किरणें निकलती रहती है। जिस

प्रकार अस्ताचल को जाते समय सूर्य अपनी किरणो को समेट लेता है उसी प्रकार आप भी सुख और दु ख दोनो से ऊपर उठने के लिए अपनी किरणो रूपी चित्त-वृत्तियो को समेटने की कोशिश करे। भय उपस्थित होने पर कछुआ अपने हाथो और पैरो को समेटकर निर्भय हो जाता है, उसी प्रकार आप भी चित्त मे सैकडो प्रकार की जो वृत्तिया उठा करती हैं इनका सवरण कर लीजिए। इन्हे उठने तक का अवकाश ही कभी न दे तभी आप सुख और दु ख रूपी महान् द्वन्द्व से मुक्त हो सकते है। चित्त ही वास्तव मे सुख और दु ख का उपादान कारण है। ये इसी मे उत्पन्न होते है। अन्त करण से पृथक् हो जाने पर अथवा इसके नाश हो जाने पर सुख और दु ख दोनो का अभाव हो जाता है।

काश्मीर-नरेश सुख और दु ख के विषय मे विद्वत्ता और विवेकपूर्ण वार्तालाप सुनकर वडे प्रसन्न हुए और उनका इस विषय मे सारा भ्रम नष्ट होगया। महाराजा ने व्यासदेवजी को वडी अमूल्य भेट देनी चाही किन्तु उन्होने स्वीकार नही की और निवेदन किया कि मैं तो सदैव उपराम वृत्ति से रहता हू। विरक्त ब्रह्मचारी के लिए इस भेट की कोई आवश्यकता नही। मैं तो भारत की प्राचीन पावन परम्पराओ मे पूर्ण विश्वास करता हू। हमारे देश ने तपस्या और त्याग और वैराग्य को सदैव ऊचा स्थान दिया है और 'कौपीनवन्त खलु भाग्यवन्त' के उच्च आदर्श का सदैव पालन किया है।

'हिमालय का योगी' ग्रन्थ मे
'वैराग्य का उदय' नामक
प्रथम अध्याय समाप्त ॥

द्वितीय अध्याय

प्रारम्भिक योग साधना

परम विद्वान् योगी की खोज—व्यासदेवजी अपने बाल्यकाल से ही एकान्तप्रिय तथा विचारशील थे। उन्हे जनसम्पर्क कभी भी रुचिकर नही था। स्वामी रामानन्दजी महाराज के उपदेशो मे उनकी तिरोहित वैराग्यभावना एकदम प्रस्फुटित हो गई और प्रतिदिन के सत्सग ने उसे अधिकाधिक दृढ बना दिया। इनकी आयु इस समय केवल १२ या १३ साल की ही थी। इस छोटी-सी आयु मे ही उन्हे तीव्र वैराग्य हो गया था और १६ साल की आयु मे उन्होने गृह-परित्याग कर दिया था। उनके जीवन की अनेक घटनाए इस बात को सिद्ध करती हैं कि ये अपने प्राक्तन जीवन मे कोई बडे सिद्ध योगी रहे होगे। ऐसे ही महान् योगियो के विषय मे गीता मे कहा गया है "शुचिना श्रीमता गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते"। सम्पन्न गृह मे जन्म लेने के अतिरिक्त अन्य अनेक बाते ऐसी है जो इसकी पूर्णतया पुष्टि करती हैं। आपके अन्दर योग द्वारा ब्रह्म-प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा बाल्यकाल से ही थी। योग सीखने के लिए योग्य गुरु की खोज के लिए उन्होने अनेक प्रकार की कठिनाइया उठाई। बीहड वनो मे भ्रमण किया। हिमाच्छादित उत्तुग पर्वतमालाओ पर नगे पैर केवल मात्र एक कम्बल कधे पर डालकर इधर-उधर खोज की, किन्तु उन्हे इसमे सफलता प्राप्त नही हुई। अब वे किसी छोटे-मोटे साधारण योगी से योग सीखना नही चाहते थे। इसके लिए वे किसी परम विद्वान् योगी की शरण मे ही जाना चाहते थे। साधारण योगियो से तो वे इससे पहले ही बहुत कुछ सीख चुके थे। हरिद्वार मे मोहन आश्रम मे निवास किया और गगा के किनारे घण्टो ही जाप और योगाभ्यास करते थे। कजली वन मे ग्यारह घण्टे तक प्रतिदिन आसन, प्राणायाम तथा योग साधना की। उत्तराखण्ड मे पहाडो की गुफाओ मे वर्षो तक निवास किया और योग साधना मे अहर्निश सलग्न रहे। पर वे इतने मात्र से सन्तुष्ट नही थे क्योकि वे एक महान् योगी बनना चाहते थे। इसके लिए एक मार्गदर्शक की बडी आवश्यकता थी और उसी की खोज मे वे व्यग्न थे। उस दिन की बडे चाव से प्रतीक्षा कर रहे थे जब उन्हे योग मे निपुण गुरु की प्राप्ति हो। वह दिन दूर नही था जिस दिन उन्हे एक योग्य योगी की प्राप्ति हुई।

अवधूत परमानन्दजी से भेंट—व्यासदेवजी जब काश्मीर मे रहते थे तब प्राय हजूरी बाग मे जाया करते थे। वहा पर गुलाब के पौधो के पास बैठकर अष्टाध्यायी आदि का पाठ किया करते थे। एक दिन उन्होने एक परमहस महात्मा को कौपीन बाधे और एक कम्बल कधे पर डाले आते देखा। व्यासदेवजी तथा उनके मित्र राम ने उठकर उन्हे आदरपूर्वक प्रणाम किया। स्वामीजी ने दोनो ब्रह्मचारियो को आशीर्वाद

दिया और उनके हाथ मे अष्टाध्यायी देखकर पूछा, "आप इसे क्यो पढ रहे हो ? इसे पढकर क्या करना चाहते हो ?" व्यासदेवजी ने उत्तर दिया कि हम इसे पढकर वेद-शास्त्रो के अध्ययन द्वारा आत्म-विज्ञान प्राप्त करेंगे। यह उत्तर सुनकर अवधूत परमानन्दजी ने उन्हे समझाया कि केवल शास्त्राध्ययन से ही ब्रह्मसाक्षात्कार प्राप्त नही किया जा सकता। ध्रुव, प्रह्लाद और नचिकेतादि को तो बाल्यकाल मे ही आत्मविज्ञान प्राप्त हो गया था। उन्होने किसी वेद या शास्त्र का अध्ययन नही किया था। श्रुति भी इसी का प्रतिपादन करती है, "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।" आत्मज्ञान लाभ के साधन तो कुछ और ही है। वे हम तुम्हे बताएगे। वे दोनो ब्रह्मचारियो को हरि पर्वत की ओर ले गए। मार्ग मे व्यास-देवजी के तर्क-वितर्क तथा ऊहापोह से बडे प्रसन्न हुए और आशीर्वाद देते हुए उन्हे आलिंगन किया। ये दोनो ब्रह्मचारियो को गान्धरबल ले आए और नहर के किनारे चुगी की चौकी के पास चनार के पेड के नीचे ठहर गए। उस चौकी के नगदासी ने भोजन बनवाया और स्वय तथा इन ब्रह्मचारियो को भी खिलाया। व्यासदेवजी तथा राम दोनो के लिए बिछाने और ओढने के लिए कम्बलो की व्यवस्था की। दोनो ने चनार के पेड के नीचे शयन किया। अवधूतजी सौ फीट की दूरी पर अपना आसन जमाकर बैठ गए। जाते समय ब्रह्मचारियो को उनके पास प्रात आठ बजे तक न आने का आदेश दे गए। वे रात्रि को आठ बजे साधना मे बैठे और प्रात ६ बजे तक एक ही आसन मे बैठे रहे। रात्रि मे केवल दो घण्टे अर्थात् छ से आठ बजे तक ही उन्होने शयन किया। दोनो विद्यार्थी रात्रि मे शनै-शनै उठकर उन्हे देखते रहे। उनके हृदय मे यह जानने की बडी उत्सुकता थी कि स्वामीजी महाराज रात्रि मे क्या साधना करते है और कितने समय तक करते है। अवधूतजी की इस साधना का ब्रह्मचारियो पर बडा प्रभाव पडा। इससे इनके हृदय मे उनके प्रति बडी श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न हो गई। प्रात लगभग ६ बजे सबने गाधरबल से सोनमर्ग के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे सिंधु नदी के किनारे एक गुफा मे ठहरे। भोजनो-परान्त व्यासदेवजी ने भावी कार्यक्रम के विषय मे स्वामीजी से निवेदन किया। स्वामीजी ने आदेश दिया कि शीघ्र ही तुम दोनो के लिए प्रतिदिन का कार्यक्रम निश्चित कर दिया जाएगा और उसी के अनुसार तुम कार्य प्रारम्भ कर देना।

योग शिक्षा ग्रहण—अवधूतजी के माता-पिता का बाल्यकाल मे ही स्वर्गवास हो गया था। तभी से तीव्र वैराग्य की भावना जागृत हो गई थी, इसलिए गृह-त्याग कर दिया था। कई वर्ष तक संस्कृत तथा वेद-शास्त्रो का अध्ययन किया और तत्पश्चात् एक योगी की शरण मे चले गए और उनसे योग सीखा। उन्ही से दीक्षा भी प्राप्त की। इनका शरीर पजाबी था और ये उदासीन सम्प्रदाय के थे। इनका रहन-सहन, बोल-चाल तथा सारा व्यवहार जीवन्मुक्तो के समान था और वे सदैव अवधूत-वृत्ति से रहते थे। बहुत बडे योगी थे। भूत, वर्तमान और भविष्य की सब बातें जानते थे। इन ब्रह्मचारियो को देखते ही वे समझ गए कि ये कई वर्षो से किसी योग्य योगी की खोज करते फिर रहे है किन्तु अभी तक इन्हे कोई उचित मार्गदर्शक उपलब्ध नही हो सका है। इनकी योगनिष्ठा, भक्ति, श्रद्धा और योग्यता को देखकर प्रसन्न हुए। भगवत्प्रेरणा से इन्होने इन दोनो को योग सिखाने का निश्चय कर

लिया। व्यासदेवजी ने स्वामीजी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और निवेदन किया कि मेरी योग सीखने की चिरकाल से अभिलाषा थी। आप जैसे महानात्मा परम विद्वान् योगी को पाकर आज यह उत्कट अभिलाषा पूर्ण हुई। आज हमारे किसी प्राक्तन पुण्य का उदय हुआ है। आपकी इस अहेतुकी कृपा के लिए हम सदैव आपके ऋणी रहेंगे। आपके समान कृपालु गुरु ससार मे बहुत कम है। आप हमारा मार्ग-दर्शन कीजिए। आज हम आपको गुरु मानकर आपके चरणो मे आत्मसमर्पण करके आपसे दीक्षा लेने की प्रार्थना करते हैं। अवधूतजी ने कहा, "तुम लोग मेरे पास रहकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक जो कुछ सीख सकोगे वही मेरी दीक्षा होगी। इस सम्बन्ध मे जिस-जिस बात की आवश्यकता होगी वह सब तुम्हें समझा दी जाएगी।" दोनो ब्रह्मचारी धूनी जलाकर गुफा मे रहने लगे और यही पर एक मास तक इन्होने योगसाधना की। इनके लिए एक मास की दिनचर्या अवधूतजी ने बना दी। यह दिनचर्या प्रति सप्ताह निम्न प्रकार से बदलती रही, यह स्थान कगण के पास सिन्ध नाले के किनारे गुफा मे था।

प्रथम सप्ताह—६ घण्टे शयन। ६ घण्टे निरन्तर एक आसन पर बैठकर गायत्री जाप। इसमे केवल दो बार टागे बदल लेने की आज्ञा थी। २ घण्टे तक योग दर्शन का अध्ययन। २ घण्टे पठित पाठ को कण्ठस्थ करना। २ घण्टे हठयोग के अनुसार आसन, प्राणायाम तथा क्रियाए। २ घण्टे शौच, स्नान तथा वस्त्र-प्रक्षालनादि। २ घण्टे सायकाल को पास मे ही इधर-उधर भ्रमण। २ घण्टे भोजन विश्रामादि। भोजन मे चावल, नमक, मक्खन।

दूसरा सप्ताह—इसमे भ्रमण का समय निकाल दिया गया। शेष कार्यक्रम प्रथम सप्ताह के समान ही रहा। इस सप्ताह मे तीन व्याहृतियो का जाप आठ घण्टे तक करने का आदेश दिया गया। यह जाप एक ही आसन से बैठकर करने की आज्ञा दी। थकान होने पर केवल एक बार ही टागें बदली जा सकती थी।

तीसरा सप्ताह—इस सप्ताह का कार्यक्रम द्वितीय सप्ताहवत् ही रहा, किन्तु अब १० घण्टे लगातार ओकार जाप करने की आज्ञा हुई। अब टागें बदलना बिल्कुल निषेध कर दिया गया। इस काल मे जाप कई बार बन्द हो जाता था और कई घण्टो तक एक प्रकार की शून्यता सी छा जाती थी। कई-कई घण्टो तक व्यासदेवजी को अपनी भी सुध न रहती थी।

चौथा सप्ताह—अब अवधूतजी ने १२ घण्टे तक शून्य-समाधि लगाना सिखा दिया। इसमे सकल्प-विकल्पो का नितान्त अभाव रहता था। रात के १२ बजे से लेकर दिन के १२ बजे तक एक ही आसन से समाधि लगाई जाती थी। इस सप्ताह मे केवल चार घण्टे तक सोने की आज्ञा थी। शेष दिनचर्या पूर्ववत् ही थी।

इस १२ घण्टे की समाधि मे व्यासदेवजी को न तो अपना ही कुछ भान रहता था और न जगत् के अस्तित्व का। इस एक मास मे अवधूतजी ने दोनो को ४० प्रकार के प्राणायाम, १८४ प्रकार के आसन, षटकर्म (नेति, धोती आदि) सिखाए और व्याख्या सहित सारा योगदर्शन भी कण्ठस्थ करवा दिया। १२ घण्टे की समाधि इस थोडे से काल में लगाना सिखा देना उन्ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्मनिष्ठ तेजोमूर्ति महायोगीजी की कृपा का ही परिणाम था।

इस एक मास मे अवधूतजी की कई विभूतिया देखने का अवसर लाभ हुआ। एक दिन दोनो ब्रह्मचारियो की वन-भ्रमण की इच्छा हुई और योगीराज से उस विषय मे निवेदन किया। वे उन्हे अपने साथ लेकर पास ही एक पर्वत पर भ्रमणार्थ गए। वे अपनी साधारण गति से चल रहे थे। पर व्यासदेवजी तथा राम को इनके साथ दौडना पड रहा था। ये थोडी ही दूर गए होगे कि इनको एक रीछ आता दिखाई दिया। वह एक झाडी से बाहिर निकला और ब्रह्मचारियो पर झपटा। भयभीत होकर इन दोनो ने अपने हाथो मे डण्डे उठा लिए थे। अवधूतजी ने तुरन्त इनके डन्डे छिनवा दिए और रीछ को हाथ का सकेत करते हुए कहा "जाओ बेटा, जाओ"। वह उनको छोडकर कूदता फादता दूर चला गया। यह उनकी प्रथम यम, अहिंसा की सिद्धि का परिणाम था। इसे ही "अहिंसाप्रतिष्ठाया तत्सनिधौ वैरत्याग" कहा गया है।

ये योगीजी वडे दयालु तथा वात्सल्यपूर्ण थे। एक बार युवक योगियो की मिष्ठान्न खाने की इच्छा हुई। पर उन्होने सकोच और भयवश गुरुदेव से उस सम्बन्ध मे निवेदन नही किया। किन्तु उनसे कोई बात छिपाई न जा सकती थी। वे प्रत्येक व्यक्ति के हृदय की बात को अनायास ही जान लिया करते थे। उन्होने इनसे पूछा, "क्यो, मिठाई खाना चाहते हो? कौनसी मिठाई खाओगे? किस स्थान की मिठाई खाने के लिए इस समय तुम्हारी रुचि है?" व्यासदेवजी जिन दिनो दिल्ली मे सस्कृताध्ययन करते थे उन दिनो चादनी चौक मे घण्टाघर वाले की मिठाई कई बार खाने का अवसर उन्हे मिला था, इसलिए झट निवेदन किया कि चादनी चौक मे घण्टेवाले की मिठाई उत्तम होती है। वे मुस्कराए और चुपचाप बैठ गए। कुछ देर वाद उन्होने दोनो को नदी पर जाकर आचमन करने की आज्ञा दी। गुफा से निकलते ही उन्हे एक भालू दिखाई दिया अत वे वडे भयभीत हुए और बडी शीघ्रता से आचमन करके झटपट भागकर वापस आ गए। योगीराज के हाथ पर मिठाई का एक बडा थाल देखकर वे वडे आश्चर्यान्वित हुए। उन्होने उसमे से बहुत-सी मिठाई उन्हे खाने के लिए दी। वह इतनी अधिक मात्रा मे थी कि इसे खाते-खाते अघा गए। यह मिठाई ठीक घण्टेवाले की मिठाई जैसी ही थी। इससे वे वडे चकित हुए। जब तक उन्होने मिठाई खाई तब तक यह थाल योगीराज के हाथ मे रहा। खा लेने के बाद उन्हे नदी मे जाकर हाथ-मुह प्रक्षालन की आज्ञा दी गई। ये दोनो कुछ ठिठक गए क्योकि जब वे आचमन करने नदी पर गए थे तब उन्होने एक वडा रीछ देखा था। अवधूतजी ने कहा, "जाओ, भय की कोई बात नही है।" दोनो गुफा से निकलकर चले किन्तु उनके मन मे रीछ का भय बना रहा। जब वे गए तो वहा उन्हे कोई रीछ दिखाई नही दिया और जब वे लौटकर आए तो उन्होने गुफा मे मिठाई के थाल को न पाकर वडा आश्चर्य किया। ये दोनो ही बाते उनके लिए वडे आश्चर्य मे डुबा देने वाली थी। इनके सत्सग से युवक योगियो ने अपूर्व सुख-लाभ किया। गुरुदेव जिस पण्डित की दुकान से चावल, मक्खन, नमक लाते थे दोनो ब्रह्मचारियो ने उनके साथ जाने का आग्रह किया।

एक दिन की बात है, दोनो ब्रह्मचारियो को साथ लेकर गये। योगीजी ने वहा नदी स्नान किया। इन दोनो ने भी स्नान किया और आकर किनारे पर बैठ गए। किन्तु स्वामीजी महाराज गहरे जल मे उतर गए और एक बडे जोर की डुबकी लगाई। जब वे एक घण्टे तक बाहिर नही निकले तब इन दोनो को बडी चिन्ता हुई। प्रतिपल

उनके डूब जाने की आशका बढने लगी। एक काश्मीरी मुसलमान गोताखोर को बुलाकर उन्हे जल से निकलवाया गया। जब वे निकले तो वे बद्धपद्मासन अवस्था मे थे। थोडी देर के पश्चात् उन्होने एक लम्बा श्वास लिया और आखे खोली। उनकी आखे अगारो के समान लाल थी। उन्हे देखकर सभी लोग बडे भयभीत हुए। वे दोनो ब्रह्मचारियो से नाराज हुए और कहा, "तुमने हमे क्यो निकाला? तुम तो जानते हो कि हम स्वय ही जलसमाधि लेने के पश्चात् निकल आया करते है। इसके दण्ड-स्वरूप आज तुम्हे भोजन नही मिलेगा।" उस दिन इन तीनो ने भोजन नही किया। उन्होने चार दिन तक ब्रह्मचारियो को निराहार रखा और साथ ही स्वय भी निराहार रहे। तीनो ही चार दिन तक ध्यान-समाधि रत रहे। पाचवें दिन अपने समक्ष बिठाकर रात्रि के ११ बजे से लेकर २ बजे तक उपदेशामृत की वर्षा की। इसके पश्चात् शयन करने की आज्ञा हुई। दोनो ब्रह्मचारियो को नीद नही आई और एक घटे बाद ही साधना का समय समझकर उठे, नदी मे हाथ-मुह धोने के लिए चले गए। जब लौटे तो क्या देखते है कि उनके गुरुदेव अपने आसन पर विराजमान नही है। ये दोनो अपनी गुफा मे चले गए। अपने-अपने आसन पर बैठकर अभ्यास प्रारभ किया किन्तु ध्यानावस्थित न हो सके। मन ही नही लगा। जब प्रात होने पर भी वे कही दिखाई न दिए तो उन्हे महान् दु ख हुआ। तीन महीने तक अहर्निश उनकी खोज करते रहे पर उनका कही भी पता न चला।

बडे पुण्य कर्मो से उन्हे यह अवसर मिला था। यह उन्हे सदैव स्मरण रहा। उनकी जितेन्द्रियता, तपश्चर्या, योगनिष्ठा, द्वन्द्वरहितता और रागद्वेषहीनता सदैव युवक योगियो के लिए स्मरणीय रही। इनके महान् उपकार, इनकी दया और वात्सल्य भाव को याद करके दोनो के नेत्रो से अनवरत अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। वे उनको सिन्ध नाले से निकलवाने की अपनी गलती का अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगे। सोनमर्ग तक उन्हे ढूटा किन्तु उनका कही भी पता न चला। सिंधु नदी के किनारे दोनो निराश होकर घूमते-फिरते मई गाव मे पहुचे। वहा पर नदी के किनारे कई दिनो तक रहे। कोई खाद्य-सामग्री उपलब्ध न हो सकी अत शहतूत खाकर निर्वाह किया। महीनो तक नदी का किनारा ही उनका निवास स्थान था और शहतूत भोजन। इसके बाद मई गाव मे चनार के पेड के नीचे नहर के किनारे भगवती के मन्दिर मे रात्रि को सोने लग गए थे किन्तु अधेरे मे ही उठकर नदी के किनारे चले जाया करते थे।

भगवती देवी की विशेष कृपा

महेश्वरनाथ नामक ब्राह्मण नित्यप्रति भगवती को आधा सेर खीर का भोग लगाया करता था। एक दिन व्यासदेवजी और राम ने सोचा कि देवता तो केवल भावना, भाव और भक्ति से प्रसन्न होते है। भक्त लोग मूर्ति के आगे भोजन रखकर स्वय ही देवी का प्रसाद मानकर उसे खा लिया करते है। देवी तथा देवता तो किसी प्रकार का भोग खाते नही। इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए। वे दोनो आजकल शहतूतो पर ही निर्वाह कर रहे थे अत देवी के प्रसाद रूप मे उस खीर को दोनो ने बाट कर खाना प्रारभ कर दिया। खीर खाने के बाद मिट्टी की तश्तरी को चनार के पेड के नीचे जड के पास रख दिया करते। रात को वही पर शयन करके प्रात ४ बजे ही उठकर नदी पर साधना के लिए चले जाते थे। दूसरे दिन प्रात काल जब

महेश्वरनाथ मन्दिर मे आया और खीर की तश्तरी खाली देखी तो अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि भगवती ने उसके भोग को ग्रहण किया है। वह इसी प्रकार खीर का भोग देवी को पहिले की अपेक्षा अधिक लगाता रहा और उस भोग को दोनो ब्रह्मचारी नित्यप्रति खाते रहे। कई दिनो तक यही क्रम चलता रहा। एक दिन अचानक महेश्वरनाथ इन दोनो से नदी के किनारे मिला। इसने दोनो से निवेदन किया कि वे उसके मकान पर भोजन किया करे। जब व्यासदेवजी ने इसे स्वीकार नही किया तो उसने भोजन को नदी तट पर ही पहुचाने के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मचारीजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। अब महेश्वरनाथ नित्यप्रति दोनो के लिए भोजन बनवाकर स्वय ही देने के लिए आने लगा। एक दिन उसने व्यासदेवजी से कहा कि आप और भगवती दोनो मेरे अन्न को ग्रहण करके मुझपर बडी कृपा करते हैं, इसके लिए मैं आप दोनो का बडा कृतज्ञ हू। इस पर वह बडे जोर का कहकहाटा लगाकर हमे और खीर के भोग का सारा वृत्तान्त सविस्तार कह सुनाया। एक दिन उन्होने पूछा कि तुम किस उद्देश्य से भगवती की और हमारी सेवा इतनी श्रद्धा और भक्ति से करते हो। इस प्रश्न को सुनकर महेश्वर-नाथ ने अपना सारा हृदय खोलकर उनके सामने रख दिया। उसके कोई सन्तान नही थी। हिन्दू शास्त्रो के अनुसार अपुत्र की मरने के बाद गति नहीं होती। इसीलिए वह बडा चिन्तित रहता था। पुत्र-प्राप्ति की उसे बडी उत्कट अभिलाषा थी। व्यास-देवजी ने कहा, "तुम जैसे अनन्य भक्त की मनोकामना अवश्य पूरी होनी चाहिए। जाओ, तुम्हारे एक ही पुत्र नही किन्तु इतने पुत्र होगे कि तुम उनका पालन-पोषण करते थक जाओगे। परन्तु एक बात है, आजसे हम तुम्हारा भोजन ग्रहण नही करेंगे क्योकि तुम सकाम-भाव से सेवा करते थे। तुम्हारी सेवा के फलस्वरूप तुम्हे पुत्रप्राप्ति का वरदान मिल गया है अत अब तुम किसी प्रकार का कष्ट मत उठाओ और अपना कार्य करो।" कुछ वर्षो के पश्चात् व्यासदेवजी घूमते-फिरते पुन मई गाव मे आ निकले। महेश्वरनाथ का पता लगाया और उसके घर गए। वहा पर बालको से भरा-पुरा परिवार देखकर बडे प्रसन्न हुए। क्यो न होते, युवक योगी का आशीर्वाद फलीभूत हुआ था। होता भी क्यो नही! वे गत कई वर्षो से यम और नियमो का बडी कठोरता से पालन कर रहे थे। असत्य-भाषण उन्होने कभी किया ही नही। ऐसे ही सत्यनिष्ठ योगियो को सत्यसिद्धि प्राप्त होती है। उनकी वाणी अमोघ हो जाती है। उनकी वाणी से शाप, वरदान तथा आशीर्वाद जो निकलते है वे सब सत्य होते है। इन्ही योगियो के लिए कहा गया है कि "सत्यप्रतिष्ठया क्रियाफलाश्रयत्वम्।"

मुफ्ती बाग मे निवास

सयमजयी तथा तप पूत व्यासदेवजी की धवल यश पताका सर्वत्र फहराने लगी। इन्होने यम और नियमो का निष्ठापूर्वक अनुष्ठान किया था। उनकी वाणी अर्थवती होगई थी। वे जो अपनी वाणी से उच्चारण करते थे वह सत्य का रूप धारण कर लेता था। उनके वरदान सदैव सफल होते थे। महेश्वरनाथ को पुत्रवान् होने का वरदान उन्होने दिया था। इस वरदान के फलस्वरूप उसके कितने ही पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते है किन्तु स्थानाभाव के कारण उनका उल्लेख यहा नही किया जा सकता। इनके वरदानो की सफलता की बातें काश्मीर मे सर्वत्र वायु के समान फैल गई। लोग सदा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के

लिए इच्छुक रहते थे। उनके प्रति लोगो की बडी श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होगई थी। यद्यपि यम और नियम मे वे प्रतिष्ठित थे और इसके परिणामस्वरूप उन्हें अनेक सिद्धिया भी प्राप्त थी, किन्तु वे इनका प्रदर्शन कभी नही करते थे। यदि उनसे आशीर्वाद प्राप्त करके किसी को कार्य-सिद्धि प्राप्त हो जाती और वह हार्दिक भावो से उनकी कृपा के लिए कृतज्ञता प्रकट करता तो वे सदैव विनम्रभाव से यही कहा करते थे कि यह सब प्रभुकृपा का प्रसाद है, हमारे मे ऐसी कोई विशेष शक्ति नही जिसके परिणामस्वरूप आपको इष्ट प्राप्ति हुई हो। परमात्मा की कृपा के बिना कोई भी कार्य सिद्ध नही हो सकता।

मई गाव से क्षीरभवानी को व्यासदेवजी ने प्रस्थान किया। यह स्थान गाधरबल के समीप ही है। यहा भगवती का मन्दिर है, इसके दर्शन किये। यहा से वे गाधरबल आए और फिर वहा से हार्वन झील चले गए। यहा पर पूर्णसिंह नाम का एक सिक्ख चौकीदार रहता था। इसने आदरपूर्वक व्यासदेवजी को प्रणाम किया और सेवा के लिए आज्ञा प्रदान करने की प्रार्थना की। उन्होने कहा कि यह स्थान हमे बहुत पसन्द आया है। यदि कोई एकान्त-सा स्थान हमे यहा मिल जाए तो हम यहा पर कुछ दिन तक निवास करना चाहते हैं। उसने उन्हे अपने भाई रगीलसिंह के पास जाने के लिए कहा। यह पिम्मू के बाग मे चौकीदारी करता था। यह भी बडा एकान्त स्थान था। वे रगीलसिंह के पास गए और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वह उन दोनो ब्रह्मचारियो को अपनी बाग मे ले गया। यह बाग हार्वन झील से लगभग आधा मील दूर था। यह बाग पण्डित मुकुन्दजू की जागीर मे था। वे यहा पर सपत्नीक रहते थे। दोनो ने वानप्रस्थाश्रम धारण किया हुआ था। रगीलसिंह दोनो ब्रह्मचारियो को लेकर उनके पास गया और निवेदन किया कि ये दोनो कुछ दिन तक यहा निवास करके साधना और अभ्यास करना चाहते हैं। यह सुनकर पण्डित मुकुन्दजू को अपार हर्ष हुआ और तुरन्त अपने कुठार के ऊपर का एक बडा कमरा निवास के लिए उन्हें दे दिया। इन पण्डितजी के दो लडके थे। दोनो ही शहर मे रहते थे। एक पटवारी था तथा दूसरा हरिपर्वत पर मदिर मे नौकर था। मुकुन्दजू के बहुत आग्रह करने पर व्यासदेवजी ने उनके पास भोजन करना स्वीकार कर लिया। दोनो आनन्दपूर्वक वहा रहने लगे। मुकुन्दजू ने इनके रहने के कमरे मे दरी कालीन आदि बिछवा दिए और ओढने-बिछाने के लिए भी पर्याप्त वस्त्र दे दिए। दोनो ब्रह्मचारी प्रतिदिन हार्वन झील पर भ्रमणार्थ जाया करते थे। यहा से एक मील की दूरी पर महाराजा काश्मीर की एक बडी शिकारगाह थी। इसमे विभिन्न प्रकार के वन्य पशु रहते थे, जिनमे बाघ, रीछ, सूअर, बारहसीगे आदि प्रमुख थे। यह शिकारगाह सैकडो मीलो तक विस्तृत थी। हार्वन झील से लेकर लगभग पहलगाव तक फैली हुई थी। इस शिकारगाह मे तारसर, मारसर, चन्द्रसर तथा विवेकसर आदि अनेक झीलें थी। तारसर झील हार्वन झील से ३० मील दूर थी, तो भी इतनी दूर से उसका पानी इसमे आता था। सारे श्रीनगर मे पीने का पानी यही से जाता था। इस हार्वन झील का जब निर्माण किया गया था तब इसके ऊपर से ८-१० गाव उठाए गए थे। ब्रह्मचारीजी जब इस झील पर भ्रमण के लिए जाते तब लोगो से प्राय अपने गुरुदेव के विषय मे पूछा करते थे। उनके पुन दर्शन करने की इन्हें

उत्कट अभिलाषा थी। इस सम्बन्ध मे इन्होने पण्डित मुकुन्दजू तथा रगीलसिह से भी बातचीत की थी।

तारासिंह से पुनः समागम

प्रति रविवार को प्राय श्रीनगर निवासी हार्वन झील पर सैर करने के लिए आया करते थे। दैवयोग से एक दिन तारासिंह भी अपने साथियो सहित वहा आ निकले। ये व्यासदेवजी तथा राम की खोज मे थे। तारासिह ने इनकी बडी सहायता की थी। अपने पास इन्हें रखा था। इनके रहने की व्यवस्था की थी। ये दोनो इन्हे सूचित किए बिना ही अवधूत परमानन्दजी के साथ सोनमर्ग की ओर चले गए थे। तभी से तारासिंह इनकी खोज कर रहे थे। वे प्राय लोगो से इनके विषय मे पूछा करते थे। अबकी बार जब वह हार्वन झील पर आए तब यहा के चौकीदार पूर्णसिंह से इन दोनो ब्रह्मचारियो के बारे मे पूछताछ करने पर विदित हुआ कि वे इधर ही रहते है। व्यासदेवजी तथा राम दोनो हार्वन झील पर एक एकान्त स्थान पर समाधि लगाने आया करते थे। इस रविवार को भी वे आए और एकान्त मे एक पेड के नीचे समाधिस्थ होकर बैठ गए। पूर्णसिंह ने यह सब समाचार तारासिह को सुना दिया और एक मुसलमान लडके को जहा वे दोनो बैठे थे वहा जाकर बुला लाने के लिए कहा। उसने आकर सूचित किया कि वे दोनो आखे बन्द करके बैठे हैं। मेरे पुकारने पर भी उन्होने आखे नही खोली और न मेरी बात का कुछ उत्तर ही दिया। उस मुसलमान लडके को लेकर तारासिंह समाधिस्थ ब्रह्मचारियो के पास चले गए और जब तक उनका समाधि से उत्थान नही हुआ तब तक वही बैठे रहे। सूर्यास्त होने पर दोनो युवक-योगाभ्यासियो की समाधि टूटी और वे उठकर झील पर भ्रमण करने के लिए चल दिए। तारासिंह और उनके साथी सामने से आकर उन्हे मिले। सबने दोनो को प्रणाम किया। तारासिह ने विनम्र भाव से निवेदन किया कि आप तो यहा समाधिस्थ होकर बैठे है और हम लोग कई मास से आपकी खोज कर रहे हैं। आप बिना ही सूचना दिए चले गए, इसलिए हमे बडी परेशानी रही। आजतक आपका कुछ भी पता न लग सका। आज अचानक ही आपको यहा समाधिस्थ देखकर चित्त को बडा सन्तोष हुआ। अब तो आप योग-पारगत होगए हो। कई-कई घण्टे की समाधि का आपको अभ्यास होगया है। ऐसी छोटी आयु मे ही आप एक बडे योगी बन गए हो। आपकी चिराभिलाषा पूर्ण हुई, इसकी हमे बडी प्रसन्नता है। तारासिंह ने उन्हे अपने साथ ले जाने के लिए निवेदन किया, किन्तु उन्होने स्वीकार नही किया और रात हो जाने के कारण उन्हे श्रीनगर जाने का आदेश दिया और कहा कि हमारे भागने का कारण और इस समय तक रहने के स्थानो के विषय मे फिर कभी बताया जाएगा। तारासिंह ने कहा कि वह आगामी रविवार को तागा लेकर आएगा, तब आप लोग हमारे साथ चलने के लिए तैयार रहें। पूर्व निश्चयानुसार तारासिह तागा लेकर दोनो ब्रह्मचारियो को लिवा लाने के लिए आया। वे दोनो उसके साथ चल दिए। व्यासदेवजी ने दो-तीन घण्टे बैठकर साढे चार मास का अपना सारा विवरण तारासिंह को सुनाया। वह सब घटनाए सुनकर बडा अचम्भित हुआ। उससे व्यासदेवजी को मालूम हुआ कि उसने अवधूत परमानन्दजी को दूध-गगा के किनारे भ्रमण करते हुए देखा था किन्तु उसके बाद कभी उनके दर्शन-लाभ नही हुए। वे तीन-चार दिन तक

तारासिंह के पास ठहरे किन्तु अब उन्हें अपने गुरुदेव की तीव्र स्मृति हो आई और उन्होंने इन्हें ढूंढने का पुनः निश्चय किया। तारासिंह के पास आने के बाद वे एक दिन पुनः हार्वन झील पर गए। वहां उन्हें एक महाराजगंज का पंजाबी दुकानदार मिला। उससे बहुत देर तक वार्तालाप करने के बाद व्यासदेवजी के उससे अपने गुरुदेव अवधूतजी के विषय में पूछने पर विदित हुआ कि आषाढ़ मास में उसने इन्हें दूधगंगा के किनारे रहते हुए देखा था। वे प्रायः मौन रहते थे। जन-सम्पर्क उन्हें रुचिकर न था। सदा एकान्त में रहते थे। बड़े मिताहारी थे। रुपया पैसा कुछ अपने पास नहीं रखते थे। एक कौपीन तथा एक फटी-सी लोई ही उनकी सम्पत्ति थी। इसी मास में मैंने उन्हें किराया देकर बस में बिठाया था। उन्होंने कहा था कि वे अब गंगोत्री जाएंगे और उधर ही कहीं निवास करेंगे। गुरुदेव के विषय में यह सब समाचार सुनकर व्यासदेवजी का मन पुनः उद्विग्न-सा होगया। एक बार फिर अपने गुरु की खोज करने का निचश्य किया। तारासिंह को अपने विचारों से सूचित करके जम्बू पैदल ही जाने का संकल्प कर लिया।

अमृतसर में निवास

व्यासदेवजी और राम श्रीनगर से चलकर पामपुर, काजीकुण्ड, बनिहाल, रामबन, बटोतादि स्थानों पर होते हुए ऊधमपुर पहुंचे। यहां पर श्री रघुनाथजी के मंदिर में १५ दिन तक निवास किया। इसके बाद वैष्णवदेवी की यात्रा की। कटरे में कुछ दिन तक ठहरे। इसके पश्चात् जम्बू पधारे और यहां पर भी एक मंदिर में ही निवास किया। लगभग एक सप्ताह तक यहां ठहरे। दिवाली के पश्चात् रेलगाड़ी द्वारा अमृतसर पहुंचे। यहां पर लोगड़ आर्यसमाज में ठहरे। यह सार्वजनिक स्थान था अतः अध्ययन और साधन में बड़ी बाधा उपस्थित होती थी। किसी विद्वान् पण्डित से अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य पढ़ने की बड़ी अभिलाषा थी। काश्मीर जाने का भी प्रधान कारण यही था किन्तु वहां पर किसी वैयाकरण विद्वान् के न मिलने के कारणवश उनकी व्याकरण पढ़ने की इच्छा पूरी नहीं हो सकी थी। इन्होंने लाला मैयादास से अपने निवासादि का प्रबंध करने तथा किसी योग्य संस्कृत के विद्वान् से परिचय करवा देने के लिए निवेदन किया। लालाजी दूसरे दिन प्रातः ६ बजे के लगभग इन दोनों ब्रह्मचारियों को लेकर स्वांक मण्डी में पण्डित हरिश्चन्द्रजी के पास गए। बाजार नरसिंहदास में मैयादास की लाला शिवसहायमल महेश्वरी से भेंट हुई। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि लालाजी दो ब्रह्मचारियों के निवास और अध्ययन की व्यवस्था करने जा रहे हैं तब उन्होंने कहा कि इन्हें हमारी बैठक में, जो अहलूवाले कटरे में है, ठहरा दो। ये दोनों भोजन भी मेरे मकान पर ही कर लिया करेंगे।

लाला शिवसहायमल से संपर्क—व्यासदेवजी के निवास तथा भोजन की व्यवस्था लाला शिवसहाय के मकान पर करके लाला मैयादास पण्डित हरिश्चन्द्र से मिलाने के लिए ले गए। उनसे वार्तालाप करने से विदित हुआ कि इधर तो कोई अष्टाध्यायी और महाभाष्य का विद्वान् नहीं है और न कोई विद्यार्थी इन ग्रंथों को पढ़ता ही है। मैं तो आजकल दर्शनों का अध्ययन कर रहा हूं। मेरे भाई पण्डित कन्हैयालालजी व्याकरण पढ़ाते हैं। किन्तु वे इन दो ग्रंथों को नहीं पढ़ाते। वे सिद्धान्तकौमुदी पढ़ाते हैं। व्यासदेवजी को इससे बड़ी निराशा हुई। शिवसहायजी के पास

लौट आए। इन्होने इनके निवास का प्रबंध अपनी बैठक मे और भोजन की व्यवस्था अपने घर पर कर दी।

अहलूवाले कटरे मे इन लालाजी ने एक दुकान पर एक बैठक किराये पर ले रखी थी। यहा पर वे केवल दो घण्टे के लगभग प्रतिदिन बैठते थे। इन्होंने अपना सब कारोबार छोड दिया था, केवल हुडियो द्वारा रुपया व्याज पर दिया करते थे। इनके कोई लडका नही था। केवल दो लडकिया थीं जिनका विवाह होगया था और अपने श्वसुर-गृह मे रहती थी। ये अपने घर मे अकेले ही रहते थे। एक नौकर था जो इनके लिए भोजन बना दिया करता था। ये अच्छे पढे-लिखे थे। अच्छे धनाढ्य थे। अच्छे सभ्रान्त व्यक्ति थे। इनके दादा रायबहादुर नरसिंहदास महाराजा रणजीतसिह के कोषाध्यक्ष थे। ब्रह्मचारियो को अभी लाला शिवसहायमल के पास रहते केवल ३-४ दिन ही हुए थे। वे सोचने लगे कि इन ब्रह्मचारियो के विषय मे बिना ही कुछ जाने-बूझे इन्हे पास रखना उचित नही था क्योंकि 'अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कर्हिचित्'। अत इन विद्यार्थियो की परीक्षा लेने के लिए उन्होंने अपनी पेटी मे से पचास रुपये निकालकर बाहर रख दिए और उसे खुली छोडकर स्वय अन्यत्र चले गए। जब ब्रह्मचारी बैठक मे लालाजी के घर पर भोजन करने चले तो उन्होंने पेटी को खुला पाया। उन्होने पेटी को बन्द करके चाबी अपने पास रख ली और घर जाकर चाबी लालाजी को दे दी और बाहर जो पचास रुपये पडे थे वे भी उन्हें दे दिए। लालाजी ने चाबी ले ली और बैठक मे जाकर पेटी खोलकर देखा तो रुपये पूरे मिले। तब से उन्हे इन दोनो ब्रह्मचारियो पर पूर्ण विश्वास होगया। उन पर सन्देह करने के कारण उन्होने बडा पश्चात्ताप किया। अब ये इन दोनो से बडा प्यार करने लगे और उनके लिए वस्त्रादि सब बनवा दिए। यज्ञ के लिए घृत तथा सामग्री की भी व्यवस्था कर दी और इनसे कहा कि जब कभी आपको किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझे नि सकोच भाव से कहा करो, मै तुरन्त उसकी व्यवस्था कर दिया करूगा। कम्पनी बाग तथा नहर पर कभी-कभी भ्रमण के लिए जाया करते थे। यहा पर इनकी सन्त बुद्धिप्रकाश से भेट हुई। इस प्रकार मे लाला शिवसहायमल के पास पाच मास तक व्यासदेवजी तथा राम ने निवास किया।

श्री अवधूत परमानन्दजी की पुन. खोज

व्यासदेवजी ने लाला शिवसहायमल से एक दिन धन्यवाद देते हुए कहा कि हमने पाच मास आपके पास बडे सुख से व्यतीत किए हैं। हमारे गुरु अवधूत परमानन्दजी हमे छोडकर कही अन्यत्र चले गये है अत अब हम उन्हे ढूढने के लिए गगोत्तरी की ओर जाना चाहते हैं। सर्दी समाप्त होगई है। हिमालय मे जाने के लिए उपयुक्त मौसम है। लालाजी व्यासदेवजी की तपस्या, तितिक्षा, भगवद्भक्ति, स्वाभाविक सरलता, योगनिष्ठा, अध्ययनरुचि, सत्यपरायणतादि गुणो पर बडे अनुरक्त थे। जब उन्हे व्यासदेवजी ने अमृतसर से अन्यत्र जाने की अभिलाषा व्यक्त की तो वे बडे उद्विग्न से हो गए। उन्हे इनका अमृतसर से कही और जाना रुचिकर नही लगा। वे इनसे बडा स्नेह करते थे। उनके दृढ निश्चय को देखकर उन्हे जाने की अनुमति तो दे दी किन्तु उनसे कहा कि आप दोनो के भोजन, वस्त्र, पुस्तक, यात्रादि का सारा व्यय मैं करूगा। अभी आप छ मास का व्यय अपने साथ ले जाइए। इसके पश्चात् आप जहा भी हो

मुझे एक पत्र लिख दीजिएगा, मै तुरन्त रुपया भेज दिया करूगा। मेरे पास प्रभु की कृपा से पर्याप्त रुपया है। व्यय बहुत थोडा है। मेरे पुत्र तो कोई है नही। दो लडकिया है जिनका विवाह बडे धनाढ्य परिवारो मे किया है। वे अपने-अपने घरो मे बडी सुखी है। इसलिए आपका व्यय वहन करने मे मुझे किसी प्रकार का कष्ट नही होगा। लाला शिवसहाय के बहुत आग्रह करने पर व्यासदेवजी ने अपना तथा राम का व्यय उनसे लेना स्वीकार कर लिया।

अमृतसर से प्रस्थान—दोनो ब्रह्मचारी अमृतसर से रेलगाडी मे सवार होकर हरिद्वार पहुचे। वहा जाकर एक धर्मशाला मे निवास किया। राम ने हिमालय पर स्वामी परमानन्दजी अवधूत की खोज करने के लिए जाने की अनिच्छा प्रकट की और व्यासदेवजी से कहा कि वह हरिद्वार से नीचे के प्रदेशो मे अवधूतजी की खोज करेगा। व्यासजी ने अपने हिमालय-गमन का निश्चय दृढ रखा। इस प्रकार दोनो मित्र हरिद्वार पर आकर अलग होगए। व्यासजी उत्तराखण्ड की ओर चले गए और राम ने पजाब की ओर प्रस्थान किया। स्वामी परमानन्दजी के विषय मे दोनो मे यह निर्णय हुआ कि उन दोनो मे से जिस किसी को भी वे मिले वह उन्हे अपने साथ लेकर अमृतसर मे लाला शिवसहायजी के मकान पर ले जाए। यदि यह सभव न हो तो इसकी सूचना उनके पास अवश्य पहुचा दे।

व्यासदेवजी ने राम से विदा लेकर हिमालय की ओर प्रस्थान किया। लगभग सारे ही हिमालय का पर्यटन ये प्रथम ही अपने प्रारभिक साधना काल मे कर चुके थे। जमनोत्री, गगोत्री, केदारनाथ तथा बद्रीनाथ चारो धामो की यात्रा भी आपने कर ली थी। उधर के सभी रास्तो से सुपरिचित थे। उन दिनो इन धामो की यात्रा की महान् कठिनाइयो को वे जानते थे किन्तु परमानन्दजी अवधूत योग-शिक्षा मे उनके प्रथम गुरु थे। उनके प्रति उनकी बडी निष्ठा, भक्ति तथा श्रद्धा थी। वे उन्हे एक दिन अचानक ही अकेले छोडकर सूचित किए बिना ही कही चले गए। इसका उन्हे महान् दुख था। बडे चिन्तित रहते थे। उनको ढूढने के लिए कई योजनाए बनाई और उन्हे कार्यरूप मे परिणत भी किया किन्तु अभी तक उन्हे कोई सफलता प्राप्त नही हुई। इसीलिए हिमालय के दुर्गम-मार्गो, गगन-चुम्बी चोटियो तथा हिमाच्छादित पथो और खानपानादि की कठिनाइयो की किंचिन्मात्र भी परवाह न करके गुरु की खोज के लिए चल पडे। पाच महीने तक जगलो, बीहड वनो, पर्वतो, गिरिकदराओ आदि सभी स्थानो पर उन्हे ढूढा किन्तु कही पर भी उनका पता न लग सका। अत हताश हो कर लौट आए। यह शायद आश्विन का महीना था। हरिद्वार आकर आप कनखल गए। यहा आकर स्वामी चेतनदेव की कुटिया मे ठहरे। यहा पर एक युवक सन्त से समागम हुआ। प्रतिदिन के मेलजोल से दोनो को ही एक दूसरे के प्रति आकर्षण हो गया। जब व्यासदेवजी ने सहारनपुर जिले मे गगा की नहर के किनारे जाने का अपना निश्चय प्रकट किया तो वह भी इनके साथ जाने के लिए समुद्यत होगया।

मधुकरी का प्रथम अनुभव—व्यासदेवजी अपना भोजन सदैव स्वय ही बनाया करते थे। व्यय के लिए रुपए भी उनके पास रहते थे। अब लाला शिवसहाय ने स्वय ही आग्रह करके उनके सारे व्यय का उत्तरदायित्व ले लिया था और छ मास का पूरा व्यय उन्हे दे दिया था। इसलिए भिक्षा-याचना का कभी उन्हे अवसर ही नही

मिला। रुपया पास होते हुए भिक्षा मागना, अपना किसी प्रकार का भार समाज पर डालना, किसी की कृपा के भिखारी बनना वे महान् पाप समझते थे। एक दिन चलते-चलते एक गाव मे जा निकले। जब भोजन का समय हुआ तो उस गाव मे आटे की दुकान ढूढने लगे किन्तु वहा पर कोई परचूनी की दुकान ही नही थी। दो-तीन दिन तक इसी प्रकार भूखे रहकर व्यतीत किए। इनका साथी सन्त भूख से व्याकुल हो उठा और गाव मे भिक्षा याचना के लिए चल दिया। उसको जाता देखकर व्यासदेवजी भी उसके साथ हो लिए। दोनो ने मिलकर गाव की एक गली मे प्रवेश किया। एक गृहस्थी के मकान पर गए। व्यासजी तो बाहिर द्वार पर खडे रहे और दूसरे सन्त ने भीतर जाकर आगन के द्वार के समीप वाले किनारे पर खडे होकर भिक्षा-याचना की। उस समय लगभग पैंतीस साल की एक महिला घर मे भोजन बना रही थी। उसका स्वभाव बडा क्रोधी था। बात-बात पर क्रुद्ध हो जाया करती थी, चिढ जाती थी और मरने-मारने को तैयार हो जाती थी। सन्त की आवाज सुनते ही वह क्रोध से लाल होगई और जलती हुई लकडी चूल्हे मे से निकालकर अपने हाथ मे लेकर तुरन्त रसोई से बाहिर निकलकर आगन मे आ गई और भिक्षुक सन्त को मारने के लिए समुद्यत होगई। घर से बाहिर निकलकर दोनो पर गालियो की बौछार की। इस दु खद दृश्य को देखकर सब लोग गली मे एकत्रित होगए। सभी बडे दु खित हुए। उस अशिष्ट, धर्मविहीन और क्रोधी महिला के निन्दनीय कार्य के लिए उनसे क्षमा-याचना की। इतने मे ही वहा एक सज्जन कधे पर हल रखे हुए आ निकला। जब उसे सारा वृत्तान्त विदित हुआ तो उसे बडा पश्चात्ताप हुआ और बडे विनम्रभाव से उसने व्यासदेवजी को अपने घर भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया। उन्होने उसके घर पर जाना स्वीकार नही किया। इस पर उसने उन्हे निवेदन किया कि वे सामने वाले कूए पर बैठे। व्यासदेवजी तथा उनका साथी सन्त दोनो गाव से बाहिर कूए पर जा बैठे। थोडी देर बाद उस किसान की धर्मपत्नी भोजन लेकर आई और बडे आदर और शिष्टता से उसने दोनो को भोजन करवाया। भिक्षा-याचना करने पर एक देवी तो सन्तो को जलती लकडी से मारने के लिए समुद्यत हुई तथा दूसरी ने उन्हे श्रद्धापूर्वक भोजन करवाया। यह ससार विभिन्नताओ का सगम है। इसमे कोई स्वार्थी है तो कोई परमार्थी, कोई विद्वान् है तो कोई मूर्ख, कोई इन्द्रियलोलुप है तो कोई तितिक्षु, कोई विलासी है तो कोई तपस्वी और कोई भगवद्भक्त है तो कोई नास्तिकादि। अब दूसरे सन्त ने इनका साथ छोड दिया और वह वापस कनखल लौट गया। व्यासदेवजी ने इस घटना के पश्चात् यह निश्चय किया कि वे कभी भी भिक्षाचर्या नही करेगे। जीवन मे प्रथम बार ही इस गाव मे भिक्षा मागी थी और वह भी तीन-चार दिन भूखे रहने के बाद। यदि गाव में परचून की कोई दुकान होती तो भिक्षा मागने का मौका ही न आता, आटा मोल लेकर वे स्वय भोजन बना लेते। उस महिला द्वारा अपमानित होने के कटु अनुभव से उन्होने शिक्षा ली और भविष्य मे कभी भिक्षा-याचना नही की।

वेहट मे नहर के किनारे साधना—अपने साथी सन्त के कनखल लौट जाने के पश्चात् वे वेहट (सहारनपुर) चले गए और वहा पर एक नहर के किनारे साधना करने लगे। वहा पर एक परचूनी की दुकान से आटा दालादि लेने के लिए गए। दुकानदार का नाम कबूल था। जब इसने देखा कि ग्राहक एक ब्रह्मचारी है तब उसने कहा कि

आप निश्चिन्त भाव से अपनी साधना करे। भोजन बनाने के झझट मे न पडें। मैं आपके भोजन की पूरी व्यवस्था अपने घर पर कर देता हू। आप स्वय वहा आकर भोजन कर जाया करे अथवा नहर के किनारे जहा पर आप साधना करते हैं वहा पहुचा दिया जाया करेगा। कबूल नित्यप्रति यथासमय व्यासदेवजी के लिए नहर पर भोजन भेजने लगा। दुकानदार की इस प्रार्थना को बडी कठिनाई से इन्होने स्वीकार किया था।

जिस नहर पर ब्रह्मचारीजी साधना कर रहे थे वह गगा की नहर से निकाली गई थी, अत छोटी-सी ही थी। इसका जल नीला था। व्यासदेवजी ने इसके नीले जल पर आखे खोलकर त्राटक करना प्रारम्भ कर दिया। कई-कई घण्टे तक निर्निमेप नेत्रो से त्राटक किया करते थे। इसमे इनकी दृष्टि इतनी तेज होगई थी कि दिन के समय भी ये तारे देख सकते थे। यहा पर दो मास तक रह चुकने के पश्चात् ये रुडकी चले गए। शास्त्राध्ययन के प्रति इनकी बडी रुचि थी क्योकि ये एक विद्वत्तापूर्ण तथा सर्वशास्त्रपारगत योगी बनना चाहते थे, एक साधारण योगी नही। इसलिए अमृतसर जाकर विद्याध्ययन करने का पुन सकल्प किया।

पुनः अमृतसर मे निवास

व्यासदेवजी के प्रारभिक तपस्या तथा योगाभ्यास के काल के साथ अमृतसर नगर का बडा सम्बन्ध है। धन्य है यह नगरी जिसमे अखण्ड ब्रह्मचारी व्यासदेवजी ने वर्षो ही तपस्या की और एक महान् योगी बने। शीतकाल मे ये अमृतसर मे योगाभ्यास तथा विद्याध्ययन करते थे और ग्रीष्म ऋतु मे प्राय काश्मीर चले जाया करते थे। आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए शीतप्रधान प्रदेश की आवश्यकता होती है क्योकि इनके अभ्यास से मस्तिष्क मे उष्णता की वृद्धि हो जाती है। इसीलिए योगी और तपस्वी प्राय गिरिकन्दराओ मे निवास करते है।

पुनः लाला शिवसहायमल की बैठक मे निवास—साधना काल मे शिवसहायमल से व्यासदेवजी का विशेप सम्बन्ध रहा। इन्होने इनकी बडी सहायता की। अपने मकान मे रखा और वर्षो तक इनके सारे व्यय का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। व्यासदेवजी पूर्ववत् अब भी इनकी अहलूवाले कटरे वाली बैठक मे रहने लगे। यहा पर शिवसहायजी से मिलने के लिए अनेक व्यापारी तथा धनाढ्य दुकानदार आया करते थे। ब्रह्मचारीजी के ब्रह्मचर्य, साधना, तप, त्याग, योग, विरक्ति तथा शास्त्राध्ययन आदि के विपय मे प्राय बातें हुआ करती थी। इनमे से कइयो ने व्यासदेवजी से घनिष्ठ परिचय कर लिया। इनमे से काह्लचन्द, रामभज, हसराज, मायाराम आदि मुख्य है। यहा रहते हुए अभी कुछ ही दिवस हुए थे। इनकी प्रसिद्धि सारे नगर मे फैल गई। लोग दर्शनार्थ नित्य आने लगे। धीरे-धीरे दर्शको का एक ताता-सा बधने लगा। इससे इनके अध्ययन तथा साधना मे बाधा उपस्थित होने लगी, अत अब इन्होने नहर के किनारे किसी एकान्त स्थान मे निवास करके अध्ययन और साधना करने का निश्चय किया। जब इस निश्चय से शिवसहायमल को सूचित किया तो उनके तथा अन्य कई श्रद्धालुओ के समझाने पर इस विचार को स्थगित कर दिया क्योकि शीतकाल मे नहर के किनारे शीत बहुत होता है। ग्रीष्म ऋतु मे वहा आराम रहता है।

अब व्यासदेवजी ने पण्डित हरिश्चन्द्र से योगदर्शन तथा उस पर व्यास-भाष्य का अध्ययन पुन प्रारम्भ कर दिया। दो-तीन विद्यार्थी और भी इनके साथ पढने के लिए आने लगे। योगदर्शन के अध्ययन के साथ ही पण्डित कन्हैयालाल से सिद्धान्तकौमुदी भी पढना प्रारम्भ कर दिया। इनके भोजन की व्यवस्था शिवसहायमल तथा काहन-चन्दजी ने की थी। व्यासदेवजी भोजन शिवसहायमलजी के पास ही करते थे किन्तु काहनचन्द भी व्यासदेवजी के व्यक्तित्व धर्मनिष्ठा, भगवद्भक्ति तथा कठिन तपस्या से बडे प्रभावित थे, अत इन्हे भोजन करवाकर वे भी पुण्य-लाभ करना चाहते थे, इस लिए उन्होने भी भोजन-व्यवस्था का भार अपने ऊपर लेने का निश्चय कर लिया था।

सन्त बुद्धिप्रकाश की बगीची मे साधना—ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ मे ही नहर के किनारे सन्त बुद्धिप्रकाश की बगीची मे एक घास की कुटिया व्यासदेवजी ने अपने लिए बनवा ली। यह कुटिया बहुत छोटी-सी थी। इसमे केवल एक तख्त ही बिछाया जा सकता था। इसके बाद इसमे चलने फिरने के लिए भी स्थान न रहता था। इसके आगे जो भूमि थी उस पर एक यज्ञशाला का निर्माण किया गया और आसपास फूलो के पौधे लगा लिए गए। यहा पर निवास करके ब्रह्मचारीजी ने बड़ी कठिन साधना का प्रारम्भ किया। ग्यारह बजे से दो बजे तक योगदर्शन, सिद्धान्तकौमुदी आदि पढने के लिए नगर मे जाते थे और शेष समय योगाभ्यास किया करते थे। प्राय. कड़ी धूप मे बैठकर जाप करते थे। घण्टो ही धूप मे बैठने से पसीना बह निकलता था और जब शीतकाल होता तो नहर के जल मे बैठकर जाप करते थे। जल उनके गले तक रहता था। द्वन्द्वो से मुक्तिलाभ करना उनका उद्देश्य था। देहाध्यास का परि-त्याग भी इसका एक कारण था। सर्दी की मौसम मे कपडा नहीं पहिनते थे और रजाई कम्बल आदि भी नही ओढते थे। जब कभी अधिक शीत होता था तो विविध प्राणायामो के द्वारा शरीर को गर्म कर लिया करते थे। आसन और प्राणायाम का अभ्यास शीतकाल मे अधिक करते थे। प्राणायाम का अभ्यास इतना बढा लिया था कि कभी-कभी प्राणायाम करके छाती पर तख्त रखवाकर उस पर ५-६ आदमियों को बिठा लिया करते थे। इन्ही दिनो प्राणायाम करके अपने वक्षस्थल पर लोगो से जोर-जोर से मुक्के लगवाया करते, तथा दोनो भुजाओ पर रस्सी बधवा कर खिच-वाया करते थे। सन्त बुद्धिप्रकाशजी के ४-५ नवयुवक शिष्य भी प्राणायाम तथा कुश्ती आदि मे रुचि रखते थे। व्यासदेवजी ये चीजे इन्हें प्राय. सिखाया करते थे।

व्यासदेवजी ने इस बगीची मे रहकर बडी कठिन साधना की। नित्यप्रति रात्रि के दो बजे जग जाते थे और प्रात आठ बजे तक अभ्यास करते थे। जब कभी गर्मी अधिक होती थी तो नहर पर पानी की ठोकर के पास जाकर अभ्यास किया करते थे। योगाभ्यास के साथ-साथ शास्त्राध्ययन भी बराबर चलता रहता था। एक बार एक विद्यार्थी ने व्यासदेवजी से कहा कि तीतरी सहारनपुर की तहसील मे एक ग्राम है। वहा पर प्यारेलाल नाम के एक ब्रह्मचारी रहते हैं। उन्हें अष्टाध्यायी का अच्छा ज्ञान है। यह सुनते ही वे तीतरी अष्टाध्यायी पढने के लिए चले गए। वहां जाकर कुछ मास तक इस ग्रंथ का प्यारेलालजी से अध्ययन किया किन्तु वे स्वयं ही बनारस पढने के लिए चले गए अत अन्य कोई प्रबन्ध वहां पर पढने का न देखकर व्यासदेवजी अमृतसर वापस आगए।

पं० हरिश्चन्द्रजी से व्यासदेवजी ने दर्शन, निरुक्त तथा उपनिषदें पहिले ही पढ ली थी। पण्डितजी का जन्म एक धनाढ्य परिवार मे हुआ था। आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करके विद्यार्थियो को पढाने का व्रत धारण किया था। इसीलिए व्यासदेवजी का उनसे बडा स्नेह था। जिनके गुण, कर्म तथा स्वभाव समान होते है उनमे मैत्रीभाव का उदय होना स्वाभाविक ही है। हरिश्चन्द्रजी बडे प्रेमभाव से व्यासदेवजी को पढाते थे और योग तथा विज्ञान सम्बन्धी अति गूढ रहस्यो की विशद व्याख्या करके विषय को हृदयगम करवाया करते थे।

व्यासदेवजी ने सन्त बुद्धिप्रकाशजी की बगीची मे अपने लिए एक पर्णकुटि बनाली थी। उसी मे रहकर अपनी साधना और अभ्यास किया करते थे। इस कुटिया मे उन्हे बडी असुविधा थी, विशेषकर वर्षाकाल मे। उसी कुटिया मे कई साल तक ये रहे। जब मोतीराम आटेवाले ने इस बगीची के पास ही एक अच्छा बडा उद्यान बनवाकर उसमे सन्तो और महात्माओ के निवास के लिए १६ कुटियाए बनवा दी, तब उन्होने व्यासदेवजी से उद्यान मे अपने पसन्द की एक कुटिया मे आकर निवास करने के लिए आग्रह किया तो वे वहा जाकर रहने लगे।

सर्प ने ब्रह्मचारी व्यासदेवजी की चोर से रक्षा की—व्यासदेवजी प्राय ज्येष्ठ मास मे किसी न किसी पहाड पर चले जाया करते थे क्योकि गर्मी मे साधना और अभ्यास मे बाधा उपस्थित होती थी। ये सात मास अमृतसर मे रहते थे और पाच मास प्राय काश्मीर रहा करते थे। कभी-कभी किसी अन्य पर्वत पर भी चले जाते थे। एक बार गर्मी मे किसी पर्वत पर जाने की सुविधा प्राप्त न हो सकने के कारण अमृतसर मे ही रहना पडा। गर्मी के आधिक्य के कारण नहर पर पानी की ठोकर के पास रात्रि मे आकर योगाभ्यास किया करते थे। आस-पास कई स्थानो पर सर्पो ने अपने बिल बना रखे थे। वहा पर एक बडा घातक, लम्बा, काला सर्प रहता था। जब व्यासदेवजी नहर पर अभ्यास करने के लिए आते तब यह भी प्राय अपने बिल मे से निकलकर उनके पास आ बैठता था और उनके अभ्यासकाल तक वही बैठा रहता। ऐसा प्रतीत होता है मानो वह उनकी रक्षार्थ ही वहा आता था। जब व्यासदेवजी उठकर अपनी कुटिया मे चले जाते तो यह भी धीरे-धीरे अपने बिल मे प्रविष्ट हो जाता था। पानी की ठोकर के पास ही नहर पर एक छोटा-सा पुल बना हुआ था। उस पर गाडिया नही चल सकती थी। केवल आदमी ही इसके ऊपर से जा सकते थे। एक दिन की बात है कि रात्रि के लगभग ग्यारह बजे छ सात चोर चोरी की तलाश मे इधर-उधर घात लगाते फिर रहे थे। वे वहा आ निकले। व्यासदेवजी के पास एक मुरादाबादी लोटा देखकर उसको चुराने के लिए उनका जी ललचाया और उनमे से एक झट उठाने आ गया किन्तु पास ही वही कृष्णनाग बैठा था। जब उसने देखा कि व्यासदेवजी की यह बिना आज्ञा प्राप्त किये आया है और चोरी करना चाहता है तो उसने बडे जोर से फुकार मारी और उसकी ओर झपटा। चोर भय से कापने लगा और जमीन पर गिर पडा। बडी कठिनाई से उठकर जान बचाने के लिए भागा। उन चोरो ने नगर मे खूब चक्कर लगाए किन्तु कही पर भी चोरी करने का अवसर नही मिला। प्रात होने जब लौटने लगे तो एक खरबूजो के खेत पर छापा मारा और बहुत से खरबूजे बाधकर ले चले। जब व्यासदेवजी के पास पहुचे

तो उनकी ओर विनोद मे कई खरबूजे फेंके किन्तु सर्प के भय से पास जाने का साहस नही हुआ।

इन दिनो अमृतसर मे चोरियो की दुर्घटनाए प्राय प्रतिदिन होती थी। अमीर, गरीब, साधु तथा सन्त कोई भी इनसे न बच सका था। एक दिन रात्रि के तीन बजे जब व्यासदेवजी भजन मे तल्लीन थे तब तीन-चार चोरो ने मोतीराम की बगीची की दीवार को फादकर उनकी कुटिया का दरवाजा खटखटाया। वे ध्यान-मग्न थे अत उन्हे किसी प्रकार की आवाज सुनाई नही दी। जब चोरो ने मिलकर खूब जोर से शोर किया और किवाडो को तोड देने की धमकी दी तब उनकी समाधि भग हुई और उन्होने दरवाजा खोला। चोर भीतर घुस आए और ललकार कर कहा, "जो तुम्हारे पास है सब यहा रख दो, अन्यथा तुम्हे अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा।" व्यासदेवजी ने बडे धैर्य से मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "जो कुछ मेरे पास है वह आपके सामने है। आप जो चाहे सहर्ष ले जा सकते है।" चोरो ने सारी कुटिया मे इधर-उधर खोजा किन्तु उनके मतपसन्द का कोई सामान उन्हे दिखाई न दिया। वे एक-दो चीजें लेकर चलते बने।

व्यासदेवजी ने चोरो को भोजन बनाकर खिलाया—एक बार रात्रि के दस बजे के लगभग बारह चोर उद्यान मे आए। व्यासदेवजी की कुटिया मे लालटेन का प्रकाश हो रहा था किन्तु वे समाधिस्थ थे। उनके शोर से उनकी समाधि टूट गई और उन्होने दरवाजा खोल दिया। उन्होने व्यासदेवजी से भोजन की प्रार्थना की। इन्हे उनकी दशा देखकर बडी दया आई। उनके पास ५-६ सेर आटा मूग की दाल और थोडा-सा घी था। उन्होने इनके लिए भोजन तैयार किया और उनको खिलाया। वे सब बडे प्रसन्न हुए। उनमे से एक वयोवृद्ध ने व्यासदेवजी से आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की किन्तु वे भला पापियो को उनके पाप कर्म के लिए आशीर्वाद क्यो देते! वे पापी से घृणा नही करते थे। उनके सुधार का पूरा प्रयत्न करते थे, किन्तु उनके पाप से उन्हें बडी घृणा थी, अत उन्होने इससे साफ इन्कार कर दिया। तब उस वृद्ध चोर ने व्यासदेवजी का हाथ पकडकर बलपूर्वक सबकी पीठ पर थापी देकर हाथ फिरवाया और चलते बने। अमृतसर मे अफीम की दुकान मे जा चोरी की।

कुछ दिनो बाद वे चोर पुन व्यासदेवजी की कुटिया मे आए और एक थान मलमल का तथा एक सौ एक रुपया उनकी भेट करना चाहा, किन्तु व्यासदेवजी इस पापपूर्ण भेट को स्वीकार करने के लिए कभी भी समुद्यत न थे अत. वहा से उठकर नहर की ओर चल दिए। पापात्माओ मे भी कभी-कभी सद्वृत्तिया तिरोहित रूप मे रहती हैं। उस दिन तो ये चोर निराश होकर चले गए किन्तु चार-पाच दिन के पश्चात् पुन वे व्यासजी को भेट देने के लिए आए। उस समय व्यासजी कुटिया मे नही थे। पास ही कही ध्यानमग्नावस्था मे बैठे थे। कुटिया खाली देखकर वे एक मलमल का थान, एक सौ एक रुपये तथा बहुत-सी मिठाई कुटिया मे रखकर चले गए। कुटिया मे लौटने के बाद व्यासदेवजी यह सब सामान देखकर चकित हुए। यह समझकर कि यह सब चीजें उन चोरो ने ही यहा भेंटरूप मे रखी है उन्होने वे सब आस-पास के दीन-दु खी तथा दरिद्र लोगो को बाट दी।

पुलिस के सिपाहियो से मुठभेड़—इन दिनो व्यासदेवजी प० हरिश्चन्द्र से साख्यदर्शन तथा न्यायदर्शन पढा करते थे। उनसे पढने के पश्चात् एक दिन वे लाला शिवसहायमल के पास उनके मकान पर चले गए। वहा वाते करते-करते लगभग १० वज गए। उन्होने उनसे रात्रि को वही शयन करने के लिए आग्रह किया किन्तु इससे साधन तथा अभ्यास मे वाधा की आशका करके उन्होने वहा ठहरना पसन्द नही किया। मोतीराम की वगीची में पहुचने के लिए मार्ग मे लगभग एक मील तक निर्जन जगल आता था। इस जगल मे वहुत चोरिया तथा हत्याए हुआ करती थी। व्यासदेवजी को भी यह जगल पार करना पडा। उस रात्रि को छ-सात सिपाही उस जगल मे चोरो की घात लगाए वैठे थे। व्यासदेवजी की खडाऊ के शव्द को सुनकर उन्होने जोर से चिल्लाकर कहा, "ठहरो, कौन जा रहा है?" व्यासदेवजी ने इन्हे चोर समझा। उन्हे भय था कि कही उनकी घडी ये न छीन लें, अत वे और भी तीव्रगति से चलने लगे। सिपाहियो ने यह देखकर पुन आवाज दी। इससे व्यासदेवजी खडाऊ उतारकर जोर मे भागे और वुद्धिप्रकाशजी की वगीची मे प्रविष्ट हो गए। इस वगीची के चारो ओर काटेदार तार की वाड लगी हुई थी। व्यास-देवजी इसको फादकर अन्दर चले गए। सिपाहियो ने इनका पीछा किया किन्तु वे उन्हे पकड न सके और वगीची मे घुसने लगे तो तार मे फसकर गिर पडे और घायल हो गए। सन्त तेजप्रकाशजी ने जोर से चिल्लाकर कहा, "इधर मत आना, वरना मार दिए जाओगे।" सिपाहियो ने कहा, "सन्तजी! आपकी वगीची मे एक चोर भागकर आया है, उसे हमारे सुपुर्द कर दो।" जव उन्हें मालूम हुआ कि भागने वाला भी एक सन्त है तो वे वडे हसे। व्यासदेवजी ने कहा कि "तुम एक सन्त को भी नही पकड सके, तुम चोरो को कैसे पकडते होगे और किस प्रकार उनका सामना करते होगे?" सिपाहियो ने कहा, "हमारा काम सन्तो को पकडना नही है, चोरो को पकडना है। यदि हमे पता होता कि आप सन्त है तो हम आपके पीछे न दोडते।"

उपरोक्त घटनाओ के कारण व्यासदेवजी के वैराग्य ने और भी तीव्र रूप धारण कर लिया। उनको तत्कालीन समाजसगठन दोषपूर्ण दिखाई देने लगा। यदि सब को जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्य हो तो इस प्रकार की चोरियो की सख्या वहुत कम हो सकती है। जिनके पास खाने को भोजन, शीत, गर्मी और वर्षा से वचाव के लिए मकान, पहनने को कपडे, रोग से वचने के किए औषध नही है, तो भला वे चोरी नही करेंगे तो क्या करेगे! "वुभुक्षित. किं न करोति पापम्।"

आकार-मौन तथा गायत्री-पुरश्चरण—शीतकाल का समय था। ब्रह्मचारीजी ने आकार-मौन धारण करके सवा लाख गायत्री मन्त्र का पुरश्चरण करना प्रारम्भ कर दिया। अव इन्होने मोतीरामजी की वगीची वाली पक्की कुटिया मे रहना छोड दिया। वहा पर जाप और ध्यान मे अनेक विघ्न उपस्थित हो जाया करते थे और चोर भी पक्की कुटिया मे निवास के कारण समझते थे कि इस सन्त के पास वहुत रुपया होना चाहिए। उसे चुराने के लालच से प्राय चोर आकर तग किया करते थे, पर उन्हे दो-चार सेर आटे, मूग की दाल, थोडे घी और दो वस्त्रो के अतिरिक्त कभी कुछ भी इस कुटिया मे दिखाई नही दिया और वे निराश होकर चले जाते थे।

इसलिए व्यासदेवजी अब सन्त बुद्धिप्रकाशजी की बगीची मे अपनी पुरानी पर्णकुटि मे आकर रहने लग गए। यहा आकर चैत्र मास की सक्रान्ति के दिन इन्होने आकार मौन व्रत और गायत्री पुरश्चरण की समाप्ति की।

ब्रह्मचर्य-व्रत की परीक्षा—अभी व्यासदेवजी ने अपना आकार-मौन समाप्त भी नही किया था कि उनके सामने एक बडा भारी सकट आकर उपस्थित हो गया। अमृतसर के लाला काहनचन्द ब्रह्मचारीजी के अनन्य भक्त थे और इनके प्रति इनकी अत्यन्त श्रद्धा, निष्ठा तथा विश्वास था। वे इनसे प्रेम भी बहुत करते थे। एक दिन उन्होने अपने साले दीवानचन्द से इनके स्वभाव, तप, व्रत, साधना, जप तथा अखण्ड ब्रह्मचर्य की बडी प्रशसा की। इन्होने उनकी बात पर विश्वास नही किया, क्योकि मनुष्य एक बन्द बोतल है। ऊपर से यह बोतल बडी सुन्दर दृष्टिगोचर होती है किन्तु इसके भीतर कैसा विष भरा है इसे कोई समझ नही सकता। लिफाफा कितना ही सुन्दर हो पर इसके अन्दर क्या मजमून लिखा हुआ है इसे जानना असम्भव है। इसी प्रकार से मनुष्य के बाह्यरूप से उसका वास्तविक स्वरूप नही समझ मे आ सकता है। प्राय मनुष्य दीखने मे कुछ और होते हैं और भीतर कुछ और। उन्होने इन ब्रह्मचारीजी की गणना भी ऐसे ही लोगो की कोटि मे की और इनके ब्रह्मचर्य की परीक्षा लेनी चाही। साला और बहनोई दोनो मे इस विषय पर एक शर्त ठहर गई। दीवानचन्द ने काहनचन्द से कहा कि यदि ये ब्रह्मचारीजी परीक्षा मे सच्चे उतरे तो मैं आपको ४०० रुपये दूगा और यदि ये असफल रहे तो आप मुझे २०० रुपये देना। इन्होने ब्रह्मचारीजी की परीक्षा लेने के लिए अमृतसर की दो प्रसिद्ध वेश्याओ को उनकी कुटिया मे भेजा। व्यासदेवजी उस समय अपनी कुटिया मे बैठकर जाप कर रहे थे। कुटिया के सामने एक बडी यज्ञशाला बनी हुई थी। इसमे वे नित्यप्रति यज्ञ किया करते थे। यज्ञ किए बिना वे भोजन नही करते थे। यह उनका अचूक व्रत था। इसी यज्ञशाला मे बैठकर इन कुलटा-स्त्रियो ने ब्रह्मचारीजी को ब्रह्मचर्य से पतित करने के लिए योजना बनाना प्रारम्भ किया। अत उन्होने उन पर अपना जादू चलाने का प्रयत्न किया। जब व्यासदेवजी ने इनकी ओर किचिन्मात्र भी ध्यान नही दिया तो वे बडे जोर-जोर से कोलाहल करके कामोद्दीपक वार्तालाप करने लगी। आकार-मौन के कारण ब्रह्मचारीजी बोल तो सकते ही न थे अत इशारे से इन्हे वहा से चले जाने के लिए कहा। डण्डा उठाकर मारने की धमकी भी दी किन्तु ये टस से मस न हुई। तब उनका मन्यु कुछ जागृत हो आया और वे पास ही एक उद्यान मे गए जहा पर कारीगर लोग एक चारदिवारी बना रहे थे। इन्होने अपने हाथ की एक अगुली से जमीन पर गुरमुखी भाषा मे उन्हे लिखकर समझाया कि मेरी कुटिया मे दो वेश्याए आई हुई है और वे मुझे बडा परेशान कर रही हैं तथा मेरे भजन मे विघ्न उपस्थित कर रही हे। तुम लोग वहा चलो और उन्हे वहा से भगाओ। वे अपने फावडे लेकर तुरन्त वहा गए और उन्हे बहुत गालिया दी। जब वे ढीठ बनकर निर्लज्जतापूर्वक वही बैठी रही तब उन्होने मारने की धमकी दी। वे इससे बडी भयभीत हुई और लज्जित होकर वहा से भाग गई।

जब दीवानचन्द और काहनचन्द को यह समाचार मिला तो वे बडे प्रसन्न हुए और साथ ही लज्जित भी। उन्होने ब्रह्मचारीजी की भूरि-भूरि प्रशसा की।

काहनचन्द की उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति मे और भी अधिक वृद्धि हो गई। इस परीक्षा से अमृतसर के नर-नारियो मे उनके प्रति निष्ठा वढी और वे अब उनका अधिक सम्मान करने लगे। वे दोनो उनके पास गए और लज्जित होकर वैश्याओ के सम्बन्ध मे सारी कथा उन्होने सुनाई और साष्टाग करके विनम्र भाव से उनसे क्षमा-याचना की। व्यासदेवजी कभी क्रोध तथा आवेश मे नही आते थे। वे समुद्र के समान गम्भीर, चन्द्रमा के समान सौम्य, सूर्य के समान तप पूत और हिमालय के समान धीर और अटल थे। वे सदैव शान्त तथा गम्भीर मुद्रा मे रहते थे। उनकी मन शान्ति कभी भग नही होती थी। दीवानचन्द तथा काहनचन्दजी से सारी कथा सुनकर उनकी मुखमुद्रा मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुआ। वे किंचित् मुस्करा भी दिए। ये दोनो वडे लज्जित हुए।

काष्ठ मौन तथा सवा करोड़ गायत्री पुरश्चरण

बुद्धिप्रकाशजी की वगीची मे व्यासदेवजी ने मौन तथा सवा लाख गायत्री पुरश्चरण की समाप्ति चैत्र मास की सक्रान्ति के दिन की और उसी दिन काष्ठ-मौन ले लिया और सवा करोड गायत्री जाप का व्रत धारण किया। केवल प्रत्येक मास की सक्रान्ति के दिन एक-दो घण्टे वोला करते थे क्योकि उस दिन वे वाजार से खाद्य-सामग्री तथा अन्य आवश्यक सामान मगवाया करते थे। इस पुरश्चरण को महाराजजी ने चार वर्ष मे समाप्त किया। त्याग, व्रत और वैराग्य भावना तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। अब अध्ययन के प्रति भी कोई विशेष रुचि नही रही थी। इधर-उधर कही जाना वन्द कर दिया था। जनसपर्क बिल्कुल पसन्द नही था। नितान्त एकान्त मे रहना अधिक रुचिकर होगया था। पुरश्चरण के प्रारभिक काल मे नो वारह हजार गायत्री का जाप प्रतिदिन करते थे। इन दिनो दैनिक चर्या निम्न प्रकार से थी —

प्रात ४ से ७ वजे तक	ध्यान
७ से दोपहर के २ वजे तक	गायत्री जाप
२ से ३ वजे तक	भोजन वनाना तथा खाना
३ से ४ वजे तक	विश्रामादि
४ से ७ वजे तक	गायत्री जाप
साय ७ से ८ वजे तक	भ्रमणादि
८ से १० वजे तक	गायत्री जाप
१० से ११ वजे तक	दुग्धपानादि
रात्रि ११ से ३ वजे तक	शयन

उपरोक्त दिनचर्या मे स्पष्ट है कि ब्रह्मचारीजी केवल चार घटे सोते थे, एक घटा दिन मे विश्राम करते थे, एक घटा भोजन वनाने और खाने मे व्यय होता था, एक घटा भ्रमण तथा दुग्धपानादि मे लगाते थे। दिन के २४ घण्टो मे से केवल नौ घण्टो के अतिरिक्त उनका सारा समय अर्थात् १५ घटे ध्यान तथा गायत्री के जाप मे ही प्रतिदिन व्यतीत होते थे। इन दिनो भोजन के रूप मे केवल सावुत मूग ही खाते थे। मूग को उबालकर उसमे थोडा-सा घी डालकर खा लिया करते थे। इसके वनाने मे समय वहुत थोडा व्यय होता था। साथ ही यह सात्विक भोजन भी माना

जाता है। रात्रि को केवल आधा सेर दुग्धपान करते थे। शारीरिक सुख का ध्यान बिल्कुल छोड दिया था। देहाध्यास नितान्त न्यून हो रहा था। इन दिनो जब भ्रमण के लिए जाते तो मुह ढापकर जाते थे, जिससे न किसी को वे देखें और न कोई उनको देख सके। मानसिक विक्षेप से बचने के लिए ऐसा करते थे। किसी के साथ इशारे से भी बात नही करते थे। अनेक साधु-सन्त मौन व्रत रखकर प्राय इङ्गित से अथवा स्लेट पर या जमीन और हाथ पर लिखकर अपने भावो को व्यक्त कर दिया करते है, किन्तु यह काष्ठ-मौन की सज्ञा मे नही आ सकता। ब्रह्मचारीजी किसी पर भी अपने भाव किसी प्रकार से भी प्रकट नही करते थे। ग्रीष्म काल मे आषाढ की गर्मी मे धूप मे बैठकर ४-५ घण्टे तक जाप करते तथा शीतकाल मे नहर के पानी मे बैठकर। पानी उनके गले तक रहता था। शरीर, मन तथा इन्द्रियो के प्रति अनासक्ति की भावना को दृढ करना ही इनका ध्येय था।

पुरश्चरण-काल मे चोरो द्वारा अपहरण—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, व्यासदेवजी रात्रि को ७ बजे से ८ बजे तक भ्रमणार्थ जाया करते थे। प्राय नहर की पटडी पर चला करते थे। इधर लोग बहुत कम आते थे और बडा एकान्त स्थान था। जब बाहिर जाते तो मुह को भली प्रकार से ढापकर चलते थे, जिससे काष्ठ मौन मे किसी प्रकार की कोई बाधा उपस्थित न कर सके। एक दिन मार्ग मे उन्हें पाच नवयुवक मिले। इन्होने मदिरा पान की हुई थी। उनकी टागे लडखडा रही थी और वे मदोन्मत्त होकर पागलो की तरह प्रलाप कर रहे थे। उन्होने मौन तथा पुरश्चरण का कभी नाम भी न सुना था। मन्त्रो के प्रति न उनकी किसी प्रकार की श्रद्धा थी और न विश्वास। व्यासदेवजी को आते देखकर वे बडे विस्मित हुए। वे इस बात का निश्चय नही कर पाए कि यह पुरुष है या स्त्री। उन्हें आकार-प्रकार तथा गति तो इनकी नवयुवको के समान दिखाई देती थी किन्तु उनके मुह ढकने पर उनके स्त्री होने का सन्देह होता था। वे इन्हे पहिचान नही सके कि ये मोतीरामजी की बगीची वाले सन्त है, अत इनसे छेड-छाड करनी प्रारम्भ कर दी। नवयुवको ने इनसे पूछा कि तुम कहा जा रहे हो, कहा रहते हो, तथा क्या करते हो। व्यासजी ने काष्ठ मौन धारण कर रखा था। कैसे बोलते! अत उन्होने अनेक प्रश्नो का कुछ भी उत्तर नही दिया। उन मदोन्मत्तो ने समझा कि यह व्यक्ति बडा दम्भी है इसीलिए नही बोलता है। वे मदिरा के मद मे यथार्थता तक नही पहुच सके, अत क्रोध के मारे वे आगबबूला होगए और व्रतनिष्ठ मौनी व्यासदेवजी के हाथ बाध कर उन्हे अपने पीछे-पीछे ले चले। ब्रह्मचारीजी ने काष्ठ-मौन धारण कर रखा था अत अपने भाव कैसे व्यक्त करते! जैसे उन्होने कहा वैसे ही उनके पीछे चलने लगे। वे न तो बोले और न किसी प्रकार की प्रतिशोध भावना को अपने हृदय मे स्थान दिया। वे निश्चल और निश्चिन्त थे। उन्हे न तो गन्तव्य दिशा का ज्ञान था और न उन्हे यही पता चला कि वे शराबी उन्हे कहा और क्यो ले जा रहे हैं। किन्तु उनके मन मे इससे कोई विक्षेप या क्षोभ उत्पन्न नही हुआ। धन्य हो दृढव्रती ब्रह्मचारीजी! आप धन्य हो। आश्चर्यान्वित कर देने वाली है आपकी यमनियमोपासना, आपकी जितेन्द्रियता, और आपका शम, दम तथा देहाध्यास की क्षीणता!

वे उद्दण्ड और उद्धत शरावी युवक उन्हे अपने गाव मे ले गए। पास ही एक गुरुद्वारा था। वहा के ग्रथी के पास इन्हे ले जाकर कहा कि इसको एक कमरे मे वन्द करके रखो, हम सुवह आकर सव फैसला करेगे। वे चले गए।

ग्रथी ने दीपक जलाया और जव व्यासदेवजी को पहिचाना तो वह वडा दु खी हुआ। उसका हृदय काप उठा। उसने क्षमा याचना की और उन युवको को गालिया देकर उनकी वडी निंदा की। उनसे निवेदन किया कि आप यहा वैठिए, मैं गाव से आपके लिए दुग्ध लेकर आता हू। उन दुष्टो को भी उनके घर जाकर उनके निन्दनीय कार्य के लिए वडी ताडना करूगा। वह वन्तासिंह के घर गया। यह युवक वडा उद्धत और चोर था। ग्रथी ने पूछा कि तुम इस वगीची वाले सन्त को अपने साथ क्यो लाए ? इन्होने काष्ठ-मौन का व्रत लिया हुआ है। केवल वाणी का काष्ठ-मौन ही नही इनका मानसिक मौन भी है, इसीलिए इन्होने अपना मुह ढाप रखा था। तुमने अज्ञान से इतने वडे सन्त का अपमान किया है। यह तुम्हारा वडा निन्दनीय और पाप-कर्म है। लाओ, उनके लिए दूध दो। वन्तासिंह अपनी माता के पास गया और दूध लाकर ग्रथीजी को दे दिया। महाराजजी ने दूध पीकर गुरुद्वारे मे ही विश्राम किया और प्रात ही उठकर अपनी कुटिया मे चले गए जिससे उनके व्रत मे कोई वाधा उपस्थित न हो। उन दुष्ट युवको के प्रति न तो उनके मन मे किसी प्रकार की ग्लानि उत्पन्न हुई और न कोई प्रतिशोध की भावना। वे पूर्ववत् शान्त और गभीर रहे। उनकी इस प्रकार की मुख-मुद्रा सहसा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी के मुखारविन्द का ध्यान दिलाती है, जो—

> प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदु खत ।
> मुखाम्वुजश्री रघुनन्दनस्य भवतु मे मजुलमगलप्रदा ॥

ये तपोनिष्ठ ब्रह्मचारीजी साधना के वडे धनी थे। सर्दी के मौसम मे जव नहर के जल मे वैठकर जाप करते थे, तो शरीर प्राणहीन-सा हो जाता था। सर्वत्र शून्यता छा जाती थी, किन्तु उन्हे देहाध्यास नही रहा था, अत इस पीडा को कभी अनुभव ही नही किया। इस लम्वी साधना के परिणामस्वरूप उनमे वल-वृद्धि हुई और प्राण-निरोध की शक्ति भी उत्तरोत्तर वढने लगी। सकल्प-सिद्धि लाभ होगई तथा वुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म होगई।

वैशाखी के दिन वडे समारोहपूर्वक इस पुरश्चरण की समाप्ति की। एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया गया जो कई दिनो तक चलता रहा और कई दिन सन्तो और महात्माओ को भोजन करवाया। इस यज्ञ और भण्डारे मे ब्रह्मचारीजी के सैकडो भक्त अमृतसर के सम्मिलित हुए। ब्रह्मचारीजी ने गायत्री पुरश्चरण और मौनव्रत के अनेक लाभ अपने उपदेश मे जनता को वताए। चार वर्ष के काष्ठ-मौन और यज्ञ की पूर्णाहुति करके व्रत समाप्त कर दिया।

काश्मीर-यात्रा

स्थायी रूप से तो व्यासदेवजी का साधना-स्थल वर्षों तक अमृतसर ही रहा किन्तु प्राय ग्रीष्मकाल के ज्येष्ठमास मे काश्मीर तथा अन्य शीतप्रधान प्रदेशो मे चले जाया करते थे। लगभग सात मास अमृतसर मे निवास करते थे और पाच मास काश्मीर

तथा अन्य पर्वतीय प्रदेशो पर। काश्मीर मे प्राय हार्वन भील के पास मुफ्ती बाग मे निवास करना उन्हे अधिक पसन्द था। सन्त बुद्धिप्रकाश की बगीची मे वे एक छोटी सी घास की कुटिया मे रहते थे। जब लाला मोतीराम ने अपने उद्यान मे महात्माओ की साधना और निवास के लिए १५-१६ कुटियाए बनवाई तो इनसे भी वहा रहने के लिए आग्रह किया था और ये वहा पक्की कुटिया मे पुन निवास करने लगे थे। वहा कुछ मास रह चुकने के बाद गर्मी की तीव्रता के कारण काश्मीर चले गए और मुफ्ती बाग मे निवास किया। प्रात काल शिकारगाह मे भ्रमणार्थ जाते थे और साय-काल हार्वन भील के तट पर।

काश्मीरी पण्डितो से समागम—एक बार सायकाल के समय जब हार्वन भील पर भ्रमण कर रहे थे तब कई काश्मीरी पण्डित उन्हे मार्ग मे मिल गए। विविध विषयो पर वार्तालाप होने लगा। जब अमरनाथ की चर्चा चली तब इन पण्डितो ने कहा कि वहा पर शिवलिंग की मूर्ति पन्द्रह दिन तक क्षीण होती है और पन्द्रह दिन तक वृद्धि को प्राप्त होती है। ब्रह्मचारीजी किसी भी बात को स्वीकृत करने से पूर्व उसे तर्क तथा बुद्धि की कसौटी पर कसते थे। जो बात बुद्धिसगत तथा तर्कसगत होती थी वही उनके लिए ग्राह्य होती थी, अन्य नही। उन्होने पण्डितो की इस बात को स्वीकार नही किया, क्योकि यह तर्क तथा बुद्धिसगत नही थी। उन्होने तुरन्त कहा कि जड पदार्थों मे इस प्रकार घटना और बढना धर्म नही हो सकता। वृद्धि और क्षय चेतन सत्ता के सयोग से ही सभव है, अन्यथा नही। क्योकि वहा पर चेतन के सयोग का अभाव है अत शिवलिंग की वृद्धि और क्षय असभव हैं। अमरनाथ की प्रतिमा बर्फ से बन जाती है। जिस प्रकार पहाडो पर शीतकालीन वर्षा मे मकानो की छतो से जो पानी नीचे गिरा करता है वह प्राय शीत के आधिक्य से जमता जाता है और बर्फ के बडे-बडे शिवलिग-से बन जाया करते हैं और जब गर्मी पडने लगती है तो ये शिवलिंग-से पिघल जाते है। कुछ तो बिलकुल पिघल जाते है और कुछ का आकार बहुत सूक्ष्म सा हो जाता है। यही बात अमरनाथ की गुफा मे स्थित शिवलिंग के विषय मे भी कही जा सकती है। काश्मीरी पण्डित आग्रहपूर्वक अपने मन्तव्य पर डटे रहे। पण्डित मुकुन्दजी कौल ने भी पण्डितो की बात की ही पुष्टि की। अब उन्होने अमरनाथ जाकर स्वय इस बात की जाच करने का दृढ सकल्प कर लिया।

अमरनाथ की यात्रा—शीतकाल के प्रारभ होते ही श्री ब्रह्मचारीजी अमृतसर पधार गए। नियमानुसार योगाभ्यास, तप, जप तथा साधना पूर्ववत् अपनी कुटिया मे नहर के किनारे करते रहे। ग्रीष्म ऋतु के प्रारभ होते ही पुन काश्मीर पधारे क्योकि चैत्र मास मे अमरनाथ जाने का निश्चय कर लिया था। सोनमर्ग के मार्ग से जाने का विचार किया क्योकि इस मार्ग से अमरनाथ केवल ७० मील के लगभग था और श्रीनगर से यह स्थान लगभग ८६ मील था। व्यासदेवजी महाराज जितना सामान आसानी से अपने आप उठाकर ले जा सकते थे उतना ही सामान लेकर चल दिए। सोनमर्ग के पोस्टमास्टर माधोराम ने व्यासदेवजी को अमरनाथ जाने की अनेक कठिनाइया बताई। सोनमर्ग से बालतल लगभग नौ मील था और वहा से आगे १० मील तक बर्फ पर ही चलना पडता था। इन्होने पोस्टमास्टर से चार कुली अमरनाथ की गुफा तक सामान ले जाने के लिए मजदूरी पर कर देने के लिए कहा।

तीन रुपया प्रतिदिन पर तीन मजदूरो को साथ ले जाना तय पाया। कुछ सामान ब्रह्मचारीजी ने भी उठाया। बालतल पहुचकर एक डाकबगले मे ठहरे। दूसरे दिन प्रात काल आठ बजे वहा से प्रस्थान किया। यह मार्ग बडा कठिन था। अमरनाथ से जो नदी सोनमर्ग जाती थी वह सारी हिमाच्छादित थी। उसी के किनारे-किनारे बर्फ पर चलना था। शीत का आधिक्य था। बर्फ पर चलते-चलते पैर सज्ञा-हीन से हो गए थे। उनमे चेष्टा करने की शक्ति नाममात्र को भी शेष नही रही थी। इस-लिए पैर बार-बार लडखडाते थे। इस नदी की ऊचाई की ओर चढाई बडी भयावह थी। पैरो मे शून्यता छा जाने के कारण से व्यासदेवजी का पैर बर्फ पर से फिसल गया, लाठी हाथ से छूट गई और लगभग आधा मील ऊची बर्फ की पहाडी से फिसलते हुए नीचे उस स्थान पर आ गिरे जहा बर्फ पिघलने के कारण नदी मे एक कूआ सा बन गया था। फिसलते हुए अनेक चोटे आई थी अत लगभग आध घण्टे तक चेतना-हीन रहे। जब सज्ञोपलब्धि हुई तब उठकर बैठ गए और इगित करके मजदूरो को बुलाया। दो मजदूर आए और अपने हाथो की रगड से उनके शरीर को उष्णता पहुचाने का प्रयत्न किया। जहा व्यासजी गिरे थे वहा से बर्फ का कूआ केवल ३-४ फुट ही दूर था। भगवान् ने ही उनकी रक्षा की। ब्रह्मचारीजी का ब्रह्मवर्चस्व असीम था। उनके साहस, हिम्मत और पराक्रम की कोई सीमा न थी। उन्होने साहसपूर्वक कुलियो से कहा कि मै नदी के ऊपर बर्फ की कितनी मोटी तह जमी हुई है इसे देखना चाहता हू। तुम मेरे पैर धोती से बाधकर यही बैठ जाओ, मै पेट के बल लेटकर सरक-सरक कर आगे जाकर देख आऊगा और अगर मै गिरने लगू तो तुम धोती खीच कर मुझे खीच लेना। नदी मे झाककर देखने से मालूम हुआ कि उस पर लगभग एक सौ फुट बर्फ जमी हुई थी और उसके नीचे जल बह रहा था। यदि कही इसमे गिर जाते तो फिर निकलने का कोई उपाय न था। वहा से उठकर धीरे-धीरे ऊपर आए और अमरनाथ का मार्ग लिया। सारा दिन चलने के पश्चात् लगभग चार बजे अमरनाथ की गुफा मे पहुचे। कुलियो ने महाराज से कहा कि आप यहा पर उच्चस्वर से न बोलिएगा, यदि बोलेंगे तो बर्फ गिरने लगेगी। उन्हे इस बात का पता नही था अत उन्होने कुलियो की बात नही मानी और गुफा से बाहिर निकलकर बडे ऊचे स्वर से 'हरि ओ३म्' के नारे लगाने लगे। उनका नारे लगाना था कि थोडी ही देर मे चारो ओर से बादल घिर आए और लगभग आध घण्टे के पश्चात् हिमपात होने लगा। कुली बडे नाराज हुए और इस आशका से कि न जाने कब तक बर्फ पडना अब जारी रहेगा और ताजी बर्फ पड जाने से मार्ग का पता लगाना भी कठिन हो जाएगा, पाच बजे ही अमरनाथ की गुफा से भाग गए। व्यासदेवजी को अपनी भूल पर बडा पश्चात्ताप हुआ। वास्तव मे बात यह थी कि जोर का शब्द होने से आसमान मे आकर्पण सा पैदा हो जाता है और बादल बन जाते है और ऊचाई अधिक होने के कारण बर्फ गिरने लग जाती है। पहलगाव से जब हत्यारे तालाब पर जाते है तो वहा भी कभी-कभी ऐसा हो जाया करता है। गुफा के आसपास दो-तीन दिन तक बादल छाए रहे और रुक-रुक कर बर्फ भी पडती रही। इन दिनो मे अमरनाथ की गुफा मे हजारो मन बर्फ थी। इसमे प्राय सारो साल बर्फ का जल टपकता रहता है और अत्यन्त शीत होने के कारण यह जल जमता रहता है। इस समय गुफा मे एक इच भर भी सूखी जमीन न थी। गुफा के बाहिर पहाड के समीप कुछ थोडा सा स्थान सूखा था। यही आकर ब्रह्मचारीजी

ने अपना आसन लगाया। चारो ओर वर्फ ही वर्फ दृष्टिगोचर हो रही थी। इस थोडे से सूखे स्थान पर ही इन्हे एक मास व्यतीत करना था। अग्नि जलाकर शरीर को जैसे-तैसे गर्म करने का भी कोई साधन न था। लकडिया वर्फ से गीली थी, जो थोड़ी बाहिर थी वे भी सब गीली थी। दियासलाई भी भीगी हुई थी। अनेक उपाय किए किन्तु अग्नि न जलाई जा सकी। जब शरीर को गर्म करने का कोई साधन दृष्टि-गोचर नही हुआ तो ब्रह्मचारीजी ने प्राणायाम के द्वारा अपने शरीर को गर्म किया और तब कही जाकर शरीर का कम्पन यत्किंचित् कम हुआ।

अमरनाथ मे एक मास तक निवास—अमरनाथ की गुफा मे महाराजजी ने अत्यन्त कठिनाई के साथ एक मास व्यतीत किया। यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए वे किसी भी सकट का सामना करने के लिए समुद्यत हो जाते थे। उनकी ज्ञान-पिपासा के सामने सभी कठिनाइया, चाहे वे कितनी ही कठोर क्यो न हो, पानी के समान पिघल जाती थी। वे कभी कातरता से उन कठिनाइयो को दूर करने के लिए प्रार्थना नही करते थे। वे केवल यही याचना करते थे कि उन सकटो और विपत्तियो को वीरतापूर्वक साहस के साथ सहन करने तथा उनका मुकाबला करने के लिए वह उन्हें बल, शक्ति और शौर्य प्रदान करे।

इस गुफा मे केवल तीन या चार कबूतर रहते थे। ये दिन मे इधर-उधर चले जाया करते थे और रात्रि मे इसमे आ जाया करते थे। आसपास न तो अन्य कोई पक्षी दृष्टिगोचर होता था, न पशु और न कोई मनुष्य। ज्ञान-पिपासु व्यासदेवजी के अतिरिक्त वहा और कोई न था। रात्रि मे शीत की अधिकता के कारण उन्हे नींद न आती थी। इसलिए सारी रात जाप तथा ध्यान मे ही व्यतीत होती थी। जब थक जाते थे तब सिकुड कर लेट जाते थे। दिन मे रात्रि की अपेक्षा शीत कुछ कम रहता था अत दिन मे सोने और रात्रि मे जगने का एक नियम-सा बना लिया था। अमर-नाथ के पास दो नदिया बहती है—अमर गगा तथा एक और बडी नदी। ये दोनो वर्फ से ढकी हुई थी। इसलिए वहा स्नान करने तथा पीने के लिए भी पानी अप्राप्य था। बर्फ से ही प्यास बुझाई जाती थी तथा अन्य सब कार्यों के लिए भी इसी प्रकार काम चलाया जाता था। वर्फ को गलाकर इन आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सकती थी पर वर्फ को पिघलाने का कोई साधन ही पास न था क्योकि अग्नि जलाने के लिए न पास सूखी लकडी थी और दियासलाई बिलकुल भीग गई थी। भोजन बनाने का कोई साधन नही था अत जो कुलचे, आटा, चावल आदि साथ लेकर आए थे उन्हे ही खाकर निर्वाह किया। पँन्द्रह दिन तक तो कुलचे खाकर भूख शान्त की। अब केवल आटा और चावल ही शेप रहे थे। आटा खाना प्रारभ किया किन्तु यह मुह मे जाकर जम जाता था और जब गीला करके खाना प्रारभ किया तब उसके खाने से छाती मे पीडा होने लगती थी। आटा छोडकर अब कच्चे चावल खाना प्रारभ किया। ये पेट मे जाकर जम जाते थे और इससे कोष्ठबद्धता होने लगी। अत ये दोनो चीजे खाना त्याग दिया। शरीर अतिकृश होगया और शक्ति क्षीण होगई। परन्तु व्यासदेवजी अपनी धुन के पक्के थे, दृढव्रती थे, अपने निश्चय से डिगने वाले न थे। उन्होने अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए अपने शरीर को भी तृणवत् समझा। उनकी यह धारणा थी "कार्य वा साधयामि, शरीर वा पात-

यामि।" अत वे हिमालय की तरह अपने व्रत मे अटल रहे। अपने पूर्व निश्चयानुसार उन्हे एक मास तक गुफा मे रहना था, भले ही उनके सामने कितनी ही कठिनाइया क्यो न आए। उनके पास अब कोई भी ऐसी वस्तु न थी जिससे वे अपनी क्षुधा को शान्त करते और शक्ति प्राप्त करते। जब कभी मुख सूख जाता तो वर्फ को चूसकर प्यास बुझाने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार बडे कष्ट के साथ जैसे-तैसे आठ दिन व्यतीत किए, किन्तु अभी तो उन्हे वहा पर इसी कष्ट मे तीन सप्ताह और व्यतीत करने थे।

गुफा के भीतर मैदान मे हजारो मन वर्फ जमी हुई थी। इस वर्फ के ऊपर दस या बारह शिवलिङ्ग की पिण्डिया बनी हुई थी। शीतकाल मे अमर गगा का जल गुफा के ऊपर से होकर जाता है। इसी का जल अमरनाथजी की गुफा मे टपकता रहता है। शीतकाल मे तो यह जम जाता है और जब गर्मी आती है तो यह पिघलकर वह जाता है। शीतकाल मे जब जल जमना प्रारभ हो जाता है तब ये पिण्डिया बनना प्रारभ हो जाती है। गुफा मे टपकते हुए जल को जमते हुए व्यासजी ने अपनी आखो मे देखा। ज्यो-ज्यो गर्मी बढती त्यो-त्यो वर्फ भी गलती जाती। इसके परिणामस्वरुप शिवलिङ्ग की पिण्डिया भी घटती जाती और ज्येष्ठ तथा आषाढ मास तक ये शिवलिङ्ग तथा गुफा की सारी वर्फ पिघल कर वह जाती। जब यात्रा प्रारभ होती तो पण्डे लोग यात्रियो के दर्शनार्थ आने के पूर्व ही पास वाली जमी हुई नदी से लगभग सौ मन वर्फ का ढेर लगाकर शिवलिङ्ग बना दिया करते थे। व्यासदेवजी ने चार-पाच शिवलिङ्गो को अपने सामने गलते हुए और बनते हुए देखा। इस सत्य का अन्वेषण करके उन्हे बडा हर्ष हुआ। इसके लिए उन्होने अनेक कठिनाइया उठाई, भूखे तथा प्यासे रहे, एक मास तक वर्फ मे ही निवास किया और अपने जीवन को भी खतरे मे डाला, किन्तु अपने निश्चय को पूरा करके ही उन्हे सन्तोष हुआ। जब एक मास व्यतीत होने मे केवल ३-४ दिन ही अवशेष रह गए तब उनके भूख और प्यास से मुर्झाए हुए शरीर मे कुछ बल, शक्ति, उत्साह और धैर्य-सा उत्पन्न होगया और निराशा मे आशा की झलक दृष्टिगोचर होने लगी। गुफा के कबूतर भी कभी-कभी इनके पास आकर बैठ जाते थे। इस प्रकार के कबूतरो को व्यासदेवजी ने गगोत्री और गोमुख मे भी देखा था। ये इन कबूतरो को प्राय चावल खिलाया करते थे। उनके पास चावल तो बहुत थे, पर कच्चे चावलो के खाने से उन्हे कोष्ठबद्धता हो जाती थी और टट्टी मे खून आने लगता था, इसलिए उन्होने खाए नही और कबूतरो को ही डाल दिए। ये ब्रह्मचारीजी से स्नेह करने लग गए थे और इन्हे बडे प्रेम और कृतज्ञता की दृष्टि से देखा करते थे। कभी-कभी एक-दो काली चिडिया भी आ जाती थी। यात्रा प्रारभ होने से पूर्व बस यही इनके मित्र थे। पूरे ३० दिन बीत जाने के बाद इन्होने नीचे उतरने की तैयारी की। जो कुछ थोडा सामान था उसे बाधकर कधे पर रखा किन्तु उसे उठाने की शक्ति उनमे नही थी। माधोरामजी ने कुली भेजने का वचन दिया था किन्तु उन्होने नही भेजा, क्योकि उनको यह समाचार कुलियो ने दिया था कि ब्रह्मचारीजी तो वर्फ मे दब गए होगे। सोनमर्ग के लोगो ने इनके अनिष्ट का निश्चय कर लिया था क्योकि अमरनाथ मे कोई जीवन का साधन न था।

सोनमर्ग के लिए प्रस्थान——व्यासदेवजी ने कधे पर अपने कम्बल और दो-तीन वर्तन जो साथ थे रखे और चलना प्रारभ किया। दुर्वलता तथा शीत के कारण उनके

पैर कापते तथा लडखडाते थे। मार्ग मे कई वार गिर भी गए थे। सारा शरीर काला पड गया था और कृश होगया था। वाल वहुत वढ गए थे। शरीर मे शक्ति केवल नाममात्र को ही शेष रह गई थी, किन्तु हिम्मत और साहस की कमी न थी। मार्ग मे भोजपत्र की पतली-सी दो लकडिया मिल गई थी। इन्ही के सहारे मे मार्ग पर चलते रहे।

भालू से मुकावला तथा व्यासदेवजी का प्रत्युत्पन्नमतित्व—अभी व्यासदेवजी केवल छ या सात मील ही चले होगे कि उनको सामने से एक भूरे रग का वडा वलवान् और शक्तिमान् भालू आता दिखाई दिया। उसका सामना करने के लिए डटकर खडे होगए। किन्तु एक मास से आहार विलकुल नही किया था। वडी विपत्ति मे थे। अत्यन्त कृश होगए थे। शरीर शक्तिहीन होगया था। किन्तु आत्मिक वल मे किसी प्रकार की न्यूनता न आई थी। इसी के वल पर भालू का सामना करने के लिए कटिवद्ध होगए पर शरीर ने साथ नही दिया। न पैरो मे वहा से भाग जाने की शक्ति थी और न हाथो मे उससे लोहा लेने की। इससे पूर्व कई वार रीछो, हाथियो से अपने ब्रह्मचर्य के वल से सफलतापूर्वक लडाई कर चुके थे किन्तु इस समय शरीर विलकुल शक्तिहीन था। उन्हे आशका हुई कि कही उन्हे निर्वल जानकर यह भयकर भालू उन पर आक्रमण न कर दे। इस भय के उपस्थित होते ही उन्हें एक उपाय सूझा। तुरन्त दोनो लकडियो के ऊपर अपने कम्वल को कुछ टीस देकर मजवूती से पकड लिया। दोनो लकडियो को अपने दोनो हाथो से ऊपर को उठाकर स्वय उस कम्वल के नीचे आकर और अपने को उसमे छिपाकर जोर-जोर से शोर-गुल मचाकर नाचने, कूदने और छलागे मारने लगे। भालू इससे वडा भयभीत होगया और नदी की ओर भाग गया, टट्टी करते हुए।

भूत का भय—निर्वलता के कारण व्यासदेवजी वहुत धीरे-धीरे चलते हुए रात्रि मे वालतल पहुचे। इन्होने डाकवगले के चौकीदार को उच्चस्वर से पुकारा। वह उस समय भोजन वना रहा था। उसे उस समय किसी के वहा आने की सभावना न थी अत शान्तिपूर्वक भोजन वनाने मे व्यस्त था। अचानक अपना नाम सुनकर वह भयभीत होगया और जव वाहिर निकल कर आया तो वह व्यासदेवजी को पहिचान नही सका। उनका शरीर अत्यन्त कृश तथा दुर्वल था। मुख काला तथा कान्तिहीन था। केवल शरीर का ढाचा ही रह गया था। जव व्यासजी ने अपना परिचय चौकीदार को दिया तव वह और भी अधिक भयभीत हुआ और कापने लगा। उसने सुन रखा था कि ब्रह्मचारीजी अमरनाथ की वर्फ मे गल गए है, अत उसे उनको देखकर भी यह विश्वास नही हुआ कि वे जीवित हैं। उसके मन मे झट यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि यह सोनमर्ग वाले वावा का भूत है जो मुझे भक्षण करने के लिए यहा आया है। वह 'भूत' 'भूत' कहकर चिल्लाने लगा। व्यासजी के वार-वार समझाने पर भी उसे कुछ समझ नही आया और भयभीत होकर अपनी रोटी तवे पर छोडकर ही सीधा सोनमर्ग भाग गया।

व्यासदेवजी अत्यन्त क्षुधार्त थे अत उस मुसलमान की रसोई मे ही उसीका मकई का आटा लेकर चार मोटी-मोटी रोटी वनाकर खाई। एक मास से अन्न खाया ही नही था अत मक्ई की रोटी ने पेट मे जाकर वडा विकार किया। वे उदर पीडा

मे व्याकुल हो उठे। झट गर्म पानी किया और उसमे कुछ नमक मिलाकर पीया। थोडे ही समय मे उन्हे कई वमन हुए और इसके पश्चात् उनके कष्ट का निवारण हुआ। रात भर चौकीदार की रसोई मे ही शयन किया। प्रात काल उठकर पास ही एक वृक्ष के नीचे बैठकर जाप और ध्यान करने के लिए बैठ गए। चौकीदार शाबाना के आने पर ही व्यासदेवजी ने आगे चलने का विचार किया था। दिनभर उन्होने वही विश्राम किया और दिनभर शावाना के लौटने की प्रतीक्षा करते रहे। दूसरे दिन प्रात काल चौकीदार पाच अन्य आदमियो के साथ बालतल आया। जब वे डाकबगले से चौथाई फर्लांग रह गए तब वे सब भयभीत होकर खडे होगए और भूत के विषय मे अपनी-अपनी आशकाए और विचार एक दूसरे से प्रकट करने लगे। काश्मीरी लोग स्वभाव से ही भीरु होते है। उनमे आगे बढने की हिम्मत नही थी। वे स्वनिर्मित भूत के भय से अपनी मूर्खतावश भयभीत हो रहे थे।

इधर व्यासदेवजी ने सोचा कि ये पाचो कही आत्मरक्षार्थ मुझपर आक्रमण ही न करदें, अत वे पास वाले एक पेड पर चढ गए। इन लोगो ने सोचा कि भूत उनके भय के कारण पेड पर चढ गया है। इससे उनमे हिम्मत तथा साहस बढा तो, किन्तु भय ने उनका पीछा नही छोडा, इसलिए उस वृक्ष के समीप आने का साहस नही हुआ। दूर खडे होकर ही भूत के विषय मे बाते करते रहे। व्यासदेवजी उनके भय को भगाने तथा उनको शान्ति देने के उद्देश्य से पेड पर से उतरे। उन्हे उतरते देखकर ये लोग बडे जोर से भागे। उन्होने सोचा कि उन्हे भक्षण करने के लिए भूत पेड पर से उतरा है। ब्रह्मचारीजी ने जोर-जोर से चिल्लाकर उन्हें विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया और कहा कि मै कोई जिन्न या भूत नही हू। मैं तो वही महात्मा हू जो एक मास पूर्व यहा से अमरनाथ गया था, पर उन मूर्खो को किसी प्रकार से भी विश्वास नही आया और वे उन्हे भूत ही समझते रहे। उन भागते हुए आदमियो का व्यासदेवजी ने इस आशय से पीछा किया कि वे उन्हे पकडकर यथार्थता समझाएगे, क्योकि ऐसे तो वे उनके पास आते न थे। जब वे भाग रहे थे तो उनमे से कोई मार्ग मे गिर गया, और किसी की लाठी हाथ से छूट गई। शावाना चौकीदार भी भागते-भागते गिर गया। उन्होने तुरत पास जाकर उसे उठाया। वह काप रहा था। उसके शरीर से पसीना टपक रहा था। भय के कारण उसने अपनी आखे बन्द कर ली थी और जोर-जोर से रो रहा था। व्यासदेवजी ने इसे बहुत पुचकारा, प्यार किया, ढाढस बधाया और तब कही बडी देर मे उसे होश आया। जब उसकी बुद्धि ठिकाने आई तब कही जाकर उसे विश्वास हुआ कि यह भूत नही किन्तु वही महात्मा है जो एक मास पूर्व सोनमर्ग से अमरनाथ गए थे। वह बडा लज्जित हुआ और उसने बहुत पश्चात्ताप किया। जब ये सब बगले पर पहुचे तब इन सबने एक दूसरे से खूब हसी मजाक किया। व्यासदेवजी ने अपने लिए चावल बनाए और भोजन किया। इसके पश्चात् उन्होने इनका सामान उठाया और सब सोनमर्ग की ओर चल दिए। शनै-शनै चलकर सायकाल ५ बजे सोनमर्ग पहुचे। ब्रह्मचारीजी को देखकर सबको हार्दिक प्रसन्नता हुई और सबने मिलकर उनका बडा स्वागत किया। उनका शरीर दुर्बल तथा शक्तिहीन था अत यही पर पण्डित माधोरामजी के पास पन्द्रह दिन तक निवास किया। पण्डितजी ने उनका पूरा आतिथ्य किया और खूब सेवा की। जब व्यासजी कुछ सशक्त हुए और

थकान दूर हुई तब वहा से मुफ्ती बाग के लिए प्रस्थान किया। वहा पर मुफ्ती बाग मे पडित मुकुन्दजू के पास कुछ दिन तक रहे। ब्रह्मचारीजी ने मुकुन्दजू को बड़े रोचक तथा विनोदपूर्ण ढग से अपनी यात्रा का विवरण सुनाया। उनकी कठिनाइयों को सुन कर वे दु खी हुए किन्तु भालू तथा शावाना की कहानी सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। व्यासजी पुन अमरनाथ दो बार गए थे। एक बार श्रावण मे तथा दूसरी बार आश्विन मे। इनका उद्देश्य अमरनाथ की गुफा मे स्थित शिवलिङ्ग की प्रतिमा, जिसके लिए कहा जाता था कि वह पन्द्रह दिन मे वढती तथा पन्द्रह दिन तक घटती है, के विषय मे तथ्य और यथार्थता का पता लगाना था। दोनो यात्राओ मे उन्होने सत्य का अन्वेषण किया और यह सिद्ध कर दिया कि यह प्रतिमा न तो क्षय को प्राप्त होती है और न वृद्धि को ही। ये दोनो यात्राए उन्होने पडित मुकुन्दजू के निवासस्थान से ही प्रारभ की थी। इन दोनो यात्राओ का व्यय भी इन्हे पडितजी ने ही प्रदान किया था। ये वडे उदार सज्जन थे और व्यासदेवजी का वडा आदर करते थे तथा उनके ब्रह्मचर्य, योग, समाधि तथा व्यक्तित्व से वडे प्रभावित थे। कुछ दिन तक उनके पास निवास करने के पश्चात् इन्होने अमृतसर जाने की इच्छा प्रकट की। अभी उनकी कमजोरी पूरी तरह से गई नही थी। शरीर भी अभी कृश ही था, अत पण्डितजी ने उन्हे अमृत-सर जाना स्थगित करने के लिए वहुत आग्रह किया, किन्तु उन्होने उनकी प्रार्थना को स्वीकार न किया और प्रस्थान कर दिया। यहा पर व्यासदेवजी ने चार मास मे गायत्री का सवा लाख तथा सवा करोड पुरश्चरण किया तथा आकार मौन और काष्ठ मौन के कठिन व्रत को धारण किया और सवा करोड गायत्री के पुरश्चरण की वडे समारोह के साथ वृहद यज्ञ तथा भोज करके समाप्ति की। इसके पश्चात् ज्येष्ठ मास मे काश्मीर के लिए प्रस्थान किया। यहा आकर पुन मुफ्ती वाग मे ही ठहरे। पूर्ववत् अपनी दिन-चर्या के अनुरूप साधना, ध्यान तथा योगाभ्यास प्रारभ कर दिया। शिकारगाह मे प्रतिदिन चार-पाच मील की सैर किया करते थे। स्नान, सध्या, प्राणायामादि भी प्राय वही किया करते थे। इस शिकारगाह मे विविध प्रकार के भालू, चीते, हिरण, वारहसिगे आदि का आधिक्य था। इन्हे इन हिंस्र जीवो को देखने का वडा शौक था। काश्मीर आने से पूर्व ही कई वार इनकी भिडन्त हाथियो, भालुओ तथा सूअरो से हो चुकी थी और अपने वल, शक्ति, साहस और शौर्य मे सदैव ये उनको भगाते रहे थे। इस शिकारगाह के चौकीदारो, जमादारो तथा अन्य राजकीय सेवको से इनका घनिष्ठ परिचय होगया था। इसलिए ये लोग इन्हें इस शिकारगाह मे स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण करने देते थे। वे इनसे जाप, ध्यान, प्राणायामादि के सम्बन्ध मे प्राय वाते सुना करते थे और इनसे उपदेश ग्रहण करते थे। ब्रह्मचारीजी वैद्यक भी जानते थे। इन लोगो मे से जव कोई रोगी हो जाता था तो ये अपने पास से औषध देते और उन्हें रोग मुक्त कर देते थे, इसलिए ये सभी सेवक इनका वडा सम्मान करते थे।

शिकारगाह मे भालुओ से कई वार तथा सूअरो से दो वार मुकावला—एक दिन प्रात काल व्यासदेवजी शिकारगाह मे एक शुद्ध और स्वच्छ नाले के किनारे पर वैठे दातुन कर रहे थे। आसपास कई झाडिया थी। कुछ दूरी पर कई झाडिया कुछ जोर से हिल रही थी। जव इन्होने आवाज दी तो इनका हिलना वन्द हो गया किन्तु थोडी देर के पश्चात् वे फिर हिलने लगी। झाडियो मे कौन छिपा है यह जानने के

लिए इन्होने उनमे एक पत्थर वडे जोर से फेका। उन झाडियो मे एक भालू छिपकर इनके फल खा रहा था। पत्थर के लगते ही एक भूरे रग का भालू क्रोध से गुर्राता हुआ वाहिर निकल आया। वह इनके ऊपर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गया। ये वडे प्रत्युत्पन्नमति तथा साहसी थे। इन्होने तुरन्त अपना वल्लम उठाया और उसकी छाती मे जोर से भोक दिया। भालू ने इन के दोनो हाथ पकड लिए और वार-वार अपने पजे से उनकी आखो पर प्रहार करने का प्रयत्न करता रहा पर जव वह पजा उठाता तभी व्यासदेवजी तुरत अपना मुह पीछे कर लेते थे। इस प्रकार कई मिनट तक लडाई होती रही। पास ही एक पत्थरो की वुर्जी-सी वनी हुई थी। इन पत्थरो मे चूना नही लगाया गया था। व्यासदेवजी भालू को अपने वल्लम से धकेलते हुए इस वुर्जी के पास लेगए और वडे जोर से भालू को इस वुर्जी से धक्का दिया। धक्का लगते ही वुर्जी के पत्थर धडाधड नीचे गिर गए। इनकी आवाज को सुनकर भालू भयभीत होकर छोडकर भाग गया।

व्यासजी ने हिंस्र जीवो मे भयभीत होना कभी सीखा ही न था। उनसे वच कर दूर जाना उन्हें पसन्द न था। उनका वीरतापूर्वक सामना करना, उन्हें छेड कर उन्हे भगाने मे इन्हे वडा आनन्द आता था और कभी-कभी तो स्वय ही उनसे लडाई मोल ले लेते थे। एक दिन एक वडी रोचक घटना हुई। उस दिन कई काश्मीरी पण्डित इनके साथ इस जगल मे भ्रमणार्थ गए। इस जगल मे सेवो के पेड वहुत थे। ये सव इन पेडो पर चढ कर सेव खाने लगे। व्यासदेवजी ने अपनी धोती को फटने के भय से उतार कर एक झाडी पर रख दिया और स्वय सेव खाने के लिए पेड पर चढ गए। दैवयोग मे एक भालू वहा पर सेव खाने के लिए आ निकला। शायद इसने व्यासदेवजी की भालुओ को परास्त करने की वात सुन ली थी अत वह डर के मारे भागते हुए उनकी धोती उठाकर ले गया। उसका पीछा इन्होने वहुत दूर तक किया किन्तु वह भागकर एक ऊची पहाडी पर चढ गया और व्यासजी के हाथ नही आया।

जहा व्यासदेवजी जाए वही भालुओ को भी जाने मे मजा आता था। एक दिन की वात है कि रगीलसिंह और ये अखरोट खाने के लिए गए। यहा के अखरोट वडे मीठे और कागजी होते है। इन्हें ये वडे अच्छे लगते थे। जव ये अखरोट खाने के लिए पेडो पर चढे तव उन्होने कई भालू पेडो पर अखरोट खाते हुए देखे। इनसे छेड करने के लिए व्यासदेवजी के दिल मे गुदगुदी उठने लगी। वे तुरन्त पेड पर से उतरे और नीचे से भालुओ के ऊपर पत्थर फेकना प्रारभ कर दिया। एक-एक करके वे सव भाग गए। जगलो मे रहते-रहते ब्रह्मचारीजी वनैले पशुओ के स्वभाव को समझने लग गए थे। वे जानते थे कि भालू कभी एकत्रित होकर सामूहिक रूप से आक्रमण नही करते। इनमे से कई तो वृक्षो पर से कूदे और अपने हाथ-पैर तुडाकर भागते वने।

इन भालुओ के लिए व्यासदेवजी का नाम ही भयोत्पन्न कर देता था। जहा कही वे इनको देख लेते वही से तुरन्त भाग जाया करते थे। एक वार होशियापुर निवासी ठाकुर मोतीसिंह के साथ ये भ्रमण के लिए उपरोक्त वन मे से जा रहे थे। एक भालू वृक्ष पर चढ कर सेव खा रहा था। व्यासजी को देखते ही इसने पेड पर

से छलाग लगाई और बेतहाशा भागता डरता चला गया। ये उससे मनोरजन करना चाहते थे किन्तु उनके मन की उनके मन मे ही रह गई। यही नही, एक और भालू भी इसी प्रकार से व्यासदेवजी को देखकर भय के मारे कापने लगा और टट्टी फिरता भाग गया था। सरदार पूर्णसिंह शिकारगाह का जमादार था और उसके आधीन १०-१२ नौकर थे। ये सभी ब्रह्मचारीजी का बडा सम्मान करते थे। एक दिन व्यास-देवजी को दाधी गाव जाना था। पूर्णसिंह अपने कधे पर बदूक रखकर उनके पीछे-पीछे चलने लगा। उस जगल मे एक झाडियो के समूह मे से एक भालू निकला और पूर्णसिह को जोर से धक्का देकर उसे चित जमीन पर पटक दिया और बन्दूक छीनने लगा, किन्तु व्यासदेवजी को लकडी हाथ मे लेकर आते हुए देखकर उसके भय के मारे प्राण निकलने लगे और वह दुलक्की लगाता हुआ भाग गया।

एक दिन महाराजा हरिसिहजी शिकारगाह मे शिकार खेलने के लिए आए। राजकर्मचारियो ने शिकार का पूरा-पूरा प्रबध किया। एक मचान बनाई गई जिस पर बैठकर महाराजा साहिब शिकार मारेंगे। फिरायती लोग भालू को आवाज देकर उसे घेरकर मचान के सामने लाएगे और तब महाराजा ऊची मचान पर से उसको गोली मारेंगे। युद्धप्रिय क्षत्रिय जाति के महाराजा की रक्षा के लिए कितना भारी प्रबध किया गया, किन्तु हमारे व्यासदेवजी जगल के पेडो की टहनिया तोडकर ही इन भालुओ को बात की बात मे भगा दिया करते थे। इन्हें ब्रह्मचारीजी मे इतना भय लगने लग गया कि उनको देखने मात्र से भाग खडे होते थे। महाराजा कैसे शिकार खेलते हैं, इसे देखने के लिए ये भी शिकारगाह गए और सारा तमाशा देखकर खूब हसे। जमादार ने इनकी रक्षा के लिए कई कर्मचारी नियत कर दिए थे, यद्यपि इन्होंने आग्रहपूर्वक कहा था कि उन्हे किसी प्रकार के रक्षको की आवश्यकता नही है। शिकारगाह मे इधर-उधर घूमते हुए वे एक पचगाव के चश्मे मे पानी पीने के लिए चले गए। इनमे से एक आदमी के पास शहनाई थी। जल पी चुकने के पश्चात् व्यासजी ने उससे शहनाई बजाने के लिए कहा। उसने बजाना प्रारभ किया। उसी समय एक भालू झाडियो मे से वहा निकल आया और शहनाई की धुन पर उसने नाचना, कूदना, उछलना प्रारभ कर दिया और बडी मस्ती मे आकर कुछ देर तक नाचता ही रहा। वे सब यह नजारा देखकर बडे प्रसन्न हुए। व्यासजी का तो हसते-हसते सास फूल गया और पेट दुखने लगा। थोडी देर नाच चुकने के बाद वह भालू पहाडी पर भाग गया।

व्यासदेवजी को इस शिकारगाह के जगली जानवरो को देखकर हर्ष, मनो-रजन तथा कौतूहल होता था। कभी-कभी अपने मनोरजन के लिए जानबूझकर भी छेडछाड किया करते थे। इनको कभी भय तो इनसे लगता ही नही था। ये तो एक प्रकार से इन्हें अपना सहचर समझने लग गए थे। नित्यप्रति कोई न कोई जानवर इन्हे अवश्य मिल जाया करता था। इनकी निर्भयता को देखकर आसपास के लोगो का विश्वास होगया था कि ब्रह्मचारीजी ने इन जानवरो को अभिमन्त्रित कर रखा है और ये सब इनके वशीभूत हो रहे हैं, क्योकि ये अकेले ही वनो मे घूमते थे पर कोई जानवर इन्हे तकलीफ नही पहुचाता था। नगर के कई लोग व्यासजी के साथ इन जगली जानवरो को देखने के लिए जाया करते थे। जब व्यासदेवजी साथ होते थे तो कोई भी

हिंस्र जानवर किसी पर आक्रमण नही करता था। जगली जानवरो मे आपूर्ण इस शिकारगाह मे किसी की भी अकेले जाने की हिम्मत नही होती थी। इसमे केवल राजे-महाराजे, रेजिडेट तथा वायसराय आदि बडे-बडे आदमी ही शिकार खेलने के लिए आते थे। व्यासदेवजी ने इस शिकारगाह मे बारहसिंगो के सैकडो ही झुण्ड देखे थे। इसमे महाराजा हरिसिंह ने मछलिया पालने के लिए एक बहुत बडा तालाब बनवाया था। इसकी चारदीवारी पाच फुट ऊची थी और इसमे एक बडा फाटक लगवाया गया था। अभी इसमे मछलिया रखी नही गई थी। एक दिन की बात है कि इस अहाते मे कुछ जगली सूअर चर रहे थे। व्यासदेवजी ने विनोद मे आकर फाटक बन्द कर दिया। उन्होने मनोरजनार्थ इनको तीन-चार पत्थर मारे। सूअर भयभीत होकर फाटक की ओर भागे पर निकल न सके क्योकि फाटक बन्द था, अत वे अहाते के भीतर ही इधर-उधर भागते रहे। इनमे से एक बडा शक्तिशाली सूअर था। उसने अहाते की दीवार मे बडे जोर से टक्कर दी, दीवार को तोड दिया और ये सब बाहिर भाग गए। इनमे से जो अधिक शक्तिशाली थे वे एकत्रित होकर व्यासदेवजी पर आक्रमण करने के लिए आए। दीवार पर अपने आगे के पैर रखकर ये जोर-जोर से फुकारे मारने लगे। उन्होने अपनी बल्लम इनकी तर्फ की और पत्थर भी उठा-उठाकर मारे पर ये वहा से किंचिन्मात्र भी न हटे और धक्के दे-देकर दीवार को तोडने का प्रयत्न करते रहे। अब व्यासदेवजी को एक उपाय सूझा। वे तुरन्त फाटक पर चढ गए और वहा जाकर जमकर बैठ गए। तब वे सूअर तुरन्त भयभीत होकर भाग गए। कुछ दिनो के पश्चात् उन्ही सूअरो का झुण्ड पुन व्यासदेवजी को दिखाई दिया। इनमे से सर्वाधिक शक्तिशाली सूअर ने सामने से भागकर इन पर आक्रमण करना चाहा। वह गोली की तरह सीधा भागकर इनकी तर्फ आया पर व्यासदेवजी तुरन्त एक पेड पर चढ गए। शीघ्रतावश ये अपनी बल्लम नीचे ही छोड गए थे। यह सूअर बहुत देर तक नीचे खडा रहा और व्यासदेवजी पेड की टहनिया तोड-तोडकर उसके ऊपर फेकते रहे। अन्त मे निराश होकर वह वहा से भाग गया। ये घटनाए कुछ आगे की और कुछ पीछे की है अत उन्हे एक जगह लिख दिया है।

पडित मुकुन्दजू के पोते शम्भुनाथ का विवाह था, इसलिए वे अब नगर मे जाकर रहने लग गए थे। उन्होने अपने पुत्र गोपीनाथ को व्यासदेवजी को निमत्रित करने के लिए भेजा। ये वर और वधू को आशीर्वाद देने के लिए उनके मकान पर गए और एक सप्ताह वहा ठहरे।

अमृतसर के लिए प्रस्थान

प० मुकुन्दजू के पोते के विवाह के पश्चात् व्यासदेवजी ने अमृतसर के लिए प्रस्थान किया। यहा मोतीरामजी की बगीची मे अपनी कुटिया मे निवास किया। अब पुन दर्शनशास्त्र पढने की रुचि जागृत हुई और प० हरिश्चन्द्रजी से न्यायदर्शन और वैशेषिक पढना प्रारभ किया। निरुक्त भी पढना शुरू कर दिया और साथ न्याय-मुक्तावली भी। ये दोपहर के बारह बजे से पाच बजे तक इनका अध्ययन करते थे। लगभग छ मास तक इनका अध्ययन करते रहे।

एक योगी से समागम—एक दिन मोतीरामजी की बगीची मे खद्दर की एक चादर ओढे, नगे पैर तथा कृश शरीर एक योगी सन्त आए। व्यासदेवजी को योग मे

अत्यधिक रुचि थी और सदा ही किसी योग्य योगी की तलाश मे रहते थे। इस योगी को देखकर इन्हे बडी प्रसन्ता हुई और उनका वडा स्वागत किया। ये महात्मा हिसार की ओर के रहने वाले तथा वडे विद्वान् वीतराग और त्यागी योगी थे। द्वन्द्वो को सहन करने का इन्होने खूब अभ्यास किया था। दो कौपीन तथा एक खद्दर की चादर ही इनकी सम्पत्ति थी। ये योग और साख्य मे पारगत तथा वडे सिद्ध पुरुष थे। अपना नाम इन्होने योगीराज वताया था। व्यासदेवजी ने इनसे योग सीखने का विचार किया। योगीराज ने इनसे दो छटाक मूग की दाल और एक छटाक घी की व्यवस्था करने के लिए कहा। इसके लिए मनीआर्डर से रुपया मगवाकर देने का वायदा किया। उन्होने अपनी यह भी इच्छा प्रकट की कि जो व्यक्ति दाल बनाएगा उसको वेतनरूप मे कुछ दे दिया जाएगा। कहा कि मैं २४ घण्टे मे केवल यही खाता हू क्योकि योगी के लिए यही सर्वोत्तम भोजन है। व्यासदेवजी योग की सिद्धियो आदिक के विषय मे कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहते थे अत उनकी सेवा का सपूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया। इन्होने उनसे योगसूत्र वर्णित अणिमादि सिद्धियो के बारे मे जिज्ञासा की और निवेदन किया कि कुछ सिद्धिया प्रत्यक्षरूप से दिखाने की कृपा की जाए। योगीराज नवयुवक योगी व्यासदेवजी की योग के प्रति जिज्ञासा और रुचि देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए, वचन दिया कि अष्ट सिद्धियो मे से एक सिद्धि आपको अवश्य दिखाई जाएगी। योगीराज अढाई मास तक मोतीराम के बगीचे मे रहे। दोनो योगियो मे योग सम्बन्धी वार्तालाप प्रतिदिन होता था। जब योगीराज के वहा से जाने मे केवल थोडे से ही दिन रह गए तब सिद्धि प्रत्यक्षरूप मे दिखाने के लिए व्यासदेवजी ने आग्रह किया। इन्होने उनकी इच्छा पूर्ति के लिए उन्हे पूरा विश्वास दिलाया। ये योगीराज किसी से आवश्यकता से अधिक वार्तालाप नही करते थे। दिन-रात अपनी कुटिया के दरवाजे वन्द करके उसमे रहा करते थे। प्राय चारपाई पर लेटे रहते थे। लग-भग दस-ग्यारह बजे स्नानादि नित्य कर्म करने के लिए कुटिया से बाहर निकलते थे। एक दिन योगीराज ने सिद्धि दिखाने की इच्छा प्रकट की और व्यासदेवजी से एक कुटिया तैयार करने, एक कुशा का आसन उसमे विछाने, एक लोटा जल का उसमे रखने, कुटिया के झरोखे-रोशनदानादि को वन्द करवाने आदि के लिए कहा और साथ ही चार दिन के लिए कुटिया पर पहरेदारो के प्रवन्ध के लिए भी कहा। इसमे योगीराज समाधि लगाना चाहते थे। उन्होने व्यासजी को समझाया कि जब वे भीतर जाकर समाधि लगा ले तब कुटिया मे ताला लगा देना, उस पर सील लगा देना, एक व्यक्ति को सावधानतापूर्वक पहरा देने के लिए तैनात कर देना। व्यासदेवजी को यह सब सुनकर थोडा आश्चर्य हुआ क्योकि तीन-चार दिन की समाधि तो वे प्राय लगाया करते थे किन्तु कभी किसी पहरेदार की आवश्यकता उन्होने अनुभव नही की। इन्होने योगीराजजी की आज्ञानुसार सब प्रवध कर दिया। इस समाधि मे क्या विलक्षणता थी इसे समझ न सके। योगीराज ने स्नानादि करके ८ वजे कुटिया मे प्रवेश किया और ९६ घटे की समाधि प्रारभ कर दी। उस समय वहा पर पन्द्रह-बीस आदमी उपस्थित थे। इस समाधि की धूम सारे अमृतसर मे फैल गई। ९६ घण्टे के पश्चात् जब समाधि खुलने का समय आया तो वहा पर सैकडो नर-नारी एकत्रित होगए। जब ताला खोला गया तो उसमे योगीराज नही थे। वे अन्तर्ध्यान हो चुके थे। सबको बडा आश्चर्य हुआ। इसके पश्चात् योगीराजजी के दर्शन-लाभ कभी नही हुए।

पुनः काश्मीर प्रस्थान

गर्मी का पंजाब मे बडा प्रकोप रहता है। योग साधना के लिए शीतप्रधान प्रदेश उपयुक्त रहता है, अत व्यासदेवजी ने काश्मीर के लिए प्रस्थान कर दिया। अपनी प्रारंभिक साधना का प्रारभ इन्होने यही से किया था इसलिए उस स्थान से उन्हें विशेष अनुराग था। जब ये काश्मीर पहुचे तो पंडित मुकुन्दजू के पुत्र पंडित गोपीनाथजी इनके पास आए और उन्हे मुफ्ती बाग मे ही निवास करने के लिए निवेदन किया और विश्वास दिलाया कि आपको किसी प्रकार का कष्ट नही होगा। आपकी सुख-सुविधा की सारी व्यवस्था कर दी जाएगी। इनके पिताजी का स्वर्गवास हो चुका था इसीलिए इन्हें यह सब बाते कहने की आवश्यकता हुई थी। पण्डित मुकुन्दजू का व्यासदेवजी से बडा स्नेह था। उनका बडा आदर करते थे और उनसे विविध विषयो पर प्राय उपदेश सुना करते थे। पण्डित गोपीनाथ के आग्रह करने पर ब्रह्मचारीजी ने मुफ्ती बाग मे ही ठहरने का निश्चय किया। महात्माओ के विशेष सम्पर्क से व्यासदेवजी को रसायन बनाने का बडा शौक था। वैद्यक का भी इन्होने अध्ययन किया था। सभी रोगो की औषधिया अपने पास रखा करते थे। गरीबो को औषधिया वितरण किया करते थे। उनसे दाम नही लेते थे। इसलिए निर्धनो मे ये सर्वप्रिय थे। पहाडो पर, झरनो, झीलो और नदियो के किनारे प्राय जडी-बूटिया तथा औषधिया एकत्रित करने जाया करते थे।

तारसर, मारसर आदि झीलो पर भ्रमण—श्रावण मास मे व्यासदेवजी ने औषधिया बनाने के लिए तारसर, मारसर आदि झीलो के किनारो पर से बूटिया ढूढने का विचार किया। जिन दो मजदूरो ने इन झीलो को पहिले से देख रखा था उन मजदूरो को मजदूरी पर करके उनके ऊपर वस्त्र, बिस्तर तथा भोजन-सामग्री लदवा कर प्रस्थान किया। तीनो एक नदी के किनारे-किनारे चल दिए। इस नदी का पानी हार्वन झील मे गिरता था। यह नदी तारसर झील से निकलती है। मारसर झील से पहलगाव की नदी निकलती है। तारसर से कुछ मील की दूरी पर चन्द्रसर नामक झील है। उस झील से भी एक नदी का निकास होता है जो गावरबल चली जाती है। इन झीलो मे तारसर सबसे बडी तथा विवेकसर सबसे छोटी है जिसका जल सोनमर्ग की ओर जाता है। ये झीलें प्राय तेरह-चौदह हजार फीट की ऊचाई पर हैं। उनके एक तरफ हार्वन, दूसरी ओर पहलगाव, तीसरी ओर अमरनाथ तथा सोनमर्ग और चौथी ओर गावरबल तथा कगण हैं। व्यासदेवजी हार्वन से चलकर दूसरे दिन तारसर झील पर पहुच गए। उसके किनारे पर तो कोई वृक्ष नही थे। इसके नीचे कुछ वृक्ष अवश्य थे। यही पर एक देवदार के वृक्ष के नीचे ठहर गए। चारो ओर जडी-बूटियो तथा पुष्पो से परिपूर्ण ऊची-ऊची पहाडिया दृष्टिगोचर हो रही थी। रात्रि के समय उस स्थान से लगभग आध मील की दूरी पर इन्हें दीपक की ज्योति के समान प्रकाश दिखाई दिया। उन्होने एक कुली से, जिसका नाम अकबर था, पूछा कि सामने की पहाडी पर कैसा प्रकाश हो रहा है। जब उसने कहा कि यह बूटियो का प्रकाश है तब व्यासजी तथा अकबर दोनो उन्हे तोडने के लिए चल दिए। ज्यो-ज्यो ये आगे बढते थे त्यो-त्यो प्रकाश कम होता जाता था और जब उन बूटियो के पास पहुचे तब वह प्रकाश बिलकुल लुप्त होगया। इसलिए इन्हे कुछ पता न चल

सका कि ये बूटिया क्या थी और इनके नाम क्या थे। प्रात ६ वजे तारसर झील के किनारे गए। यह झील कई मील लम्बी चौडी है और इसके किनारे बडी-बडी पहाडियो पर बडे विस्तृत मैदान हैं जिन पर जडी-बूटियो और पुष्पो का आधिक्य है। इसके आसपास की मिट्टी मे क्षार था, इसे खाने के लिए बारहसिंगो के झुण्ड के झुण्ड आया करते थे। इसे खाकर वे नमक की पूर्ति कर लिया करते थे। इनकी क्रीडाए तथा लीलाए, उछल-कूद, फुदकना और फादना देखकर इन्हें बडी प्रसन्नता लाभ हुई। इस झील पर से बहुत सी जडी-बूटिया एकत्रित की। एक दिन घूमते-फिरते इसके किनारे दो बडे चमकदार बिलोर पत्थर उपलब्ध हुए। इनका प्रकाश हीरे के समान था। एक पत्थर मे दो स्थानो पर चमक थी और दूसरे पर एक स्थान पर। ऐसा प्रतीत होता था कि एक पत्थर मे दो हीरे तथा दूसरे मे एक हीरा तिरोहित था। इन हीरो को अमृतसर जाकर निकलवाने के विचार से अपने पास सभालकर रख लिया। मारसर झील बहुत दूर थी इसलिए ये वहा नही गए। तारसर मे ऊपर महादेव पर्वत है जो शिवलिग के आकार का है। काश्मीर मे लोग यहा यात्रा करने आया करते हैं। यहा से भी कई औषधि उपयोगी जडी-बूटिया एकत्रित की। यहा पर भी अनेक भालू, बाघादि दृष्टिगोचर हुए। अट्ठारह दिन तक विविध प्रकार की बूटिया और जडे लेकर वापस लौट आए। यह स्मरण नही रहा कि तारसर का पानी झील मे आता है या मारसर का।

होतीमर्दान के नवाब को आशीर्वाद—सैयद जवाशाहपीर नामक एक मुसलमान नवयुवक पर व्यासदेवजी के चरित्र का बडा प्रभाव था। सायकाल जब ये भ्रमणार्थ जाते तो वह उनके साथ जाता था। इसको साधु-महात्माओ का सग बडा प्रिय था। यह घण्टो ही इनके पास बैठकर उपदेश सुना करता था। यह इन्हें अपना गुरु मानता था और इनकी बडी सेवा करता था। इनके प्रति उसकी बडी श्रद्धा थी। धीरे-धीरे यह अपने साथ अन्य मुसलमानो को भी लाने लगा। ये सभी इन पर बडी श्रद्धा और विश्वास रखने लगे और इनके बडे सेवक और भक्त बन गए। हिन्दुओ मे तो इनकी ख्याति थी ही, अब मुसलमानो मे भी इनकी कीर्ति होने लगी। ये इनमे भी सर्वप्रिय बन गए।

एक दिन सैयद जवाशाहपीर व्यासदेवजी के साथ सैर करने गया। मार्ग मे होतीमर्दान के नवाब अपनी मोटरगाडी मे सैर करते हुए उधर आ निकले। इन्होने सैयद को अपने नौकर के द्वारा अपने पास बुलाया और व्यासदेवजी के विषय मे पूछताछ की। उसने इनकी बडी प्रशसा की और जब नवाब को पता चला कि ये बालब्रह्मचारी बडे विद्वान् महात्मा और महान् योगी हैं तथा सैयद के गुरु हैं तब उसने इससे कहा कि इनको बडी सिद्धिया प्राप्त होगी। अपने केवल ध्यान मात्र से ये जो चाहते होगे कर लेते होगे। ये देश, काल और अवस्था से बधे नही है। ये जहा चाहे जा सकते है, जब चाहे वहा पहुच सकते है और जिस रूप मे इच्छा हो उसी रूप मे जा सकते है। इनके लिए कोई बात असम्भव नही। तुम मेरा परिचय इनसे करवा कर मेरा एक काम इनसे करवा दो। गुलजार बेगम नामक एक युवती इसकी प्रेमिका थी। वह लाहौर मे रहती थी। यह उससे विवाह करना चाहता था किन्तु वह इस बात को स्वीकार नही करती थी। नवाब यह चाहता था कि किसी

प्रकार से व्यासदेवजी उसका मन इसकी ओर मोड दे और वह इससे विवाह कर ले। सैयद ने नवाब का परिचय तो व्यासदेवजी से करवा दिया किन्तु उसकी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए प्रार्थना नही की। उस प्रकार की बात करने की उसकी हिम्मत ही नही हुई। नवाब ने उनसे हाथ जोडकर और बडे अदब के साथ झुककर प्रणाम किया। व्यासदेवजी अपने योगबल से दूसरो के हृदय के भावो को जान लेते थे। नवाब के मन मे उस समय जो कुछ भी भाव थे वह तुरन्त समझ गए और "तुम्हारी मनोकामना सिद्ध हो" यह आशीर्वाद देकर उसे विदा किया। इस आशीर्वाद के परिणामस्वरूप लगभग एक-दो मास के भीतर ही गुलजार बेगम ने नवाब से विवाह कर लिया। ये दोनो महाराजजी का आशीर्वाद लेने के लिए अमृतसर गए और बडी कृतज्ञता प्रकट की।

सत्यनिष्ठ सिद्धो के वाक्य कभी व्यर्थ नही होते, उनकी वाणी मे जो बात निकलती है वह सदैव सत्य होती है। यद्यपि अभी व्यासदेवजी नवयुवक ही थे किन्तु योगाभ्यास और यमनियमपालन और बडी-बडी लम्बी समाधियो द्वारा इन्हें बडी शक्ति तथा योगबल प्राप्त हो गया था। अपने आशीर्वादो तथा वरदानो से इन्होने सैकडो नर-नारियो की कामनाओ को पूर्ण किया था। दुखियो का दुख हरण, पीडितो की पीडा को दूर करना, आर्तो की आर्ति को मिटाना इनका स्वभाव था।

पुन अमृतसर के लिए प्रस्थान

विजयादशमी के उपरान्त व्यासदेवजी अमृतसर पधारे और पूर्ववत् मोतीराम की बगीची मे अपनी कुटिया मे रहकर योगाभ्यास करने लगे। इस बार इन्होने उपनिषदो का शाकरभाष्य पण्डित हरिश्चन्द्रजी से पढना प्रारम्भ किया। नित्य ही पाच-छ घटे इनके पास पढने के लिए जाया करते थे और शेष समय स्वाध्याय और अभ्यास मे व्यतीत करते थे।

हिन्दू-मुसलमानो के दगे—व्यासदेवजी को पण्डित हरिश्चन्द्रजी से विदित हुआ कि नगर मे हिन्दू-मुसलमानो ने दगा कर दिया है। कटरा आहलूवालिया मे बहुत से हिन्दू मारे गए है। नगर के लगभग सारे बाजार बन्द हो गए है। हिन्दू और मुसलमान दोनो मे बडी तनातनी और खिचाव हो रहा है। पण्डितजी ने ब्रह्मचारियो को जब तक यह दगा और फिसाद बन्द न हो जाए तब तक अनध्याय रखने का आदेश दिया और जहा पर हिन्दुओ की सख्या कम है और मुसलमानो की अधिक वहा जाकर हिन्दुओ की रक्षा का प्रबन्ध करने और जहा पर हिन्दुओ की सख्या अधिक है वहा पर उन्हे आत्मसम्मान, अपनी सम्पत्ति और बहू-बेटियो की रक्षा के लिए साहसपूर्वक तैयार रहने का आदेश दिया। व्यासदेवजी को आज्ञा दी गई कि वे सब बाजारो मे घूम-घूमकर वस्तुस्थिति से पण्डितजी को अवगत करें। इन्होने आकर सूचना दी कि भाई के कटरे और लोगढ के कटरे मे मुसलमान अधिक रहते है इसलिए यहा के हिन्दू बडे भयभीत हो रहे है और निवेदन किया कि मै नहर पर जाकर हिन्दुओ की रक्षा करूगा क्योकि भाई के कटरे के एक हजार मुसलमान एकत्रित होकर फूलो के चौक मे हिन्दुओ पर आक्रमण करने की तैयारी मे लगे हुए है। इन्होने फूलो के चौक मे जाकर काहनचन्द, डाक्टर

मनोहरलाल, हकीम निक्कामल, साहवदयाल इत्यादि प्रतिष्ठित लोगो की एक सभा की और इन सवको आत्मरक्षार्थ तैयार किया। हिन्दुओ की रक्षा के लिए तत्काल एक योजना वनाई। महिलाओ और वच्चो को मकानो के अन्दर रहने का आदेश दिया गया। मकानो की छतो के ऊपर पत्थर, ईंटें रख दी गई और महिलाओ को समझाया गया कि जव भी मुसलमान हल्ला वोलें तभी उनके ऊपर पत्थरो की वौछार करे और जव वे ऊपर को देखे तो तुरन्त उनकी आखो पर मिर्चे फेंक दें जिससे वे घटो ही अपनी आखे मसलते रह जाए और हिम्मत हार जाए। सव नव-युवको तथा पुरुषो मे कुल्हाडिया, वर्छिया, छुरे और सोटिया वितरित करदी गई और छुरा तथा भाला चलाने की शिक्षा का प्रत्येक घर मे प्रवन्ध किया गया। इस कार्य के लिए मुहल्ले का प्रत्येक मकान एक प्रशिक्षण केन्द्र वन गया। ४६ नवयुवको की एक कमेटी वनाई गई जिसका काम मुहल्लो मे जाकर सवको आत्मरक्षार्थ उत्ते-जित करना और जहा हिन्दुओ का पक्ष कमजोर देखें वही जाकर उनकी सहायता करना था। इनमे ६ नवयुवको ने यह प्रण किया था कि मर जाएगे पर पीठ नही दिखाएगे। व्यासदेवजी इन नवयुवको के प्राण थे। ये ही इनको प्रेरणा देने वाले पथप्रदर्शक थे और नगर की रक्षा के लिए प्राणप्रद सजीवनी शक्ति का इनमे सचार कर रहे थे। श्रीमद्भगवद्गीता के आत्मा की नित्यता के विषय के श्लोको को सुना-सुनाकर देह की अनित्यता तथा आत्मा की नित्यता का वार-वार उपदेश करते थे और उन्हें जनरक्षा और जनकल्याण तथा समाजसेवा के लिए कटिवद्ध करते थे। जहा हिन्दुओ मे कमजोरी आते हुए देखते वही "नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक" का घोष सुना कर उन्हे उत्साहित करते थे। 'मरो या मारो' का नारा वुलन्द हो रहा था। इनसे प्रेरणा पाकर हिन्दुओ ने डटकर मुसलमानो का मुकावला किया। कई मुहल्लो मे दगा हुआ, सैकडो हिन्दू और मुसलमान घायल हुए और मृत्यु का ग्रास वन गए। हिन्दुओ की वीरता और साहस को देखकर मुसलमानो की पीठ टूट गई। लगभग एक सप्ताह तक यह मारकाट जारी रही और इसके वाद शान्ति स्थापित हुई।

सन्त रामदासजी का सत्सग—सन्त रामदासजी अमृतसर मे वडी नहर के किनारे कठिन तपस्या का जीवन व्यतीत कर रहे थे। शीशम के एक पेड के नीचे इन्होने एक चवूतरा वनवा लिया था। वे सदैव इसी चवूतरे पर वैठे रहते थे। गर्मी, सर्दी, धूप तथा वर्षा मे यही उनका मकान था। दो खद्दर की मैली-सी चादरो के अतिरिक्त कोई अन्य सम्पत्ति उनके पास न थी। दियासलाई के अतिरिक्त वे कभी किसी से कुछ नही मागते थे। अन्न का इन्होने सर्वथा परित्याग किया हुआ था। प्राय मौन रहते थे। गर्मी, सर्दी, भूख, प्यास, रागद्वेष, मान-अपमान, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वो से रहित थे। यदि कोई सेवक या श्रद्धालु भक्त इन्हें फल आदि देने जाते तो वे इसे कभी स्वीकार नही करते थे। वडे ऊचे दर्जे के तपस्वी थे। इनका वैराग्य वडा तीव्र था। ये सदा वृक्षो के पत्ते उवालकर खाया करते थे। जगली अजीरो के पत्तो पर प्राय निर्वाह करते थे। वर्षो तक ये नहर के किनारे पर रहे। व्यासदेवजी को इनका सत्सग वडा पसन्द था। वे प्राय इनके पास जाया करते थे और जव कभी इन्हें दियासलाई की आवश्यकता होती थी तो उन्हे झट जाकर दे आया करते थे।

ब्रह्मचारीजी साढे ग्यारह बजे अध्ययन के लिए पडित हरिश्चन्द्रजी के पास जाया करते थे। एक दिन सन्त रामदासजी भी उनके पीछे-पीछे चल दिए। जब ये लक्ष्मणसर बाजार मे पहुचे तो उन्होने एक हलवाई को गर्म-गर्म जलेबी घी मे से निकालते हुए देखा। सन्त रामदासजी उस हलवाई की दुकान के सामने खडे होगए। इनका सब लोग बडा सम्मान करते थे। हलवाई ने सन्तजी से पूछा कि आप जलेबी खाओगे। सन्तजी चुप रहे और उसकी बात का कुछ भी जवाब नही दिया। जब हलवाई किसी काम से भीतर चला गया तब इन्होने जलेबियो से भरे थाल मे मुह डालकर इन्हे खाना प्रारभ कर दिया। जब दुकानदार बाहिर आया और सन्तजी को थाल मे मुह डालकर जलेबी खाते हुए देखा तो वह क्रोध के मारे आगबबूला होगया और झट झरना उठाकर उनकी पीठ पर मारने लगा। इसने न आव देखा न ताव, मारता ही गया। व्यासदेवजी ने जब हलवाई को सन्तजी को मारते हुए देखा तो उससे कहा कि सन्तजी को मत मारो, जितनी जलेबी ये खाते है खाने दो, सारे थाल के दाम चुका दिए जाएगे, और रामदासजी से कहा कि आपने जलेबी खाने की कभी इच्छा प्रकट नही की। आप मुझे आज्ञा देते तो मै आपको जितनी आवश्यकता थी उतनी जलेबिया लाकर दे देता। आपने दुकानदार का सारा थाल क्यो झूठा कर दिया ? सन्तजी ने उत्तर दिया कि यदि आप ही सब कुछ कर देते तो इस सन्त को मार कैसे पडती और जिह्वा को वश मे न रख सकने के कारण दण्ड कैसे मिलता। ये २६ साल से अपने मन को जलेबिया खाने से रोक रहे थे। उसके ऊपर बडा नियत्रण रखते थे। वर्षों तक जलेबिया खाई थी किन्तु इनकी भूख शान्त नही हुई थी। ज्ञानेन्द्रियो मे रसना बडी बलवती है। काम और रसना पर विजय पाना बडा दुस्साध्य है। भोग भोगने से कभी शान्त नही होते और यदि विषयो से मन तथा इन्द्रियो को रोका भी जाए तो इनका रस बना रहता है। इनका स्वाद नष्ट नही होता। जो प्रकट रूप से तो इन्द्रियो को वश मे कर लेते है किन्तु मन मे उनका ध्यान करते रहते हैं, ऐसी स्थिति को भगवान् श्रीकृष्ण ने मिथ्याचार की कोटि मे रखा है। भर्तृहरिजी ने भी ऐसे ही व्यक्तियो के लिए कहा है "भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।" सन्तजी के मन को हलवाई ने बडा भारी दण्ड दिया। इस मार से वे प्रसन्न थे क्योकि उनका विश्वास था कि इस भारी मार को खाने के बाद अब जलेबी देखकर मुह मे पानी नही भरेगा। इसे दण्डित करने के लिए ही सन्तजी ने हलवाई के जलेबियो से भरे थाल मे मुह डाला था। जानबूझकर ही इन्होने ऐसा किया था। इन्होने हलवाई पर किसी प्रकार का क्रोध नही दिखाया। उसकी प्रशसा की और इस दण्ड के लिए उसे धन्यवाद दिया। हलवाई ने उनके पैरो मे सिर रखकर क्षमा-याचना की। रामदासजी हलवाई को आशीर्वाद देते हुए नहर के किनारे अपने स्थान पर चले गए।

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् व्यासदेवजी सीधे सन्त रामदासजी के पास गए और बाजार मे जो कुछ हुआ था उसके लिए बडा आश्चर्य व्यक्त किया। २६ साल तक कठिन तपस्या करने पर भी ये एक इन्द्रिय पर विजय प्राप्त न कर सके तो शेष ६ इन्द्रियो पर विजय पाने के लिए तो अनेक जन्म धारण करने की आवश्यकता होनी चाहिए। जो सन्त वर्षों से केवल पत्ते उबालकर खा रहा हो, जो सर्दी, गर्मी, धूप, वर्षा एक चबूतरे पर बैठकर काट रहा हो, जो कभी न भिक्षा मांगता हो

और न किसी से किसी प्रकार की भेंट स्वीकार करता हो और जो पूर्ण रूप से अपरिग्रही हो, यदि उसकी यह स्थिति हो सकती है तो फिर छोटे-मोटे साधुओ की क्या हालत होती होगी ! सन्तजी ने व्यासदेवजी से सब बात सविस्तार कही। वे हठपूर्वक कई वर्षो से शम और दम का अभ्यास कर रहे थे। पर उनमे ज्ञान और वैराग्य की न्यूनता थी। प्रबल ज्ञान और वैराग्य के बिना इन्द्रियो पर विजय पाना असभव है। सर्वप्रथम इन्द्रियो और इनके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, तब आत्मविज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना सब साधनाए व्यर्थ है। सन्तजी को रसनेन्द्रिय के जीतने मे इतने वर्ष लगे तो शेष इन्द्रियो की तो बात ही बहुत दूर है। व्यासजी ने कहा कि षट् रस का आस्वादन करना रसना का धर्म है, इसे आप कैसे हटा सकते है ? इसीलिए तो गीता मे भगवान् ने कहा है कि "प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रह किं करिष्यति।" इसका बडा सुन्दर उत्तर सन्तजी ने दिया "जलेबी खाने मे रस की बात नही थी। वहा तो आसक्ति की बात थी। शरीर की आवश्यकता की पूर्ति तो गुड और चीनी खाकर भी की जा सकती थी। आसक्तिपूर्वक किसी भी इन्द्रिय के विषय को ग्रहण करना राग है। भोग मे आसक्ति ही तो बन्धन का कारण है।" इस घटना के पश्चात् सन्तजी अमृतसर मे नही रहे। सट्टोरे लोग इन्हें बहुत तग किया करते थे। श्रद्धालुओ, भक्तो और सेवको की सख्या भी बहुत होगई थी। प्राय सारा दिन कोई न कोई आते ही रहते थे। इससे इनकी साधना और भजन मे क्योकि विघ्न उपस्थित होता था अत ये वहा से कही अन्यत्र चले गए।

व्यासदेवजी की रसनेन्द्रिय मे आसक्ति—व्यासदेवजी ने जब से गृह-परित्याग किया था तब से वे स्वयपाकी थे और अभ्यास करते-करते भोजन बनाने मे सिद्धहस्त होगए थे। आलू और मटर का मौसम अभी प्रारभ ही हुआ था कि इन्होने इन दोनो को मिलाकर सब्जी बनाई। वह अत्यधिक स्वादिष्ट बनी। खाते-खाते पेट तो भर गया किन्तु रसनेन्द्रिय की शान्ति नही हुई। वह अधिकाधिक खाना चाह रही थी। इन्हे तुरन्त सन्त रामदासजी की स्मृति हो आई। इनका सयम असीम था। वृक्षो के पत्तो के अतिरिक्त कुछ भी नही खाते थे। अपनी रसनेन्द्रिय को इन्होने बहुत धिक्कारा और कहा, "सन्त रामदासजी की रसनेन्द्रिय तो पत्ते खाकर ही सन्तुष्ट हो जाती थी किन्तु तू आलू मटर तथा अन्य विविध प्रकार के स्वादिष्ट भोजन करके भी शान्त नही होती। इन आलू मटरो मे नमक, मसाला, दही इत्यादि ही तो हैं। अब तुम्हे कल से ये सब अलग-अलग खिलाए जाएगे।" दूसरे दिन से ही इन्होने मटर और आलू, नमक, मिर्च तथा मसाले के बिना ही बनाने प्रारभ कर दिए। इनको खाया किन्तु कुछ भी स्वाद नही आया। बस, इसी दिन से नमक, मिर्च, मसाला तथा चीनी खाना सर्वथा त्याग दिया। अब दाल शाक आदि सब बिना नमक ही खाना प्रारभ कर दिया और दूध मे चीनी डालना भी बन्द कर दिया। तीन साल तक नमक और चीनी बिलकुल नही खाई। इससे इनके हृदय मे दर्द रहने लग गया था। अनेक उपाय किए किन्तु इस पीडा को आराम नही आया। जब नमक और चीनी खाना प्रारभ किया तो स्वत ही दो तीन दिन मे आराम आगया और एक सप्ताह मे औषधोपचार किए बिना ही यह पीडा जाती रही। आयुर्वेद का यह सिद्धान्त है कि षड् रस के नियमानुसार नित्य सेवन करने से मनुष्य नीरोग रह सकता है और सब

धातुओं की वृद्धि समानरूपेण होती रहती है तथा वात, पित्त और कफ भी विषम होकर कुपित नहीं होने पाते।

सन्त भण्डू से वार्तालाप—सन्त भण्डू बहुत सालों से नहर पर नारायणसिंह की बगीची में रहा करते थे। ये सिक्ख धर्म के अनुयायी थे और बहुत शान्त प्रकृति के थे। सदैव वाहगुरु के नाम का जाप किया करते थे। इनका खर्चा केवल छः पैसे प्रतिदिन होता था। इन छः पैसों के लिए ये नित्य नमक मण्डी में मजदूरी करने जाया करते थे। जब मजदूरी करके छः पैसे कमा लेते तो इनका आटा मोल ले आते और रोटी बनाकर खा लेते। दाल और शाक ये बहुत कम खाते थे। लकड़ी ये स्वयं बीन लाते थे। एक खद्दर की चादर, एक कच्छ, एक बनियान, एक छोटी-सी मिट्टी की थाली, एक तवा मिट्टी का और पानी पीने के लिए एक मिट्टी का पात्र ही बस इनकी सम्पत्ति थी। व्यासदेवजी इनकी दशा देखकर नित्य ही इनसे बातचीत करने का अवसर ढूँढा करते थे। एक दिन ये इन सन्तजी के पास आए और दोनों में निम्न वार्तालाप प्रारम्भ हुआ :—

व्यासदेवजी—आपके पास केवल एक फटी पुरानी चादर है। शीत बहुत पड़ रहा है। यदि कहो तो मैं आपके लिए कपड़े, चादर और कम्बल की व्यवस्था कर दूँ।

सन्त भण्डूजी—आपकी बड़ी कृपा है, किन्तु क्षमा करें, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं।

व्यासदेवजी—सर्दी बहुत पड़ रही है। आपको शीत तो सताता ही होगा।

सन्त भण्डूजी—जगत के पशु-पक्षी, कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंस आदि जीवों को ठण्ड क्यों नहीं लगती ? वे क्या शीतकाल में गर्म वस्त्र धारण करते हैं ? आवश्यकतानुसार मेरे पास पर्याप्त वस्त्र हैं।

व्यासदेवजी—किन्तु महाराज ! वे पुराने हो गए हैं, फट गए हैं, और मैले हैं।

सन्त भण्डूजी—लेकिन इस शरीर से तो अच्छे हैं। इसमें मांस, मज्जा, चर्बी, टट्टी और पेशाब के अतिरिक्त और है ही क्या ?

व्यासदेवजी—आपको छः पैसे का आटा लाने के लिए नित्यप्रति मजदूरी करने के लिए नमक मण्डी जाना पड़ता है। कष्ट होता होगा। मैं आपको नित्यप्रति दो आने का आटा मँगवा दिया करूँ ?

सन्त भण्डूजी—महाराज ! आप की कृपा के लिए मैं आपका बड़ा आभारी हूँ, किन्तु क्षमा करें, मैं लूला, लँगड़ा, रोगी तथा अपाहज नहीं हूँ जिससे मैं अपने लिए दो रोटी का आटा भी न कमा सकूँ।

व्यासदेवजी—आप केवल दो ही आने की मजदूरी नित्यप्रति क्यों करते हैं ?

सन्त भण्डूजी—क्योंकि मुझे उतने की ही जरूरत है।

व्यासदेवजी—यदि कभी बीमार हो जाओ अथवा मजदूरी न मिले तो बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जाए।

सन्त भण्डूजी—अब तक तो कभी ऐसा अवसर आया नहीं, फिर व्यर्थ में ही भविष्य के लिए चिन्ता क्यों करूँ और इस कल्पना से लाभ भी क्या है ?

व्यासदेवजी—आपको यह सन्तोष कैसे प्राप्त हुआ ?

सन्त भण्डूजी—सन्तो के सत्सग और वाहगुरु की कृपा से ।

व्यासदेवजी का दृढ विश्वास था कि सत्सग मे शुद्ध भावनाए, पवित्र विचार और आध्यात्मिक साधन, ध्यान, जाप तथा त्याग आदि दृढभूमि होते है। इसलिए नवयुवक होने पर भी कभी वे साधारण गृहस्थियो से अधिक सम्पर्क नहीं रखते थे। सुदूर किसी एकान्त स्थान पर वास करना उन्हे अधिक रुचिकर था। सदैव साधुओ, सन्तो, महात्माओ तथा योगियो के साथ निवास करते तथा उनके साथ वार्तालाप तथा उनका सत्सग किया करते थे। अपने गन्तव्य पथ से विचलित न होने, अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हिमगिरि के समान अटल रहने तथा ससार के आघातो और प्रतिघातो को वीरतापूर्वक सहने मे सन्तो का सपर्क इनका बडा सहायक रहा है।

सन्त दासुरामजी का समागम—दासुराम एक सिंधी सन्त थे। उन्होने गेरुए वस्त्र धारण नही किए थे। सदैव श्वेत वस्त्र ही धारण किया करते थे। एक बार ये कही बाहर से आए और व्यासदेवजी के पास खाली कुटिया मे आकर रहने लग गए। ये प्रात काल ही जगल मे किसी एकान्त स्थान पर अथवा नहर के किनारे साधना करने के लिए चले जाया करते थे। दोपहर मे भिक्षा मागने के लिए जाते थे और सायकाल बगीची मे आ जाते थे। ये बडे धनाढ्य कुल के सज्जन थे। उनके लडके शिकारपुर मे व्यापार करते थे। इनको तीव्र वैराग्य होगया था, अत गृह-परित्याग करके चले आए थे। प्राय रात्रि के नौ बजे ये बराण्डे मे व्यासदेवजी के पास बैठ जाते और ज्ञान, ध्यान, साधना और वैराग्य आदि के सम्बन्ध मे वार्तालाप किया करते थे। उनके बाल्यकाल मे ही वैराग्य ले लेने और घर तथा परिवार के सब सुखो को ठोकर मारकर गृह-त्याग, उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य, शास्त्राध्ययन, ज्ञानपिपासा, एकान्त सेवन से वे बडे प्रभावित थे। उन्हे देखकर इनका भी वैराग्य दृढतर होता जाता था। दासुरामजी अपने पास रुपया पैसा नही रखते थे। एक दिन उनका लडका व्यापार सम्बन्धी किसी कार्यवश अमृतसर आया। उन्होने उसे व्यासदेवजी को चार सौ रुपये भेट रूप मे देने की आज्ञा की। ये शब्द सुनते ही उन्होने कहा कि मुझे रुपये की बिलकुल आवश्यकता नही है। दासुराम ने अपने लडके से पूछा कि कुसुमलता अब कितने वर्ष की होगई है। पुत्र ने कहा कि १७-१८ वर्ष की होगई है, उसके लिए वर की बडी खोज कर रहा हू किन्तु अभी सफलता नही मिल सकी है। दासुराम ने व्यासदेवजी को बुलाया और एक आम के वृक्ष के नीचे ले गए। दोनो मे निम्न वार्तालाप हुआ —

दासुराम—ब्रह्मचारीजी ! जबसे मेरा आपसे परिचय हुआ है तब से कई बार मेरी ऐसी इच्छा हुई है कि मै कुसुमलता का विवाह आपके साथ करवा दू और लडको से आपको खूब बडी धनराशि दिलवा दू जिससे आप दोनो सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। यदि आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कर ले तो मैं आपका चिर ऋणी रहूगा और कुसुमलता का जीवन भी सफल हो जाएगा।

व्यासदेवजी—(हसकर) इस बात का उत्तर रात के नौ बजे दूगा। इन्होने पिता और पुत्र दोनो को बुलाया और कहा, "दासुरामजी ! मैं तो आपको बहुत ऊंचा सन्त समझता था और आपकी भक्ति, श्रद्धा और साधना की सदैव सराहना

किया करता था। आपने मेरे ब्रह्मचर्य, वैराग्य और साधना की भूरि-भूरि प्रशंसा बार प्रशंसा की है, किन्तु आज आप मुझे पतन के गहन गर्त मे गिराने के लिए समुद्यत हो रहे हैं। क्या जाप, तप, ध्यान, पूजा, ज्ञान और वैराग्य का यही फल है जो आज आप मुझे देना चाहते है? यह तो सासारी लोगो को भी प्राप्य है।"

दामुराम—गृहस्थी बनना क्या पतन के मार्ग पर चलना है? क्या ऋषि-मुनियो ने प्राचीन काल मे गृहस्थ धर्म का पालन नही किया था? क्या वे पतन के मार्ग पर चल रहे थे? क्या उन्होने वेद और शास्त्रो के विरुद्ध आचरण किया था?

व्यासदेवजी—मेरे जैसे आत्मविज्ञान और ब्रह्मविज्ञान के जिज्ञासु के लिए तो यह पतन का मार्ग ही सिद्ध होगा। कहा तो इतनी ऊची ज्ञान, ध्यान, समाधि और वैराग्य की बाते और कहा अब विवाह की चर्चा! मेरे तीव्र वैराग्य और गृहत्याग की इच्छा को देखकर मेरी माताजी ने कहा था, बेटा! ससार मे तीन बड़े-बड़े प्रलोभन है—धन, स्त्री और भूमि। ये तीनो परम सुख के साधन माने जाते हैं और ये तीनो मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करते रहते है। जो इनके प्रलोभन मे फस जाता है उसका पतन अवश्यम्भावी है। अत बेटे! तुम इनसे सदैव बचना। जिन सुखो की ओर दामुरामजी आप मुझे आकर्षित कर रहे है वे सब मुझे घर पर भी मिल सकते थे। मैंने घर का त्याग आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए किया है। यही मेरा उद्देश्य है। आप मुझे मेरे पथ मे विचलित कर रहे है। आज के पश्चात् आप कभी मुझसे विवाह या गृहस्थ की चर्चा न करे।

दामुराम—महाराज! मै बडा लज्जित हू। आप इस प्रकार के दृढव्रती है, इसका मुझे पता न लग सका। आप मुझे क्षमा करे। मैने बडा पाप किया है, यह कहते-कहते उन्होने ब्रह्मचारीजी के पाव पकड लिए।

ब्रह्मचारीजी को अनेक प्रलोभन देकर पथभ्रष्ट करने का यत्न किया गया पर उस बालयोगी को कोई भी प्रलोभन अपनी ओर आकृष्ट न कर सका। हिमगिरि के समान अडिग रहे। आपकी निष्ठा, आपका व्रत, आपका तप, आपकी साधना तथा आपका योग वर्णनातीत है। धन्य हो बालयोगी, तुम धन्य हो!

डलहौजी, चम्बा और पाङ्गी भ्रमण

व्यासदेवजी ग्रीष्म ऋतु में अमृतसर नही ठहरा करते थे क्योकि वहा अत्यधिक गर्मी पडती है। गर्म स्थान योग साधना के लिए उपयुक्त नही होते। इस बार वे काश्मीर नही गए और डलहौजी, चम्बा तथा पाङ्गी जाने का विचार कर लिया। ज्येष्ठ मास के प्रारम्भ होते ही वे गाडी मे सवार होकर पठानकोट पहुचे। यहा पर ये अपने एक सुपरिचित व्यापारी नारायणदास के पास ठहरे। नारायणदासजी के साझीदार मलावामल कुलदीपचन्द भी व्यासदेवजी से बडा स्नेह करते थे तथा उनके प्रति उनकी बडी श्रद्धा थी। यहा तीन-चार दिन ठहरने के पश्चात् ये मोटरगाडी द्वारा डलहौजी पहुच गए। यहा पर आर्यसमाज

मन्दिर मे पाच दिन ठहर कर सभी दर्शनीय स्थानो को देखा। यहा से चम्वा तक पैदल का मार्ग था। इस रास्ते पर एक वडा ही सुन्दर स्थान है। इसका नाम खजयार है। इसमे पहाडियो के बीच मे एक छोटी झील है। इस झील मे जमीन के दो-तीन छोटे-छोटे टुकडे पानी पर तैरते रहते है। इसके आस-पास वडे विशाल देवदार के वृक्ष है। यह स्थान लगभग आठ या नौ हजार फीट की ऊचाई पर है। यह वडा मनोहर स्थान है। यहा पर तीन-चार उपाहारगृह तथा दुकाने भी हैं। यहा पर एक दिन ठहरे। यहा से चम्वे तक कई मील की उतराई है। एक दिन मे चम्वे जा पहुचे। यहा पर इनका कोई परिचित नही था अत आर्यसमाज मन्दिर मे जाकर ठहर गए।

चम्वा पजाब की एक पहाडी रियासत थी। शहर रावी के किनारे वसा हुआ है। वीच मे एक वडा सुन्दर और चौडा मैदान है। श्रावण मास मे इस चौगान मे एक वडा भारी मिजरो का मेला भरता है। इस अवसर पर रावी नदी मे वहुत ऊचे स्थान से एक भैंसा गिराया जाता है। यदि वह भैंसा किसी प्रकार से वच कर जीवित निकल आता है तो इसे वडा अशुभ माना जाता है और यदि वह डूवकर मृत्यु का ग्रास हो जाए तो अत्यन्त शुभ माना जाता है। हजारो नर-नारी आवाल-वृद्ध इस दृश्य को देखने के लिए आते है। चम्वे से लगभग साठ या सत्तर मील पर एक मनीमहेश नामक झील है। यहा से रावी नदी निकलती है। यहा पर भी एक वडा मेला लगता है और हजारो नर-नारी इसे देखने आते हैं। यह एक तीर्थ-स्थान है जहा प्रतिवर्ष लोग यात्रा करने जाया करते है।

एक दिन व्यासदेवजी जब चम्वे के चौगान मे वैठे हुए थे तव जवाहर नाम का एक नवयुवक भी उनके पास आकर वैठ गया। पागी की यात्रा के विपय मे दोनो मे वार्तालाप होने लगा। उस नवयुवक ने भी वहा जाने का अपना विचार प्रकट किया और कहा कि मैं भी आपके साथ चलूगा। चलने की तारीख भी निश्चित कर ली गई। जवाहर का घर पागी जाते हुए मार्ग मे ही चम्वे से केवल आठ मील की दूरी पर था। सर्वप्रथम जवाहर के गाव पुखरी मे पहुचे। यहा पर तीन-चार दिन ठहरे। इसके वाद प्रस्थान किया। यहा से केवल इतना ही सामान अपने साथ लिया जो दोनो मिलकर स्वय उठा सके। पुखरी से चलकर तिस्सा पहुचे। इसका दूसरा नाम चुराहा है। यह स्थान चम्वा से २५ मील है अत ये उसी दिन सायकाल को वहा पहुच गए। वहा पर एक छोटे से उपाहारगृह मे ठहरे। यहा पर एक खूटी पर एक वालो का गुच्छा-सा टगा हुआ था। ये कटी हुई जटाओ का गुच्छा लग रहा था। व्यासदेवजी इसे देखकर बडे आश्चर्यान्वित हुए और दुकानदार से पूछा कि यह बाल से कैसे टग रहे है। दुकानदार ने मुस्कराते हुए कहा कि ये मेरी जटाए हैं। व्यास-देवजी ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, आपकी जटाए, क्या यह आपकी जटाए है? इससे आपका क्या अभिप्राय हे? दुकानदार ने कहा, "मैं भी पहिले आपके समान ही एक सन्त था। जटाए धारण करता था और उदासी मत का साधु था। वाल्यकाल से ही सन्त वन गया था। मैंने सातवी-आठवी कक्षा तक पढाई की थी। मैं एक उदासी निर्वाण सन्त का चेला वन गया था। ऊपर से तो मै वडी विरक्त वृत्ति से रहता था किन्तु युवावस्था मे व्रह्मचर्य पालन वडा कठिन होगया। काम-वासना ने सताना प्रारभ

कर दिया । पर लौट कर जाने तथा विवाह करने मे बडी लज्जा प्रतीत होती थी । मैने अपने एक परिचित सन्त से सुन रखा था कि चम्बा तथा कुल्लु के लोग बडे भोले भाले होते है। वे अपनी लडकियो का विवाह पजाबियो मे करके दामाद को अपने घर पर ही रख लेते है । मै यहा चला आया और एक लडकी से विवाह कर लिया । खेती-बाडी का काम बडा परिश्रमसाध्य होता है । वह तो मुझसे हो नही सकता था, अत एक दुकान खोल ली । कुछ जमीन तो श्वसुर से मिल गई थी, और कुछ मैने स्वय खरीद ली । यहा पर जमीन की काश्त का कार्य प्राय स्त्रिया ही करती है । इसलिए एक विवाह और कर लिया जिससे दूसरी पत्नी खेती-बाडी का सब काम सभाल ले । उससे भी जब काम न चला तब एक तीसरी शादी कर ली । उस समय यह स्त्री जिसे आप देख रहे है मेरे साथ दुकान पर काम करती है । भोजन भी यही बनाती है और बर्तनादि भी साफ कर लेती है । दूसरी मकान पर रहती है और खेती-बाडी का सब काम करती है और तीसरी भी खेत पर जाकर उसकी सहायता करती है । केवल हल चलाने के लिए एक नौकर रखा हुआ है । मै दुकान पर काम करता हू और यह मेरी पत्नी होटल का काम चलाती है । ' व्यासदेवजी उसकी बाते सुनकर खूब हसे । इसी दुकानदार से उन्हे यह पता चला कि यहा पर कई ऐसे सन्त रहते है जिन्होने यहा आकर विवाह कर लिया और गृहस्थी बन गए । दुकानदार ने ब्रह्मचारीजी से पूछा कि यदि आप भी इसी उद्देश्य से यहा आए हो तो मै आपके विवाह की सब व्यवस्था कर सकता हू । जब दुकानदार को यह मालूम हुआ कि उनके यहा आने का यह उद्देश्य नही था और उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन का व्रत धारण किया हुआ है तो उसने उन्हे यहा से शीघ्र चले जाने की सलाह दी क्योकि यहा के लोग नीचे से आने वाले नवयुवको को प्राय अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर विवाह के जाल मे फसा लिया करते थे । व्यासदेवजी को यहा पर और भी कई ऐसे दुकानदार तथा काश्तकार मिले जो अपनी पूर्वावस्था मे साधु थे किन्तु आगे चलकर गृहस्थी बन गए और व्यापार, काश्त-कारी तथा नौकरी करने लग गए । यहा पर उन्हे यह पता चला कि यहा की स्त्रिया पुरुषो की अपेक्षा अधिक परिश्रमशीला, स्वस्थ और सुन्दर होती है । यहा पर दुकान तथा हल चलाने का कार्य और नौकरी तो पुरुष करते है, शेष सारा कार्य स्त्रिया ही करती है । यहा के लोग पजाबियो के साथ अपनी पुत्रियो का विवाह करना अधिक पसद करते है क्योकि वे बडे हृष्ट-पुष्ट, व्यवहारकुशल तथा समझदार होते है । इनके साथ अपनी लडकियो का विवाह करके घर-जवाई रख लेते है किन्तु अपनी लडकियो को पजाब नही भेजते । शायद इसका कारण पजाब मे गर्मी का आधिक्य ही होगा । महाराजा चम्बा ने अपनी रियासत के लिए कानून भी ऐसा ही बना रखा था । यहा की किसी लडकी के साथ विवाह करके कोई उसे चम्बा से बाहिर नही ले जा सकता था । उसे चम्बे मे ही रहना होता था । इसीलिए उष्ण-प्रदेशो के कई लोग यहा विवाह करके यही बस गए और अपना कारोबार करने लग गए । यहा पर पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो की सख्या अधिक है क्योकि पुरुषो का जीवन बडा आलसी और प्रमादी होता है, इसीलिए वे बडे दुर्बल और शक्तिहीन होते है और शीघ्र ही वे काल द्वारा कवलित कर लिए जाते है । इस प्रदेश मे विधवा-विवाह का बडा प्रचलन है । पति का देहान्त होने के कुछ काल पश्चात् ही स्त्री का पुनर्विवाह हो जाता है । व्यासदेवजी तथा जवाहर ने उस दिन रात्रि मे उसी होटल मे विश्राम किया । रात्रि के लगभग दस बजे कई

नवयुवतिया उस होटल मे आई और इन दोनो का उपहास करने लगी। व्यासदेवजी ने इनकी बडी भर्त्सना की और समझाया कि वे साधु है। उनकी भावनाए बहुत ऊची है। और बडे सदाचारी और ब्रह्मचारी हैं, वहा यात्रा के लिए आए है और ये सब देवियो को माता, बहिन और पुत्री के समान समझते हैं। इतना समझाने पर भी वे नवयुवतिया वहा से नही हटी और विवाह के लिए उन्हे प्रेरित करने लगी। उन्होने बताया कि यहा कई ब्रह्मचारी और साधु आए हैं जिन्होने यहा आकर विवाह कर लिए, ससुराल मे रहने लग गए और यही अपना कारोबार प्रारभ कर दिया। इनमे से रुक्मणी नाम की लडकी बहुत सुन्दर थी। ये सभी यह चाहती थी कि इसमे व्यासदेवजी का विवाह जैसे-तैसे हो जाए। उन्होने रुक्मणी की ब्रह्मचारीजी से बहुत प्रशसा की। बार-बार उसके सौंदर्य का वर्णन किया। उसके बाप से बहुत-सी जमीन दिलाने के वचन दिए। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन मे विविध कठिनाइया समझाई। कलियुग का बखान किया। वहा आकर जिन साधुओ ने विवाह करके गृहस्थ जीवन मे प्रवेश किया और सासारिक बन गए उनमे से ही एक साधु की लडकी रुक्मणी थी। इन्होने उनसे विवाह करने का बार-बार अनुरोध किया और कहा, आप ब्रह्मचारी है। ब्रह्मचर्य से गृहस्थ मे प्रवेश करे और फिर यदि इच्छा साधु बनने की शेष रहे तो साधु भी बन जाना। व्यास-देवजी ने इन्हे बहुत समझाया और फटकारा। रात्रि के ग्यारह बज चुके थे। उन्हे वहा से चले जाने को कहा। पुलिस को बुलाने की धमकी दी, पर वे वहा से टस से मस न हुई। जब पुलिस चौकी पर जाने के लिए ये उठे तो इन निर्लज्ज युवतियो ने उनका दरवाजा रोक लिया। व्यासदेवजी जैसे-तैसे धक्का देकर बाहिर निकल गए और पुलिस चौकी पर जाकर सर्व वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होने कोई कार्रवाई नही की और केवल इतना ही कहा कि यह देश ही ऐसा है, आप यहा चौकी पर आकर विश्राम करो। वे लोग इनका सब सामान दुकान पर से उठा लाए। इसी झमेले मे बारह बज गए। इन्होने शेष रात्रि चौकी मे ही व्यतीत की। प्रात काल उठे और स्नान तथा ध्यान किया और इसके पश्चात् तरेला के लिए प्रस्थान किया। यहा पर इन्हे पागी के एक जमीदार मिल गए। इनका नाम कर्मदास था। ये कुछ व्यापार भी करते थे। व्यासदेवजी ने पागी मे अपने ठहरने की व्यवस्था करने के लिए कहा क्योकि वहा पर उनका कोई परिचित न था। कर्मदास ने अपनी पत्नी के नाम एक पत्र लिख दिया और उसे उन्हे देकर कहा कि इसे वहा ले जाकर मेरी पत्नी को दे देना, वह आपकी सारी व्यवस्था कर देगी। वह पजाबी भी थोड़ी-थोडी जानती है। आपको किसी प्रकार की कठिनाई न होगी। आप निश्चित रहें।

नीलम की प्राप्ति—तरेले से कुछ आगे काश्मीर रियासत का इलाका आ जाता है। इस इलाके को वहा के लोग पाडर कहते है। वहा के लोगो से पता चला कि यहा पर नीलम की खान है। मार्ग मे एक स्थान पर एक झरना बह रहा था। व्यासदेवजी यहा स्नानादि करने के लिए ठहर गए और जवाहर को आगे चलने का आदेश दिया। एक गाय इसी झरने पर पानी पीने के लिए आई। यह लगडा कर चल रही थी। इसे देखकर व्यासदेवजी को बडी दया आई। उसका पाव ऊपर उठा कर देखने से मालूम हुआ कि उसके खुरो के बीच मे एक पत्थर घुस गया है, इसलिए पैर मे घाव-सा होगया है। इन्होने अपनी सोटी की सहायता से उस कंकर को

निकालकर बेचारी गाय का सकट दूर किया। ककर खून से लथपथ था और नीला सा प्रतीत होता था। व्यासदेवजी ने उसे अच्छी तरह से धोया तो वह चमकने लगा और उसका रग नीला-सा निकल आया। इन्हें यह नीलम-जैसा लगा इसलिए इसे सभाल कर रख लिया। इसका जिक्र जवाहर से भी नही किया। मार्ग मे एक गाव आया। उसमे तीन-चार मनुष्यो से जाकर व्यापारियो से नीलम दिखाने के लिए कहा, किन्तु किसी के पास नही निकला। केवल एक दुकानदार के पास छोटा-सा नीलम दिखाई दिया। उसे खरीदने की बातचीत हुई किन्तु उसने कीमत बहुत मागी, अत इसे खरीदा नही और आगे चल दिए। व्यासदेवजी ने उस नीलम की अपने पास वाले नीलम से तुलना की तो उन्हे मालूम हुआ कि उनका नीलम दुकानदार के नीलम से आकार मे बहुत बडा है और उसमे चमक भी उसकी अपेक्षा बहुत अधिक है। इसे इन्होने सम्भालकर अपने पास रख लिया। अब पागी तक कोई गाव इन्हें मार्ग मे नही मिला। तरेले से आगे पागी तक अत्यधिक चढाई थी। थोडी चढाई चढने के पश्चात् इनका सास फूलने लगा और थकान भी अधिक मालूम होने लगी। यहा की ऊचाई अधिक थी, अत वायु भी अधिक सूक्ष्म थी, इसलिए इनका दम घुटने लग गया था। इस चढाई पर कई प्रकार की नशीली बूटिया लगी हुई थी। उनमे श्वास लेने से इन्हें कुछ नशा सा भी होगया था और श्रान्त भी बहुत थे, अत कुछ देर के लिए विश्राम करने के लिए बैठ गए। इसके बाद थोडा-सा लेटे कि नीद आगई।

अज्ञात देवी के दर्शन--जिस समय व्यासदेवजी और जवाहर पागी की आधी चढाई चढकर एक स्थान पर निद्राभिभूत सो रहे थे, उस समय उन्हे एक विशाल-काय देवी ने आकर जगाया। ये दोनो बडी कठिनाई से आखे मसलते-मसलते जगे। जब आखे खोली तो सामने एक देवी को खडे पाया। यह अत्यन्त सुन्दर थी। इसके नेत्र बडे विशाल थे। इसका कद लगभग छ फीट होगा। यह बडी सुडौल तथा स्वस्थ थी। इसका रग गोरा था। मुख पर कान्ति थी। इसने अपने सिर पर लगभग एक मन भार उठाया हुआ था। इसने मुस्कराते हुए कहा, "आपको बूटियो का नशा चढ गया है। इसीलिए आपको नीद आगई है। किन्तु यहा पडे रहने से मजिल तय नही होगी और आप अपने निर्दिष्ट स्थान पर न पहुच सकोगे। आओ, मेरे साथ चलो।" व्यासदेवजी ने थोडा और आराम कर लेने के पश्चात् चलने की इच्छा प्रकट की। इसने उनके निवास स्थान और गन्तव्य स्थान के विषय मे पूछा। जब उसे मालूम हुआ कि ये पागी जाएगे तब उसे आश्चर्य हुआ, क्योकि ये लोग आधी चढाई से कम चढाई चढकर ही हाफने लग गए थे। उसने इनसे कहा, तुमसे यह विकट चढाई नही चढी जाएगी। उठो, मै तुम्हे अपने साथ ले चलूगी। उसने यह कह कर व्यास-देवजी को नीचे झुककर हाथ पकड कर उठा लिया और शेरनी के समान उस पहाडी पर चढ गई। थोडी दूर चलने के बाद इसने एक बूटी तोड कर दी और इसे सूघने के लिए कहा। इस बूटी को सूघने से चढाई चढते समय तबीयत खराब नही होती और इससे नशा भी उतर जाता है। यह देवी व्यासदेवजी का हाथ पकड कर इस पहाडी पर छ मील तक ले गई। इसके शिखर पर इस देवी के परिवार का डेरा लगा हुआ था। यह देवी गूजर जाति की थी। इस पहाडी के शिखर पर एक बडा मैदान था। उस समय इसी पर ये लोग रहते थे। इनके पास लगभग २००

भैसे थी। इन्ही को चराने के लिए इन्होने यहा डेरा लगा रखा था। इस देवी का नाम राधा था। इसने महात्माजी का सारा वृत्तान्त अपने भाई को सुनाया और कहा कि इनमे पागी जाने की शक्ति नही है, इन्हे दूध, पनीर, मक्खन तथा दूध की रोटी खिलाकर सशक्त बनाकर यहा से पागी भेजेगे। राधा के भाई ने एक पतीले मे ८-१० सेर दूध उबाला। दूध गर्म होता रहा और दोनो बहिन-भाइयो ने महात्माजी का सर्व वृत्तान्त उनसे पूछा। जब उनको यह विदित हुआ कि ये ब्रह्मचारी साधु है तो वे बडे प्रसन्न हुए। जब दूध को उबाल आगया तब उन्होने व्यासदेवजी और जवाहर को दो-दो सेर दूध बडे-बडे कटोरो मे डालकर दे दिया। जब इन्होने कहा कि वे इतना दूध नही पी सकते तो सबने उनका बडा उपहास किया और दूध पीने के लिए बाध्य किया। राधा ने उनका बडा मज़ाक उडाया और कहा, दूध पीकर मोटे ताजे और हृष्ट-पुष्ट हो जाओगे, तभी पागी की चढाई चढ सकोगे। मै खूब दूध पीती हू, इसीलिए मुझमे इतना बल है कि मै आपको हाथ पकडकर इस पहाडी पर शीघ्रता से चढा लाई। इसी बीच मे परिवार के अन्य सदस्य भी वहा आ पहुचे। वे सब तुरन्त ही महात्माजी मे स्नेह करने लग गए। रात्रि के समय जब सब अपने-अपने काम से निवृत्त हो जाते तो व्यासदेवजी सबको उपदेशात्मक कहानिया सुनाते थे। इन लोगो को इनका व्यक्तित्व और उपदेश इतने आकर्षक लगते थे कि इन्होने उन्हे १६ दिन तक जाने नही दिया। राधा ने कहा कि महात्माजी आपने हमे बहुत सुन्दर उपदेश दिए है, इसके लिए हम सब आपके बडे कृतज्ञ है। मेरा आपसे निवेदन है कि आप एक उपदेश मेरा भी मान लो, वह यह कि आप प्रतिदिन एक-दो घण्टे व्यायाम किया करो। तभी आपको दूध, दही और मक्खन आदि पच सकेगा और आप बलवान तथा शक्तिमान हो सकोगे। एक दिन राधा की माता ने महाराजजी से निवेदन किया कि राधा की आयु बडी होती जाती है। हम लोग इसके लिए वर की खोज कई सालो से कर रहे है। कोई योग्य वर और घर उपलब्ध नही हो सका। इसकी हम सबको बडी चिन्ता रहती है। इन्होने विश्वास दिलाया कि खोज जारी रखो, एक साल तक विवाह हो जाएगा। इस पहाडी की ऊचाई लगभग दस हज़ार फीट से अधिक थी, अत इस पर वृक्ष नही थे। राधा के भाई रामू तथा शामू ने मिलकर ब्रह्मचारीजी के लिए एक छोटी सी झोपडी सी बना दी और उसके पास धूनी लगा दी। ये इसमे रहने लगे। इस परिवार ने इनकी बडी सेवा की। १५ दिन मे ही व्यासदेवजी और जवाहर का चेहरा बदल गया। मुखो पर लालिमा छा गई और थोडे-थोडे मोटे भी होगए। अब उनके शरीर पुष्ट प्रतीत होने लगे और उनमे शक्ति का सचार होगया। १५ दिन के पश्चात् व्यासदेवजी ने पागी जाने के लिए आग्रह किया। इस परिवार को उनके आग्रह के समक्ष नतमस्तक होना पडा और उनके प्रस्थान की पूरी तैयारी करके शामू को उनके पहुचाने के लिए साथ भेजा। इन्होने शामू के साथ ८ सेर मक्खन ४ सेर दूध और ८-१० कलाडिया देकर इनके साथ जाने का आदेश दिया। विदाई के समय सारे परिवार को ही बडा दु ख हुआ। राधा और उसका छोटा भाई रामू तो विह्वल होकर रुदन ही करने लग गए। चलते समय एक बार पुन व्यासदेवजी ने इस परिवार को अपने उपदेशामृत का पान कराया। रामू ने भी साथ जाने का बडा हठ किया, अत रामू और शामू दोनो ने मिलकर महात्माजी का सामान उठाया और साथ हो लिए।

पागी मे कर्मदास के घर पर निवास—रामू और शामू ने व्यासदेवजी को कर्मदास के घर पर पहुचा दिया। बहुत कहने पर भी वे वहा ठहरे नही। कर्मदास की गणना यहा के अच्छे धनाढ्य व्यक्तियो मे की जाती थी। इनके यहा पर कई मकान थे। तीन इनके स्त्रिया थी। बडी स्त्री के नाम कर्मदास ने पत्र दिया था। जब यह पत्र उसे दिया गया तो वह बडी प्रसन्न हुई। व्यासदेवजी के चरणस्पर्श करके वह उन्हे मकान की दूसरी मजिल पर ले गई। बिस्तर बिछाकर उन्हे उस पर बिठा दिया। पागी मे सर्दी बहुत पडती है। साल मे ७-८ मास तक बर्फ पडती रहती है। इसलिए इनके लिए चाय और सेब मगवाकर उनके सम्मुख आदरपूर्वक रखे। कर्मदास की बडी पत्नी का नाम सुभद्रा था। इसने तुरन्त इनके सोने, बैठने, ध्यान करने आदि की व्यवस्था कर दी। यहा के रिवाज के अनुसार अपनी एक लडकी को आसपास की सब महिलाओ को अतिथि के स्वागत के उपलक्ष्य मे गायन और नृत्य के लिए आमत्रित करने के लिए भेज दिया। सुभद्रा के पूछने पर महाराजजी ने आदेश दिया कि हम पहाडी भोजन करेगे, पजाबी नही। यह आदेश पाकर वह मास और शराब की तैयारी करने लगी क्योकि पागी मे मास और शराब से ही प्रतिष्ठित अतिथियो का आतिथ्य किया जाता था। जब सुभद्रा को मालूम हुआ कि महात्माजी ने कभी शराब का स्पर्श भी नही किया और मास स्वय तो क्या खाते, उस मकान तथा परिवार मे भी कभी भोजन नही किया जहा पर मास पकाया जाता हो, तो वह अत्यन्त दुःखी हुई। महात्माजी के चरण स्पर्श करके उनसे विनम्र भाव से क्षमा याचना की और बडी लज्जित हुई। अब उसने महाराजजी को विश्वास दिलाया कि वह स्नान करके वस्त्र बदलकर चौका लगाकर सारे बर्तन आदि माज-धोकर उनके लिए भोजन तैयार करेगी। उसने अब पजाबी भोजन बनाया। उडद की दाल तथा पराठे बना कर उनको परोसा और इस प्रकार भोजन करते-करते नौ बज गए। इसके उपरान्त निमत्रित महिलाए नृत्य और गायन के लिए उपस्थित होगई। सुभद्रा ने महाराजजी को आगन मे गायन सुनने और नृत्य देखने के लिए बुलाया। व्यासदेवजी जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी तप पूत योगी को भला यह कैसे पसन्द हो सकता था! उन्होने सुभद्रा से कहा कि देवी, हम तो महात्मा है, साधु है, हमे ये सब बाते रुचिकर नही हो सकती। तुम यह सब आयोजन बन्द कर दो। सुभद्रा के बहुत आग्रह करने पर जो कुछ हो रहा था वह सब उन्होने होने दिया, किन्तु स्वय वहा से ऊपर चले गए। इन देवियो ने कृष्ण-भक्ति के भजन गाए। अतिथि को लक्ष्य करके भी कुछ गीत गाए और इसके बाद सब यथास्थान चली गई। तीन दिन के पश्चात् व्यासदेवजी ने वहा से जाने के लिए इच्छा प्रकट की। सुभद्रा ने जब तक उसके पतिदेव लौट न आए तब तक वही रहने का और उसका आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह किया। तब व्यासदेवजी ने यह कहा कि सामान हम आपको ला दिया करेंगे और भोजन आप बना दिया करे। उनके बार-बार कहने पर इस बात को सुभद्रा ने स्वीकार कर लिया।

व्यासदेवजी जैसे महान् महात्मा कभी किसी भी परिवार पर भाररूप नही होना चाहते थे, विशेषकर उस स्थिति मे जब गृहपति घर मे उपस्थित न हो।

कर्मदासजी की आयु इस समय ६० वर्ष की थी। इनकी माताजी भी जीवित थी। इनकी आयु सौ वर्ष से ऊपर मालूम होती थी। यह वृद्धा माता चौरी गाए,

चराने जाती थी। उसने एक दिन व्यासदेवजी से कहा, "महात्माजी, पजावियो ने हमारा देश यहा आकर खराव कर दिया है। हमारी लडकियो से विवाह करके ये इन्हे अपने देश मे ले जाते है। दुराचार की मात्रा अधिक वढ गई है। छोटी-छोटी लडकिया विवाह की बाते करती हैं। मेरी पोती वेग मोहनी अभी वहुत छोटी आयु की है किन्तु वह भी अभी से विवाह के विपय मे वाते करती रहती है। घोर कलि-युग आ गया है।" व्यासदेवजी ने कहा कि आपने अपने पुत्र कर्मदास के तीन विवाह क्यो किए ? यह भी एक वडा भारी पाप है। इस पर वृद्धा ने निवेदन किया कि सुभद्रा के कोई सन्तान नही थी। ये पति-पत्नी इसलिए वडे चिन्तित रहते थे। सुभद्रा के वहुत आग्रह से इसने दूसरा विवाह किया है। अपने पिता के परिवार मे से ही इसने एक लडकी से कर्मदास का विवाह किया है। एक वात यह भी है कि हमारे यहा इधर खेती-वाडी का सव कार्य स्त्रिया ही करती है। वडे घरानो मे एक विवाह से काम नही चलता क्योकि उनके यहा कृषि कार्य वहुत होता है। दूसरी शादी से भी कर्मदास के कोई सन्तान जव नही हुई तव तीसरा विवाह करना पडा। अव तीसरी वहू को ७० साल की आयु मे कर्मदास के घर यह वेग मोहनी पैदा हुई है और एक तीन वर्ष का वच्चा है। मेरे चार लडके पैदा हुए थे जिनमे से तीन की मृत्यु होगई, केवल कर्मदास ही आपके चरणो की कृपा से वचा है। इसके पिता का स्वर्ग-वास हुए ८० वर्ष होगए हैं। इस देश मे स्त्रिया पति के मरने पर दूसरा विवाह कर लेती है। यहा पर ऐसा रिवाज है, किन्तु महाराज जी ! मैंने तो दुवारा विवाह नही किया।

कर्मदास की माता का वेग मोहनी के साथ विवाह का आग्रह—वेग मोहनी की आयु इस समय बीस वर्ष की थी। उसके विवाह की चर्चा प्राय घर मे चला करती थी। इसके योग्य घर और वर की खोज हो रही थी, किन्तु अभी इस विपय मे सफलता नही मिल पाई थी। वृद्धा माता ने इसके विवाह का प्रस्ताव व्यासदेवजी के समक्ष रखा और निवेदन किया कि यदि आप इस वालिका को स्वीकार करले तो हमारे परिवार का वडा गौरव वढ जाए और हम अपने को धन्य समझे और आपका वडा उपकार मानेंगे। वेग मोहनी भी इनके रूप, लावण्य, स्वास्थ्य और व्यक्तित्व पर वडी मुग्ध हो रही थी। वह वार-वार अपनी मा और दादी से इनके साथ विवाह करने के लिए आग्रह कर रही थी, इसीलिए दादी ने विवाह का प्रस्ताव व्यासदेवजी के सामने रखा था। इस सम्वन्ध मे जव इन्होने इन्कार किया तव वेग मोहनी को वडा क्रोध आया और वह तुरन्त वोल उठी, "यदि विवाह नही करना था तो आप यहा आए ही क्यो ? आपके यहा आने का मतलव ही क्या था ?" वेग मोहनी की वात और हाजरजवावी को सुनकर सुभद्रा और उसकी दादी खूब जोर-ज़ोर से हसी। व्यासदेवजी ने कहा, "क्या इस देश मे आने के लिए मुझे यही सज़ा मिलेगी ? विवाह करना तो अपनी इच्छा पर निर्भर है। कोई चाहे तो विवाह करे और न चाहे तो न करे। यह कोई जवरदस्ती की वात तो नही। मैंने आजन्म व्रह्मचर्य व्रत को धारण किया हुआ है। मैं कभी विवाह नही करूगा। तू भी मेरी तरह व्रह्मचर्य का व्रत धारण करके व्रह्मचारिणी क्यो नही वन जाती ?' वेग मोहनी ने उत्तर दिया, "हा, मैं व्रह्मचारिणी वनकर आपकी सेवा करूगी। आपको मुझे अपने साथ रखना

होगा। मैं सदा आपके साथ देश-देशान्तरो का भ्रमण करूगी और आपसे पढ़ूगी भी।' व्यासदेवजी ने कहा, "तू जानती भी है, शिष्या पुत्रीवत् होती है। तू मेरी पुत्री बनकर मुझसे विद्या पढ सकती है।" यह लडकी कुछ उद्दण्ड स्वभाव की थी और अत्यधिक लाड और प्यार के कारण उसके मनमे सकोच और लज्जाशीलता नही थी जो स्त्री मे सहज ही होती है। वह तुरन्त बोली, क्या पत्नी बन कर मैं आप से नही पढ सकती ? आपने अपने बचपन मे आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत बिना समझे बूझे ले लिया है। बाल्यकाल के व्रत का कुछ महत्त्व नही होता। अब आप युवा हो गए, आप उस पर पुनर्विचार कर सकते है। उस व्रत को छोड गृहस्थ मे प्रवेश कर सकते है। इसकी बकवास और उच्छृखल बाते सुनकर ब्रह्मचारीजी को बडी झुझलाहट आई और उससे कहा, जाओ, तुम घर मे कुछ काम करो या बाहिर जाकर खेलो। इसकी माता और दादी से कहा कि मै बडा दृढव्रती हू। मेरा आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत चट्टान की तरह से अटल है। इसमे किसी प्रकार का कोई हेर-फेर नही हो सकता। वह थोडा लज्जित होकर कहने लगी, "न जाने इस लडकी को इस प्रकार की बाते कैसे करनी आ गई है ! यह बकवास करती है। समझाने पर भी नही मानती। हम इसे घर से बाहिर बहुत कम जाने देते है। इसको किसी स्कूल मे पढने के लिए भी नही भेजा। इसकी बडी मा ने ही इसे कुछ थोडी हिन्दी पढा दी है। पर महाराजजी, कभी-कभी यह बडे ज्ञान की बाते करती है जो हमारी भी समझ मे नही आती।

पन्द्रह दिन के बाद कर्मदास कस्बे से आगए। व्यासदेवजी को प्रणाम करके पूछा कि आपको यहा कोई कष्ट तो नही हुआ। मेरी बडी पत्नी आतिथ्य सत्कार मे बडी प्रवीण है। वह हिन्दी भी थोडी जानती है, इससे आपको भाषा-सम्बन्धी कोई कठिनाई नही हुई होगी। उन्होने उनकी धर्मपत्नी की बडी प्रशसा की, उसके आतिथ्य के लिए बहुत धन्यवाद दिया और पासी मे कही अन्यत्र जाकर रहने का विचार व्यक्त किया, क्योकि उन्हे वहा रहते हुए पन्द्रह दिन होगए थे। कर्मदास ने उन्हे वही निवास करने के लिए बहुत आग्रह किया किन्तु उन्होने वहा ठहरने मे कई कठिनाइया बताई। एक तो साधु को किसी गृहस्थी के यहा बहुत दिन तक निवास नही करना चाहिए और दूसरे बेग मोहनी सदैव उनके साथ विवाह करने की चर्चा करती रहती थी। जब कर्मदास को विवाह की बात का पता चला तो उसने ब्रह्मचारीजी से हाथ जोड कर निवेदन किया कि आपको मेरी लडकी के साथ विवाह करने मे क्या आपत्ति है ? लडकी कुछ पढी-लिखी है। मेरे पास जायदाद भी बहुत है। इसमे से आधी आपको दे दूगा। आप विवाह करके यहा पर आनन्द से जीवन व्यतीत करना। यदि आप बेग मोहनी से विवाह कर ले तो मै इसे अपना बडा सौभाग्य समझूगा और इस लडकी का जीवन भी सुधर जाएगा। आप बेग मोहनी को अवश्य स्वीकार करने की कृपा करे। ब्रह्मचारीजी ने उससे साफ इन्कार कर दिया क्योकि उन्होने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने का दृढ सकल्प किया हुआ था। इसलिए कर्मदास को डाटते हुए कहा, आप विवाह के विषय मे किसी प्रकार की कोई भी बात न करे। मै इसे सुनने के लिए तैयार नही। कर्मदासजी घबरा गए पर उन्होने उन्हे अपने पास ठहरने का बहुत आग्रह किया और विश्वास दिलाया कि वह बेग मोहनी को समझा देगे। इस सम्बध मे अब कोई चर्चा नही होगी। उस देश की प्रथा ही कुछ ऐसी है। यहा पर लडकियो

को विवाह के सम्बध मे पूर्ण स्वतत्रता है। वे जिसे अपने अनुकूल तथा अपने योग्य समझे उससे विवाह कर सकती हैं। जिसे चाहे अपना जीवन साथी बना सकती है। यहा पर जाति-पाति का भी विवाह के विषय मे कुछ विचार नही किया जाता। क्षत्रियो की लडकियो का विवाह ब्राह्मणो के साथ हो जाता है। आयु का भी कोई बधन नही है। मेरी तीसरी शादी ६५ साल की आयु मे हुई थी। यहा पर धनिक लोग कई-कई शादिया कर लेते है। मैं मोहनी को डाटूगा और समझा दूगा कि भविष्य मे वह इस प्रकार की कोई चर्चा न करे। किन्तु व्यासदेवजी ने किसी प्रकार भी उनके माकन पर रहना अब पसन्द नही किया। इन्हे विवाह का ध्यान कभी स्वप्न मे भी नही आया, फिर भला जागृतावस्था मे तो आ ही कैसे सकता था। इन्होने वहा जो कुछ देखा और सुना उससे इनको बडी ग्लानि और घृणा होगई थी, इसलिए अब वे वहा पर एक क्षण भी रुकना नही चाहते थे। बेग मोहनी की बातें सुनने के दूसरे दिन ही वे जा कर एक मील के फासले पर अपने लिए एकान्त मे एक स्थान ढूढ आए थे, केवल कर्मदास के लौटने की प्रतीक्षा मे थे। इनके घर आते ही इन्होने उस स्थान पर जाने का अपना विचार प्रकट कर दिया और उनके बार-बार आग्रह करने पर भी न रुके। ब्रह्मचारीजी सर्वसाधारण व्यक्ति न थे। वे ब्रह्मनिष्ठ थे। तपोपूत थे और अपने व्रत के पक्के तथा यशोधन थे। उनके मार्ग मे यही एक प्रलोभन नही आया था, इससे पूर्व कई प्रलोभन इन्हे दिए जा चुके थे, किन्तु वे इन तुच्छ प्रलोभनो मे आकर अपने पथ से विचलित होने वाले व्यक्तियो मे से न थे। बडे से बडे प्रलोभन को एक ककर की भाति ठुकरा दिया और अपना मस्तक गौरव से उन्नत करके अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए डटे रहे। इस ब्रह्मनिष्ठ ने अपने जन्म से भारतवसुधरा को गौरवान्वित किया है।

कर्मदास ने बडे विनयपूर्वक इनसे इनका गन्तव्य मार्ग पूछा। वह स्थान इनके मकान से केवल एक मील दूर था। कर्मदास ने वहा जाकर यथायोग्य सब प्रबन्ध कर दिया। दूसरे दिन ही व्यासदेवजी उस स्थान पर चले गए। इनके चले जाने के बाद बेग मोहनी ने भोजन करना त्याग दिया और सारा दिन रोती रही। अपनी माता तथा दादी से बार-बार ब्रह्मचारीजी को बुलाने के लिए आग्रह करती रही। माता-पिता ने उसे बहुत समझाया, वे महात्मा है। उनके देश का पता नही, जाति का पता नही और न कुल का ही पता है। रमते राम है। इनके न रहने का कोई ठिकाना न खाने का। ऐसो से विवाह करना मूर्खता है। अज्ञात पुरुष के साथ विवाह करना अपनी अक्ल का दिवाला निकालना है। कोई समझदार लडकी ऐसे व्यक्ति से कभी विवाह नही कर सकती। माता-पिता के समझाने के पाच-छ दिन के बाद उसने अपने मुह मे अन्न डाला।

व्यासदेवजी कई मास तक पागी मे रहे। आश्विन के अन्त मे जब हिम-पात प्रारभ होगया तब पागी से चम्बा के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे कुछ दिन तक पुखरी मे जवाहर के घर पर रहे। कुछ दिन तक चम्बा मे भी निवास किया। इसके बाद डलहौजी चले गए। मार्ग मे दो पजाबी नवयुवक इनके साथ हो लिए। इनके पास भोजन के लिए खर्चा नही था। ब्रह्मचारीजी ने प्रबन्ध कर दिया। ये डलहौजी भी इनके साथ ही रहे। वहा पर रात्रि मे जब व्यासदेवजी सो गए तब इन्होने उनकी एक पुस्तक मे रखे हुए उस नीलम को चुरा लिया जो इन्होने गाय के खुर मे से निकाला था। ये दोनो नवयुवक उसे कही दूर जाकर छिपा आए। व्यासदेवजी ने उन्हे बहुत धमकाया

किन्तु उन्होने अपराध स्वीकार नही किया और नाराज होकर वहा से चलते बने। ब्रह्मचारीजी ने भी अब अमृतसर के लिए प्रस्थान किया और दीवाली के अवसर पर वहां पहुच गए।

कई-कई दिन की समाधि का विशेष अभ्यास

जब पहाडो पर हिमपात प्रारभ होगया और शीत का आधिक्य होगया तब व्यासदेवजी ने अमृतसर के लिए प्रस्थान किया और दीवाली के अवसर पर वहा पहुच गए। वहा जाकर मोतीराम की बगीची वाली अपनी कुटिया मे रहने की सब व्यवस्था कर ली। दीवाली के ४-५ दिन पश्चात् से ही पूर्ववत् शून्य-समाधि के लिए विशेष प्रयास प्रारभ कर दिया। इस वर्ष सारी सर्दी के मौसम मे अध्ययन करने का विचार छोड दिया था, क्योकि समाधि मे कई-कई घण्टे व्यतीत हो जाते थे, अध्ययन के लिए समय ही शेष न रहता था। समाधि के लिए शीतकाल ही उपयुक्त होता है। नित्यप्रति एक ही आसन पर बैठकर कई-कई घण्टे अभ्यास किया करते थे। नित्यप्रति १०-१५ मिनट आसन बढाने लगे थे। सकल्प-विकल्प का अभाव कर देने का तो उन्हे कई सालो से अभ्यास था। नित्यप्रति नेति, धोती, वस्ती आदि यौगिक क्रियाओ के द्वारा उन्होने अपने शरीर को हलका और सात्विक बना लिया था। दो तीन मास मे ही उनका अभ्यास इतना बढ गया था कि कई-कई घण्टे की शून्य-समाधि मे स्थिर हो जाया करते थे। इनके पश्चात् तो ऐसा अभ्यास इनको होगया था कि ये जितने घण्टे समाधिस्थ होने का निश्चय करते उतने ही घण्टे समाधिस्थ हो जाया करते थे और निश्चित समय पर ही समाधि से व्युत्थान होता था। व्युत्थान के समय नेत्र खोलने पर भी नहीं खुलते थे। हाथ और पाव ऐसे जकड जाते थे कि आसन खोलने मे बहुत समय लग जाता था। कानो की भी ऐसी ही स्थिति हो जाती थी। कोई पास बैठकर बाते करे तो यह पता नही लगता था कि वह क्या बाते कर रहा है। शरीर को पूर्ववत् स्थिति मे लाने के लिए कम से कम आधा घण्टा लग जाता था। इसके पश्चात् उन्होने इतना अभ्यास बढाया कि अब ये कई-कई दिन समाधिस्थ रहने लगे। जिन दिनो कई-कई दिनो की समाधि मे बैठते थे उन दिनो परिचित लोग आकर बडा तग करते थे। दरवाज़ा अन्दर से बद होता था। उसे खुलवाने के लिए बार-बार दरवाजे को खटखटाया करते। इससे समाधि मे विघ्न पडता था, इसलिए उन्होने भाई हरनामसिंह से बाहिर से कुटिया को ताला लगवाना प्रारभ कर दिया। ये सज्जन मोतीराम की बगीची मे पास ही रहते थे। व्यासदेवजी जिस समय ताला लगाने के लिए कहते थे उसी समय ये ताला लगा दिया करते थे और जिस समय और जिस दिन खोलने का आदेश होता उस दिन खोल दिया करते। ताला खोलने का समय और दिन प्राय लिखकर दिया जाता था। जब कई-कई दिन की समाधि लगाते थे तब ये प्रथम नेति, धोती, कुजर, वस्ति, वज्रोली आदि क्रियाए शरीर शुद्धि के लिए कर लिया करते थे जिससे व्युत्थान के पश्चात् कोई विकार उत्पन्न न होने पाए और शरीर स्वस्थ रहे। नैष्ठिक ब्रह्मचारी योगीजी की समाधियो की धूम यत्र, तत्र, सर्वत्र फैल गई। सभी लोग एक स्वर से उनके ब्रह्मचर्य, तपस्या, त्याग और योगाभ्यास की प्रशसा करते थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी की गणना तत्कालीन बडे प्रसिद्ध योगियों मे थी। जब उन्होने सुना कि एक नवयुवक योगी कई-कई दिनो की

समाधि लगाते है तो वे भी इनसे मिलने के लिए आए। ये अपने साथ कई शिष्यो को भी लाए थे। ब्रह्मचारीजी तथा स्वामीजी मे चिरकाल तक योगसम्बन्धी विषयो पर वार्तालाप होता रहा। व्यासदेवजी की पाण्डित्यपूर्ण बातें सुनकर और उनकी योग में इतनी गति को देखकर उन्होने इनकी भूरि-भूरि प्रशसा की। नवयुवक योगी की कई-कई दिन की समाधियो ने स्वामीजी को आश्चर्यचकित कर दिया। उन्होने कहा कि मैने तो आज तक किसी भी योगी को सात आठ घण्टे तक एक ही आसन पर बैठने वाला नही देखा और आप तो इतनी छोटी सी आयु मे ही तीन-तीन चार-चार दिन की समाधि लगा लेते हो। मैं तो कई वर्ष तक साधना करने के पश्चात् केवल ३ घण्टे तक ही एक आसन से बैठने का अभ्यास कर पाया हू। इससे अधिक बैठा ही नही जाता।

व्यासदेवजी—सभव है, आपने आसन बढाने का जो क्रम है उसके अनुसार अपना आसन न बढाया हो।

स्वामीजी—क्या आप आसन बढाने का कोई सुगम क्रम या साधन बता सकते है ?

व्यासजी—सर्वप्रथम अपने अभ्यस्त आसन पर बैठ जाना चाहिए। जब थकावट मालूम होने लगे तब आसन से उठ जाना चाहिए। बिना थकान के कितने घण्टे या मिनट का आसन स्थिर रहा है इसे घडी देखकर निश्चित कर लेना चाहिए। दूसरे दिन दो मिनट पहिले दिन की अपेक्षा अधिक बैठो। इसी प्रकार एक सप्ताह तक दो-दो मिनट बढाते जाना चाहिए। इसके पश्चात् ५-७ दिन तक इसी काल तक आसन को दृढ करना चाहिए। इसके दृढ हो जाने के बाद फिर दो-दो मिनट आसन मे वृद्धि करके एक सप्ताह के बाद फिर इसे ४-५ दिन तक दृढ करे। इस विधि मे आप जितना चाहें अपनी इच्छानुरूप आसन मे वृद्धि कर सकते है।

स्वामीजी—मैं तो आपका आसन देखने आया हू।

व्यासजी—मुझे तमाशा दिखाने या किसी प्रकार के प्रदर्शन में विश्वास नही और न मै आपको अपनी परीक्षा ही देना चाहता हू।

स्वामीजी—मैं न तो किसी प्रकार का प्रदर्शन करवाना चाहता हू और न मै आपकी परीक्षा ही लेना चाहता हू। मेरी तो बडे विनम्र-भाव से आपसे प्रार्थना है कि आप आसन के सम्बन्ध मे मेरी भ्राति को दूर कर दे। जब तक मेरे सशय का निवारण आप न करेंगे मैं यही बैठा रहूगा।

व्यासजी—आप कल सायकाल पाच बजे तैयार होकर आ जाए।

स्वामी विशुद्धानन्द दूसरे दिन नियत समय पर अपने शिष्यो को साथ लेकर वहा पहुच गए। इन्होने अपने शिष्यो की तीन-तीन घण्टे की बारी लगा दी और आदेश दिया कि जब तक व्यासदेवजी आसन पर से न उठे तब तक तुम बारी-बारी से उनका निरीक्षण करते रहना। जब वे उठे तो तुम मुझे इसकी सूचना दे देना। स्वामीजी पास वाले एक कमरे मे ठहर गए।

व्यासदेवजी ने आसन बिछाया। लालटैन जलाई। दरवाजा खोल दिया। शिष्यो को दरवाजे पर बिठा दिया। सिद्ध आसन से निश्चेष्ट होकर स्थिर भाव से बैठ

राजयोगाचार्य बालब्रह्मचारी श्री श्यामदेवजी महाराज
(युवावस्था)

गए और अपनी आखे बन्द कर ली। इससे पूर्व शिष्यों को सूचित कर दिया कि मैं कल दस बजे आसन पर से उठूगा। ये लोग पास बैठकर बराबर देखते रहे। व्यासदेवजी १७ घण्टे तक समाधि मे बैठे रहे। दूसरे दिन समाधि से व्युत्थान हुआ और लगभग आधा घण्टा आसन से उठने मे लगा। विशुद्धानन्दजी को यह सब देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उन्होने युवक योगी की भूरि-भूरि प्रशसा की। इनके प्रति स्वामीजी की बडी श्रद्धा होगई। वे इनसे बडा प्रेम करने लगे और दोनो मे मैत्री सम्बन्ध स्थापित होगया।

श्री राजयोगाचार्य ब्रह्मचारी व्यासदेवजी महाराज की युवावस्था का चित्र, जो इस समाधि की समाप्ति के पश्चात् लिया गया था, सामने है।

कुल्लू मे चार मास तक निवास

ज्येष्ठ मास का प्रारभ होगया था। उष्णता बहुत बढ गई थी, अत सदैव की भाति पहाड पर जाने का विचार किया। किन्तु इस बार कुल्लू जाने का निश्चय किया। अमृतसर से रेलगाड़ी मे सवार होकर पठानकोट पहुच गए। वहा पर नारायणदास के पास ८ दिन तक निवास किया। इसके पश्चात् कागडे चले गए और वहा से ज्वालादेवी की यात्रा करने के लिए चल दिए।

ज्वालादेवी के दर्शन—यहा आकर एक धर्मशाला मे ठहर गए। इस मदिर की देवी के सम्बन्ध मे अनेक किवदन्तिया प्रसिद्ध है। कोई कहते थे, रात्रि के समय देवी साक्षात् रूप मे आती है। दूध का कटोरा पीती है। दातुन करती है और पलग पर सोती है। इन सब बातो को प्रत्यक्षरूपेण देखने के लिए व्यासदेवजी ने यहा पर एक मास तक रहने का विचार कर लिया। प्रात साय दोनो समय आरती मे सम्मिलित होना प्रारभ कर दिया। इस मदिर के प्रवेश-द्वार के पास बाए हाथ की ओर तीन या चार फीट ऊचा एक कुण्ड बना हुआ था। इसमे से २४ घण्टे अग्नि की लाट भक-भक शब्द करती हुई निकला करती थी। आस-पास और भी ज्वालाए निकलती थी। यात्री लोग इस कुण्ड की अग्नि मे दूध, घी, मिठाई आदि की आहुतिया दिया करते थे। व्यासदेवजी ने बडी चतुरता से कई पडो और पुजारियो से मेल-जोल कर लिया। जब मेल-जोल मित्रता के रूप मे परिणत होगया, तब इन्होने देवी के साक्षात् दर्शन करवाने के लिए उनसे कहा। उन्होने निवेदन किया कि आरती के बाद मदिर के पट बन्द हो जाते है। आपको देवी के साक्षात् दर्शन होना असभव है। व्यासदेवजी ने जब देवी के आने पर सन्देह प्रकट किया तो उन्होने विश्वास दिलाया कि हम नित्य-प्रति देवी का साक्षात्कार करते है। उनके लिए दातुन रखी जाती है, वे दातुन करती है। दूध का कटोरा भर कर रखा जाता है, वे उसे पीती है। उनके लिए शय्या बिछाई जाती है, वे उस पर सोती हैं। हमे दातुन तोडी हुई मिलती है। दूध का कटोरा खाली होता है और शय्या सोने के कारण अस्त-व्यस्त हुई मिलती है।

व्यासदेवजी अब चिन्ता मे डूब गए और वास्तविकता का पता लगाने के उपाय सोचने लगे। इन्होने प्रात आरती मे सम्मिलित होना छोड़ दिया। अब केवल सायकाल को ही आरती मे जाया करते थे। धीरे-धीरे यात्रियो का आना कुछ कम होगया। अब केवल १०-१२ व्यक्ति ही रात्रि की आरती मे सम्मिलित होते थे। एक रात्रि को

व्यासदेवजी ने एक पडे को भीतर जाते हुए तो देखा किन्तु आते हुए नही देखा और मदिर के पट वन्द होगए। इन्होने पट वन्द करने वाले पडे से वहुत कहा कि एक पडा भीतर रह गया है और पट वन्द कर दिए गए है किन्तु उसने इस वात को स्वीकार नही किया। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। व्यासजी का सदेह वढता ही गया। इसे दूर करने का उपाय वडी तत्परता से सोचने लगे। इन पुजारियो मे से एक पुजारी से इनकी मित्रता कुछ अधिक होगई थी। एक दिन उससे इन्होने अपना सदेह प्रकट किया और यथार्थता का पता लगाने के लिए आग्रह किया। जव ब्रह्मचारीजी ने विश्वास दिलाया कि वे किसी से इस वात की चर्चा नही करेंगे तव उसने इन्हे एकान्त मे ले जाकर इस सारी वात का रहस्योद्घाटन कर दिया। उसने वताया कि कोई देवी साक्षात् रूप से यहा नही आती। न वे दूध पीती हैं, न दातुन करती है। और न इस पलग पर शयन ही करती हैं। हम मे से एक पुजारी भीतर रह जाता है। वही यह सव कुछ करता है। इस मदिर और देवी के महत्व की वृद्धि और प्रसिद्धि के लिए यह सव वाते की जाती है। यहा पर कभी किसी ने आकर आपके समान जिज्ञासा नही की और न किसी प्रकार की छानवीन ही की है। इस यथार्थता का पता लगाकर व्यासदेवजी को वडी प्रसन्नता हुई। इसी पुजारी ने एक घटना सुनाई। महाराजा पटियाला एक वार देवी पूजन के लिए वहा पर आए। वे देवी के अनन्य भक्त थे। उन्होने वहा के पुजारियो और पडो के समक्ष एक प्रस्ताव रखा। वे ८-९ वर्ष की एक कुमारी ब्राह्मण-कन्या की देवी के रूप मे पूजा करना चाहते थे। वे शास्त्रविधि से सव कुछ करना चाहते थे। उन्होने यह विश्वास दिलाया कि जव उस कन्या का विवाह होगा तो मैं विवाह का सारा व्यय दूगा। कन्या लावण्यमयी तथा सौन्दर्यपूर्ण होनी चाहिए। रुपये के प्रलोभन मे आकर कई पडे और पुजारी अपनी-अपनी कन्या इस कार्य के लिए देने को तैयार होगए। इस पूजा मे विचित्रता यह थी कि कन्या को नग्न करके पूजा की जाती थी। जिस ससय पूजा होती थी उस समय पुजारी के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति वहा नही रह सकता था। व्यासजी को ये वातें भला कैसे पसन्द आ सकती थी। उनका मन वडा खिन्न हुआ और भारतीय अध-विश्वासो, उनकी अज्ञानता तथा रूढिवादिता की वडी निन्दा की। अव वे ज्वालादेवी से धर्मशाला चले गए। एक सप्ताह तक यहा निवास किया। यहा से भागसूनाथ के चश्मे को देखने के लिए गए। यह स्थान अत्यन्त रमणीक है। दो शेरो के मुह से पानी की वड़ी मोटी-मोटी धाराए निकल रही हैं। अनेको पजावी यहा गर्मियो मे आते है। यहा ठण्ड वहुत होती है। वर्षा भी खूव होती है। इसके वाद पालमपुर देखने के लिए गए। फिर वैजनाथ और पपरोला के विजलीघर को देखा। यहा से सारे पजाव को विजली पहुचाई जाती है। मण्डी, सुकेत और रिवालसर देखने के लिए चले गए। रिवालसर के पानी पर भूखण्ड तैरते हुए देखकर वडी प्रसन्नता लाभ की। यहा पर एक मदिर भी है। यहां पर वौद्ध यात्री दर्शनार्थ आया करते थे। यहा से कुल्लू के लिए प्रस्थान किया और वहा पर चार मास तक ठहरे।

कुल्लू मे निवास—कुल्लू मे भी मलावामल कुलदीपचन्दजी की दुकान थी। इन्होने व्यसादेवजी की ठहरने की व्यवस्था कर दी थी। कुछ दिन यहा पर रहे और इसके बाद एक एकान्त स्थान मे जाकर रहने लग गए। व्यास नदी के पार एक कुटिया

मे निवासादि की सारी व्यवस्था कर दी गई थी। इसी कुटिया मे रहकर इन्होने अपनी समाधि के अभ्यास मे वृद्धि की। भोजन दोपहर के समय स्वयं ही बनाते थे। यहा पर इन्होने अपने समाधि-काल मे बहुत उन्नति कर ली थी और अभ्यास करते-करते बहुत ऊची अवस्था तक पहुच गए। ये स्थितप्रज्ञ थे और इनकी बुद्धि बडी निश्चयात्मक थी। जिस कार्य मे एक बार लग जाते थे उसे पूरा करके छोडते थे।

वशिष्ठ कुण्ड और व्यास कुण्ड की यात्रा—आश्विन मास तक महाराजजी कुल्लू मे रहे। वर्षा इस मास के प्रारम्भ मे ही बन्द होगई थी। यहा से २५ मील पर मनाली अत्यन्त रमणीक और शीत-प्रधान प्रदेश है। बगीचो मे पेड मेवो तथा अन्य विविध फलो से लदे रहते है। इस मनोहर स्थान को देखने के लिए आश्विन मास के प्रारम्भ मे ही प्रस्थान किया क्योकि यहा का जलवायु कुल्लू की अपेक्षा अधिक अच्छा था। मनाली से लगभग १५ मील की दूरी पर व्यास कुण्ड है। यह एक पहाडी के शिखर पर है। इसी जलस्रोत से व्यास दरिया निकलता है जो कुछ मील पर जाकर एक बडा दरिया बन जाता है। इसमे अनेक नदी-नाले मिल जाते है जो इसके आकार मे वृद्धि कर देते है। व्यास कुण्ड के आस-पास एक बहुत ऊची पहाडी है। इस पर ऊचाई के कारण कोई वृक्ष नही उगता। एक बहुत बडा मैदान अवश्य है। वर्षा ऋतु मे यहा पर विविध जडी-बूटियो और पुष्पो की बडी बहार रहती है। उस मैदान के आस-पास हिमाच्छादित बडे विशाल पर्वत है। यहा पर ठहरने का कोई प्रबन्ध न होने के कारण वापस लौटना पडा। इसी प्रकार से वशिष्ठ कुण्ड मे भी वे अधिक देर नही ठहरे थे, यद्यपि यह बडा रमणीक स्थान था। यह कुण्ड मनाली मे ही है। व्यास कुण्ड से लौट कर फिर मनाली आ गए और यहा पर १५ दिन तक ठहरे। इन दिनो फल पक चुके थे और उनका बडा आधिक्य था, इसलिए वे बहुत सस्ते बिकते थे। कुल्लू का दशहरे का मेला बडा प्रसिद्ध है। इसे देखने की अभिलाषा से यहा पर दशहरे तक ठहरने का विचार किया और अपनी उसी कुटिया मे रहने की व्यवस्था कर ली। कुल्लू मे दशहरे का मेला लगभग १० दिन तक मनाया जाता है। व्यापारी लोग अपनी-अपनी दुकानें यहा लगाते है। ये लोग दूर से अपना आकर्षक और जीवनोपयोगी तथा विविध प्रकार का विलासिता का सामान यहा पर बेचने के लिए लाते है। मेले की ठीक-ठीक व्यवस्था सरकारी अफसर करते है। दुकानो को उत्तम तथा आकर्षक ढग से सजाया जाता है। इस मेले के समारोह को देखने के लिए दूर-दूर से यात्री आते है। व्यास नदी के किनारे एक बडा भारी मैदान है। इसी मे प्रति वर्ष यह मेला लगा करता है। इस नदी के किनारे ही पुराने ढग का एक लम्बा बाजार भी है।

कुल्लू के मेले पर व्यभिचार रोकने का उपाय—कुल्लू के मेले के अवसर पर व्यभिचार पराकाष्ठा को पहुच जाता था। नगर के गण्यमान्य तथा प्रतिष्ठित लोगो का एक प्रतिनिधि-मण्डल व्यासदेवजी से इसकी रोक-थाम के विषय मे मिलने आया। पठानकोट आर्यसमाज के प्रधान लाला कुलदीपचन्दजी भी इस सम्बन्ध मे मिलने आए। इन्होने ब्रह्मचारीजी को कई स्थानीय स्वयसेवक देने का वचन दिया। बीस स्वयसेवक इस कार्य के लिए भर्ती किए गए। मेले मे एक शिविर लगाया गया, जिसमे तीन घण्टे सायकाल व्यासदेवजी स्वय ब्रह्मचर्य, सदाचार, चरित्र-निर्माण,

धर्मानुष्ठान, गृहस्थ धर्म, सुखी परिवार, कर्त्तव्य पालन, मानव के पतन के कारण, सन्तान के प्रति माता-पिता का कर्त्तव्य, सुखी जीवन, पतन की ओर ले जाने वाली प्रवृत्तिया, कर्म-मीमासा, जगद्‌गुरु भारतवर्ष, भारतवर्ष की दार्शनिकता, भारतवर्ष के सन्त, वर्णाश्रम-व्यवस्थादि विविध विषयो पर व्याख्यान देते थे। सैकडो की सख्या मे लोग इन उपदेशो को सुनने के लिए आते थे। सदाचार तथा कुरीति निवारण सम्बन्धी भजन गाए जाते थे। रात्रि के समय स्वयसेवक सारे मेले मे घूमा करते थे। जहा-जहा पर व्यभिचार के प्रसिद्ध अड्डे थे वहा पर विशेषरूप से खडे रहते थे। दुराचारी स्त्री और पुरुषो को पकड कर पुलिस थाने मे ले जाते थे। पुलिस ने भी इस कार्य मे व्यासदेवजी को वडा सहयोग दिया। पुलिस दुराचारियो को हवालात मे रखती थी और उन्हे डाटती-फटकारती और शर्मिन्दा करके छोड़ देती थी। इस प्रकार १५ दिन तक ब्रह्मचारीजी ने ब्रह्मचर्य और सदाचार के प्रचार तथा दुराचार के निरोध के लिए अनथक परिश्रम किया।

कुल्लू के आस-पास देहातो मे लुगडी नाम की एक प्रकार की शराब बहुत वनाई जाती थी। प्राय सभी देहात के लोग इसे पीते थे। दशहरे के मेले के समय भी इसकी खूब बिक्री होती थी। पुरुष और स्त्रिया अपनी टोलिया वना कर इस मदिरा का पान करके इधर-उधर मेले मे घूमा करते थे तथा विविध प्रकार के नृत्य किया करते थे। मदिरा-पान के विरुद्ध भी व्यासदेवजी ने वडा आन्दोलन किया था और इसमे उन्हे कुछ सफलता भी प्राप्त हुई।

इस मेले के अवसर पर ग्रामीण लोग कम्वल, गर्म चादरे तथा पट्टी आदि बेचने के लिए आते थे। अमृतसर तथा अन्य नगरो के व्यापारी गर्म कपडे को खरीदने के लिए आते थे। लाखो का व्यापार इस मेले मे होता था।

मणीकरण की यात्रा—दशहरे का मेला समाप्त होने के पश्चात् श्री ब्रह्मचारीजी ने मणीकरण के लिए प्रस्थान किया। यह स्थान कुल्लू से २४ मील की दूरी पर है। यहा पर गधक के कई चश्मे है जिनमे से सदैव गर्म जल निकला करता है। यह जल इतना गर्म होता है कि यात्री लोग इसमे चावल तथा आलू उवालते थे। वे आलुओ को पोटली मे बाधकर चश्मे मे डाल दिया करते थे और थोडी देर बाद ही वे उवलकर तैयार हो जाते थे। जव ये पक जाते तो इनमे से गधक की थोडी खुशबू आया करती थी, किन्तु जो पतीले मे दूसरा पानी डालकर उसमे इच्छानुसार चावल डालकर कुण्ड के जल मे रख देते थे वे चावल उवल जाते थे और उनमे किसी प्रकार की गध नही आती थी। इसी प्रकार दाल भी बहुत जल्दी पककर तैयार हो जाती थी। रोटिया वेल-वेलकर इस जल के अन्दर रखने से ये रोटिया भी पक जाती थी किन्तु उनमे गीलापन रह जाता था। पर उनके पकने मे किसी प्रकार की कमी नही रहती थी।

मणीकरण की यात्रा करने के पश्चात् व्यासदेवजी भूनित्तर लौट आए और यहा से मण्डी को प्रस्थान किया। यहा पर ये दो दिन तक ठहरने के वाद सुकेत, विलासपुर और अर्की की यात्रा के लिए चले गए। ये चारो रियासते थी और मण्डी इन सब मे बडी रियासत थी। अर्की मे काग्रेस के दो कार्यकर्ताओ से भेट हुई। इनमे से एक मेरठ के निवासी थे और दूसरे लाहौर के अखबार वन्देमातरम् के सम्पादक थे। ये दोनो सज्जन

बड़े देशभक्त और क्रान्तिकारी दल के थे। भारत को स्वतन्त्र करवाने की इनमे बडी लगन थी। अहर्निश यही धुन उन्हे लगी रहती थी। स्वतन्त्रता की बलिवेदि पर ये अपना सर्वस्व निछावर करने को कटिबद्ध थे और अपनी जान को हाथ की हथेली पर रखकर अपने आपको इस कार्य के लिए झोंक दिया था। अर्फी मे एक बडा बुद्धिमान लुहार रहता था। यह नई-नई चीजे बनाने की खोज किया करता था। इसने एक प्रकार से देशी पिस्तौल का आविष्कार किया था। इस पिस्तौल के तीन टुकडे किए जा सकते थे। जब इसके तीन टुकडे कर दिए जाते थे तो कोई यह नही पहिचान सकता था कि यह पिस्तौल है या अन्य कोई वस्तु। एक पिस्तौल को यह १६) मे बेचता था। गोलिया बनाना भी वह जानता था। क्रान्तिकारी देशभक्त इससे प्राय पिस्तौल और गोलिया खरीदा करते थे। यह लुहार उनको पिस्तौल और गोलिया चोरी से बेचा करता था, क्योकि ब्रिटिश सरकार का सदा भय बना रहता था। ये क्रान्तिकारी सज्जन इस लुहार को अपने साथ ले जाना चाहते थे और इसी उद्देश्य से ये यहा अर्फी मे आए थे। उन सज्जनो से व्यासदेवजी को पता चला कि वे इस लुहार को भारी वेतन पर कही अन्यत्र ले जाना चाहते थे जिससे वह गोलिया और पिस्तौल बना कर सैकडो की सख्या मे देता रहे। उनका उद्देश्य एक भारतीय सेना का निर्माण करके ब्रिटिश सरकार से लोहा लेना था। इन्होने इस कार्य के लिए एक बहुत बडी योजना बनाई थी। उन नवयुवको को देखकर ब्रह्मचारीजी के मन मे भी पराधीनता की कडी शृङ्खलाओ से जकडी हुई भारत माता को स्वतन्त्र करने के लिए जो आन्दोलन चल रहा था उसमे योग देने की भावना जागृत हुई किन्तु वे इसमे सक्रिय योग न दे सके क्योकि वे साधना, तप तथा योगाभ्यास मे निरत थे। इन्होने भी सोलह रुपये मे एक पिस्तौल उस लुहार से खरीदा और उसे अपने साथ अमृतसर ले गए। वहा जाकर उसे एक मिट्टी की हाडी मे रखकर जमीन मे गाड दिया। वहा पडे-पडे उसमे जग लग गई और किसी काम का न रहा। अर्फी से ये शिमला चले गए और वहा पर अमृतसर के रायसाहब गगाराामजी की कोठी मे कुछ दिवस तक निवास किया। दीवाली के अवसर पर ये अमृतसर पहुच गए। यहा पर थोडे ही दिन ठहरे क्योकि अब उनका विचार कलकत्ते जाने का होगया जिससे वहा जाकर नव्य-न्याय का अध्ययन किया जाए और फिर वहा से दार्जिलिङ्ग जाने का निश्चय किया।

बग देश की यात्रा

पश्मीने के कई व्यापारियो के आग्रह पर श्री व्यासदेवजी ने शीतकाल मे कलकत्ते जाने का विचार किया और नवम्बर के अन्त मे कलकत्ता पहुच गए। यहा पर खिगरापट्टी मे लाला रामभज काहनचन्द पश्मीने वालो के पास ठहरे। यहा आकर इनका अमृतसर निवासी लाला मूलराज से बहुत परिचय होगया था। ये ईश्वरदास श्यामल के हिस्सेदार थे। यह बनारसी कपडे की बडी भारी फर्म थी। इनकी प्रेरणा से सन्त महात्माओ के दर्शनार्थ नवद्वीप चले गए। नवद्वीप का दूसरा नाम नदिया-शान्ति था। यहा पर लगभग एक मास तक एक प्रसिद्ध धर्मशाला मे निवास किया। इस नदिया-शान्ति मे बहुत से भजनाश्रम है जिनमे सैकडो की सख्या मे महिलाए प्रतिदिन ४-५ घण्टे तक कीर्तन किया करती है। ये प्राय विधवा होती है। यहा पर कीर्तन करने के पश्चात् इन्हे दाल, चावल, घी, लकडी आदि सामान प्राप्त होता है। यह कीर्तन

इन बेचारी विधवाओ के लिए आजीविकोपार्जन का एक साधन था। इनके निवास की व्यवस्था भी आश्रम की ओर से की जाती थी। यह व्यवस्था आश्रम मे नही परतु कही अन्यत्र की जाती थी। यहा पर अनेक बगाली सन्त भी रहते थे जिन्होने अपने निवास के लिए कुटियाए प्राय गगा के किनारे बनाई हुई थी। ये सन्त और महात्मा गौरागप्रभु के अनुयायी तथा अनन्य भक्त थे। भगवतनाम स्मरण और कीर्तन इनका परमोद्देश्य था। यहा पर कई सस्कृत पाठशालाए थी किन्तु नव्य-न्याय के कोई विद्वान् यहा पर इस समय नही थे। ये सब इन पाठशालाओ को छोडकर बनारस चले गए थे। ललितासखि नाम के एक सन्त बडे उच्चकोटि के विद्वान् थे। ये सखीभाव से कृष्ण की भक्ति करते थे तथा स्त्रीवेश में रहते थे। इनके साथ प्राय शास्त्र-चर्चा हुआ करती थी। व्यासदेवजी की प्रतिभा, त्याग, ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास से बडे प्रसन्न थे और इनसे बडा स्नेह रखते थे। एक दिन ब्रह्मचारीजी मूलराज और चरणदास को लेकर गगा के किनारे भ्रमण के लिए चले गए। वहा पर एक बगीचा था जिसमे एक सुन्दर मकान और गुफा बनी हुई थी। इन्होने इन दोनो को समाधि मे बिठाने की इच्छा प्रकट की। किन्तु उन्होने निवेदन किया कि दुकानदारी और समाधि में मेल नही है। महाराजजी ने विनोदपूर्ण ढग मे मुस्कराते हुए कहा कि आज इन दोनो मे मेल करवा देंगे। मूलराज तथा चरणदास समाधि के लिए तत्पर होगए। योगी-राज ने इन दोनो को समाधि का तरीका बताया और गुफा मे बिठा दिया और स्वय उनके सन्मुख बैठ गए। पाच सात मिनट मे ही दोनो के मन, चित्त तथा इन्द्रिया शात और स्तब्ध होगईं। तीन घण्टे तक ये समाधिस्थ रहे। प्रात ९ बजे ये समाधि मे बैठे थे और दोपहर को १२ बजे उठे। तीन घण्टे तक इन्हें कुछ भी पता न रहा। इनकी उस समय की अवस्था अनिर्वचनीय थी। ये निरन्तर आनन्दानुभव करते रहे। तीन घण्टे के पश्चात् बडी कठिनाई से योगीराजजी ने इन्हें समाधि से उठाया। मूल-राज ने उठ कर तुरन्त महाराजजी के चरण पकड लिए और उनके नेत्रो से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। वे आनन्द-विभोर होगए थे। उन्होने चरण स्पर्श करते हुए कहा कि वर्षो की खोज के पश्चात् आज सच्चे गुरु की उपलब्धि हुई है। आज जिस अपरिमेय तथा अद्वितीय आनन्द की प्राप्ति हुई है ऐसी आज तक कभी उपलब्ध नही हुई। मुझमे तो आध घण्टे तक भी बैठने की क्षमता न थी किन्तु आपने मुझे तीन घण्टे तक एक प्रकार से बाध कर बिठा दिया। मुझे तो दीन-दुनिया का कुछ भी ज्ञान न रहा। मुझे अपनी बिलकुल सुध-बुध न रही। आत्म-विस्मृति-सी होगई। महाराजजी, आप धन्य हैं, आज हमारा जीवन सफल होगया। आपके इस महान् उपकार का बदला कैसे चुका सकते है! भोजन की व्यवस्था इसी उद्यान मे की गई और सारा दिन वही व्यतीत किया।

सन्तो का बाजार—नवद्वीप मे एक बाजार था जिसमे सब सन्त महात्मा ही रहते थे। कई गुफा बनाकर रहते थे। कइयो ने तख्तो पर कील ठुकवा रखे थे और उन पर बैठकर तपश्चर्या करते थे। कइयो ने अपनी कोठडियो के दरवाजो को सीखे लगवा कर बन्द करवा दिया था और भीतर बैठकर ध्यान लगाते थे। ध्यानावस्थित सन्तो के सामने श्रद्धालु लोग आकर रुपये-पैसे चढा जाते थे। इस बाजार के एक बराण्डे मे एक युवक ब्रह्मचारी रहता था। इसके विषय मे यह प्रसिद्धि थी कि यह

दो दिन तक समाधिस्थ रहता था। एक दिन व्यासदेवजी इसके दर्शन के लिए गए और २२ घण्टे तक निरन्तर उसके पास बैठे रहे। इसका आसन स्थिर था। पास बैठे हुए व्यक्ति को इनकी श्वास-प्रश्वास की गति का भी कुछ पता नही लगता था। केवल कौपीन बाधकर ही समाधि मे बैठा था। इसकी आयु लगभग २४-२५ साल की होगी। इससे बातचीत करने का अवसर कभी नही मिला क्योकि जब ये जाते थे तब वह समाधिस्थ ही मिलता था। एक सन्त ऐसे थे जो एक फुट चौडे रोशनदान से ही 'हरि बोल' कहकर दर्शन दिया करते थे। इस प्रकार से यहा पर इन्होने कई सन्त महात्माओ दर्शन किए और कइयो मे वार्तालाप करने का भी सुअवसर लाभ हुआ।

भजनाश्रमो मे प्राय ग्यारह बजे तक भजन तथा कीर्तन होता था। अन्त मे महिलाए खडी होकर कीर्तन करती थी। इनमे से कई भावावेश मे आकर बेहोश हो जाती थी और कई-कई घण्टे तक अचेत पडी रहती थी। बहुत-सी महिलाए भक्ति-रस मे इतनी विभोर हो जाती थी कि उनके नेत्रो मे प्रेमाश्रुधारा बह निकलती थी और रुदन करती हुई ही कीर्तन करती थी। प्रेम, श्रद्धा और आनन्द से आप्लावित होकर जब ये कीर्तन करती थी तो दर्शको तथा श्रोताओ के हृदय मे अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का सचार होता था और भगवान् के प्रति अनुराग की भावना जागृत होती थी।

व्यासदेवजी अपने दोनो भक्तो के साथ नित्यप्रति गगाजी के किनारे भ्रमण के लिए जाते थे। वही स्नान, ध्यान, व्यायाम, प्राणायाम तथा योगाभ्यास किया करते थे। इस प्रकार यहा एक मास तक निवास करके ये कलकत्ता लौट गए।

कलकत्ते मे लाला काहनचन्द खन्ना रफल के व्यापारी थे। ये व्यासदेवजी से बडा स्नेह करते थे और उनके प्रति इनकी अनन्य श्रद्धा थी। इनका रफल का व्यापार फ्रास की एक कम्पनी से चलता था। इनको उस वर्ष इस व्यापार मे बहुत घाटा पडा था। इन्होने सोचा कि ब्रह्मचारीजी बडे भारी योगी और त्यागी सन्त है। यदि इनके नाम से व्यापार किया जाए तो शायद जो घाटा पडा है उसकी पूर्ति हो जाए। इस-लिए इन्होने व्यासदेवजी के नाम से रफल का सौदा किया। इसमे इन्हे पाच हजार का लाभ हुआ और काहनचन्दजी को २० हजार का। काहनचन्दजी यह रुपया लेकर इनके पास गए और रुपया इनकी भेंट किया और निवेदन किया कि रफल की कुछ गाठो का व्यापार आपके नाम से किया था, उसमे पाच हजार रुपये का लाभ हुआ है। यह रुपया आपका है। आप इसे स्वीकार करने की कृपा करे। महाराजजी ने इसे उचित नही समझा और उन्हें समझाया कि साधु-सन्तो के नाम पर व्यापार नही करना चाहिए। यह उनके लिए कोई शोभा और सम्मान की बात नही है। इन्होने यह धनराशि लेने मे इन्कार कर दिया।

गगा सागर की यात्रा—शीतकाल मे व्यासदेवजी ने गगा सागर की यात्रा करने का विचार किया। मूलराजजी भी इनके साथ चलने को तैयार होगए। एक जलपोत से सवार होगए। यह जलपोत सायंकाल को रवाना हुआ। रात भर चलकर प्रात गगा सागर पहुचा। यहा पर गगाजी समुद्र मे मिलती है। यहा पर समुद्र मे स्नान करने का बडा महत्त्व माना जाता है क्योकि इसमें गगा आकर मिलती है। हजारो की सख्या मे यात्री यहा स्नान करने आते हैं। वे यहा एक दिन ही ठहरते

है। स्नान तथा मदिर दर्शन के पश्चात् चले जाते है। समुद्र के किनारे झाडियो से सटा हुआ एक छोटा-सा मैदान है। इस मैदान मे कपिलदेवजी का मदिर है। इसके पास ही एक और मदिर है जिसमे ब्रह्माजी की चतुर्मुखी प्रतिमा है। व्यासदेवजी तथा लाला मूलराज चौथे दिन गगा सागर से कलकत्ता लौट आए।

दार्जिलिंग और शिलांग भ्रमण

ग्रीष्मकाल मे कलकत्ते मे रहकर साधना करना अत्यन्त कठिन था। इसलिए व्यासदेवजी ने बगाल के उत्तरी भाग मे स्थित दार्जिलिंग और आसाम के उत्तरी प्रदेश मे स्थित शिलाग जाने का विचार किया। इन दोनो प्रान्तो के गवर्नर ग्रीष्म ऋतु मे इन स्थानो मे जाकर निवास किया करते थे। लाला मूलराज अपनी दुकान से अवकाश प्राप्त करके इनके साथ चलने को तैयार होगए। ये महाराजजी के सत्सग तथा उनके उपदेशो को सुनकर ससार से कुछ उपराम से होते जा रहे थे, इसलिए जहा ये जाते वही उनके साथ चलने को तैयार रहते थे। ये नि सन्तान थे। इनकी पत्नी को कुछ मस्तिष्क का विकार होगया था अत वह अपनी माता के पास जालधर मे रहा करती थी। मूलराज के पास लगभग एक लाख रुपया था और उनका अपना मासिक व्यय बहुत कम होता था। व्यासदेवजी ने उन्हे सलाह दी कि तुम्हारे पास रुपये की कमी नही है। तुम अपना सारा समय ईश्वर-भक्ति मे लगा सको तो बडा उत्तम हो। मूलराज ने उनकी इस बात को मान लिया और इस पर विचार करना प्रारभ कर दिया। दार्जिलिंग पहुचकर एक मकान मे दो कमरे किराये पर लिए गए। यहा पर रहकर इधर-उधर दर्शनीय स्थानो को देखने के लिए चले जाते थे। यहा पर दो मास तक निवास करने का निश्चय किया।

टाइगर हिल पर सूर्योदय दर्शन—दार्जिलिग मे टाइगर हिल नाम का एक बडा सुन्दर स्थान है। यहा पर सूर्योदय का अलौकिक दृश्य देखने के लिए बहुत दूर-दूर से लोग आया करते थे। इन दिनो वर्षा ऋतु प्रारभ होगई थी। दार्जिलिग मे वर्षा अन्य पर्वतीय स्थानो की अपेक्षा होती भी अधिक है। व्यासदेवजी तथा मूलराज ने टाइगर हिल पर इस अद्वितीय दृश्य को देखने का विचार किया। ये दोनो प्रात काल ही इस पहाडी पर जा पहुचे। कई दिन से वर्षा हो रही थी किन्तु उस दिन दैवयोग से यह बन्द होगई। सैकडो व्यक्ति इस दृश्य को देखने के लिए इस पहाडी पर जाते थे किन्तु वर्षा के कारण सूर्यदेव के दर्शन नही हो पाते थे। व्यासदेवजी जिस दिन गए उस दिन गगनमण्डल बिलकुल साफ होगया। मार्ग मे २५-३० यात्री व्यासदेवजी के साथ हो लिए। जब ये लोग पहाडी के ऊपर मैदान मे पहुचे तो इन्हे जर्मनी के बहुत से लोग मिले। ये भी सूर्योदय के दृश्य को देखने के लिए कई दिनो से आ रहे थे किन्तु वर्षा के कारण निराश होकर लौट जाते थे। बहुत दिनो के पश्चात् उस दिन इन्हे अवसर मिला। व्यासदेवजी का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् उन्होने इनके पास आकर कहा, "आज ऐसा मालूम होता है कि आपने अपने योगबल से नभ मे आच्छादित मेघ-मडल को छिन्न-भिन्न करके तितर-बितर कर दिया है। आप मनुष्य नही किन्तु आप मनुष्य रूप मे देवता हैं। आपकी कृपा से आज हम सूर्योदय के अपूर्व दृश्य को देख सकेंगे।" इस पहाडी के पूर्व की ओर एक बडा भारी मैदान है। यही से सूर्योदय देखा जाता था। जब सूर्य उदय होता था तो ऐसा प्रतीत होता था मानो यह पर्वतीय भूमि

के आंचल से निकलकर चला आ रहा है। प्रतिक्षण यह नया-नया रूप धारण करता था। पल-पल मे अपना रग बदलता था। उसमे एक प्रकार का अननुभूत सा स्पन्दन तथा हलचल सी प्रतीत होती थी। इसके कपन और क्षोभ स्पष्ट दृष्टिगोचर होते थे। यह परिवर्तनरूप क्रिया प्रात ४ बजे से लेकर डेढ घण्टे तक रहती है। इस चित्ताकर्षक दृश्य को देखने के लिए किसी-किसी दिन तो सैकडो की सख्या मे लोग एकत्रित हो जाते है। सूर्योदय की यह छटा देखते ही बनती है। यह वाणी का विषय नही है। यहा का सूर्योदय तथा आबू पर्वत का सूर्यास्त दोनो ही अनुपम दृश्य है। टाइगर हिल पर जाने के लिए पक्की सडक बनी हुई है। प्रात सूर्योदय के दृश्य को देखने के लिए यात्रियो को रात्रि मे ही वहा पहुचना होता था। व्यासदेवजी तथा मूलराज ने इस भव्य दृश्य को कई बार देखा।

दार्जिलिंग मे चाय के कई बाग है। ये लोग इन्हे भी प्राय देखने के लिए जाया करते थे। यहा पर चाय बनाने के कई कारखाने है। यहा पर मच्छर और मक्खी बहुत तग करते है। ध्यानाभ्यास के लिए यह स्थान उपयुक्त था। योगीराज ने इस कार्य के लिए एक एकान्त-स्थान नियत किया हुआ था।

शिलाग के लिए प्रस्थान—दार्जिलिंग मे दो मास निवास करने के बाद व्यासदेवजी तथा मूलराज ने शिलाग जाने का निश्चय किया। दार्जिलिंग से प्रस्थान करके वे सर्वप्रथम गोहाटी पहुचे। यहा पर कामाक्षा देवी का एक बहुत बडा मन्दिर है। यह एक छोटी सी पहाडी पर स्थित है। यहा पर एक धर्मशाला मे निवास किया। ब्रह्मपुत्र नदी मे स्नान किया और तत्पश्चात कामाक्षा देवी के दर्शन किए। जब वे दूसरे दिन स्नान करने के लिए गए तब वहा दो महिलाए स्नान करने के लिए आई हुई थी। वे दोनो युवतिया सन्यासी के वेश मे थी। दोनो की आयु २०-२५ वर्ष के अन्तर्गत थी। उनमे से एक गुरु तथा दूसरी शिष्या थी।

सन्यासिनी देवी से परिचय—दो सन्यासिनी देविया ब्रह्मपुत्रा नदी के तट पर महाराजजी से मिली थी। उनमे जो गुरु थी वह उनके व्यक्तित्व से बडी प्रभावित थी। उसने उनके पास जाकर स्वय उनका परिचय प्राप्त किया। उसे मालूम हुआ कि उनका शरीर पजाब प्रान्त का है। ये कलकत्ता से आए है। दार्जिलिंग मे दो मास ठहरकर गोहाटी आए है और यहा एक धर्मशाला मे ७-८ दिवस रहने के पश्चात् शिलाग जाने का विचार है। उसने सादर प्रणाम करके निवेदन किया कि वे उसके ही आश्रम मे ठहरें। वहा उनके लिए सब उनकी सुख सुविधा के अनुरूप व्यवस्था कर दी जाएगी। व्यासदेवजी ने वहा जाने से पूर्व उनके आश्रम को देखने की इच्छा प्रकट की। उनका आश्रम वहा से २-३ फर्लांग पर ही था। ये उनके साथ उनके आश्रम मे पहुचे। वहा जाकर देखा कि एक बडा सुन्दर बगला एकमजला बना हुआ था। इसमे बहुत बढिया चार कमरे थे। उस बगले के आसपास और भी कई बगले बने हुए थे। व्यासदेवजी ने घूम-फिर कर सारा मकान देखा किन्तु उन्हे कही कोई भी पुरुष दिखाई न दिया, अत उन्हे धर्मशाला से यहा आने मे बडा सकोच अनुभव होने लगा। जब उन्होने अपना सकोच गुरु देवी पर प्रकट किया तो वह मुस्कराई और कहा कि आप इतने ऊचे महात्मा है, अभी भी आपको पुरुष और स्त्री का भेद बना हुआ है। आप यहा ठहरें, मै आपकी रक्षा के लिए जितने पुरुष आप चाहे उतने मगवा देती हू। ये

सब बाते सुनकर व्यासदेवजी ने अपने सुन्दर भाव व्यक्त किए कि जब तक पूर्णरूपेण ज्ञान और वैराग्य नही हो जाता और स्वरूप स्थिति नही हो जाती तब तक भेदभाव बना ही रहता है और यह आवश्यक भी है। इन्होने अनेक प्रकार से उसे समझाया किन्तु कोई भी बात उस देवी के गले नही उतरी। उसने एक आदमी को भेजकर तुरन्त महाराजजी का सामान धर्मशाला से अपने आश्रम मे मगवा लिया और उनके तथा मूलराजजी के रहने की सारी व्यवस्था कर दी। गुरु देवी की शिष्या ने भोजन बनाया और बडी श्रद्धा और भक्ति से दोनो को भोजन करवाया।

उपनिषदो की कथा--सायकाल ४ बजे बराण्डे मे चटाइया बिछा दी गई। आस-पास के सब लोग वहा पर एकत्रित होगए। महाराजजी ने योग के सम्बन्ध मे एक सारगर्भित उपदेश दिया। इससे एकत्रित सभी सज्जन बडे प्रभावित हुए। लगभग दो घण्टे तक सत्सग होता रहा। इसी अवसर पर एक मारवाडी सेठ वहा आए। गुरु देवी ने महाराजजी से इनका परिचय करवाया। यह सेठ इन दोनो देवियो को सब खर्च देते थे। बगला भी इन्होने ही बनवा कर दिया था और वहा पर जितने भी सन्त और महात्मा आते थे उन सबका खर्चा भी यह ही करते थे। श्री ब्रह्मचारीजी सात दिन तक यहा ठहरे और सातो ही दिन उपनिषदो की कथा सायकाल के समय करते रहे। इनकी कथा ने वहा के निवासियो मे आध्यात्मिक नव-चेतना का सचार किया। पथभ्रष्टो का मार्ग दर्शन किया और कर्त्तव्य-विमुखो को कर्त्तव्य पथ पर आरूढ किया।

गोहाटी से प्रस्थान का विचार--सारे दर्शनीय स्थानो को देखने के पश्चात् व्यासदेवजी ने गोहाटी से प्रस्थान करने का विचार किया। यहा रहते बहुत दिन हो गए थे। नवयुवती सन्यासिनियो के पास अधिक दिन तक निवास को वे उचित नही समझते थे। उनके आतिथ्य तथा अत्यधिक उपचार को भी वे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। एक नीति वाक्य भी इस विषय मे इनके रुख का समर्थन करता है "अत्युपचार शकनीय"। इन्होने यहा की महिलाओ के विषय मे अनेक प्रकार की किवदन्तिया सुनी हुई थी, इसलिए भी अब वे वहा से शीघ्र ही गमन करना चाहते थे। इन्होने अपने प्रस्थान का विचार गुरु देवी से प्रकट किया। इस देवी ने उन्हें ठहराने के लिए बडा आग्रह किया क्योकि एक सप्ताह तक उनके सत्सग से जनता ने बडा लाभ उठाया था। जब वह बार-बार हठ करने लगी तब व्यासदेवजी ने उन्हे भली प्रकार से समझाया कि "जब एक सप्ताह हमारे यहा ठहरने से आपको मोह होगया है तो हम यदि और अधिक यहा ठहरेगे तो यह मोह का बधन और भी अधिक दृढ हो जाएगा। आप लोग सन्यासिनिया हो, अपने परिवार की ममता का परित्याग करके यहा आई हो और गेरुए वस्त्र धारण किए है। आपको वीतराग होना चाहिए और उपरामवृत्ति से रहना चाहिए। आपको जड अथवा चेतन किसी भी पदार्थ से राग नही होना चाहिए। युवावस्था मे ब्रह्मचारी को स्त्रियो के पास अधिक नही रहना चाहिए और युवती सन्यासिनियो के लिए भी पुरुषो के ससर्ग मे रहना अनुचित है। एक नीति-वाक्य मेरी बात की बलपूर्वक पुष्टि करता है, "यद्यपि शुद्ध लोकविरुद्ध नाचरणीय नाचरणीयम्।" गुरु देवी ने जबसे व्यासदेवजी को घाट पर देखा था तभी से उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनमे गुरु भावना करने लग गई थी। उसके गुरुजी का देहावसान तीन साल पूर्व हो चुका था। वे बडे विद्वान् और

सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने ही इस देवी को बाल्यकाल से शिक्षा दी थी। उनके देवलोक गमन पश्चात् यह बड़ी दुःखी-सी रहने लगी। जो सेठजी महाराजजी की कथा सुनने आते थे वे इसके गुरु-भाई थे। ये सब प्रकार से इन दोनो देवियो का विशेष ध्यान रखते थे और अब भी सब प्रकार की उनकी व्यवस्था ये ही करते थे। इन्हें अपनी पुत्रियो के समान समझते थे। यह देवी व्यासदेवजी की गुरु भावना से ही सेवा कर रही थी और उनके सत्संग से लाभ उठा रही थी। यद्यपि इस देवी के गुरुजी ने इसे ही अपने बाद अपनी गद्दी पर बिठाने का निर्णय दे दिया था तो भी यह व्यास-देवजी को अपना गुरु बनाना चाहती थी और सेठजी ने भी इसकी अनुमति दे दी थी क्योंकि वे यह चाहते थे कि इसकी प्रवृत्ति धर्म, ध्यान और भक्ति की ओर जमी रहे। यह बड़ी निष्ठावती, श्रद्धालु और भगवद्भक्ता थी। जब इसे ज्ञात हुआ कि महाराजजी दो-तीन मास के लिए शिलाग जा रहे है तो उसने भी इनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की जिससे वह उनके सत्संग से लाभ उठा सके और अभ्यास भी करती रहे। इन्हें यह बात पसन्द नही आई और कहा कि अभी हमारे ठहरने आदि की वहा पर कोई ठीक व्यवस्था नही है, अतः आपका हमारे साथ जाना उचित नही है। जब गुरु देवी ने यह विश्वास दिलाया कि वहा पर निवास आदि का सारा प्रबंध सेठजी करवा देंगे तब ब्रह्मचारीजी ने वहा जाकर स्वयं ही सब प्रबंध करने का तथा सब व्यवस्था हो जाने पर पत्र समाचार लिखने का विश्वास दिलाया। इस प्रकार समझा-बुझाकर बड़ी कठिनाई से अपना पीछा छुड़ाया। दूसरे दिन प्रातःकाल विदाई के समय गुरु देवी ने उन्हें हार पहिनाया और २०० रुपये भेंट रूप मे देना चाहा किन्तु इन्होने स्वीकार नही किया क्योंकि वह सन्यासिनी थी। यद्यपि गुरु देवी ने इन्हे गुरु मान लिया था तो भी इन्होंने रुपयों को नही लिया।

शिलाग के लिए प्रस्थान

टैक्सी मे यात्रा—प्रातःकाल ठीक आठ बजे टैक्सी आ गई। पाथेय का पूरा सामान सेठजी ने व्यासदेवजी के साथ रख दिया। मार्गव्यय तथा शिलाग मे निवास आदि के लिए भी उन्हे एक बड़ी धन राशि देनी चाही किन्तु इन्होने स्वीकार नही की और सेठ मूलराज की ओर संकेत करते हुए कहा, "मेरे साथ ये सेठजी हैं। ये ही सारा व्यय कर रहे है। मुझे रुपये की कोई चिन्ता नही है। ये ही सब कुछ कर रहे है।" विदाई के समय बहुसंख्या मे नर-नारी वहा पर एकत्रित होगए। इन सभी को उनका गोहाटी से प्रस्थान अच्छा नही लगा। ये सभी चाहते थे कि ये कुछ दिन और वहा विराजे और वहा की जनता को अपने उपदेशामृत का पान करवाए। गुरु देवी की आंखो से अश्रुधारा बह निकली। वह बार-बार महाराजजी से उसे शिलाग बुलाने के लिए अनुरोध कर रही थी। इन्होंने उसे धीरज बधाया और सान्त्वना दी। सेठ मूलराज और ये दोनो टैक्सी मे सवार हुए और शिलाग के लिए प्रस्थान कर दिया।

मार्ग मे दुर्घटना—कुछ ही मील की यात्रा की होगी कि टैक्सी खराब होगई। कई घण्टे उसे ठीक करने मे लगे। सायकाल को यदि प्रस्थान वहा से कर भी लेते तो उसी दिन शिलाग पहुंच नही सकते थे, अतः मार्ग में ही कही ठहरने का निश्चय किया। मार्ग मे ही रात्रि के आठ बज गए। ड्राईवर भली प्रकार से गाडी चला रहा

था। मार्ग मे एक वडा विशालकाय तथा मदमस्त हाथी खडा हुआ था। उसको सडक पर से हटाने के लिए इसने वीसियो वार हार्न दिया, उसके ऊपर प्रकाश भी डाला, कोलाहल भी किया, किन्तु वह वहा से तनिक भी न हटा, वहीं डटा रहा। ड्राईवर वडा चिन्तित हुआ। हाथी प्राय हार्न या प्रकाश से भयभीत होकर भाग जाया करते हैं किन्तु इस पर इन दोनो का ही कुछ असर नही हुआ। जिस वन मे से गुजर रहे थे उसमे वहुत हाथी रहते थे। झुण्डो के झुण्ड उस वन मे विचरा करते थे। इस हाथी ने इससे पूर्व भी एक लारी को सडक पर रोक लिया था और कई घण्टे तक सडक पर से नही हटा था। जव पीछे से कई लारिया आईं तव कही जाकर उसने इन्हे जाने दिया था। हाथी को वहा से हटाने का इनके पास कोई साधन नही था। गाडी भी छोटी थी और आदमी भी कुल पाच ही थे, अत टैक्सी को वही खडा करके वन के किसी सुरक्षित भाग मे जाकर रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया। ड्राईवर ने टैक्सी की वत्तिया वुझा दी और इसे थोडा हटाकर खडा कर दिया। सव लोग चुपके मे वन मे चले गए और एक वडे मजवूत वृक्ष पर चढ कर वैठ गए। पन्द्रह वीस मिनट के अन्दर ही हाथी ने अपनी सूण्ड मे टैक्सी को पकड लिया और उसको झटके देने लगा और एक पत्थर से टकरा-टकरा कर उसे तोड डाला। इजन सारा चकनाचूर कर दिया। वृक्ष पर वैठे लोग कर भी क्या सकते थे! विवश होकर सव क्षति को अपनी आखो से देखते रहे। हाथी ने गाडी के शीशो तथा कई पुर्जो को तोड-फोड डाला था। गद्दिया फाड दी थी। गाडी मे जो सामान था वह सव तोड कर इधर-उधर फैंक दिया था। सूर्योदय होने पर ब्रह्मचारीजी तथा उनके साथी वृक्ष पर से उतरे और टैक्सी की दशा देखकर दु खित हुए। कई घण्टे तक खडे-खडे शिलाग की ओर जाने वाली लारियो की प्रतीक्षा करते रहे। इतने मे तीन-चार वनवासी कुली उधर से निकले और हाथियो तथा अजगरो से होने वाले कष्टो का वर्णन किया। एक वार एक हाथी के वच्चे को एक अजगर ने निगल लिया। जगलात के सरकारी नौकरो ने उस अजगर को मारकर हाथी के वच्चे को उसके पेट मे से निकाला था। ड्राईवर ने योगीराजजी तथा मूलराजजी आदि को तो एक-एक, दो-दो करके लारियो मे विठवा दिया और स्वय टैक्सी को एक ट्रक से वान्धकर वापस गोहाटी चला गया।

शिलांग मे निवास—यहा आकर महाराजजी एक वडी धर्मशाला मे ठहरे किन्तु यहा पर केवल दो-तीन दिन तक ही रहे। इसके पश्चात् एक छोटा-सा मकान किराए पर ले लिया। इस मकान से थोडी-सी दूर एक जल-स्रोत था। यह वडा सौंदर्यपूर्ण था और इसका जल वडा स्वच्छ और मधुर तथा पाचक था। इसके जल-पान से भूख बहुत लगती थी। जो खाया जाता था तुरन्त पच जाता था। योगीराजजी तथा मूलराजजी दोनो के स्वास्थ्य की वृद्धि हुई और शक्ति तथा वल सम्पन्न होगए। यहा पर योगीराजजी सेठजी को गीता और भागवत पढाया करते थे। इनके लिए योगाभ्यास करने का छ घण्टे का कार्यक्रम वना दिया गया था। और ब्रह्मचारीजी स्वय भी वारह घण्टे तक प्रतिदिन अभ्यास करते थे।

चिरापूंजी गमन—यह स्थान शिलांग से पच्चीस या तीस मील की दूरी पर है। यहा पर भारतवर्ष मे सर्वाधिक वर्षा होती है। अच्छा रमणीक स्थान है। यहा पर व्यासदेवजी एक सप्ताह तक रहे और इसके वाद शिलाग लौट आए।

शिलांग के रीति-रिवाज—कुछ वर्ष पूर्व यहा की आबादी लगभग दस लाख थी। यहा पर खसिया क्षत्रियो की संख्या अधिक है। ईसाई धर्म सदैव से ही भारतीय धर्म के लिए घातक सिद्ध होता रहा है। भारत का कोई कोना इनके प्रचार और अत्याचार से अछूता नही बचा। यहा पर भी इन्होने अपना प्रचार-कार्य किया और विविध प्रलोभन देकर यहा की जनता को ईसाई बनाया। इन्होने स्थान-स्थान पर स्कूल तथा अस्पताल खोले और कही पर रुपया बाट कर, कही पर औषधियो को वितरण करके और कही वस्त्र देकर तथा कही पर नौकरियो का लालच देकर खसिया जाति को ईसाई बना लिया। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' इनका सिद्धान्त था। ईसाई पादरियो को मनचाही धनराशि इगलैड, अमेरिका तथा फ्रासादि देशो से ईसाई धर्म के प्रचार के लिए प्राप्त होती थी, जिसके आधार पर ये पादरी विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे और ईसाई धर्म का प्रचार करते थे। भारत की भोली-भाली और विदेशी शासन के कारण शोषित और पीडित जनता को गुमराह करते थे। दस लाख मे से केवल दस हजार ही खसिया हिन्दू शेष रहे थे, और सबने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। ये ईसाई भारतवर्ष के लिए एक बडा अभिशाप है। यहा पर मूर्तियो को खडित किया गया, उन्हें तोड कर अपमानित किया गया और मन्दिरो को गिरा कर उनके स्थान पर गिर्जे बनाए गए। कही-कही पर मन्दिरो का रूपान्तर करके गिर्जे बनाए गए। कोई हिन्दू साधु महात्मा अथवा पण्डित खुले-आम हिन्दू शास्त्रो की न कथा कर सकता था और न किसी प्रकार का भाषण दे सकता था। कही-कही किसी-किसी मन्दिर मे हिन्दू धर्म की चर्चा हुआ करती थी अथवा कोई धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपने निवास-स्थान पर व्यक्तिगत रूप से कथा या भाषण करवा लेता था। एक मारवाडी व्यापारी ने महाराजजी के भाषण का प्रबन्ध एक मन्दिर मे करवाया था। उन्होने भागवत के एकादश स्कंध की कथा की थी। उसमे लोगो ने बडा लाभ उठाया किन्तु श्रोतागणो की संख्या कम ही आती थी। खसिया जाति के लोगो के घरो मे प्राय भागवत-पुराण की कथा हुआ करती थी। यहा का सब व्यापार मारवाडियो के हाथ मे था। ये लोग बडे धनवान थे किन्तु यहा की जनता बडी निर्धन तथा दरिद्र थी।

यहा पर पिता की उत्तराधिकारिणी छोटी लडकी होती है। व्यापार तथा दुकानदारी प्राय स्त्रिया करती है। कही-कही पर सप्ताह मे एक नियत दिन पर विशेष बाजार लगाया जाता है। उसमे विभिन्न प्रकार की उत्तम और सुन्दर वस्तुए बिकने के लिए आती है। खरीदने वालो की बडी भीड लग जाती है। एक प्रकार का मेला-सा लग जाता था। यहा पर लडकिया अपना वर स्वय चुनती हैं। प्राय फुटबाल के मैचो मे यह कार्य सम्पन्न होता है। इन मैचो का यहा पर बडा रिवाज है।

पुन' कलकत्ता गमन

मूलराज जी कलकत्ते मे दुर्गापूजा का उत्सव महाराजजी को दिखाना चाहते थे। यह उत्सव वहा पर बडी धूम-धाम से तथा समारोहपूर्वक मनाया जाता है। ये वहा जाने के लिए बहुत उत्सुक न थे क्योकि वहा पर इन्हें योगाभ्यास के लिए कही एकान्त स्थान न मिलता था। वहा इन्हें काहनचन्दजी के परिवार मे ही रहना पडता था। सेठ मूलराज के यह विश्वास दिलाने पर कि वहा एक एकान्त-स्थान मे एक कमरा किराए पर ले लिया जाएगा, ये कलकत्ता जाने के लिए तैयार हुए। कलकत्ता पहुच

कर खिङ्गरापट्टी के पास एक मकान किराए पर लिया गया। इस वार सारा शीत-काल महाराजजी ने कलकत्ता मे ही व्यतीत किया था नदिया-शान्ति मे।

बुरे स्थान का मन पर प्रभाव—नए किराए के कमरे मे महाराजश्री ने प्रवेश किया। दैनिक ध्यान और अभ्यास के पश्चात् रात्रि मे शयनार्थ अपने विस्तर पर लेट गए किन्तु नीद नही आई और मन मे वर्वस अवाछनीय विचार उत्पन्न होने लगे। वार-वार ऐसे विचार आकर तग करने लगे जिनका इन्हे जागृत मे तो क्या कभी स्वप्न मे भी ध्यान नही आया था। इन विचारो से युद्ध करते-करते ग्यारह वज गए। ये तुरन्त अपने कमरे से निकल कर वाजार मे चले गए। वहां जाते ही विचारो मे परि-वर्तन होगया और मन भी शान्त होगया। थोडी देर वाद पुन कमरे मे आकर सोने का प्रयत्न करने लगे, पर नीद नही आई। तव १२ वजे उठकर सेठ मूलराज की दुकान पर गए। नौकर को जगाकर उसे अपने कमरे से विस्तर उठाकर लाने का आदेश दिया। उसके विस्तर लाने पर दुकान पर ही सोए, तव नीद आई। व्यासदेवजी को इसका कारण समझने मे कुछ भी विलम्व नही लगा। वे समझ गए कि इस कमरे मे अवश्य ही कोई कुत्सित विचारो का व्यक्ति रहता होगा जो निन्दनीय कार्य करता होगा। उसके कुसस्कारो तथा कुविचारो से उस कमरे का वातावरण दूषित हो रहा था और उन विचारो का प्रभाव इन पर पड रहा था। प्रात काल इन्होने सारी स्थिति से सेठ मूलराज को अवगत किया और टेलीफोन से मालिक मकान से यह पूछने का आदेश दिया कि पहिले इस कमरे मे कौन किराये पर रहता था। पूछने पर विदित हुआ कि इसमे एक वैश्या सात वर्ष तक रही थी। एक सेठ इसके पास आया जाया करते थे। यह कमरा उसके लिए छोटा था अत उसने यह खाली कर दिया।

मनुष्य विचारो का पुतला है। उसके विचारो के अनुरूप उसका व्यक्तित्व वनता है। उसके विचारो पर दूसरे के विचारो का तथा वातावरण, परिस्थितियो और सगति का प्रभाव पडता है। मनुष्य के भले और बुरे विचार आकाश मे मडराते रहते हैं और लोगो को प्रभावित करते रहते है। सद्विचारो का अच्छा प्रभाव तथा असद्विचारो का वुरा प्रभाव पडे विना नही रहता। इसीलिए जप, तप, साधना तथा योगाभ्यासादि के लिए आध्यात्सिक रुचि के लोग प्राय उत्तराखण्ड मे जाकर निवास करते हैं क्योकि हिमालय प्रदेश हजारो वर्षो से ऋषियो और मुनियो की तपोभूमि रहा है। इनकी विचारधाराओ से यहा के सारे वायुमण्डल तथा भूमि का एक-एक कण ओत-प्रोत है। उनकी आध्यात्मिक विचारधाराओ का प्रभाव उन पर पडता है और उनकी साधना मे सहायक होता है। सदैव शुद्ध, स्वच्छ और पावन वातावरण मे रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

श्री ब्रह्मचारीजी के प्रभाव से पद्मा को वैराग्य

लताकुज मे समाधि—श्री ब्रह्मचारीजी रविवार को कभी-कभी कम्पनी वाग मे गगा के किनारे सैर करने जाया करते थे। वही स्नानादि करके एक लताकुज मे समाधि मे वैठा करते थे। कई घण्टे तक वही रहा करते थे। पद्मा ने वाग मे समाधिस्थ अवस्था मे दर्शन किये थे।

रानी साहिवा की सेविका का निवेदन—एक दिन श्री ब्रह्मचारीजी जगन्नाथ सडक पर से अपने निवास स्थान पर जा रहे थे। एक देवी वहा आई, आगे वढी और

प्रणाम करके निवेदन किया कि हमारी रानी साहिबा आपके दर्शन करना चाहती है। व्यासदेवजी ने उसे रानी साहिबा का परिचय देने के लिए कहा क्योंकि वे उसे जानते न थे। यदि वे दर्शनार्थ आना चाहती है तो मुझे मेरे निवास स्थान पर मिलें, मैं भिन्नूणापट्टी मे रहता हू। जब उस देवी से विदित हुआ कि वे कही बाहिर नही जाते है तब उन्होंने कहा, "मै भी किसी अज्ञात देवी को दर्शन देने उसके मकान पर नही जाता।" वह निराश होकर चली गई। ३-४ दिन के पश्चात् वही देवी ब्रह्मचारीजी को पुन उसी मार्ग पर मिली और प्रणाम करके निवेदन किया कि रानीजी ने हाथ जोडकर आपसे प्रार्थना की है कि आप उनके निवास स्थान पर भोजन करने की कृपा करे।

व्यासदेवजी—नही, मैं किसी भी अपरिचित के मकान पर वास्तव मे कभी भोजन करने के लिए नही जाता। अत क्षमा करे।

देवी ने कहा—सन्तो और महात्माओ के लिए भला परिचय करने-कराने की क्या आवश्यकता है? जो उन्हे श्रद्धा और भक्ति मे अथवा प्रेम से भोजन करवाए उसीका भोजन उन्हे दया की भावना से स्वीकार करना चाहिए।

व्यासदेवजी—रानीजी का आपसे क्या सम्बन्ध है?

देवी ने कहा—मैं उनकी सेविका हू।

व्यासदेवजी—वे इतना आग्रह कर रही है? क्या वे मुझे पहिले से जानती भी हैं?

सेविका—महाराज! उन्होने आपके दर्शन किए हैं।

व्यासदेवजी—यदि पहिले दर्शन किए है तो अब भी मुझे मिलने आ सकती है, जहा मैं निवास करता हू।

सेविका—आजकल वे कुछ अस्वस्थ सी है, अत उनका आना नही हो सकता। आपही वहा पधारने की कृपा करे।

व्यासदेवजी—अच्छा! चलो, चलते है। जो होगा देखा जाएगा।

रानी की अवस्था के कारण दर्शनार्थ आने मे विवशता पर व्यासदेवजी को दया आगई और उस सेविका के साथ रानी के निवास स्थान के लिए चल दिए। सेविका उन्हे एक गली मे ले गई और एक मकान की दूसरी मजिल पर लेकर चढ गई तथा एक छोटे से कमरे मे बिठा दिया। यह कमरा बडा सुसज्जित था। उसकी सजावट एक मन्दिर के समान थी। श्रीकृष्ण भगवान् की एक मूर्ति यहा पर रखी हुई थी। उसके समक्ष पूजा की सब सामग्री रखी हुई थी। सेविका ने उस कमरे मे प्रवेश करते ही बिजली जला दी और एक आसन पर उन्हे बिठा दिया। वह रानी साहिबा को बुलाने चली गई और सीढियों का दरवाजा बाहिर से बन्द कर गई। ये १५-२० मिनट तक तो प्रतीक्षा करते रहे, जब वहा कोई भी नही आई तो उन्होने 'देवी' कहकर जोर से पुकारा। इतने मे ही पास वाले कमरे से आवाज आई, "महाराज, ठहरिए, मैं अभी आ रही हू।" लगभग आध घण्टे के बाद वे आई। प्रणाम करके ईषत् हास्य किया और आसन बिछाकर कमरे के बाहिर दरवाजे के पास बैठ गई। इन्होने बहुत अधिक शृगार किया हुआ था। व्यासदेवजी उसके हाव-भाव को देखकर चकित हुए और

कुछ घबराए भी। इन्हे यह सदाचारिणी महिला नही दिखाई दी। सदाचार के कोई चिह्न उसमें नही थे। इसकी आयु लगभग तीस साल की होगी। उससे पूछने पर व्यासदेवजी ने उसके जीवन-वृत्त से परिचय प्राप्त किया। उसका जीवन उत्थान और पतन, चढाव और उतार, अन्तर्द्वन्द्व और सघर्ष, आत्मक्षोभ और आत्मग्लानि की एक लम्बी कहानी थी। यह एक राजकुमारी थी और राजा के साथ ही इसका पाणिग्रहण हुआ था। राजसी ठाठ-बाठ मे इसका लालन-पालन हुआ था और श्वसुर गृह मे भी बडे ऐश्वर्य के साथ विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत किया था। यह सौन्दर्य तथा लावण्य की साक्षात् प्रतिमा थी। किन्तु दुर्दैव को इसका सुख, इसका ऐश्वर्य और इसकी विलासिता फूटी आख भी न भाई और उसके ऊपर एक महान् वज्रपात कर दिया। जब वह केवल २० साल की ही थी तभी उस पर वैधव्य का महान् सकट आ पडा। दैव उसके हास्य को सहन नही कर सका। उसने इसे रुलाया और ऐसा रुलाया कि आजीवन उसके आसू सूख नही सके। वैधव्य हिन्दू समाज पर एक बडा कलक है। हमारे देश मे आज भी विधवाओ की कैसी दुर्दशा है, यह किसी से छिपी नही। विधवा का समाज मे कोई स्थान नहीं। उसके अपमान की कोई सीमा नही। विधवा रानी हो या रक, कुलीन हो या अकुलीन, शिक्षित हो या अशिक्षित, उसके लिए परिवार मे तथा समाज में कही भी स्थान नही है। यही स्थिति इस रानी की थी। राजपरिवार मे से विधवा होते ही इसका सम्मान उठ गया। जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भी इसको खर्चा अप्राप्य था। सारा दिन काले कपडे, जो राजघरानो मे वैधव्य का चिह्न माना जाता है, पहिनकर एक कमरे मे बैठे-बैठे रुदन करना ही एकमात्र इसका काम था। युवती थी, राजप्रासाद मे पली होने के कारण पर्दे मे रहती थी। कभी किसी प्रकार का सत्सग करने का अवसर लाभ न हुआ था। धार्मिक ग्रन्थो के अध्ययन से भी वचित थी। किसी भी प्रकार का ज्ञान और विवेक उसमे न था। ऐसी विधवाओ के पतन मे कुछ विलम्ब नही लगा करता। जब घर मे उन्हे प्रेम, आश्वासन, सहारा तथा सान्त्वना नही मिलती तो जहा भी उन्हे ये चीजे प्राप्य होती है उधर ही झुक जाया करती हैं। पद्मा भी विधवा थी। दु खी थी। अपमानित थी। उसे कही से भी राजपरिवार से प्रेम तथा सहानुभूति की आशा नही रही थी। अत जहा उसे मनुष्यता का व्यवहार मिला, जहा उसे मानवता दिखाई दी, उधर ही वह लुढक गई। एक मारवाडी सेठ राजमहलो मे अपने व्यापार के सम्बन्ध मे आया जाया करता था। अन्त पुर मे भी उसकी गति थी। यह सेठ पद्मा को अपहरण कराके कलकत्ता ले आया। विधना का विधान ऐसा ही था। इसने उसके लिए एक मकान किराये पर ले दिया और बडे सुख, आराम से उसे वहा रखा। विलासिता के सभी साधन उसके लिए जुटा दिए। किसी बात की कमी नही रखी। प्रतिमास हजार डेढ हजार रुपया वह पद्मा पर व्यय करता था। पर पद्मा इस पतन से सुखी न थी। वह पश्चात्ताप की भट्टी मे अहर्निश जला करती थी। अपने आपको कोसती थी। आत्मग्लानि उसे खाए जा रही थी। इस निन्दनीय कर्म से वह दु खी थी। यह जघन्य पाप सदा उसके सामने मुह खोले खडा रहता था। भगवान् पतितपावन है। वे दीन-बन्धु और दयालु है। पतितो का उद्धार करने वाले है। उन्होने पद्मा की पुकार को सुना। उस पर द्रवित हुए और इस पतिता का उद्धार करने के लिए अपनी विभूति के रूप मे अखण्डब्रह्मचारी व्यासदेवजी को उसके पास

भेजा। इससे पूर्व ही ये सैकडो पतितो तथा पथभ्रष्टो का परित्राण कर चुके थे। पद्मा ने महाराजजी से अपनी आन्तरिक स्थिति का वर्णन किया और वहा से कही अन्यत्र चले जाने की इच्छा प्रकट की। इसने ब्रह्मचारीजी को कम्पनी बाग मे एक लताकुज मे पीताम्बर धारण करके समाधिस्थावस्था मे बैठे देखा था। उनके तप पूत और तेजस्वी, और ब्रह्मवर्चस्वपूर्ण मुखारविन्द को देखकर वह बडी प्रभावित हुई। कुछ काल तक लताकुज के पास खडी रही। बातचीत करना चाहती थी किन्तु ये समाधिस्थ थे अत वह निराश होकर लौट गई। वह सेठ के साथ उस ओर भ्रमण के लिए गई थी। निवास स्थान पर पहुचकर उसने अपनी सेविका को इनको आमत्रित करने के लिए भेजा था। महाराजजी को किसी भी महिला का, चाहे वह परिचित हो अथवा अपरिचित, सपर्क पसन्द नही था। यू तो किसी भी प्रकार का जन-सपर्क रुचिकर न था पर महिलाओ से तो वे कभी भी मिलते-जुलते न थे। यहा तक कि गोहाटी मे दो सन्यासिनी देवियो के पास भी उन्हे ठहरने मे अत्यधिक सकोच हुआ था। पद्मा के अत्यन्त आग्रह, अनुनय, विनय तथा अनेक प्रार्थनाओ के पश्चात् ही उन्होने निवास स्थान पर जाना स्वीकार किया था। इन्हे समाधिस्थावस्था मे देखकर पद्मा ने सेठ से कहा था, "देखो, यह तपस्वी युवक साधु कैसे एकान्त मे समाधि लगाकर अपने प्रभु का स्मरण कर रहे है। इनको तो भक्ति के लिए एकान्त की आवश्यकता है किन्तु हम कामी कुत्तो को भी एकान्त चाहिए, भगवान् के भजन के लिए नही किन्तु अपनी काम-वासना की पूर्ति के लिए। धिक्कार है हमारे जीवन को, और धन्य है ये तपस्वी जो अपने तेज, तप, व्रत, साधना, ध्यान और योग से विश्व का कल्याण कर रहे है। हम पृथ्वी पर भार रूप है और इन्होने पापो के भार से दबी पृथ्वी के भार को हल्का करने के लिए और हम जैसे पापियो के परित्राण के लिए अवतार लिया है।"

पद्मा मे परिवर्तन—पद्मा ने जिस दिन से महाराजजी के दर्शन किए थे उसी दिन से उसकी अन्तरात्मा मे एक महान् परिवर्तन का प्रारभ हुआ था। तभी से उसको अपने जीवन से घृणा होगई थी। उसका एक-एक पाप और जघन्य कर्म उसके सामने भीषण रूप धारण करके भयानक नृत्य कर रहा था। उसको अपनी सुध-बुध नही रही थी। वह प्रकम्पित हो रही थी और पश्चात्ताप से जल रही थी। वह ब्रह्मचारीजी को अपने निवास स्थान पर पाकर अपने को धन्य मान रही थी और इसे अपने किसी प्राक्तन पुण्यकर्म का परिणाम समझती थी। लगभग एक घण्टा तक व्यासजी वहा ठहरे। सध्याकाल होगया था। यह अभ्यास का समय था अत जाने की इच्छा प्रकट की, किन्तु पद्मा नही चाहती थी कि वे जाए। उसने कहा, आप हाथ मुह धो लीजिए और यही पर सध्या कर लीजिए। पर वे उठे और चलने को तैयार होगए, किन्तु सीढियो का दरवाजा बन्द देखकर वापस बैठ गए। करते भी क्या, अन्य कोई चारा ही नही था। रानी ने हाथ जोडकर उनके चरण स्पर्श करते हुए अश्रु-जल भरकर वहा से न जाने के लिए निवेदन किया। महाराजजी को अब एक क्षण के लिए भी वहा ठहरना अच्छा नही लगा। वहा आने के विषय मे उनको बडा पश्चात्ताप होने लगा। रानी का ऐसा व्यवहार इनको बिल्कुल पसन्द न था। वे फिर उठ खडे हुए। रानी ने कहा, दरवाजा बन्द है। सेविका के पास इसकी चाबी है। वह बाहर गई है।

अभी आती ही होगी। जब तक वह आकर दरवाजा खोलती है तब तक आप सन्ध्या कर लें। महाराजजी पद्मा के आग्रह और दरवाजा बन्द करवाने को बडी सन्देहात्मक दृष्टि से देख रहे थे, किन्तु कुछ उपाय वहा से जाने का उन्हे नही सूझ रहा था, अत वही पर ध्यान करने बैठ गए।

पतिता पद्मा के लिए भगवान् से प्रार्थना—महाराजजी जब ध्यान मे बैठे तो सर्वप्रथम भगवान् से उसके उद्धार और उसके सुधार तथा परित्राण के लिए प्रार्थना की—"हे पतितपावन परमेश्वर! आप इस पद्मा को सद्बुद्धि प्रदान करे जिससे वह कुमार्ग का परित्याग करके सुमार्ग पर चले। दुराचार को छोडे और सदाचारिणी बने। पतितावस्था से निकलकर सती-साध्वी बने। प्रेय मार्ग का परित्याग करे और श्रेय मार्ग पर चले। हे मेरे पूज्यदेव! आपने पिंगला जैसी वेश्याओ का उद्धार किया है। क्या आप पद्मा का उद्धार न करेंगे? हे अन्तर्यामिन्! आपने बडे-बडे पापियो का परित्राण किया है, आप इस पतिता का भी परित्राण करो। हे वन्दनीय भगवान्! आप पद्मा पर दया की दृष्टि करे। इसे पाप कर्म से हटाए। अपनी भक्ति का दान इसे प्रदान करें। हे सर्वज्ञ! आपने बडी-बडी पापात्माओ को तारा है। आप इस पद्मा को भी भव-पाश से मुक्त करो। हे सर्वदु खहर्ता भगवान्! आप इसके मलिन मन को शुद्ध करो। इसे अपनी भक्ति दो जिसके द्वारा यह पाप-कर्म से मुक्त हो जाए। हे सर्वाधार सर्वेश्वर! मैं आपसे हाथ जोडकर विनम्र प्रार्थना करता हू कि आप पद्मा को विलासिता के नर्क कुण्ड से निकालकर अपनी शरण प्रदान करे।"

पद्मा के घर पर १५ घण्टे तक निर्विकल्प समाधि—पद्मा के परित्राण के लिए उस करुणासिंधु दीनबन्धु और दयालु भगवान् से प्रार्थना करते-करते महाराजजी समाधिस्थ होगए। १५ घण्टे की समाधि का सकल्प कर लिया था क्योकि रात्रि भर उस पतिता पद्मा के मकान पर रह कर जलकमलवत् निर्मल रहने का यही सर्वश्रेष्ठ उपाय था। पद्मा की पाप-वृत्ति मे परिवर्तन करने का भी उद्देश्य था। उस महिला के मकान को महाराजजी अपने लिए एक कारागार समझ रहे थे। शीतकाल का समय था, अधेरा होगया था और आठ बज चुके थे। इन्हे कुछ समय तो मन के सकल्प-विकल्पो के अभाव करने मे लगा। इसके कुछ मिनट बाद ही सारा शरीर और मस्तिष्क शून्य होगया और जडता सी छा गई। सारा शरीर पर्वत के समान भारी होगया और इन्हे अपनी कुछ भी सुध-बुध न रही।

समाधि के प्रभाव से पद्मा के जीवन मे परिवर्तन—महाराजजी ने एक पद्मा ही क्या सैकडो पतितो का परित्राण किया था, अज्ञान के गहन गर्त मे गिरे हुओ को अपने अध्यात्म बल से पकडकर उठाया था, पथभ्रष्टो की बाह पकडकर उन्हे पथ पर चलाया था, सान्द्रान्धकार मे डूबे हुए प्राणियो को ज्ञान का प्रकाश दिखाया था, कर्तव्य-च्युत लोगो को कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ किया था। महाराजजी समाधिस्थ होगए। पद्मा अपने कमरे मे चली गई। वहा जाकर इनके समाधि से उठने की उत्कट प्रतीक्षा करती रही। ये कृष्ण मदिर मे समाधि लगाकर बैठे हुए थे। वह बार-बार इस मदिर मे आकर उन्हे देखती रही। दो घटे व्यतीत होगए किन्तु उनकी समाधि भग न हुई। पद्मा को उन्हे समाधि से उठाने का साहस नही होता था। बडी भयभीत तथा व्याकुल और परेशान थी। रात्रि के दस बज गए, पर वे अभी तक समाधिस्थ थे। वह अब इस बात पर बडा

पश्चात्ताप कर रही थी कि उसने एक महापुरुष को कष्ट दिया है, एक महात्मा को सकट मे डाला है। इस महानात्मा को मैंने अकारण ही दुख दिया। इनके मुखारविन्द पर कैसा तेज और ओज है! कैसी अलौकिक शान्ति इनके चेहरे से टपक रही है! अपने प्यारे भगवान् मे कैसे विलीन से हो रहे है! महाराजजी को ऐसी लम्बी समाधि मे देखकर उसे अपने कुकर्मों पर और अपने पतन पर वडा पश्चात्ताप हुआ। उसने इस महान् सन्त को अपने जाल मे फसाने का प्रयत्न किया था। इसके लिए उसे वडी आत्मग्लानि हो रही थी और वार-वार अपने को धिक्कार रही थी। सेविका को भी अपनी स्वामिनी की यह वात पसन्द नही आई थी। वह भी उसे भला बुरा कह रही थी। आपने इस महात्मा को यहा रोककर इनके साथ वडा अन्याय किया है। वे जाना चाहते थे, उनको जाने देना चाहिए था। इनके दर्शन कर लेने के पश्चात् इन्हें रोकना वडी भारी भूल थी। फिर कभी जव दर्शनाभिलाषा होती तो आप इन्हे वुला सकती थी और स्वय भी इनके निवास स्थान पर जा सकती थी। सेविका की इन वातो को सुनकर उसके पश्चात्ताप की अग्नि ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया और अव वह फूट-फूटकर रोने लगी और सारी रात सिसकिया भरते हुए व्यतीत की। कभी मदिर मे जाती, कभी अपने कमरे मे जाती। इसी प्रकार आतुरता तथा व्याकुलता मे ताना-वाना बुनते प्रभात होगया। इस पश्चात्ताप की भट्टी मे तप कर उसकी वुद्धि निर्मल होगई और उसने दृढ सकल्प किया कि अव वह कभी भी दुराचार का जीवन व्यतीत नही करेगी। प्रतिपल उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो महाराजजी से अध्यात्म की धाराए निकल-निकल कर उसके हृदय मे प्रविष्ट होकर उसका उद्वोधन कर रही हो, जगा रही हो, कुपथ से हटा रही हो, पाप के कूए मे से निकाल रही हो, पतिव्रत धर्म का सदेश दे रही हो और उसे अपने सर्व पापो को प्रायश्चित्त की अग्नि मे दग्ध करके सन्मार्ग पर चलने का आदेश दे रही हो। उसके मन मे महान् अन्तर्द्वन्द्व तथा सघर्ष हो रहा था। वह यह अनुभव कर रही थी जैसे उसे कोई वलपूर्वक पाप से खीच कर दूर ले जा रहा हो। वह घवरा रही थी। भयभीत थी। किकर्त्तव्यविमूढ थी। उसके पाप भीषण रूप धारण करके उसके सामने आ रहे थे। उसे कल नही पड रही थी। चैन उससे कोसो दूर भाग गई थी। आत्मग्लानि उसके समक्ष मुह खोले खडी थी। अव उसे सेठ से अत्यन्त घृणा होगई। इसी ने उसे राजमहल से निकलवाया था और कलकत्ता ले आया था। यह उसे वार-वार कोस रही थी। पाप से कमाए धन और विलासिता की सामग्री से तथा सेठ से अव उसका मन फिर गया। वह एक-एक वस्तु को उठा-उठाकर फेंकने लगी। प्रात ६ वजे के लगभग इसने सेठ वृजमोहन को वुला भेजा। ये वडे धनाढ्य व्यक्ति थे और इनकी दुकान वहा पर धर्मतल्ला मे थी। ये राजस्थान के रहने वाले थे। इनके कोई सन्तान न थी। ये १० वजे पद्मा के निवास स्थान पर पहुचे। इसने सारा वृत्त सेठजी को सुनाया। वे सुनकर चिन्ता मे डूव गए। इन्होने उसे वहुत समझाया बुझाया, अनेक प्रलोभन दिए, पर उसने एक न सुनी और जो कुछ भी धन-सम्पत्ति, वस्त्राभूषण उसके पास थे वे सव उनके सामने फेंक दिए। पद्मा की सेविका वार-वार महाराजजी को मदिर मे देखने जाती थी। लगभग ११ वजे इनका समाधि से व्युत्थान हुआ। सेविका ने तुरन्त जाकर इसकी सूचना पद्मा को दी। इसके नेत्रो से पश्चात्ताप और आत्मग्लानि के आसू प्रवाहित हो रहे थे। वह सेठजी को लेकर मदिर मे गई और करुण क्रन्दन करती हुई महाराजश्री के चरणो

पर गिर पडी। सेठजी ने भी सम्मानपूर्वक इनके चरण स्पर्श किए। पद्मा को यह दृढ निश्चय होगया था कि योगीराजजी की कृपा से ही उसका उद्धार होगा, उसके सब पापो का प्रक्षालन हो जाएगा और उसको सन्मार्ग सूझेगा। जबसे ये मदिर मे समाधिस्थ हुए थे तभी से महाराजश्री की अध्यात्म-धाराओ के उसके शरीर मे प्रविष्ट हो जाने के कारण से उसे ऐसा अनुभव होने लगा था मानो उसके पापो का अन्त होगया है। उसने ब्रह्मचारीजी को नतमस्तक हो और हाथ जोडकर विश्वास दिलाया कि अब वह कभी पाप-कर्म नही करेगी और दुराचार से बचेगी। पतिव्रत-धर्म का पालन करेगी, सदाचारपूर्वक रहेगी, और अपना शेष जीवन भगवद्भक्ति तथा भगवदाराधना मे व्यतीत करेगी। सेठजी बडे दु खी थे, चिन्तित थे और व्याकुल थे। उन्हे अपना सारा खेल बिगडता हुआ दीख रहा था। वे समझते थे कि महाराजजी ने पद्मा पर कोई जादू कर लिया है जिससे इसकी मनोवृत्ति मे महान् अन्तर आ गया है, उसके मन की दशा और से और ही होगई है। इन्होने विश्वास दिलाया कि ऐसी कोई बात नही हुई है। पद्मा ने ही इन्हे धोखा देकर बुलाया था। इनका उससे कोई परिचय नही था। दर्शन के निमित्त उसने बुलाया। बाहर से सारे दरवाजे बन्द कर दिए। यहा से भागने का प्रयत्न किया किन्तु जाते कैसे, कोई दरवाजा खुला नही पाया। मुझे तो इसने एक प्रकार से कैद कर लिया था। पारब्रह्म परमात्मा ही मेरे उस समय रक्षक थे। मैं आठ बजे से ही समाधि मे बैठ गया था और अभी ११ बजे के लगभग समाधि से उठा हू। मैं १६ घण्टे से पद्मा के बन्दीगृह मे रहा, अब मैं शीघ्र ही इससे मुक्त होना चाहता हू। पद्मा ने तुरन्त हाथ जोडकर निवेदन किया, "महाराजजी, मै भी आपके साथ चलूगी और अब आपके समान ही साधु बनकर भगवान् की भक्ति करूगी। मैंने कई वर्षो से बडा निन्दनीय जीवन व्यतीत किया है। मुझे अब अपने इस जघन्य जीवन से अत्यन्त घृणा होगई है। मुझे अब गगाजी मे डूबकर प्राण त्याग देना स्वीकार है किन्तु दुराचार का जीवन नही। सेठजी से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया है। अब मैं इनके पास न रहूगी। इन्होने ही मेरा जीवन पतित किया है। अब मैं जहा भी आप जाएगे वही आपके साथ जाऊगी और आपकी शिष्या बनकर आपसे आत्म-ज्ञान प्राप्त करूगी और आपकी सेवा करके पुण्य लाभ करूगी।"

नदिया शान्ति मे पद्मा का प्रबन्ध—श्री महाराजजी ने पद्मा को बहुत समझाया कि तुम्हारा वैराग्य क्षणिक है। तुम भली प्रकार से विचार कर लो। साधु बनना बडा कठिन है। यह मार्ग बडा दुर्गम है। अहर्निश सजग और सतर्क रहने की आवश्यकता है। इस मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है। मैं ब्रह्मचारी हू, किसी भी देवी को, चाहे वह पुत्री, शिष्या, बहन या माता बनकर ही क्यों न रहे, मैं सदा अपने साथ नही रख सकता।

पद्मा—आप मुझे स्त्री न समझे। आप तो मुझे अपनी पुत्री व शिष्या समझे।

महाराजजी—१६ घण्टे पूर्व आपकी क्या भावना थी ? इतनी जल्दी आपकी भावना मे कैसे परिवर्तन हो सकता है ? यदि परिवर्तन हो भी जाए तो इसका स्थायी और दृढ रहना अत्यन्त कठिन है।

पद्मा—महाराजजी ! पिंगला वैश्या मे भी तो एक रात्रि मे ही परिवर्तन होगया था।

महाराजजी—पर मेरे साथ आपका रहना नितान्त असम्भव है।

पद्मा—तब मैं अपने प्राण गंगा के अर्पण कर दूंगी।

महाराजजी—आप गंगा में न डूबें। मेरी एक बात मान ले। इसमें आपका भी कल्याण है और मैं भी बन्धनमुक्त हो जाऊंगा। आप कुछ दिन नदिया शान्ति में जाकर तपस्या करें, जिससे आपके अन्तःकरण की शुद्धि हो जाए और वैराग्य में दृढ़ता आ जाए। तब हम आपको ज्ञान और वैराग्य का उपदेश देकर मोक्ष का मार्ग बता देंगे। आपने कई वर्षों तक भोग और विलास का जीवन व्यतीत किया है। इसके संस्कार दूर होने में समय लगेगा। अभी आपके कथन पर हमें विश्वास भी नहीं होता है। आप भली प्रकार से विचार कर लो। शीघ्रता मत करो, क्योंकि "सहसा विदधीत न क्रियाम्।" शीघ्रकारिता में मनुष्य अनेक विपत्तियों से घिर जाता है और दुःख उठाता है। प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक करना चाहिए, अतः आप अभी नवद्वीप में रहकर साधना करके देख लो।

सेठजी ने भी पद्मा के साथ नवद्वीप जाने की इच्छा प्रकट की किन्तु उसने इस बात को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर चुकी थी। अब वह उनसे घृणा करती थी क्योंकि ये ही उसके पतन के प्रमुख कारण थे। महाराजजी ने उसे समझाया कि जब तक नवद्वीप में उसका कोई उचित प्रबन्ध न हो जाए तब तक वहां सेठजी का जाना आवश्यक है। जब वहां पर निवासादि की व्यवस्था हो जाएगी तब ये लौट जाएंगे। पद्मा ने सेठजी से किसी भी प्रकार की सहायता लेने से इन्कार कर दिया। इस बात की उसने प्रतिज्ञा करली थी कि यह सेठजी से एक पाई भी अब न लेगी। महाराज ने उसे समझाया कि पहले तुम सेठजी से रुपया पाप की भावना से लेती थी अब धर्म-दान की भावना से लेना, किन्तु वह किसी प्रकार भी इस बात पर राजी न हुई। महाराजजी के पास इतना रुपया न था कि वे उसके व्यय का भार जीवनपर्यन्त निभा सकते। सेठजी से वह लेना नहीं चाहती थी और महाराजश्री के पास था नहीं। बड़ी समस्या उपस्थित होगई। पद्मा भीख मांग कर तथा मजदूरी करके निर्वाह करने के लिए उद्यत थी किन्तु सेठ से सहायता लेना नहीं चाहती थी। यहां तक कि नदिया शान्ति जाने के मार्ग व्यय के लिए भी महाराजजी से ही प्रार्थना कर रही थी। महाराजजी, सेठजी तथा पद्मा तीनों नदिया शान्ति पहुंच गए और भजनाश्रम के पास एक धर्मशाला में ठहर गए। महाराजजी ने मूलराजजी को पद्मा की सब व्यवस्था करने के लिए बुला लिया। यह गंगा के किनारे एक फूस की कुटिया बनवा कर रहना चाहती थी। किन्तु उस युवती के लिए यह उचित नहीं समझा गया। सभी किसी अधिक सुरक्षित स्थान पर उसके रहने के प्रबन्ध की चिन्ता में थे। मूलराज ने पद्मा को अपनी गुरुबहिन समझ लिया था और इसलिए उसकी सारी व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। उन्होंने उसके लिए सब आवश्यक सामान खरीदा। अब पद्मा में महान् परिवर्तन होगया था। अत्यन्त साधारण मोटे वस्त्र पहनना प्रारम्भ कर दिया। गंगा के किनारे एक बंगाली महात्मा के आश्रम में उसके रहने की व्यवस्था कर दी गई। अब पद्मा रानी साहिबा नहीं थी, अब वह एक तपस्विनी और भक्ता बन गई। सेठ

वृजमोहन इस परिवर्तन से वडे दु खी थे। उन्होने इसे वडे सुख तथा ऐश्वर्य से रखा था। कभी ये रानी थी। सेविकाए इनकी सेवा करती थी। किन्तु आज यह एक भिखारिन वन गई थी। उनका दु ख स्वाभाविक ही था।

सेठ वृजमोहन को उपदेश—ससार मे सुख और दु ख मनुष्य के मन की भावना पर निर्भर है। एक व्यक्ति जिसे सुख समझता है दूसरा उसे दु ख समझता है। एक पदार्थ एक व्यक्ति के लिए सुख का हेतु होता है, वही दूसरे के लिए दु ख का हेतु वन जाता है। पद्मा ने क्या त्याग किया है! केवल १४०० रु० मासिक छोडकर ही तो विरक्त हुई है। किसी ने वलपूर्वक उसे विरक्त नही किया। स्वय ही उसके हृदय मे वैराग्य की उत्पत्ति हुई है और अपने वर्तमान जीवन से घृणा। उस अवस्था की अपेक्षा इसमे कुछ अधिक ही सुख अनुभव करती होगी, फिर आप क्यो दु खी होते है? आपने पद्मा से विवाह तो किया ही नही था। आप और वह कुछ अच्छा कर्म तो करते नही थे। उसने दुराचार के जीवन का ही तो त्याग किया है। आपको तो प्रसन्नता होनी चाहिए कि पद्मा की भगवान् के चरणो मे अनन्य भक्ति उत्पन्न हो गई है। आप दोनो का पारस्परिक व्यवहार वडा निन्दनीय था जिससे आपकी समाज मे वडी निन्दा थी। आप भी पद्मा के समान अपने कुकर्मों पर पश्चात्ताप करें और उसी के समान विरक्त होकर शेप जीवन यापन करे। आप धनवान् हैं। सन्तान आपके कोई है नही। दान-पुण्य की ओर आपकी प्रवृत्ति नही। फिर व्यापार द्वारा और अधिक रुपया कमाकर क्या करोगे? आज तक जो पाप किए हैं, यहा नदिया मे वैठकर उनका पश्चात्ताप करो। अव वार्धक्य ने आपको घेर लिया है। अपने पाप कर्मो पर पश्चात्ताप करो और सदाचारी वनो। इस पुण्यधाम मे रहकर भगवद्भजन करो। सेठजी वडे लज्जित हुए, आत्मग्लानि हुई और पश्चात्ताप भी किया, किन्तु महाराजजी से हाथ जोडकर निवेदन किया कि वह पद्मा के समान तुरन्त घर छोडकर नही आ सकते। वडा भारी कारोवार है। उसको नौकरो के हाथ मे छोडकर यहा आ गया हू। उसकी सारी व्यवस्था किए विना यहा ठहरना उचित नही है। फिर मुझे यह भी अभी निश्चय नही है कि पद्मा की तरह मेरा भगवद्भजन मे मन भी लगता है या नही। अभी मैं १०-१५ दिन कलकत्ता रहकर फिर आऊगा।

पद्मा का नवद्वीप मे निवास—लाला मूलराज ने पद्मा के लिए एक पर्णकुटी गगा के किनारे वगाली भजनाश्रम के पास वनवा दी थी। मूलराजजी पद्मा को अपने साथ ले जाकर वहा छोड आए थे। वहा पर और भी दो-तीन देविया रहती थी जो भजन और कीर्तन किया करती थी। इनमे से एक देवी ने पद्मा का भोजन वनाना स्वीकार कर लिया था। अव यह अपनी कुटिया मे वैठकर अहर्निश भगवान् का भजन करने लगी। मूलराजजी ने ४०० रुपये वगाली भजनाश्रम के वडे अधिकारी के पास पद्मा के व्यय के लिए जमा करवा दिए थे और उनसे कह दिया था कि उसे आवश्यकता अनुसार वस्तुए वाजार से मगवा दिया करे। पद्मा का सारा उत्तरदायित्व इन्होने अपने ऊपर ले लिया था।

पद्मा के लिए श्री महाराजजी का उपदेश—पद्मे! यह मानव जीवन वडा अमूल्य है। यह वडे पुण्य कर्म से लाभ होता है। तुमने अव तक इसे भोग और

विलास का साधन बनाया हुआ था। भोग वृद्धि तो पशु-पक्षियो मे भी होती है। कहा भी है कि —

> आहार-निद्रा-भय-मैथुन च
> समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
> धर्मो हि तेषामधिको विशेष
> धर्मेण हीना पशुभि समाना ॥

जब खान, पान, निद्रा और भय आदि मनुष्य और पशुओ मे समान रूप से है तो फिर इन दोनो मे अन्तर ही क्या हुआ ? वास्तव मे जो भगवद्भक्ति, सदाचार, धर्म और पुण्य से विहीन है वह नर पशु तुल्य है। यही तो मनुष्य की विशेषता है और यही उसको पशुओ से पृथक् करती है और इसी कारण से मनुष्य मनुष्य कहलाता है। इसी विशेषता को तुमने अब तक ताक पर रखे रखा था। अब शेष जीवन मे इस विशेषता को तुम्हे प्राप्त करना है। मानव देह का उद्देश्य यही है। अब तुम गत जीवन की सब स्मृतियो को भूल जाओ। उनका स्वप्न मे भी कभी ध्यान मत करो। तुम अब प्रतिक्षण मे भगवान् की आराधना करो। उनकी सर्व-व्यापकता मे विचरण करो। वही भव-पाश से मुक्त करने वाले है। ससार नाशवान् है। विषय अनित्य है। भोग और विलास पतन की ओर ले जाने वाले है। मृत्यु के समय ये सब छूट जाते है। मरने पर सभी भोग-सामग्री छोडकर परलोक गमन करना पडता है। मनुष्य बाल्यकाल खेल-कूद, यौवन विषय-भोग, वार्धक्य रोग मे व्यतीत कर देता है, इसीलिए अन्तकाल मे दुखी होता है, रोता है और विलाप करता है। भोगेच्छा कभी स्वत शान्त नही होती। एक भोग दूसरे भोग को जन्म देता है। भोग कभी पूरे नही होते है। जितना उन्हे भोगा जाता है उतना ही वे वृद्धि को प्राप्त होते है। वृद्धनृप ययाति ने अपनी भोग-तृष्णा को शान्त करने के लिए अपने पुत्र से उसका यौवन मागा था। अपनी सारी आयु भोग-विलास मे व्यतीत की, फिर भी शान्ति प्राप्त न होने के कारण अपने पुत्र का यौवन मागा और फिर भी भोगो के प्रति उसकी तृष्णा शान्त नही हुई। मनुष्य का शरीर जर्जरित हो जाता है किन्तु "तृष्णैका तरुणायते।" मनुष्य बूढा हो जाता है पर उसकी तृष्णा सदा युवती रहती है, इसीलिए स्वामी शंकराचार्यजी महाराज ने कहा है कि —

> अङ्ग गलित पलित मुण्डम्,
> दशन-विहीन जात तुण्डम् ॥
> वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डम्,
> तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम् ॥

वत्स ! भोगो की समाप्ति नही होती, मनुष्य स्वय ही समाप्त हो जाता है। एक न एक दिन मृत्यु आएगी, उस समय ये विषय विवश होकर छोडने पडेंगे। जब कोई वस्तु छीनी जाती है तो महान् दुख होता है, किन्तु यदि स्वत ही उसका परित्याग कर दिया जाए तो दुख नही होता है। चोर धन चुरा कर ले जाता है तो बडा कष्ट होता है और यदि उस धन को स्वय दान कर दिया जाता है या किसी शुभ-कार्य मे लगाया जाता है तो प्रसन्नता होती है। कोई हाथ से छीने तो कष्ट, किन्तु स्वय दे दो तो कष्ट नही होता। इसलिए विषय-भोगो को स्वय ऐसे छोड देना चाहिए जिस

प्रकार से सर्प अपनी केंचुली को छोड देता है। उसकी केंचुली को कोई खींचकर उतारे तो उसको दु ख होता है और वह काटने को दौडता है किन्तु जब वह स्वय उसको अपने शरीर से उतार कर फेंक देता है तो उसे किसी प्रकार का कष्ट नही होता। तुमने स्वय इन विषय भोगो पर लात मारी है। यह तुमने वडा शुभ कार्य किया है। अब तुम प्रण करो कि जिसका तुमने विष्टावत् परित्याग कर दिया है उन विषयो की कभी इच्छा न करोगी। थूक कर चाटने का जघन्य कार्य करने का कभी स्वप्न मे भी ध्यान न करोगी। सासारिक भोगो को भोगकर कभी कोई आज तक तृप्त नही हुआ। केवल सन्तोष कर लेने से ही तृप्ति होती है। सन्तोप ही परम धन है और जो सन्तोषी है वह सदा सुखी है। जन्म-जन्मान्तरो मे अनेक वार विपयोपभोग किया है। उनसे जब अब तक तृप्ति नही हुई तब अब तृप्ति होने की क्या आशा हो सकती है! ससार मे वही मनुष्य श्रेष्ठ है जो कीर्तिमान् तथा यशस्वी है। अपकीर्ति के जीवन से तो मरना ही उत्तम है। भगवान् के साथ अपना सपर्क वढाओ। उनके सन्निधान से अन्त करण के सब मल क्षीण हो जाएगे। तुम जन्म-मरण के वधन से मुक्त हो जाओगी। अहर्निश भगवान् का भजन करो। उसके चरणो मे आत्म-समर्पण करो। यह देह प्रभु का मदिर है। सर्वव्यापक भगवान् हमारे हृदयो मे भी विराजमान है। इसलिए इसे सदैव शुद्ध और पवित्र रखो। जिस प्रकार से घर मे वुहारा लगाकर सफाई की जाती है उसी प्रकार से तुम अपने अन्त करण मे ज्ञान का वुहारा लगाओ और सारे विषय-भोग, कषाय, कुसस्कार भाडकर वाहर फेंक दो जिससे यह निर्मल हो जाए और तुम उस दीनबन्धु, दयालु, करुणासिधु भगवान् के समीप पहुच सको। इस वात को सदा स्मरण रखो कि वे निर्बल के वल, निर्धन के धन, निराश्रितो के आश्रय और असहायो के परम सहायक हैं। तुम अपना सारा उत्तरदायित्व उनपर छोडकर सुखी और शान्त हो जाओ। निर्भय होकर विचरो और किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। तुम मीरा वनो। जानती हो मीरा ने राजसी धन-दौलत, सुख-समृद्धि और वैभव, और गगनचुम्बी अट्टालिकाओ का परित्याग करके अपने गिरिधर को पाने के लिए वृन्दावन की कुज गलियो मे "मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई रे प्रभु" का गायन करना अधिक मगलमय माना था। उसने वृन्दावन की गलियो, लताओ, कुजो मे, वन और पर्वतो पर फिर-फिरकर अपने गोविन्द को खरीद लिया था। जानती हो कैसे ? अपने त्याग और भक्ति के वल से। तुम भी ऐसा ही करो। तुम अवश्य भगवद्-कृपा प्राप्त करोगी। भगवान् तुम पर अवश्य कृपा करेंगे।

महाराजजी तथा दोनो सेठो का प्रति सायकाल पद्मा से मिलना—श्री महाराजजी, सेठ मूलराज तथा सेठ वृजमोहन नित्य सायकाल पद्मा से मिलने जाया करते थे। पद्मा ने महाराजजी से निवेदन किया कि वे सेठ वृजमोहन को अपने साथ न लाया करे। महाराजजी ने पूछा, इनके आने मे तुम्हे क्या आपत्ति है ? उसने पुन निवेदन किया कि गत सात-आठ वर्ष से इनका और मेरा सम्वन्ध रहा है। मुझे सन्देह है कि ये पुन मेरे ऊपर डोरे डालने प्रारम्भ कर देगे क्योकि वैराग्य मुझे हुआ है इनको नही। आपके सामने ये कुछ नही कहते पर आप तो नवद्वीप मे सदा रहेंगे नही, इसलिए मै चाहती हू कि इनका मेरे साथ किसी प्रकार का सम्वन्ध न रहे। इनकी शुद्ध तथा पवित्र भावना कभी मेरे प्रति नही हो सकती। लोभ और मोह की जडे इनके अन्दर

वहुत गहरी गड़ी हुई हैं। इन्होंने ही मेरे जीवन को वर्वाद किया है अतः मैं नहीं चाहती कि ये मेरे समक्ष आएं। इस पर सेठजी ने न आना स्वीकार कर लिया किन्तु उसका कुल खर्चा भेजने के लिए आग्रह किया। उसने नाराज होकर कहा, "नहीं, मैं आपसे एक पैसा भी नहीं लेना चाहती।" महाराजजी ने आज्ञा दी कि तुम्हारे प्रति मातृ-भावना रखकर तो ये आ सकते हैं और तुम्हारे व्यय के लिए रुपया भेज सकते हैं। पद्मा ने सन्देह प्रकट करते हुए कहा, इनमें इस भावना का उदय होना असंभव है। मैंने आपके दर्शन कम्पनी वाग में किए। मुझमें जो कुछ भी परिवर्तन हुआ है यह सव महाराजश्री के चरणों की कृपा का ही परिणाम है। इन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। इनके विचारों में तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ। अतः मैं आपसे नतमस्तक हो प्रार्थना करती हूं कि आप इन्हें आज्ञा दें कि ये कल से यहां न आएं। आपके मार्ग-दर्शन के अनुसार जीवन यापन करने के लिए अव मैं कटिवद्ध होगई हूं। आपकी सव आज्ञाओं का पालन करूंगी। आप मेरे सच्चे पथप्रदर्शक गुरु हैं, पिता हैं। आपने मुझ पथभ्रष्टा को सुपथ पर लाकर खड़ा कर दिया है। पतन के गहन गर्त में से वाहिर निकाला है। मैं जन्म-जन्मान्तरों में भी आपके इस महान् ऋण से उऋण नहीं हो सकूंगी। आप मुझ पर इतनी कृपा और करें कि अपनी एक फोटो मुझे प्रदान करें और वर्ष में कम से कम एक वार अपनी इस अधम शिष्या तथा पुत्री की सुध अवश्य लेने की कृपा करें।

पद्मा का आश्रम में निवास तथा कार्यक्रम—पद्मा अव रात-दिन कीर्तन और भजन करती रहती थी और कीर्तन करते-करते उसकी आंखों से अश्रुधारा वह निकलती थी। केवल एक समय भोजन करती थी। वह भी थोड़ी-सी खिचड़ी, अन्य कुछ नहीं। अपना सव काम स्वयं करती थी। वड़ी सादगी से रहती थी। गंगा स्नान के अति-रिक्त कभी आश्रम से वाहिर न जाती थी। अव वह वहुत मितभापिणी वन गई थी। अधिक संपर्क भी उसे अव पसन्द न था। घण्टों ही भगवान् कृष्ण की फोटो के सामने वैठी रहती थी। उसका कोमल शरीर अव मुर्झा गया था और कृश होगया था। तेल और सावुनादि सव लगाना छोड़ दिया था। खद्दर पहिनती थी। केवल दो जोड़ी कपड़े अपने पास रखती थी। तख्तपोश पर सोती थी और वहुत मामूली-सा विस्तर उसके पास था। घी और दूध का विलकुल परित्याग कर दिया था। उसके चित्त में भगवान् ने एकदम तप और त्याग की महान् भावना भर दी थी। ऐसा मालूम होता है कि यह पूर्व जन्म की कोई योगभ्रष्टा महिला थी जो वर्तमान जन्म में अपने शेप पाप-कर्मों के फल को भोगने के लिए आई थी। पाप-कर्म का भोग अव समाप्त हो गया था। इसी कारण से भोग और विलासिता के जीवन से एकदम घृणा होगई थी। भगवान् के प्रति सच्चा अनुराग उत्पन्न होगया था और गुरु के प्रति पूर्णरूप से श्रद्धा और भक्ति की भावना जागृत होगई थी। रोते-रोते कहा करती थी, मुझ पतिता और दुराचारिणी को अपनाकर गुरुदेव ने मेरा परित्राण किया है। अपनी शरण में मुझे लिया है। मेरा उद्धार किया है। धन्य है ऐसे गुरुदेव जो मुझ जैसे सहस्रों पतित प्राणियों का मार्गदर्शन कर रहे हैं। भगवान् ने अपना प्रतिनिधि वनाकर गुरुदेव को संसार में भेजा है। ये मेरे लिए तरन-तारन वनकर आए हैं। गुरुदेव के व्यक्तित्व, तप, त्याग, योग और ब्रह्मनिष्ठा ने मेरे ऊपर जादू का सा काम किया है। कम्पनी वाग

मे समाधिस्थावस्था मे केवल एक वार दर्शनमात्र से मेरे मन मे महान् परिवर्तन हो गया है। मुझे अपने जीवन और कुकर्मो पर वडी घृणा होगई है। मेरा मन सेठ से विल्कुल उपराम होगया था। मैं किसी ऐसे महात्मा की तलाश मे थी जिसके सामने मैं अपनी व्यथा रख सकती। अपने मन को उनके सामने खोलकर रख देती और उनसे उपदेश ग्रहण करती। उनके समक्ष अपने पापकर्मो के लिए पश्चात्ताप करती। महाराजजी का मुझपर वहुत प्रभाव पडा था इसीलिए मैंने अपनी सेविकाओ के द्वारा उन्हे अपने निवास-स्थान पर वुलाया था। किवाड इसलिए वन्द करवाए थे कि कही महाराजजी मेरी व्यथा सुने विना ही न चले जाए। यदि ये उस दिन समाधिस्थ न होते तो न जाने मेरे उद्धार मे और कितना समय लगता। इनकी समाधि ने मेरे जीवन मे महान् परिवर्तन कर दिया। मैं इनके उपकार को कभी नही भूल सकती। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो भगवान् कृष्ण मेरे लिए गुरु का अवतार धारण करके आए हैं। कितना ही अच्छा होता कि मेरे भगवान्, मेरे गुरुदेव यहा नवद्वीप मे रहते और मैं नित्यप्रति उनके चरणामृत का पान करके अपने मन मे तिरोहित पाप की मलिनता का प्रक्षालन कर सकती, किन्तु उन्हें तो मुझ जैसे अनेक पतित प्राणियो का उद्धार करना है, केवल मेरे लिए यहा कैसे सदैव रह सकते हैं।

श्री महाराजजी का कलकत्ता आगमन—एक मास तक नवद्वीप मे रहने के पश्चात् महाराजजी ने पद्मा से वहा से प्रस्थान की इच्छा प्रकट की और कहा, "देवि! तुम्हे भगवद्भक्ति का मार्ग वता दिया है। अव तुम इस मार्ग पर दृढ रहना, विचलित मत होना। ईश्वर-भक्ति ही जीवन का सार है। नर तन वडे पुण्य से उपलब्ध होता है, इसे वृथा खोना महान् पाप है। हमारी वात को गाठ वाध लो। हमने समय-समय पर जो तुम्हे उपदेश दिए हैं उन्हें सदैव स्मरण रखना। हमने तुम्हे भगवान् के अर्पण कर दिया है। तुम इन्ही की वनकर रहना। भगवान् की तुम पर विशेप कृपा है। इसीलिए तुम पतन के गहन गर्त मे से निकल सकी हो। उन्होने ही तुम्हारा उद्धार किया है। अपना सारा समय जाप, उनके नाम के सकीर्तन, भजन, ध्यान तथा प्रार्थना मे व्यतीत करना। भगवान् से मिलने का प्रयत्न करो। वे वडे भक्तवत्सल हैं, कृपा के सिन्धु हैं। श्रद्धा और भक्ति से उनकी उपासना करो। उन्हे पाने के लिए कही दूर जाने की आवश्यता नही। वे तुम्हारे पास हैं। तुम्हारे हृदय मे विराज रहे हैं। पर इनके दर्शन के लिए दिव्य नेत्रो की आवश्यकता है, उनसे ही इनके दर्शन-लाभ होते हैं। तप, ज्ञान, ध्यान तथा भक्ति और उपासना से इन दिव्य नेत्रो की प्राप्ति होती है। अपनी इन्द्रियो को वहिर्मुख मत होने दो। उन्हे अन्तर्मुखी करो। भगवान् ने इन्द्रियो को वहिर्मुख वनाया है किन्तु तुम इन्हें अन्तर्मुखी वनाओ। जव-जव ये वाहिर भागने के लिए प्रयत्न करे तव-तव तुम इन्हे खीचकर अन्तर्मुखी करो। देवि! तुमने कछुआ देखा होगा। जव उसके सामने कोई भय उपस्थित होता है तो वह अपने हाथ-पैरादि को समेट कर भीतर खीच लेता है और तव निर्भय होकर वैठ जाता है। उस समय कितने ही प्रहार किए जाए पर उस पर कुछ असर नही होता। तुम्हें भी कछुए का अनुसरण करना चाहिए। जव तुम सारी इन्द्रियो को भीतर खीच लोगी और वाहिर नही जाने दोगी तो तुम निर्भीक होकर विचरोगी। ससार का कोई भी प्रलोभन तुम्हे अपनी ओर आकर्षित नही कर सकेगा। कोई भी तुम्हें अपने श्रेप्ठ पथ से विचलित

न कर सकेगा। तुम अडिग रहोगी। प्रभु कृपालु हैं। तुम पर अमृत की वर्षा करेंगे और तुम परम धाम को जाओगी। सेठ मूलराजजी तुम्हें मिलते रहेंगे और तुम्हारे सारे व्यय का भार वहन करेंगे। ये तुम्हारे भाई हैं। मेरे शिष्य हैं। जब कभी कोई कठिनाई उपस्थित हो तो तुम निःसंकोच इनसे निवेदन करना, ये तुम्हारी समस्या को अवश्य सुलझाएंगे।"

पद्मा के नेत्रों से गुरुदेव के प्रति भक्ति और प्रेम की अश्रुधारा वह निकली और उसने अवरुद्ध कण्ठ से महाराजजी से निवेदन किया, गुरुदेव! अपनी दासी की संभाल करने की कृपा करते रहें। मेरा जीवन-सूत्र आपके ही हाथों में है। इस जीवन नैया के खिवैया आप ही हैं। महाराजजी! सागर गहरा है, उत्ताल तरंगें इसमें उठ रही हैं, तट दूर है, नाव मंझधार में है, मेरी भुजाओं में बल नहीं है, मैं इसे कैसे किनारे पर ले जाऊंगी। मेरे भगवान्! मेरे गुरुदेव! आप ही इसके चप्पू संभालें, आपके अतिरिक्त और कोई इसे पार नहीं ले जा सकता। जहां भी, महाराजजी! मेरे देवता! आप रहें मुझे सहारा देते रहना, मेरी सुध लेते रहना। कहीं ऐसा न हो कि भगवान् का दामन मेरे हाथ से छूट जाए। इसे बलपूर्वक पकड़े रहने के लिए बल और शक्ति आप ही से प्राप्त होगी। आप ही भगवान्! मेरे बल हैं, शक्ति हैं, मुझ निर्धन के धन भी आप ही हैं और निराश्रित के आश्रय भी आप ही हैं। इस दासी की महाराजजी! खबर लेते रहना और उपदेश लिखकर भेजने की कृपा करते रहिएगा।

सेठ बृजमोहन का संन्यास लेना—महाराजजी ने इन सेठजी से कलकत्ता जाने के बारे में पूछा। वे बड़े दुःखी हुए और निवेदन किया, महाराज! मेरा तो बसा बसाया सारा घर उजड़ गया। मेरे लिए कलकत्ता अब उजाड़ तथा सुनसान बीहड़ वन के समान है। वहां जाकर अब मैं क्या करूंगा! जिस पद्मा को मैं अपना समझे बठा था, जिस पर मैंने अपना तन, मन तथा धन न्योछावर कर दिया था, वह मेरे प्रति अब उदासीन होगई है। वह विरक्त होकर साधु बन गई है। उसे मेरा मुख देखना भी पसन्द नहीं। वह मुझ से बात तक नहीं करती। मेरा अब कलकत्ते में कौन है जिसके पास मैं जाऊं! मैं भी अब सिर मुड़ाकर जोगी बन जाऊंगा। महाराजजी ने उनकी इस भावना की बड़ी प्रशंसा की और आशीर्वाद दिया। नदिया में आने के पश्चात् पद्मा केवल चार साल तक जीवित रही। उसने पश्चात्ताप और तपश्चर्या से अपना सारा शरीर सुखा दिया था और अहर्निश भगवन्नाम स्मरण करती रहती थी। महाराजजी उसे पत्रों द्वारा अपने उपदेश भेजते रहते थे।

श्री महाराजजी का बनारस प्रस्थान

कलकत्ता में कुछ दिवस रहने के पश्चात् महाराजजी ने बनारस के लिए प्रस्थान किया। वहां पर पंडित ब्रह्मदत्त तथा शंकरदेवजी भोलानाथ के उद्यान में रहते थे। वहां पर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे और साथ ही प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य पंडित नारायणजी तिवारी से महाभाष्य का अध्ययन भी करते थे। तिवारीजी कचौड़ी गली में निजी तौर पर कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। ये क्वीन्स संस्कृत कालिज में प्राध्यापक थे। एक बार एक अंग्रेज़ अफसर इस कालिज का निरीक्षण करने आया। वह इनके व्यवहार तथा अध्यापनकार्य और पाण्डित्य से बड़ा प्रभावित हुआ। पंडितजी ने उनसे निवेदन किया कि मेरा घर बहुत दूर है, आने-जाने में समय की बड़ी हानि होती

है, अत विद्यार्थियो को मेरे घर पर भेजने की व्यवस्था कर दी जाए। मै वही उन्हें पढा दिया करूगा। अफसर महोदय ने उनके निवेदन को स्वीकार किया और विद्यार्थियो को उनके घर पर पढने की आज्ञा दे दी। महाराजजी ने भी भोलानाथ के उद्यान मे ही निवास करना प्रारभ कर दिया और दूसरे विद्यार्थी जो कुछ पढ रहे थे वे ही ग्रथ तिवारीजी से पढने लगे। इस समय प० ब्रह्मदत्त विद्यार्थियो को काशिका अष्टाध्यायी की द्वितीय वृत्ति पढा रहे थे। इन्होने भी उनसे यही पाठ सुनना प्रारभ कर दिया। प० ब्रह्मदत्तजी स्वय तिवारीजी से नवाह्निक महाभाष्य पढा करते थे, इन्होने भी उनके साथ इस ग्रथ को पढना शुरू कर दिया। प० ढूण्डीराजजी वैशेषिक पढाया करते थे। ये भी इनके पास इस ग्रथ को पढने जाते थे। इस प्रकार सारा दिन पठन का कार्यक्रम चलता रहता था।

प० तिवारीजी की प्रेरणा—एक दिन तिवारीजी ने अध्यापन कराते समय श्री व्यासदेवजी को सलाह दी कि आप व्याकरण के शब्दजाल मे क्यो फस गए ? आप अपना योग पथ इस कार्य के लिए क्यो छोड रहे हैं ? मैं ३५ वर्ष से व्याकरण पढा रहा हू। शब्दाडम्बर के अतिरिक्त और कुछ हाथ नही लगा। किसी प्रकार की मानसिक शान्ति व्याकरण से मुझे नही प्राप्त हुई। वृद्धावस्था मृत्यु की घण्टी बजा रही है पर व्याकरण के पठन-पाठन के अतिरिक्त मैं शान्ति प्राप्ति के लिए कुछ भी न कर सका। सारी आयु इस शब्दजाल मे ही व्यतीत होगई, कुछ तत्त्व लाभ नही हुआ। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति, मन की शान्ति तथा मोक्ष-साधन के लिए योग ही यथार्थ मार्ग है। आप क्यो हीरे को छोडकर काच मणि के पीछे भाग रहे है ? जाओ, आप हिमालय मे जाकर योग-साधन द्वारा समाधि से लाभ उठाओ। हम लोग तो गृहस्थी हैं। मोह-माया के जाल मे फसे हुए हैं। कही आ जा भी नही सकते। आप ब्रह्मचारी हैं, गृह तथा परिवार का आपने परित्याग कर दिया है। मोह और ममता से रहित है। आपने जो कुछ पढ लिया है यही पर्याप्त है। बात तो सारी पढे हुए को जीवन मे चरितार्थ करने की है। आप जान-बूझकर व्याकरण के झझट मे क्यो फस रहे है ? व्यासदेवजी ने कहा, आप यथार्थ कह रहे हैं। किन्तु मैं एक साल तक और पढना चाहता हू। बस, गुरुमुख से पढने का आप यह अन्तिम साल ही समझिए। मुझे यहा की जलवायु भी अनुकूल नही है। यहां की प्रचण्ड गर्मी बडी असह्य प्रतीत होती है। व्यासदेवजी ने बडे परिश्रमपूर्वक पढना प्रारभ किया। सारा समय पढने मे ही लगाते थे। एक घण्टा भोजन बनाने मे व्यतीत होता था। वह भी इन्हे बहुत अखरता था, इसलिए पास ही विद्यार्थियो के अन्न-क्षेत्र मे भोजन करना प्रारभ कर दिया। १५ मिनट मे ही भोजन करके निवास स्थान पर आ जाया करते थे। कभी-कभी मणि-करण घाट पर स्नानार्थ जाया करते थे।

श्री महाराजजी का ठगे जाना—एक दिन की बात है। महाराजजी गगा स्नान करके लौट रहे थे। इन्होने पीताम्बर धारण किया हुआ था। गीली धोती कधे पर डाल रखी थी और लोटा हाथ मे था। इन्हें मार्ग मे एक देवी मिली। इसकी आयु लगभग ३४-३५ वर्ष की होगी। इसने हाथ जोडकर इनको भोजन के लिए निमत्रित किया। इन्होने स्वीकार नही किया किन्तु उसके विशेष आग्रह से इन्होने भोजन करना स्वीकार कर लिया। वह इन्हे एक हलवाई की दुकान पर ले गई और उसे ब्रह्मचारीजी

को खूब मिठाई खिलाने का आदेश दिया। जब ये भोजन करने बैठ गए तब उसने यह कहकर कि लोटे में जो गंगाजल है उसमें कुछ मिट्टी है, लोटा उठाया और नल में से पानी लाने का बहाना करके चलती बनी। इन्हें प्यास लगी तो इधर-उधर ताकने लगे। बहुत प्रतीक्षा की किन्तु वह देवी लौटी ही नहीं। तब इन्होंने हलवाई से आश्चर्य प्रदर्शित करते हुए पूछा, वह देवी पानी लेकर अब तक नहीं आई। हलवाई ने सहास्य कहा, महाराज ! ऐसी बातें तो यहां आए दिन होती हैं। वह महिला अब वापस नहीं आएगी। आपका लोटा चुराने के लिए ही उसने आपको भोजन करवाने का जाल रचा था। व्यासदेवजी को बड़ा आश्चर्य हुआ और किंकर्तव्यविमूढ़ से होकर खड़े रहे। हलवाई ने भोजन के दाम मांगे। ये देते कहां से ! उनके पास कुछ था ही नहीं, गंगा-स्नान के लिए आए थे। साथ में रुपये बांधकर तो लाए नहीं थे। इन्होंने कहा, पैसे इस समय हमारे पास नहीं हैं। वास्तव में तो भोजन के दाम उस देवी को ही चुकाने चाहिए थे पर वह दाम तो क्या चुकाती मेरा लोटा ही ठगकर ले गई। आप मेरी धोती अपने पास रख लें। मैं आज सायंकाल या कल दाम चुकाकर धोती ले जाऊंगा। हलवाई को इन पर विश्वास तथा भरोसा होगया और इनकी सत्यता और ईमानदारी का भरोसा करके इनकी धोती अपने पास नहीं रखी और कहा कि जब आप स्नान करने आएं तब दाम चुका देना।

आम की दावत—एक दिन एक सेठ ने कई ब्रह्मचारियों को आम खाने के लिए निमंत्रण दिया। श्री व्यासदेवजी भी इनमें सम्मिलित थे। सेठजी ने बनारसी आमों के कई टोकरे मंगवाए। विद्यार्थियों ने खूब खाए। जब सब खाते-खाते अघा गए तब सेठ ने कहा, जो विद्यार्थी अब आम खाएंगे उन्हें प्रति आम चार आना दिया जाएगा। आमों के लालच में आकर विद्यार्थियों ने खूब आम खाए। सेठ ने अब प्रति आम एक रुपया देने के लिए कहा। जब विद्यार्थी पुनः आम खाने लगे तब इन्होंने उन्हें समझाया कि अधिक आम खाने से बीमार होने की आशंका है, अतः अब आप लोगों को और अधिक लालच नहीं करना चाहिए। सेठ से भी निवेदन किया कि आप लालच देकर आम खिलाकर पुण्य के स्थान पर पाप कमा रहे हैं। ये सब ब्रह्मचारी विद्यार्थी हैं। ये यदि अधिक आम खा जाएंगे तो इनके रुग्ण हो जाने की संभावना है, अतः आपको जितने रुपये देने हों बिना आम खिलाए ही दे दीजिए। इस प्रकार से आपका पुण्य भी होगा और ये लोग रोग से बचेंगे। आपको भी आमों पर खर्च नहीं करना पड़ेगा। इनकी बात सुनकर फिर सेठजी ने आम खाने के लिए इनाम देना बन्द कर दिया।

रुग्णावस्था में धैर्य—बनारस में एक बनारसी साड़ियों की दुकान थी। यह पन्नालाल सालग्राम की थी। ये अमृतसर-निवासी थे। ये व्यासदेवजी को जानते थे। बनारस में आकर इनसे परिचय बहुत बढ़ गया था। लाला शिवसहायमल इन्हीं की मारफत ब्रह्मचारीजी के लिए रुपया भेजा करते थे। बनारस में भाद्रपद में मलेरिए का बड़ा प्रकोप हो जाया करता था। अब भी इसमें कुछ कमी नहीं है। व्यासदेवजी पर भी इसका प्रहार हुआ। वे कई दिन तक भोलानाथ के उद्यान में ज्वर-पीड़ित रहे। साथी ब्रह्मचारियों ने इनकी बहुत सेवा-सुश्रूषा की और इलाज करवाया किन्तु जब किसी प्रकार भी ज्वर शान्त नहीं हुआ तब इन्हें रामकृष्ण मठ के हस्पताल में

भर्ती करवा दिया। वहा पर बडा अच्छा प्रवन्ध था। इलाज भी भली प्रकार से हुआ किन्तु ज्वर का प्रकोप वैसा ही बना रहा। सरसाम होगया। दिन-रात बेहोशी मे पडे रहते थे। अब डाक्टरो को इनके बचने की आशा नही रही। जिस वार्ड मे असाध्य रोग के रोगी रहते थे इन्हे वहा पहुचा दिया गया। वहा पर वे कई दिन तक सज्ञाहीन रहे। एक दिन एक जमादार वहा पर सफाई करने आया तो उसने व्यासदेवजी का कराहना सुना। उसने तुरन्त इसकी सूचना डाक्टरो को दी। पाच-छ डाक्टर फौरन आए और छ दिन के बाद व्यासदेवजी को होश आने पर बहुत प्रसन्न हुए। रोगी भी इन डाक्टरो को अपने पास खडे हुए देखकर आश्चर्य मे पड गए। डाक्टरो ने व्यासदेवजी को सान्त्वना दी और विश्वास दिलाया कि अब आप खतरे से बाहर निकल आए हैं। अब आपको औषध देना प्रारम्भ करेंगे और आप ठीक हो जाओगे। डाक्टर अब उन्हे ऊपर के कमरे मे ले गए और विधिवत् उपचार करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनो के पश्चात् ज्वर जाता रहा। इन तीन माह की बीमारी मे ये बडे कृश होगए और शरीर शक्तिहीन होगया। धीरे-धीरे हस्पताल मे कमरे के भीतर चलना फिरना प्रारम्भ कर दिया। शक्तिवर्धक औषधियो के सेवन करने से थोडी शक्ति आनी प्रारम्भ होगई। डाक्टरो ने इन्हे बनारस से कही अन्यत्र जाने की सम्मति दी क्योकि वहाँ का जलवायु इनके अनुकूल न था और उनका विश्वास था कि वहा ये स्वस्थ नही रह सकेंगे। परमात्मा की परम कृपा से महाराजजी ने स्वास्थ्य लाभ किया। डाक्टरो की सलाह के अनुसार अब ये सोचने लगे कि बनारस से कहा जाना चाहिए। इस शारीरिक दुर्बलता के कारण प्रथम बार इन्हे अपने घर तथा परिवार का स्मरण हो आया। देहाध्यास तथा पारिवारिक ममता के जागृत होने का यह पहला ही अवसर था। जब से गृह परित्याग किया था तब से कभी घर की स्मृति नही हुई थी। पर बहुत विचार करने के पश्चात् इन्होने अपने घर जाने का सकल्प छोड दिया और अमृतसर के लिए प्रस्थान किया। वहा जाकर मोतीराम की बगीची मे ठहरे। अमृतसर का जलवायु इनके अनुकूल था। दो मास मे ही पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर लिया। लाला शिवसहायमल तथा अन्य परिचितो ने अपने घर पर ले जाने के लिऐ बहुत आग्रह किया किन्तु ये बडे एकान्तप्रिय थे, अत कही भी नही गए। २-३ मास मे अमृतसर मे स्वास्थ्य लाभ करने के पश्चात् हरिद्वार चले गए।

तीन मास तक हरिद्वार मे निवास

हरिद्वार पधारकर महाराजश्री मोहन आश्रम मे ठहरे। वहा पर बलदेवसिंह ने ब्रह्मचारियो के पढने के लिए एक विद्यालय खोला हुआ था। किन्तु उनके देवलोक हो जाने के पश्चात् यह बन्द होगया था। इसका इन्हे बडा दु ख हुआ। यह स्थान बडा एकान्त था, अत यही रहकर योग-साधना का कार्यक्रम बना लिया। ग्रीष्म ऋतु मे सैकडो परिवार हरिद्वार मे आया करते थे। महाराजजी नित्यप्रति घण्टाघर के सामने उपदेश दिया करते थे। आपके उपदेशामृत का पान करने के लिए वहा सैकडो नर-नारी एकत्रित होते थे और आध्यात्मिक लाभ उठाते थे।

सन्त रामदासजी का गृहस्थी के रूप मे मिलाप—एक दिन ब्रह्मचारीजी कुछ सत्सगियो को उपदेश दे रहे थे। उस समय वहा एक सज्जन आए। अपनी पोशाक से ये पजाबी मालूम होते थे। इनके साथ एक देवी तथा एक ७-८ वर्ष का बालक

था। ये सज्जन भीड चीरते हुए आगे आए और महाराजजी को दण्डवत् प्रणाम किया। ये बहुत देर तक जमीन पर से नही उठे। उपदेश मे विक्षेप हो रहा था अत कथा बन्द करके इन्होने उसे उठाया, किन्तु ये उसे पहिचान नही सके। उस सज्जन ने स्वय ही अपना परिचय देते हुए कहा, "महाराजजी ! मैं वही पापात्मा रामदास हू जो सप्त-सरोवर पर एक पैर पर खडा होकर तपस्या किया करता था। यह मेरे साथ वही रामप्यारी है जिसने मेरा लोक और परलोक बिगाडा है। आपने मुझे बहुत समझाया था कि रामप्यारी का मेरे पास अधिक काल तक रहना अनुचित है। लोकापवाद से डरना चाहिए। यदि उस समय मैं आपकी नसीहत और चेतावनी को मान लेता तो मेरी यह दशा न होती। यदि मैं कही अन्यत्र चला जाता अथवा इसका अपने पास आना बन्द कर देता तब मेरा यह पतन न होता। मै कई दिन से आपके उपदेश सुन रहा हू किन्तु अपने पाप से बडा लज्जित हू, इसीलिए आपके समक्ष आने का साहस नही हुआ। परन्तु आज मुझसे रहा नही गया और उस भीड मे आकर आपकी चरणवन्दना की। पहिले आप मेरे चरण छूआ करते थे, आज मैने आपको दण्डवत् की है। आप तो तपस्या करते-करते उन्नति के शिखर पर पहुच गए। महान् योगी, सिद्ध पुरुष तथा विद्वान् वक्ता बन गए। किन्तु एक मै हू जो पतन के गहन गर्त मे पडा हू। मुझे बडा दुख है कि भीमगोडे आकर आपने जो मुझे उपदेश दिया था और मेरी जो भर्त्सना की थी उन पर मैने उस समय ध्यान नही दिया। मै अब अपने जीवन को बहुत धिक्कारता हू। मै स्वर्ग को लात मार इस घोर नरक मे पडा हू। मेरी मानसिक कमजोरी का रामप्यारी ने अनुचित लाभ उठाया है। मेरे कारण साधु-समाज कलकित हुआ है। मुझे सब लोग अब घृणा की दृष्टि से देखते है। कई सन्त तो सामने आकर मुझ पर गालियो की बौछार करते है। आज अपने इन पापो का अन्त करूगा। पतितपावनी इस गगा ने ही मुझे ठुकराया था। वही आज मुझे अपनी गोद मे बिठाकर पार करेगी। बाते करते-करते उसकी आखो से अनवरत अश्रुपात होने लगा। इन शब्दो के साथ वे गगा मे कूद गए और तैरकर परले पार चले गए। रामप्यारी ने २-३ मास तक उनकी खोज की। जब कही भी उनका कुछ पता न चला तब अपने लडके को साथ लेकर वापस पेशावर चली गई किन्तु रामदास ने अपने पाप का घनघोर प्रायश्चित्त किया। पश्चात्ताप की भट्ठी मे अपने पापो को जला देने का प्रयत्न किया। कृपासिंधु और दयालु भगवान् से अपने पापो के लिए क्षमा याचना की और पूर्ववत् तप और भक्ति मे लीन होगए और अब वे पुन सन्त रामदास बन गए।

काश्मीर प्रस्थान

ज्येष्ठ मास का प्रारम्भ था। हरिद्वार मे जोरो की गर्मी पडने लगी थी। इसलिए महाराजजी ने अमृतसर होते हुए काश्मीर जाने का निश्चय किया। रावलपिंडी मे उन दिनो स्वामी विशुद्धानन्दजी रामबाग मे ठहरे हुए थे। ये ब्रह्मचारीजी के सुपरिचित थे। इनके कई-कई दिन समाधिस्थ रहने की बाते ये प्राय लोगो से किया करते थे। इनकी योगसाधना से ये बडे प्रभावित थे। सत्सग के अभिप्राय से योगीराज भी इनके पास ही रामबाग मे ठहर गए। इन्ही के साथ ये भी योगी अमरनाथजी के मकान पर नगर मे जाया करते थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी के कई भक्तो से भी परिचय हो

गया था। इनमे से प्रमुख ये थे —वैद्य धर्मचन्द, रामदित्तामल, मदनलाल, कृपाराम ब्रदर्स, पडित मुक्तिराम, वैद्य सत्यव्रत, गोविन्दराम, सुन्दरदास, इत्यादि।

४८ घण्टे की समाधि—रावलपिण्डी मे एक दिन योगीराजजी पट् कर्म करने के पश्चात् ४८ घण्टे के लिए समाधिस्थ हुए। अपनी कुटिया का ताला स्वामी विशुद्धानन्दजी से लगवाया। इस समाधि की ख्याति नगर मे सर्वत्र फैल गई। हाट मे, बाजार मे, गली मे, कूचे मे, विद्यालयो और देवालयो मे सर्वत्र ४८ घण्टे की समाधि के विषय मे लोग बातचीत करते थे। रामबाग मे प्राय सारा दिन भीड लगी रहती थी। जब ४८ घण्टे के पश्चात् कुटिया का ताला खोला गया तो योगीराजजी के दर्शन के लिए सैकडो की सख्या मे लोग रामबाग मे एकत्रित हुए। उस समाधि के विषय मे कई दिनो तक बाते होती रही। महाराजजी ने यहा पर पन्द्रह दिन तक निवास किया, इसके पश्चात् ये काश्मीर चले गए। श्रीनगर मे पडित गोपीनाथ के पास कई दिन तक निवास किया और फिर मुफ्ती बाग के लिए प्रस्थान किया।

मुफ्ती बाग मे ३ मास का काष्ठ मौन—श्री महाराजजी ने इस बाग मे आ कर तीन मास का काष्ठ मौन रखा। केवल अमावस और पूर्णिमा के दिन बातचीत किया करते थे और सायकाल एक घण्टे के लिए हारवन झील पर भ्रमणार्थ जाया करते थे। मुफ्ती बाग मे गोपीनाथजी का एक मुसलमान नौकर देखभाल के लिए रहा करता था। इसका नाम अकबरा था। जिस मकान मे योगीराजजी रहा करते थे और योगाभ्यास करते थे उसमे जब ये ध्यानस्थ होते थे तब एक सर्प आकर इनके पास कुण्डली मार कर बैठ जाया करता था। मकान की खिडकी के पास एक आलूबुखारे का पेड था। उस पर चढकर खिडकी मे से भीतर आ जाता था। किसी से कभी कुछ नही कहता था। चुपचाप महाराजश्री के पास बैठा रहता था। यह भी एक सस्कारी जीव मालूम होता था। योगीराजजी के सामने ऐसी स्थिति मे बैठता था मानो वह भी ध्यान मे बैठा हो। अकबरा इस सर्प को देखकर बडा भयभीत होगया। यह सर्प कई-कई घटे तक जब महाराजजी समाधिस्थ होते तो इनके पास बैठा रहता और फिर चला जाता। अकबरा इस सर्प पर दृष्टि रखने लगा। एक दिन इसने इसे घडे मे बद करके रख दिया। इसका आशय महाराजजी के मौनव्रत के पश्चात् इस सर्प को उन्हे दिखाने का था। मौन खुलने पर उसने सब समाचार इनसे निवेदन किया। उन्होने अकबरा को आदेश दिया कि इसका वध न किया जाए, इसे ४-५ मील की दूरी पर किसी वन मे छोड दिया जाए। यह साप भी महाराजजी का भक्त था। वह ३-४ दिन के पश्चात् पुन वहा आगया और पूर्ववत् उस समय इनके पास आकर बैठता जिस समय ये समाधिस्थ होते। अकबरा ने फिर यह समाचार इन्हे दिया। वह उसे मारना चाहता था किन्तु महाराजजी ने आज्ञा दी कि इसे किसी वन मे ले जाकर छोडने की आवश्यकता अथवा पकडने की आवश्यकता नही। वह साप नियमानुसार समाधिस्थ योगीराजजी के पास आकर बैठा रहता था। मनुष्य तो इनके भक्त थे ही किन्तु सर्प जैसे विषैले जीवो की भी इनके प्रति बडी भक्ति थी।

भक्त मासकोलू—प्राय सभी जातियो और सप्रदायो के लोगो की महाराजश्री के प्रति आस्था और श्रद्धा थी। मासकोलू एक बडा प्रतिष्ठित धनाढ्य मुसलमान था। श्रीनगर के उच्चस्तर के लोगो मे इसकी गणना थी। वह बागो के ठेके लिया करता

था। उसने अपने बागों के रक्षकों के लिए एक आम आज्ञा निकाल रखी थी कि महाराजजी को जो फल पसन्द हों वे सब उनकी आवश्यकतानुसार नित्यप्रति उनके पास भेजे जाया करें। महाराजजी महीने में केवल दो दिन मौन खोला करते थे। सैकड़ों नर-नारी इन दिनों में उनके दर्शनार्थ मुन्शी बाग में आते थे और योगीराजजी इन सबको विविध विषयों पर भाषण दिया करते थे।

मथुरा तथा वृन्दावन यात्रा

श्रीनगर से योगीराजजी अमृतसर पधारे। वहां कुछ मास तक मौन व्रत धारण किया। उसके पश्चात् मथुरा, वृन्दावन पधारे। आर्यसमाज तथा सनातनधर्म में बड़े जोरदार शास्त्रार्थ हुआ करते थे। जब दो दलों में वादविवाद होता है, उनमें से जिस दल को दूसरे दल की दलील का जवाब देना नहीं आता या उस समय नहीं सूझता तो वह खिसियाकर गालियां देने लगता है, निन्दा करता है और मरने-मारने को तैयार हो जाता है। प्रायः यही बात इन शास्त्रार्थों में देखने को मिलती थी। मथुरा में एकबार आर्यसमाजियों का नगरकीर्तन निकला था। तब एक कालिज के विद्यार्थियों और मथुरा के पण्डों में झगड़ा होगया और उसने भद्दा रूप धारण कर लिया। इसकी चर्चा यत्र, तत्र, सर्वत्र फैल गई और नगरवासियों में एक प्रकार का आतंक-सा फैल गया था। एक-दो दिन में उस स्थिति में सुधार होगया था परन्तु फिर भी आर्यसमाजियों से चौबे और पण्डे बहुत चिढ़े थे। एक दिन व्यासदेवजी मथुरा से वृन्दावन जा रहे थे, तब कई पण्डों ने उनका रास्ता रोक लिया और पूछने लगे —

पण्डे—क्या आप आर्यसमाजी हो ? इन आर्यसमाजियों ने यहां के चौबों और पण्डों को बहुत मारा था।

व्यासदेवजी—हमारे आर्यसमाजी होने का आपके पास क्या प्रमाण है ?

पण्डे—आपने पीत वस्त्र जो धारण किए हुए हैं।

व्यासदेवजी—क्या आर्यसमाजी ही पीत वस्त्र धारण करते हैं ?

पण्डे—हां। आर्यसमाज के गुरुकुलों में पढ़नेवाले विद्यार्थी ही पीत वस्त्र पहिनते हैं।

व्यासदेवजी—पीत वस्त्र तो भगवान् कृष्णचन्द्रजी महाराज भी पहिनते थे। क्या वे भी आर्यसमाजी थे ?

यह बात सुनकर उनका क्रोध शान्त हुआ और ये खूब कहकहा लगाकर हंसे। श्री महाराजजी की सूझ और प्रत्युत्पन्नमतित्व से पण्डों का क्रोध शान्त हुआ और उनका पीछा छोड़ा।

श्री व्यासदेवजी नन्दगांव, बरसाना, गोवर्धन पधारे और वृन्दावन तथा इन सब स्थानों के मंदिरों के दर्शन किए। बाद में सहारनपुर चले गए और वहां पर शान्ति प्रिंटिंग प्रेस के मालिक लाला शीतलप्रसाद के पास एक मास तक ठहरे।

दक्षिण के तीर्थों की यात्रा

उत्तर भारत के सभी तीर्थों की यात्रा श्री महाराजजी कर चुके थे। अब दक्षिण भारत भ्रमण का विचार किया। बनारस, प्रयाग, गया आदि होते हुए कलकत्ता पहुंचे। यहां पर चार दिन ठहरने के बाद ये पद्मा से मिलने नवद्वीप गए। वह बहुत

कृश होगई थी किन्तु तप, त्याग और ईश्वरभक्ति मे लगी हुई थी। उसको वडा तीव्र वैराग्य होगया था और उसकी तपस्या पराकाष्ठा को पहुच चुकी थी। इसने रुदन करते हुए श्री महाराजजी की चरण-वन्दना की और निवेदन किया, मैं पथ भ्रष्ट होगई थी, अपने कर्त्तव्य को भूल गई थी, जीवन के उद्देश्य को आखो से ओझल कर दिया था और सव मर्यादाए तोडकर पतन के गर्त मे जा पडी थी। आपने मुझे सत्पथ पर लाकर खडा किया है। अव मैं शान्त हू, सुखी हू और भगवान् के श्रीचरणो मे अहर्निश मेरा ध्यान लगा रहता है। महाराजजी ने पूछा, आपको यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मगवा दी जाए। पद्मा ने हाथ जोडकर निवेदन किया, महाराजजी! मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नही है। मुझे तो केवल भगवान् के चरणो की भक्ति चाहिए, अन्य कुछ नही! महाराजजी के यह पूछने पर कि तुम्हें कलकत्ते से खर्चा तो नियमानुसार मिलता रहता है, पद्मा ने जवाव दिया कि मुझे तो कुछ भी मालूम नही। मुझे तो भोजन-वस्त्र मिल जाता है, अत मुझे अन्य कुछ नही चाहिए। मैंने तो रुपये का स्पर्श करना भी त्याग दिया है। पद्मा को ज्ञान, ध्यान का उपदेश देकर महाराजजी कलकत्ता लौट गए। यहा पर केवल एक दिन ठहरकर जगन्नाथ पुरी के लिए प्रस्थान किया। यहा पर तीन दिन तक निवास करके पुरी तथा अन्य अनेक आसपास के मदिरो के दर्शन किए। यहा से भुवनेश्वर पधारे और वहा से विजवाडा मे पन्ना नरसिंह के दर्शन के लिए गए। इसके वाद मदुरा पधारे और यहा पर एक धर्मशाला मे निवास किया। यहा पर मीनाक्षी देवी का एक वडा विशाल मदिर है। यह मदिर वहुत सुन्दर वना हुआ है। प्राचीन भारत की कारीगरी का एक अत्युत्तम उदाहरण है। इस मदिर को देखने के लिए भारतीय तथा विदेशी यात्री दूर-दूर से आते हैं और इसकी अद्वितीय कला को देखकर आश्चर्य से दान्तो तले अगुली दवाते हैं। यहा से कन्याकुमारी लगभग १५० मील है। तीन दिन तक मदुरा मे ठहर कर कन्याकुमारी के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे सर्वप्रथम नोदादरी मे ठहरे। यहा पर एक मदिर है जिसमे तेल चढाया जाता है। यह तेल एकत्रित होकर एक कुण्ड मे जमा होता रहता है। कुष्ठ के रोगी इसे औषधि के रूप मे प्रसाद समझकर ले जाते है। इसकी मालिश करने से कई रोग मिट जाते है। कभी-कभी कुष्ठ रोग से भी रोगी मुक्त होते देखे गए हैं।

जिस प्रकार पूर्वकाशी (वनारस) के समान उत्तर मे एक उत्तरकाशी है, इसी प्रकार के दक्षिण मे एक दक्षिणकाशी भी है। नोदादरी से महाराजजी दक्षिणकाशी पधारे। यहा पर भी पूर्वकाशी तथा उत्तरकाशी के समान विश्वनाथ का एक वडा विशाल मदिर है। यहा पर और भी अनेक मदिर हैं। एक ऊचे पर्वत से एक वड़ा झरना गिरता है। उसका दृश्य वडा सुहावना है। यहा पर प्राय यात्री आकर स्नान करते है। दक्षिणकाशी पूर्वकाशी का प्रतिद्वन्द्वी मालूम होता है। वडा विस्तृत नगर है। भूमि शस्यश्यामला है। दक्षिणकाशी को यहा के लोग 'उत्तालम' कहते है। महाराजजी कई दिन तक यहा ठहरे। झरने के ऊपर एक वहुत वडा मैदान है। इसमे केले वहुत होते है। इस मैदान मे से एक नदी वहती है। कदाचित् यही झरने के रूप मे पर्वत से गिरती है। इस वन मे एक योगी सन्त के दर्शन हुए। ये थोडी हिन्दी वोलना जानते थे। ये केलो के अतिरिक्त और कुछ नही खाते थे। ये भी कई वर्षो

से किसी विद्वान् योगी की तलाश मे थे। इनके आग्रह से महाराजजी भी इनके पास ही ठहर गए और इनको हठयोग की क्रियाए तथा विविध प्रकार के प्राणायामादि सिखाए। इनकी महाराजजी के प्रति धीरे-धीरे बडी श्रद्धा और भक्ति होगई। इसके बाद महाराजजी जनार्दन मदिर के दर्शन करने पधारे। इसके पश्चात् त्रिवेन्द्रम गए। वहा पर पद्मनाभजी के मदिर के कुछ ही दूर एक छोटे से उद्यान मे एक कुटिया मे ठहरे। नित्यप्रति पद्मनाभजी के दर्शन करते थे। यह मदिर बडा भव्य है। इसमे पद्मनाभजी की एक विशाल प्रतिमा है जो क्षीरशायी भगवान के समान लेटी हुई है। महाराजजी जितने दिन यहा पर रहे खिचडी बनाकर खाते रहे। इस उद्यान मे एक दक्षिणी पण्डित आया करते थे। ये बडे सज्जन थे और सस्कृत के विद्वान् थे।

लम्बे नारायण तथा छोटे नारायण के मदिरो के भी दर्शन किए किन्तु ये जीर्ण तथा शीर्ण अवस्था मे थे। इन मदिरो के निर्माता कारीगरो ने इनके निर्माण मे अपनी कारीगरी का बडी निपुणता से परिचय दिया है। दक्षिण के सभी मदिर भारत की प्राचीन कला के बडे सुन्दर नमूने है। यहा के विशाल, कलापूर्ण तथा सुन्दर मदिरो के समान मदिर किसी भी प्रान्त मे उपलब्ध नही है। थोडी सी दूरी पर सुन्दर महादेवजी का एक विशाल मदिर है जो अपनी महानता और गौरव का स्वय ही द्योतक है। इसके आगे कुछ मील पर कन्याकुमारीजी का मदिर है। वहा पर महाराजजी चार दिन तक ठहरे और चारो ही दिन इस मदिर मे दर्शनार्थ जाते रहे। मूर्ति के आभूषणो मे बडे-बडे हीरे लगे हुए थे जिनकी चमक रात्रि मे बहुत दूर तक जाती थी। इनकी आभा से मूर्ति बडी देदीप्यमान रहती थी। कन्याकुमारी भारत की दक्षिणी सीमा है। हिन्द महासागर इसके पाव धोता है। यहा से ये वापस मदुरा आ गए और एक धर्मशाला मे निवास किया। मीनाक्षी देवी के मदिर के सौन्दर्य से ये बडे प्रभावित थे। इसका प्रत्येक भाग सौन्दर्यपूर्ण था, विशेषकर स्तम्भ। कई एक बडे स्तम्भ और कई छोटे स्तम्भ काटकर और तराश कर बनाए गए थे। ये नित्य इस मदिर मे दर्शनार्थ जाते और घण्टो ही इसके सौन्दर्य का अवलोकन किया करते थे।

धनराजजी से परिचय—श्री महाराजजी नित्यप्रति मीनाक्षी के मन्दिर मे एक एकान्त स्थान मे बैठकर ध्यानाभ्यास किया करते थे। मन्दिर का वातावरण शान्त था इसलिए इसी स्थान को इन्होने अभ्यास के उपयुक्त समझा। धनराजजी, उनकी पत्नी तथा लडकी कृष्णा नित्यप्रति इनको समाधिस्थावस्था मे देखा करते थे। इससे इन पर बडा प्रभाव पडा और इनका आकर्षण योगीराज के प्रति दिन प्रति दिन बढता गया। एक दिन माता और पुत्री चिरकाल तक महाराजजी के सामने खडी होकर इनको देखती रही और प्रशसा करती रही। माता इन्हे भोजनार्थ निमत्रित करना चाहती थी। गृहकार्यवशात् स्वय तो घर चली गई। कृष्णा को इन्हे समाधि से व्युत्थान होने पर भोजन के लिए अपने साथ लाने के वास्ते वहा छोड गई। कृष्णा २२-२३ साल की युवती थी। महाराजजी ने जब आखे खोली तो उसे अपने समक्ष खडा पाया। उसने झुककर प्रणाम किया और भोजनार्थ उसके साथ उसके घर जाने की प्रार्थना की। एक अपरिचित देवी के साथ इन्होने जाना उचित नही समझा। जब वह बार-बार आग्रह करने लगी तब महाराजजी ने कहा कि अपने पिताजी को भेजो, हम उनके साथ जाएगे। वह घर गई और अपने पिता को भेजा। इनका

नाम धनराज था। ये उनके साथ गए और इस परिवार मे भोजन किया। भोजनोपरान्त कृष्णा की माता ने निवेदन किया कि जब तक आप मदुरा मे है तब तक आप यही भोजन किया करे। उसने कहा कि हम लोग पजाब के रहने वाले थे। धनराजजी के पिता दक्षिण मे आकर बस गए थे और यही पर अपना कारोबार प्रारम्भ कर दिया था। हमारे विवाह-सम्बन्ध अभी भी पजाब और दिल्ली मे ही होते हैं। कृष्णा के विवाह का प्रबन्ध करने के लिए हम पजाब जाने का विचार कर रहे हे। वर्षों से यहा रहने के कारण पजाब मे सम्बन्ध कुछ टूट-सा गया है। मेरे पीहर मे कोई शेष नही रहा और यहा पर भी हम अकेले ही है। रात-दिन इस लडकी की चिन्ता मुझे खाए जा रही है। क्या करू, कुछ समझ मे नही आ रहा। यहा पर हमारी दुकान हे, उसे छोडकर भी नही जा सकते। क्या करे, न हम दक्षिणी ही बने और न पजाबी ही रहे। ये सब बाते सुनने के बाद महाराजजी धर्मशाला मे चले गए। दूसरे दिन कृष्णा बुलाने आई तो उनके साथ पुन भोजन करने के लिए चले गए। कृष्णा की माताजी के अनुरोध से महाराजजी ने प्रात काल ८ से ९ बजे तक उनके मकान पर कथा करना प्रारम्भ किया। प्रतिदिन गीता पर प्रवचन होता था। यह प्रवचन लगभग १५ दिन तक चलता रहा। एक दिन धनराजजी के आग्रह करने पर योगीराजजी ने अपनी आत्मकथा सक्षेप मे सुनाई। जब धनराजजी को यह पता लगा कि ये ब्रह्मचारी हे तब तो वे इनकी ओर और भी अधिक आकर्षित होगए और तुरन्त उनके मन मे कृष्णा के विवाह के विचार आने लगे। कृष्णा की माताजी ने बडे चातुर्यपूर्ण ढग से कृष्णा के विवाह का प्रस्ताव रखा और ब्रह्मचर्य व्रत की महती कठिनाइयो का प्रदर्शन किया। चारो आश्रमो के धर्मपालन की महत्ता बताई। धन, ऐश्वर्य, सुख और आराम के कई प्रकार के प्रलोभन दिए, किन्तु इनके जीवन मे अनेक ऐसे अवसर पहले भी आ चुके थे। सभी अवसरो पर ये अपनी उद्देश्यपूर्ति के लक्ष्य पर हिमालय के समान अटल रहे। किसी प्रकार का आकर्षण तथा प्रलोभन इन्हे पथ-विचलित नही कर सका। नारद मुनि का उपाख्यान सुनाकर कहा कि मैं इनके समान मूर्ख नही हू। मै अपने जीवन के लक्ष्य को कभी आखो से ओझल नही कर सकता। मुझे यदि ये सब कुछ ही करना था तो भला मै अपने घर और परिवार को छोडता ही क्यो? आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान इनका जीवन का चरम लक्ष्य था। इन्होने कभी प्रेय-मार्ग की ओर अपना झुकाव नही होने दिया। सदैव श्रेय-मार्ग का अनुसरण किया। जिस महापुरुष ने अपना सारा जीवन तपश्चर्या, ध्यान, साधना, योगाभ्यास और समाधियो मे व्यतीत किया हो, भला वह हाड-मास के नश्वर पुतले और चादी-सोने के टुकडो पर कैसे आसक्त हो सकता था! इस प्रकार के भोग तो पूर्व जन्मो मे भी भोगे है। जब अब तक इनसे तृप्ति नही हुई तो अब क्या होगी! विषय कभी भोग से शान्त नही होते, तो भी मनुष्य इनके प्रति तृष्णा का परित्याग नही कर सकता। मनुष्य का वार्धक्यावस्था मे शरीर जीर्ण हो जाता है किन्तु 'तृष्णैका तरुणायते'। इस बात को ब्रह्मचारीजी ने भली प्रकार से पिछले कई वर्ष से अपने हृदय पर अकित किया हुआ था, अत वह भोग और विलासिता की ओर ले जाने वाली बातो को एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देते थे। अब इन्होने मदुरा मे रहना उचित नही समझा। वहा से कही अन्यत्र जाने में ही अपना कल्याण समझा।

रामेश्वर के लिए प्रस्थान—ब्रह्मचारीजी ने रामेश्वर जाने का निश्चय किया। रात्रि की गाडी से चलकर प्रात रामेश्वर पहुच गए। वहा एक धर्मशाला मे निवास किया। वहा पर इन्होने सात दिन तक निराहार रह कर प्रायश्चित्त किया। ऐसा इसलिए किया कि लोग वार-वार इन्हे मायाजाल मे फसाने का यत्न क्यो करते हैं। उनके श्रेय-मार्ग मे क्यो वार-वार वाधाए उपस्थित होती है। इन विघ्नो के निवारण के लिए सर्वशक्तिमान भगवान् से प्रार्थना की। अपराध किया धनराज और उसकी धर्मपत्नी ने, किन्तु उनके अपराध के लिए प्रायश्चित्त किया श्री महाराजजी ने। दस दिन तक ये रामेश्वर मे ठहरे। दर्शनार्थ नित्य मन्दिर मे जाते थे। इस मन्दिर की परिक्रमा मे मधुर जल के कूए थे। इसके चारो कोनो पर वेदपाठ होता था। यहा पर इन्होने अनेक प्राचीन इमारतो को देखा। यहा से धनुपकोटि गए। इसके पश्चात् मद्रास पहुचे और यहा पर तीन दिन तक रहकर यहा के दर्शनीय स्थानो को देखा। यहा से श्रीरगपुरम् गए। यहा पर एक वडा विशाल मन्दिर है जिसके चारो ओर प्रकोटा खिचा हुआ है। इस प्रकोटे मे वडे विशाल दरवाजे वने हुए हैं। इसके घेरे मे वहुत वडा वाजार वना हुआ है। मन्दिर मे एक छोटी-सी मणिमय मूर्ति है। इसी मन्दिर मे एक दिन लाहौर तथा अमृतसर के कई सुपरिचित पुरुपो तथा देवियो से साक्षात्कार हुआ। इनकी सख्या लगभग तीस चालीस थी। इन सवने मिल कर महाराजश्री से अनुरोधपूर्वक इकट्ठे यात्रा करने की प्रार्थना की। इन्होने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और सवने इकट्ठे होकर आगे की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। जिस-जिस स्थान पर एक से अधिक दिन तक ठहरते वही महाराजजी उपनिपद् की कथा किया करते थे। इनमे से कइयो ने पहिले भी इनकी कथाए सुनी थी। इस उपनिपद् की कथा ने यात्रा को और भी अधिक आकर्पक और मधुर वना दिया था। रेलगाडी मे, वस मे, पैदल, सभी जगह अध्यात्म चर्चा वरावर होती रहती थी और जहा ठहरते थे वहा उपनिपदो की कथा होती थी। अन्य यात्री भी इस कथा मे आकर लाभ उठाते थे। शिवकाची, विष्णुकाची, कुमाकोनम, आरकोनम तथा पक्षीतीर्थादि के दर्शन कर वालाजी पहुच गए। वालाजी का मन्दिर एक वहुत ऊचे पहाड पर स्थित है। सहस्रो सीढिया चढकर मन्दिर मे जाना पडता है। यहा पर अधिक न ठहर कर किष्किन्ध्या, तथा पम्पा सरोवर गए। पम्पा सरोवर पर यात्रियो को वडा कष्ट उठाना पडा। यहा पर मच्छरो का वडा वाहुल्य था और उनके डक भी वडे तीक्ष्ण थे। चादर अथवा कम्वल ओढने पर भी उनके ऊपर से डक भीतर घुसाकर काटते थे। यात्री इनके कारण रात भर सो न सके। वडी वेचैनी रही। यहा से विट्ठलपुर गए और विट्ठलपुर से शोलापुर होते हुए वम्वई पहुच गए। यहा पर कालवा देवी रोड पर लाला विशनदास वृजलाल के पास ठहरे। ये माता विशनदेवी के पुत्र थे। दोनो वडे सज्जन थे। ये देवी महाराजजी की सुपरिचित थी। इनके मकान पर इन्होने एक वार कई दिनो तक कथा की थी। सेठ तुलसीदासजी तथा इनके परिवार से इस यात्रा मे कुछ विशेप परिचय होगया था। इनकी पत्नी वडी धार्मिक तथा सेवापरायण थी। इन्होने कई वार भोजन के लिए निमन्त्रित किया था। कुछ दिन वम्वई मे निवास करके प्राय सभी दर्शनीय स्थान देखे।

इसके उपरान्त द्वारिका की यात्रा करने का विचार किया। वम्वई से भी वहुत से यात्री साथ हो लिए। मार्ग मे जूनागढ ठहरे। यहा पर एक वडे ऊचे पर्वत

पर दत्तात्रेयजी महाराज की चरणपादुका के दर्शन करने गए। रास्ते मे जैनियो के कई विशाल मन्दिर देखे। इन मदिरो को देखते-देखते सायकाल होगया। लौटते समय रात्रि होगई। आसपास के वनो से शेरो की गर्जना सुनकर सब भयभीत हो रहे थे। केवल योगीराजजी ही निर्भीक भाव से चल रहे थे और अन्य यात्रियो को हिम्मत बधा रहे थे। इसके पश्चात् सर्वप्रथम सारे सघ ने मूलद्वारिका जाने का निश्चय किया। यहा का मदिर समुद्र के किनारे है। सभी यात्रियो ने पहिले समुद्र स्नान किया और फिर मदिर मे दर्शनार्थ गए। दर्शन करके आसपास के अन्य कई स्थानो को देखकर सारा सघ समुद्र के किनारे आकर बैठ गया और महाराजजी से व्याख्यान देने के लिए निवेदन किया। इस सघ मे ७० नर-नारी थे और इतने ही इधर-उधर से आकर और एकत्रित होगए थे। सबने बडे प्रेम से महाराजश्री के वचनामृत का पान किया। कथा की समाप्ति पर सभी श्रोताओ ने इन्हे घेर लिया और हाथ जोडकर प्रार्थना की कि आपने कई बार कई लोगो को समाधि का आनन्द प्रदान किया है। हम भी आपके अनन्य भक्त है, भमे भी इस आनन्द-रस का आस्वादन करवाने की कृपा की जाए। समुद्र का किनारा है, बडा उत्तम स्थान है, एकान्त भी है, अत हमे भी आप समाधिस्थ करने का अनुग्रह करे। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए चालीस व्यक्ति तैयार हुए। महाराजजी ने इन सबको समाहित होकर बैठ जाने का आदेश दिया और कहा कि वे अपने मनोबल से जब तक चाहेंगे इन्हे समाधिस्थ रखेंगे। स्थान बहुत शान्त तथा एकान्त था। केवल समुद्र की लहरो की आवाज सुनाई देती थी। इतनी बडी सख्या मे लोगो का समाधि के प्रति उत्साह देखकर ये बडे प्रसन्न थे। इन्होने अपने मनोबल मे तथा विशेष शक्ति के प्रयोग से इन सबको तीन घण्टे तक समाधिस्थ रखा। सब एक ही आसन से समाहित होकर अडोल बैठे रहे। सात बजे इन्हे बिठाया गया और रात्रि के दस बजे इनका समाधि से व्युत्थान हुआ। महाराजजी का आदेश पाकर सबने अपनी आखे खोली। जब इन सबको भोजन करने के लिए कहा गया तो सबने एक स्वर से कहा कि उन्हें किसी प्रकार भी इस समय भूख तथा प्यास नही है और न कुछ खाने-पीने की इच्छा ही है। सब लोग उठे और धर्मशाला मे चले गए। मूलद्वारिका मे तीन दिन तक निवास करके सब भेटद्वारिका गए। यहा पर भी तीन दिन तक ठहरे। यहा का मदिर बडा विशाल तथा सुन्दर है। यहा पर मदिर-प्रवेश से पूर्व ही भेट ले ली जाती है। जो भेंट नही देते उन्हे मदिर-प्रवेश की आज्ञा नही मिलती। इसीलिए इसे भेटद्वारिका कहते है। महाराजजी ने यहा के पुजारी से सस्कृत मे वार्तालाप किया। इन्होने कहा कि बलपूर्वक भेट लेने का तरीका तो ठीक नही है। भेट लिए बिना मदिर मे प्रवेश से रोकना अनुचित है। अपनी श्रद्धा, भक्ति और सामर्थ्य के अनुसार जो यात्री जितनी भेंट मदिर मे चढाए उसे ही स्वीकार करना चाहिए। यह भेट नही, यह तो एक प्रकार का टैक्स है। इसका मतलब तो यह हुआ कि जो निर्धन है वे भगवान के दर्शन ही नही कर सकते। विशेषकर भगवान् कृष्ण के जो गरीब ग्वालो के सखा थे, जो सन्तो के परित्राता, दु खियो के दु खहर्ता तथा निर्धनो के धन थे। दर्शको से टैक्स लेना उनके साथ अन्याय करना है। ब्रह्मचारी और सन्यासी जो कभी अपने पास रुपया पैसा रखते ही नही, वे तो कभी भी दर्शन न कर सकेंगे। पुजारी ने इन्हे तो भीतर जाने की आज्ञा दे दी किन्तु उनके साथी अन्य यात्रियो मे से किसी को भी भेट दिए बिना भीतर नही जाने दिया। इसीलिए इसे भेटद्वारिका कहते हैं।

जब सब यात्री दर्शन करके लौट आए तब पुजारी ने महाराजजी को एक ओर बुलाया और कहा, आप ठहरिए, आपको विशेषरूपेण दर्शन करवाए जाएगे। वह उनको एक गद्दी के पास ले गया और उनसे निवेदन किया कि आप तो यही ठहर जाइए। यहा की गद्दी पर बैठकर सुख से जीवन व्यतीत कीजिए। यहा के महन्त को देवलोक हुए कुछ ही मास हुए थे। मदिर के अधिकारी एक योग्य ब्रह्मचारी को गद्दी पर बिठाने के लिए खोज कर रहे थे किन्तु अभी तक उन्हे सफलता लाभ न हो सकी थी। इस गद्दी पर बालब्रह्मचारी ही बैठ सकता था। पुजारी तथा यहा के अधिकारीवर्ग सब महाराजजी के व्यक्तित्व, तेज, ओज और सस्कृत सभाषण से बडे प्रभावित थे। अध्ययन काल मे ये सब विद्यार्थियो से सस्कृत मे ही वार्तालाप करते थे और दक्षिण यात्रा मे तो जहा भी गए वहा पर मदिरो के पुजारियो तथा अधिकारियो से सदैव सस्कृत मे ही बातचीत करते थे। भेंटद्वारिका के अधिकारियो ने इनसे गद्दी पर बैठने का आग्रह किया, तब उन्होने उनको बडा सुन्दर उत्तर दिया कि मैं एकदेशी भगवान् की सेवा नही करना चाहता। मै तो ऐसे भगवान् की गद्दी या सेवा चाहता हू जो सब जगह मौजूद है। जो सर्वज्ञ, परिपूर्ण, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वकर्ता, सर्वधर्ता, सर्वत्र वर्तमान, तीनो कालो मे समान, सर्वरक्षक, सर्वपालक, सर्वव्यापक, निराकार, निरवयव, तथा निष्क्रिय हो। यदि आप उसकी गद्दी दिलाना चाहते हो तो मैं तत्पर हू। यह सुनकर सब अधिकारी चुप होगए। उसके पश्चात् प्रभास क्षेत्र आदि के दर्शन किए। यह वही क्षेत्र है जहा पर यादव वशी परस्पर युद्ध करके समाप्त होगए थे। यही पर व्याध ने भगवान् श्रीकृष्ण के पैर मे घातक तीर मारा था।

इसके पश्चात् राजपूताने मे तीर्थाटन किया। यहा पर नाथद्वारा, एकलिङ्ग, सतकरोली आदि स्थानो मे स्थित मदिरो के दर्शन किए। चित्तौड का किला भी देखा। अब यात्रा करते-करते थक गए थे, गर्मी भी अधिक होगई थी, अत मथुरा, वृन्दावन होते हुए अमृतसर चले गए।

अमृतसर मे लाला शिवसहाय के मकान पर ही निवास किया। अब की बार मोतीराम की बगीची मे नही ठहरे। यहा कुछ दिन निवास करके गर्मी के कारण काश्मीर चले गए।

तीन मास का काष्ठ मौन

काश्मीर मे प्राय सभी स्थान महाराजजी के देखे हुए थे, किन्तु इन्हे सबसे अधिक सुफ्ती बाग ही निवास के लिए पसन्द था, अत यही ठहरे। यहा रहने मे कई सुविधाए थी। सबसे बडी सुविधा भ्रमण की थी। हारवन झील सुफ्ती बाग के पास ही थी। यहा कुछ एकान्त भी था। उसी झील के किनारे भ्रमणार्थ जाया करते थे। सुफ्ती बाग मे अबकी बार उन्होने ३ मास तक काष्ठ मौन रखा। इस व्रत को समाप्त करके कुछ दिवस तक श्रीनगर मे निवास किया। तत्पश्चात् अमृतसर के लिए प्रस्थान किया।

अमृतसर मे निवास

अमृतसर मे लाला मोतीराम की बगीची मे ठहरे। लाला मोतीरामजी का स्वर्गवास होगया था। दीवाली के अवसर पर जो सन्त महात्मा आते थे उनके लिए

वे क्षेत्र खोला करते थे। यह क्षेत्र लगभग एक मास तक चलता था। इस बार व्यवस्था की कमी होने के कारण क्षेत्र अब तक नही खुल सका था। मोतीरामजी की पत्नी तथा उनका दामाद गुरुदयाल महाराजजी के अमृतसर पधारने की प्रतीक्षा कर रहे थे जिससे उनकी व्यवस्था तथा निरीक्षण मे क्षेत्र खोला जाए। इन दोनो ने इनसे क्षेत्र की सब व्यवस्था करने के लिए निवेदन किया। इन्होने अपनी स्वीकृति दे दी। क्षेत्र के लिए सब सामान मगवा लिया गया और सन्तो-महात्माओ के भोजन की पूरी-पूरी व्यवस्था कर दी गई। यह लगर दीवाली के अवसर पर एक मास तक चला करता था। मोतीरामजी के देहान्त के कारण उनकी पत्नी मानकौर की आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नही रही थी अत महाराजजी ने अपने श्रद्धालु भक्त देवीदासजी से प्रति वर्ष इस क्षेत्र का सारा खर्चा देने के लिए कहा और उन्होने इनकी आज्ञा का पालन किया।

भक्त देवीदासजी—भक्त देवीदास बडे धनवान थे और साथ ही दानी, धर्मात्मा तथा ईश्वर के अनन्य भक्त थे। वे दिन मे तीन बार साधना करते थे। प्रात ३ बजे से ५ बजे तक, फिर ९ बजे से १० बजे तक तथा सायकाल सूर्यास्त के बाद एक घण्टा। ये केवल मानसिक जाप तथा ध्यान किया करते थे। ये देश मे हो अथवा विदेश मे, रेलगाडी से यात्रा कर रहे हो या मोटरगाडी से, कभी अपने जाप और ध्यान का समय नही चूकते थे। कई बार ये महाराजजी के साथ कई-कई महीनो तक रहे है किन्तु कभी अपने अभ्यास मे पाच मिनिट का भी विलम्ब नही होने दिया। इनके बडे पुत्र को डाकुओ ने घेर लिया था और पिस्तौल से उनकी हत्या कर दी थी। जब उनकी अन्त्येष्टी की तैयारी हो रही थी, पारिवारिक सदस्य विलाप कर रहे थे, घर मे चारो ओर करुण क्रन्दन हो रहा था, हाहाकार मचा हुआ था और सभी आतुर तथा व्याकुल हो रहे थे, उस समय भी लाला देवीदास पूजा, जाप तथा ध्यान मे बैठे हुए थे। इसे कहते है स्थितप्रज्ञता! महाराजजी के सपर्क से उनके भक्तो मे अलौकिक परिवर्तन हो जाता था। उनका नैतिक स्तर एकदम ऊचा उठ जाता था और उनकी भगवान के प्रति आस्था तथा भक्ति हो जाती थी। लाला देवीदास प्रयाग मे कुम्भ तथा अर्धकुम्भी के अवसर पर सदा ही महात्माओ के लिए शीतकाल मे दो तीन मास के लिए अन्न-क्षेत्र खोला करते थे। कोट बाबा दयाराम के स्थान पर इस क्षेत्र को खोला जाता था। इस स्थान पर कई गुफाए है जिनमे सन्त महात्मा निवास किया करते हैं। कोट बाबा दयाराम मे स्वामी पूर्णानन्द तथा सन्त पजानन्द रहा करते थे। ये दोनो बडे त्यागी सन्त थे।

अमृतसर से महाराजजी हरिद्वार चले गए। वहा पर मोहन आश्रम मे ३ मास तक ठहरे, फिर जालधर गए और डा० नारायणसिह के पास ठहरे। इनकी पत्नी डा० विद्यावती बडी योग्य गृहिणी है। ये बडी ईश्वरभक्ता और दानशीला है। नित्य नियमानुसार जाप, ध्यान तथा यज्ञादि करती है।

चम्बा यात्रा

जालधर से महाराजजी होशियारपुर चले गए और वहा पर डाक्टर मोतीसिह के पास ठहरे। उन्होने ही इन्हे निमन्त्रण देकर जालधर से बुलाया था। वहा से चौधरी ज्योतिसिंह के साथ चम्बा के लिए प्रस्थान किया। यह स्थान महाराजजी का देखा

हुआ था किन्तु उनके आग्रह से ये उनके साथ जाने को तैयार होगए। यहा पर चौधरी ज्योतिसिह के मित्र डाक्टर मेलाराम चीफ मैडीकल अफसर थे। इनकी कोठी रावी नदी के किनारे पर थी। यह स्थान बडा सुहावना था अत यही पर ठहरने का निश्चय किया। श्री महाराजजी चौधरी ज्योतिसिह के साथ चम्बा नही गए थे क्योकि उन्हें अमृतसर मे कुछ काम था, अत होशियारपुर से ये अमृतसर चले गए थे। चौधरी ज्योतिसिह इनसे पहिले चम्बा चले गए थे और ये कई दिन पीछे पहुचे थे। जब डा० साहब की कोठी पर गए तो वहा चौधरी साहब नही दिखाई दिए। पूछने पर मालूम हुआ कि डाक्टर मेलाराम और चौधरी साहब मे बातचीत करते-करते कुछ नाराजगी होगई, चौधरी साहब ने अपना बडा अपमान समझा और वे वापस चले गए। महाराजजी ने भी अब यहा ठहरना अनुचित समझा, अत एक दो दिन यहा ठहरने के पश्चात् कागडा, धर्मशालादि स्थानो पर जाने का निश्चय कर लिया। इसी बीच मे चम्बा आर्यसमाज के कुछ परिचित सज्जनो ने महाराजजी से आर्यसमाज के उत्सव पर भाषण देने की प्रार्थना की और महाराजजी को पास ही एक कोठी मे ठहरा दिया। सायकाल जब डाक्टर मेलारामजी महाराजजी से मिलने आए तो ईश्वर के सम्बन्ध मे तथा वेदो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे बातचीत होने लगी। डाक्टरजी न तो ईश्वर को, न पुनर्जन्म को और न वेदो को ही मानते थे। साधु और सन्तो मे उनका विश्वास नही था। महाराजजी ने उन्हे वेद और शास्त्रो के प्रमाण देकर समझाया, किन्तु उनके कोई भी बात समझ मे नही आई। ये बडे दम्भी, अभिमानी, हठी और वितण्डावादी थे। इनकी उद्दण्डता को देखकर महाराजजी ने कहा, भगवान की कृपा है कि तुम एक ऊचे पद पर हो, उसका धन्यवाद करो। इस पर डाक्टर ने कहा कि मैने तो अपनी योग्यता से यह पद प्राप्त किया है, यदि मुझमे योग्यता न होती तो यह पद मुझे किस प्रकार मिल सकता था। महाराजजी ने कहा, देखो प्रभु से डरो। अभिमान का सिर नीचा होता है। मुझे ऐसा भास रहा है कि दो चार मास मे ही तुम यहा से अपमानित होकर निकाल दिए जाओगे। ऐसा ही हुआ भी। इनका राजमत्री माधोरामजी से झगडा होगया और डाक्टरजी को बरखास्त कर दिया गया और चम्बा स्टेट से निकाल दिया गया। कई मास बाद जब कभी महाराजजी होशियारपुर गए तो डाक्टर मेलाराम इनसे मिले। बडा पश्चात्ताप किया और बताया कि अढाई महीने बाद ही अपमानित होकर उन्हें चम्बा छोडना पडा। अब उनकी भगवान मे आस्था होगई थी और भजन करना प्रारम्भ कर दिया था।

धर्मशाला, कागडा तथा कुल्लू के लिए प्रस्थान—आर्यसमाज चम्बा के वार्षिकोत्सव पर चार व्याख्यान देने के पश्चात् महाराजजी ने कागडा के लिए प्रस्थान किया। यहा से एक मार्ग धर्मशाला के लिए नजदीक पडता था किन्तु यह था बडा दुर्गम। इस मार्ग मे कई ऊचे पहाड आते थे जिन्हें पार करके जाना पडता था। ब्रह्मचारीजी ने इसी मार्ग से जाने का निश्चय किया। अपना कुछ सामान चम्बा मे ही छोड आए थे। थोडा-सा ही सामान साथ लाए थे। दो दिन तक पहाडो पर चलने के पश्चात् १० बजे के लगभग एक निर्जन वन मे पहुचे। वहा एक भालू से सामना करना पडा। भालुओ का महाराजजी से बडा प्रेम था। उन्हें इनके हाथो पिटने और घायल होने मे बडा मजा आता था। यह भालू इनका मार्ग रोककर खडा होगया। इधर-उधर से

पत्थर इकट्ठे करके उसे मारना प्रारभ किया जिससे वह मार्ग से हट जाए, पर वह हटा नही। तव इन्होने अपना चाकू निकाला और उचित अवसर देखकर उसकी नाक पर वलपूर्वक मारा। उसकी नाक फट गई और रुधिर की धारा वह चली। वह कराहता हुआ दूर चला गया। कुछ काल तक इसी वन मे विश्राम किया। यहा से चलकर पाचवें दिन धर्मशाला पहुच गए। यहा पर आर्यसमाज मदिर मे ठहरे। यहां के दर्शनीय स्थान इससे पूर्व ही देख चुके थे, फिर दुवारा भी उन्हे देखने के लिए पधारे। यहा से कागडा, पालमपुर, वैजनाथ तथा मण्डी होते हुए कुल्लू पहुचे। यहा पर व्यास नदी के पार एक वगीचा था। उसमे एक कुटिया मे निवास किया। यहा से दशहरे के वाद पठानकोट चले गए और वहा कुछ दिन तक अपने भक्त नारायण दास के पास ठहरकर अमृतसर के लिए प्रस्थान किया।

पुनः अमृतसर मे निवास

यहा आकर पूर्ववत् मोतीरामजी की वगीची मे निवास किया। लाला काह्न चन्द खन्ना महाराजजी के वडे भक्त थे। उन्हें पता चला कि ये मौन व्रत लेने वाले हैं, अत निवेदन किया कि इस वार अधिक लम्वा मौन व्रत न किया जाए क्योकि उनका विचार कलकत्ता से तीर्थाटन के लिए एक विशेप रेलगाडी चलाने का था। इसका सव प्रवध होगया था। जनवरी से यात्रा प्रारभ होगी और ७२ तीर्थों के दर्शन इसमे किए जाएगे। महाराजजी से भी साथ चलने का आग्रह किया।

भारत के मुख्य-मुख्य वहत्तर तीर्थों की यात्रा

महाराजजी तथा अमृतसर से जो लोग तीर्थाटन के लिए विशेप रेलगाडी से जाने वाले थे, दिसम्वर १९३० को कलकत्ता पहुच गए। इस गाड़ी को ३१ दिसम्वर को कलकत्ता से चलना था। सारी यात्रा २ मास और १० दिन की थी। इसमे यात्रा करने वालो की सख्या लगभग ४०० थी। १५० रुपया थर्ड क्लास का टिकट था और ४०० रुपया सैकड क्लास का था। भोजन व्यय भी इसी में शामिल था। रेलगाडी मे ही भोजन की सव व्यवस्था की गई थी। दिन में तीर्थों के दर्शन किए जाते थे और रात्रि मे सफर किया जाता था। कलकत्ते से सायकाल ५ वजे रेलगाडी रवाना हुई और प्रात ९ वजे जगन्नाथ पुरी पहुची। एक दिन यहा ठहरे। समुद्र स्नान किया, भगवान कृष्णचन्द्रजी के दर्शन किए तथा घूम फिर कर अन्य छोटे-छोटे देवस्थानो को देखा। इसके पश्चात् विजवाडा मे पन्ना नरसिंह और भुवनेश्वर के मदिरो के दर्शन किए। मदुरा में मीनाक्षी देवी के दर्शन किए और यहा से चलकर कन्याकुमारी पहुचे। इस ओर मुख्य तीर्थस्थान १० है —नोतादरी, लवे नारायण, छोटे नारायण, जनार्दन, दक्षिण काशी, पद्मनाभ, सुन्दर महादेव, कन्याकुमारी, आदि। मदुरा से रेलगाडी रामेश्वर गई। महाराजजी रामेश्वर मे यह तीसरी वार आए थे और जगन्नाथ पुरी मे चौथी वार। यहा से श्रीरङ्गपुर और मद्रास गए। इसके पश्चात् शिवकाची, विष्णु काची, पक्षी तीर्थ, वालाजी, किष्किन्धा, विठ्ठलनाथ, शोलापुर, नासिक, वम्वई, जामनगर, जूनागढ, दत्तात्रेय, मूलद्वारिका, भेटद्वारिका, आदिद्वारिका, प्रभास क्षेत्र, आवू, चित्तौड, उदयपुर, काकरौली, एकलिंग, नाथद्वारा, जयपुर, मथुरा, वृन्दावन, आगरा, देहली, हरिद्वार, ऋषिकेश, अमृतसर, लाहौर, लखनऊ, प्रयाग, वनारस, गया, वैजनाथ

होते हुए कलकत्ता पहुंचे। सभी यात्रियों की धर्म में निष्ठा थी। सभी विचारशील थे। परस्पर एक दूसरे का ध्यान रखते थे और स्नेहपूर्वक व्यवहार करते थे।

दरभंगा गमन

बालेश्वरप्रसाद चौधरी इसी लम्बी यात्रा में महाराजजी के बड़े श्रद्धालु भक्त होगए थे। ये चौधरीजी १५० गांवों के मालिक थे। जहां-जहां विशेष गाड़ी ठहरती थी वहां-वहां चौधरीजी और उनकी पत्नी इन्हें तीर्थों के दर्शन करने के लिए अपने साथ ले जाते थे। इन्होंने महाराजजी को अपने स्थान क्योटा (दरभंगा) चलने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने अभी तो चलने से इन्कार कर दिया किन्तु कुछ दिन बाद वहां जाने का वचन दिया। श्री महाराजजी तीन दिन तक कलकत्ता में ठहरने के बाद नदिया शान्ति गए और वहां से वापस कलकत्ता आकर दरभंगा के लिए प्रस्थान किया। इसकी सूचना चौधरीजी को दे दी गई थी। वे अपने मित्रों सहित दलसिंह सराय पर स्वागतार्थ उपस्थित हुए। वहां से इन्हें क्योटा ले गए और अपनी ही कोठी में ठहराया। इनकी कोठी बड़ी सुन्दर थी और इनका रहन-सहन राजसी ढंग का था। कई हाथी और मोटरें थीं। कोठी के चारों ओर बड़ा सुन्दर बगीचा था। अतिथि-गृह कोठी से कुछ दूरी पर बनाया हुआ था। इनके पास २०६ सेवक थे जो इनका सब कारोबार करते थे। इनकी सम्पत्ति और गांवों का सब काम इन्हीं के हाथों में था।

चौधरीजी कभी-कभी महाराजजी को हाथी की सवारी करवाया करते थे और भ्रमण के लिए प्रायः इसी पर जाते थे। चौधरीजी ने बड़े रईसी ढंग से श्री योगीराजजी का आतिथ्य किया। किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया। ब्रह्मचारीजी प्रायः नित्य ही इन्हें तथा इनके परिवार को उपदेशामृत का पान कराया करते थे।

पालतू शेर से बालिका की रक्षा—महाराजजी क्योटा में प्रायः बरांडे में बैठ कर स्वाध्याय किया करते थे। एक दिन एक सेविका चौधरीजी की सबसे छोटी पुत्री को गोद में लेकर महाराजजी के पास आशीर्वाद के लिए लाई। उसी समय एक सेवक शेर को सैर करवा रहा था। चौधरीजी को शिकार खेलने तथा जंगली जानवरों को पालने का बड़ा शौक था। जब यह शेर छोटा-सा ही था तब इसे पकड़कर ले आए थे। इसे मांस नहीं खिलाया जाता था। यह पूरा शाकाहारी था, मांसाहारी नहीं। अब यह बड़ा होगया था। सेविका की गोद में बालिका को देख कर मांस के प्रति उसकी सहज प्रवृत्ति जागृत होगई और नौकर के हाथ से सांकल छुड़ाकर उस बालिका पर झपटने के लिए भागा और एक झटका मारा। सेविका गिर पड़ी। उसने अपनी छाती के नीचे बालिका को झट से दबा लिया। इधर महाराजजी भी झट भागकर आए और अपने दोनों हाथों से शेर का गला पकड़ लिया और उसे धक्का देकर बहुत दूर गिरा दिया। बालिका तथा सेविका की रक्षा की और नौकर शेर को सांकल से खींचकर दूर ले गया और उसे बांध दिया। इन्होंने बालेश्वरप्रसादजी को समझाया कि हिंस्र जानवरों को इस प्रकार से खुला नहीं रखना चाहिए। इनका कोठी में रखना उचित नहीं है। यदि रखना ही हो तो पिंजरे में रखना चाहिए।

चौधरीजी की महाराजजी के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। ये अपने हाथों से इनकी सेवा करने में बड़ा गौरव मानते थे। इसमें ये बड़ा आनन्द अनुभव करते थे।

दरभगा नरेश से भेंट—दरभगा मे एक बार एक सर्कस आया था। चौधरीजी ने इसे देखने के लिए महाराजजी से निवेदन किया। इन्हे सर्कस, सिनेमा तथा खेल तमाशे देखने का बिलकुल शौक नही था। इस रुचि का इनमे नितात अभाव था। अत इन्होने बात को टाल दिया। पर चौधरीजी के बार-बार आग्रह करने पर जाने के लिए तैयार होगए। विशेष आकर्षण तो दरभगा जाने का दरभगा नरेश से भेंट करने का था। चौधरीजी मैथिल ब्राह्मण थे और दरभगा भी ब्राह्मण राज्य था, अत ब्राह्मणत्व के नाते इनका दरभगा नरेश से घनिष्ठ परिचय था और दरभगा नरेश की इन पर बडी कृपा थी। ये महाराजजी को उनके दर्शन करवाने के लिए अपने साथ ले गए। नरेश इनसे मिलकर बडे प्रसन्न हुए और अपने राज्य का सारा इतिहास इन्हे सुनाया। दरभगा वश राजपूत नरेशो के पुरोहित है। राजपूताने के राजकुमारो को यज्ञोपवीतादि सस्कार ये ही करवाते है और दान-दक्षिणादि प्राप्त करते है। दरभगा राज्य बडा धनाढ्य तथा सम्पन्न राज्य था। शासन-प्रबन्ध भी यहा का उत्तम था। शासक बडे विद्वान् और सदाचारी थे। दरभगा नरेश के साथ महाराजजी तथा चौधरीजी सर्कस देखने के लिए पधारे और उसकी समाप्ति पर क्योटा चले गए। यहा पर कुछ दिवस निवास कर चुकने के पश्चात् महाराजजी ने नैपाल जाने की इच्छा प्रकट की। चौधरीजी इन्हे और अधिक ठहराना चाहते थे किन्तु इन्होने महाराजजी के प्रस्थान की सारी तैयारी कर दी और अपने इष्ट-मित्रो तथा सेवको सहित बडे सम्मानपूर्वक अमूल्य भेंट देकर और पुष्पो के हार पहिनाकर दलसिह सराय के स्टेशन मे विदा किया।

नैपाल यात्रा

नैपाल जाने के लिए पासपोर्ट प्राप्त करना आवश्यक होता था किन्तु शिवरात्री के अवसर पर यह बधन नही रहता था। महाराजजी के लिए चौधरीजी ने समुचित रूप से यात्रा की सारी व्यवस्था कर दी थी। दलसिह सराय मे रेलगाडी मे सवार होकर ब्रह्मचारीजी रिकसोल पहुचे। इससे आगे नैपाल राज्य प्रारभ होता था। रिकसोल से तीस मील तक एक छोटी-सी रेलगाडी मे सवार होकर नैपाल की राजधानी काठमण्डू से २० मील इधर तक पहुचे। इससे आगे बीस मील पैदल चलकर काठमण्डू पहुचे। शिवरात्री के अवसर पर ही ये यहा पहुचे। शिवरात्री का पावन पर्व नैपाल मे बडे समारोह के साथ मनाया जाता था। सहस्रो सन्त महात्मा तथा गृहस्थी यात्री पशुपति मदिर मे इनके दर्शनार्थ जाते है। रिकसोल मे मथुरा के चौबे किशनलाल से परिचय हुआ और उसने महाराजजी के साथ ही यात्रा करने के लिए निवेदन किया। यह इनके व्यक्तित्व से बडा प्रभावित हुआ और इन्हे अपना गुरु मानने लग गया। इनके प्रति बडी श्रद्धा और भक्ति होगई। गाडी का मार्ग समाप्त होने पर ये दोनो साथ ही चल दिए। किशनलाल ने इनका सामान उठा लिया और आवश्यकतानुसार भोजन भी इनके लिए यही बनाया करता था। काठमण्डू पहुचने के लिए मार्ग एक बीहड वन मे से जाता था। हनुमान गढी के अतिरिक्त और कोई विशेष बस्ती मार्ग मे नही थी। हनुमान गढी पहुचने से पूर्व ही सूर्य नारायण अस्ताचल को चले गए। एक बाघ इनके मार्ग को रोककर खडा होगया। एक बडी समस्या खडी होगई। महाराजजी के पास तो एक बडी मजबूत सोटी थी किन्तु किशनलाल के पास कुछ न था

किन्तु वह बलवान तथा हृष्टपुष्ट और साहसी आदमी था। वह नित्य व्यायाम करता था। अखाड़े में कुश्ती लड़ने जाता था। कई अखाड़े इसने जीते थे। वह पत्थर अथवा सोटी की सहायता के बिना ही बाघ के साथ जूझ गया। बाघ गुर्राता हुआ दोनों पंजों पर खड़ा होकर ऊपर लपका। किशनलाल ने इसके दोनों पंजे पकड़ लिए और जोर से इसके पेट में लात मारी जिससे वह धड़ाम से भूमिसात् होगया। चौबेजी ने बाघ के मुंह में उसका पंजा दे दिया। यह उसके पेट पर बैठ गए और दोनों पंजे उसके मुंह में देने का प्रयत्न करने लगे। इतने में महाराजजी भागकर आए और उसके मुंह में अपनी सोटी डालकर उसे भीतर घुमा दिया। इससे उसका मुंह भीतर से घायल होगया और रुधिर की धारा बहने लगी। वह आध घण्टे में मृत्यु का ग्रास बन गया। किशनलाल ने इसे धकेलकर नीचे गिरा दिया। महाराजजी स्वयं अकेले ही इसका सामना करना चाहते थे किन्तु चौबेजी इन्हें गुरु मानते थे, इनमें बड़ी भक्ति रखते थे, अतः उन्होंने इन्हें बाघ के समीप जाने नहीं दिया। ब्रह्मचारीजी मार्ग में इन्हें उपनिषदों की कथा सुनाते रहे जिसका उनके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। दो दिन में ये काठमण्डू पहुंच गए।

शिवरात्रि महोत्सव—काठमण्डू में बाघमती नदी के किनारे हजारों साधु, सन्त और महात्मा ठहरे हुए थे। ये सब शिवरात्रि के महोत्सव में भाग लेने तथा दर्शन करने के लिए आए हुए थे। नैपाल सरकार की ओर से इस पर्व पर महात्माओं का बड़ा सत्कार होता था। यह महोत्सव लगभग एक मास तक मनाया जाता था। इस मेले में लाखों नर-नारी एकत्रित होते थे। नैपाल नरेश की ओर से अन्न के भण्डार खुले रहते थे। जो सन्त स्वयंपाकी थे उनको यहां से आटा, दाल, चावल, घी, लकड़ी आदि सामान दिया जाता था। कई दुकानें नियत कर दी गई थीं जहां से सन्त-महात्माओं को पूरी, शाकादि वितरण किया जाता था। राजकर्मचारी इतस्ततः घूम फिर कर इस बात का निरीक्षण करते थे कि महात्माओं को समय पर भोजन और रसद मिलती है या नहीं। महाराजजी बाघमती के किनारे एक उदासी सन्त के स्थान पर ठहर गए। किशनलाल भी उनके साथ था। इनके पास एक दक्षिणी साधु भी आकर रहने लगे। यह केवल संस्कृत में ही वार्तालाप करते थे। महाराजजी को भी संस्कृत संभाषण करने का बहुत अभ्यास था। ये दोनों सदैव संस्कृत में ही बातचीत करते थे। जो सन्त पास बैठे होते थे यदि वे संस्कृत से अनभिज्ञ होते तो उन्हें संस्कृत का हिन्दी में अनुवाद करके सुना दिया करते थे। महाराजजी के पास भी कई राजकर्मचारी भोजन इत्यादि के विषय में पूछने आए किन्तु इन्होंने अपनी भोजन व्यवस्था स्वयं ही की थी। इनके त्याग भाव को देखकर राजकर्मचारी बड़े प्रभावित हुए और इनके सत्संग में नित्य ही आने लगे। श्री महाराजजी ने एक दिन इन अफसरों के समक्ष, राज्य की ओर से महात्माओं को जो विदाई दी जाती थी उसे देखने की इच्छा प्रकट की। महोत्सव की समाप्ति पर नैपाल नरेश एक दिन साधुओं और संन्यासियों क विविध प्रकार की भेंटों से सम्मानित करके विदा करते थे। प्रायः रुपये, कम्बल, बिस्तर, कमण्डल, मृगचर्म, बाघम्बर, आसन, लोटा, गिलास, कटोरी आदि के रूप में भेंट दी जाया करती थीं। राजकर्मचारियों ने महाराजजी के लिए महात्माओं की विदाई के उत्सव को देखने का प्रबन्ध करने का वचन दया। नैपाल में सैकड़ों मंदिर

है। नैपाल मे ऐसी प्रथा प्रचलित है कि जब-जब राजपरिवार का कोई सदस्य देवलोक होता है तो उसके नाम पर मंदिर का निर्माण किया जाता है। इसलिए मंदिरो की यहा कमी नही है। ऊचे-ऊचे पर्वतो के बीच मे लगभग २० मील लम्बा १७ मील चौडा एक बडा सुन्दर मैदान है। बाघमती नदी इसी के बीच मे से प्रवाहित होती है। इस मैदान मे तीन बडे-बडे नगर बसे हुए है—काठमण्डू, भक्तगाव तथा एक और छोटा सा नगर है। काठमण्डू नैपाल की राजधानी है। यहा पर बडा प्रसिद्ध पशुपतिनाथ का एक मंदिर है। शिवरात्रि का महोत्सव यही मनाया जाता है और इसी मूर्ति के दर्शन के लिए हजारो सन्त यहा आते है और लाखो की सख्या मे लोग एकत्रित होते है। मूर्ति पारस पत्थर की बनी हुई है। इस पर्व पर नैपाल नरेश तथा महारानी दोनो दर्शनार्थ आते है। बडे भारी समारोह के साथ इनकी सवारी निकलती है। इस अवसर पर लाखो रुपया सन्तो और महात्माओ पर व्यय किया जाता है। शिवरात्रि के पश्चात् साधुओ तथा सन्यासियो को विदाई दी जाती थी। इन्हे पक्ति बाधकर जहा विदाई बाटने का स्थान नियत होता था वहा जाना होता था। इसके लिए विशेष मार्ग बनाया जाता था। पुलिस का पूरा प्रबन्ध किया जाता था। राजकुमार तथा राज्य के प्रमुख अफसर विदाई वितरण करते थे। श्री महाराजजी के लिए भी बैठने का प्रबन्ध इन्ही के पास कर दिया गया था। इन अफसरो के पास ही इनके लिए कुर्सी रख दी गई थी। विदाई के समय का प्रबन्ध बडा उत्तम था। बर्तन, बिस्तर, कमण्डल आदि के ढेर लगे हुए थे। थैलियो मे रुपये बाधकर तैयार थे। राजकुमार तथा राज-कर्मचारियो ने साधुओ का यथायोग्य सत्कार किया। दर्शक अतिथियो के लिए बैठने का समुचित प्रबन्ध किया गया था। लाखो नर-नारी साधुओ के दर्शनार्थ आए थे। रात्रि के ९ बजे तक साधुओ को उनकी इच्छा तथा आवश्यकता के अनुसार वस्तुओ का वितरण होता रहा। पीताम्बरधारी श्री महाराजजी ने आठ बजे वही से प्रस्थान करने की इच्छा प्रकट की। जब ये चलने लगे तब इनके पास एक राजकुमार आया और भेट के लिए इनसे पूछा। किन्तु महाराजजी ने कहा, "हमे किसी वस्तु की आवश्यकता नही है। हम अपरिग्रह का पूर्ण पालन करते है और आवश्यकता मे अधिक सामान अपने पास नही रखते है। हम तो यहा पर दर्शक के रूप मे राज द्वारा साधु-सन्यासियो के सत्कार को देखने आए थे। यहा का सब प्रबन्ध, राजपरिवार की धर्म-निष्ठा, दानशीलता तथा सन्त-सेवा देखकर हमे बहुत प्रसन्नता हुई है। मै अन्तर्यामी भगवान् से इस राज्य के लिए प्रार्थना करता हू कि वे इसे सदैव समृद्धिशाली रखे, राजपरिवार बढे, फूले और फले।" महाराजजी के इन शब्दो से राजकुमार बडे प्रभावित हुए और निवेदन किया कि "आप आधे घण्टे के लिए और यहा विराजे। मैं आपके लिए सवारी की व्यवस्था करता हू।" इस राज्य मे एक पाच सरकार तथा एक तीन सरकार कहलाती है। पाच सरकार महाराजा के रूप मे तथा तीन सरकार राजमत्री के रूप मे। यह राजकुमार तीन सरकार का पुत्र था। यह राजकुमार प्रथम महाराजजी को अपने महलो मे ले गया और वहा चाय-पानादि करवाकर आपका बडा सम्मान किया। इस राजकुमार के बहुत पत्निया थी किन्तु उसकी भोगेच्छा की परिसमाप्ति नही होती थी। वह बडा परेशान सा था। उसने ब्रह्मचारीजी से इसकी समाप्ति तथा ब्रह्मचर्य पालन के सम्बन्ध मे उपाय बताने के लिए निवेदन किया। इन्होने एक घण्टा तक राजकुमार को उपदेश दिया और ब्रह्मचर्य-पालन तथा

योगेच्छा की शान्ति के लिए कई उपाय बताए। १० बजे के लगभग राज की सवारी में विराजकर वे अपने निवास-स्थान पर पधार गए। दूसरे दिन नैपाल के मंदिरों के दर्शन करने के लिए गए। इस राज्य में महाराजजी १५ दिन तक रहे। कई सन्तों ने इनसे मुक्तिनाथ चलने के लिए कहा किन्तु ये उनके साथ नहीं गए और हरिद्वार जाने का निश्चय कर लिया। हरिद्वार में लगभग अढ़ाई मास तक मोहन आश्रम में ठहरे। इसके पश्चात् अमृतसर पधारे और वहां केवल एक सप्ताह ठहरकर काश्मीर के लिए प्रस्थान कर दिया।

पुनः काश्मीर निवास

रावलपिंडी में योगी अमरनाथ इनके अनन्य भक्त थे, अतः काश्मीर जाते तथा वहां से लौटते समय इनके पास कुछ दिवस अवश्य ठहरा करते थे। अबकी बार भी इनके पास कुछ दिवस तक निवास किया और तत्पश्चात् काश्मीर पधार गए। श्रीनगर में पंडित गोपीनाथ के पास ठहरे। इनका मकान कनिकदल में था। इन दिनों स्वामी सत्यानन्दजी महाराज हनूरीबाग आर्यसमाज में ठहरे हुए थे। इनका स्वामीजी से बहुत पुराना परिचय था। योग के विषय में इनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। महाराजजी ने इस-लिए योग के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनसे निवेदन किया। रात्रि के आठ बजे से नौ बजे तक का समय इस कार्य के लिए निश्चित कर लिया गया। स्वामीजी महाराज ने इन्हें अपने सामने बिठाया और राम नाम का जाप करने का आदेश दिया। इससे पूर्व महाराजजी प्रणव जाप किया करते थे किन्तु अब इनके आदेश के अनुसार राम नाम का जाप करना प्रारम्भ कर दिया। कभी-कभी तो ये दो-तीन घण्टे तक जाप करते रहते थे। एक दिन तो आर्यसमाज में जाप करने ८ बजे बैठे और प्रातः ३ बजे तक जाप करते रहे। लगभग २० दिन तक इस प्रकार से जाप करते रहे। इसके बाद स्वामीजी महाराज ने इन्हें अन्तिम उपदेश दिया और कहा कि अब आपकी आत्मा उद्बुद्ध होगई है, भविष्य में इसी प्रकार से जाप का अभ्यास करते रहना। ब्रह्मचारीजी आज्ञा लेकर चले गए किन्तु इस प्रकार के अभ्यास से इन्हें संतोष नहीं हुआ और न ही अपनी आत्मा में किसी प्रकार की विशेष जागृति ही अनुभव की। इसके पश्चात् इन्होंने राम नाम का जाप करना छोड़ दिया और पुनः प्रणव जाप प्रारंभ कर दिया। ये पुनः मुश्ती बाग में ही पधार गए। वहां पर लगभग अढ़ाई मास तक मौन व्रत धारण किया। श्रीनगर में चार पांच दिन तक पंडित गोपीनाथ के पास ठहरे।

दीवाली के अवसर पर अमृतसर जाकर मोतीराम की बगीची में अपनी कुटिया में निवास किया। वहां पर पूर्ववत् कई मास का काष्ठ मौन किया। केवल अमावस्या और पूर्णिमा को ही बोलते थे। इस मौन-व्रत के काल में महाराजजी ने एक ही आसन में बैठकर कई-कई घण्टे की शून्य समाधि का अभ्यास किया।

अर्धकुम्भी पर हरिद्वार गमन

वैशाख मास में अर्धकुम्भी के अवसर पर महाराजजी हरिद्वार पधारे और रामानन्द धर्मशाला में ठहरे। यह धर्मशाला लण्डौरे वालों की थी। ये लाला शिवसहाय के घनिष्ठ परिचित थे। इसलिए ब्रह्मचारीजी को इस धर्मशाला में कई कमरे मिल गए थे। इनके कई भक्त साथ थे। इस धर्मशाला में सुविधानुरूप इन सबको निवास के लिए

उचित स्थान मिल गया। भोजनोपरान्त महाराज मध्याह्न मे इतस्तत सन्तो, साधुओ के दर्शनार्थ चले जाया करते थे। कभी-कभी अमृतसर के भक्त भी इनके साथ हो लेते थे।

सन्त-समागम—घूमते फिरते एक दिन महाराजजी भीमगोडे चले गए। वहा पर एक सन्त मिले। सन्त ने इनसे कुछ पैसे मागे। इन्होने पूछा, "पैसे किस लिए चाहिए ? यदि भोजन करना हो तो चलो आपको भोजन करवा दे।" इस पर उसने औषध के लिए पैसे लेने की इच्छा प्रकट की। जब महाराजजी ने औषध भी एक वैद्य से दिलवाने के लिए कहा तब उसने नाराज होकर कहा, "जाओ, अपना रास्ता नापो। मैं तुम्हारे जैसे नास्तिक से बात करना नही चाहता। मुझे तुमसे न पैसो की आवश्यकता है और न औषधि की।" महाराजजी के यह पूछने पर कि वे उन्हे नास्तिक क्यो समझते है, उन्होने कहा कि नास्तिक के कोई सीग या पूछ नही होती। इस पर इन्होने कहा, बताइए तो फिर और क्या-क्या होता है ! सन्त ने कहा, "जब से तुमने साख्य शास्त्र पढा है तब से तुम्हारी भगवान के प्रति निष्ठा जाती रही है। तुम भगवान को सृष्टि का कर्ता, धर्ता, पालक, पोषक एव सहारकर्ता नही मानते हो। अत उसकी उपासना, प्रार्थना, भक्ति तथा ज्ञान प्राप्ति मे भी प्रमाद करने लगे हो।" महाराजजी सन्तजी की बाते सुनकर एक प्रकार की चिन्ता-सी मे पड गए, क्योकि सन्त की बाते इन्हे ठीक-सी ही मालूम हो रही थी। इन्होने २-३ वर्ष पूर्व साख्यदर्शन, विज्ञानभिक्षु-भाष्य और साख्यकारिका पढी थी। योग-साधना द्वारा भी कोई विशेष ज्ञान प्राप्त न होने के कारण कभी-कभी कुछ नास्तिक-सी भावना उत्पन्न होने लग जाती थी। ईश्वर के नाम-जाप आदि को भी बेकार-सा ही समझने लग गए थे। केवल प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध-विच्छेद को ही विशेष महत्व देने लग गए थे। ब्रह्मचारीजी ने सन्तजी से कहा, "मैने ईश्वर-प्राप्ति के लिए अनेक साधनाए की है, अनेक उपाए किए है, कई-कई घण्टे तथा दिन समाधिस्थ रहा हू, किन्तु ईश्वर के विषय मे आज तक कुछ भी ज्ञान प्राप्त न कर सका।" सन्त ने इस पर कहा कि गुरु के बिना इस ज्ञान की उपलब्धि नही हो सकती। महाराजजी ने कहा, "मैं तो कई गुरुओ के पास गया किन्तु आज तक ईश्वर साक्षात्कार नही हुआ, इसलिए मुझे कुछ निराशा-सी होगई है। काश्मीर मे गुरु अवधूत परमानन्दजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनसे बहुत कुछ मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ था किन्तु उनसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही हो सका क्योकि वे शीघ्र ही अन्यत्र चले गए। उस समय मेरी बुद्धि भी कुछ परिपक्व न थी। उनके आदेशानुसार अब तक बहुत तप, त्याग और कठिन तपस्या तथा विविध साधनाए करता रहा हू किन्तु किसी प्रकार का विशेष ज्ञान प्राप्त न हो सका। यदि आप मुझे आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान करवा सके तो मै आज से ही आपका शिष्य बन जाता हू। आप ही ऐसी कृपा करें। मै आपके आदेशानुसार सब कार्य करने लग जाऊगा।" सन्तजी ने हसते हुए कहा, 'मुझे कोई गुरु महाराज का आदेश नही मिला है जो आपको कुछ सिखाऊ।" महाराजजी ने पूछा, "आपके गुरु महाराज कहा रहते हें ? यदि आप बताने की कृपा करे तो मै वही चला जाऊ।" महाराजजी के पूछने पर पता चला कि सन्तजी के गुरुदेव तिब्बत मे तीर्थापुरी की ओर रहते है। उन दिनो उन्होने मौन व्रत लिया हुआ था। यह मौन आश्विन मास मे खुलेगा। सन्तजी से यह भी पता चला कि आश्विन मास मे वे कभी-कभी गगोत्री की ओर आया करते हैं। महाराजजी ने यह सुनकर कहा, "मैं

तो गगोत्री कई बार गया हू। आस-पास के प्राय सभी प्रदेशो को जानता हू। वहा तो कोई ऐसे सन्त दृष्टि-गोचर नही हुए।" सन्तजी ने कहा, "इस वर्ष उनसे तुम्हारा समागम हो जाएगा।" मेरे पूज्य गुरुदेव जी बहुत वर्षों से तिब्बत मे ही रहते है। वे वैष्णव सन्त है। बहुत वर्ष पहिले वे अयोध्यापुरी मे रहते थे। इसके पश्चात् वे तिब्बत, हिमालय, कैलाश, मानसरोवरादि की यात्रा के लिए चले गए थे। पुन लौटकर नही आए। इस बार गर्मियो मे वे तीर्थपुरी से गगोत्री की ओर आएगे और आकर हरसिल के आस-पास रहेगे। बहुत वृद्ध सन्त है। उनकी आयु सौ वर्ष से भी अधिक है। प्राय मौन ही रहते है। अत्यन्त आवश्यकता पडने पर ही बोलते हैं। आश्विन के अन्त मे वे तिब्बत ही लौट जाएगे। तिब्बती भाषा का उन्हे बहुत ज्ञान है, तिब्बतियो के साथ तिब्बती भाषा मे ही बातचीत करते है। किन्तु आप तो यह भाषा जानते नही अत आपसे तो वे सस्कृत मे ही सभाषण करेगे।" महाराजजी ने कहा, "क्या आप भी साथ चलोगे?" सन्तजी ने उत्तर दिया, "मुझे वे आज्ञा नही देगे।" महाराजजी ने कहा, "तब वे मुझसे कैसे बोलेगे और कैसे दर्शन की आज्ञा देगे?" सन्तजी ने कहा, "हा, आपसे वे अवश्य मिलेगे। मैने उनकी आज्ञा का पालन नही किया इसलिए केवल मेरे लिए उनका द्वार बन्द है। सबके लिए नही।" महाराजजी ने उस सन्तजी की बातो पर पूर्ण विश्वास कर लिया क्योकि उन्होने उनके अन्त करण की सब बाते बतला दी थी। सन्तजी ने कहा, "आप उनसे मिलने अवश्य जाइए, आपका कल्याण हो जाएगा। हरसिल आपने देखा है। उसके ऊपर श्यामगगा है। उसके किनारे पर कही किसी गुफा मे वे मिल जाएगे। गुरु महाराज लम्बे कद के है। श्वेत उनकी जटाए है। सिर के मध्य मे केश अथवा जटाए नही है। अति वृद्ध है। शरीर पतला तथा दुर्बल है किन्तु मुखमण्डल तेजस्वी तथा दीप्तिमान है। केवल कौपीन धारण किए रहते है। जब कही इधर-उधर जाना होता है तब चोला धारण कर लेते है। उनके नेत्र बडे-बडे है। मस्तक विशाल है और सदैव प्रसन्न वदन रहते है। वे अन्न नही खाते। केवल कन्दमूल या फलाहार ही करते है। वे अपने साथ किसी सेवक या शिष्य को नही रखते।" महाराजजी ने जब उनका नाम पूछा तो सन्तजी ने मुस्कुराते हुए कहा, 'तुम्हे आम खाने है या पेड गिनने है? उनकी आज्ञा नही है कि उनका नाम अथवा विशेष परिचय किसी को दिया जाए।" उस सन्त की उपर्युक्त बातो से महाराजजी के ऊपर बडा प्रभाव पडा और वे उन्हे बडा परोपकारी और समझने लग गए और उनसे पूछा कि आपको औषधि के लिए कितने रुपये की आवश्यकता है। सन्तजी को केवल ५-६ आने की ही जरूरत थी किन्तु इन्होने २५) उन्हे देने चाहे पर उन्होने नही लिए और कहा "अभी तो छ आने की जरूरत है। अधिक की जरूरत नही है। जब आवश्यकता होगी तो उस समय कही और से मिल जाएगे।" उनके गुरुजी भी किसी से किसी भी प्रकार की भेटपूजा ग्रहण नही करते थे। उन सन्तजी का नाम कृष्णदास था। महाराजजी ने इन्हे छ आने दे दिए और वहा से जाने की आज्ञा मागी।

उन सन्तजी से वार्तालाप करने के पश्चात् महाराजजी के हृदय मे पुन वैराग्य भावना प्रचण्ड हो उठी। अब इन्होने इधर-उधर जाना छोड दिया। मिलने-जुलने की इच्छा भी अब नही रही। गगोत्री जाने का अब दृढ निश्चय कर लिया। अर्ध-कुम्भी के पश्चात् जाने की तैयारी कर ली।

आत्मज्ञानी गुरुदेव की खोज

महाराजजी ने अर्धकुम्भी के पश्चात् गंगोत्री जाने का दृढतापूर्वक विचार कर लिया था। गुरुदेव के दर्शन का समय आश्विन की सक्रान्ति था अत ये प्रथम जमनोत्री चले गए। इनके पास अत्यन्त मामूली सा सामान था। इसे अपने कधे पर रख कर प्रस्थान किया। जहा कही रात्रि हो जाती थी वही पर रात्रि व्यतीत कर लेते थे और जहा पर रमणीक एकान्त शान्त स्थान होता वहा कुछ अधिक ठहर जाया करते थे। भोजन चिरकाल से एक ही समय करते थे और उसे स्वय बना लेते थे। जमनोत्री के मार्ग मे एक शिमली नाम की चट्टी आती है। उसके समीप ही चीड के वृक्षो का एक वन है। पर्वत शिखर पर एक छोटा-सा मैदान है। उसके आसपास भी चीड के पेड हैं और नीचे जमना बह रही है। जमनाजी के किनारे बैठ कर श्री महाराजजी को बडी शान्ति प्राप्त हुई। इस स्थान पर कुछ काल अभ्यास करने का विचार किया। बहुत दिनो के पश्चात् वृत्तिया पुन शान्त हुई थी। वैराग्य भावना भी एकदम प्रबल होगई थी। बहुत सा समय इधर-उधर पर्यटन मे व्यतीत करने पर बडा पश्चात्ताप होने लगा। अब यहा पर शान्त और समाहित होकर कई घण्टे की शून्य समाधि मे बैठ गए। जब समाधि से व्युत्थान हुआ तो एक ग्रामीण सम्मुख भोजन लिए बैठा था। उसने प्रणाम करके निवेदन किया, महाराज! मै बहुत देर से आपके लिए भोजन लिए बैठा हू। इन्होने उससे लेकर आधा भोजन तो स्वय कर लिया और शेष प्रसाद रूप से उसे दे दिया। इस सज्जन ने महाराजजी से अपने घर पर ले जाने के लिए निवेदन किया। जब इन्होने इस बात को स्वीकार न किया तब उसने नित्यप्रति दोपहर के भोजन को लाने के लिए आज्ञा मांगी। महाराजजी ने उसकी स्वीकृति दे दी। ये यहा पर लगभग एक मास तक ठहरे। यहा पर ये एक ही आसन पर बैठकर दस-दस घण्टे ध्यान मे बैठा करते थे। सायकाल ६ घण्टे अभ्यास मे बैठते थे। इसके पश्चात् ये जमनोत्री चले गए। वहा केवल तीन दिन ही ठहरे क्योकि वहा यात्रियो की बहुत भीड होगई थी। वहा से उत्तरकाशी पहुच गए। वहा पर तेखला मे ब्रह्मजी की कुटिया मे ठहरे। वे हठयोग की क्रियाए बहुत अच्छी जानते थे। महाराजजी के उत्तरकाशी पहुचने पर वे कही अन्यत्र चले गए और एक कमरा इन्हें निवासार्थ दे गए। तेखला के पास ही एक छोटी सी नदी थी। इसके किनारे तीन गुफाए थी। एक दिन इन्हे महाराजजी देखने चले गए। एक गुफा के अन्दर फू फू की सी आवाज आ रही थी। इन्होने समझा कि शायद कोई साप फुकार मार रहा है किन्तु पास जाकर देखा तो मालूम हुआ कि एक महात्मा गुफा द्वार की ओर पीठ करके भस्त्रिका प्राणायाम कर रहा था। प्राणायाम के पश्चात् उन महात्माजी ने आसन करने प्रारभ कर दिए और एक घण्टा तक करते रहे। महात्माजी ने इनसे पूछा कि क्या आप इन आसनो से भिन्न आसन भी कोई जानते है? व्यासदेवजी ने कहा कि मैं ये सभी आसन कर सकता हू। मैं दो सौ आसन तथा चालीस प्रकार के प्राणायाम जानता हू। यह सुनकर महात्माजी ने बलपूर्वक कहा कि मैं "एक हजार प्रकार के आसन तथा बहुत प्रकार के प्राणायाम जानता हू। आसन मैं यहा ही आपको दिखाता हू।" ये ब्रह्मचारी दोनो हाथो पर खडे होगए, फिर एक को उठाकर एक पर खडे रहे। इसके पश्चात् हाथ के एक अगूठे पर सारे शरीर को तोलकर दो मिनट तक

अडोल खडे रहे। उसके पश्चात् कहा, एक प्राणायाम मैं आपको अभी गगा-तट पर स्नान करते समय दिखाऊगा। महाराजजी उन महात्मा जी के साथ गगा-तट पर चले गए। उन्होने गगा-तट पर एक पत्थर पर बैठकर पद्मासन लगा लिया और एक नासिका से पूरक प्राणायाम करके अपने शरीर को फुला लिया तथा उछलकर गगा के जल के ऊपर जा बैठे। वे जल के ऊपर बैठे-बैठे ही ३०० फीट तक जल के प्रवाह के साथ-साथ चलते रहे। उसके बाद शरीर को घुमाकर एक पत्थर के पास ले गए और उस पर दोनो हाथ रखकर उलट कर बैठ गए। जब उनको देखा तो मालूम हुआ कि उनका शरीर बिलकुल नही भीगा था, केवल पैर और जघाए ही थोडी-थोडी सी भीगी थी। महाराज ने तब उनके चरण पकड लिए और क्षमा याचना की और कहा कि आप जैसे महात्माओ ने भारत वसुन्धरा के मस्तक को उन्नत किया है। उसके बाद महात्माजी और महाराजजी दोनो ने गगा स्नान किया। महात्माजी ने कहा, "मै आजकल आकाश-गमन की एक विशेष साधना कर रहा हू। मुझे विश्वास है कि चार साल मे मै आकाश-गमन करने लगूगा।" महाराजजी ने पूछा कि आप अधिकतर कहा रहते है। महात्माजी ने उत्तर दिया, "मै ब्रह्मचारी हू और आबू पर्वत पर रहता हू। इधर तो केवल यात्रा करने चला आया था।" महाराज ने निवेदन किया, "आप आज मेरे पास ही भोजन करे।" वे स्वयपाकी थे, किसी के हाथ का बना भोजन नही करते थे। दिन भर मे केवल एक समय दो छटाक आटा और एक छटाक घी ही खाते थे और आठ दिन का भोजन अपने साथ उत्तरकाशी से ले आए थे, इसलिए उस निमत्रण को स्वीकार नही किया। महाराजजी ने वे आसन, प्राणायाम तथा आकाश-गमन की क्रियाए सीखने की इच्छा प्रकट की। महात्माजी ने सिखाना स्वीकार कर लिया किन्तु कहा कि आपको आबू पर्वत पर मेरे पास जाकर रहना होगा। अभी तो महात्माजी गगोत्री और बद्रीनाथ जा रहे थे अत महाराजजी को अपना पता लिखवा दिया और कह दिया जब आपकी इच्छा हो तभी आ जाना। महाराजजी ने कहा, "मुझे भी हरसिल आश्विन की सक्रान्ति को एक महात्माजी से मिलने जाना है। उनसे योग सीखने की अभिलाषा है। उसके पश्चात् आपके पास उपस्थित हूगा।" वे ब्रह्मचारी महात्माजी दूसरे दिन गगोत्री चले गए और महाराजजी ने २० भाद्रपद तक वहा ठहर कर हरसिल के लिए प्रस्थान किया। वहा पहुचकर ब्रह्मचारी राजाराम के पास ठहर गए और सन्त महाराजजी की खोज करनी प्रारभ कर दी।

गुरु दर्शन

हरसिल के पास ही बगोरी एक स्थान है। यहा पर नीताङ्ग और तिब्बत से प्राय लोग आते-जाते रहते है। ये लोग जाड कहलाते है। महाराजजी ने इनसे पूछा, क्या नीर्थपुरी से कोई महात्मा तो इधर नही आए है? उनमे से एक ने कहा, आए तो अवश्य है पर पता नही वे कहा पर है। इधर-उधर किसी कदरा मे जा बैठे होगे। प्राय मौन रहते है। खोज करने से पता लग जाएगा। हमने तो उन्हे कई दिनो से देखा नही है। थोडा-सा पता लगते ही महाराजजी ने श्यामगगा के किनारे उनकी खोज प्रारम्भ कर दी। ढूढते-ढूढते आश्विन सक्रान्ति का दिन श्यामगगा के किनारे

ही आगया। महाराजजी बडे चिन्तित हुए और कुछ हताश से भी। किन्तु खोज का परित्याग नही किया। इधर-उधर खोजते हुए फिर रहे थे कि उन्हे दूर एक गुफा से धूआ निकलता हुआ दिखाई दिया। महाराजजी को अन्त करण से आवाज-सी सुनाई दी जो कह रही थी कि उस गुफा मे ही जाओ, वही तुम्हे उन महात्मा के दर्शन-लाभ होगे। उस धूए को लक्ष्य बनाकर ब्रह्मचारीजी उधर ही चल दिए। जब उस कदरा के पास पहुचे तो उसमे एक तेजोमयी दिव्य मूर्ति को पद्मासन लगाकर ध्यानावस्थित बैठे हुए देखा। दो लकडियो पर मिट्टी बिछाकर उसपर भोजपत्र आस्तीर्ण करके उसपर ये तेजस्वी महात्मा आसन लगाकर बैठे हुए थे। इनकी मुद्रा बडी शान्त थी और ये निश्चेष्ट तथा निष्क्रिय थे। इनके प्राण की गति अत्यन्त सूक्ष्म थी। ऐसा मालूम होता था मानो ये किसी बडी गहन अवस्था मे पहुच गए हो। ससार के सभी कर्त्तव्य इनके समाप्त होगए थे। वे महापुरुष प्रकृति और उसके कार्यों 'स्थूल तथा सूक्ष्म' दोनो पर और सभी प्रकार की दूरियो पर विजय प्राप्त कर चुके थे। बडे निस्पृह और ससार से विरक्त होकर अपनी अन्तरात्मा या अपने प्यारे भगवान मे विलीन हुए से तादात्म्यभाव को प्राप्त हुए से प्रतीत हो रहे थे। हर्ष-शोक, मानापमान, हानि-लाभ, जय-पराजयादि किसी प्रकार का कोई भी द्वन्द्व इन्हे स्पर्श नही कर सकता था। प्राण, इन्द्रियो, मन और शरीर मे कही पर भी किसी प्रकार की चेष्टा दृष्टिगोचर नही हो रही थी। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो रहा था। श्री महाराजजी दो घटे तक शान्तभाव से आशाभरी दृष्टि से देखते रहे। पूज्य महात्माजी ने लगभग १२ बजे नेत्र खोले। ब्रह्मचारीजी ने खडे होकर साष्टाग दण्डवत् प्रणाम किया और बहुत देर तक भूमि पर ही पडे रहे। महात्माजी ने ब्रह्मचारीजी से सस्कृत मे पूछा, "उठो! कहा से और किस उद्देश्य से आए हो?" महाराजजी ने निवेदन किया, "आपके दर्शन करने आया हू।" महात्माजी ने कहा, "दर्शन तो होगए, अब जाओ।" ब्रह्मचारीजी ने पुन निवेदन किया, "योग मे मेरी बडी रुचि है। कई वर्ष से साधना तथा तपस्या कर रहा हू किन्तु विज्ञान अभी कुछ भी प्राप्त नही हुआ। समाधिकाल मे कुछ शून्य-सी अवस्था बनी रहती है। आत्मा तथा परमात्मा का कुछ भी ज्ञान आज तक मुझे प्राप्त नही हो सका है। अब तो मैं सर्व प्रकार से निराश होगया हू। यदि मुझ पर कृपा कर दे तो मेरा उद्धार हो सकता है और जन्म सफल हो जाएगा। मैं इसे आपका महान उपकार समझूगा और आपका सदैव ऋणी रहूगा। जब तक आपसे मुझे सन्तोषपूर्वक कुछ प्राप्त नही होगा मै आपके द्वार से नही जाऊगा। बडी भारी आशा लेकर मैं आपके चरणो मे उपस्थित हुआ हू।" इन शब्दो के साथ महाराजजी ने कुछ लड्डू श्रीचरणो मे रख दिए। महात्माजी ने कहा, "मै अन्न नही खाता। केवल कन्द, मूल, आलू, फलाहार ही खाता हू। इसलिए ये लड्डू तो आप उठा ले। आप ही इन्हे खा लेना। आज तो आप इन्हे ले आए किन्तु कल कौन लाएगा। आप कुछ देर यहा ठहरे। मैं आपका अभी आतिथ्य करता हू।" इन्होने कुछ कन्द गुफा के पास ही जमीन मे नीचे दबाकर रखे हुए थे। इनको इन्होने चिमटे से निकाला और धूनी की अग्नि मे दबा दिया। यह आलू के समान ही आकार के मालूम होते थे। इसके बाद वे स्नानादि के लिए चले गए। ब्रह्मचारीजी भी अपना सामान रखकर स्नान करने के लिए चल दिए। लगभग दो बजे के करीब महात्माजी ने इन कन्दमूलो को निकालकर छीला, कुछ ब्रह्मचारीजी को दे दिए और शेष स्वय खा लिए। इसके बाद महात्माजी ने इन्हे पास

वाली छोटी गुफा में विश्राम करने के लिए भेज दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल महात्माजी के श्रीचरणों में उपस्थित हुए और उनके आदेशानुसार रेत पर आसन बिछाकर बैठ गए।

'हिमालय का योगी' ग्रन्थ में
'प्रारम्भिक योग साधना' नामक
द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

तृतीय अध्याय

तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति

गुरुदेव से वार्तालाप—महात्माजी ने योग-मार्ग के काठिन्य और दुर्गमता की विशद व्याख्या की। कोई विरला ही इस मार्ग पर चल सकता है। इस पथ के पथिक प्राय मार्ग मे ही भटक जाते है। इस पथ पर चलते-चलते जब कभी भगवद्कृपा से कोई छोटी-सी विभूति मिल जाती है साधक उसी से चिपटकर बैठ जाते है और अपने यथार्थ लक्ष्य को भूल जाते है। ससार के भोगो से मानव कभी तृप्त नही होता। भोग एक मृगतृष्णा के समान है अत इनसे विरक्त होकर सन्तोष-धन को प्राप्त करने मे ही कल्याण हो सकता है और मानव जीवन के उद्देश्य को पूर्ण कर सकता है। मनुष्य का लक्ष्य भोग सग्रह नही किन्तु दुख से मुक्ति है। नचिकेता के समक्ष यमाचार्य ने भोगजन्य पदार्थ प्रस्तुत किए किन्तु उसने सबको ठोकर मारकर एक आत्म-विज्ञान ही मागा था। योग-मार्ग के पथिक की माग केवल आत्मविज्ञान और ब्रह्मविज्ञान ही होनी चाहिए, अन्य कुछ नही। परन्तु इस प्रकार की भावना अत्यन्त कठिन है। इसके लिए बहुत बडे बलिदान की आवश्यकता होती है। यदि आपका चित्त सासारिक भोगो से उपराम हो चुका है, तभी आप योग और आत्मविज्ञान सीखने के अधिकारी हो सकते हो। अब तक आप बहुत भटक चुके हो। आज आपका इधर-उधर भटकना शान्त हो जाना चाहिए। अब सभव है आपको इतस्तत भटकने की आवश्यकता न पडेगी। ब्रह्मचारीजी ने महात्माजी के चरण पकड लिए और नेत्रो से आसू बहाते हुए हाथ जोड कर निवेदन किया, "गुरुदेव! मै आपके उपकार को कभी नही भूलूगा। सदैव आपका कृतज्ञ रहूगा। जीवनपर्यन्त आपके आदेश का पालन करूगा। सर्वदा सावधानता-पूर्वक आपके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलता रहूगा। आज मैं श्रीचरणो मे आत्मसमर्पण करने मे अपना महान् गौरव मानता हू। किसी महान् पुण्य के परिणाम रूप ही आपकी कृपा लाभ हुई है। आपकी दया से मेरा कल्याण हो जाएगा। मैने विज्ञान प्राप्ति के लिए बहुत साधना की किन्तु अभी तक मुझे सफलता लाभ नही हुई।" गुरुदेव ने कहा, "पूर्वजन्म के योगभ्रष्ट हो और इस जन्म मे भी बाल्यकाल से ही यत्नशील हो। परमानन्दजी अवधूत ने कृपा करके आपको योग-मार्ग पर चला दिया था किन्तु आप फिर बीच मे इस पथ से भटक गए।" व्यासदेवजी ने निवेदन किया, "क्या आप इन अवधूतजी को जानते है? आपको यह कैसे पता चल गया कि मै काश्मीर मे उनके पास साधना करता रहा हू?" गुरुदेव किचित् मुस्कराए किन्तु कहा कुछ नही। ब्रह्मचारीजी ने विनीतभाव से पूछा, "महाराजजी! आपके आहार पर मुझे बडा आश्चर्य होता है। इसमे न अन्न है, न घी, दूध है न शाक। ईश कृपा से इनके अभाव मे भी आप स्वस्थ और दीर्घायु है।" इस पर गुरुदेव ने बहुत ही अच्छा उत्तर दिया, "धनिक

वहुत गरिष्ट भोजन करते है, फिर भी वे रोगी वने रहते हैं और अल्पायु होते हैं। वन-चर न अन्न खाते हैं न घी, और न दूध पीते हैं, न फल खाते है, तो भी वे कितने स्वस्थ और दीर्घायु होते है। योगी के दीर्घायुष्य तथा स्वास्थ्य के कारण है—अल्पाहार, अल्प-व्यवहार, अल्प निद्रा, अल्प भापण, अल्प परिश्रम, अल्प भोग, अल्प चिन्ता तथा अल्प कर्म।" व्यासदेवजी ने सप्रश्रय जिज्ञासा की, "महाराजजी, आप इतने एकान्त स्थान मे क्यो निवास करते है ?" गुरुदेव ने कहा, "एकान्त मे भोक्तव्य पदार्थों और विपयो के साथ सपर्क नही होता।" व्यासजी ने निवेदन किया, "गुरुदेव, इनकी स्मृति तो हो सकती है ?" गुरुदेवजी ने समझाया कि "मुमुक्षु योगी इन सव स्मृति-जन्य सस्कारो का असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा निरोध करता जाता है। निर्जन वन मे रहने से भोक्तव्य पदार्थो का प्राय अभाव ही रहता है। विशेप रूप से पदार्थ उपलव्ध नही होते हैं। पास न रहने से या सामने न आने से भोगने की इच्छा ही उत्पन्न नही होती, इसलिए इन्द्रिया, मन तथा बुद्धि सदैव शान्त रहती है। विपयो का सम्वन्ध न होने से या कम हो जाने से मन और वुद्धि के सव वाह्य व्यापार शान्त हो जाते है और अन्तर्मुख-वृत्ति वनी रहती है। वैराग्य के दृढीकरण का भी अच्छा अवसर मिलता है। जीवनकाल मे ही सव विपय-भोग अविकार-पूर्वक छूट जाते हैं। ज्ञान तथा वैराग्य पूर्वक ही त्याग होना चाहिए।" व्यासदेवजी ने पुन प्रश्न किया, "फिर तव तो ये कन्दमूल भी उपार्जन नही करना चाहिए।" गुरुदेव ने इस पर कहा, "यदि ऐसा न किया जाएगा तो यह आत्मघात की कोटि मे गिना जाएगा। यह तो सामान्य भोग है। इनके विना जीवन धारण करना ही कठिन है। यदि इतना भी न करता तो आपको लाभ कैसे होता ?" ब्रह्मचारीजी ने कहा, "महाराजजी ! इस प्रकार मे तो आप लाखो को लाभ पहुचा सकते हैं।" गुरुदेव ने उत्तर दिया, "यह साधन-चतुष्टय-सम्पन्न अधिकारियो के मिलने पर निर्भर है।" व्यासदेवजी ने प्रार्थना की कि महाराजजी, आप मुझे आत्म-विज्ञान के विपय मे भूमिका रूप मे कुछ वताने की कृपा करे। गुरुदेव ने आदेश दिया, "कथन मात्र से ज्ञान नही होगा। केवल इतना ही जान सकोगे कि आपको क्या ज्ञान करवाया जाएगा।" इसके पश्चात् पूज्य गुरुदेवजी ने सप्रज्ञात समाधि द्वारा क्या-क्या साक्षात्कार करवाया जाएगा, यह समझाते हुए कहा —

आत्मविज्ञान तथा ब्रह्मविज्ञान का उपदेश—सर्वप्रथम हम आपको अपने मनो-वल द्वारा ध्यान और समाधि मे प्रवेश करवाकर स्थूल शरीर के अन्दर प्रवेश करवाएगे। सपूर्ण शरीर के नस-नाडियो और सप्त-धातुओ इत्यादि का प्रत्यक्ष ज्ञान करवाएगे। आपको स्थूल शरीर का भली प्रकार साक्षात्कार हो जाएगा। आपके दिव्य-चक्षु खोलकर अन्तर्मुखी वृत्ति द्वारा आपको स्थूल शरीर के अन्दर के सव पदार्थो के दर्शन करवाए जाएगे। तव ही वैराग्य और ज्ञान की प्राप्ति होगी। यह ही मोक्ष का हेतु वन सकेगा। इसके पश्चात् आपको १० चक्रो, प्राणोत्थान तथा कुण्डलिनी उत्थान का साक्षात्कार करवाया जाएगा। आप इन सवके विज्ञान को देखकर आश्चर्य-चकित हो जाएगे। इसके अनन्तर १० प्रकार के प्राण का विज्ञान, इनकी अपने-अपने प्रदेश मे भिन्न-भिन्न क्रियाए, भिन्न-भिन्न रग-रूप और व्यापार का प्रत्यक्ष आपको होगा। स्थूल शरीर तथा प्राण का परस्पर घनिष्ठ सम्वन्ध है। प्राण के विना स्थूल शरीर जीवित नही रह सकता। जिस प्रकार स्थूल शरीर के लिए प्राण जीवन का हेतु है

इसी प्रकार तेज की भी शरीर मे प्रधानता है। तेज अग्निभूत का कार्य है। ये दोनो सघात को प्राप्त होकर इस स्थूल शरीर की स्थिति-स्थापना के हेतु हैं। शरीर मे पाकादि के सब कार्य इस तेज के द्वारा ही होते है। इसके अभाव मे या न्यूनता हो जाने से स्थूल शरीर निर्जीव सा हो जाता है। उपरोक्त विज्ञान इस स्थूल शरीर मे आप साक्षात् रूप से देखेगे। इसके उपरान्त आपको सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश करवाया जाएगा। यह मुख्य रूप से ब्रह्मरध्र मे स्थित है और गौण रूप से सम्पूर्ण स्थूल शरीर मे। इसके सब व्यापार रग रूप आदि दिव्य ज्योतियो का साक्षात्कार करोगे। इस सूक्ष्म शरीर मे आपको ११ तत्त्व दिखाई देंगे। ज्ञानेन्द्रिया, कर्मेन्द्रिया, पचतन्मात्रा (सूक्ष्मभूत), मन, बुद्धि, स्थूल भूत, इनके व्यापारो और सृष्टि की रचनादि का साक्षात्कार होगा। स्थूल और सूक्ष्म भूतो का और कार्य-कारण का साक्षात्कार भी आपको यही होगा। इसके अनन्तर आप हृदय प्रदेश मे कारण-शरीर मे प्रवेश करोगे। वहा पर आपको सूक्ष्म प्राण, अहकार, चित्त, जीवात्मा, प्रकृति और ईश्वर का व्यष्टि रूप मे प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। तदनन्तर आपको तीनो शरीरो से ऊपर उठाकर समष्टि पदार्थो का साक्षात्कार आकाश-मण्डल मे होगा और अन्त मे ३२ पदार्थो के कारण रूप प्रकृति मे ब्रह्म के व्याप्य-व्यापक भाव की प्रत्यक्षानुभूति होगी और आप पूर्णरूपेण कृतकृत्य हो जाओगे।

लगभग तीन घण्टे तक उपरोक्त ज्ञान के विषय मे गुरुदेव ने उपदेश दिया और सावधान होकर बैठने की आज्ञा दी। और कहा, अब आपको सप्रज्ञात समाधि द्वारा उपरोक्त पदार्थो का साक्षात्कार करवाया जाएगा।

सप्रज्ञात समाधि तथा कारण-कार्यात्मक प्रकृति-पुरुष का विज्ञान—श्री पूज्य गुरुदेव ने, सुखपूर्वक जिस आसन से बैठने का अभ्यास हो उसमे बैठने की आज्ञा दी। ब्रह्मचारीजी गुरुदेव के समीप ही सुखासन से शान्त मुद्रा मे बैठ गए और उनकी ओर त्राटक करके देखने लग गए। थोडी देर के पश्चात्, श्री गुरुदेव के अपने दाए हाथ के अगूठे और अगुलियो से व्यासदेवजी के मस्तिष्क को स्पर्श करने पर, इनके नेत्र स्वत ही बन्द होगए। इसके पश्चात् सभी बाह्य क्रियाओ का अभाव होगया। अपनी तथा गुरुदेव की भी सुध नही रही। मन, प्राण, इन्द्रिया बुद्धि सब शान्त हो गए। मूलाधार मे एक अलौकिक प्रकाश उत्पन्न हुआ जिससे सपूर्ण शरीर देदीप्यमान होगया और शरीर के भीतर का सब भाग प्रत्यक्ष होगया। इसके पश्चात् ब्रह्मरध्र से प्रकाश की दिव्य धाराए प्रवाहित होने लगी और स्थूल शरीर का विज्ञान प्राप्त होने लगा। शरीरस्थ सब पदार्थो का साक्षात्कार होगया। इस समय व्यासदेवजी को उस सब विज्ञान का साक्षात्कार हुआ जिसका सविस्तृत वर्णन इन्होने आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान ग्रन्थो मे किया है। ये सायकाल ५ बजे से १० बजे प्रात तक समाधिस्थ रहे। इन १७ घण्टो मे समस्त विज्ञान प्राप्त किया। पूज्य गुरुदेव ने अपने दाहिने हाथ की अगुलियो से सिर को थपथपाया और कहा, "ब्रह्मचारी! आपका आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान प्राप्ति का लक्ष्य पूरा होगया। आप उठो और अपने इच्छित गन्तव्य पथ पर जाओ। विज्ञान केवल इतना ही है जिसका आपको प्रत्यक्ष-रूपेण साक्षात्कार करवा दिया गया है। अब आप इसका एकान्त सेवन करके और मौनव्रत धारण करके दृढीकरण करे।"

समाधि से व्युत्थान—ब्रह्मचारीजी के नेत्र खुल गए। उनसे अश्रुधारा बहने लगी। उनके शरीर में एक प्रकार का सन्नाटा-सा छा गया था। वाणी गद्गद् हो गई थी। श्री गुरुदेव के चरणों में प्रणाम किया और उनके चरणारविन्दों को अपने नेत्र-जल से धो दिया। गुरुदेव ने कहा, "बेटा! यह अवसर तो रोने का नहीं है अपितु प्रसन्न होने का है। आनन्द और आह्लाद का है।" पूज्य गुरुदेव ने पुनः उन सर्व पदार्थों के विज्ञान को समझाया जिन्हें ब्रह्मचारीजी ने समाधिस्थ होकर देखा था। इस विज्ञान के पूर्वार्ध का व्यासदेवजी ने स्वरचित ग्रंथ 'आत्म-विज्ञान' में उल्लेख किया है। यह केवल व्यष्टि-विज्ञान के रूप में है और इसका सम्बन्ध केवल जीवात्मा से है। उत्तरार्ध समष्टि-विज्ञान का उल्लेख उन्होंने अपने 'ब्रह्म-विज्ञान' नामक ग्रंथ में किया है। श्री ब्रह्मचारीजी ने हाथ जोड़ और नतमस्तक होकर गुरुदेव से उनके चरणों में रहकर सेवा करने की आज्ञा के लिए प्रार्थना की। गुरुदेव ने आज्ञा नहीं दी क्योंकि वे किसी को भी अपने साथ नहीं रखते थे। व्यासदेवजी ने निवेदन किया, "आपने मुझ पर महान् उपकार किया है। मुझे कृतकृत्य किया है। मैं जन्म-जन्मान्तरों में भी आपके इस महान् ऋण को नहीं चुका सकूँगा। आप मेरे लिए साक्षात् भगवान् के रूप में अवतरित हुए हैं। मेरी वाणी में इतनी शक्ति नहीं है जिससे मैं आपके उपकार और गुणों का वर्णन कर सकूँ।" पूज्य गुरुदेव ने अन्त में इतना आदेश और दिया कि "कुछ वर्ष एकान्त में रहकर काष्ठ मौन व्रत करके इस विज्ञान को दृढ़भूमि करना और इन नियमों का पालन करना क्योंकि इनसे यह विज्ञान दृढ़भूमि हो जाएगा। जिस प्रकार बाड़ खेत की रक्षा करती है उसी प्रकार से ये नियम साधक की रक्षा करते हैं।" श्री पूज्य गुरुदेव ने जिन नियमों के पालन की आज्ञा दी थी वे निम्नलिखित हैं—

१. आलस्य और प्रमाद को त्यागकर श्रद्धा-भक्ति और प्रेम से इस विज्ञान को दृढ़ करना और प्रकृति-पुरुष के विवेक को दृढ़भूमि करके प्रकृति और इसके कार्यों के प्रति वैराग्य उत्पन्न करना।

२. अभिमान का त्याग करना। नम्र और विनीत भाव रखना। क्रोध का दमन करना और सदैव शान्त, गम्भीर, निश्चिन्त और प्रसन्न रहना।

३. युवती स्त्रियों के पास कभी एकान्त में मत बैठो। अष्ट प्रकार के मैथुनों से सदैव बचो।

४. गुरुजनों तथा सम्मानार्ह व्यक्तियों का सदा सम्मान करो। प्रत्यक्ष या परोक्ष में कभी उनकी निन्दा मत करो। महानात्माओं का सत्संग करो और ज्ञान तथा वैराग्य को दृढ़ करने का सदैव प्रयत्न करो।

५. परच्छिद्रान्वेषण कभी मत करो। आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने दोषों का पता लगाकर उन्हें दूर करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहो।

६. योगविद्या का उपयोग जीविकोपार्जन के लिए कभी मत करना। यदि कभी कोई योग-सिद्धि प्राप्त हो जाए उसका न तो कभी अभिमान करना और न कभी उसका प्रदर्शन करना।

७. योग-विद्या गोपनीय है, इसे सदा गोप्य रखना। किसी उत्तम अधिकारी को

ही प्रदान करना जिससे वह फलवती हो। सासारिक लोगो से विशेष सपर्क रखने की आवश्यकता नही। आवश्यक कार्य के अतिरिक्त अधिक पत्र-व्यवहार भी मत करना।

८ प्रतिदिन अथवा प्रतिसप्ताह अपना दोष निरीक्षण करते रहना चाहिए। एक मास मे कितने दोषो का निवारण हो सकता है इसका हिसाब रखना चाहिए। इससे शीघ्र ही दोषो का क्षय होने लगता है।

९ इन्द्रिया विषयासक्त न होने पावे। यदि ज्ञान और विचार से इनका दमन न हो सके तो हठ तथा बलपूर्वक इनका दमन करना चाहिए। बुद्धि के विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार, रागद्वेषादि का अहर्निश दमन करते रहना। मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, हर्ष-शोक, हानि-लाभादि द्वन्द्वो मे साम्यभाव रखना। अपनी मन शान्ति को कभी भी भग न करना। प्रत्येकावस्था मे शान्त तथा सतुष्ट रहने का प्रयत्न करना।

१० यमो तथा नियमो का पालन करने मे सदैव कटिबद्ध रहना क्योकि ये योग की आधारशिला हैं। नित्यप्रति अष्टाग योग का अभ्यास करना। धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा नित्यप्रति प्रकृति के कार्य-कारणात्मक पदार्थ, प्रकृति-पुरुष विवेक और ब्रह्मविज्ञान को दृढभूमि करना। परम वैराग्यवान् होकर मोक्ष मे स्थिर रहना। ये सब तुम्हारे ज्ञान और वैराग्य को दृढभूमि बना देगे और तुम्हारी रक्षा करेगे।

गुरुदेव का व्यक्तित्व—श्री गुरुदेवजी अत्यन्त सरल-स्वभाव थे। बहुत सरल सस्कृत बोलते थे। उनका विषय को समझाने का ढग बडा आकर्षक था। वाणी मे अलौकिक माधुर्य था। उनमे असीम वात्सल्य भाव था। स्नेह तथा प्रेमपूर्वक प्रत्येक बात को समझाते थे। त्याग, वैराग्य और विज्ञान की साक्षात् मूर्ति थे। वे निस्पृह, विरक्त तथा ब्रह्मज्ञानी थे और योगेश्वर थे। इनका शुभ नाम श्री आत्मानन्दजी था।

गुरुदेव से विदाई—श्री व्यासदेवजी ने पूज्य गुरु महाराजजी को उनकी आज्ञा का पालन करने तथा उनके बताए नियमो पर चलने का विश्वास दिलाया और निवेदन किया, "पूज्य महाराजजी! आपके श्रीचरणो से पृथक् होने को चित्त बिलकुल नही कर रहा है। आपके आदेश का पालन करने के लिए ही मैं आपसे विदा हो रहा हू। आप मुझे सदैव अपना आशीर्वाद देने की कृपा करते रहिएगा और मुझे इस मार्ग पर चलने के लिए बल, शक्ति, पराक्रम, बुद्धि और धैर्य प्रदान करने का अनुग्रह करते रहिएगा जिससे आपका कृपापूर्वक प्रदान किया हुआ यह विज्ञान दृढभूमि होकर परम वैराग्य द्वारा मोक्ष प्राप्ति करा सके।" श्री गुरुदेव की चरण-वन्दना करके तथा उनके श्रीचरणो की रज अपने मस्तक पर सादर लगाकर व्यासदेवजी ने आखो से अश्रुधारा बहाते हुए वहा से प्रस्थान किया।

थोडी देर चलकर श्यामगगा के किनारे एक पत्थर के नीचे गुफा मे ठहरने का विचार किया। दो दिन तक महाराजजी सोए नही थे अत इसी गुफा मे रात्रि को शयन किया। दूसरे दिन ब्रह्मचारीजी राजाराम के पास रहे और फिर वहा से गगोत्री चले गए। वहा जाकर गौरी कुण्ड पर एक गुफा मे निवास किया। यहा से कुछ दिनो के बाद पुन उत्तरकाशी लौट आए और तेखला मे ब्रह्मजी की कुटिया मे निवास किया।

अमृतसर के लिए प्रस्थान

काष्ठ मौन व्रत--कुछ दिन उत्तरकाशी रहने के उपरान्त श्री महाराजजी अमृतसर चले गए और वहां पर मोतीराम की बगीची में निवास किया। यहां रहकर काष्ठ मौन व्रत धारण किया।

कठिन साधना का कार्यक्रम--श्री ब्रह्मचारीजी ने अब नमक, मीठा, शाक, सब्जी तथा फल इत्यादि खाने का परित्याग कर दिया था। केवल मूंग की दाल उबाल कर उसमें थोड़ा-सा घी डालकर ही भोजन के रूप में लेते थे। नित्यप्रति रात्रि के दो बजे जग जाते थे और स्नानादि करके ठीक तीन बजे अभ्यास में बैठ जाते थे। दोपहर के १२ बजे तक पूज्य गुरुदेवजी ने जिन पदार्थों का विज्ञान करवाया था उनके समाधि द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन करने का अभ्यास करते थे। ऊहापोह और तर्क-वितर्क द्वारा उन पदार्थों का निरूपण करके बुद्धि को निश्चयात्मक बनाते थे। समाधि से व्युत्थान होने के पश्चात् अग्निहोत्र करते थे। तदनन्तर भोजन बनाते, भोजन करके विश्राम करते थे। इसमें लगभग तीन घण्टे लगते थे। तीन बजे से पांच बजे तक पुनः अभ्यास करते थे। इसके पश्चात् ५ से ६ तक नहर के किनारे भ्रमणार्थ जाते थे। इस समय चादर से मुख को ढककर चलते थे, किसी को देखने का प्रयत्न नहीं करते थे जिससे मन में किसी प्रकार का विक्षेप उत्पन्न न हो सके। इसके पश्चात् पुनः ६ बजे से १० बजे तक अभ्यास करते थे। प्रातःकाल के समान ही इस समय भी अनुभूत विज्ञान का प्रत्यक्षीकरण होता था। १० बजे समाधि से उठकर दूध गर्म करके पीते और साढे दस बजे शयन करते थे। उन दिनों महाराजजी केवल साढे तीन घन्टे ही सोते थे। छः मास तक काष्ठ मौन रखा। केवल पूर्णिमा के दिन ही खान-पानादि की व्यवस्था करने के लिए ही मौन खोलते थे। बैसाख के अन्त में इस मौन व्रत की समाप्ति हुई। अब लाला शिवरामदास के मकान पर नगर में जाकर रहने लग गए। कठिन तपस्या तथा अभ्यास के कारण अब मन सात्विक होगया था।

वरदान प्रदान--एक दिन डाक्टर धर्मचन्दजी महाराजजी से मिलने के लिए आए। ये कभी हुई के चौक में अंग्रेजी दवाइयों की दुकान करते थे। इनके अनन्य भक्त थे। इनके पुत्रियां तो कई थीं किन्तु पुत्रहीन थे। इन्होंने ब्रह्मचारीजी से निवेदन किया कि मुझे भी आपकी तपस्या का कुछ अंश मिलना चाहिए। मैं पुत्रहीन हूं अतः आप मुझे अपना वरदान रूप आशीर्वाद दीजिए जिससे पुत्रवान हो सकूं। महाराजजी ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, "तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। अपनी धर्मपत्नी के गर्भवती होने की सूचना मुझे दे देना। मैं अपने मनोबल से परिवर्तन करने का प्रयत्न करूंगा।" इन्होंने कई प्रकार के मानसिक प्रयोग किए। ईश-कृपा से धर्मचन्दजी के पुत्र उत्पन्न हुआ। सत्यनिष्ठ योगियों के वरदान सदैव सफल होते हैं।

अमृतसर में महाराजजी ने इस बार कई व्यक्तियों को आशीर्वाद दिए जो सभी सफल हुए। लाला जगन्नाथ भी महाराजजी के बड़े भक्त तथा श्रद्धालु थे। इनकी एक लड़की थी जो आठ वर्ष की आयु की थी। उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी और स्वभाव बड़ा चंचल था। वह भागकर महाराजजी के पास आई और अपना हाथ उनकी ओर फैलाकर कहा, "पण्डितजी, आप मेरा हाथ देखकर बताओ मेरी किस्मत

कैसी है।" यह अपने साथ अन्य कई बालको और बालिकाओ को ले आई थी। महाराजजी को हस्त-रेखाओ का ज्ञान तो था नही पर यू ही विनोद मे बच्चो के हाथ देखते रहे। जगन्नाथजी की अष्टवर्षीया पुत्री कैलाशवती का हाथ देखकर कहा, "तुम्हे और पदार्थ तो सब ठीक मिलेगे किन्तु पति तुम्हारा काना होगा।" समय पाकर जब वह विवाह के योग्य हुई तो उसका विवाह एक बडे धनाढ्य परिवार मे हुआ किन्तु उसकी एक आख खराब थी। जो बात विनोद मे कही गई थी वह भी सफल सिद्ध हुई।

लाला शिवसहाय का दौहित्र भोला एक बार महाराजजी के पास आकर अपना हाथ दिखाने लगा। इसने भी आसपास के बच्चो से सुना था कि ये हाथ देखते है। ब्रह्मचारीजी ने हाथ देखकर बताया कि तुम बहुत धनोपार्जन करोगे। उनका यह वरदान फलीभूत हुआ। यह बालक जब बडा होकर कारोबार करने लगा तो इसकी मासिक आय लगभग दस हजार थी और इसे लोग राजकुमार कहा करते थे। विदेशो से इसका बडा व्यापार होता था और एक बडा प्रख्यात उद्योगपति बन गया था।

इसी प्रकार लीलावती नाम की एक बालिका ने अपना हाथ महाराजजी को दिखाया, तब इन्होने उससे कहा, तेरा पति तेरी आज्ञा मे रहेगा। इसके साथ भी ऐसा ही हुआ। वह अब तक श्री महाराजजी का गुणगान करती रहती है।

इस काष्ठ मौन से महाराजजी की सकल्पशक्ति मे बहुत वृद्धि होगई थी, इसीलिए भविष्य की बाते बहुत बताया करते थे।

काश्मीर गमन—महाराजजी प्राय गर्मी के मौसम मे काश्मीर और सर्दी के मौसम मे अमृतसर आ जाया करते थे। इन दोनो स्थानो पर पूज्य गुरुदेव प्रदत्त विज्ञान को मौन व्रत धारण करके दृढभूमि करने मे सलग्न रहते थे। सर्दियो मे प्राय अन्न खाना छोड देते थे। केवल फल, दूध, शाकादि ही भोजन के रूप मे लेते थे। ग्रीष्म ऋतु के प्रारभ मे ही ये काश्मीर पधार गए और वहा जाकर काष्ठ मौन व्रत किया। पूर्ववत् सुफनी बाग मे ही निवास किया। कई वर्ष इसी प्रकार अमृतसर और काश्मीर मे मौन व्रत करके साधना करते रहे।

कैलाश तथा मानसरोवर यात्रा

पूज्य महाराजजी काश्मीर जाते हुए योगी अमरनाथ भसीन के पास रावलपिडी मे ठहरे। इन्ही दिनो मे स्वामी विशुद्धानन्दजी भी रामबाग मे ठहरे हुए थे। इन दोनो ने कैलाश तथा मानसरोवर की यात्रा करने का विचार किया। रावलपिडी से ये दोनो अमृतसर चले गए। एक दिन के लिए लाला शिवसहायमल के मकान पर निवास किया। उनकी सम्मति लेकर इन्होने अलमोडा के लिए प्रस्थान कर दिया। यही से कैलाश-यात्रा प्रारभ होती थी। अलमोडा पहुचकर कम्पनी बाग के पास एक कोठी मे ठहरे। यह कोठी बडे एकान्त स्थान पर थी। यहा रहकर कैलाश-यात्रा की पूरी तैयारी की और ६ जून को इस यात्रा पर जाने का निश्चय किया। अलमोडा से पाच पैसे प्रतिमील के हिसाब से चार नैपाली कुली कर लिए। यहा से गर्ब्यांग १५० मील है। मार्ग मे प्रति ८-१० मील पर पडाव आते है। इनमे मुख्य ये है — अस्कोट, धारचूला, खेला, इत्यादि। नित्यप्रति १५ मील चलते थे। अस्कोट और

धारचुला मे दो-दो दिन ठहरे । अस्कोट एक छोटी सी रिसायत थी । यहा का राजा बडो धार्मिक प्रवृत्ति का था । कैलाश जाने और आने वाले सन्त-महात्माओ का वडा सम्मान करता था । उन्हे अन्न-वस्त्र और रुपये वितरित किया करता था । इन्होने स्वामी विशुद्धानन्द तथा श्री ब्रह्मचारीजी को भी इस प्रकार की सहायता देनी चाही थी किन्तु इन दोनो ने ही स्वीकार नही की ।

बिछडे हुए राजपूतो का पुन धर्म-प्रवेश—धारचुला के कई राजपूत घराने ईसाई बन गए थे । वे पुन हिन्दू धर्म मे आना चाहते थे, किन्तु यहा के राजपूत उनसे बहुत घृणा करते थे इसलिए उन्हें पुन हिन्दू धर्म मे लेना नही चाहते थे । ये सब एकत्रित होकर श्री महाराजजी के पास आए और निवेदन किया, "महाराज, हम लोभ के वशीभूत होकर ईसाई बन गए थे । अपनी मूर्खता पर हमे वडा पश्चात्ताप हो रहा है । आप हमारे जाति-भाइयो को समझावे और पुन हमारा प्रवेश हिन्दू धर्म मे करवाने की कृपा करे । हमारे धर्म परिवर्तन मे यहा के हिन्दू हमसे वहुत घृणा करने लग गए है । हमारे साथ ये किसी भी प्रकार का व्यवहार रखना नही चाहते । हमारा यहा पर रहना बडा कठिन होगया है । हमारी शुद्धि करके आप पुन हिन्दू धर्म मे हमारा प्रवेश करवा दे । हम आपका वडा उपकार मानेंगे ।" महाराजजी के मन पर इनकी प्रार्थना का वहुत प्रभाव पडा और स्वामी विशुद्धानन्दजी से कहा, इन्हे शुद्ध करके हिन्दू धर्म मे सम्मिलित करना एक वडा पुण्य-कार्य होगा । ये गोभक्षक से गोरक्षक बन जाएगे । यहा पर ८-५ दिन ठहरकर इन्हे हिन्दू धर्म पर उपदेश देना चाहिए और एक बृहद् यज्ञ करके तथा इनसे प्रायश्चित्त करवाकर इन्हे पुन हिन्दू धर्म मे प्रविष्ट करना चाहिए । महाराजजी की वाते सुनकर ये सब वडे प्रसन्न हुए और एक दिन मे ही यज्ञ के लिए वहुत सी धनराशि एकत्रित कर ली । घी, सामग्री तथा समिधादि सब यज्ञ-साधन जुटा लिए । उन सब लोगो को तीन दिन तक व्रत रखवाया गया, जाप करवाया गया और हिन्दू धर्म की महत्ता पर तीन दिन तक उपदेश दिए गए । उन सबने मास तथा मदिरा का सेवन न करने की प्रतिज्ञा की । लगभग एक सौ नरनारियो की शुद्धि की गई । इसके पश्चात् एक वृहद् प्रीतिभोज किया गया जिसमे शुद्ध होने वाले ईसाइयो के अतिरिक्त सत्तर के लगभग हिन्दू परिवार भी सम्मिलित हुए थे । सबने एक ही स्थान पर वैठकर प्रीतिपूर्वक भोजन किया । इनके हिन्दू जाति मे प्रविष्ट होने पर सबने खुशी मनाई और उनके साथ फिर से रोटी वेटी का सम्बन्ध स्थापित होगया । श्री महाराजजी का दृष्टिकोण वडा उदार है । सकुचित भावनाए उन्हे कभी स्पर्श तक न कर सकी थी । उनकी धार्मिक तथा सामाजिक उदारता वडी उच्चकोटि को पहुची हुई थी ।

धारचुला मे जहा पर योगी सीयारामजी ने अपना शरीर छोडा था उस स्थान को देखने के लिए महाराजजी पधारे । सीयारामजी के साथ इनका वहुत पुराना परिचय था । उनके प्रति श्रद्धा भी थी । उस स्थान पर पहुचते ही इन्हे उनका स्मरण होगया और उन्होने जहा पर प्राणत्याग किए थे उस स्थान को देखने के लिए गए । सन्त सीयारामजी को हैजा होगया था । जो भक्त इनके साथ थे उन्हें भी इसी रोग ने धर दवाया था । धारचुला अलमोडा से एक सौ मील है । यहा से आगे जोयति का मार्ग बडा कठिन है । बडे विशाल पर्वतो के ऊपर चढना था । वडी कठिनाई के साथ

१६-१७ दिन मे गर्व्याग पहुचे। यहा से कुलियो को दाम चुकाकर वापस कर दिया, इससे आगे खच्चरो और घोडो का रास्ता था। यहा से लगभग एक सौ मील कैलाश था। गर्व्याग की ऊचाई लगभग १०-११ हजार होगी। यहा ऊचाई के कारण शीत बहुत होता है। गर्व्याग एक छोटा-सा गाव है। जनसख्या बहुत कम है। यहा के लोग तिब्बत से व्यापार करते है। क्षत्रियो की सख्या अधिक है। ये लोग धनाढ्य है। यहा पर एक डाकखाना भी है। गर्व्याग भारत की सीमा की अन्तिम चौकी है। यहा से कैलाश जाने के लिए प्राय यात्री एक सघ बनाकर जाया करते है, अत यहा पर इन्हें १०-१२ दिन तक रुकना पडा जिसमे सब यात्री इकट्ठे होकर यहा से कैलाश के लिए प्रस्थान कर सके। यहा से आगे लिपूलेक-लिपूधूरा नाम का एक अट्ठारह हजार फीट ऊचा पहाड है। इस पर्वत के उस पार तिब्बत तथा इस पार भारतवर्ष है। यह पर्वत दोनो देशो की सीमा पर है। ६-७ दिन मे एक सिंधी सेठ, एक बिहार का डाक्टर तथा ३-४ साधु एकत्रित हो सके। ये कुल मिलाकर ८-१० यात्री थे। उस ओर चोर तथा डाकुओ का बडा भय रहता था। इसीलिए यात्री एकत्रित होकर जाया करते थे। यहा से श्री ब्रह्मचारीजी तथा स्वामीजी ने दो-दो खच्चरे अपना सामान ले जाने के लिए तथा एक-एक घोडा सवारी के लिए किराए पर लिये। इससे आगे आबादी बहुत कम थी अत खाद्य पदार्थ यही से खरीद लिए थे। ऊपर पहाड पर सब सामान यही से जाता था। यही से एक पथप्रदर्शक भी साथ ले लिया। एक छोलदारी भी यही से ले ली। डाकुओ से आत्मरक्षा करने के निमित्त से बन्दूक, तलवार, पिस्तौल, बर्छी, कारतूसादि सब किराए पर साथ रखे। खच्चरो और घोडो के चालक तथा पैदल और घोडो पर जाने वाले मिलाकर कुल १६ व्यक्तियो का एक सघ बना। पहिला पडाव काली नदी पर किया। यह वहा से १० मील पर थी। वहा पर सायकाल ५ बजे पहुचे। रात्रि को सबने वही पर विश्राम किया। दूसरे दिन अट्ठारह हजार फीट की ऊचाई पर चढना था। मार्ग बडा दुर्गम था। पर्वत के ऊपर बर्फ जमी हुई थी। इसी पर इन सब यात्रियो को चलना था। प्रात काल जब चढाई प्रारम्भ की तो वर्षा होने लगी। इतना ही नही, उस समय बर्फ भी पडने लगी। बडी कठिनाई के साथ जैसे-तैसे लिपूधूरे की चोटी पर पहुचे। बर्फ पडने के कारण मार्ग का कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नही हो रहा था, इसलिए इन्हे पर्वत-शिखर पर ही रुकना पडा। चारो ओर बर्फ ही बर्फ दृष्टिगोचर हो रही थी। कही भी सूखी भूमि दिखाई न दे रही थी। तम्बू लगाने के लिए भी कोई स्थान वहा पर न था। नई बर्फ ने पुराना मार्ग आच्छादित कर दिया था। पथप्रदर्शक भी आगे जाने के लिए तैयार न था। किसी व्यक्ति अथवा खच्चर या घोडे के बर्फ मे दबकर मर जाने का भय था, इसलिए उसने सलाह दी कि आगे बढना भयोत्पादक है अत जैसे-तैसे यही पर पडाव डाला जाए। अब बर्फ को हटाकर छोलदारिया लगाने का विचार किया गया। बडी कठिनाई से बर्फ को हटाकर छोलदारिया लगाई गई। बर्फ हटाते-हटाते हाथ नि सज्ञ-से होगए थे। प्राय सभी यात्रियो को शिरपीडा ने घर दबाया। इनके पास आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा होम्योपैथिक आदि अनेक औषधिया थी। इस पीडा के निवारण के लिए विविध औषधियो का उपयोग किया गया किन्तु कोई भी सफल नही हुई। सभी यात्री इस पीडा से व्याकुल हो रहे थे। दुभाषिया बेचारा भी बडा परेशान था क्योकि कभी इस मौसम मे इतनी बर्फ नही पडी थी। और न कभी इस स्थान पर पडाव ही किया था। यह दुभाषिया प्राय यात्रियो के

यात्रियो के साथ प्रतिवर्ष आया करता था। उसके लिए यह एक अभूतपूर्व बात थी। उसने महाराजजी से निवेदन किया, "महाराजजी, इस प्रकार से वर्फ इस मौसम मे कभी नही पडी। मुझे ऐसा मालूम होता है कि हमारे सघ मे कोई पापिष्ठ व्यक्ति है। इसी से असमय मे यह भयकर हिमपात हो रहा है।" महाराजजी ने कहा, "पापी तो एक दो ही होगे किन्तु उनके पाप का दण्ड हम सबको भोगना पड रहा है।" सब यात्रियो ने अपनी-अपनी छोलदारियो मे स्टोव जलाकर शरीर को जैसे-तैसे गर्म करने के लिए चाय पी। महाराजजी का दुभाषिया उनकी सभी प्रकार की सेवा करता था। विस्तर बाधना, घोडे पर सवारी करवाना, टैंट लगाना, जल लाना, वर्तन साफ करना आदि सब काम वही करता था। उसका नाम कीर्तसिंह था। सदा प्रसन्न-वदन रहता था और बडा सज्जन था। बडी श्रद्धा से महाराजजी की सेवा-सुश्रूषा करता था। अपने जीवन के पूर्वभाग मे यह २६ साल तक कैलाश-मानसरोवर के मैदानो मे रह चुका था और डाके मारकर अपना निर्वाह किया करता था। यही उसकी आजीविका का मुख्य साधन था। एक सन्त के उपदेश ने इसके जीवन मे महान् परिवर्तन ला दिया और वह दानव से मानव बन गया। डाके डालना छोड दिया, धर्मपूर्वक आजीविकोपार्जन करने लग गया। अधार्मिक जीवन का परित्याग करके धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करने लग गया था। असत्य को छोडकर सत्यवादी और सरल बन गया था। अब यह जो सन्त कैलाश-मानसरोवर की यात्रा करने आते थे उनका दुभाषिया बनकर उनके साथ जाया करता था। जो कुछ वे दे देते थे उसी पर सन्तोष कर लेता था। प्रतिदिन एक रुपया तो यह लेता था और उसका भाई कचनसिंह आठ आना लेता था। यह खच्चर चलाता था। सभी यात्री तथा घोडे और खच्चर भूख के मारे व्याकुल हो रहे थे। शरीर निश्चल तथा निश्चेष्ट से हो रहे थे। कही घास या लकडी दिखाई नही देती थी जिसको जलाकर शरीर को गर्म किया जा सके या थोडा-बहुत भोजन तैयार किया जा सके। खाद्य-सामग्री तो सभी साथ थी किन्तु भोजन बनाने की बडी कठिन समस्या सामने थी। दाल-चावल बनाने का विचार किया किन्तु वे यहा के पानी से पकते ही न थे। जैसे-तैसे स्टोव पर बेसन के पकौडे बनाकर इनकी रसदार सब्जी बनाई गई और स्टोव पर ही जैसे-तैसे रोटिया तैयार की गई। उस अढाई मास की यात्रा मे प्राय एक ही प्रकार का भोजन किया। इसमे परिवर्तन करने का कोई साधन ही प्राप्त न था। निरन्तर पर्वत पर बडी भयकर वर्फ पड रही थी, अत रात्रि मे कोई भी शयन नही कर सका। वर्फ को झाडने के लिए थोडी-थोडी देर मे छोलदारियो को सोटी से हिलाना पडता था। प्रतिघण्टा छोलदारियो के वर्फ मे दब जाने का भय बना रहता था। स्वामी विशुद्धानन्दजी शीत के आधिक्य मे बहुत घबरा गए थे। इन्होने महाराजजी से कहा, "मेरा तो शीत के कारण रक्त जम गया है। सारा शरीर चेष्टाहीन होगया है। किसी भी प्रकार से इसे गर्म करने का उपाय करो, अन्यथा मेरी मृत्यु मुझे बहुत समीप दिखाई दे रही है।" कोई उपाय समझ मे नही आरहा था। श्री महाराजजी ने अपना तथा स्वामीजी का बिस्तर इकट्ठा करके दोनो विस्तरो को एक दूसरे के ऊपर बिछा दिया और इस प्रकार एक ही बिस्तर पर दोनो लेट गए। ब्रह्मचारीजी ने अपने शरीर की उष्णता से स्वामीजी के शरीर को गर्म किया किन्तु उन्हे रातभर नीद नही आई। यही अवस्था दूसरे यात्रियो की भी थी। सभी ओर से हाय-हाय की आवाज आ रही थी। दूसरे दिन १० बजे तक निरन्तर वर्फ गिरती रही। सभी यात्री बडे

व्याकुल होगए थे और वही से लौट जाने का विचार कर रहे थे। केवल महाराजजी दृढनिश्चयी थे। उन्होने कठिनाई तथा सकट से डटकर मुकावला करने का पाठ पढा था। जीवन मे वडे कठिन सघर्षों के घातो और प्रतिघातो को उन्होने सहा था। भगवान् मे उनका अटल विश्वास था। उनमे अद्भुत साहस और अलौकिक धैर्य था। विपत्ति मे घवराना वे जानते ही न थे। हसते-हसते सकटो को झेलना वे जानते थे। जिस काम को करने का एक वार निश्चय कर लेते थे उसे पूरा करके ही छोडते थे। जो वात एक वार कह देते थे उसे करके ही शान्ति करते थे क्योकि 'रामो द्विर्न विभाषते' पर सारा जीवन इन्होने अनुष्ठान किया था। फिर इनका उद्देश्य केवल यात्रा करना ही नही था। आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान के प्रदाता अपने पूज्य गुरुदेवजी को वे जहा भी हो उनकी खोज करके उनके दर्शन करना और उनके चरणो मे उनकी महती कृपा के लिए धन्यवाद अर्पण करना ही उनकी इस यात्रा का मुख्योद्देश्य था। अव वे अपना पग पीछे उठाना नही चाहते थे। खच्चर और घोडो के स्वामी भी पीछे लौटना नही चाहते थे क्योकि यात्रियो को ले जाना तथा वोझा ढोना ही उनकी आजीविका थी। इन सवने तथा दुभाषिए और गाजीपुर के एक डाक्टर ने महाराजजी के साथ जाने का निश्चय किया। धीरे-धीरे सभी यात्री मानसरोवर जाने के लिए तैयार हो गए। अव मार्ग ढूढने की वडी समस्या सामने उपस्थित होगई। पुरानी वर्फ पर नई वर्फ की कई-कई फुट तक एक मोटी तह जम गई थी, अव मार्ग का पता लगाना वडा कठिन था। किसी प्रकार भी गन्तव्य मार्ग का निश्चय करना एक जटिल समस्या वन गई थी। दो खच्चर वालो को मार्ग का पता लगाने और वर्फ हटाने के लिए आगे भेजा गया। इनके पीछे दो घोडे वालो को भेजा। जहा कही ये लोग वर्फ मे धसते हुए से मालूम होते थे वही पर सारा सघ रुक जाता था। उन्हे वर्फ से निकाल कर आगे वढते थे। कही-कही घोडे भी वर्फ मे धस जाते थे। उनका सामान उतारकर उन्हे वर्फ से निकाला जाता था। दोपहर के वारह वजे प्रस्थान किया। चार मील तक वरावर वर्फ मे ही चलना पडा। लिपू-धूरे की उतराई पर एक मैदान है। उसमे एक चश्मा वहता है। उसी के पास पडाव डालने का निश्चय किया गया। यहा पर घोडे और खच्चरो के लिए थोडा घास था। वेचारे भूखे पशुओ को आज कई दिन मे घास प्राप्त हो सका और यात्रियो को भी इसी स्थान पर शान्ति लाभ हुई। यही आकर सवको सुखपूर्वक नीद आई। यह स्थान लगभग पन्द्रह हजार फीट ऊचा था। आवादी यहा पर नही थी। यहा से प्रस्थान करके चौथे दिन तकलाकोट पहुचे। यहा पर व्यापारियो की एक मण्डी लगा करती है। इस समय तक केवल लालसिंह और नन्दराम ही यहा पहुच सके थे। ये दोनो व्यापारी थे। ये दोनो भाई वडे सज्जन थे। साधुओ के प्रति इनकी वडी श्रद्धा और भक्ति थी। सभी यात्री यहा पर दो दिन ठहरे। तकलाकोट की पहाडी पर एक वडा मन्दिर है। सभी इसके दर्शन करने के इच्छुक थे। छोलदारिया इसी मैदान मे लगा दी गई। लालसिह और नन्दराम से वहुत देर तक तिव्वत के सम्वन्ध मे वातचीत होती रही। ये दोनो वहुत अच्छी हिन्दी वोलते थे और इस प्रदेश के वडे धनाढ्य व्यापारियो मे इनकी गणना थी। इनसे पता चला कि मदिर मे एक वडे सन्त रहते है। दूसरे दिन ९-१० वजे के लगभग महाराजजी अपने दुभाषिए को साथ लेकर मदिर मे सन्तजी के दर्शनार्थ गए क्योकि ये सन्त हिन्दी नही जानते थे।

तकलाकोट मे एक योगी से भेंट—महाराजजी मंदिर के दर्शन करके सन्तजी के पास जाकर बैठ गए। ये महात्मा चौबीस घण्टे बारह महीने एक चौकी पर बैठे रहते थे। यह चौकी एक गज लम्बी तथा इतनी ही चौडी थी और ५-६ इंच ऊची थी। उसके ऊपर एक जंगला लगा हुआ था। इसी चौकी पर बैठकर ये महात्मा जाप, ध्यान और साधना करते थे। यह चौकी ही इनका पलंग और यह चौकी ही इनका घर था। इन सन्तजी के साथ महाराजजी का निम्नलिखित वार्तालाप हुआ —

महाराजजी—आप इस चौकी पर ही इतनी कठिन साधना क्यो कर रहे है ?

सन्तजी—मैने मन को दमन करने और इन्द्रियो पर अधिकार पाने के लिए यही उपाय उत्तम समझा है। यह मन बेलगाम घोडे के समान मनुष्य को जीवन भर परेशान करता रहता है। इसको जब तक किसी खास नियम मे न बाधा जाए तब तक यह वशीभूत नही होता।

महाराजजी—वश मे होने से क्या लाभ होगा ?

सन्तजी—सर्ववृत्तिनिरोध हो जाएगा और इसके सब व्यापारो का अभाव हो जाएगा और तब यह शान्त होकर स्थिर हो जाएगा। इसमे स्थायी रूप से एकाग्रता आने लगेगी और अपने स्वरूप मे इसकी स्थिति हो जाएगी।

महाराजजी—क्या आप अपना स्वरूप बता सकते हो, क्या और कैसा है ?

सन्तजी—लो, यह मिश्री का टुकडा है, इसे अपने मुह मे रख लो और मुह को बन्द कर लो। फिर मुझे बताओ कि इसका स्वाद कैसा है ? जिस प्रकार आप मुख और वाणी को खोले बिना इसके स्वाद का वर्णन नही कर सकते, इसी प्रकार स्वरूप स्थिति का वर्णन नही किया जा सकता। जैसे मानसिक चिन्ता के स्वरूप का वर्णन नही किया जा सकता, कितनी लम्बी और चौडी है, चौकोर या गोल है इत्यादि, इसी प्रकार स्वरूप स्थिति का वर्णन करना कठिन ही नही अपितु असभव है।

महाराजजी—इस स्थिति मे पहुच जाने पर विविध सिद्धिया प्राप्त हो जाती होगी। आपको भी ये सिद्धिया बहुत प्राप्त होगई होगी।

सन्तजी—हा, हुई तो थी किन्तु ये अत्यन्त विक्षेप का हेतु सिद्ध हुई।

महाराजजी—कैसे ?

सन्तजी—सकल्प बल से रोगियो के रोग दूर कर दिया करता था, इससे सदा उनका ताता बधा रहता था और ध्यानाभ्यास में बाधा पडने लगी।

महाराजजी—आप मनोबल से किस प्रकार काम लेते थे ?

सन्तजी—रोगी आकर दण्डवत् प्रणाम करते थे और मै अत्यन्त वात्सल्यभाव से शनै शनै पीठ पर बार-बार हाथ फेरता था और रोग को समूल नष्ट कर देता था। किसी प्रकार के औषधोपचार की आवश्यकता न होती थी। रोगी स्वस्थ होकर चला जाता था।

महाराजजी—क्या और भी कोई सिद्धि प्राप्त हुई है ?

सन्तजी—जहा तक आकाश या मैदान मे मेरी दृष्टि पहुचती थी वहा तक मै वृष्टि,

हिमपात तथा प्रचण्ड आधी को रोक देता था और मेरे लिए यह एक साधारण-सी बात थी।

महाराजजी—मेरे ऊपर भी यह कृपा करो। इस प्रकार की सिद्धियो की विधि बताने की कृपा करो जिससे मैं भी जनता का कुछ कल्याण कर सकू।

सन्तजी—(हसकर) जिस काम को मैं अपने लिए उपयोगी नही समझता उसे मैं आपको सिखाना भी ठीक नही समझता।

महाराजजी—जो काम एक के लिए हानिकर है वह दूसरे के लिए हितकर हो सकता है।

सन्तजी—यदि सिद्धियो की विधि बता भी दू तो मेरे समान मनोबल कहा से लाओगे ? मैं ७० वर्ष से साधना कर रहा हू। क्या आप भी ऐसा कर सकते हैं ?

महाराजजी—इस यात्रा को समाप्त करके ऐसा ही करूगा। यह आवश्यक नही है कि मुझे भी ७० वर्ष मे ही मनोबल प्राप्त हो। तीव्र-सवेगी शीघ्र भी प्राप्त कर सकता है।

सन्तजी—सुनो। तुम्हे मनोबल प्राप्त करने की विधि विस्तारपूर्वक बताऊगा।

महाराजजी—तिब्बत मे और भी बडे-बडे सन्त होगे। यदि आप बता दे तो उनके दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त हो जाए।

सन्तजी—हा, वे पहिले तीर्थापुरी की ओर रहते थे। वे तिब्बत निवासी नही है। भारतीय है। सस्कृत, हिन्दी और तिब्बती भाषा पर उन्हे पूर्ण अधिकार है किन्तु वे प्राय मौन रहते है।

महाराजजी—वे महात्मा ही मेरे पूज्य गुरुदेव है। ४-५ साल हुए, वे हरसिल पधारे थे। उन्होने मुझपर अपार कृपा की थी। मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हू। उनके उपकार को कभी भूल नही सकता।

सन्तजी—तब तो तुम मेरे छोटे गुरुभाई हो। उनसे बढकर सन्त तिब्बत, मानसरोवर तथा कैलाश मे कोई नही है।

महाराजजी—उनके दर्शन अब मुझे किस स्थान पर हो सकते है ? इस यात्रा का मेरा यही उद्देश्य है।

सन्तजी—अब उनके दर्शन होना कठिन है क्योकि वे दो वर्ष से लासा की ओर चले गए थे, तब से लौटे नही।

महाराजजी—वे तो भारतीय है, वे आपके गुरु किस प्रकार बन गए ? आपका साक्षात्कार उनसे कैसे हुआ ?

सन्तजी—विद्वान् योगी किसी भी देश का क्यो न हो, वह गुरु बन सकता है। महात्मा बुद्ध भी तो भारतीय ही थे। वे हमारे ही देश के नही अपितु सारे ससार के गुरुदेव थे। ससार मे सर्वाधिक सख्या उनके अनुयायियो की है। गुरु नानकदेवजी तिब्बतियो के गुरु है। आप तिब्बत को भारत से पृथक् क्यो समझते हैं ? यह तो भारत भू का ही एक भाग है। इन शब्दो के साथ इन्होने तिब्बती नमकीन चाय तथा सत्तू खाने के लिए देकर महाराजजी का आतिथ्य किया।

महाराजजी—(पच्चीस रुपये हाथ मे लेकर) यह आपकी भेट है।

सन्तजी—मैं एक रुपया ले लेता हू। इसे भी मदिर की भेंट करूगा, शेष चौबीस रुपये आप अपने पास रख ले।

महाराजजी—गुरुदेव की करनी और कथनी को हम लोग कभी नही पहुच सकते। वे सच्चे महात्मा है। दिव्य पुरुष है। उन्होने लोक-कल्याणार्थ ही जीवन-धारण किया है। कई वर्षो से तिब्बत को पवित्र कर रहे है। बडे ऊचे दर्जे के वीतराग और परमात्मज्ञानी है। उनका तप, त्याग, वैराग्य पराकाष्ठा को पहुचा हुआ है। अपने शरीर को तृण के समान समझते है। वास्तव मे ये विदेह है। आपके ऊपर सचमुच उन्होने बडी कृपा की है। ४ वर्ष हुए, वे गगोत्री हरसिल की ओर गए थे। उसके पश्चात् वे खोचरनाथ तीर्थापुरी और मानसरोवर की ओर रहे थे। अब दो वर्ष से लासा चले गए है।

उन महात्माजी से विदा लेकर महाराजजी और कीर्चासिंह दोनो वापस निवास स्थान पर पहुचे। स्वामी विशुद्धानन्दजी कुछ नाराज़ से हो रहे थे क्योकि ब्रह्मचारीजी को मदिर से लौटने मे बडा विलम्ब होगया था और भोजनादि की सारी व्यवस्था स्वामीजी को अकेले ही करनी पडी थी। महाराजजी ने इन्हे सारा समाचार सुनाया। रात्रि को सबने वहा विश्राम किया और प्रात काल कुछ अभ्यास किया और ८ बजे के लगभग यात्रा प्रारम्भ की। आज की यात्रा १४००० फीट की ऊचाई पर एक मैदान मे से थी। तकलाकोट से लेकर मानसरोवर और कैलाश तक मैदान ही मैदान है। कही-कही पर छोटी-छोटी-सी पहाडिया है। यहा से आगे कोई बस्ती नही है, केवल मदिर ही मदिर है। १५ मील यात्रा करने के पश्चात् एक स्रोत के पास छोलदारिया लगाई गई। यहा पर डाकू बहुत रहते थे अत सब बडे सावधान रहे। कीर्चासिंह स्वय पहिले डाकुओ का सरदार था। यह उनका चोरी करने और डाके-डालने का सारा रहस्य जानता था। अत उसने समझाया कि यदि कोई भिक्षादि मागने आए तो न दी जाए, क्योकि ये लोग भिक्षा के बहाने सारा भेद लेने आते है और रात्रि के समय चोरी करते है। इतने मे सामने से एक वृद्धा आती हुई दिखाई दी। कीर्चासिंह ने उसकी ओर सकेत करके महाराजजी को बताया कि यह अपनी युवावस्था मे घोडे पर सवार हो कर डाकुओ के साथ जाकर डाके डाला करती थी और अब भी यहा कुछ भेद लेने आ रही है। आज रात्रि मे कुछ न कुछ उपद्रव अवश्य होने की सभावना मालूम होती है। उस वृद्धा ने इधर-उधर फिरकर सबके तम्बुओ मे जाकर भिक्षा मागी। उसकी आखो से ऐसा मालूम होता था मानो वह कुछ खोज लगा रही है। उसकी दृष्टि बडी पैनी थी। महाराजजी ने भी उसे ४-५ लड्डू दिए, इसके बाद वह चली गई। तकला-कोट मे सन्तजी से परिचय हो जाने के बाद से कीर्चासिंह महाराजजी को गुरुजी कह कर पुकारने लगा। जब से उसने महाराजजी का मदिर के सन्तजी से वार्तालाप सुना और उस ओर के महान् सन्त का शिष्य होने का पता चला था और उसे यह मालूम हुआ था कि ब्रह्मचारीजी बडे विद्वान् महापुरुष, उच्चकोटि के सन्त और महात्मा है, तब से उसकी उनके प्रति विशेष श्रद्धा और भक्ति होगई थी। रात्रि को भोजनोपरान्त सब सुखपूर्वक सोगए किन्तु कीर्चासिंह बडा सतर्क तथा सजग रहा। उसे रात्रि मे चोरों के चोरी करने की आशका थी। उसका सन्देह ठीक ही निकला क्योकि रात्रि को लगभग

११ वजे चोर आए और चार खच्चरे चुराकर चलते वने। कीचसिह ने महाराजजी से उनकी टार्च मागी जिससे चोरो का पता लगाया जा सके। इसने चोरो का पीछा किया और उनकी ओर वन्दूक से कारतूस चलाने प्रारम्भ कर दिए। वे भयभीत होगए और खच्चरो को छोडकर भाग गए। इस इलाके मे यात्री जहा भी ठहरते थे वहा पर दो व्यक्ति रात्रि को पहरा दिया करते थे। चोरो का भय सदा वना रहता था। रात्रि को अन्धेरा रहता था जिससे चोरो को पता न चले।

मानसरोवर दर्शन—सारे यात्री ४ दिन मे मानसरोवर पहुच गए। जव मानसरोवर के तट पर पहुचे तव सूचना मिली कि डाकुओ का एक दल लूटने के लिए आ रहा है। यहा पर तिव्वत सरकार की ओर से यात्रियो की सुरक्षा का कोई प्रवन्ध नही था। अत लूट-मार तथा हत्याए प्राय होती रहती थी। मानसरोवर के किनारे पर डेरा डाला गया। डेरे से एक मील के लगभग एक मदिर था। कीचसिह ने मदिर के पास या मदिर मे ही जाकर ठहरने की सलाह दी क्योकि वहा मदिर की शरण मे जाने से लूट-मार का भय नही रहेगा, किन्तु महाराजजी को यह वात पसन्द नही आई। सदैव तो मदिर मे रहना नही था। वहा रहने से यात्रा कैसे हो सकती थी। मानसरोवर की परिक्रमा भी करनी थी अत भय के मारे मन्दिर मे वैठे रहने से तो काम नही चल सकता था और यात्रा का उद्देश्य भी पूरा नही हो सकता था। महाराजजी वडे निर्भीक महापुरुष हैं। भय नाम की कोई वस्तु आपने कभी जानी ही नही। उनकी वीरता, शौर्य, पराक्रम, तेज और ओज के सामने तो भय भी भयभीत होता था। उन्होने कहा कि हम डाकुओ का मुकावला करेंगे और यही इसी मैदान मे तीन दिन तक रहेगे। चौथे दिन ग्रहण का स्नान करके यहा से प्रस्थान करेगे। रात्रि मे दो व्यक्तियो ने पहरा दिया। अगले दिन एक घुडसवार ने आकर कीचसिह को सूचना दी कि यहा से थोडी दूरी पर डाकू ठहरे हुए हैं और तुम्हारे यात्रियो को लूटने के विषय मे परस्पर वार्तालाप कर रहे है। जव महाराजजी को इस वात का पता लगा तो वे क्रुद्ध हुए और कीचसिह को घोडे पर सवार होकर डाकुओ के पास जाकर यह कहने के लिए कहा कि यदि तुमने हमारे पडाव की ओर मुह भी फेरा तो तुम मे से एक-एक को भस्म कर दिया जाएगा। तुम मे से और तुम्हारे परिवार, पशु, घोडे, खच्चर आदि मे से एक भी जिन्दा न वच सकेगा। यदि तुम अपनी प्राण-रक्षा चाहते हो तो लूट-मार का नाम भी मत लो। इस सघ के मुखिया काशी लामा वडे प्रसिद्ध व्रह्मचारी योगी है। ये वडे निर्भय हैं। अपने योगवल से तुम सवको भस्मीभूत कर देगे। एक भी शेप नही रह सकेगा। कीचसिह से सव समाचार सुनने के पश्चात् डाकुओ के सरदार ने कीचसिह से कहा, क्या तुम्हे विश्वास है कि ये मुट्ठी-भर आदमी ४० प्रसिद्ध और शक्तिशाली डाकुओ का सामना कर सकेंगे ? कीचसिह ने कहा, तुम्हारी शक्ति उनके सामने कुछ भी नही है। वे वडे भारी योगी हैं। काशी लामा है। तुम तो केवल ४० ही हो, यदि सैकडो भी आ जाओ तव भी उनको किसी प्रकार की हानि नही पहुचा सकते। तुम लोग अपने प्राणो की रक्षा का प्रवन्ध करो। मैंने उनके योगवल को देख लिया है। उनके प्रभाव से ही मैं उनकी अवैतनिक सेवा कर रहा हू। उनसे कुछ भी नही लेता हू। वे वडे भारी महात्मा हैं। वालव्रह्मचारी हैं। महान् योगी है। उन्हे वहुत सिद्धिया प्राप्त हैं। तुम

चलो और उनसे क्षमा-याचना करो, अन्यथा तुम सपरिवार और पशुओ सहित नष्ट हो जाओगे। कीचसिह की बाते सुनकर उनके प्राण निकलने को होगए। सभी बडे भयभीत होगए। उनकी स्त्रिया हाथ जोडकर कीचसिह से कहने लगी, इन सब की बुद्धि नष्ट होगई है। कभी महात्माओ को भी लूटा जाता है? उनकी सेवा करनी चाहिए। उन्हे भेट देनी चाहिए। इन सबको महात्माजी के पास जाकर अपने कुविचारो के लिए क्षमा-याचना करनी चाहिए। इनकी रक्षा का केवलमात्र यही उपाय है, अन्य नही। इस पर वे सभी डाकू एक-दूसरे का मुह ताकने लगे। कुछ निर्णय नही कर पाए कि अब उनका क्या कर्त्तव्य है।

डाकुओ की स्त्रियो की क्षमा-याचना—जब सभी डाकू किकर्त्तव्यविमूढ से होकर खडे थे तब उनकी स्त्रिया आगे आई और माफी मागने के लिए तैयार हो गई क्योकि उन्हे इस बात का विश्वास था कि महात्मा लोगो की स्त्रियो पर विशेष कृपा होती है। उन पर वे कभी क्रोध नही करते। वे हमे अवश्य क्षमा प्रदान करेगे। इस विश्वास और श्रद्धा से वे उनसे क्षमा मागने के लिए चल दी। इनमे से ४-५ स्त्रिया अपने बच्चो को साथ लेकर और महाराजजी के चरणो मे भेट रूप से एक वर्तन मे चौरी गाय का दूध, एक गर्म वस्त्र तथा २१ तिब्बती टके साथ लेकर क्षमा-याचना के लिए चल दी। इसी बीच मे कीचसिह ने जाकर सब समाचार महाराजजी से निवेदन कर दिया था। महाराजजी रेत के एक बडे चबूतरे पर बैठ गए और साथी भाई भी सब उनके आस-पास आकर बैठ गए। दो बजे के लगभग डाकुओ की स्त्रिया वहा पहुची। उन्होने २-३ सौ फीट की दूरी से ही साष्टाग दण्डवत किया और भूमि को नापती हुई गद्दी के पास पहुची। यहा पहुचकर वे बहुत देर तक भूमि पर ही लेटी रही। कीचसिह ने निवेदन किया कि जब तक महाराजजी आप स्वय उठकर इनकी पीठ पर आशीर्वादात्मक हाथ नही फेरोगे तब तक ये जमीन पर से नही उठेगी। ब्रह्मचारीजी ने दयाभाव से ऐसे ही किया। ये देविया उठकर बैठ गई और अपनी भाषा मे अपने आदमियो के अपराधो की क्षमा-याचना की—"हमारे आदमियो ने बडा अपराध किया है। आप भगवान् हैं। अवतारी पुरुष हैं, दयावान है, अब हम आपसे प्रार्थना करती है कि आप हमे अपनी दया की भिक्षा दीजिए और हमारे अपराधो के लिए क्षमा प्रदान कीजिए। महात्मा सदा ही अवलाओ पर दया करते आए है। आप हमे क्षमा करे। आप हमे वरदान दीजिए कि हमारे सब घरवाले, बच्चे, आदमी तथा पशु आदि सब ठीक रहे।" वे उठी और जो सामान लाई थी सब महाराजजी को भेट किया, किन्तु उन्होने यह भेट स्वीकार नही की और कहा कि मै डाकुओ की भेट कभी स्वीकार नही किया करता। कीचसिह ने कहा कि आप यह भेट उन्हे वापस न करे। हम लोगो को दे दीजिएगा। यदि आप इस भेट को स्वीकार नही करेगे तो इन पर इसका अच्छा प्रभाव न पडेगा। वेचारी निराश हो जाएगी। ये समझेगी कि आपने उन्हे प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद नही दिया। महाराजजी ने भेट स्वीकार कर ली और उन्हे आशीर्वाद देकर प्रसाद रूप मे मेवा और मिठाई दी। इनकी छोलदारी मे स्टोव जलता देखकर वे आपस मे कहने लगी कि देखो, महाराजजी ने अपने योगबल से पानी से आग जला रखी है। इससे ये बडी प्रभावित हुई। घूम-फिरकर सब चीजे देखी और विविध प्रकार के पदार्थ देखकर

अत्यन्त आश्चर्यचकित होगई। इन्होने महाराजजी को विश्वास दिलाया कि जब तक आप मानसरोवर पर विराजेंगे तब तक हम अपने आदमियो को आपकी रक्षार्थ भेजेंगी। इन शब्दो के साथ ये स्त्रिया लौट गई।

डाकुओ को क्षमा प्रदान—आगामी दिवस इनके आदमी भी विभिन्न प्रकार की भेंटे लेकर उपस्थित हुए। ब्रह्मचारीजी पूर्ववत् अपनी गद्दी पर विराज रहे थे। इन डाकुओ ने अपने घोडे तथा भेंट का सामान कुछ दूरी पर रख दिया और स्वय दण्डवत प्रणाम करके महाराजजी से क्षमा-याचना की। योगीराजजी ने इन्हे भी क्षमा प्रदान की। यह सब तिब्बती भाषा मे बातचीत करते थे। महाराजजी का दुभाषिया सब बाते जैसी की तैसी अनुवाद करके उनको सुनाता जाता था। डाकुओ ने महाराजजी से निवेदन किया कि इधर डाकुओ का बडा भय रहता है इसलिए हमने आपकी सुरक्षा के लिए ४-५ आदमियो को नियत कर दिया है। यह पहरेदार का काम करेंगे। महाराजजी ने कहा, हमे किसी पहरे की आवश्यकता नही है। हम स्वयमेव अपनी रक्षा कर सकते है। यह लोग कई घटे तक वहा ठहरे और सब कुछ भली प्रकार से देखते रहे। अब इनका सब भय जाता रहा था। ये लोग सायकाल लौट गए और अगले दिन दूध लेकर आए। महाराजजी सिद्ध पुरुष है। इनके व्यक्तित्व का प्रभाव पडे बिना नही रहता। इनके अन्दर पत्थरो को पिघला देने, कठोर हृदयो को कोमल बना देने, हिंस्र जीवो को पालतू बना देने, पापियो को पुण्यात्मा बना देने, दुराचारियो को सदाचारी बनाने और नास्तिको को आस्तिक बनाने की अलौकिक शक्ति है। जो डाकू इनके डेरे मे डाका डालने की योजना बना रहे थे और अपनी शक्ति का बडा दम्भ कर रहे थे वे सब इनके योगबल के सामने भीगी बिल्ली के समान आचरण करने लगे और सब ने इनके चरणारविन्द मे शतश प्रणाम करके भूरि-भूरि क्षमा-याचना की और इनके परम श्रद्धालु सेवक बन गए।

मानसरोवर पर चन्द्र और सूर्य ग्रहण—जिन दिनो महाराजजी और उनके साथी मानसरोवर पर थे उन्ही दिनो चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण लगे। इस पर्व पर मानसरोवर पर स्नान करने का विचार था। चन्द्रग्रहण के अवसर पर मानसरोवर की परिक्रमा की गई और फिर सूर्यग्रहण का स्नान करके कैलाश यात्रा प्रारम्भ की। चन्द्रग्रहण रात के ११ बजे समाप्त हुआ। महाराजजी ने मानसरोवर मे स्नान करते समय उन सभी भक्तो के नाम से गोते लगाए जिन्होने इसके लिए इनसे निवेदन किया था। रात्रि का समय, शीत प्रधान प्रदेश, लगभग पन्द्रह हजार फीट की ऊचाई पर अत्यन्त शीतल जल मे स्नान करना कोई सहज काम न था। इनका शरीर गोते लगाते-लगाते निश्चेष्ट और नि सज्ञ-सा होगया। कीर्तसिह तथा अन्य साथी यात्रियो ने इधर-उधर से सूखा हुआ गोबर एकत्रित किया और जैसे-तैसे आग जलाकर इनके शरीर को गर्म किया। इसके पश्चात् वे थोडा बोलने लगे। रक्त का सचार होकर शरीर का नीलापन दूर हुआ। इसके पश्चात् कपडे पहने और चाय पी। तत्पश्चात् शरीर की स्थिति पूर्ववत् हुई। पन्द्रह हजार फीट की ऊचाई पर रात्रि के समय अत्यन्त शीतलजल मे इतने गोते लगाना कोई सुगम कार्य न था। किन्तु युवावस्था मे मनुष्य मृत्यु से भी टक्कर लेने के लिए समुद्यत हो जाता है। दूसरे दिन सारे सघ ने मानसरोवर की परिक्रमा प्रारम्भ की।

डाकुओं से चोरी न करने की प्रतिज्ञा करवाना—जो डाकू महाराजजी के पास क्षमा-याचना करने आए थे उन्होंने रक्षार्थ चार घुड़सवार भेजने के लिए कहा था, किन्तु ब्रह्मचारीजी ने उस कार्य के लिए निषेध कर दिया था, तो भी ४ चार सवार रक्षार्थ आगए। महाराजजी ने उनके हाथ में मानसरोवर का जल देकर प्रतिज्ञा करवाई कि वे भविष्य में कभी भी चोरी या डाके नहीं डालेंगे। परिक्रमा करते हुए जब डाकुओं के डेरे के पास पहुँचे तो उन सबको उपदेश देकर हाथ में जल दिया और उनसे भी डाके न डालने की प्रतिज्ञा करवाई। ये लोग प्राय सभी दुष्ट प्रकृति के होते हैं। जीवन भर स्नान करने का तो नाम ही नहीं जानते। कच्चा मास भक्षण करते हैं। उनके शरीर से दूर से ही दुर्गन्ध आती है। इनके पास खड़ा होना असभव है। इस प्रदेश में अन्न कम उत्पन्न होता है अत बहुत महगा बिकता है। वस्तु-विनिमय ही व्यापार का एक साधन है। ये लोग भारतीय व्यापारियों को ऊन, नमक, सुहागादि देते हैं और उनसे अन्न तथा दूसरी आवश्यक वस्तुएं लेते हैं। उस समय यहा के आठ टके भारत के एक रुपये के बराबर समझे जाते थे। तिब्बत में चादी बहुत सस्ती थी अत भारतीय व्यापारी सहर्ष उन टकों को भारत में लाकर उन्हें गला कर और उनकी चादी बनाकर महगे दामों पर बेचते थे।

मानसरोवर परिक्रमा—मानसरोवर की परिक्रमा करते हुए मार्ग में एक छोटा सा मदिर आया। उसमें गुरु नानकदेवजी की स्वर्णनिर्मित प्रतिमा थी। इसके पास ही बाला तथा मरदाना की प्रतिमाएं थी। ये तीनों प्रतिमाएं आदमकद थी और तीनों आसन लगा कर बैठी हुई थी। उस मदिर के पुजारी पक्के से रग के थे और छोटे कद के थे। उनसे पता चला कि गुरु नानकदेव उस पुजारी के गुरु के गुरु थे। इसकी आयु उस समय सौ वर्ष से ऊपर की थी। श्री गुरु नानकदेवजी मानसरोवर पर कई मास तक आकर रहे थे। उनके साथ बाला और मरदाना भी थे। उसी समय इस मदिर में उस स्वर्ण निर्मित प्रतिमा की स्थापना हुई थी। ये बहुत ऊंचे दर्जे के सन्त थे। बड़ी महान आत्मा थे। तिब्बत के सभी लोग उन्हें अपना गुरु मानते हैं। यहा पर बौद्ध-धर्म प्रचलित है। भाषा-भेद अवश्य है किन्तु तिब्बत तथा भारत की सभ्यता में परस्पर अत्यधिक सामजस्य है। यह पुजारी भी एक बार भारतवर्ष में अमृतसर स्थित गुरु-द्वारे के दर्शन करने गया था।

मानसरोवर की परिक्रमा में आठ मदिर हैं और लगभग २२ छोटी बड़ी नदियां मानसरोवर में आकर गिरती हैं। मानसरोवर का घेरा लगभग ७०-८० मील है। यह झील अण्डाकार है। इसका जल निर्मल तथा नीलवर्ण का है। स्थान बड़ा रमणीक है। किनारे पर कई स्थानों पर बड़ी दलदल भी है। दो सौ मील के घेरे में एक बड़ा निम्न मैदान है। इसी के बीच मानसरोवर झील थी। यह मैदान चारों ओर से बड़े-बड़े विशाल हिमाच्छादित पर्वत-मालाओं से घिरा हुआ था। यहा पर बहुत से जगली घोड़े फिरा करते थे। ये पालतू नहीं थे। ये बड़ी तीव्र गति से दौड़ते थे। ये बड़े सुन्दर थे। इनका डील-डौल बड़ा आकर्षक था। सरोवर के किनारे पर घास दो इंच लम्बी सी उगती है, उसी को चरा करते हैं। यही इनकी उदरपूर्ति का साधन है। किन्तु उस घास में बहुत शक्ति होती है, भेड़, बकरियां, खच्चर तथा चौरी गायें इसे खाकर बहुत मोटी और बलवान हो जाती हैं।

महाराजजी का दलदल मे फसना—महाराजजी का घोडा वहुत चुस्त और चालाक था। शान्ति उसमे नाम मात्र को भी न थी। सव घोडो से आगे रहता था। जब महाराजजी उस पर सवार होते थे तव उन्हे वहुत तग करता था। वडी कठिनाई से उस पर बैठा जाता था। मानसरोवर के किनारे यह एक दलदल मे फस गया। महाराजजी के पैर भी घुटनो तक दलदल मे फस गए। यहा से निकलना वडा कठिन होगया। कचनसिंह ने दो रस्से फेके और महाराजजी से निवेदन किया कि आप एक रस्सा घोडे के गले मे वाध दें। ऐसी मजवूती से वाधे जिससे वह खुलने न पाए और दूसरा रस्सा आप जोर से पकडकर दलदल के ऊपर लेट जाए। सर्वप्रथम हम आपको खीच लेते हैं। जब आप किनारे पर आ जाएगे तव घोडे को खीच लेंगे। महाराजजी को वडी कठिनाई से दलदल मे से निकाला गया और घोडे को निकालने मे तो कई घण्टे लग गए। ब्रह्मचारीजी ने अपने कीचड मे सने हुए कपडे उतारे और सरोवर मे स्नान किया। कीचसिंह ने इनके वस्त्र धोए। घोडे को भी स्नान करवाया गया। अव इस स्थान से लगभग आधा मील दूरी पर पडाव डाला। प्राय १० वजे भोजन करके यात्रा प्रारभ की जाती थी और सायकाल पाच वजे पडाव डाल दिया जाता था। इस यात्री सघ मे एक डाक्टर था जो प्राय महाराजजी की शक्ति का उपहास किया करता था और इन्हे कुश्ती के लिए ललकारता था। एक दिन दोनो मे कुश्ती प्रारभ होगई। महाराजजी ने वात की वात मे डाक्टर को पछाड दिया। लज्जित होकर उसने कहा, "मैं सावधान नही हो सका था अत दुवारा कुश्ती लडी जाए।" महाराजजी ने दुवारा उसको पछाडने मे एक मिनट भी नही लगाया। तुरन्त उसे अपने कधो पर उठाकर जमीन पर चित्त पटक दिया और उस पर चढकर वैठ गए। डाक्टर ने अपनी पराजय स्वीकार की और उनसे क्षमा-याचना की।

मदिर तथा उनमे पूजा—तिव्वत के लोगो मे स्नान करने का रिवाज नही है। महाराजजी के साथी यात्री नित्यप्रति स्नान करते थे। तिव्वती इन सवका तमाशा देखा करते थे। सभी यात्री स्नानोपरान्त वौद्ध मदिरो के दर्शन करने जाते थे। कई मदिरो मे विष्णु और महाकाली की मूर्तिया भी थी। इन मदिरो मे भारतीय ढग से पूजा होती थी। मूर्तियो के आगे एक मच-सा वना हुआ था। इस पर पूजा-सामग्री रखी जाती थी। कई मदिरो मे पुस्तकालय भी थे तथा कई मदिरो मे वहुत वडे-वडे घी के दीपक जला करते थे। ये दीपक चौवीस घटे जलते ही रहते थे। अनेक मदिरो मे गौशालाए थी। इनमे चौरी गाय के दूध से घी तैयार किया जाता था। तक्र वना कर वडे-वडे हौजो मे भरकर रखी जाती थी। इसको सुखाकर इसे खाने के काम मे लाया जाता था। तिव्वत सरकार की ओर से प्राय प्रत्येक मदिर मे गाय, भेड तथा वकरिया दान रूप से दी जाती थी। सत्तू, चाय आदि सामान भी राज्य की ओर से प्रदान किया जाता था। तिव्वत मे सरकार उस समय लामा साधुओ की ही थी। मदिरो मे लामा साधु ही पुजारियो का काम करते थे।

रीति-रिवाज—भारतीय ग्रन्थो के तिव्वती भाषा मे अनुवाद यहा पर अनेक स्थानो पर मिलते है। महाराजजी ने स्वय महाभारत और रामायण के तिव्वती भाषा मे अनुवाद सुने थे। भारत के समान ही यहा के मदिरो मे रुपये-पैसे चढाए जाते हैं। मन्दिर प्राय मकानो के समान ही वनाए जाते हैं। छते समतल होती है। उन पर

किसी प्रकार का गुबज या कलश आदि नही होता है। इससे जब छत पर वर्फ जमा हो जाती होगी तो उसे उतारने मे सुविधा होती होगी। कई मन्दिरो मे स्त्रियो का प्रवेश निषिद्ध है। वहा पर साधु मास भक्षण नही करते, किन्तु गृहस्थी करते है। प्राय कच्चा मास भक्षण किया जाता है क्योकि उसे पकाने के साधन लकडी, कोयला आदि उपलब्ध नही है। वहा पर बकरी, भेड, गाय आदि का सूखा गोबर ही पकाने के काम मे लिया जाता है। गृहस्थी प्राय बकरी और भेडो के बालयुक्त चमडे के चोले धारण करते है। ग्रीष्म ऋतु मे तो ये लोग चमडे का भाग अन्दर कर लेते है और शीतकाल मे बालो का। ये बहुत गदे रहते है। न कभी स्नान करते है और न कपडे धोते है। उनके पास से बडी दुर्गन्ध आती है। इनके पास खडे होने को तबीयत नही चाहती। जिस गृहस्थी के मकान पर गाय, बैल, बकरी, भेड आदि जानवरो की खोपडिया जितनी अधिक टगी हुई मिलती थी, वही सबसे अधिक धनवान् समझा जाता था। अन्न की उपज वहा बहुत कम होती है। नदियो के किनारे कही-कही जौ और मटर पैदा होते है। भारतवर्ष मे व्यापार की मडियो मे तिब्बती व्यापारी ऊन, पशम, साभर नमक तथा सुहागा आदि बेचने के लिए ले जाते है, उनके बदले मे अपनी आवश्यकता का सामान लाते है। कभी-कभी गाय, भेड, बकरी, घोडे आदि भी ये लोग बेचते है और इनके बदले मे प्राय अन्न ही लेते है क्योकि तिब्बत मे अन्न बहुत ही कम उत्पन्न होता है। उस प्रदेश मे तकलाकोट, सानमा तथा गारतो की मडिया प्रसिद्ध है। ये मण्डिया जुलाई से अगस्त तक लगती है। इनमे तिब्बती और भारतीय व्यापारी एकत्रित होते है और परस्पर व्यापार करते है।

मानसरोवर झील—मानसरोवर से गगा नामक एक नदी निकलती है। यह चार-पाच मील की दूरी पर राक्षस-ताल मे जाकर गिरती है। यह ताल प्राय सूखा ही रहता है। जब कभी किसी वर्ष वर्फ अधिक पडती है और इसके परिणामस्वरूप मानसरोवर मे जल अधिक बढ जाता है तब उसमे से निकल कर जल राक्षस-ताल मे चला जाता है। मानसरोवर और राक्षस-ताल के बीच मे एक छोटी-सी पहाडी है, वही इन दोनो के बीच मे किनारे का काम देती है। मानसरोवर का सारा मैदान लगभग २०० मील के लगभग होगा। किन्तु यह झील अस्सी मील के लगभग होगी। यह अण्डाकार बनी हुई है। इसका जल अत्यन्त निर्मल, मधुर और स्वादिष्ट है। किनारे पर कही-कही सिप्पिया पडी रहती है किन्तु मोती कही दिखाई नही देते थे। यहा पर एक प्रकार का पक्षी होता है। इसका आकार-प्रकार जलमुर्गियो से मिलता-जुलता होता है। इनके जोडे घूमते हुए इतस्तत दिखाई देते है। प्राय ये दो रग के होते है। नीलिमा को लिए हुए श्वेत रग के तथा मोतिया रग के। ये रात्रि मे उडकर आसपास की कदराओ मे चले जाते है। इन्ही को यहा के लोग हस कहते है। राक्षस ताल नामक झील लगभग १५० मील लम्बी और चौडी है। इसके किनारो पर कही-कही का जल कडवा और खारा है। यह झील मानसरोवर से बडी है किन्तु मानसरोवर का दृश्य अधिक सुन्दर और मनोरम है। राक्षस ताल झील का बहुत कुछ भाग सूखा भी रहता है। उस सूखे भाग पर भेड तथा बकरिया प्राय चरा करती है। यहा पर भेड और बकरिया बहुत होती है। इनकी ऊन बडी नर्म और कोमल होती है। बकरियो का कद प्राय छोटा होता है। इसलिए इस प्रदेश मे

लाखो मन ऊन और पशम पैदा होती है। यहा पर भी अनाज की कमी रहती है, इसलिए लोग मास भक्षण करके अपना निर्वाह करते है। चौरी गाय यहा पर सवारी और बोझा ढोने के काम आती है। इनके बाल भी ऊन का काम देते हैं। इनके मरने पर इनकी पूछ काट लेते है जो मन्दिरो, शुभ कार्यो अथवा राजा-महाराजाओ के चवर बनाने के उपयोग मे लाई जाती है। इसकी सवारी घोडे-खच्चरो की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है क्योकि ऊची-ऊची पहाडियो पर भी लेकर चढ जाती है। मानसरोवर की परिक्रमा करते समय महाराजजी ने तिब्बतियो से बहुत से पुखराज, नीलम तथा पन्ने खरीदे थे। तिब्बत की स्त्रिया चादी के आभूषण बहुत पहनती हैं। ये अपनी ओढनियो पर अनेक प्रकार के आभूषण पिनो से टाक कर पहनती है। केवल धनाढ्य परिवारो की स्त्रिया ही इस प्रकार के जेवर पहनती हैं। मानसरोवर की परिक्रमा एक सप्ताह मे पूरी हुई। मानसरोवर पर १८ दिन रहे।

कैलाश परिक्रमा—सूर्यग्रहण करके कैलाश की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। कैलाश का मार्ग यहा से केवल एक ही दिन का है। इस मार्ग मे चौरी गौओ का दूध और घी अधिकता से मिलता है क्योकि यहा पर मैदान मे पशु-पालन अधिक होता है। सायकाल को कैलाश पर्वत के दामन मे पहुच गए। इसकी ऊचाई २४००० फीट है। यह पर्वत बिलकुल गोलाकार शिवलिंग की पिण्डी के समान है। यह बारह मास हिम से आच्छादित रहता है। इस पर्वत पर प्राकृतिक सीढिया सी बनी हुई है। कैलाश की परिक्रमा का घेरा २६ मील है। इस परिक्रमा मे तीन बौद्ध मदिर है। इनमे बौद्ध सन्त रहते है। ये ही मन्दिरो मे पूजा भी करते है। रात्रि मे यहा एक मन्दिर मे विश्राम किया और प्रात काल परिक्रमा प्रारभ कर दी। प्रस्थान करते ही वर्षा प्रारभ होगई। बहुत बडे-बडे ओले गिरने लगे। कम्बलो की आठ-आठ तहे बना कर सिरो पर रखी पर फिर भी ओले बारूद की गोलियो के समान मार कर रहे थे। घोडे और खच्चर सभी ओलो की मार से घायल होगए थे। बिहार के एक सन्त शीत के कारण बीमार होगए और बेहोश होकर गिर पडे। इन्हे घोडे पर ही रस्सी से बाध दिया गया। किया क्या जाता, और कोई चारा ही नही था। ओलो से प्राय सभी को कुछ न कुछ चोटे आई। कही कोई भी बचाव का स्थान नही था। कोई गुफा भी दृष्टिगोचर नही हुई। प्रतिपल ऐसा मालूम हो रहा था मानो कोई पत्थर उठा-उठाकर मार रहा हो। बडी कठिनाई से रात्रि को एक मदिर मे पहुचे। इसमे भी कही सूखा स्थान नही था। यह रात्रि बडी कठिनाई से कापते हुए व्यतीत की। भोजन भी नही बना सके। आगामी दिवस गौरी कुण्ड के लिए प्रस्थान किया। यह स्थान १८००० फीट की ऊचाई पर है। मार्ग मे एक नदी आती है। इसका पुल टूटा हुआ था। यहा की ऊचाई लगभग १७००० फीट है। घोडो से उतर कर कुछ दूर तक पैदल चलना पडा। सास फूलने लगा। पैर उठाने अत्यन्त कठिन होगए। अपने शरीर का तथा धारण किए हुए वस्त्रो का भार उठाना भी दूभर हो रहा था। ऊचाई के कारण हवा बडी पतली थी। अत दम घुटने लग गया था, हृदय धडक रहा था। अत्यन्त घबराहट हो रही थी। जैसे-तैसे लगभग १० बजे गौरी कुण्ड पहुचे। कैलाश पर्वत के नीचे एक तालाब अथवा छोटी-सी झील है। यह बिलकुल बर्फ से आच्छादित थी। जल कही भी दृष्टिगोचर नही हो रहा था। यह अवश्य मालूम होता था कि बर्फ के नीचे

कोई सरोवर है। महाराजजी ने इस गौरी कुण्ड मे स्नान करने की इच्छा प्रकट की क्योकि इसमे स्नान करने का वडा माहात्म्य है। यहा आकर वे इस पुण्य से वचित होना नही चाहते थे। इन्होने कीचसिह से कहा, "कही वर्फ को तोडकर ऐसा यत्न करो जिससे नीचे से जल निकल आए।" कचनसिह और कीचसिह दोनो भाइयो ने वर्फ को खोदकर एक कूआ-सा वना दिया किन्तु यह पता न लग सका कि पानी कितना गहरा है। डूवने की सभावना वनी हुई थी। इसलिए महाराजजी ने इनसे कहा कि मेरे दोनो हाथ वाध कर नीचे लटका दो। यदि जल थोडा हुआ तव तो मैं खडा हो कर स्नान कर लूगा और यदि गहरा हुआ तो मुझे एक डुवकी लगवा कर ऊपर खीच लेना। इस पर महाराजजी के साथी खूव हसे। इनमे से कोई भी स्नान करने के लिए तैयार नही हुआ। सरोवर के किनारे का कही पता नही चल रहा था। वर्फ को फिर तोडा गया। यहा पर जल केवल ४-५ फीट ही गहरा था। एक वस्त्र पर मिट्टी का तेल डाल कर अग्नि जलाकर तैयार की गई। वडी कठिनाई से केवल तीन ही गोते महाराजजी लगा पाए थे कि उनका शरीर नि सज्ञ होगया। चलने मे भी असमर्थ होगए। वडी कठिनाई से कीचसिह इन्हे अग्नि के पास लेगया। इनमे तौलिए से शरीर पोछने की भी सामर्थ्य नही थी। कुछ देर तक अग्नि के पास वैठकर शरीर गर्म करके वस्त्र धारण किए। सव लोग चलने की तैयारी करने लगे। यहा से केवल २-३ घण्टे का ही रास्ता था। महाराजजी ने सभी साथियो को आगे भेज दिया और स्वय कीचसिह के साथ कैलाश पर्वत पर चढने का विचार किया। कीचसिह इस वात पर राजी नही हुआ और सलाह दी कि कल के लिए इस चढाई को स्थगित रखा जाए। कल चढाई की जाए। अत ये सभी चल दिए। पडाव पर पहुच कर भोजनादि की व्यवस्था की गई। दूसरे दिन कीचसिह और महाराजजी ने दो घोडे लिए और गौरी कुण्ड के लिए प्रस्थान किया। घोडो को वाध दिया और चढाई प्रारभ कर दी। कीचसिह वर्फ मे मार्ग वनाता जाता था और महाराजजी पीछे-पीछे धीरे-धीरे चढते जाते थे। सास फूलता था, दम घुटता था, पैर भारी होते जाते थे, पर ये विलकुल नही घवराए, हिम्मत नही हारे और चढते ही गए। निरन्तर प्रयत्न करने पर भी केवल २१००० फीट तक ही पहुच सके। आगे पर्वत विलकुल सीधा ही खडा था। एक कदम आगे चलते थे तो दो कदम पीछे फिसल जाते थे। कीचसिह ने अव हिम्मत हार दी। वह नितान्त थक गया था। घोडे भी भूखे थे। आगे चलने मे जान खतरे मे थी। इसने महाराजजी से कहा, "आप अव ऊपर जाने का हठ न करे। अपने जीवन को खतरे मे डालना ठीक नही है। चढाई के लिए कोई साधन भी हमारे पास नही है। अव आगे पैर नही ठहर रहे है अत नीचे उतरना ही उचित है।" महाराजजी ने इस वात को स्वीकार कर लिया। क्योकि अव उतरने की भी शक्ति शरीर मे नही रही थी अत पर्वत से नीचे फिसल कर उतरने का उपाय सोचा। जहा तक फिसलने के योग्य मार्ग था वहा तक तो फिसल कर उतरे और शेष पैदल। गौरी कुण्ड से घोडो पर सवार होकर चले और सायकाल छ वजे पडाव पर पहुच गए। स्वामी विशुद्धानन्दजी ने पराठे वना कर रखे हुए थे। वे खाए और चढाई तथा उतराई का सव वृत्तान्त उन्हे सुनाया। तिव्वती भक्त लोगो मे से कोई-कोई यात्री कैलाश यात्रा दण्डवत के साथ करते है अर्थात् सारी यात्रा ही पेट के वल करते है। इन्हे कई-कई मास इस यात्रा मे लग जाते हैं। तिव्वती लामा कहते थे कि आज तक कैलाश की चोटी पर कोई

नही चढा है। इनकी शिव तथा पार्वती के प्रति बडी श्रद्धा और भक्ति थी और इनका विश्वास था कि शिवजी और पार्वतीजी इसके शिखर पर आते हैं। इन्होने अन्य कई देवताओ के नाम बताए थे जो कैलाश पर आया करते हैं।

कैलाश और मानसरोवर की यात्रा समाप्त करके बडी शान्ति प्राप्त हुई। एक चिरकालीन अभिलाषा पूरी हुई। तीन दिन कैलाश की परिक्रमा मे लगे तथा एक दिन विश्राम किया और पाचवे दिन भोजनोपरान्त प्रस्थान किया। कैलाश और राक्षस ताल के बीच मे जो बडा मैदान है उसमे बकरिया चराने वालो के पास ठहर गए। यहा रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन चल दिए। इन लोगो ने रात्रि को खूब चौरी गौओ का दूध पिलाया और बहुत-सा मक्खन और खीर आदि साथ भी रख दिए। दूसरे दिन राक्षस ताल पर पडाव किया। यहा पर चाय बनाकर जब पीने लगे तो वह कडवी थी। किसी ने भी नही पी। बहुत खोज करने पर पता चला कि राक्षस ताल का पानी बहुत खारा था, इसीलिए चाय भी कडवी थी। रात्रि को राक्षस ताल पर ही विश्राम किया और प्रात आगे के लिए प्रस्थान किया।

चोरो का मुकाबला—मार्ग मे जिस स्थान पर पडाव किया वहा चोरो का बडा भय था। सबने बारी-बारी से तीन-तीन घण्टे का रात्रि मे पहरा दिया। दिन भर खच्चर और घोडे सफर करते थे और रात्रि को चरने के लिए छोड दिए जाते थे। हमारे पडाव पर चोर चोरी करने के लिए आए। उस रात्रि को पहरा देने वाला यात्री सो गया। चोरो ने आते ही सर्वप्रथम घोडो के गले मे जो घण्टिया बधी हुई थी उन्हे घोडो के गले से उतारा जिससे घोडो को चुराकर ले जाते समय किसी प्रकार की आवाज़ न आए। चोर दो घोडे चुरा कर ले गए तथा एक यात्री की छोलदारी मे से समान निकाल लिया था, किन्तु कुछ आवाज हो जाने से प्राय सभी यात्री जग गए। प्रकाश करके जब देखा गया तब सामान छोलदारी मे नही मिला। सामान लेकर भागते हुए चोर अवश्य दिखाई दिए। यात्रियो ने इनका पीछा किया और बन्दूक से कारतूस उनकी ओर चलाने लगे। चोरो ने भी गोलिया चलानी प्रारभ कर दी। सामान उठाकर भागने वाले चोर के साथ उसकी रक्षा के लिए एक और चोर हाथ मे बन्दूक लेकर चल रहा था। इसके पास बारूद भरने वाली बन्दूक थी अत यह बन्दूक का ठीक प्रयोग न कर सका क्योकि उसे बारूद भरने मे विलम्ब लगता था। महाराजजी के दल के पास कारतूसी बन्दूके थी। धडाधड चोरो के ऊपर गोलियो की वर्षा की गई। चोर सामान छोडकर भाग गए। इनमे से कई तो बुरी तरह से घायल होगए थे। ये लोग घोडे भी अपने साथ नही ले जा सके।

यहा से रवाना होकर तकलाकोट पहुचे। यहा पर एक रात निवास करके खोचरनाथ गए। यह एक छोटा-सा गाव है। इसमे एक मन्दिर है। यहा पर एक रात्रि ठहर कर लिपू धूरा पर्वत पर पहुचे। इस बार इसकी चढाई करते समय कोई विशेष कष्ट नही हुआ क्योकि इसके मार्ग से जाते समय परिचय होगया था। इसको पार करके गर्व्यांग पहुचे। जाते समय यहा पर घोडे, खच्चर तथा अन्य सामान छोड कर गए थे। यहा पर बहुत-सा सामान, जो अनावश्यक समझा गया था, सब महाराज-जी ने गरीबो को बाट दिया था।

अलमोड़े मे यात्रा की समाप्ति--इस यात्रा मे लगभग अढाई मास लगे। जब अलमोडा वापस पहुचे तो परिचित व्यक्तियो ने महाराजजी से कहा, "आप तो स्वस्थ, सबल और स्थूल होकर यात्रा से लौटे है किन्तु आपके सब साथी यात्री तो बहुत दुर्बल और शक्तिहीन से मालूम होते है।" इसका कारण यह था कि महाराजजी ने अपने खान-पान का विशेष ध्यान रखा था। बहुत ऊचे पर्वतो पर भूख कुछ कम हो जाया करती है। वहा पर थोडा भोजन ही हितकर होता है। जो इस नियम का पालन करते हैं वे स्वस्थ रहते हैं। ब्रह्मचारीजी के अतिरिक्त प्राय सभी यात्री घायल होगए थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी का घुटना घायल होगया था। चलने मे उन्हे बडी कठिनाई होती थी किन्तु वे बडे साहसी थे। हिम्मत बाधकर बराबर चलते रहे। ब्रह्मचारीजी मे ब्रह्म-तेज तथा ब्रह्म-शक्ति थी, अत वे कही लुढके अथवा गिरे नही। अन्य सभी यात्री दुर्बल शरीर थे, अत कई बार गिरे और घायल हुए। अलमोडे के कम्पनी बाग मे एक कोठी मे सभी यात्री ठहरे। यहा पर सबने प्रीतिभोज किया और बडे स्नेह और प्यार से एक दूसरे से मिलकर अपने-अपने लक्षित स्थान के लिए प्रस्थान किया। श्री महाराजजी यहा से नैनीताल पधारे और वहा पर ४-५ दिन तक निवास किया। नैनीताल का सौन्दर्य बडा आकर्षक है। ताल के चारो ओर सडको और कोठियो का दृश्य बडा सुन्दर है। रात्रि मे जब बिजली जलती है तो इस ताल का दृश्य बडा अनुपम प्रतीत होता है। इसका सौन्दर्य वास्तव मे अद्वितीय है।

नैनीताल से महाराजजी ने अमृतसर के लिए प्रस्थान किया। वहा पर पूर्ववत् लाला शिवसहायमल के मकान पर निवास किया। इनके परम भक्त लाला मुलखराज और लाला गुरुचरणदत्त ने महाराजजी से दीनानगर चलने के लिए निवेदन किया। ग्रीष्म ऋतु मे ये कभी पजाब मे रहे नही थे इसलिए आम खाने का अवसर नही मिला था। इन्होने दीनानगर जाकर आम खाने के लिए बहुत आग्रह किया। दोनो ने १० दिन का अवकाश लिया और मुलखराजजी अपनी मोटरगाडी मे महाराजजी और गुरुचरणदत्तजी को दीनानगर ले गए। नगर के किनारे एक डाकबगले मे निवास का प्रबध किया गया। मुलखराजजी की दीनानगर मे ससुराल थी अत इनके सम्बन्धियो ने कोठी मे भोजन का अत्युत्तम ढग से प्रबध कर दिया था। दो टोकरे बढिया आमो के प्रतिदिन कोठी पर पहुच जाते थे। नहर पर नित्यप्रति तैरने के लिए जाते थे। महाराजजी का तपस्या का जीवन था। इनकी तितिक्षा पराकाष्ठा को पहुची हुई थी। कठोर साधना करते थे। कभी-कभी जब श्रद्धालु भक्तो के आग्रह से इस प्रकार का अवसर मिल जाता था और कुछ आराम-सा मिलता था तो इनका वजन बढ जाया करता था। यहा दस दिन मे इनका वजन १० पौड बढ गया था।

दीनानगर से बाबूजी की मोटरगाडी से सुजानपुर पहुचे। यहा भी नहर के किनारे एक कोठी मे ठहरे। खान-पान की सब व्यवस्था यही पर की गई। यहा पर भी बडा मनोरजन रहा।

ग्यारहवे दिन सब लोग अमृतसर वापस पहुच गए। गर्मी अधिक हो जाने के कारण अब महाराजजी ने काश्मीर के लिए प्रस्थान किया। काश्मीर मे पूर्ववत् हारवन जाकर ठहरे। वहा नित्य अभ्यास, ध्यान आदि साधना बराबर चलती रही। दीवाली पर पुन अमृतसर पधार गए। दीवाली के पश्चात् मोतीरामजी की बगीची मे निवास

किया । कई मास यात्रा मे रहे थे, अत साधना मे उचित समय नही लगा सके थे । इस वगीची मे आकर चार मास का मौन व्रत धारण कर लिया और सारा समय पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त विज्ञान को दृढभूमि करने मे लगाया ।

'हिमालय का योगी' ग्रन्थ मे
'तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति' नामक
तृतीय अध्याय समाप्त ।।

चतुर्थ अध्याय

योग प्रशिक्षण

पूज्य गुरुदेवजी से जो तत्त्व-ज्ञान प्राप्त हुआ था तथा जो आत्म तथा ब्रह्म-विज्ञान लाभ हुआ था और उसमे जो आनन्दानुभूति उपलब्ध हुई थी उसे महाराजजी अपने तक ही सीमित नही रखना चाहते थे। जिन्होने अपने बाल्यकाल से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढा हो वह कभी ऐसा कर भी नही सकते थे। महाराजजी स्वभाव मे ही बडे दयालु तथा उदारचेता है। वे विश्व-कल्याण मे ही अपना कल्याण समझते है। परिवार के सुखो का परित्याग करने का उद्देश्य भी योग द्वारा विश्व-कल्याण-साधन ही था। स्वय तत्त्व-ज्ञान लाभ करने के पश्चात् आपने योग प्रशिक्षण की एक बृहद् योजना बनाई जिसके द्वारा दु खियो के जीवन को सुखी बनाया जा सके, पथ-भ्रष्टो को सत्पथ पर लाया जा सके, कर्त्तव्यविमुखो को कर्त्तव्य का ज्ञान करवाया जा सके और योग-मार्ग पर चलाकर उनके त्रिविध ताप का निवारण किया जा सके।

मोहन आश्रम मे साधको को अभ्यास शिक्षण—अपने प्रारम्भिक साधनाकाल मे महाराजजी ने मोहन आश्रम मे अपना बहुत समय व्यतीत किया था। यही पर रह कर यहा के विद्यालय मे संस्कृताध्ययन किया था। सन्ध्या, हवन, जाप तथा ध्यान तो ये यहा आने से पूर्व भी करते थे किन्तु योगाभ्यास का प्रारम्भ यही से किया था। यह स्थान गगा के किनारे बडे एकान्त मे है। ध्यान तथा समाधि के लिए बडा उपयुक्त स्थान है, अत महाराजजी ने योग-प्रशिक्षण का कार्य यही से प्रारम्भ किया। अमृतसर मे चार मास का मौनव्रत समाप्त करके दो मास के लिए हरिद्वार प्रस्थान किया। योगीराजजी से योग सीखने के लिए सर्वप्रथम ब्रह्मचारी जगन्नाथ पथिक, मेहता सावनमल्लदत्त, रावलपिडी वाले लाला बसन्तराम और लाला गुरुचरणदत्त मोहन आश्रम मे आए। ब्रह्मचारी जगन्नाथ गुरुकुल कागडी के स्नातक थे। मेहता सावनमलदत्त आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक थे। बसन्तराम रावलपिडी के एक बडे व्यापारी थे और गुरुचरणदत्त अमृतसर के व्यापारी थे।

प्रशिक्षण का विज्ञान से प्रारम्भ—महाराजजी ने योग-प्रशिक्षण का कार्य विज्ञान से प्रारम्भ किया। इन साधको को सर्वप्रथम चक्र-विज्ञान और कुण्डलिनी उत्थान के क्रम से साधना करवाई गई। कुछ अभ्यास के पश्चात् जगन्नाथ तथा मेहता सावनमलदत्त की कुण्डलिनी जागृत होगई थी और चक्र-विज्ञान प्रारम्भ होगया था। जब जगन्नाथजी नाभि-चक्र मे पहुचे तो उन्हे अत्यधिक प्रसन्नता हुई और बडा सन्तोष लाभ हुआ। उन्होने गद्गद् स्वर से महाराजजी से निवेदन किया, "महाराजजी! मुझे महान सफलता प्राप्त हुई है। चिरकाल तक इधर-उधर भटकने के

पश्चात् आज इस विज्ञान मे प्रवेश हुआ है। आप धन्य है जिन्होने हमारा मार्ग दर्शन किया है। मैं आज अपने को कृतकृत्य समझता हू। मेरे लिए इतना ही इस वर्ष पर्याप्त होगा। मैं इसे दृढभूमि करके आगे बढूगा। आपकी कृपा से मुझे जो दिव्य ज्योति प्राप्त हुई है यह मेरे जीवन की महान सफलता है।" मेहताजी को भी दिव्य ज्योति प्रकट होकर चक्र-विज्ञान होने लग गया था। वसन्तराम अधिक आगे नही बढ सके। इन्हे भ्रूमध्य मे दिव्य ज्योति ही लाभ हो सकी।

वर्षा को रोक देना—एक दिन महाराजजी के साथ जगन्नाथ, मावनमलदत्त और बसन्तराम सप्तसरोवर पर भ्रमणार्थ गए। उस समय गगन मेघाच्छन्न था। सर्वत्र वर्षा हो रही थी। जिस भाग पर महाराजजी अपने भक्तो के साथ भ्रमण कर रहे थे केवल उस स्थान पर पानी नही बरस रहा था। शिष्यो ने महाराजजी से वापस चलने के लिए प्रार्थना की, क्योकि वर्षा मे भीग जाने की प्रतिपल आशका हो रही थी। इन्होने कहा, "घबराओ नही। तुम्हारे कपडे भीगने नही दिए जाएगे।" भक्तो ने पुन बडी उत्सुकता से कहा, "जब वर्षा होगी तब कपडे अवश्य भीगेंगे। आप वर्षा को कैसे रोक सकते है ?" महाराजजी ने कहा, "घबराओ नही। हम तुम्हारे ऊपर वर्षा नही होने देगे।" इस पर सब हसने लगे और परस्पर एक दूसरे से कहा कि मोहन आश्रम मे बिना भीगे पहुचना असम्भव है। योगीराजजी भ्रमण करके नियत स्थान से लौटने लगे। इस समय आसमान मे त्राटक किया और जहा ये सब चल रहे थे वहा पर वर्षा का होना बन्द कर दिया और जब तक ये मोहन आश्रम मे नही पहुच गए तब तक वर्षा बन्द रही और जब ये सब आश्रम मे पहुच गए तब एकदम मूसलाधार वर्षा होने लगी और घण्टो ही बन्द न हुई। इस चमत्कार से इनके भक्त बडे प्रभावित हुए। दो मास तक अभ्यास करवाने के पश्चात् महाराजजी अमृतसर लौट गए और चार दिन तक वहा निवास किया। इसके बाद ये रावलपिंडी चले गए और वहा पर योगी अमरनाथ के पास ठहरे। यहा पर कुछ दिवस तक रहने का विचार था अत अमरनाथजी ने पास ही देवसमाज के भवन मे रहने का प्रबन्ध कर दिया। यह स्थान बहुत एकान्त मे था। भोजन की सब व्यवस्था अमरनाथजी ने अपने ही निवास-स्थान पर कर दी थी। इन दिनो ये तथा इनकी धर्मपत्नी महाराजजी से प्राणायाम की विधि सीखा करते थे। इन्हे विविध प्रकार के प्राणायाम आते थे और कई-कई मिनट तक श्वास-प्रश्वास को रोककर कुम्भक करने का अभ्यास था।

हृदय-स्तम्भ और नाड़ी-अवरोध का परीक्षण—एक दिन अमरनाथजी ने पण्डित मुक्तिराम, वसन्तराम और वैद्य धर्मचन्द तथा अन्य कई भक्तो को महाराजजी को प्राणायाम करते हुए देखने के लिए बुलाया। धर्मचन्दजी बडे योग्य वैद्य थे। गुरुकुल के स्नातक थे। पण्डित मुक्तिरामजी दर्शन-शास्त्रो के बडे विद्वान् थे। प्रात ८ बजे सारा भक्तमण्डल देवसमाज मे आकर एकत्रित होगया। वैद्य धर्मचन्द हृदय की गति देखने के लिए यत्र (स्टेथोस्कोप) साथ लेकर आए थे। सर्वप्रथम महाराजजी ने हृदय-स्तम्भ प्राणायाम किया और अपने हृदय की गति को बिलकुल बन्द कर दिया। जब वैद्यजी ने यत्र लगाकर देखा तो हृदय की गति बिलकुल बन्द थी। रक्त-परिभ्रमण और लुप्डप् क्रिया रुक गई थी। सभी एकत्रित भक्त-समुदाय

आश्चर्य-चकित होगया। कुछ विश्राम करके इन्होने नाडी-अवरोध प्राणायाम करके दिखाया। दाए हाथ की नाडी बिलकुल बन्द करके दिखाई। वैद्यजी तथा पण्डित मुक्तिरामजी ने इसका परीक्षण किया। इन दोनो प्रकार के प्राणायामो का प्रदर्शन देखकर सभी बडे प्रभावित हुए। इससे सभी के हृदयो मे महाराजजी के प्रति अनन्य भक्ति और श्रद्धा के भाव उत्पन्न होगए। स्वामी विशुद्धानन्दजी इनके बहुत बडे प्रशसको मे से थे। इन्होने रावलपिंडी मे सर्वत्र इनके योग और यौगिक सिद्धियो की बडी ख्याति कर दी थी और ये अपने शिष्यो से प्राय कहा करते थे कि वर्तमान युग मे ब्रह्मचारी व्यासदेवजी के समान कोई दूसरा योगी आर्य जगत् मे दृष्टि-गोचर नही होता। हृदय-स्तम्भन तथा नाडी-अवरोधन प्राणायामो के प्रदर्शन से महाराजजी के सम्मान मे अत्यन्त वृद्धि हुई। पण्डित मुक्तिरामजी भी बडे प्रभावित हुए। योगी अमरनाथजी की अष्टवर्षीया पुत्री कुलदीपा देवसमाज मन्दिर मे महाराजजी को भोजनार्थ बुलाने आया करती थी। वैद्य धर्मचन्दजी बडी सन्देहात्मक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होने कुलदीपा को कई बार महाराजजी के पास देवसमाज मन्दिर मे जाते देखा था। उनके मन मे अनेक शकाए उत्पन्न होने लगी। एक दिन योगी अमरनाथजी के पास जाकर कहा कि आप अपनी पुत्री को ब्रह्मचारीजी के पास भोजन के लिए बुलाने मत भेजा करो। वे वहा अकेले रहते है अत मै इसका वहा जाना उचित नही समझता। अमरनाथजी उनकी बात सुनकर स्तम्भित से रह गए और कहने लगे कि आप ब्रह्मचारीजी को नही जानते। ये बहुत ऊचे दर्जे के महात्मा है और प्रसिद्ध योगी है। उनके प्रति आपकी दुर्भावना देखकर मुझे दु ख तथा आश्चर्य दोनो ही हो रहे है। आपका इस प्रकार का सन्देह अत्यन्त निराधार तथा अनुचित है। ऐसी महान् आत्माओ के प्रति इस प्रकार का सन्देह करना एक बडा पाप है। वैद्यजी बडे घबरा गए और शास्त्र का प्रमाण देकर कहा कि युवावस्था प्राप्त माता, बहिन और पुत्री के पास कभी भी एकान्त मे नही बैठना चाहिए। अमरनाथजी ने कहा, मेरी पुत्री तो इतनी छोटी है कि वह ब्रह्मचारीजी की भी पुत्रीवत् ही है और यदि व्यासदेवजी जैसा महान् व्यक्ति मेरी पुत्री से विवाह करना भी चाहे तो मुझे इसमे अपार हर्ष होगा और मै इसमे अपना महान् गौरव समझूगा। कई वर्ष के अनन्तर अमरनाथजी ने यह बात बडे विनोदपूर्ण ढग से श्री महाराजजी को सुनाई थी और तब बडा मनोरजन रहा था।

वैद्य धर्मचन्दजी के पुत्र को योगबल से आरोग्यता प्रदान की—एक बार महाराजजी काश्मीर से लौटते हुए पुन रावलपिंडी ठहरे। उन दिनो धर्मचन्दजी का नवजात पुत्र अत्यधिक बीमार था। इसे अतिरेचन हो रहा था। दिन-भर मे ५०-६० बार शौच जाता था। अत्यन्त कृश तथा दुर्बल होगया था। उसके जीवन की कोई आशा नही रही थी। वैद्यजी ने स्वय बहुत इलाज किया और कई डाक्टरो से भी उपचार करवाया, किन्तु किसी से भी लाभ नही हुआ। सारा परिवार निराशा मे डूबा हुआ था। कही से भी आशा की किरण दृष्टिगोचर नही हो रही थी। जब वैद्यजी को यह मालूम हुआ कि महाराजजी नगर मे पधारे हुए है तब वे भागे हुए अमरनाथजी के घर पर उनसे मिलने गए और निवेदन किया, "महाराजजी, नवजात शिशु अत्यन्त रुग्ण है। उसके प्राण सकट मे है। विविध उपचार करवा चुका हू।

कुछ आशा उसके जीवन की प्रतीत नही हो रही है। अब मुझे आपका ही भरोसा है। आप ही मे इसके प्राण बचाने की शक्ति है और आप ही इसे अपने योगबल से प्राणदान दे सकते है। आप इस पर अपना मानसिक प्रयोग करने की कृपा करे। मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है। आप ही इसे नीरोग कर सकते है।" वैद्यजी की प्रार्थना पर महाराजजी ने उनके पुत्र पर प्रयोग करना स्वीकार कर लिया। बालक झूले मे लेटा था। अत्यन्त कृश होगया था। उसका केवल अस्थि-पजर ही शेष रह गया था। महाराजजी ने झूले के पास खडे होकर अपना मानसिक प्रयोग प्रारम्भ किया। बालक बहुत देर से बेहोश था किन्तु १५-२० मिनट के प्रयोग से बालक होश मे आ गया और नेत्र खोलकर महाराजजी की ओर त्राटक करके बहुत देर तक देखता रहा। इन्हे विश्वास होगया कि बालक ठीक होगया है। महाराजजी ने आधा घण्टा तक प्रयोग किया। बच्चा कुछ ठीक हुआ। इन्होने वैद्यजी से कहा कि बालक कल तक बिलकुल ठीक हो जाएगा। बालक के दस्त बन्द होगए और वह बिलकुल नीरोग हो गया।

इस वर्ष महाराजजी काश्मीर मे ४ मास के लगभग मौनव्रत समाप्त करके आए थे। इन दिनो अपने मनोबल के द्वारा ये रोगियो को नीरोग करने का अभ्यास भी किया करते थे।

अमृतसर पधारना

साधना का कार्यक्रम—महाराजजी दीपावली के अवसर पर रावलपिंडी से अमृतसर पधारे और मोतीराम की बगीची मे निवास किया। दीपमाला के पश्चात् इन्होने काष्ठ मौन व्रत धारण किया और अपना साधना का कार्यक्रम नियत कर लिया जो निम्न प्रकार से था —

प्रात काल २ बजे से दोपहर के १२ बजे तक—एक ही आसन पर बैठकर अभ्यास।

दोपहर १२ बजे से २ बजे तक—स्नान, अग्निहोत्र, फल और दूध लेकर थोडा विश्राम।

४ बजे से रात्रि के १० बजे तक—योगाभ्यास मे बैठना।

योग प्रशिक्षण—उपरोक्त प्रकार से प्रतिदिन १६ घण्टे ध्यान तथा समाधि मे व्यतीत करते थे। काष्ठ मौन व्रत चैत्र की सक्रान्ति को समाप्त किया। इसके पश्चात् हरिद्वार पधारे और वहा पर मोहन आश्रम मे निवास किया। पूर्ववत् पुन दो मास का योग प्रशिक्षण का कार्यक्रम बनाया। कई अभ्यासी योग साधना के लिए उपस्थित होगए। इस बार दिन मे तीन बार अभ्यास करवाया जाता था। साय और प्रात तो अभ्यास मोहन आश्रम मे ही करवाया जाता था किन्तु प्रात ८ बजे से लेकर १२ बजे तक अभ्यास गगाजी के तट पर करवाया जाता था क्योकि वहा पर नितान्त एकान्त स्थान था। चैत्र और वैशाख मास मे यह साधना करवाई गई थी। इस अवसर पर मोहन आश्रम मे स्वामी विशुद्धानन्दजी, स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी, स्वामी सोमतीर्थजी और स्वामी ओमानन्दजी आदि महात्मा ठहरे हुए थे। इन सबसे योग के विषय मे प्राय वार्तालाप होता रहता था।

उत्तरकाशी (हिमालय) मे निवास

शकर मठ मे निवास—मोहन आश्रम से उत्तरकाशी जाने का विचार कर लिया। लगभग आधे ज्येष्ठ मे महाराजजी देहरादून मसूरी होते हुए उत्तरकाशी पहुच गए। यहा पर शकर मठ मे स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी की कुटिया मे निवास किया। यहा आकर चार मास का मौन व्रत धारण कर लिया। उत्तरकाशी मे इन दिनो मक्खिया अत्यधिक होती है। ये यहा पर कमरा बिलकुल बन्द करके भोजन बनाते थे। दरवाजे बन्द करने के कारण अधेरा हो जाता था, उसके निवारण के लिए दिन मे भी दीपक जलाना पडता था। यहा पर उन दिनो एक रुपये का डेढ सेर घी और ६-७ पैसे सेर दूध बिका करता था। पजाबी क्षेत्र के प्रबन्धक पण्डित जगतराम सारी खाद्य सामग्री मगवा कर कुटिया मे भिजवा देते थे, इसलिए मौन व्रत मे किसी प्रकार की असुविधा नही थी। महाराजजी केवल अमावस्या तथा पूर्णिमा को अपना मौन व्रत खोलते थे। इस बार ये यह अनुभव करना चाहते थे कि आहार और निद्रा को मनुष्य कहा तक बढा सकता है। इस मौन से पूर्व ये १० बजे से २ बजे तक अर्थात् केवल ८ घण्टे ही सोते थे और केवल एक पाव आटा २४ घण्टे मे खाते थे। उपरोक्त अनुभव करने के लिए दूसरे दिन आधी छटाक आटा और बढा दिया किन्तु घी की मात्रा नही बढाई और १५ मिनट निद्रा मे वृद्धि कर दी। साढे तीन मास मे तीन छटाक आटा खाने तथा बारह घण्टे नीद लेने लग गए। इस आहार और निद्रा को और भी बढाया जा सकता था किन्तु महाराजजी ने इसे हानिकर समझकर इसका और अधिक अनुभव नही किया। अधिक आहार और निद्रा शरीर को तमोगुणी बनाकर पशुवत् बना देते है। बुद्धि जडवत् हो जाती है। सूक्ष्म विज्ञान को समझने मे असमर्थता आ जाती है। तन्द्रा और निद्रा का एक साम्राज्य-सा स्थापित हो जाता है। श्वास-प्रश्वास की गति अधिक होने लगती है। इससे मनुष्य अल्पायु भी हो जाता है। इसलिए योगी के लिए यह परमावश्यक है कि अल्प और सात्विक आहार करे। उसे ८-५ घण्टे से अधिक निद्रा भी नही लेनी चाहिए। इस अनुभव के पश्चात् महाराजजी ने अन्न का परित्याग करके उपवास कर लिया। नेति, धोती, गजकर्णी, वस्ती इत्यादि क्रियाए भी की और प्राणायाम के द्वारा शारीरिक शुद्धि करके उसको हल्का करना प्रारम्भ कर दिया। अब आहार मे केवल थोडा-सा दूध लेना ही प्रारम्भ कर दिया था। १५-२० दिन मे इनका शरीर पूर्वस्थिति मे आगया। श्री महाराजजी को देहाध्यास का स्पर्शमात्र भी न था। अपने शरीर पर इन्होने अनेक अनुभव करके देखे थे। उनका शरीर ज्ञान, विज्ञान तथा नवीन अनुभव प्राप्ति की एक जीवित-जागृत प्रयोगशाला थी।

हरिद्वार मे योग प्रशिक्षण

महाराजजी दीवाली के अवसर पर सदैव की भाति अमृतसर पधार गए। इस बार यहा रहकर तीन मास का मौन व्रत लिया। हरिद्वार मे इस बार कुम्भ का मेला होने वाला था, इसलिए अभ्यासियो को इससे पूर्व ही समय देने का निश्चय कर लिया। व्रत समाप्त करके हरिद्वार मे मोहन आश्रम मे चले गए। कुम्भ के कारण इस बार अभ्यास मे सम्मिलित होने वालो की सख्या अधिक थी। इस बार डेढ मास तक ही प्रशिक्षण चला। कुम्भ के मेले से १५ दिवस पूर्व ही अभ्यास समाप्त कर दिया जिससे

मेले मे सम्मिलित होने की इन्हे सुविधा रहे। अब महाराजजी मोहन आश्रम से नगर मे बडे डाकखाने के पास माई मानकौर की धर्मशाला मे चले गए। यह धर्मशाला लाला मोतीरामजी, जिनकी बगीची मे ब्रह्मचारीजी अमृतसर मे रहकर अभ्यास किया करते थे, उनकी पत्नी ने बनवाई थी। इनसे परिचय होने के कारण महाराजजी को इस धर्मशाला मे कई कमरे मिल गए। अमृतसर के सेठ तुलसीरामजी महाराजजी को मिलने आए। इनका अपने भाइयो से सम्पत्ति के विषय मे मुकद्दमा चल रहा था। माता मनसादेवी इनकी बहुत पुरानी परिचित थी। इन्होंने महाराजजी से निवेदन किया कि आप ऐसा उपाय करे जिससे हम इस मुकद्दमेबाजी से मुक्त हो जाए और अपना शेष जीवन ईश्वर-भक्ति मे लगा सकें। इस रात-दिन की चिन्ता के कारण कुछ भी भजन-पाठ नही हो सकता।

सेठ तुलसीराम और मनसादेवी को वरदान—श्री महाराजजी की अपने श्रद्धालु भक्तो पर बडी कृपा थी। मुकद्दमे के कारण तुलसीरामजी और मनसादेवी को चिन्तित देखकर उन पर इन्हे दया आ गई और इनको आदेश दिया कि आप दोनो हाथ मे गगाजल लेकर प्रतिज्ञा करो कि झगडो से मुक्त होकर अपना शेष जीवन हरिद्वार मे रहकर ईश्वर-भक्ति मे व्यतीत करोगे और अपना सारा व्यापार आदि अपने पुत्रो के सुपुर्द कर दोगे। माता मनसादेवी ने हाथ जोडकर निवेदन किया, "महाराजजी, हमारे पास इतना धन कहा है कि हम सब धधा छोडकर हरिद्वार मे आ बैठे! हमारा निर्वाह किस प्रकार होगा?" महाराजजी ने हसकर कहा, "तुम्हारे पास जब एक करोड की सम्पत्ति हो जाएगी तब तो हरिद्वार मे आकर गगा के तीर पर बैठकर भजन करने लगोगी?" इस पर सेठजी तथा उनकी पत्नी मनसादेवी ने हाथ मे गगाजल लेकर हरिद्वार मे निवास करके भजन करने की प्रतिज्ञा की और महाराजजी से निवेदन किया कि "महाराजजी, आप ऐसी कृपा करे कि जिससे इस मुकद्दमे का फैसला हमारे पक्ष मे हो जाए।" योगीराजजी ने जिस जज के पास उनका मुकद्दमा था उसकी फोटो मगवाई और उसकी आयु और रग आदि के विषय मे पता लगाया और मानसिक प्रयोग के द्वारा उसकी भावना मे परिवर्तन ला देने के लिए उनसे कहा। मुकद्दमे की तारीख भी पूछी जिससे उसी दिन मानसिक प्रयोग किया जाए। इनके सुपुत्र हरिकिशनदास ने लाहौर जाकर सब बातो का पता लगाकर महाराजजी को सूचित कर दिया। लगभग दो मास मे सालस (मध्यस्थ) नियत हो गया और इसने सेठ तुलसीरामजी के पक्ष मे मुकद्दमे का फैसला दे दिया। इनको बम्बई मे इस निर्णय के अनुसार एक बडा भारी कारखाना मिल गया। इसी समय योरुप मे महायुद्ध प्रारभ होगया और ये चार-पाच साल मे ही करोडो की सम्पत्ति के मालिक बन गए। इन्होने महाराजजी की आज्ञा के अनुसार हरिद्वार मे कपूरथला हाऊस एक लाख मे खरीद लिया और यही आकर रहने लग गए। इन्होने अपना शेष जीवन ईश्वर-भक्ति के ही अर्पण कर दिया। तभी से ये महाराजजी को अपना गुरु मानने लग गए और इनके प्रति उनकी अनन्य भक्ति होगई।

कुम्भ के अवसर पर एक बडी दुर्घटना होगई जिसका महाराजजी के हृदय पर बहुत गहरा प्रभाव पडा। हर की पौडियो पर लगभग दो सौ गज के फासले पर कई स्थानो पर सडक पर बल्लिया बाधी गई थी। प्रात चार बजे से ही जनता ने

स्नानार्थ आना प्रारभ कर दिया। दैवयोग से बल्लिया टूट गई। यात्रियो का समुदाय, जो स्नानार्थ आ रहा था, रुक न सका क्योकि उन्हे क्या मालूम था कि बल्लिया टूटने वाली है। इसमे लगभग ८०-६० व्यक्ति कुचलकर मर गए। इस दुर्घटना को देखकर महाराजजी को बडा दुःख हुआ और बडी उदासीनता तथा वैराग्य की भावना हृदय मे उत्पन्न होगई और उत्तराखण्ड (हिमालय) मे जाने का दृढ सकल्प कर लिया।

वृद्ध सन्त के उपदेश—कुम्भ का स्नान करने के पश्चात् श्री महाराजजी सप्त-सरोवर पर सन्तो तथा महात्माओ के दर्शनार्थ गए। गगा के किनारे तीन मील के फासले पर एक बहुत वृद्ध सन्त के दर्शन हुए। ये भिक्षा लाकर गगाजी मे धो रहे थे जिनसे इसका स्वाद, रस तथा स्निग्धता निकल जाए। ये सन्त महान् त्यागी और उत्कट वैराग्य सम्पन्न थे। जब ये भोजन करने लगे तब महाराजजी अपने पास से कुछ खाद्य पदार्थ इनको भेट करने लगे। उन्होने इसे स्वीकार नही किया क्योकि उसमे अत्यधिक घृत था। इनसे वार्तालाप करते हुए योगीराजजी ने पूछा, "आपको वैराग्य हुए कितने वर्ष होगए हैं?" इन्होने कहा, "मुझे साधु बने लगभग साठ वर्ष हो गए है।" महाराजजी ने इनसे अपने लम्बे जीवन की विशेषताए बताने की प्रार्थना की जिससे उन्हें अपने जीवन मे चरितार्थ किया जा सके। महात्माजी ने हसते हुए कहा, "मै क्या अनुकरणीय बात बताऊ बेटा! अनेक यत्न तथा उपाय और साधन करने पर भी मैं आज तक स्मृति और सस्कारो का अभाव नही कर पाया हू। इस जीर्ण-शीर्ण वृद्धावस्था मे भी पत्नी के गुणो का स्मरण हो आता है। आज उसकी मृत्यु को ६५ वर्ष होगए है। सब कुछ त्याग दिया। वैराग्यवान् भी बन गया हू परन्तु पत्नी का अनुराग अभी नही गया है। स्मृति अनुरागपूर्वक ही होती है। अपने जीवन को धिक्कारता हू। जिस उद्देश्य से गृह-त्याग किया था वह अभी तक पूर्ण नही हुआ है। परम वैराग्य की स्थिति अभी भी प्राप्त नही हुई है। तुम बहुत अच्छे हो जो विवाह नही किया। मनुष्य सब बधनो से मुक्त हो जाता है परन्तु विवाह के बधन से मुक्त होना असभव भले ही न हो किन्तु अत्यन्त कठिन अवश्य है।" महाराजजी ने महात्माजी के चरण पकड़कर निवेदन किया, "महाराज! आपने मेरे लिए बडे उपदेश की बात कही है। इसको स्मरण करके कभी भूलकर भी विवाह की इच्छा न होगी। आपको रुपयो की आवश्यकता हो तो मै आपके लिए ला दू।" इस पर महात्माजी ने कहा, "मै रुपये को गत ५० वर्ष से स्पर्श भी नही करता। मुझे वस्त्रो की भी आवश्यकता नही है। गर्म कपडे मै पहिनता नही हू और मेरे पास खद्दर की दो चादरे है। अभी ४-५ साल और चल जाएगी।" महाराजजी ने उन्हे प्रणाम किया और अपने निवास-स्थान पर आगए।

उत्तरकाशी (हिमालय) मे पुनः निवास

हरिद्वार का कुम्भ समाप्त होने पर श्री महाराजजी देहरादून तथा मसूरी होते हुए उत्तरकाशी पहुच गए। इस बार आप पजाबी क्षेत्र मे ठहरे। प० जगतरामजी यहा के प्रबधक थे। उनकी सन्तो के प्रति बडी श्रद्धा और भक्ति थी। इन्होने महाराजजी को निवासार्थ एक कमरा दे दिया। कुछ दिनो के पश्चात् स्वामी पचानन्दजी जो इलाहाबाद मे कोट दयागम झूसी के महन्त थे, वहा आगए। ये महाराजजी के बडे मित्र थे। जब ये प्रयाग मे कुम्भ तथा अर्धकुम्भी पर गए थे तब इन्ही के आश्रम मे

ठहरे थे। इन दोनो का पारस्परिक वडा प्रेमभाव था। ये भी पजावी क्षेत्र मे ही ठहरे थे। यहा पर कुछ दिवस ठहरने के पश्चात् इन्होने गगोत्री और गोमुख जाने का विचार कर लिया। महाराजजी इनको विदा करने के लिए कुछ दूर तक इनके साथ गए। उत्तरकाशी के स्कूल के पास तक इन्हे पहुचा कर जव लौटने लगे तव पचानन्दजी से कहा, "चित्त तो मेरा भी उधर जाने के लिए कर रहा है।" पचानन्दजी ने उनसे कहा, "आप नर्म-नर्म घास पर चहलकदमी करने, सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले सुकुमार साधु है। आपसे यह कठिन यात्रा न हो सकेगी।" महाराजजी ने इसका उत्तर दिया कि "आप मुझे विलकुल सुकुमार न समझे। मैं कुसुम के समान कोमल तथा पत्थर के समान कठोर हू। मैं कठिनतम यात्रा भी कर सकता हू। मैं इससे पूर्व दो वार गोमुख की यात्रा कर चुका हू। कैलाश और मानसरोवर की यात्रा कर चुका हू। यह यात्रा कितनी कठिन है इसकी आप कल्पना भी नही कर सकते। मेरे लिए गोमुख-यात्रा एक अत्यन्त साधारण-सी वात है। इतना कह चुकने के वाद उन्होने अपने कपडे के सफेद जूते, काश्मीरी गर्म चादर अथवा गर्म धुस्सा क्षेत्र से लाने के लिए मैनेजर को आदेश दिया। सव हसने लगे क्योकि इस वात पर विश्वास नही था कि महाराजजी गोमुख जा सकेगे किन्तु महाराजजी ने अपना धुस्सा कधे पर रखा और चल दिए। सवसे कह दिया कि आज से सातवे दिन यहा लौट आऊगा।

गोमुख की ७ दिन मे यात्रा—महाराजजी, स्वामी पचानन्दजी तथा एक अन्य अवधूतजी ने गोमुख के लिए प्रस्थान किया। पहिले दिन भटवाडी पहुचे। दूसरे दिन झाला, और तीसरे दिन अवधूतजी तो आगे चलने मे असमर्थ होगए अत वही रह गए परन्तु महाराजजी और पचानन्दजी सायकाल ८ वजे गगोत्री पहुच गए। यहा से चौथे दिन प्रात प्रस्थान करके ४ वजे सायकाल गोमुख के पास पहुच गए। वहा पर प्रात - काल पूर्णिमा का स्नान किया। गोमुख पहुच कर स्नानोपरान्त कुछ जल-पान किया और वापस चल दिए। लगभग दो वजे गगोत्री पहुच गए। दूसरा स्नान गगोत्री मे लगभग अढाई वजे किया और स्वामी कृष्णाश्रमजी के पास चाय-पान किया। महन्त पचानन्दजी ने महाराजजी की वडी प्रशसा की और उनके सामने अपनी पराजय स्वीकार की। योगीराजजी ने वीर पुरुषो के समान यह यात्रा की। जव कभी थोडी-सी भी चढाई आ जाती थी तो पचानन्दजी का दम फूलने लगता था। अव उनमें गगोत्री से आगे चलने की क्षमता नही रही, इसलिए गगोत्री मे ही ठहरना पडा। ये पाचवें दिन गगनाणी पहुच गए और वहा तप्त कुण्ड पर ठहरे। २८ मील की यात्रा की थी अत थकान अधिक होगई थी। तप्त कुण्ड मे स्नान करने से थकान दूर हुई। रात्रि को यही विश्राम किया। दूसरे दिन यहा से प्रस्थान करके मनेरी जाकर ठहरे। सातवे दिन वहा से प्रात ५ वजे चल कर ६ वजे उत्तरकाशी पहुच गए। जगतरामजी तथा अन्य परिचितो को वडा आश्चर्य हुआ। महाराजजी को उत्तरकाशी मे निवास करना अधिक प्रिय था, इसलिए यहा कुछ दिन और ठहरे।

जालधर तथा होशियारपुर गमन—आश्विन मास मे यहा से जालधर के लिए प्रस्थान किया और जालधर पहुच गए। वहा पर डाक्टर नारायणसिहजी के पास कुछ दिवस तक ठहरे और इसके पश्चात् होशियारपुर मे डाक्टर मोतीसिहजी के पास निवास किया। इस वर्ष सर्दियो मे विजवाडे के चौक के पास इनकी वगीची मे ठहरे।

यहा पर कुछ मास का मौन व्रत किया। भोजनादि की सब व्यवस्था डाक्टर मोतीसिंह ने ठीक-ठीक कर दी थी।

काश्मीर गमन—सदैव की भांति महाराजजी ग्रीष्म-ऋतु मे काश्मीर चले गए। इस बार मुफ्ती बाग मे न ठहर कर वैरीनाग के चश्मे पर ठहरे। कुछ दिनो के पश्चात् सेठ तुलसीराम, इनकी धर्मपत्नी और इनकी पुत्री जनककुमारी वहा आगईं। इनके निवास का प्रबंध जंगलात के डाक बंगले मे कर दिया गया। महाराजजी डाक बंगले मे सेठजी और इनकी पत्नी और पुत्री को अभ्यास करवाने के लिए जाया करते थे। माता मनसादेवीजी तीन घण्टे तक शून्य समाधि लगाने लग गई थी। सेठजी तथा उनकी पुत्री केवल दो घंटे तक ही बैठते थे। ये सब लगभग तीन मास तक महाराजजी के पास रहे। योगीराजजी नित्यप्रति अपनी कुटिया मे इन्हे कथा सुनाया करते थे। कई-एक ब्राह्मण भी कथा सुनने के लिए आ जाया करते थे। सेठानीजी तीन या चार घंटे की समाधि लगाती थीं, जनककुमारी मंत्रजाप करती थी तथा सेठजी विज्ञान के क्रम से योग सीखते थे। यह सन् १९३९ की बात है। इस वर्ष द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हुआ था। दशहरे के अवसर पर महाराजजी तथा तुलसीरामजी प० गोपीनाथजी के पास श्रीनगर मे कनिकदल मे ठहरे। वहा उन्होंने प्रदर्शनी देखी और चार दिन तक पंडितजी के अतिथि रह कर अमृतसर के लिए प्रस्थान कर दिया।

अमृतसर मे निवास

महाराजजी दीवाली से एक सप्ताह पूर्व अमृतसर पहुच गए और वहा पर मोतीरामजी की बगीची में निवास किया। इस वर्ष पंडित अगस्तमुनि तथा भाग्यवन्तीजी श्री महाराजजी के दर्शन करने के लिए आए। पण्डितजी प्राय कोटली मीरपुर मे उपदेश द्वारा प्रचार किया करते थे। ये बी० ए० और शास्त्री पास थे। कोटली तथा मीरपुर मे मेहता सावणमलदत्त से महाराजजी की प्रशंसा सुन कर और उससे प्रभावित होकर ये दोनो महाराजजी से मिलने आए थे। इसके पश्चात् पंडितजी यदा-कदा उनसे मिलने आते रहे और योग साधना मे भी सम्मिलित होते रहे। धीरे-धीरे इनकी महाराजजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति होगई और वे इनमे गुरु-भावना रखने लग गए। श्रीमती भाग्यवन्तीजी गुरुचरणदत्तजी के पास ठहरी थी। महाराजजी ने ही उनकी सब व्यवस्था वहा करवा दी थी। महाराजजी ने मौनव्रत धारण किया हुआ था। ये केवल पूर्णिमा और अमावस्या के दिन मौनव्रत तोडते थे। उन दिनो अपनी कुटिया पर ही उपदेश दिया करते थे। श्रीमती भाग्यवन्तीजी श्री गुरुचरणदत्तजी के साथ ही वहा पर उपदेश श्रवण करने के लिए आ जाया करती थी। इन्हे योग-साधना का उपदेश देकर महाराजजी ने हरिद्वार जाकर तपोमय जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया।

अवधूत बुद्धिप्रकाशजी का उत्थान और पतन—उत्थान—मोतीरामजी की बगीची के सामने सन्त बुद्धिप्रकाशजी अवधूत रहा करते थे। ये उदासी सन्त थे। यहा पर उनका अपना बंगला और बगीचा था। महाराजजी भी इनकी बगीची मे अपने निवास के लिए घास की एक पर्णकुटि बनाकर तपस्या करते रहे थे, इसलिए इनके साथ योगीराजजी का बडा स्नेह था। सन्त बुद्धिप्रकाशजी ज्येष्ठ तथा आषाढ मास मे २१ धूनिया तपा करते थे। उस तप की समाप्ति पर एक बडा उत्सव मनाते थे और

भण्डारा किया करते थे। ये बडे तपस्वी तथा त्यागशील सन्त थे। उत्सव के समय महाराजजी को उपदेश देने के लिए बुलाया करते थे। सहस्र नर-नारी इस उत्सव के अवसर पर आते थे। इनके शिष्यो की सख्या लगभग १५ थी। इनकी आयु लगभग ६० वर्ष की होगी। अमृतसर मे इनकी बडी मान-प्रतिष्ठा थी।

पतन—सन्त बुद्धिप्रकाशजी जैसे प्रतिष्ठित महात्मा के पतन की कभी कोई स्वप्न मे भी कल्पना नही कर सकता था। किन्तु "विनाशकाले विपरीतबुद्धि", जब किसी व्यक्ति के पतन का समय आता है तो उसकी बुद्धि और विवेक सब नष्ट हो जाता है। वह श्रेय-मार्ग का परित्याग करके प्रेय के गर्त मे गिर जाता है। उस समय उसे अपनी कीर्ति तथा मान और प्रतिष्ठा का बिलकुल ध्यान नही रहता। उसके पतन की एक शृखला-सी बध जाती है। जब एक बार मर्यादा का उल्लघन कर दिया जाता है, अथवा एक बार अनुशासनहीनता आ जाती है, तब यह नही कहा जा सकता कि इस मर्यादा तथा अनुशासनहीनता का अन्त कहा होगा। इसीलिए नीतिविशारदो ने कहा है "विवेकपरिभ्रष्टाना भवति विनिपात शतमुख।" यह कथन सन्त बुद्धिप्रकाशजी के ऊपर पूरा-पूरा घटता है। इनके पतन की कहानी बडी दु खद है। उसको लिखते हुए भी लज्जा आती है। पाठको को मर्यादा-पालन की शिक्षा देने के लिए इसका लिखना भी उपयुक्त मालूम होता है। सन्त कबीर कहा करते थे कि शूरवीर रणागन मे जाकर हाथ मे तलवार लेकर शत्रु के साथ युद्ध करता है। थोडी ही देर मे वह रणभूमि मे युद्ध करता हुआ या तो शत्रु को मार देता है या स्वय मारा जाता है। सती को भी अपने पतिदेव के साथ सती होने मे एक-आध घण्टा ही लगता है। किन्तु सन्त प्रतिपल अपनी इन्द्रियो, मन, बुद्धि, चित्त, कषायो, कुवासनाओ और विविध वृत्तियो से अहर्निश जूझता रहता है। उसे बडा सजग और सतर्क रहना पडता है। इस प्रकार से आजीवन इनके साथ युद्ध चलता रहता है। थोडी-सी असावधानी उसे अध्यात्म, तपस्या, त्याग, विवेक, वैराग्य के उच्च शिखर से गिराकर रसातल मे पहुचा देती है। यही बात सन्त बुद्धिप्रकाशजी के साथ हुई। गुजरावाले की एक धनाढ्य विधवा इनके सतसग मे आया करती थी। धीरे-धीरे एक दूसरे के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ। सन्त अपने कर्तव्य-पथ से विचलित होगया। महात्माओ की परम्पराओ, मर्यादाओ तथा अनुशासन को भूल गया। शास्त्रशिक्षा तथा गुरुदीक्षा को ताक पर रख दिया। विवेक खो दिया। बुद्धि भ्रष्ट होगई। मान और प्रतिष्ठा का सब ध्यान जाता रहा। सन्तो और महात्माओ के सब उपदेश पानी की तरह बह गए। महाराजजी ने उन्हे एकान्त मे लेजाकर कई बार समझाया और इस स्त्री की ओर से उनका मन फेरने का प्रयत्न किया। मान तथा प्रतिष्ठा पर लाछन लगाने से बचाने के लिए उपदेश दिए। लोक-मर्यादा की रक्षा की दुहाई दी। लोकापवाद की बुराइया बताई पर उन्हे एक भी बात समझ मे न आई। आती भी कैसे! क्योकि "कामातुराणा न भय न लज्जा।" अन्ततोगत्वा इस सन्त ने जटाए मुडवा दी, सन्तो के वस्त्र उतार दिए, अपना नाम बदल लिया और गुजरावाले की उस स्त्री के साथ विवाह कर लिया। श्री महाराजजी को बडी घृणा उत्पन्न हुई। सन्तो की पावन परम्परा को इस दुराचार से बडी ठेस पहुची। पतित सन्त की सारे नगर मे सर्वत्र निन्दा होने लगी। महाराजजी का चित्त भी अब अमृतसर से उपराम होगया। अमृतसर मे यह मौन व्रत उनका

अन्तिम था। अब उन्होंने यहा निवास करने का सर्वथा परित्याग कर दिया। बुद्धिप्रकाशजी को बहुत फटकारा और कहा, "सन्तजी, आप बुद्धिप्रकाश नही अपितु बुद्धूप्रकाश है। आपने सन्त मत्त पर बडा धब्बा लगाया है। आपके दुराचार से हमे भी बडी लज्जा आ रही है। हमारा यहा रहना ही आपने कठिन कर दिया है। आपने अपनी मूर्खतावश सोने के बदले पीतल खरीदा है। आपको सब लोग घृणा की दृष्टि से देखते है। आप बडे अपमानित हो रहे है। इससे तो नहर मे डूबकर मर जाना उत्तम है। अब आपने यह भूमि पापयुक्त कर दी है अत हम इसे सदा के लिए छोड रहे है।" ये अपना मौनव्रत समाप्त करके २-३ दिन तक नगर मे रहे।

काश्मीर प्रस्थान--यहा से पण्डित गोपीनाथजी का तबादला बारहमूले के पास स्यालकोट मे होगया था अत उन्होंने महाराजजी से वही चलने के लिए निवेदन किया।

देरी साहब मे निवास और चमत्कार--प० गोपीनाथ ने महाराजजी के निवास और भोजनादि की सब व्यवस्था कर दी। पडितजी ने महाराजजी से कहा, "स्यालकोट मे देरी साहब नामक एक बडा एकान्त स्थान है। यहा एक सुन्दर चश्मा भी है। यदि आप वहा ठहरना पसन्द करे तो आपका वहा पर प्रबन्ध कर दू। यदि वहा निवास पसन्द न हो तो फिर एक नम्बरदार के मकान मे कर दू। यह भी स्थान बडा एकान्त और शान्त है। महाराजजी ने दोनो स्थान देखने के पश्चात् अपना निर्णय देने की इच्छा प्रकट की। दोनो स्थानो का निरीक्षण कर चुकने के पश्चात् महाराजजी ने देरी साहब मे निवास करना पसन्द किया। नम्बरदार करतारसिह ने इन्हे अपने पास ठहराने का बहुत आग्रह किया किन्तु महाराजजी ने उस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया क्योकि उनकी युवती पत्नी घर मे अकेली रहती थी। इस भाव को नम्बरदार से प्रकट भी किया किन्तु तब भी उसने हठ नही छोडा और कहा, "महाराजजी, मेरी पत्नी तो आपकी पुत्री के समान है। आपको यहा रहने मे कोई एतराज नही होना चाहिए।" महाराजजी ने उस बात को अस्वीकृत करते हुए कहा, "तुम व्यर्थ का हठ मत करो, मैं तुम्हारे मकान मे नही ठहर सकता। सुनो शास्त्र क्या आदेश करता है। 'मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वासमप्यपकर्षति।' अर्थात् माता, बहिन, पुत्री यदि युवती हो तो उनके पास एकान्त मे कभी न बैठे क्योकि इन्द्रिया बलवती है। सर्वशास्त्रपारगत व्यक्ति के भी उनके वशीभूत हो जाने की सभावना रहती है।" करतारसिह यह बात सुनकर मौन रह गया। थोडा ठहर कर पुन निवेदन किया, "महाराजजी, आपका देरी साहब रहना तो उचित न होगा। वहा कोई कभी रहता ही नही। एक बार एक सन्त वहा जाकर रहने लगे थे। किसी भूत या प्रेत ने उनके मुह पर इतने चाटे मारे कि वह बेचारा सन्त उस पीडा से मृत्यु को प्राप्त होगया, तब से आज तक कभी कोई भी वहा नही रहा। इसलिए मेरे विचार मे तो आपको वहा निवास नही करना चाहिए। वहा तो बडा पुण्यात्मा महापुरुष ही निवास कर सकता है। कोई साधारण व्यक्ति वहा नही रह सकता। आप मेरे मकान मे ही रहिए। मै अपनी पत्नी को किसी दूसरे स्थान पर प्रबध करके वहा पहुचा आता हू।" श्रीमहाराजजी ने हसते हुए कहा, "क्या आप हमे मामूली आदमी ही समझते है? बहुत बडा पुण्यात्मा और देवपुरुष नही समझते?" करतारसिह ने हाथ जोड कर विनम्रता से

कहा, "जब तक आपका कोई चमत्कार न देख लिया जाए तब तक आपको देवपुरुष कैसे माना जा सकता है?" महाराजजी ने देरी साहब मे ही अपने निवास का प्रबन्ध करने के लिए आदेश दिया। करतारसिंह ने इनके निवास और भोजनादि की सब व्यवस्था देरी साहब मे करवा दी।

देरी साहब मे निर्भय होकर निवास और कुटिया का जीर्णोद्धार—काश्मीर रियासत मे बारहमूला तहसील मे स्यालकोट नाम का एक ग्राम था। इसकी जनसंख्या प्राय सारी सिक्खो की थी किन्तु ये लोग हिन्दू धर्म पर विश्वास करते थे। श्री गुरु गोविन्दसिहजी के समय मे एक सन्त रोचासिंह यहा पर तपश्चर्या किया करते थे। ये सन्त पढे लिखे थे और बडे ईश्वरभक्त थे। गुरु गोविन्दसिंह ने इनसे प्रार्थना की कि "देश पर आपत्ति के बादल मडरा रहे है। यवन देश को पादाक्रान्त करते जा रहे है। अत आप देश की सेवा मे मेरी सहायता करे। तलवार हाथ मे लेकर मुसलमानो से युद्ध करने के लिए मैदान मे उतरे और देश की यवनो से रक्षा करें। इस समय यही सबसे उत्तम ईश्वरभक्ति है।" ये बाते सुन कर सन्त खडे होगए और हाथ मे तलवार लेकर गुरु गोविन्दसिंह के साथ चल दिए। उन्होने उस समय देश और धर्म की रक्षा मे सहयोग देना अपना परम कर्तव्य समझा। यह इन्ही सन्त महाराजजी की कुटिया थी। देवदार की लकडी की बनी हुई थी और सैकडो वर्ष पुरानी थी। उसी समय से सन्तो के नाम से एक गाव जागीर रूप मे मिला हुआ है और परम्परा से निर्मल सन्तो की गद्दी के अधिकार मे चला आरहा है। इनकी गद्दी पुछ मे है। कुटिया की रक्षा के लिए ऊपर एक छज्जा-सा बना हुआ है। महाराजजी सायकाल के पश्चात् इस कुटिया मे पधारे थे। इसमे इनके लिए एक चारपाई बिछा दी गई थी। सामान विधिपूर्वक जमा दिया गया था। लालटेन जलाकर रख दी गई थी। रात्रि के दस बजे तक महाराजजी ध्यान मे बैठे रहे और १० बजे से २ बजे तक इन्होने शयन किया। दो बजे उठकर पुन ध्यान मे बैठ गए और आठ बजे तक बैठे रहे। ग्राम के लोग कुटिया के सामने आकर एकत्रित होगए, यह देखने के लिए कि सन्त इसमे सुरक्षित तो है। कही किसी भूत या प्रेत ने इनकी हत्या तो नही कर दी। प्रात काल जब करतारसिंह दूध लेकर आए तो निवेदन किया, "महाराजजी, हमे तो रात भर नीद नही आई। यही चिन्ता लगी रही कि कही भूत-प्रेतो ने आकर आपको तग न किया हो और मार-पीट न की हो।" महाराजजी ने मुस्कराते हुए कहा, "हमने सब भूत और प्रेत यहा से भगा दिए हैं। हम तो यहा पर बडे सुखपूर्वक सोए। हमे किसी ने यहा तग नही किया। हा, एक आदेश अवश्य मिला और वह यह कि इस कुटिया का जीर्णोद्धार होना अत्यन्त आवश्यक है। आप हमे कुछ गेन्तिया, फावडे और टोकरिया आदि मगवा दीजिए। कुटिया के सामने एक बहुत बडा चबूतरा बनाने का विचार है। जो लोग यहा पर माथा टेकने आया करेगे उनसे यहा मिट्टी डलवाई जाया करेगी।" करतारसिंह ने महाराजजी के आदेश का पालन किया और सब सामान मगवा दिया। महाराजजी ने दो कुली इस काम के लिए मगवा लिए और स्वय भी काम करने लगे। जब यह समाचार गाव मे पहुचा तो बहुत से लोग वहा पर दर्शनार्थ आगए और काम करने लगे। सन्त रोचासिंह की कुटिया को माताए लीपने के लिए आया करती थी। अनेक वर्षो से लिपाई होते-होते कुटिया के फर्श का कही पता भी नही चल रहा था और इस

लिपाई से जमीन इतनी ऊची होगई थी कि कही खडे रहने को भी स्थान नही बचा था ।

आश्चर्यजनक प्रसाद की प्राप्ति—एक दिन ४०-५० पुरुष सेवा के लिए आए। महाराजजी ने कुटिया के फर्श को स्वय खोदना प्रारम्भ कर दिया। लोग डर के कारण हाथ नही लगाते थे परन्तु खडे हुए तमाशा देख रहे थे। कुटिया लगभग ७-८ फीट लम्बी तथा चौडी थी। जब फर्श दो-तीन फीट खोदा जा चुका तो अन्दर कुटिया के फर्श के बीच मे एक ४-५ इच लम्बा-चौडा खुड्ड-सा निकला। इसमे ५ कागजी बादाम रखे हुए थे। यहा किसी चूहे इत्यादि का न बिल था और न ही बिल का कोई मार्ग ही दिखाई देता था। इस खुड्ड का सम्बन्ध बाहर से तो था नही। यह कुटिया के बीच मे कैसे बन गई और इसमे बादाम कहा से आए, यह बात किसी की समझ मे नही आई। महाराजजी से वहा पर एकत्रित जनता ने कहा कि ये बादाम सन्त रोचासिह का प्रसाद समझना चाहिए, क्योकि हम सब इस पवित्र स्थान का जीर्णोद्धार कर रहे है। महाराजजी ने एक मन चीनी मगवाई और छिलके सहित इन बादामो को पीस कर इसमे मिला दिया। इसमे से प्रसाद रूप मे थोडा-थोडा सबको बाट दिया गया और शेष भविष्य मे वितरित करने के लिए रख दिया गया। इस कार्य तथा प्रसाद की सारे काश्मीर मे प्रसिद्धि होगई। सभी लोग सेवा-कार्य तथा दर्शनार्थ आने लगे। कोई फल लेकर, कोई दूध तथा कोई दही, घी, चावल आदि और कोई चीनी, सब्जी आदि लेकर आते थे। सारा दिन मेला-सा लगा रहता था और सेवा-कार्य बराबर चलता रहता था। माताए भोजन बनाने तथा सेवा करने आया करती थी। दिन भर खूब रौनक लगी रहती थी। थोडे ही दिनो मे बडा भारी चबूतरा बन कर तैयार होगया। जब पुछ के महन्तजी को देरी साहब मे ब्रह्मचारी सन्तजी के आने का तथा कुटिया के जीर्णोद्धार का पता चला तब ये भी महाराजजी के दर्शनार्थ आए और सेवा बनाने के लिए निवेदन किया। महाराजजी ने इनसे कहा, "आपको इस स्थान के नाम मे जो एक गाव जागीर मे मिला हुआ है उससे बहुत आमदनी होती है, किन्तु आपने इस स्थान के लिए कभी एक पैसा व्यय नही किया।" महन्त ने कहा, "महाराजजी ! हमारी तो हिम्मत ही इस स्थान पर आने की कभी नही होती। केवल कभी-कभी माथा टेकने के लिए आते है और इसके पश्चात् तुरन्त चले जाते है। यहा कुछ करने या ठहरने का साहस ही नही होता। अब आप पधारे है और यह साहस किया है इसलिए अब आपकी जो आज्ञा होगी वैसा किया जाएगा।" महाराजजी ने उन्हे एक पाच या छ कमरो की धर्मशाला बनाने का आदेश दिया जिससे सन्त-महात्मा यहा निवास कर सके और गृहस्थी भी कभी-कभी आकर ठहर सके और कहा कि स्थानाभाव के कारण मै भी बाहिर डेरा लगाकर जैसे-तैसे यहा पर रहता हू। महन्तजी महाराजजी के व्यक्तित्व, परिश्रम, साहस, वीरता तथा सेवा-कार्य से बडे प्रभावित हुए और तुरन्त धर्मशाला के निर्माण का कार्य प्रारम्भ करवा दिया। समीप ही एक चश्मा था, उसको भी मरम्मत करवा कर ठीक बनवा दिया। अब देरी साहब एक अत्यन्त सुन्दर तथा सुखप्रद स्थान बन गया। अब इसने एक तीर्थ स्थान का रूप धारण कर लिया और दूर-दूर से लोग इस स्थान के दर्शन करने के लिए आने लगे। महाराजजी के रावलपिडी के कई भक्त यहा पर अभ्यास करने के लिए आगए। वैद्य धर्मचन्द, योगी

अमरनाथ, उनकी धर्मपत्नी तथा पुत्री तथा और भी कई सन्त आकर उपस्थित होगए। सरदार करतारसिह महाराजजी के अनन्य भक्त बन गए थे। इनके पास फलो के कई बगीचे थे। फलो की पेटिया भर-भरकर महाराजजी के लिए भेजते थे। बाहर से आए हुए भक्त फल खा-खाकर ऊब गए थे। ब्रह्मचारीजी भक्तो को फल और बादाम मिश्रित चीनी दिया करते थे।

नम्बरदार करतारसिंह को पुत्रोत्पत्ति का वरदान—करतारसिंह नि सन्तान थे। इसीलिए वे बडे चिन्तित रहते थे। एक दिन आकर वे महाराजजी के चरणो पर गिर पडे और चरण पकडकर जोर-जोर से रोने लगे और निवेदन किया कि "मैंने आपके देवत्व और महापुरुषत्व और महानता को प्रत्यक्षरूप मे देख लिया है। मैं नि सन्तान हू, जब तक आप मुझे पुत्रवान् होने का आशीर्वाद न देगे मैं आपके चरण न छोडूगा।" जब इनको चरणो मे पडे हुए बहुत देर होगई तब महाराजजी ने कहा, "अच्छा, उठो, कुछ उपाय करते है। रोओ मत, चिन्ता भी मत करो, भगवान आप पर दया करेंगे।" महाराजजी ने दोनो पति-पत्नी को ब्रह्मचर्य पालन के लिए कहा और दो मास में उनके मानसिक प्रयोग से करतारसिह की धर्मपत्नी गर्भवती होगई और दस मास बाद वह पुत्रवती होगई। जब यह बालक डेढ साल का हुआ तो एक बार उसे दस्त लग गए। एक सिक्ख सन्त ने इन्हे रोकने के लिए अफीम कुछ अधिक मात्रा मे दे दी जिससे उसकी मृत्यु होगई। मनुष्य कुछ सोचता है और विधाता के मन मे कुछ और ही होता है। लगभग ५० साल की आयु मे करतारसिह के घर महाराजजी के आशीर्वाद से बालक ने जन्म लिया था किन्तु उनके भाग्य मे सन्तान का सुख नही था और एक सन्त के हाथ से उसकी मृत्यु हुई। एक सन्त के आशीर्वाद से जन्म हुआ और दूसरे के हाथ से मृत्यु। महाराजजी यहा अक्तूबर मास तक रहे। सन्त रोचासिह के स्थान के जीर्णोद्धार तथा करतारसिह के पुत्रोत्पत्ति के कारण इनकी प्रसिद्धि सारे काश्मीर मे होगई थी। सभी इनकी भूरि-भूरि प्रशसा करते थे और दर्शनार्थ आने वालो का एक बडा मेला-सा लगा रहता था। सैकडो की सख्या मे नर-नारी अपनी कामनाओ को लेकर आते थे और महाराजजी के आशीर्वाद से उनकी मनोकामनाए सिद्ध हो जाया करती थी।

अमृतसर गमन—इस बार दीपावली के अवसर पर रावलपिंडी होते हुए महाराजजी अमृतसर पहुचे। अबकी बार बाबू मुलखराजजी के पास ब्रह्मनगर मे निवास किया। यहा पर केवल एक मास तक ही रहे। मोतीरामजी की बगीची मे तब से रहना बन्द कर दिया था जब से बुद्धिप्रकाशजी विवेकहीनता के कारण पतन के गहन गर्त मे गिरे थे। इसीलिए अबकी बार मुलखराजजी की कोठी मे निवास किया था। वहा पर एक मास तक बराबर नित्यप्रति उपनिषदो की कथा करते रहे। सैकडो नर-नारी इनके उपदेशामृत का पान करने आते थे। अमृतसर मे केवल एक मास रहे। इसके पश्चात् हरिद्वार चले गए। वहा पर मोहन आश्रम मे निवास किया। यहा आकर तीन मास का मौनव्रत किया और दो मास तक अभ्यासी शिष्यो को अभ्यास करवाया। अभ्यास काल मे बहुत से साधको ने लाभ उठाया। वैशाखी के कुछ दिन पश्चात् काश्मीर के लिए प्रस्थान किया और जालन्धर, होशियार-पुर, अमृतसर तथा रावलपिंडी होते हुए श्रीनगर पहुच गए।

श्रीनगर निवास

यहा पर पूर्ववत् पण्डित गोपीनाथजी के मकान पर ठहरे। इन दिनो इनके भाई विश्वनाथ की पुत्री गौरी का विवाह था। केवल तीन-चार दिन ही शेष थे। महाराजजी को इसकी कोई सूचना नही थी। ये विना सूचना दिए ही उनके मकान पर पहुच गए।

प० गोपीनाथ विश्वनाथ के गृह का त्याग--सदैव की भाति अवकी वार महाराजजी के पधारने पर परिवार को प्रसन्नता नही हुई क्योकि वरात वालो ने सामिष भोजन के लिए वडा आग्रह किया था और ये दोनो भाई महाराजजी के सामने यह धृष्टता करना नही चाहते थे। अव ये वडी चिन्ता मे पड गए, किंकर्त्तव्यविमूढ होगए। वे महाराजजी को नाराज करना नही चाहते थे। गत २० वर्ष मे इनका वरद हाथ उनके सिर पर रहा था। इनके प्रति वडी श्रद्धा और भक्ति थी। इनके साथ वहुत पुराना प्रेम था। ये सदैव आकर इनके पास ही ठहरा करते थे। अव इनसे कही अन्यत्र ठहरने के लिए निवेदन कैसे किया जा सकता था! इधर लडके वाले मासाहार के लिए हठ कर रहे थे। महाराजजी से किसी प्रकार का निवेदन करने का इनका साहस नही होता था। सारा परिवार चिन्ताग्रस्त था। प० विश्वनाथजी के एक मित्र थे। ये डाक्टर थे। ये महाराजजी के भी परम भक्त थे। इन्होने महाराजजी से वस्तुस्थिति निवेदन करने का साहस किया और इस जटिल समस्या को हल करने की प्रार्थना की। महाराजजी ने लडके वालो को जाकर समझाने की इच्छा प्रकट की किन्तु कन्या-पक्ष के प्राय सभी लोग वर-पक्ष वालो को समझा-समझाकर थक गए थे किन्तु वे टस से मस नही हुए और अपनी वात पर अडे रहे। यहा तक कि ये इस वात पर सम्वन्ध-विच्छेद करने पर भी उतारू होगए। महाराजजी ने आदेश दिया कि मेरे सामने इस मकान मे मासाहार नही हो सकता और यदि मैं चला जाऊगा तो फिर कभी इस घर मे पैर न रखूगा और यदि मैं इस समय घर मे रहूगा तो कभी मास पकने अथवा वकरे कटने नही दूगा। महाराजजी के वचन सुनकर सारे परिवार मे सन्नाटा-सा छा गया। सभी चिन्ताग्रस्त होगए। वडी विषम स्थिति उत्पन्न होगई। खुशी के स्थान पर गमी-सी छा गई। वहुत सोच-विचार के पश्चात् महाराजजी ने गोपीनाथजी से हारवन जाने की अपनी इच्छा प्रकट की। इनके विचार को सुनकर पण्डितजी व्याकुल होगए और रुदन करने लगे। हाथ जोडकर विनीतभाव से कहा, "महाराजजी! मै भाई का परित्याग कर सकता हू, लडकी के विवाह को स्थगित कर सकता हू, किन्तु आपका वियोग मेरे लिए असह्य है। मैं आपकी नाराजगी की कभी कल्पना भी नही कर सकता। आप न जाइए। यही रहिए, मै अभी विवाह रोक देता हू।" महाराजजी ने इन्हे वहुत समझाया और कहा, "भाई-भाई मे किसी प्रकार का मनोमालिन्य नही होना चाहिए। आप सहोदर है। एक ही मकान में रहते है। आप दोनो एक-दूसरे के सुख और दुख के साथी हैं। अत इस प्रकार की कोई वात करने की आवश्यकता नही। कन्या युवती है। कठिनाई से योग्य वर और घर प्राप्त हुआ है, अत विवाह स्थगित करने की भी कोई आवश्यकता नही। हम तो साधु है। रमते राम है। कभी-कभी आपके पास आ जाते है। हमारे लिए आप अपने सहोदर भाई से व्यवहार का परित्याग मत करे।

हमें इस बात की बडी लज्जा है कि इस बीस साल के सम्पर्क मे मैं आप लोगो के जीवन मे परिवर्तन न कर सका। अत अब मेरा यहा से चले जाना ही उचित है। अब तक तो कभी यह नही हुआ कि आपने मेरी उपस्थिति मे घर मे मासाहार बनाया हो या आपने इस प्रकार का आहार कभी किया हो।" आगामी दिवस महाराजजी चलने के लिए तैयार होगए। सारा परिवार रुदन करने लगा। गोपीनाथजी बडे जोर-जोर से रोने लगे। रोते-रोते सिसकिया लेने लगे। अबकी बार महाराजजी इनके मुफ्ती बाग मे भी नही गए। हारवन जाकर प० दीनानाथजी की कोठी पर ठहरे। इस कोठी के पास ही कुछ ऊपर पहाड पर एक मुसलमान का मकान २० वर्ष के लिए किराए पर ले लिया। हारवन झील से एक छोटी-सी नहर निकलती है। उसी के किनारे पर यह मकान अभी नया ही बनाया गया था। इसी समय इनके भक्त लाला भगवानदास, उनके पौत्र तथा पुत्रवधू आज्ञावती आ गए। इनको इस किराए के मकान मे ठहरा दिया गया। आज्ञावती छोटी उमर मे ही विधवा होगई थी। इसकी महाराजजी के प्रति बडी श्रद्धा और भक्ति थी और योग मे बडी निष्ठा थी। कई घण्टे नित्यप्रति अभ्यास किया करती थी। हरिद्वार मे जब साधना-शिविर लगता था तो यह अपने पारिवारिक सदस्यो के साथ आया करती थी। यह परिवार दो मास तक महाराजजी का उपदेशामृत पान करके वापस चला गया। बालब्रह्मचारी लक्ष्मणजू योगीराजजी के परम मित्र थे। ये बडे विद्वान् सन्त थे। इन्होने तीन मील की दूरी पर अपनी कोठी बनवा ली थी और इसी मे निवास करते थे। इन दोनो मे प्राय अध्यात्म विज्ञान के विषय मे विचारविमर्श हुआ करता था। दोनो का परस्पर बहुत स्नेह था। दोनो एक ही पथ के पथिक थे। प० महानन्द, प० शिवजी गडयाली तथा प० राधाकृष्ण टिक्कू महाराजजी के अनन्य भक्त थे। कई-कई दिन तक इनके उपदेशो को श्रवण किया करते थे। प० राधाकृष्ण प० गोपीनाथ के साले थे। हारवन आते समय महाराजजी प्राय इनके मकान पर ठहरा करते थे। ये इनसे बहुत प्यार करते थे। पण्डितजी ही इनके लिए ऊनी अथवा पशमीने का कपडा खरीदकर दिया करते थे। महाराजजी ने इन्हे लाला देवीदासजी अमृतसरवालो का काश्मीर के व्यापार मे हिस्सेदार बनवा दिया था।

प० द्वारिकानाथजी को प्रसाद---दरबाग के पडित द्वारिकानाथजी, केशवनाथजी के लघुभ्राता थे। जब ये स्कूल मे पढते थे तब महाराजजी के उपदेश श्रवण करने के लिए आया करते थे। दशम कक्षा पास करके इन्होने अध्ययन छोड दिया था। महाराजजी के सत्सग मे प्राय आया करते थे। इनके आदेश से ही इन्होने कृषि प्रशिक्षण केन्द्र पर जाकर दो साल तक कृषि विद्या पढी थी। एक दिन जब ये परीक्षा मे सफलता लाभ करके इनके चरण स्पर्श करने आए तो महाराजजी ने इन्हे १००) प्रसाद रूप मे देकर आशीर्वाद दिया और कहा, "जाओ, इस रुपये से व्यापार प्रारभ करो, सफलता लाभ करो, बढो, फूलो और फलो !" महात्माओ के आशीर्वाद सदैव 'सद्य फलानि' होते है। वे शीघ्र फलीभूत हो जाते हे। द्वारिकानाथ ने महाराजजी से आशीर्वाद के रूप मे प्राप्त १००) से व्यापार किया और इसमे ६००) का लाभ हुआ। दूसरे वर्ष इस ६००) से ३०००) उपार्जन किया। धीरे-धीरे बीस-पच्चीस हजार रुपये की वार्षिक आय होने लगी। महाराजजी की इस कृपा और आशीर्वाद

को वे कभी नही भूले। सदैव इनके ऋणी रहे और इनका गुण-गान करते रहते है। इस समय वे कई सेवो के वागो के स्वामी है। एक वडा विस्तृत सीड फार्म है। इनके पास लाखो की सम्पत्ति है। महाराजजी की सेवा मे प्रतिवर्ष अपने वागो के मेवे और फल भेजा करते है।

पहलगाव मे साधना शिविर—सितम्वर मास के प्रारम्भ मे श्री महाराजजी पहलगाव पधारे। श्री जयकृष्णजी नन्दा महकमा जगलात के वडे अफसर थे। महाराजजी के वडे श्रद्धालु भक्त थे। इन्होने योगीराजजी से पहलगाव पधार कर योग प्रशिक्षण के लिए निवेदन किया था और निवासादि की सव व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। जयकृष्णजी की धर्मपत्नी पजाव के प्रसिद्ध महात्मा हसराजजी की सुपुत्री थी। अमृतसर के लाला श्रीकृष्ण खन्ना महाराजजी के अनन्य भक्तो मे से थे। ये महाराजजी को १००) मासिक इनके व्यय के लिए भेजा करते थे। कोटली मीरपुर की श्रीमती भाग्यवन्ती महाराजजी की शिष्या थी। इस प्रकार से ये सव तथा अन्य कई सज्जन सपरिवार इस योग प्रशिक्षण मे सम्मिलित हुए। महाराजजी के निवास का प्रवन्ध जगलात के महकमे के डाक-वगले मे किया गया था। महाराजजी प्रात चार से छ तक और सायकाल सात से साढे आठ वजे तक ध्यानाभ्यास करवाते थे तथा प्रात काल आठ से नौ तक आसन और प्राणायाम सिखाते थे। पहिली अक्तूवर तक यह कार्यक्रम चलता रहा। प्राय सभी अभ्यासियो की प्रगति सन्तोषप्रद थी और सभी वडे सन्तुष्ट थे।

श्रीनगर मे गुरुसहायमल की कोठी पर कथा—महाराजजी जव पहलगाव से वापस श्रीनगर पधारे तव अपने अनन्य भक्त लाला गुरुसहायमलजी की कोठी पर निवास किया। इनके सारे परिवार की महाराजजी के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। उनकी कोठी पर योगीराजजी नित्यप्रति सायकाल ३ वजे से ४ वजे तक कथा किया करते थे। इन दिनो महाराजजी के भक्त देवीदासजी तथा अन्य कई भक्त अमृतसर से श्रीनगर आए हुए थे। महाराजजी यहा १५ दिन ठहरे और १५ दिन तक कथा की। सैकडो नर-नारियो ने इस कथा से लाभ उठाया।

अमृतसर गमन—इसके पश्चात् महाराजजी देवीदासजी की मोटर गाडी में उनके साथ अमृतसर पधारे। यहा पर वावू मुलखराज की कोठी पर नित्यप्रति इनकी कथा होती थी। सभी भक्त और अध्यात्म मे रुचि रखने वाले सैकडो नर-नारी इसमे सम्मिलित होते थे और लाभ उठाते थे। यहा पर भी महाराजजी ने योग प्रशिक्षण का कार्यक्रम रखा था। प्रात साय दोनो समय योग साधना करवाते थे। एक मास तक यह कार्यक्रम चलता रहा। श्री महाराजजी ने अमृतसर मे रहकर वहुत वर्षो तक तपश्चर्या और योग-साधना की थी। यहा पर हजारो ही स्त्री-पुरुष इनके भक्त थे।

लाला श्रीकृष्ण को टैक्स से मुक्त करवाना—अमृतसर मे एक दिन महाराजजी के परम भक्त श्रीकृष्ण ने आकर इनके चरण पकड लिए और निवेदन किया, "मुझे इन्कम-टैक्स के अफसर वहुत तग कर रहे है। अन्यायपूर्ण ढग से मुझ पर एक भारी रकम टैक्स की लगा दी गई है। आप मेरी रक्षा कीजिए। आप ही मुझे इससे वचा सकते हैं। अपने शिष्य पर अन्याय होते हुए तथा उसे सकट मे पडा देखकर महाराजजी को वडी दया आई। अफसर के ऊपर महाराजजी ने अपने मनोवल का प्रभाव

डाला और उसने श्रीकृष्ण के पक्ष मे अपना निर्णय दे दिया। इस प्रकार से अपने भक्त को सकट से मुक्त किया। जब मुनीम हसता हुआ लालाजी के पास आया और अफसर के रुख की प्रशसा करने लगा और उनके पक्ष मे फैसला देने की बात करने लगा तब उन्होने कहा, "अरे, फैसला देने वाले तो ऊपर छत पर समाधिस्थ होकर बैठे है। आओ, उनके पास जाकर क्षमा-याचना करे। हमने आज उनको बहुत कष्ट दिया है।" लालाजी, उनका मुनीम तथा अन्य कार्यकर्ता सभी जाकर महाराजजी के चरणो मे पड गए। समाधि से व्युत्थान होने पर मुनीम ने सारा समाचार महाराजजी मे निवेदन किया। इस दिन से लालाजी की महाराजजी के प्रति श्रद्धा और भक्ति और भी अधिक बढ गई और वे इन्हे भगवान के तुल्य समझने लग गए।

हरिद्वार मे पातजलाश्रम मे काष्ठ मौन—एक मास तक अमृतसर मे वहा की तृषार्त जनता को अपनी अध्यात्म-सुधा का पान कराकर श्री महाराजजी मोहनाश्रम पधार गए। मोहनाश्रम के पास ही स्वामी तेजानन्द का पातजलाश्रम है। यह अधिक एकान्त था, इसमे निवास करके एक साल का मौनव्रत करने का विचार किया। इस आश्रम के सरक्षक स्वामी अमरनाथजी थे। १० रु० मासिक किराए पर इसे ले लिया गया और महाराजजी के लिए फलादि लाने का कार्य भी इन्ही के सुपुर्द कर दिया गया। योगीराजजी ने नमक, चीनी तथा अन्न का परित्याग कर दिया था। ये केवल अमावस्या और पूर्णिमा पर ही अपना मौनव्रत खोलते थे। इन दिनो मलेरिया का बडा प्रकोप रहता था किन्तु लोगो ने इन्हे विश्वास दिला दिया था कि अन्न, मीठा और नमक न खाने वाले को मलेरिया ज्वर नही होता। एक वर्ष तक हरिद्वार मे रहकर ही इस व्रत को पूरा करने का निश्चय कर लिया, किन्तु स्वामी अमरनाथजी को कुछ मास के लिए हरिद्वार से बाहर कही अन्यत्र कार्यवशात् जाना था अत वे महाराजजी की मौनकाल मे पूरी सेवा नही कर सकते थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति थी कि एक वर्ष का मौन इस साल न करके आगामी साल किया जाए। इसलिए महाराजजी ने एक वर्ष का मौनव्रत स्थगित कर दिया और केवल ४ मास का काष्ठ मौनव्रत धारण किया। नियत समय पर मौनव्रत को समाप्त करके दो मास तक साधना शिविर लगाया। बहुत से अभ्यासी इसमे सम्मिलित हुए और प्राय सभी इससे लाभान्वित हुए। ज्येष्ठ मास मे गगोत्री जाने का विचार कर लिया।

गगोत्री निवास और अन्नक्षेत्र का प्रारम्भ

ज्येष्ठ मास मे गगोत्री के लिए प्रस्थान किया और मसूरी होते हुए उत्तर-काशी पधारे। एक सप्ताह तक यही विराज कर फिर गगोत्री चले गए। इस समय महाराजजी के पास अपने निजी व्यय के अतिरिक्त १४०० रु० दानार्थ थे। साधु-महात्माओ के हितार्थ इस धनराशि के व्यय करने के विषय मे स्थानीय सन्तो से विचार-विनिमय करने के पश्चात् यह निश्चय किया गया कि एक अन्नक्षेत्र खोला जाए। काली कम्बली वाला तथा पजाबी क्षेत्र तीन मास चलने के पश्चात् बन्द हो जाते थे। इसके बाद लगभग डेढ-दो मास तक कोई भी अन्नक्षेत्र यहा नही रहता। इससे बहुत से सन्तो को श्रावण मास मे ही नीचे गर्मी मे ही उतर जाना पड़ता है। अनेक सन्त उत्तरकाशी जाकर रोगग्रस्त हो जाते हैं, अत अन्नक्षेत्र खोलना उपयुक्त समझा गया। सबकी सम्मति सुनने के पश्चात् महाराजजी ने कहा, "हमसे यह प्रबन्ध

न हो सकेगा। हम तो केवल रुपया दे सकते हैं।" इस पर दयालमुनिजी ने तुरन्त सारी व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया और कहा, "लगभग २५-३० सन्त भोजन करेंगे। सारी खाद्य-सामग्री प्रारम्भ में क्रय कर ली जाएगी। जब दोनों क्षेत्र बन्द हो जाएंगे तो सन्त-महात्मा स्वयं ही मिलकर भोजन बना लिया करेंगे। किसी सेवक की भी आवश्यकता न होगी। हममें से कई सन्त ऐसे हैं जो बड़ी प्रसन्नता से इस कार्य को करेंगे।" महाराजजी ने दयालमुनिजी की बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया। आटा, चावल, दालें, घी, मसाले आदि सब सामान दयालजी ने खरीद कर रख लिया।

गंगोत्री में कुटियाओं का अत्यन्त अभाव था। महाराजजी के लिए दयालजी, गंगामुनिजी, ब्रह्मचारी प्रबोधानन्दजी और रघुनाथजी ने दो दिन में ही भोजपत्र की कुटिया बनाकर तैयार कर दी। योगीराजजी की सेवा के लिए उत्तरकाशी का रामगोविन्द नामक ब्राह्मण नियत था। वह उनके लिए भोजन बनाया करता था। गंगोत्री शीतप्रधान प्रदेश है अतः यहां पर दाल तीन-चार घण्टे में गलती है, इसलिए यह प्रथम ही अवसर था जब महाराजजी ने भोजन बनाने के लिए सेवक साथ रखा था। अन्यथा वे स्वयं-पाकी थे। अपना समस्त कार्य स्वयं करते थे। पूर्णरूपेण स्वावलम्बी थे। महाराजजी के लिए भोजपत्र की कुटिया स्वामी प्रज्ञानाथजी के स्थान पर बनाई गई थी क्योंकि वह भूमि समतल थी। पास ही जानकीदास नामक एक वैरागी सन्त रहता था। वह अत्यन्त सेवाप्रिय था। महाराजजी का सेवक यहां के शीत को सहन नहीं कर सका, बहुत घबरा गया और बीमार भी होगया। उत्तरकाशी वापस जाने के लिए आग्रह करने लगा। उसकी बीमारी का कारण यहां का शीत नहीं था। वह रात्रि को अपने लिए भोजन तो बनाता नहीं था। घी और चीनी चुरा कर खाया करता था। यहां पर हिमालय की ऊंचाई १०१५० फीट है। ऊंचे पहाड़ों पर घी और चीनी यदि अधिक मात्रा में खाए जाएं तो पचते नहीं और अनेक व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। सन्त जानकीदासजी ने महाराजजी से निवेदन किया, "नौकर को उसकी वृत्ति देकर आप विदा कर दीजिए। मैं आपकी सब सेवा करूंगा। आप मुझे सेवा का अवसर प्रदान करें। मैं आपके सेवक की अपेक्षा भी आपको अधिक आराम दूंगा और कुछ दिनों में आप सेवक को भूल जाएंगे।" महाराजजी ने सेवक को वेतन देकर विदा कर दिया और सन्त जानकीदास ने सब सेवा-कार्य सम्भाल लिया। ये अपनी धूनी पर ही जल गर्म करके महाराजजी को स्नानादि के लिए दे दिया करते थे और धूनी पर ही बहुत स्वादिष्ट भोजन तैयार करके खिलाते थे। उन्हीं दिनों क्षेत्र भी महाराजजी की ओर से चालू होगया और तीन-चार सन्त उसका कार्य करने लग गए। स्वामी तपोवन, कृष्णाश्रम और प्रज्ञानाथजी से महाराजजी का विशेष परिचय था और ये प्रायः एक-दूसरे के स्थान पर परस्पर मिलने जुलने के लिए जाया करते थे। ये सभी बड़े विद्वान् थे। डेढ़ मास तक क्षेत्र चला और उसका व्यय ८०० रु० हुआ। श्री दयालजी ने महाराजजी से निवेदन किया कि यदि ३०० रु० प्रतिवर्ष दे दिया जाया करे तो प्रतिवर्ष डेढ़ महीने के लिए क्षेत्र चल सकता है। घी की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल अन्न ही पर्याप्त रहेगा। इस बात को महाराजजी ने स्वीकार कर लिया। जो सन्त क्षेत्र में भोजन नहीं करते थे उन्हें नकद रुपया दे दिया गया।

धराली मे महर्षि स्वामी दयानन्दजी की गुफा के दर्शन—क्षेत्र समाप्त करके महाराजजी, जो सन्त उनके साथ जाना चाहते थे सबको लेकर धराली गए। संक्रान्ति के अवसर पर यहा पर सेलकू नाम का वडा मेला हुआ करता है। यहा पर सन्तो की अनेक कुटियाए थी। यहा के क्षत्रिय वडे आतिथ्य प्रिय हैं। सन्तो व महात्माओ, साधुओ और सन्यासियो का वडा आतिथ्य करते हैं। यहा पर महाराजजी छ दिन तक विराजे। ठाकुर नारायणसिह इनके दर्शन करने के लिए आए और निवेदन किया, "महाराजजी! हमारे गाव पर साधु-सन्तो की सदैव से वडी कृपा रही है। हमे उनकी सेवा और सत्सग का सौभाग्य प्राय मिलता रहता है। मेरे पिताजी सुनाया करते थे कि धराली से आधा मील की दूरी पर एक गुफा है जिसमे कई मास तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज विराजे थे। वे वडे विद्वान् तथा प्रतिभासम्पन्न सन्यासी थे। वेदो के प्रकाण्ड पडित थे। नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। महान् योगी थे। ब्रह्मनिष्ठ थे। तत्कालीन भारत के उद्धारक थे। वडे भारी समाज-सुधारक थे। इन्होने भारत के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक पतन के सुधार का प्रयत्न किया और अपने कार्यक्रम को स्थायी रूप देने के लिए आर्यसमाज की स्थापना की। मेरे पिताजी इनके लिए दोपहर के समय भोजन और रात्रि के समय दूध ले जाया करते थे। इनकी स्वामीजी महाराज के प्रति वडी श्रद्धा और भक्ति थी।" महाराजजी ने श्रद्धापूर्वक स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज की गुफा के दर्शन किए। कई वर्ष की वात है, एक वार धराली मे वडे जोर की वाढ आई थी और ग्राम के एक वडे हिस्से तथा कुटियाओ को वहाकर लेगई थी। तवसे सन्तो का निवास यहा छूट-सा गया है। इनके पूर्व यहा के निवासी सुखी और सम्पन्न थे। सन्तो-महात्माओ का आशीर्वाद सदैव मिलता रहता था। यहा के कुछ लोगो ने मिलकर महाराजजी से एक अवधूत सन्त के चरित्र के सम्बन्ध मे कुछ शिकायत की और कहा कि, "आप इन सन्तजी को सदाचार के नियमो का पालन करने के लिए समझा दे और कह दें कि ये ग्राम मे भिक्षा के लिए न जाया करे। हम स्वय इनके लिए भोजन इनके निवास स्थान पर भिजवा दिया करेंगे।" श्री महाराजजी ने सन्तजी की वहुत भर्त्सना की और उन्हे सन्यासी के कर्त्तव्य का दिग्दर्शन करवाया।

सन्तो का न्यायालय—महाराजजी ने इस अवधूत को दयालजी और ब्रह्मचारी महावीर के द्वारा अपने पास वुलाया। ये स्वय एक ऊचे चवूतरे पर वैठे थे। जव उनको वुलाया गया तो सैकडो की सख्या मे नर-नारी तथा वच्चे उनको देखने के लिए खडे होगए। वे सव चिल्लाकर कहने लगे, "यहा पर योगियो का एक न्यायालय खुला है।" महाराजजी ने चवूतरे पर ऊचे वैठे हुए अपराधी सन्त से पूछा कि तुमने ग्राम मे अमुक लडकी से अनुचित व्यवहार क्यो किया था? अवधूत ने कहा, "मैं तो इसे अपनी माता समझता हू और जो कुछ किया इसी भावना से किया था।" महाराजजी ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा, "यदि तुममे उसके प्रति मातृ-भावना थी तो तुम्हे उसके चरण पकड़ने चाहिए थे। तुम्हारे कुकर्म से यह सिद्ध होता है कि तुम दुराचारी हो। तुम साधु-समाज को वदनाम कर रहे हो। तुम साधुओ मे रहने के योग्य नही हो। तुम्हे अपने आश्रम की भी लाज नही है।" ब्रह्मचारी महावीर एक वहुत वडा डण्डा उठा लाए और इससे उस अपराधी अवधूत की खूव मरम्मत की। इस मार-पीट के पश्चात् उसके हाथ मे

गंगाजल देकर प्रतिज्ञा करवाई कि आज से वह कभी किसी के साथ दुर्व्यवहार नही करेगा। सब देवियो को अपनी माता, पुत्री और बहिन समझेगा।

धरानी मे मेलकू के मेले पर ग्रामवासी दलिये जलाकर सब इकट्ठे होकर मंदिर मे दर्शन करने जाते है, गंगाजल पान करते हैं और दर्शन और पूजा करके ग्राम मे आते है और एक मंदिर के सामने गोलाकार बनाकर नृत्य करते है। गीत गाते हैं। नृत्य के साथ-साथ ढोल तथा बाजा भी बजाया जाता है। ग्राम के सभी लोग इसमे भाग लेते है और दूर-दूर से भी लोग इसे देखने के लिए आते है।

अमृतसर मे योग प्रशिक्षण—महाराजजी अपनी सन्त-मण्डली के साथ उत्तर-काशी पधार गए और वहा पर कुछ दिवस तक ठहर कर हरिद्वार के लिए प्रस्थान कर दिया। वहा पर उनके परम भक्त तथा शिष्य गुरुचरणदत्त के कई पत्र आए कि आप अमृतसर पधारे। वहा के सब लोग तो वहा साधना के लिए जा नही सकते। इसलिए वहा पर भी दो मास का समय साधनाभ्यास का रखने की कृपा की जाए। निवासादि का सब प्रबन्ध मुलखराजजी की कोठी पर हो जाएगा। महाराजजी ने उनके अनुरोध और आग्रह के कारण अमृतसर पधारना स्वीकार कर लिया। वहा पधार कर महाराजजी ने प्रात ४ बजे से ६ बजे तक तथा साय ७ से ८ बजे तक का समय योग प्रशिक्षण के लिए नियत किया और अपराह्न मे तीन से साढे चार बजे तक कथा हुआ करती थी। इस कथा से अमृतसर की जनता ने बडा लाभ उठाया और अभ्यासियो की साधना मे प्रगति भी ऊची रही।

हरिद्वार मे निवास तथा मौन व्रत—दो मास के पश्चात् महाराजजी अमृतसर से वापस हरिद्वार पधार गए। वहा पर मोहनाश्रम मे निवास किया। ४ मास का मौन व्रत धारण किया और उसकी समाप्ति पर दो मास के लिए योग प्रशिक्षण किया।

गंगोत्री गमन—हरिद्वार से योग प्रशिक्षण के उपरान्त महाराजजी उत्तरकाशी होते हुए गंगोत्री पधारे। वहा पर स्वामी प्रज्ञानाथजी की कुटिया मे निवास किया। ये काश्मीर चले गए और वहा पर हारवन मे महाराजजी की कुटिया मे ठहरे। इन्होने प्रज्ञानाथजी को ५० रु० काश्मीर जाने के लिए दिए और इन्होने वहा के लिए प्रस्थान कर दिया। प्रज्ञानाथजी की कुटिया मे खटमल बहुत थे अत महाराजजी को अपने लिए पुन भोजपत्र की कुटिया बनवानी पडी। दयालजी ने दो चार दिन मे ही बनवाकर तैयार करवा दी। योगीराजजी ने एक बार स्वामी कृष्णाश्रमजी अवधूत से बड़े दुखी होकर कहा, "आप हिमालय निवासी बहुत बडे महात्मा है। आपका सेवार्थ अपने पास एक शिष्या को रखना उचित-सा प्रतीत नही होता। आप त्यागी तथा वैरागी अवधूत है। आपका आचरण बडा शुद्ध और पवित्र है। इसमे कोई सन्देह नही है। आपकी इसके प्रति बडी शुद्ध भावना है और आप इसे पुत्रीवत् ही समझते है। किन्तु यह लोक-मर्यादा और शास्त्र के विरुद्ध है। लोकविरुद्ध आचरण करने से व्यर्थ मे ही अपवाद होता है। समाज पर इसका अच्छा प्रभाव नही पडता है। यदि आपको सेवा के लिए ही इसकी आवश्यकता है तो मै आपको एक नौकर रख देता हू। उसका वेतन भी मै ही प्रतिमास चुका दिया करूगा। यदि यह आपको पसन्द न हो तो मै आपकी सेवा के लिए एक साधु नियत कर देता हू।" इस पर भगवत्स्वरूपा देवी जो स्वामी कृष्णाश्रमजी के पास रहती थी बोली, "यदि महाराजजी मुझे अपनी सेवा से वंचित

करेगे तो मे गगा मे डूबकर मर जाऊगी।" इस पर अवधूतजी ने महाराजजी को लिख कर समझाया (क्योकि यह सदा से मौन ही रहते थे) कि इसको पहिले भी कई सन्त-महात्माओ ने समझाया है। ब्रह्मचारी शहनशाह ने इसको यहा से हटाने के लिए कई दिन की भूख हडताल भी की थी किन्तु यह देवी तब भी न मानी थी। अपनी ज़िद पर अडी रही थी। अपने माथे पर ज़ोर से हाथ मारकर इन्होने पुन कहा कि "मेरा कर्म-भोग ही ऐसा है। तब ही तो इस प्रकार का साधन बन गया। अब तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि या तो यह मरे तब मेरा पीछा छूटे या मैं मरू तब काम बने। मुझे सेवा की जरूरत है। बिना वेतन के यह सेवक मिला हुआ है। आप भी इसे ऐसा ही समझे।" महाराजजी इन सब बातो को सुनकर मौन होगए। कर भी क्या सकते थे! समझाना मात्र ही इनका कर्त्तव्य था। स्वामी प्रज्ञानाथ और स्वामी तपोवन अच्छे विद्वान् तपस्वी थे। त्यागी और वैराग्यवान थे। इन्होने कई ग्रथो की रचना भी की थी। गगोत्री मे अन्य भी कई उत्तम सन्त थे। अध्यात्मज्ञान प्राप्ति और सिद्धि के लिए हिमालय से श्रेष्ठ और कोई स्थान नही है, अत श्री महाराजजी ने अब हिमालय मे निवास करने का निश्चय कर लिया। गगोत्री निवास मे कई प्रकार की कठिनाइया है। फल तथा ताजी सब्जी यहा प्राप्य नही है। केवल आटा, दाल, चावल, घृतादि ही मिलते हैं। बाल बढ जाए तो यहा नाई नही और कपडे फट जाएँ तो दर्जी नही, जूता फट जाए तो मोची नही, बीमार हो जाए तो डाक्टर नही, यहा तक कि यदि मर जाए तो कफन भी नही। डाकखाना और तारघर नही। यदि ५० रु० से अधिक कभी मनिआर्डर आए तो उसे लेने के लिए यहा से ५६ मील दूर उत्तरकाशी जाना पडता था। १५-२० दिन मे यहा डाक आती थी। यहा की इस प्रकार की विविध कठिनाइयो का ध्यान करके बद्रीनाथ निवास करने का विचार हुआ क्योकि वहा पर सभी प्रकार की सुविधाए थी।

गोमुख निवास—श्री महाराजजी ने दयालजी और एक नवयुवक सन्त परमानन्द अवधूत को साथ लेकर गोमुख के लिए प्रस्थान किया। १५-२० दिन के लिए खाद्य-सामग्री एक कुली से उठवाकर चल दिए। गोमुख गगोत्री से केवल १०-१२ मील की दूरी पर है। एक दिन चीडवासा धर्मशाला मे ठहरे। दूसरे दिन गोमुख से इधर एक गुफा मे आसन लगाया। यहा पर जलाने की लकडी बडी आसानी से मिल जाती है। जलस्रोत भी समीप है। भ्रमण करते-करते गोमुख स्नानार्थ भी चले जाते थे। पजाब कागडा के गद्दी लोग इधर बकरिया चराने आया करते थे इसलिए इनसे दूध आसानी से मिल जाया करता था। ये लोग दूध के दाम इनसे नही लेते थे। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक बिना दाम ही ये लोग जितना चाहते उतना दूध ले लिया करते थे। तीनो नित्यप्रति गोमुख स्नान के लिए जाते थे। जब कभी वर्षा होती थी तो स्नान स्रोत पर ही कर लेते थे। गगाजल अत्यन्त शीतल था। गोता लगाते समय शरीर में पीडा होने लगती थी। सूर्य मे तपी हुई रेत मे लेटने से अथवा गर्म रेत शरीर पर डालने से यह दर्द मिट जाता था। यहा पर गगाजी के ऊपर लगभग १०० फीट मोटी बर्फ की तह जमी हुई थी। अनेक वर्षों से जमकर यह बर्फ इतनी कठोर होगई थी कि कुल्हाडी से काटने पर भी नही कटती थी। बर्फ की यह तह कई फर्लांग चौडी थी। इसका विस्तार एक ओर बद्रीनाथ तथा दूसरी ओर केदारनाथ तक था।

वद्रीनाथ यहा से २५ मील है और केदारनाथ २० मील है। यह एक वडा भारी ग्लेशियर है। वद्रीनाथ और केदारनाथ के वीच वीस हजार फीट से लेकर तेईस हजार फीट तक के वडे विशाल पर्वत हैं। ये सभी वर्फ से आच्छादित है। गोमुख के पास ही नीलस्तम्भा नामक एक विशाल पर्वत है। एक ओर शिवलिंग पर्वत है जिसकी गोलाई शिवलिंग के समान है। यह सदा हिमाच्छादित रहता है। जिन्होने कभी गोमुख की यात्रा नही की उन लोगो का ऐसा अनुमान होता है कि गोमुख पत्थर का वना हुआ होगा जिसके मुह मे से गगाजी निकल रही होगी। यह धारणा भ्रममूलक है। गोमुख से इतनी मोटी जल की धारा निकलती है कि यदि हाथी भी उसको पार करना चाहे तो तुरन्त उसके प्रवल वेग मे वह जाए। वर्फ के पहाड के नीचे से गगा निकलती है। महाराजजी १५ दिवस तक गोमुख मे निवास करके लौट आए। गगोत्री मे अव अत्यधिक शीत होगया था अत विजयादशमी के पश्चात् उत्तरकाशी पधार गए।

हरिद्वार मे पातजलाश्रम मे एक वर्ष का मौन व्रत—उत्तरकाशी मे पजावी क्षेत्र मे एक मास तक निवास किया। इसके पश्चात् हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया। यहा पर मोहन आश्रम मे ठहरे। यहा पर स्वामी विशुद्धानन्दजी का आश्रम के प्रवधको के साथ कुछ झगडा-सा चल रहा था। इसमे आश्रम का वातावरण कुछ विक्षुव्ध-सा हो रहा था। इसलिए महाराजजी पातजलाश्रम मे चले गए और एक वर्ष तक मौन व्रत रखने का निश्चय कर लिया। अमरनाथजी को १० रु० मासिक देकर उनके द्वारा फल, सब्जी, दूध आदि वाजार मे मगवाने की व्यवस्था कर ली। अमरनाथजी स्वामी तेजनाथजी योगी के पोते चेले थे। अर्थात् वे शिष्य के शिष्य थे। आश्रम की सब व्यवस्था इन्ही के हाथ मे थी। महाराजजी ने नमक, मीठा, अन्नादि सव त्याग दिया था। केवल फल, सब्जी और दूध ही लेते थे। इन्होने कार्तिक पूर्णिमा को व्रत प्रारभ किया। एक मास तक सुविधानुसार मौनव्रत, नमक, चीनी तथा अन्न के विना भोजन ठीक-ठाक चलता रहा किन्तु इसके पश्चात् हृदय मे कुछ वेदना-सी रहने लगी। कई उपचार किए गए किन्तु दर्द मे किसी प्रकार भी कमी नही हुई। ग्यारह मास तक इस पीडा बराबर कष्ट देती रही। इसका कारण नमक और चीनी न खाना था। जब इन्होने खाना प्रारम्भ किया तो दो-तीन दिन मे ही दर्द जाता रहा। इसके लिए कोई उपचार नही किया गया था। महाराजजी नित्यप्रति सायकाल को ५ वजे के पश्चात् गगा के किनारे सप्तसरोवर की ओर भ्रमणार्थ जाया करते थे।

स्वामी अमरनाथजी अशिक्षित थे। इनका स्वभाव क्रोधी और चिडचिडा था। लोभी भी थे। महाराजजी अपने काम के लिए १० रु० मासिक तो इन्हे देते ही थे। इसमे वृद्धि करने के लिए यह वार-वार इन्हे तग करते थे। कभी-कभी फल और सब्जी ठीक न लाते थे। कभी-कभी दूध मे गडवड कर देते थे। महाराजजी ने इन्हे कई वार समझाया कि व्रत की समाप्ति पर रुपए वढा दिए जाएगे क्योकि उस समय इनके पास रुपया कम था। इनको महाराजजी की वात पर विश्वास नही होता था। ये इनसे वडे परेशान से होगए थे अत मोहन आश्रम मे निवास के लिए विचार कर रहे थे।

विधि का विधान—इन्ही दिनो चोरो का गिरोह यात्रियो के रूप मे पातजला-श्रम मे आकर ठहर गया। इनमे ५-६ युवक तथा एक स्त्री थी। युवक २५ से ३५

साल की आयु के होगे। ये सभी बडे बलवान थे। शरीर सब का गठा हुआ था और ये नित्य कसरत किया करते थे। युवती की आयु लगभग ३५ वर्ष की होगी। यह गौर वर्ण थी। शरीर सुडौल था। बडी फुर्तीली थी और सलवार पहनती थी। इन सब ने स्वामी अमरनाथजी को अपना गुरु बना लिया। स्वामीजी को अपने साथ ही भोजन करवाने लगे। महाराजजी जब भ्रमणार्थ जाते थे तो इनमे से एक-दो इनके पीछे-पीछे जाते थे। मौनव्रत था इसलिए महाराराजजी अपना मुह ढक कर बाहर जाया करते थे। किसी को देखते न थे। एक घण्टा तक सैर करके लौट आते थे। इन लोगो ने महाराजजी के बोलने के दिन का पता स्वामीजी से लगा लिया था। चाल-ढाल, रहन-सहन तथा व्यवहार से यह पता चलता था कि वह स्त्री इन सबका नेतृत्व कर रही हो। ये सभी उसके आदेश का पालन करते थे। महाराजजी का कमरा दूसरी मजिल पर था और अमरनाथजी इनसे कुछ थोडी-सी दूर रहते थे। शिवरात्रि के दिन इन चोरो ने दही और पराठे खाए। अमरनाथजी के दही मे इन्होने कोई ऐसी चीज मिला दी जिससे उन्हे खाते ही नीद आने लगी और अपने कमरे मे जाकर सो गए। इनमे से एक अपने को इनका बडा भक्त दर्शाता था। वह इनके कमरे मे ही सोया करता था। अमरनाथजी नशे मे दो दिन तक सोते ही रहे। इन चोरो ने शिवरात्रि की रात्रि मे लालटैन जलाकर इनके कमरो के ताले तोडे और लगभग तीन हज़ार का सामान चुरा कर ले गए। महाराजजी ने समझा कि लालटैने जल रही है, ये लोग शिवरात्रि का उत्सव मना रहे है, इसीलिए आज ये सोए नही हैं। महाराजजी ने यज्ञादि करके दूसरे दिन व्रत की समाप्ति की और अमरनाथजी से मिलने के लिए गए। ये नीद मे चारपाई से गिर पडे होगे अत जमीन पर ही सो रहे थे। इन्होने स्वामीजी को ज़ोर से झकझोरा, तब कही ये होश मे आए। महाराजजी ने इनसे पूछा, "आपको क्या होगया है ? आप अभी तक निद्राभिभूत है। आपके सामने के कमरे मे सारी रात लालटैन जलती रही है। आपके भक्त सब कहा चले गए ? कही दिखाई नही देते। आपके सारे दरवाजे खुले पडे है। आपके भक्त उनकी गतिविधि से अच्छे आदमी नही मालूम होते थे। जब मैं भ्रमण के लिए जाता था तब उनमे से कोई न कोई मेरे पीछे लग जाया करता था। उनमे से एक युवक फल लेकर ऊपर चढा तो मेरे कमरे मे इधर-उधर झाक रहा था। आप उठो और देखो, आपका सामान तथा कपडे सब इतस्तत बिखरे पडे है। मैं तो यह समझता रहा कि आप शिवरात्रि का जागरण कर रहे है।" अमरनाथजी बडी कठिनाई से आखे मसलते हुए उठे और जब अपना सामान उन्हें नही दिखाई दिया तो बेहोश होकर धडाम से भूमि पर गिर गए। उनके मुह पर जल के छीटे मार कर जैसे-तैसे उन्हे होश मे लाया गया। महाराजजी के चरण पकडकर उन्होने कहा, "आपसे रुपये ऐठने के लिए मैंने आपको बहुत सताया और दु ख दिया। आप श्रेष्ठ कार्य मे लगे हुए थे। परमात्मा की भक्ति मे निरत थे। मैं पापात्मा आपको व्यर्थ ही परेशान करता रहा। यह उसीका दण्ड है। वे मुझे अपना गुरु बनाकर मेरा सब कुछ लूट कर ले गए।" महाराजजी ने कहा, "गुरु की सम्पत्ति पर तो शिष्यो का अधिकार होता ही है। वे तो चोर थे। आपका सामान चुराकर ले गए। आपने सोचे-विचारे बिना ही उन्हें अपना शिष्य बना लिया। गुरु-मत्र दे दिया तब तो वे आपकी सम्पत्ति के अधिकारी बनकर ही आपका सामान ले गए। जिस प्रकार आप अपने गुरु तथा दादा-गुरु की सम्पत्ति के मालिक

वने वैठे हैं इसी प्रकार से वे भी अपने गुरु का सामान ले गए। क्या आपको यह नीति वचन स्मरण नहीं कि 'अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।' अब आप उठ कर पता लगाओ कि आपका क्या-क्या सामान वे चोर चुरा कर ले गए है ।" सब कुछ देखकर अमरनाथजी को पता चला कि लगभग चार हजार की चोरी हुई है। इन चोरो ने मदिर की मूर्ति के सोने तथा चादी के आभूषण और वर्तनादि भी चुरा लिए थे । ये लोग सभी कुछ चुरा कर ले गए। अमरनाथजी को इसका वडा धक्का लगा और उनकी जवान सूखने लगी तथा सिर मे चक्कर आने लगे। महाराजजी ने इन्हे गर्म दूध मे घृत डालकर पिलाया और लिटा दिया और उनको ५० रु० अपने लिए आवश्यक सामान खरीदने के लिए दिए और अमावस्या की रात्रि के १० वजे से मौन धारण कर लिया। अब अमरनाथजी ने महाराजजी को तग करना छोड दिया और भक्तिभाव से उनकी सेवा करने लग गए। अब महाराजजी का मौन व्रत निर्विघ्नतापूर्वक चलने लगा। ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर महाराजजी ने नीचे की मजिल मे रहना प्रारभ कर दिया। यह मकान वहुत जीर्ण-शीर्ण सा था, इसलिए इसमे विच्छू वहुत थे। अमरनाथजी भी पुन पूर्ववत् ही परेशान करने लग गए थे। अत अब ये मोहन आश्रम मे चले गए। मूर्ख मित्र की अपेक्षा विद्वान् शत्रु कही अधिक अच्छा है। अमरनाथजी भी ऐसे मूर्खो मे से थे। आश्विन पूर्णिमा को महाराजजी भी मोहन आश्रम पधारे और वहा जाकर मलेरिया ज्वर से पीडित होगए। प्रतिदिन १०४-१०५ डिग्री ज्वर हो जाता था। इतने दुर्वल होगए कि अपने लिए दूध भी गर्म नही कर सकते थे। नौकर ही दूध गर्म करके उनके कमरे मे रख जाता था। आश्रम के प्रवधक स्वामी सच्चिदानन्दजी ने महाराजजी को ज्वरपीडित देखकर तुरन्त होम्यो-पैथिक डाक्टर को वुलाया और ऐसी औपधि देने के लिए कहा जिससे इनका ज्वर शीघ्र उतर जाए और इनके मौन व्रत मे किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो। डाक्टर ने तेज दवाई देकर ज्वर तो उतार दिया किन्तु सारे शरीर मे खुजली चलने लगी। १३ दिन तक मलेरिये से पीडित रहे और अब खुजली ने आ घेरा। इसकी वेदना ज्वर से भी अधिक थी। डाक्टर के उपचार से यह भी ठीक होगई किन्तु ज्वर पुन आने लगा। जव ज्वर उतरे तो खुजली होने लग जाती थी और जव खुजली मिट जाती थी तो ज्वर घेर लेता था। इसी प्रकार १५ दिन तक कष्ट पाते रहे। लगभग डेढ महीने तक ज्वर रहा। शरीर शक्तिहीन तथा दुर्वल होगया। जैसे-तैसे मौन का एक वर्ष समाप्त हुआ। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को व्रत की समाप्ति की। जव लाला शिवसहाय-मलजी की पुत्री गौरा देवी को इनकी वीमारी का पता चला तो वह इनकी सेवा के लिए आ गई। लगभग २३ वर्ष तक गौरा देवी के पिताजी ने महाराजजी के व्यय का भार वहन किया था इसलिए ये इन्हे अपनी वहिन के समान ही समझते थे। दोनो मे परस्पर वहिन भाई जैसा ही प्रेम था। गौरा देवी ने महाराजजी से अमृतसर चलने और वही पर मौन की समाप्ति-रूप यज्ञ आदि करने के लिए वहुत आग्रह किया अत अमृतसर पधार गए और वही पर यज्ञ करने का निश्चय कर लिया। वम्बई वाले तुलसीरामजी ने ८०० रुपया यज्ञार्थ भेज दिया था और कुछ रुपया महाराजजी के पास इसके लिए था। ये अमृतसर मे मुलखराजजी की कोठी पर विराजे। लाला शिवसहायमलजी अपने स्वर्गवास होने से पूर्व ही अपनी वसीयत मे, जो उन्होने अपनी पुत्री गौरा देवी के हक मे की थी, लिख गए थे कि महाराजजी को गत २३ वर्ष से जो

व्यय के लिए रुपया दिया जा रहा है वह आजीवन नियमानुसार इन्हे मिलता रहे। गौरा देवी बराबर अपने पिता की आज्ञा और वसीयत के अनुसार रुपया देती रही किन्तु महाराजजी ने गौरा देवी के पति के स्वर्गवास होने के कारण यह रुपया लेना बन्द कर दिया था। लाला श्रीकृष्ण खन्ना ने अब २०० रु० मासिक इन्हे देना प्रारम्भ कर दिया किन्तु महाराजजी ने केवल १०० रु० मासिक लेना ही स्वीकार किया।

श्री महाराजजी ने व्रत समाप्ति के उपलक्ष मे एक वृहद् यज्ञ किया और इसकी समाप्ति पर एक बहुत बडा भण्डारा किया। यह उत्सव बडी धूमधाम से मनाया गया। यज्ञ के पश्चात् दो मास के लिए सत्सग और योगाभ्यास करवाया गया। महाराजजी इसके बाद पुन हरिद्वार पधारे और मोहन आश्रम मे निवास किया। वहा पर योग-साधना का शिविर लगाया गया। बहुत से अभ्यासी इसमे सम्मिलित हुए और लाभ उठाया। महाराजजी कई वर्ष पूर्व हिमालय-निवास का निश्चय कर चुके थे। गगोत्री और बद्रीनाथ मे से कौन-सा स्थान उत्तम रहेगा अभी इसका निश्चय नही हो सका था। गगोत्री मे तो उन्होने कई वर्ष तक निवास किया था। बद्रीनाथ भी गए तो कई बार थे किन्तु यात्रा के उद्देश्य से गए थे, वहा रहने के उद्देश्य से नही, अत अब वहा निवास करने की दृष्टि से उसे देखने के लिए जाना चाहते थे।

बद्रीनाथ मे पाच मास तक निवास

नरोत्तमसिंह सेवक को साथ लेकर महाराजजी हरिद्वार होते हुए बद्रीनाथ पधारे। वहा पर पजाबी क्षेत्र मे ठहरे। यह स्थान अलखनन्दा के किनारे पर था और एकान्त तथा शान्त था। पण्डित जगतरामजी, जो पहले उत्तरकाशी के क्षेत्र के मैनेजर थे, आजकल बद्रीनाथ के पजाबी क्षेत्र के मैनेजर थे। महाराजजी के बडे भक्त थे अत इनके लिए सभी प्रकार की सुविधा कर दी थी। महाराजजी अपना अभ्यासादि का कार्यक्रम बनाकर यहा आनन्दपूर्वक रहने लगे। इन्ही दिनो स्वामी दयालमुनि अपने ५-६ सन्तो को साथ लेकर गोमुख से बद्रीनाथ आ गए। गोमुख से बद्रीनाथ आने का मार्ग बडा दुर्गम है। बीस हजार फीट की ऊचाई से आना पडता है। इनके दो-तीन साथियो को बर्फ की चमक के कारण दीखना बन्द होगया था। इनके साथ ब्रह्मचारी महावीर, सन्त गुरुदेवदास, अवधूत परमानन्द, स्वामी कैलाशानन्द, ब्रह्मचारी प्रबोधानन्द और गगामुनि थे। दलीपसिह नामक कुली भी साथ था। ये सभी गगोत्री से आए थे और सभी विरक्त थे। सर्वप्रथम ये ही विरक्त साधु इस मार्ग से आए थे। यह इन्ही की खोज थी। इनके पश्चात् तो यह मार्ग खुल-सा गया और अन्य यात्री भी इसी मार्ग से आने लग गए थे। सेठ तुलसीरामजी ने साधु-सन्यासियो के ऊपर आवश्यकतानुसार व्यय करने के लिए महाराजजी के पास १५०० रु० भेजे। इन्होने जगतरामजी को बुलाकर कहा, "सायकाल ५ बजे बद्रीनाथ के सब साधुओ को चाय-पान करवा दिया करो, जो व्यय होगा मै चुका दिया करूगा। जब पजाबी क्षेत्र बन्द हो जाएगा तब सबको भोजन भी करवा दिया करना, इसका व्यय भी मैं दूगा।" चार मास तक चाय का क्षेत्र चला और दो मास तक अन्न का। सेठजी को इससे सूचित कर दिया गया। इस पर इन्होने महाराजजी को लिखा कि आवश्यकता-नुसार यदि अधिक रुपया चाहिए तो लिखने पर तुरन्त भेज दिया जाया करेगा। ये

सेठ महाराजजी के अनन्य भक्त थे और इनके प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी, इसीलिए बडी उदारता से इन्हे रुपये भेजते थे। इनका तथा इनकी धर्मपत्नी का यह विश्वास होगया था कि वे महाराजजी की कृपा से ही ऐश्वर्य का उपभोग कर रहे हैं। जो कुछ उनके पास है सब इन्ही की कृपा के फलस्वरूप है। सेठजी इन्हें अपना गुरु मानते थे और दान-पुण्य के लिए तथा इनके निजी खर्च के लिए बडी उदारता से धन देते थे। सेठजी के परिवार मे राधास्वामियो का आना-जाना प्रारम्भ होगया था। इनके दो लडके उनके शिष्य भी बन गए थे। इनकी लडकी राधास्वामी के शिष्यो के घर व्याही गई थी। वह अब तक आपको गुरु मानती थी किन्तु अब उसने भी राधास्वामी मत की दीक्षा ले ली थी। वे कहते है कि गुरु के बिना मनुष्य की सद्गति नही हो सकती। सेठजी ने कहा "कि अब मुझे और मेरी पत्नी को भी प्रभावित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। हमारा सारा परिवार सनातनधर्मावलम्बी था किन्तु अब वह धीरे-धीरे राधास्वामी मत मे प्रविष्ट होता जा रहा है। जब तक आप मुझे और मेरी पत्नी को विधिवत् मत्र दीक्षा देकर शिष्य नही बना लेगे तब तक मेरा कल्याण नही हो सकता। यदि आप मुझ पर कृपा नही करोगे तो मुझे ये लोग बलपूर्वक अपना शिष्य बना लेगे।" महाराजजी ने उन्हे सूचित कर दिया कि हमारे हरिद्वार आने पर आपकी इच्छा की पूर्ति कर दी जाएगी। उन्हें गायत्री पुरश्चरण करने की आज्ञा दी। दीक्षा से पूर्व यह आवश्यक है उसके साथ ही कुछ ध्यान-साधना भी करनी होगी। दीवाली पर हमारा विचार विशेष मौनव्रत धारण करने और ध्यान का अभ्यास करने का है। इस व्रत से पूर्व आप हमे मिलना, आपको मत्रदीक्षा दे दी जाएगी। वैसाखी पर आपको दीक्षा दे दूगा। उससे एक सप्ताह पूर्व आप आ जाना। इस अवसर पर आपको विशेष व्रत, नियम, जपमादि करना होगा। माताजी को भी साथ ले आना। इस परिवार का महाराजजी पर बडा विश्वास और भरोसा था। सेठ तुलसीरामजी का जन्म एक साधारण से परिवार मे हुआ था और उन्नति करते-करते ये आज करोडो मे खेल रहे हैं। बडे ऐश्वर्यशाली तथा सम्पन्न है। खूब कारोबार चल रहा है। यह सब महाराजजी की कृपा का ही परिणाम है। ऐसा उनका विश्वास था।

पातजल आश्रम मे निवास

महाराजजी दशहरा तक बद्रीनाथ मे ही रहे। चारो ओर नई बर्फ से पर्वत आच्छादित होगए थे। शीत मे बहुत वृद्धि होगई थी। महाराजजी, जगतराम तथा सेवक आदि सबने बद्रीनाथ से प्रस्थान किया और शनै-शनै कई दिन मे हरिद्वार पहुच गए। यहा पर पातजल आश्रम मे निवास किया क्योकि अमरनाथजी अब कही अन्यत्र चले गए थे। दीवाली के पश्चात् सेठ तुलसीरामजी तथा उनकी धर्मपत्नी दोनो ही यहा आ गए। महाराजजी ने तुलसीरामजी से कहा, "यदि आप दोनो ही मेरा शिष्यत्व स्वीकार करेंगे तो आपके पारस्परिक सम्बन्ध मे परिवर्तन होना अनिवार्य हो जाएगा। तब आप दोनो बहिन-भाई हो जाएगे। जैसे एक पिता की सन्तान परस्पर सब बहिन-भाई कहलाते है उसी प्रकार एक गुरु के शिष्य भी बहिन-भाई ही होते है। सेठजी को महाराजजी की बात पर बडा आश्चर्य हुआ क्योकि अन्य साधु महात्मा तो इस बात का बिल्कुल ध्यान नही रखते, एक तर्फ से सबको दीक्षा दे देते हैं। योगीराजजी ने उन्हे समझाया कि जो ऐसा करते है वे शास्त्रविधि का उल्लघन करते है।

इनमे से बहुतो को तो इसका ज्ञान ही नही होगा और बहुत से वित्तेपणा तथा लोकेपणा के वशीभूत होकर ऐसा करते है जो उचित नही है। व्रत वडा कठिन है। यदि आप दोनो ब्रह्मचर्य का विधिपूर्वक पालन कर सके तव तो हम दोनो को दीक्षा दे सकते है, अन्यथा हम आप दोनो मे से एक को ही दीक्षा देंगे। सेठजी तो गत कई वर्षो से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे थे। वडे सयम और नियम से रहते थे। किन्तु महाराजजी से इन्होने निवेदन किया, "हम नियम, सयम, व्रत और ब्रह्मचर्य पूर्वक ही रहते है, किन्तु महाराजजी! मेरे लिए मनसादेवी को पत्नी के स्थान पर वहन पुकारना वडा कठिन है।" माता मनसादेवी की प्रार्थना पर महाराजजी ने सेठजी को ही मत्र-दीक्षा देना स्वीकार किया। वे दीक्षा लिए विना भी कुछ न कुछ लाभ उठा ही रही थी। पति-पत्नी दोनो साथ ही महाराजजी के पास आते थे। दोनो को ये साथ ही उपदेश देते थे। साधना-अभ्यास भी दोनो साथ-साथ ही करते थे। वे विधिवत् दीक्षा लिए विना भी सदा से ही महाराजजी मे गुरु-भावना रखती थी और उनकी अनन्य भक्ता थी। महाराजजी ने सेठजी को तीन दिन अपने पास रखकर पुरश्चरण की सब विधि वता दी तथा अन्यान्य कई साधनो का अनुष्ठानादि समझा दिया। इसी प्रकार माता मनसा देवी को भी यथायोग्य साधन वताया। इसके पश्चात् ये लोग वम्वई चले गए और पुन वैसाखी मे एक सप्ताह पूर्व ही हरिद्वार आ गए। पूर्वा वताई हुई विधि के अनुसार यहा आकर व्रत इत्यादि किया। दीक्षा के लिए सब अवश्यक सामग्री मगवा ली। महाराजजी का मौनव्रत वैसाखी वाले दिन प्रात समाप्त होगया।

सेठ तुलसीराम को मत्र-दीक्षा––महाराजजी के मौनव्रत रखने मे पूर्व ही सेठजी ने उपवास तथा अन्य जो तैयारी करने का आदेश हुआ था सब कर लिया। ब्राह्मणो को वुलाकर तीन-चार घण्टे तक यज्ञ किया। इसके पश्चात् उपनयन सस्कार किया गया। एक घण्टा तक सेठजी को उपदेश देकर स० २००३ मे वैशाख मास की सक्रान्ति को शास्त्रविधि के अनुसार मत्र-दीक्षा दी गई और महाराजजी ने उन्हे अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् ब्राह्मणो और साधुओ को भण्डारा दिया गया और इनमे दान-दक्षिणा भी वितरित की गई। माता मनसादेवी को भी उपदेश दिया गया। विविध प्रकार की साधनाये उन्हे समझाई। दोनो को आत्मविज्ञान प्राप्ति के सूक्ष्म रहस्यो को समझाया गया। सर्व कार्य निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हुआ। गुरु-दीक्षा मिलने पर दोनो पति-पत्नी ने अपने को वडा कृतकृत्य समझा। ये करोडो के इस समय स्वामी थे। घर-गृहस्थी की कोई चिन्ता नही थी अत दीक्षा के पश्चात् इन दोनो ने हरिद्वार मे ही निवास करने का निश्चय किया। ये कुछ दिन तक तो महाराजजी की सेवा मे रहे और इसके पश्चात् वापस वम्वई चले गए। योगीराजजी ने सर्वप्रथम सेठ तुलसीराम को ही विधिपूर्वक शिष्य वनाकर दीक्षा दी थी। इसका मुख्योद्देश्य था इनको राधास्वामी वनने से वचाना।

हरिद्वार मे योग प्रशिक्षण––सेठजी के वम्वई चले जाने के पश्चात् महाराजजी ने योगाभ्यास करवाया। जिस प्रकार से विद्यालयो, महाविद्यालयो तथा विश्वविद्यालयो मे लौकिक विद्या की प्राप्ति के लिए कक्षाये लगाई जाती है और विद्यार्थी विविध लौकिक विषयो का ज्ञान प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार की कक्षाओ का श्री महाराजजी ने

परविद्या, पारमार्थिक विद्या के उपार्जन के लिए प्रारभ किया। योग-साधना के लिए विधिवत् कक्षाये लगती थी और साधको को उनकी योग्यता, परिश्रम और साधना के अनुरूप योग सिखाया जाता था। योग-विद्या अत्यन्त प्राचीन विद्या है। आज से हजारो वर्ष पूर्व से ही योग की पावन परम्परा भारत मे चली आ रही है। किन्तु तब इस विद्या मे पारगत महायोगी अपने योग्य शिष्यो को ही योग सिखाया करते थे। जिसमे इस गुह्य विद्या की प्राप्ति के लिए पात्रता पाते थे उसी को इस विद्या का दान देते थे। आत्मविज्ञान तथा ब्रह्मविज्ञान की प्राप्ति के लिए एक ही जन्म नही कई-कई जन्म तक प्रयास करना पडता था। योग प्रशिक्षण विद्यालयो की 'योगनिकेतन' के नाम से स्थापना करना, उनमे योग की कक्षाये लगाकर योग साधन की शिक्षा देना श्री महाराजजी का अपना ही अनुसधान है। यह इनके अपने महान् मस्तिष्क की सूझ है। इन योग प्रशिक्षण विद्यालयो मे अब तक सैकडो अभ्यासियो ने योग शिक्षा प्राप्त की है। इनमे से सभी महान् योगी बनकर भले ही न निकले हो किन्तु मार्ग-दर्शन सबको यथोचित रूप से प्राप्त हुआ है। अपनी-अपनी साधना, अभ्यास, तप, प्राणायाम और वैराग्य के अनुरूप सबने लाभ उठाया है। अभ्यासियो को उनकी योग्यता के अनुरूप उपाधिया भी प्रदान की गई है।

बद्रीनाथ गमन

ज्येष्ठ मास के आरभ मे श्री महाराजजी बद्रीनाथ पधार गए। वहा पर पजाबी क्षेत्र मे निवास किया। यही ऐसा स्थान था जो एकान्त और शान्त था तथा आबादी से दूर था। बद्रीनाथ मे अनेक सुख के साधन प्राप्त थे। यहा पर डाक तथा तार घर है। एक अच्छा अस्पताल है। नाई तथा धोबी आसानी से मिल जाते है। कपडे तथा खाद्य सामग्री की कई दुकाने है। दूध आसानी से मिल जाता है। साग तथा घी की भी कई दुकाने है। भ्रमण करने के लिए समतल भूमि है। जहा ये सुख साधन है वहा साधको के लिए अनेक कष्ट भी है। यहा पर लगभग एक लाख यात्री प्रतिवर्ष यात्रा करने आते है। यात्रा के समय बहुत भीड-भाड रहती है जिससे साधना मे अनिवार्य रूप से विघ्न उपस्थित हो जाता है। बद्रीनाथ के पास ही दो-तीन शराब की कोठिया थी। यह भी एक बडा भारी विघ्न था। इसके अतिरिक्त आसपास के ग्रामो के बडे-बडे बच्चे तथा स्त्रिया लकडी ढोने के निमित्त सैकडो की सख्या मे क्षेत्र के सामने से आते जाते रहते थे। उनका शोरगुल भी योगाभ्यास मे बडा बाधक था। बद्रीनाथ मे अछूत जाति की स्त्रिया नृत्य करने तथा गाने-बजाने के लिए आती थी और कई-कई दिन तक डेरे लगाकर यह कार्य करती थी। एक दिन यहा के एक धनाढ्य ब्राह्मण ठाकुरलाल ने महाराजजी की कुटिया के सामने रात्रि के समय इनका कई घण्टे तक नृत्य तथा गायन करवाया। इनकी कोठी पजाबी क्षेत्र के पास ही थी। यह क्षेत्र भी इनकी भूमि के पास ही बना हुआ था। इनके पिता ने यह भूमि दान मे दी थी। इस रात्रि को महाराजजी को बडा विक्षेप हुआ। श्रावण और भाद्रपद मे यहा पर कुछ सर्दियो का प्रकोप हो जाता है और पेट भी खराब हो जाया करता है।

वहा पर नदियो मे बाढ आ जाने, ग्लेशियर के टूटकर नदी मे गिर जाने तथा अतिवृष्टि अथवा साधारण से कुछ अधिक वर्षा हो जाने के कारण से भी कभी-कभी छोटे-छोटे पर्वत-खण्डो के गिरने से मार्गो का अवरुद्ध हो जाना आदि कठिनाइया उपस्थित

हो जाती है। एक दिन महाराजजी कचन-गगा के किनारे भ्रमणार्थ गए। तव इसमे ग्लेशियर के टूटकर आ पडने से इतने वेग से पानी आया कि इसमे ६०-७० अनाज से लदी हुई वकरिया और १५-२० यात्री डूव गए। इस घटना को देखकर महाराजजी के चित्त मे वडा विक्षोभ हुआ। इनके शवो को निकालने और जो घायल होगए थे उन्हे अस्पताल मे भिजवाने के लिए महाराजजी को वडी दौडधूप करनी पडी।

ग्रामो की स्त्रिया यहा पर प्राय लकडिया ढोने का काम करती है। ये अधिकतर स्वेच्छाचारी वन जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप दुराचारिणी वन जाती है। एक दिन एक वृद्धा स्त्री एक युवती तथा सुन्दरी लडकी को लेकर महाराजजी के पास आई। उसकी चेष्टाओ, हाव-भाव तथा वोलचाल से वह कुछ पतित सी मालूम होती थी। इन्होने जगतरामजी को इन दोनो को क्षेत्र से वाहर निकालने का आदेश दिया। उन्होने और नौकरो को वुलाया और इनको क्षेत्र मे वाहर निकाल दिया।

महाराजजी के भक्त भगवानदासजी की पुत्रवधू का देहान्त—भगवानदासजी अपनी पत्नी और पुत्रवधू आज्ञावती के साथ महाराजजी के पास रहने के लिए आना चाहते थे। योगीराजजी ने इन्हे पत्र द्वारा न आने का आदेश दिया क्योकि वर्षा ऋतु मे पहाडो की यात्रा स्वास्थ्यकर नही होती, किन्तु दुर्भाग्यवश यह पत्र इन्हे नही मिला और ये वहा से चल दिए। आज्ञावती को मार्ग मे ही विसूचिका (हैजा) होगई और उसका मार्ग मे ही स्वर्गवास होगया। भगवानदासजी को अत्यन्त दुख हुआ। परदेश मे उस देवी के शव को उठानेवाला भी कोई नही मिला। गढवाल के लोग हैजे से वहुत भयभीत रहते है। हैजे के रोगी के पास तक भी ये लोग नही आते। लालाजी वद्रीनाथ भी नही पहुच पाए और इस असामयिक दुर्घटना के कारण मार्ग से ही पीछे लौट गए।

गगोत्री निवास का निश्चय—उपरिलिखित विविध कारणो से महाराजजी का चित्त वद्रीनाथ मे निवास करने से कुछ उपराम-सा होगया था। इन्होने यहा की अपेक्षा गगोत्री निवास को ही अधिक उपयुक्त समझा। यहा पर जीवन के लिए सभी सुविधाए थी किन्तु अभ्यास तथा साधना के लिए यहा पर कई विघ्न थे। गगोत्री मे जीवन को लौकिक दृष्टि से सुखी वनाने के साधन तो न थे किन्तु वहा पर ध्यान तथा समाधि मे इस प्रकार के विघ्न उपस्थित होने की सभावना नही थी। इसलिए महाराजजी ने दयालजी को अपने लिए गगोत्री मे एक कुटिया तथा एक रसोई तैयार करने का आदेश दिया। इन दोनो के वनाने का अनुमानित व्यय १२०० रु० आका गया। महाराजजी ने दयालजी के पास तुरन्त १००० रु० भिजवा दिया और शेष २०० रु० फिर भेजने के लिए उन्हे लिख दिया। इधर इन्होने सेठ तुलसीरामजी को रुपया भेजने के लिए पत्र लिख दिया। गढवाल के इलाके मे साधु-महात्माओ को रुपये तथा वस्त्रादि से सहायता करने की प्रथा कम है। यदि कोई साधु भिक्षा मागने चला जाए तो अन्न अवश्य देते हैं।

वद्रीनाथ के मदिर की स्थिति—इस मदिर की स्थिति गत कई वर्षो से अव अच्छी थी। जव से सरकार का नियन्त्रण इसकी आय पर हुआ था तवसे इसकी आर्थिक स्थिति वहुत अच्छी होगई थी। कई मकान तथा धर्मशालाए भी वन गई थी। इसकी आमदनी अव लगभग एक लाख होगई थी। यहा के मदिर मे मूर्ति वैठी हुई है, अन्य मदिरो के समान खडी हुई नही है। वद्रीनाथ मे वहुत वडा मैदान है।

इनमे विविध प्रकार के फूल तो होते है किन्तु वृक्ष नही। बद्रीनाथ मे ऋषिगगा के किनारे भ्रमण बहुत होता है। माणागाव मे व्यास-गुफा बडी प्रसिद्ध है। यही पर व्यासजी ने पुराणो की रचना की थी। यहा पर ऋषि-मुनियो के नाम से कई गुफाए प्रसिद्ध है। महाराजजी के पास प्राय नित्य ही साधु-सन्त मिलने के लिए आते रहते थे। एक तांता-सा बधा रहता था। इनमे अवधूत परमानन्दजी मुख्य थे। इस वर्ष भी महाराजजी ने १६०० रु० देकर पजाबी क्षेत्र मे अपनी ओर से चाय का क्षेत्र चलवाया था और दो मास के लगभग अन्न का।

हरिद्वार प्रस्थान

विजयादशमी के उपरान्त महाराजजी ने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया। आस-पास के पर्वतो पर नई बर्फ पडने लग गई थी और शीत का आधिक्य होगया था। इस वर्ष कुछ दिन के लिए गुजराती धर्मशाला मे निवास किया। सेठ तुलसीदासजी भी यही पर ठहरे हुए थे। उनके आग्रह से ही महाराजजी इस धर्मशाला मे ठहरे थे। यहा पर उन्होने १५ दिन तक कथा की जिसमे जनता ने बडा लाभ उठाया। उसके अनन्तर वे मोहन आश्रम पधार गए। वहा जाकर तीन मास तक मौनव्रत रक्खा और उसके पश्चात् दो मास तक योग प्रशिक्षण किया जिसमे साधको की सन्तोषजनक प्रगति हुई।

ब्रह्मवादिनी धर्मदेवी से वेदान्त पर वादविवाद—एक दिन कुछ सत्सगी हरद्वार के पास हर-की-पौडी पर महाराजजी का उपदेश सुन रहे थे। उस समय एक महिला वहा पर आई। ये दिव्यगुणविभूषिता, ब्रह्मनिष्ठा तथा ब्रह्मवादिनी थी। सौजन्य की प्रतिमा थी। उनके स्वभाव की सरलता, उनकी वाणी का माधुर्य तथा उनके सेवाभाव मे बडा आकर्षण था। ये अमृतसर निवासी लाला कर्मचन्दजी की सुपुत्री थी। लालाजी महाराजजी के सुपरिचितो मे से थे। इस देवी का नाम श्रीमती धर्मदेवी था। ये धर्म बहन के नाम से प्रसिद्ध है। 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' मे उनका दृढ विश्वास था। धर्म बहन का जैसा नाम था वैसे ही उनमे गुण थे। इनका वैराग्य बडा उत्कट तथा प्रबल था। अपने घर के सुख तथा आराम को लात मार कर हरिद्वार मे एकान्त तथा शान्त स्थान मे रहना प्रारम्भ कर दिया था। ससार का कोई प्रलोभन इन्हे आकर्षित न कर सका और ये सदैव अपने निश्चित पथ पर अटल और स्थिर रही। इनका जीवन बडा तपश्चर्यामय, त्यागमय और सयममय है। आप तप और त्याग की साक्षात् मूर्ति है। महाराजजी से इनका बहुत पुराना परिचय था। जिन दिनो महाराजजी बडी नहर के किनारे मौनव्रत किया करते थे उन्ही दिनो मे इनसे परिचय हुआ था। महाराजजी की साख्य और योग मे बडी निष्ठा थी। अपने उपदेश मे उन्होने समाधि के विषय मे बहुत ऊचे दर्जे का स्वानुभवजन्य विज्ञान का विस्तृत वर्णन किया था। इस उपदेश की समाप्ति पर धर्म बहन ने महाराजजी से जिज्ञासा रूप मे कई प्रश्न किए —

धर्म बहन—क्या महाराजजी, आप हमारी भी समाधि लगवा सकते है?

महाराजजी—नही।

धर्म बहन—क्यो नही?

महाराजजी—जब आपके विचार मे ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ है ही नही तो समाधि किस की लगवाए ? ब्रह्म तो स्वय समाधि रूप है। समाधि का विषय या लक्ष्य क्या होगा जब दूसरा कोई पदार्थ ही नही है। जब तक भेद स्वीकार नही किया जाएगा तब तक समाधि नही लग सकती। अभेद मे ध्याता, ध्यान और ध्येय सिद्ध नही होते। समाधि मे ध्याता, ध्यान और ध्येय बने रहते है।

धर्म बहन—व्यवहार मे तो भेद रहता ही है।

महाराजजी—जब ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ है ही नही तब व्यवहार किससे और कौन करेगा। अत व्यवहार भी सिद्ध नही होता। यदि व्यवहार माना जाएगा तब व्यवहार का कर्ता भी मानना पडेगा। जो कर्ता होगा उसको भोक्ता भी स्वीकार करना पडेगा। ब्रह्म मे कर्तृत्व और भोक्तृत्व धर्म सिद्ध नही होते। जिसमे कर्तृत्व और भोक्तृत्व धर्म होगे उसका बध और मोक्ष भी अनिवार्य है। इसलिए एक दूसरा पदार्थ मानना पडेगा। इसी को हम जीवात्मा कहते है। यह ब्रह्म से भिन्न है।

धर्म बहन—जीव को तो हम भी मानते हैं।

महाराजजी—जीव कहा से आया ?

धर्म बहन—जब अशुद्ध अविद्या के साथ ब्रह्म का सम्बन्ध होता है तब वह जीव सज्ञा को प्राप्त होता है।

महाराजजी—अशुद्ध अविद्या कहा से आई ?

धर्म बहन—षट् पदार्थ अनादि और सान्त है। उनमे जीव और अविद्या भी सम्मिलित है।

महाराजजी—फिर तो आपने जो एकत्व ब्रह्म की प्रतिज्ञा की थी वह अब न रही। अनादि और सान्त की प्रतिज्ञा भी स्थिर नही रह सकती और पदार्थ भी सिद्ध नही हो सकते। जिसका आदि नही उसका अन्त भी नही हो सकता। जो उत्पन्न होता है वही विनाश भाव को प्राप्त होता है। अत कोई पदार्थ अनादि सान्त नही हो सकता। अनादि को नित्य अवश्य मानना पडेगा।

धर्म बहन—हम व्यवहार मे इसकी सत्ता मानते है।

महाराजजी—जब आपके सिद्धान्त मे व्यवहार ही मिथ्या और असत्य है तो इसकी सत्ता कैसे सिद्ध हो सकती है क्योकि ब्रह्म के सिवाय और कुछ आपके सिद्धात मे है ही नही ?

धर्म बहन—हम अविद्या को अनादि, सान्त और अनिर्वचनीय मानकर इसके दो विभाग मानते हैं—एक शुद्ध तथा दूसरा अशुद्ध। जब शुद्ध अविद्या (अथवा माया) का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होता है तब वह ईश्वर-भाव को प्राप्त होता है और जब अशुद्ध अविद्या या माया के साथ सम्बन्ध होता है तब वह जीव-भाव को प्राप्त होता है।

महाराजजी—अविद्या और ब्रह्म के सम्बन्ध का हेतु क्या है ? कर्म, और कर्म का हेतु सस्कार, और सस्कार का हेतु वृत्ति, और वृत्ति का हेतु अविद्या अथवा माया। इस अविद्या के सम्बन्ध से ब्रह्म बधभाव को प्राप्त हुआ। अपने वास्तविक स्वरूप को छोडकर ईश्वर और जीवत्व भावापन्न हुआ। इस प्रकार इसमे कोई अन्तर

नही रहता। केवल बडे-छोटे का ही अन्तर रहा और तीनो बद्ध होगए। ब्रह्म, ईश्वर तथा जीव तीनों सयोग से बद्ध हुए। जैसे जीव का बध और मोक्ष होता है वैसे ही ब्रह्म का भी। इस प्रकार से ये दोनो ही समान हुए। जब आप ब्रह्म को नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, निराकार, निरवयव, निष्क्रिय मानती है तब कोई आपत्ति उपस्थित नही होती और बद्धादि धर्म जीव को मान ले तब बध और मोक्ष दोनो सिद्ध हो जाते है।

धर्म बहन—हम तो इस बध को भी स्वप्नवत् मानती है। जिस प्रकार स्वप्न के सब पदार्थ और व्यापार मिथ्या होते है उसी प्रकार जगत् भी मिथ्या है।

महाराजजी—बहन ये स्वप्न सत्य भी होते है और असत्य भी। यह आवश्यक नही कि सभी स्वप्न मिथ्या ही हो। देखे या सुने पदार्थों की या इन्द्रियो से भी भोगे हुए सुख-दु खात्मक पदार्थों की स्मृति ही स्वप्न है। उस पूर्वानुभूत का स्मरण कारण और सूक्ष्म शरीर के द्वारा होता है। कभी-कभी स्थूलेन्द्रिया भी अपना व्यापार प्रारम्भ कर देती है—जैसे स्वप्न में बाते करने लगना, हाथ को उठाकर थप्पड मारना, स्वप्न मे वीर्यपात हो जाना, करवट लेना, उठकर चल देना, आदि। सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्मेन्द्रिया तो अपना व्यापार करती ही है। जैसे जाग्रतावस्था अन्त करण की है ऐसे ही स्वप्नावस्था भी अन्त करण की है। जाग्रत मे भी अनेक कर्म मिथ्या या गलत होते है। यदि ये कर्म व्यापार स्वप्न मे हो जाए तो आप केवल उन्ही को मिथ्या क्यो कहती है? ये दोनो ही अवस्थाए अन्त करण की है। दोनो ही सत्य है और दोनो ही मिथ्या है। इसलिए जगत भी कारण-रूपेण सत्य है और कार्यरूपेण अनित्य है। यदि आप जगत को मिथ्या कहेगी तब तो आप जो कुछ कह रही है वह भी सत्य कैसे हो सकता है? अत स्वप्न का दृष्टान्त देना ठीक नही, यह असगत है और दृष्टान्ताभास है। यदि आप ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नही मानती तब समाधि की बाते करना, नित्य आहार-व्यवहार करना, मोक्ष के लिए साधना करना, सब निरर्थक हो जाएगे। परन्तु मोक्ष का तथा अत्यन्त दु खनिवृत्ति का उपाय तो आप नित्यप्रति करती तो ससार नित्य ही प्रतीत होता है तथा दु खनिवृत्ति का उपाय रहती हो। इससे भी सत्य ही है। अत आपका अद्वैतवाद केवल वाणी का विलासमात्र ही रह जाता है। इस अद्वैतवाद की भ्रांति का परित्याग करके और भेदवाद को स्वीकार करके समाधि के साधनो मे प्रवृत्त हो जाओ, तब ही आत्मसाक्षात्कार होकर परम वैराग्य द्वारा स्वरूप मे स्थिति होगी और मोक्ष प्राप्त हो सकेगा। अत आप इस व्यर्थ के हठ और दुराग्रह को छोडकर समाधि द्वारा आत्मविज्ञान प्राप्त करे। एक योग ही ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा हस्तामलक के समान प्रत्यक्ष विज्ञानपूर्वक आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है। यदि आपकी इच्छा हो तो कुछ काल हमारे सान्निध्य मे रहकर सत्सग और अभ्यास द्वारा, यम-नियमो का विधिवत् पालन करते हुए आत्मविज्ञान तथा ब्रह्मविज्ञान के सूक्ष्म रहस्यो को समाधि द्वारा स्वय अनुभव करें। सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा प्रकृति-पुरुषविवेक और असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा परम वैराग्य और सर्व सस्कारो का अथवा वृत्तियो का निरोध होकर ब्रह्म मे स्थिति लाभ होगी।

महाराजजी ने जब धर्म वहन के सब प्रश्नो के विद्वत्तापूर्ण ढग से युक्तियुक्त उत्तर दे दिए और वे उनसे सन्तुष्ट होगई तब वे इनकी चरणशरण होगई और कई वर्ष के सत्सग और अभ्यास से समाधि द्वारा आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया।

बद्रीनाथ गमन

श्री महाराजजी कुछ मास तक हरिद्वार मे निवास करके बद्रीनाथ पधार गए क्योकि श्री दयालमुनिजी ने इन्हे सूचित किया था कि कुटिया का सामान तैयार हो रहा है, आगामी वर्ष तक बन जाएगी और निवास योग्य हो जाएगी। बद्रीनाथ मे महाराजजी के ठहरने और भोजनादि की सब व्यवस्था जगतरामजी ने पजाबी क्षेत्र मे कर दी। महाराजजी ने इन्हे गतवर्ष की भाति सन्तो के लिए चाय तथा भोजन का प्रबन्ध करने का आदेश दिया। यह भी आदेश दिया कि अत्यन्त आवश्यक कार्य उपस्थित होने पर ही उनसे मिला या बात की जाए, अन्यथा नही, और अन्य आगन्तुक महानुभावो को भी यह आदेश सुना देने के लिए आज्ञा प्रदान की। यहा का दशहरा करके महाराजजी ने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया।

हरिद्वार मे मोहन आश्रम निवास

महाराजजी ने मोहन आश्रम मे निवास किया। इनके परम भक्त और शिष्य सेठ तुलसीरामजी सपत्नीक हरिद्वार मे आए हुए थे। माता मनसादेवीजी अत्यधिक रोगी थी अत महाराजजी ने उन्हे मोहन आश्रम मे लाने का आदेश दिया और मोहन आश्रम मे ही एक कोठी मे उनके निवासादि का सब प्रबन्ध कर दिया। माता मनसादेवी ने महाराजजी से करबद्ध प्रार्थना की, "महाराजजी ! मेरा बचना तो अब कठिन है। मेरी केवल एक अभिलाषा शेष रहती है जो मुझे पूर्ण होती नजर नही आती। मेरा छोटा बेटा ओमप्रकाश अभी कुआरा है। यदि मै उसका विवाह कर पाती तो उत्तम रहता। मेरी हार्दिकेच्छा है कि मेरे पास अपना जो कुछ वस्त्र और आभूषण तथा रुपया है वह सब मै ओमप्रकाश और उसकी बहू को अपने हाथो से दे जाती। यदि आप मुझे एक वर्ष और जीवनदान दे सके तो मेरी यह अन्तिम अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। आप योगी है, महात्मा है, बालब्रह्मचारी है। आप शक्तियो के भण्डार है। आप मेरे पति के और मेरे गुरु है। आपके अतिरिक्त अन्य कोई मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण नही कर सकता। यदि आप मुझ पर दया-दृष्टि करे तो मेरी प्राण रक्षा हो सकती है।"

मनसादेवी को जीवनदान—मनसादेवी ने सिसकिया भर कर रुदन करते हुए महाराजजी से जो प्रार्थना की थी उससे वे द्रवीभूत होगए और उन्हे कहा, "माताजी, आपको एक नही हम चार साल जीवन के और प्रदान करते है।" सेठजी भी पास ही बैठे ये सब बाते सुन रहे थे। महाराजजी कुर्सी से उठकर खडे होगए और अपने दोनो हाथ जोडकर भगवान् से प्रार्थना की और फिर मनोबल द्वारा मानसिक प्रयोग करते हुए माता से कहा," देखो, अभी थोडी देर मे तुम्हारी पसली और हृदय की वेदना शान्त होकर सदा के लिए दूर हो जाएगी।" फिर इनके हृदय पर हाथ रखकर कहा, "अभी आपकी वेदनाए सदा के लिए शान्त होती है।" इन शब्दो के साथ ही मनसादेवी के हृदय और पसली का दर्द जाता रहा और ज्वर भी टूट गया। वे अपने को आरोग्य

अनुभव करने लगी। इनमें कई दिन से विस्तर पर से उठने तक की शक्ति नही थी किन्तु अब इन्होंने चारपाई पर से उठकर श्री महाराजजी के चरण पकड लिए और अपने आसुओ से उनके चरण भिगो दिए और कहा, "महाराजजी, आज ही मैंने आपके योग-वल का पूर्ण परिचय पाया है। आज ही पता चला है कि आपमे कितनी अलौकिक शक्तिया हैं। आप कितने महान हैं। आप सर्वशक्तिमान हैं। मुझ मरी हुई को आपने पुन जीवन प्रदान किया है। मुझे मृत्यु के मुह से आपने निकाला है। मैं जन्म-जन्मान्तरो तक भी आपके इस महान् ऋण से उऋण नही हो सकती। आपके इस अद्भुत चमत्कार को नही भूल सकती। आपके इस महान् उपकार की रेखा सदैव मेरे हृत्पटल पर खिंची रहेगी। महाराजजी, आप मानव नही आप देवता हो, मनुष्य नही भगवान् हो।" चार-पाच दिन मे ये वम्बई जाने के योग्य होगई। महाराजजी मौन व्रत धारण करने वाले थे अत उन्हे वम्बई जाने का आदेश दिया। महाराजजी ने इनके चले जाने के पश्चात् ३ मास के लिए मौन किया और पूर्ववत् दो मास के लिए साधको को साधनाभ्यास करवाया। स० १६०४ के माघ मास की पूर्णिमा को मौन व्रत की समाप्ति हुई और सन्तो-महात्माओ को भण्डारा दिया। यह महाराजजी का अन्तिम मौन था। अव इन्होने यह निश्चय कर लिया था कि भविष्य मे मौन व्रत नही किया जाएगा। जो विज्ञान गुरुदेवजी ने प्राप्त किया है उसे योग के जिज्ञासुओ को प्रदान किया जाएगा। और सारा समय लोक-कल्याण के अर्पण किया जाएगा। इस विज्ञान-दान के द्वारा जिस प्रकार गुरुजनो ने मुझ पर उपकार किया है, मेरा कल्याण किया है, उसी प्रकार मैं भी योग का प्रशिक्षण करके इसके प्रसार और प्रचार के द्वारा विश्व का कल्याण करूगा। योग प्रशिक्षण मे छोटे-वडे का विचार नही रखा जाएगा। सव वर्ण और जाति के योग जिज्ञासुओ के लिए महाराजजी का द्वार सदैव खुला रहता है। इनके विशाल हृदय मे ऊच-नीच, राजा-रक, अमीर-गरीव, शिक्षित-अशिक्षितादि सवके लिए समान भाव है। महाराजजी ने यह घोषणा की थी कि मैं नि स्वार्थ भाव से, सच्चे हृदय और वात्सल्य भाव से अध्यात्म-ज्ञान को जिज्ञासुओ को प्रदान करूगा। अभ्यास की समाप्ति पर महाराजजी ने सभी अभ्यासियो को उपदेश दिया था, उसीमे उपरोक्त घोषणा की गई थी। अभ्यास की समाप्ति पर सभी साधको ने यथास्थान प्रस्थान किया किन्तु महाराजजी के परम भक्त गुरुचरणदत्तजी के भाई रामलाल तथा उनके परिवार की देविया अभी यही ठहरी हुई थी। ये सव महाराजजी के बद्रीनाथ पधारने तक इनके पास ही रहने के इच्छुक थे।

श्री महाराजजी की पाच दिन की समाधि—महाराजजी वस्ति इत्यादि षट् कर्म के द्वारा शुद्धि करके, दो दिन तक शरीर के भीतर की शुद्धि करके तथा दो दिन तक उपवास करके अपनी कुटिया के सव द्वार वन्द करके समाधिस्थ होगए। यह समाधि ५ दिन के लिए थी। पूर्णिमा को १० वजे व्युत्थान का निश्चय किया था। जो देविया अभी आश्रम मे आग्रहपूर्वक ठहरी हुई थी वे महाराजजी की कुटिया के चक्र काटती रही और जव न तो ये वोले और न समाधि से उठे तव वे वडी निराश हुईं। स्वामी सोमतीर्थजी महाराजजी की कुटिया के नीचे ही रहते थे। उन्होने इन देवियो को समझाया कि योगीराज इसी प्रकार से कई-कई दिन के लिए समाधिस्थ

हो जाया करते है और अवधि समाप्त होने से पूर्व कभी व्युत्थान नही करते, अत आप लोग जाओ, व्यर्थ ही अपना समय नष्ट मत करो। जब महाराजजी तीन दिन तक भी न उठे तब वहा जितने भी भक्त थे सब निज-निज स्थान पर चले गए। इस बार महाराजजी १२० घण्टे के लिए समाधिस्थ हुए थे। पूर्णिमा के दिन जब १२ बजे दरवाजा खोला गया तब स्वामी विशुद्धानन्दजी इनसे मिलने के लिए आए और पूछा, "कैसी स्थिति है ? आप हम सबको सूचित किए बिना ही भीतर समाधि मे बैठ गए। हम सब तो बडे चिन्तित हो रहे थे।" स्वामीजी ने रामलालजी और उनके परिवार का सर्व वृत्त सुनाया। महाराजजी ने कहा, "अन्न जल छोडे आज ७ दिन होगए है, एक पाव दूध मगवा दो।" स्वामीजी को यह सुनकर बडा आश्चर्य हुआ क्योकि महाराजजी का मुख पूर्ववत् कान्तिमान और तेजस्वी था। स्वामी सोमतीर्थजी दिन मे कई-कई बार इन्हे देखने जाते थे। महाराजजी ने समाधि से व्युत्थान का दिन और समय नही बताया था, इसलिए सभी बडे परेशान थे। महाराजजी ने दिन और समय इसलिए नही बताया था कि जिससे रामलालजी तथा अन्य स्त्रिया सब वहा से चले जाए। यदि उनको पता चल जाता तो वे ५ दिन वही बैठे रहते क्योकि वे दर्शन किए बिना जाना नही चाहते थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी और स्वामी सोमतीर्थजी बडे विद्वान् योगी थे, इसीलिए महाराजजी से बडा स्नेह करते थे। ये दोनो महाराजजी से आयु और आश्रम दोनो मे ही बडे थे। ये कई-कई दिन तक समाधिस्थ होने से बडे प्रभावित थे। ये भी कई-कई मास तक मोहन आश्रम मे निवास किया करते थे। इनके भी भक्त और अभ्यासी वहा आया करते थे। महाराजजी ने दो छटाक दूध मे दो छटाक पानी मिला कर पीया। इसके पश्चात् न्यौलि-क्रिया करके शौचादि से निवृत्त हुए। शौच कृष्ण वर्ण था। वस्ति और बजरौली क्रिया द्वारा मल-मूत्र निकाल कर ही समाधिस्थ हुए थे, किन्तु फिर भी कुछ न कुछ मल आन्तो मे अवश्य रह जाता है और जब तक ठीक-ठीक समाधि नही लगती है तब तक ये पाचन-कार्य करती ही रहती है, अत भीतर का मल दग्ध होकर काला सा हो जाता है और पेशाब भी पीत और रक्त वर्ण का हो जाया करता है। यदि समाधि से व्युत्थान होने के पश्चात् भी योगी को मल-मूत्र त्याग करने की इच्छा न हो तब बस्ति और बजरौली के द्वारा इन्हे बाहिर निकालना चाहिए। इस समाधि के कुछ समय पश्चात जो चित्र श्री राजयोगाचार्य बालब्रह्मचारी व्यासदेव जी महाराज का लिया गया था वह सामने है।

बद्रीनाथ गमन

पाच दिन की समाधि के छ-सात दिन पश्चात् महाराजजी ने बद्रीनाथ के लिए प्रस्थान किया। वहा जाकर पूर्ववत् पजाबी क्षेत्र मे निवास किया। यह सन् १९४७ का साल था। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ था। किन्तु ब्रिटिश सरकार भारत को शक्तिशाली देखना नही चाहती थी, इस देश का सदा के लिए त्याग करते समय देश का विभाजन करके इसे अत्यन्त शक्तिहीन बना गई थी। इसलिए देश के स्वतन्त्र होते ही कई विकट समस्याए शासको के समक्ष उपस्थित होगई। शासनसूत्र हाथ मे लेते ही इनको सुलझाने का प्रश्न उपस्थित हुआ। विभाजन के परिणामस्वरूप देश मे रुधिर की नदिया बह निकली। लाखो व्यक्ति दर से
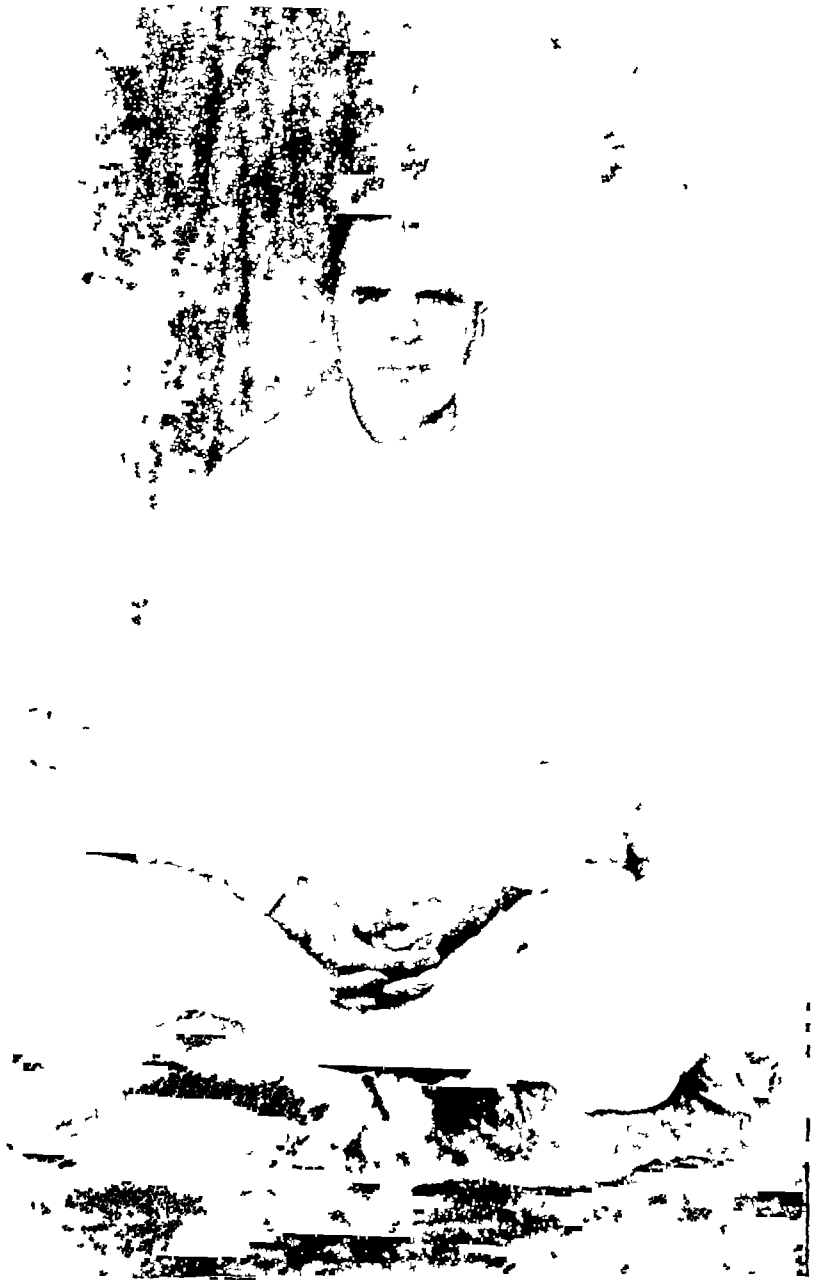
राजयोगाचार्य बालब्रह्मचारी श्री व्यासदेवजी महाराज
(पांच दिन की समाधि के पश्चात)

वेदर हुए। लाखों माताओं की गोद से उनके लाल, उनके जिगर के टुकड़े छीन लिए गए। लाखों बच्चों की हत्याएं उनके माता-पिताओं के सामने नृशंसतापूर्ण ढंग से की गईं। लाखों सुहागिनों के भाल के बिन्दु धुल गए। बच्चे अनाथ होगए। लाखों स्त्रियों के सतीत्व का अपहरण किया गया। करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट-भ्रष्ट होगई। सर्वत्र विनाश और नरसंहार दिखाई दे रहा था। उन दिनों का स्मरण आज भी आतुर और व्याकुल कर देता है। महाराजजी इन दुर्घटनाओं के कारण बद्रीनाथ में उदासीन-से ही रहे और सितम्बर मास में ही वहां से हरिद्वार चले गए।

हरिद्वार के लिए प्रस्थान

इस समय हरिद्वार में दुःखित, पीड़ित और अत्याचारों से भयभीत शरणार्थियों की बड़ी भीड़ थी। सब आश्रम और मकान इनके लिए सरकार ने ले लिए थे। इनके पुनर्वास की बड़ी भारी समस्या थी। इनके ऊपर जो अत्याचार किए गए थे उनको सुनकर पाषाण भी द्रवित हो रहे थे। महाराजजी के सहस्रों भक्तों ने नाना प्रकार की दुःखद घटनाएं सुनाईं। योगीराजजी ने वस्त्र तथा धन वितरण करके इनकी बहुत सहायता की।

शरणार्थियों की सहायता

महाराजजी बड़े दयालु और उदार हैं। आर्तों की आर्तिहरण, पीड़ितों की पीड़ा के अपहरण, दुःखियों के दुःखहरण और असहायों की सहायता करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। इन्होंने विस्थापितों की सेवा और सहायतार्थ पंजाब जाने का निश्चय किया। सर्वप्रथम ये जालंधर पधारे। वहां पर डाक्टर नारायणसिंह के पास ठहरे। यहां कुछ दिन रहकर होशियारपुर चले गए। वहां पर सभी पीड़ित परिचितों को सान्त्वना देते तथा धीरज बंधाते रहे। इसके पश्चात् पुनः जालंधर आगए और यहां से डाक्टर नारायणसिंह की मोटरकार में अमृतसर पधारे। मार्ग में जो दुःखद दृश्य देखा उसे देखकर वे प्रकम्पित होगए। रेल की पटरी के किनारे लाखों शव दबे पड़े हुए थे। मुसलमानों का एक बड़ा भारी काफ़िला पाकिस्तान जा रहा था। आगे तथा पीछे बड़े-बड़े टैंक उनकी रक्षार्थ जा रहे थे। आबालवृद्ध सभी दुःखी थे और रुदन कर रहे थे। एक वृद्धा मुसलमान माता को कहते हुए सुना, "जिन्हा, अल्ला तुम्हारा नाश करे। तैंने पाकिस्तान बनाकर हमें बर्बाद किया है। ऐ खुदा, क्या ही अच्छा होता तू इस जिन्हा को पहले से ही नेस्तनाबूद कर देता जिससे करोड़ों मनुष्य बरबादी से तो बच जाते।" डाक्टर विद्यावती और नारायणसिंह महाराजजी के साथ थे। अमृतसर केवल ५५ मील की ही दूरी पर था, तो भी प्रातः ८ बजे चल कर कहीं सायंकाल अमृतसर पहुंच पाए। वहां जाकर गुरुचरणदत्त की कोठी पर ठहरे। सब भक्तों ने अमृतसर में जो-जो दुर्घटनाएं हुई थीं उन सबका दुःखद वृत्त सुनाया। सारा नगर नष्ट-भ्रष्ट होगया था। मलबे के ढेर लगे हुए थे। मकान खण्डहर होगए थे। बाजार बरबाद होगए थे। महाराजजी के कई भक्तों और परिचितों की बड़ी-बड़ी कोठियां जला दी गई थीं। हिन्दू और मुसलमान दोनों के मकान नष्ट-भ्रष्ट होगए थे। महाराजजी ने वस्त्र और धन से पीड़ितों की सहायता की। जहां जाते वहीं लोगों को सान्त्वना देते तथा ढाढस बंधाते। मनुष्य जब राक्षस का

रूप धारण कर लेता है तव वह अपना विवेक खो देता है और उसको पाप-पुण्य तथा धर्म-अधर्म का विवेक नही रहता। प्रत्येक कुकर्म करने के लिए कटिवद्ध हो जाता है। पाकिस्तान और पूर्वी पजाव मे जो अत्याचार हुए थे उनको सुनकर लज्जा को भी लज्जा आती है और शर्म से अपना मुह छिपा लेती है। महाराजजी श्रीकृष्ण के मकान को देखने के लिए गए। इसे मुसलमानो ने भूमिसात् कर दिया था। महाराजजी के १५०० रु० की कीमत के चादी के वर्तन लाला शिवसहायमल के मकान मे रखे थे। इन्होने ये सव श्रीकृष्णजी को दे दिए। ये लगभग २० दिन तक पजाव मे रहे और फिर हवाई जहाज द्वारा वम्वई पधारे और मेरीन ड्राईव पर लाला तुलसीरामजी के पास ठहरे।

सन् १९४८ मे भक्तो के कष्ट का निवारण

सेठजी के मकान पर महाराजजी सायकाल ५ वजे से ६ वजे तक उपनिषदो की कथा करते थे। सैकडो नर-नारी कथामृत का पान करने के लिए आते थे। सेठजी के ऊपर इन्कमटैक्स का एक मामला चल रहा था। इनके ऐश्वर्य, धन तथा सम्पत्ति के कारण वहुत से लोग इनसे ईर्ष्या करते थे। इन्ही मे से किसी ने उनकी झूठी शिकायत कर दी थी। इनके ऊपर कई लाख रुपया जुर्माना कर दिया गया था। माता मनसा देवी ने कहा, "महाराजजी! आपके भक्तो पर वडी भारी आपत्ति आई हुई है। आप ही इनके सकट का निवारण कर सकते हो। उधर ओमप्रकाश की शादी की तिथि निश्चित हो चुकी है। विवाह मे थोडे ही दिन शेष है। ऐसी स्थिति मे विवाह भी असम्भव सा ही प्रतीत होता है। आप ही इन वच्चो की लाज रखोगे।" मनसादेवी की आखो मे आसू देखकर महाराजजी को दया आ गई। इन्होने सेठजी के पुत्र हरिकिशनदास को वुलाया और इन्कमटैक्स के उन अफसरो को दिखाने के लिए कहा जिनके पास इनका मामला था। वडा अफसर सैर करने जाया करता था, उसे तो महाराजजी को वहा दिखा दिया गया। हरिकिशनदास और महाराजजी दोनो मोटर-कार मे गए थे। उस अफसर को देखकर इन्होने मोटर की गति मन्द कर दी और महाराजजी ने अपनी दिव्य दृष्टि उस अफसर पर डाली। वह हरिकिशनदासजी से कभी वोलता नही था। वडा दम्भी और कठोर प्रकृति का था। किन्तु महाराजजी की दिव्य दृष्टि पडते ही वह वडे नम्रभाव से उनके साथ वाते करने लगा और पूछा कि ये महात्मा कौन है। हरिकिशन ने कहा, "श्री महाराजजी हमारे गुरु है। ये हिमालय से आए हैं। इनकी हमारे ऊपर वडी दया है।" इस अवसर मे महाराजजी ने अपने मनोवल से शक्तिपात करके इनको प्रभावित किया और इन्हे वड़ा सरल तथा कोमल वना दिया। अफसर ने हरिकिशनदास से कहा, "आप आज मुझे मिलना। आपके मामले पर विचार किया जाएगा और वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयत्न किया जाएगा।" हरिकिशनदास ने महाराजजी से कहा, "आज अपने जीवन मे ये प्रथम वार इतने विनम्र और कोमल हुए है। अव आपकी कृपा से कार्यसिद्धि की एक किरण सी दिखाई देने लगी है।" दोनो मकान पर वापिस आगए। छोटे अफसर को देखने के लिए महाराजजी और अमीरचन्द दफ्तर मे गए। वहा कुछ वातचीत करने लग गए और महाराजजी ने इसे देख लिया और तुरन्त अपनी दिव्य दृष्टि उस पर डाली। सायकाल को विदित हुआ कि इस छोटे अफसर को ज्वर हो गया है। इसके दो दिन

पश्चात् यह मियादी ज्वर मे परिवर्तित हो गया। महाराजजी ने हरिकिशनदास को अपना मामला किसी अनुकूल अफसर के पास ले जाने की सलाह दी। ये अपने केस को किसी अन्य छोटे अफसर के पास ले गए। इनके देहली वाले आडिटर आए हुए थे। इन्होने सारे कागज देखे और इनकी सहायता की। उधर वडे अफसर खरवन्दा साहिब इनके कुछ परिचित निकल आए। कुछ दिनो के परिश्रम से कार्य मे सफलता लाभ हुई। वहुत थोडा-सा उचित टैक्स लगाकर केस खत्म कर दिया गया।

जहा पर ओमप्रकाश के विवाह की वातचीत चल रही थी वह भी महाराजजी के एक भक्त की लडकी थी। आज्ञावती ने इसी लडकी के विवाह सम्वन्ध मे महराजजी से कई वार निवेदन किया था कि इसका सम्वन्ध ओमप्रकाश के साथ करवाने की कृपा की जाए। महाराजजी ने यहा पर एक मास तक निवास किया और जनता को अपने उपदेशो से लाभ पहुचाया।

टैक्स के झगडे मे मुक्त हो जाने के कारण यह सारा परिवार वडा प्रसन्न था। श्री महाराजजी ने अपने योगवल तथा मनोवल से अपने अनेक भक्तो के कष्टो का निवारण किया है। आपको विविध प्रकार की सिद्धिया प्राप्त थी किन्तु आपने कभी इनका चमत्कार दिखाकर जनता को आकर्षित करने की स्वप्न मे भी इच्छा नही की। कभी-कभी जव वे अपने भक्तो को सकट तथा विपत्ति मे देखकर द्रवीभूत हो जाते थे तव अपने मनोवल मे और अपनी शक्ति के प्रयोग से उन्हे विपत्ति से मुक्त करने और उनके सकट के मोचन करने का कई वार प्रयत्न अवश्य किया है। सिद्धियो के प्रदर्शन मे इनका विश्वास नही था। ये उन्हे योग मे वाधक और वडा विघ्न समझते थे।

महाराजजी कुम्भ के मेले पर प्रयाग मे कुछ दिन पूर्व ही जाना चाहते थे किन्तु माता मनसादेवी ने उनके साथ जाने का वडा आग्रह किया और वहा रुकने के लिए वार-वार प्रार्थना की। उन्होने उन्हे समझाया और कहा कि आप सव हमारे पीछे आएगा। हमारा वहा कुम्भ मे पूर्व पहुचना आवश्यक है। महाराजजी ने वम्वई मे एक मास तक उपदेश किया था। इसमे उनकी प्रसिद्धि सर्वत्र चन्द्रिका के समान व्याप्त होगई थी और सूर्य के समान इन्होने सैकडो मनुष्यो के अज्ञानाधकार का विनाश किया था। उससे लोगो मे परिचय भी वहुत होगया था। जव महाराजजी ने वम्वई से प्रस्थान किया तव एक भारी जन-समूह ने वडे सम्मानपूर्वक विदाई दी। पचासो नर-नारी भेट-पूजा देने के इच्छुक थे किन्तु महाराजजी ने कथा समाप्ति पर ही जव किसी प्रकार की भेंट स्वीकार नही की थी तो इस समय भी इन भेंटो को स्वीकार नही किया।

प्रयागराज के कुम्भ पर दो मास का निवास

श्री महाराजजी वम्वई से प्रस्थान करके प्रयागराज पधारे। त्रिवेणी के किनारे पर कोट वावा दयाराम मे कई गुफाए थी। यह स्थान वडा रमणीय था। गगा और यमुना के दर्शन होते रहते थे। यह स्थान एक ऊची पहाडी पर स्थित है। सारा मेला यहा से दृष्टिगोचर होता था। ऊचाई पर होने के कारण वहुत-सी सीढिया चढकर इस स्थान पर पहुचा जा सकता था। महाराजजी अपने मित्र पचानन्द के पास जाकर ठहर गए। इन्हे ऊपर की मजिल पर एक कमरे मे ठहराया गया। यहा पर जव इन्हे

नवयुग के निर्माता विश्ववंद्य बापू महात्मा गाधी के असामयिक निधन का दु खद समाचार मिला तब महाराजजी को वडा आघात-सा हुआ और इन्होने एक दिन का उपवास किया। भारतीयो के हाथ मे शासनसूत्र अभी आया ही था इसलिए इनसे मार्गदर्शन प्राप्त करने की देश को अभी वहुत आवश्यकता थी। ये भारत की स्वतत्रता के प्राण थे और ये ही भारत के स्वातत्र्य सग्राम के महासेनानी थे। यदि भगवान् इन्हे कुछ वर्ष और जीवनदान देते तो भारत की कायापलट हो जाती। भारत की आज जो दयनीय दुर्दशा हो रही है वह कभी न होती और वह उन्नति के उच्चतर शिखर पर होता, किन्तु हमारे मन कुछ और थी विधिना के मन और। विधि के विधान को समस्त देश के दु खित दिलो ने नतमस्तक होकर स्वीकार किया।

कोट बाबा दयाराम मे निवास—इस स्थान पर महाराजजी पहले भी स्वामी पूर्णानन्दजी के जीवनकाल मे, कई वार कुभ और अर्धकुभी के अवसरो पर निवास कर चुके थे। स्वामी पचानन्दजी से वहुत पुराना परिचय था अत इस स्थान पर इनके पास विराजे। महाराजजी के अनन्य भक्त अमृतसर के सेठ देवीदास प्रयाग मे क्षेत्र खोलने के लिए आए हुए थे। इनके परम सेवक सेठ तुलसीराम भी सपरिवार इस अवसर पर आए हुए थे। अन्य भक्त भी यहा कुभ पर आए थे। इस अवसर पर सेठ तुलसीराम ने अपने पुत्र ओमप्रकाश का यज्ञोपवीत सस्कार महाराजजी से करवाया तथा उसे मत्रदीक्षा दिलवाकर इनका शिष्य वनवाया। वम्बई निवासी लाला देवकी-नन्दन की पत्नी ने बद्धाजलि होकर महाराजजी से निवेदन किया, "अव तो ओमप्रकाश आपका शिष्य वन गया है इसलिए मैं अपनी भतीजी विमला का विवाह उससे करवाना चाहती हू। आप इसमे मेरी सहायता करे। आप ही इस कार्य को करवा सकते है।" सेठ देवकीनन्दन की पत्नी का नाम आज्ञावती था और वह महाराजजी की वडी भक्ता थी। महाराजजी ने सेठ तुलसीराम तथा उनकी पत्नी माता मनसादेवी को ओमप्रकाश का विवाह विमला से करने का आदेश दिया और दोनो ने वम्वई जाकर आज्ञा का पालन करने का वचन दिया। आज्ञावती वडी दानशीला महिला थी। महाराजजी ने गगोत्री मे निवास करने का निश्चय कर लिया था और वही पर एक कुटिया भी अपने लिए वनवा ली थी। आज्ञावती ने अपनी ओर से ४-५ हजार रुपया लगवाकर २-४ कुटिया वनवाने के लिए इनसे निवेदन किया और वम्वई जाकर रुपया भिजवा देने का वायदा किया। इनके पति का स्वर्गवास होगया था। इसके एक लडका तथा एक लडकी थी।

पचानन्द महाराजजी से वडा प्रेम करते थे। इनके शिष्य महावीर तथा अन्य भक्त इनकी वडी सेवा करते थे। इनमे महावीर तथा उमादेवी विशेप रूप से इनके सुख और सुविधा का ध्यान रखते थे। लाला देवीदासजी लगभग दो मास तक यहा रहे। इनकी भजन और अभ्यास मे वडी निष्ठा थी और साधना के समय को ये कभी भी नही चूकते थे। महाराजजी लगभग ढाई महीने तक यहा विराजे। इसके पश्चात् ये तथा सेठजी सपरिवार वृन्दावन पधार गए। वहा पर एक धर्मशाला मे विराजे। सेठजी का परिवार भी यही ठहरा। यहा विराजकर गोवर्धन पर्वत, नन्दगाव और वरसाने की यात्रा की, होलिकोत्सव देखा और वृन्दावन के सब मदिरो के दर्शन किए। महाराजजी यहा पर भी एक धण्टा प्रतिदिन कथा किया करते थे। सैंकडो यात्रीगण

तथा स्थानीय नर-नारी इनके कथामृत का पान करते थे। एक दिन माता मनसादेवी ने महाराजजी से निवेदन किया, "महाराजजी! हमारे पास जो कुछ भी सम्पत्ति है वह सब आपके ही आशीर्वाद से प्राप्त हुई है, अतः आपसे प्रार्थना है कि आप भी इसमें से कुछ मासिक खर्च ले लिया करें। यदि आप स्वीकार करेंगे तो हम आपका बड़ा उपकार समझेंगे और इस परिवार पर आपकी बड़ी कृपा होगी।" महाराजजी ने इनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की क्योंकि अमृतसरवाले लाला श्रीकृष्ण खन्ना इन्हें १००) मासिक दे रहे थे। इसीसे इनका सारा खर्चा चल जाता था और अधिक रुपये की इन्हें आवश्यकता न थी। यह देवी आग्रह करती रही और पुनः कहा, "वहां से रुपया लेते हुए आपको कई वर्ष होगए हैं। अब हमें भी सेवा का अवसर देने की कृपा करें। वहां से आप खर्चा लेना अब बन्द कर दें।" महाराजजी ऐसा करना नहीं चाहते थे क्योंकि यदि उनसे रुपया लेना बन्द कर दिया जाता तो लाला श्रीकृष्ण को दुःख होता। इन्होंने माताजी से कहा, "उनका रुपया न लेने से उनको रंज होगा।" इस पर माताजी ने झट उत्तर दिया, "महात्मा किसी के बंधन में नहीं हैं। उन्हें बुरा क्यों मानना चाहिए? आप जिसे चाहें उसीको खर्च भेजने के लिए आज्ञा दे सकते हैं।" महाराजजी ने कहा, "हम लालाजी को समझाएंगे। यदि वे प्रसन्नता-पूर्वक हमारी बात मान गए तब हम उनसे रुपया लेना बन्द कर देंगे और आपसे ले लिया करेंगे। क्या आपने इस विषय में सेठजी से पूछ भी लिया है?" मनसादेवीजी ने उत्तर दिया, "मुझे उनसे पूछने की क्या आवश्यकता है? मुझे अपने निजी व्यय के लिए बहुत रुपया मिलता है। मैं तो उसे खर्च भी नहीं कर सकती। मैं अपने खर्च में से आपको प्रतिमास रुपया भेजा करूंगी। मुझे ६०० रु० मासिक मिलता है। इसमें से २०० रु० मासिक मैं आपके लिए भेजा करूंगी।" महाराजजी ने केवल १०० रु० मासिक लेना स्वीकार किया क्योंकि उन दिनों इसी में सब खर्चा चल जाता था।

स्वर्गाश्रम निवास

होली के बाद महाराजजी स्वर्गाश्रम पधारे। यहां पर दो मास के लिए योग प्रशिक्षण प्रारम्भ कर दिया। शीतकाल में स्वर्गाश्रम प्रायः खाली रहता था और यह समय अभ्यास के लिए उपयुक्त भी था। इन दिनों अभ्यासियों के निवास के लिए बहुत कमरे सुलभ हो जाया करते थे। प्रातः ४ से ६ बजे तक और सायंकाल साढ़े छः से साढ़े आठ बजे तक अभ्यास की कक्षाएं लगाई जाती थीं। अभ्यास के अतिरिक्त प्रातः ८ से ९ तक आसन और प्राणायाम भी सिखाये जाते थे। अपराह्न में ३ से ४ बजे तक नित्य उपनिषदों की कथा हुआ करती थी। बहुत अभ्यासी प्रशिक्षण कक्षा में प्रविष्ट हुए। स्वर्गाश्रम में जो यात्री आते थे वे सभी प्रायः अभ्यास करने के लिए आते थे।

ज्येष्ठ के प्रारम्भ में महाराजजी ने उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया। टिहरी तक तो बस में पधारे और इसके बाद पैदल-यात्रा प्रारम्भ की। मार्ग में नगूणा पड़ाव पर सावित्री, धर्मवती आदि कई देवियां उत्तरकाशी जाती हुई मिलीं। यहां से सब इकट्ठे उत्तरकाशी गए और वहां पहुंचकर पंजाबी क्षेत्र में ही सब ठहर गए। महाराजजी केवल एक सप्ताह उत्तरकाशी में विराजे और इसके पश्चात् ५ मास गंगोत्री में निवास करने का निश्चय करके वहां के लिए प्रस्थान कर दिया।

सन् १६४८ मे गंगोत्री मे योग-निकेतन की स्थापना

श्री महाराजजी के गगोत्री पधारने से पूर्व ही स्वामी दयालमुनि ने उनके लिए कुटिया तथा रसोई इत्यादि बनवाकर तैयार करवा दी थी। सन् १६४८ मे आषाढ पूर्णिमा के शुभ अवसर पर योग-निकेतन का उद्घाटन किया गया। विधिपूर्वक पूजादि करवाई गई और आश्रम मे प्रवेश किया गया। इस शुभ अवसर पर साधु-महात्माओ और ब्राह्मणो को भोजन करवाया गया। अब तक महाराजजी की ओर से साधुओ के लिए क्षेत्र की व्यवस्था स्वामी प्रज्ञानाथजी के स्थान पर की जाती थी। अब यह व्यवस्था वहा पर रखना उचित नही समझा गया। योग-निकेतन मे ही इसकी व्यवस्था करने पर विचार किया गया जिससे प्रज्ञानाथजी को और अधिक कष्ट न हो। आज्ञावती ने ४-५ हजार रुपया कुटियाओ के बनाने के लिए महाराजजी को देने का वचन दिया था। इन्होने दयालमुनिजी को एक बडी रसोई, एक उनके लिए कुटिया तथा एक औषधालय बनवाने के लिए आदेश दिया। स्वामीजी वैद्यक जानते थे इसलिए इन्होने रोगियो के उपचार की स्वीकृति दे दी। गगोत्री से लेकर उत्तरकाशी तक अर्थात् ५६ मील तक कही कोई वैद्य अथवा डाक्टर न था। न कोई औषधालय था और न अस्पताल। इसलिए लोग बडे दु खी थे। सैकडो लोग उपचार के अभाव मे मृत्यु का ग्रास बन जाते थे, जिनमे बालको की सख्या अधिक होती थी। इससे स्थानीय निर्धन जनता और यात्रियो को सुविधा हो जाएगी और एक बडे कष्ट का निवारण हो जाएगा। महाराजजी ने मुनिजी से मुस्कुराते हुए कहा, "आप औष-धोपचार द्वारा जनता का कल्याण करना और हम योग द्वारा करेंगे। योग द्वारा शारीरिक और मानसिक दु खो की निवृत्ति करना ही हमारा उद्देश्य है।" इन्ही दिनो यहा पर डिप्टी साहिब तथा रेजर साहिब आए हुए थे। इनसे भूमि के लिए निवेदन किया गया। इन्होने झट आज्ञा देदी कि जितनी भी जमीन की आवश्यकता हो उतनी ली जा सकती है। इसको घेर कर इसका एक बडा अहाता बना दिया गया और इसके भीतर कुटियाओ का निर्माण प्रारम्भ होगया। सर्वप्रथम औषधियो के लिए दान श्रीमती धर्मवतीजी ने ५०० रुपया दिया। बहिन धर्मवतीजी से पाठक सुपरिचित हैं। इन्होने योगविषयक कई जिज्ञासाए महाराजजी से की थी और बडे पाडित्यपूर्ण ढग से अद्वैतवाद की पुष्टि की थी। इन्ही धर्म बहिन के रुपये से औषधालय की स्थापना की गई थी।

यहा पर विजयादशमी करने के पश्चात् श्री महाराजजी ने उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया। उत्तरकाशी मे कुछ दिन तक निवास किया। इसके पश्चात् स्वर्गा-श्रम पधार गए। दीवाली के पश्चात् चार मास के लिए साधना शिविर प्रारम्भ कर दिया। १५ नवम्बर से १५ मार्च तक का कार्यक्रम बनाया गया। इस अभ्यास प्रशिक्षण मे कई नर-नारियो ने भाग लिया जिनमे इनके नाम विशेष उल्लेख के योग्य है —सेठ तुलसीराम सपत्नीक, जयकिशन सपत्नीक, गुरुचरणदत्त सपत्नीक, योगेन्द्रपाल सपत्नीक तथा श्रीमती भाग्यवन्ती ध्यान तथा अभ्यास में सम्मिलित हुआ करते थे।

उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान—स्वर्गाश्रम का साधना शिविर समाप्त करके श्री महाराजजी ने उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया। श्रीमती धर्मदेवीजी ने

महाराजजी के साथ ही उत्तरकाशी जाने के लिए प्रार्थना की क्योकि ये भी वहा जाना चाहती थी किन्तु कोई उपयुक्त साथ इन्हे नही मिल रहा था। इन्होने स्वीकृति दे दी। धर्मदेवीजी के साथ अन्य भी कई महिलाए थी। नगूणा तक तो ये सब अकेली ही गई किन्तु इसके आगे महाराजजी के साथ गई। नगूणा आकर धर्मदेवीजी के कान मे अत्यन्त पीडा होने लगी। महाराजजी ने एक औषध कान मे डालने के लिए दी और सिर पर कपडा वधवा दिया। इससे उन्हें शीघ्र आराम होगया। सारा मार्ग पैदल चलना था। देविया धीरे-धीरे चल रही थी अत महाराजजी द्रुतगति से चल कर इनसे पूर्व ही उत्तरकाशी पहुच गए। ये सब तो महाराजजी को पजावी क्षेत्र मे आकर मिली। योगीराजजी उत्तरकाशी मे १५ दिवस तक विराजे। इन दिनो धर्म-वती तथा सावित्री को प्राणायाम, ध्यान और समाधि की विधि और लाभ वताए। ये दोनो ही अभ्यास किया करती थी।

गगोत्री प्रस्थान—१५ दिन के पश्चात् महाराजजी ने गगोत्री के लिए प्रस्थान किया। एक महीने तक उत्तरकाशी मे रह कर धर्मवतीजी भी निवासार्थ गगोत्री पहुच गई। योग-निकेतन अभी वन ही रहा था अत इसमे तो स्थानाभाव था। वहा पर उनके ठहरने के लिए कोई स्थान न था। स्वामी दयालमुनिजी ने इनके निवास की व्यवस्था भूमानन्द पण्डे के मकान पर कर दी। ये कभी-कभी महाराजजी के सत्सग मे उपस्थित होती थी। ये तीन मास तक यहा रही और इसके वाद भाद्र-पद मे वापिस उत्तरकाशी चली गई। ये ५००रु० तो औषधियो के लिए पहिले दे ही चुकी थी, अब १००० रु० और एक कुटिया के निर्माण के लिए प्रदान किया। महा-राजजी स्वामी तपोवन के साथ योग तथा वेदान्त के विषय मे वातचीत किया करते थे। भ्रमणार्थ दोनो इकट्ठे जाते थे। ५ महीने तक गगोत्री मे निवास करके विजया-दशमी के पश्चात् श्री महाराजजी उत्तरकाशी पधारे और वहा पजावी क्षेत्र मे निवास किया। उन्ही दिनो ऋषिकेश के पजावी क्षेत्र के प्रवधक लाला लक्ष्मणदासजी भी उत्तरकाशी आए हुए थे। इनका महाराजजी से वडा स्नेह था क्योकि ये अमृतसर के निवासी थे। वहा नहर पर ये प्राय महाराजजी से मिलने आया करते थे। ये दोनो साथ ही उत्तरकाशी मे ऋषिकेश पधारे थे। महाराजजी ने स्वर्गाश्रम पधार कर साधना शिविर की तैयारी की और १५ नवम्बर से साधना प्रारम्भ करवा दी।

महात्मा आनन्दस्वामीजी की श्री महाराजजी के प्रति भक्ति—महात्मा खुशहालचन्द जी के नाम तथा कामो से सभी पाठक सुपरिचित है। इनमे नेतृत्व की भावना सहज थी। आर्यसमाज के प्रति इनकी महान् सेवाए है। पाकिस्तान वनने के पश्चात् इनमे तीव्र वैराग्य की भावना का उदय हो आया था। इन्होने लाहौर मे तथा अन्यत्र भी १५ अगस्त के वाद का भीषण नरसहार, अग्निकाण्ड, अत्याचार, सतियो के सतीत्व का अपहरण, लाखो सुहागिनो के सुहाग के चिन्हो का हरण, लाखो विधवाओ का करुण क्रन्दन, करोडो मनुष्यो की सम्पत्ति का नाश, गगन-चुम्बी कोठियो, वगलो और प्रासादो का विनाश और सभ्यता तथा सस्कृति के चिन्हो के ह्रास का नग्न नृत्य अपनी आखो से देखा था। यह इनके वैराग्य का मुख्य कारण था। उनके ६ पुत्र तथा २ पुत्रिया है। ये हिन्दी तथा उर्दू मिलाप के प्रधान सपादक थे। प्रेम उनका अपना था। सुख के सभी साधन, धन-सम्पत्ति, समृद्धि, ऐश्वर्य सभी के

ये स्वामी थे। ससार की अनित्यता को देखकर इन्होने सन्यासाश्रम मे प्रवेश किया। वैसे वह वर्षो से गृहस्थी होकर भी वानप्रस्थियो के समान जीवन व्यतीत कर रहे थे। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। अपना सब कार्य अपने सुयोग्य पुत्रो को सौंप दिया था। अपने परिवार को सूचित किए बिना ही इन्होने यमुनानगर मे जाकर स्वामी आत्मानन्दजी से सन्यास ले लिया। सन्यास ग्रहण के समय इनकी पत्नी तथा पुत्रो और पुत्रियो को इस बात का पता लगा। सस्कार की समाप्ति के पूर्व सारा परिवार यमुनानगर पहुच गया था। इनकी धर्मपत्नी मेलादेवी बडी दु खी हुई। ये इसी क्षण से अपने को अनाथ असहाय समझकर रुदन करने लगी। पहले लाहौर मे सब धन तथा सम्पत्ति लुट गई थी। बडी कठिनाई से प्राण बचाकर परिवार वहा से भागा। जैसे-तैसे फिर से सारा कारोबार देहली मे प्रारम्भ किया। शाति तथा सुख से जीवन व्यतीत होने लगा तो इनके पतिदेव ने सन्यास ले लिया। ये सर्वाधिक चिन्तित रहती थी। इसी समय श्रीमती भाग्यवन्तीजी इनके पास आई और कहा, "आप मेरे साथ पूज्यपाद ब्रह्मचारी व्यासदेवजी के पास चलो। आजकल उनका योगसाधना शिविर लगा हुआ है। वहा जाकर आपको अवश्य शाति लाभ होगी और सब चिन्ताए दूर हो जाएगी।" भाग्यवन्तीजी माता मेलादेवी को लेकर स्वर्गाश्रम पहुच गई। महाराजजी ने इनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। विविध प्रकार से समझाकर इनको सान्त्वना दी और धीरज बधाया। इनके खान-पानादि की व्यवस्था अपने पास कर दी। इनके निवास के लिए एक कमरा अपनी कोठी मे ही दे दिया और उनकी सेवा के लिए एक नौकर तैनात कर दिया। इन्हे बडे स्नेह तथा वात्सल्य से अभ्यास करवाना प्रारम्भ कर दिया। नित्यप्रति नाना प्रकार के वैराग्यजनक उपदेश इन्हे दिया करते थे। एक सप्ताह के भीतर ही माताजी की स्थिति अभ्यास मे ऐसी होगई जैसी कई-कई वर्ष के अभ्यासियो की भी नही हुई थी। ब्रह्मरध्र मे दिव्य प्रकाश उत्पन्न होकर नाना प्रकार के पदार्थो के दर्शन करवाने लग गया था। लगभग दो-तीन घटे का आसन स्थिर होगया था। थोडे ही दिनो मे ये सर्व चिन्ताओ से मुक्त हो गई और अपने को स्वस्थ और प्रसन्न-सी अनुभव करने लगी। अभ्यासकाल मे इन्हे विशेष आनन्द की अनुभूति होनी प्रारम्भ होगई थी। महाराजजी की विशेष दयादृष्टि का ही यह परिणाम था। माताजी स्वस्थ होगई। इनके सब रोग तथा शोक दूर होगए। अब पतिदेव के सन्यास लेने का सब दु ख और सन्ताप जाता रहा। इनकी इस अभूतपूर्व आध्यात्मिक स्थिति को देखकर सभी अभ्यासी आश्चर्यचकित होकर दान्तो तले अगुली दबाते थे। एक मास के पश्चात् माताजी ने अपने पुत्रो-पुत्रियो तथा पुत्रवधुओ को सूचित किया कि "मुझे इस सुख-धाम मे पहुचकर एक विशेष आनन्द का अनुभव हुआ है। ऐसा आनन्द आज तक कभी अनुभव नही हुआ। इस अलौकिक आनन्द का वर्णन लेखनी से नही किया जा सकता। मुझे एक अद्वितीय दिव्यशक्ति लाभ हुई है जिससे मेरे अदर के कपाट खुल गए हैं और मुझे अलौकिक शाति प्राप्त होगई है।" इनके पत्रो को पढकर इनका अपना परिवार तथा दूर और समीप के सभी सम्बन्धी स्वर्गाश्रम मे आए और सबने अभ्यास की कक्षाओ मे बैठकर अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। इनके पुत्र रणवीर और पुत्रवधू शीला, ओमप्रकाश और इनकी पत्नी शान्ता, इनके दामाद नारायणदास और पुत्री सावित्री आदि सभी योगसाधना मे प्रवृत्त होगए। सबने अच्छी प्रगति की और सुखलाभ

किया। माताजी ने अपने पतिदेव को, जिन्होंने कुछ मास पूर्व ही सन्यास धारण करके अपना नाम महात्मा आनन्दस्वामी रख लिया था, एक पत्र लिखा। वे उस समय देहरादून में तपोवन में मौनव्रत धारण करके तप और साधना में लगे हुए थे। यह पत्र वहीं पर उनके पास भेजा गया था। पत्र निम्न प्रकार से लिखा गया था —

पूज्यपाद श्री १०८ प्रातःस्मरणीय स्वामीजी महाराज,

सादर चरण स्पर्श !

कुछ मास हुए, आप मुझे सान्द्रान्धकार में धकेल और मुझे असहाय बनाकर चले गए थे। जिस श्रेय-मार्ग का अवलम्बन आपने स्वयं किया था उसी पर आपको मुझे भी अपने साथ ले चलना चाहिए था। मेरा कल्याण भी उसी मार्ग की पथिक बनने से था। परन्तु मुझे खेद है कि आपने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया और मुझे प्रेय-मार्ग के अन्धकूप में फेंककर और गृह-त्याग कर सन्यास धारण करने चले गए। आपके प्रस्थान के पश्चात् मुझे यह निश्चय हुआ कि संसार अनित्य है, सारे सम्बन्ध स्वार्थपूर्ण हैं, कोई अपना नहीं है, इसलिए इस संसार से नेह करना आत्मवंचना है। भक्तवत्सल भगवान पतितपावन हैं, पापियों के परित्राता हैं, असहायों के सहाय, निराश्रितों के आश्रय, निर्धनों के धन तथा अनाथों के नाथ हैं। उसी सर्वशक्तिमान की कृपा से मुझे दिव्यालोक प्राप्त हुआ है। इसको प्राप्त करके मैं अंधकार के गर्त से बाहर निकल आई हूं। अब मैं पूर्ण प्रकाश में हूं, आनन्द और शान्ति का अनुभव कर रही हूं। आपके सन्यास लेकर मुझे छोड़कर चले जाने पर मुझे महान् दुःख हुआ था। आपके चले जाने के बाद मुझे चहुं ओर अंधकार ही अंधकार दृष्टिगोचर होता था। मुझे अपना भविष्य अनिश्चयात्मक मालूम होता था और अंधकार के गर्भ में प्रविष्ट हुआ सा प्रतीत हो रहा था। जिस मेरे जीवनसाथी ने विवाह के अवसर पर अनेक प्रतिज्ञाएं की थीं और जिनकी अर्धांगिनी बनकर मैंने सांसारिक दुःख तथा सुख का उपभोग किया था वे अलौकिक सुख और शान्ति की खोज में मुझे छोड़कर चले गए। जिस अमूल्य वस्तु की खोज में आप अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्रियों का परित्याग करके, लौकिक ऐश्वर्य को लात मारकर चले गए हैं, वह अलौकिक विभूति, वह परम शान्ति तथा वह अद्वितीय आनन्द महानात्मा नैष्ठिक ब्रह्मचारी पूज्य व्यासदेवजी महाराज की शिष्या बनकर प्राप्त हुआ है। वह शान्ति तथा आनन्द वर्णनातीत है। न वाणी उसे कह सकती है और न लेखनी लिख सकती है। इनका सत्संग होने के बाद से आपके गृह-त्याग और सन्यास धारण करने का दुःख तथा शोक जाता रहा। अब मुझे उसमें हर्ष हो रहा है। अब मेरी सब आतुरता, व्याकुलता तथा परेशानी जाती रही है। मैं अब पूर्ण शान्ति का अनुभव कर रही हूं। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप भी यहां आएं और श्री महाराजजी से इस अलौकिक दिव्य ज्ञान को प्राप्त करके पूर्ण सुख, शान्ति और आनन्द का अनुभव करें। आपके श्रेय पथ में यह दिव्यालोक सहायक होगा और आपको आत्म-ज्ञान लाभ होगा। इसे प्राप्त करके आप कृतकृत्य हो जाएंगे। यह दिव्य ज्ञान जन्म-जन्मान्तरों के आवागमन और सर्व दुःख निवृत्ति का साधन होगा। आप मेरे जीवनसाथी थे और आपने मुझ पर अनेक उपकार किए हैं, उन सबका स्मरण करके मैं आपको सच्चे आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के पथ पर चलने की प्रेरणा करती हूं। आप अपने अमूल्य जीवन को सार्थक

वनाने के लिए पूज्य महाराजजी के चरणो मे उपस्थित हो। यहा आकर आपके उद्देश्य की पूर्ति होगी और आपका मानवजीवन सफल हो जाएगा।

आपकी चरणसेविका
मेला देवी

इस पत्र को पढते ही श्री आनन्दस्वामी सरस्वती जी महाराज की आत्मविज्ञान की जिज्ञासा अत्यन्त प्रवल हो उठी। श्री महाराजजी का ४ मास का योगाभ्यास का शिविर समाप्त हो चुका था। श्री आनन्दस्वामीजी महाराज स्वर्गाश्रम श्री महाराजजी के दर्शनार्थ आए। योगीराजजी ने उन्हे गगोत्री पधारने का आदेश दिया। आनन्दस्वामीजी उस समय तो दर्शन करके चले गए और निश्चित तिथि पर ऋषिकेश पहुच गए। महाराजजी स्वामीजी को तथा अपने सेवक को साथ लेकर गगोत्री के लिए रवाना हुए। टिहरी तक तो वस मे गए। इसके पश्चात् सारी यात्रा पैदल करनी थी। तीन दिन मे उत्तरकाशी पहुच गए। यहा पर ८-१० दिन तक पजावी क्षेत्र मे निवास किया। तत्पश्चात् उत्तरकाशी से मजदूर साथ लेकर ४ दिन मे गगोत्री पहुच गए। तीन-चार दिन मे मार्ग की थकान दूर होगई। महात्मा आनन्दस्वामी को महाराजजी ने स्थानीय सब महात्माओ के दर्शन करवाए। स्वामीजी महाराज बहुत वर्षो से साधना कर रहे थे। शम, दम, तितिक्षा तथा उपरति रूप साधन-चतुष्टय-सम्पन्न थे। कई वर्षो से यम और नियमो का अक्षरश पालन कर रहे थे। आसन भी ३-४ घण्टे का सिद्ध हो चुका था। वहुत पुराने अभ्यासी थे। इन्होने केवल ८ दिन मे ही आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया। श्री महाराजजी का मनोवल भी इन दिनो वहुत वृद्धि पर था और स्वामीजी के प्रति इनका अत्यन्त वात्सल्य भाव था। स्वामीजी आर्यसमाज के वडे स्तम्भो मे से है, अत महाराजजी ने वडे परिश्रम से इन्हे शीघ्र ही आत्मज्ञान करवा दिया। योगीराजजी को यह विश्वास था कि यदि इन्हे आत्मज्ञान करवा दिया जाएगा तो इनके द्वारा लाखो का उपकार और कल्याण होगा क्योकि ये उपदेष्टा और परिव्राजक है।

श्री आनन्दस्वामीजी को आत्मसाक्षात्कार

श्री स्वामीजी महाराज योगीराजजी के प्रथम शिष्य है जिनको इन्होने अपनी सारी आत्मशक्ति लगाकर शीघ्रातिशीघ्र आत्मविज्ञान प्राप्त करवाया और आत्मसाक्षात्कार करवाया। इनको प्रात काल आठ वजे उपस्थित होने का आदेश दिया गया था। इसी के अनुसार नियत समय पर ये उपस्थित होगए। योगीराजजी ने इन्हे सिद्धासन लगा कर दो घण्टे तक वैठने के लिए आज्ञा की। त्राटक करवाया और फिर अन्तर्ध्यान होने के पश्चात् नेत्र वन्द करके ब्रह्मरध्र मे ध्यान को ले जाने का आदेश दिया और समझाया कि "ब्रह्मरध्र मे ध्यान करने से एक महती दिव्य ज्योति प्रकट होगी इसको देखकर घवराने तथा भयभीत होने की आवश्यकता नही है। इस दिव्य ज्योति को स्थिर करने का प्रयत्न करना। इस पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश करना और फिर इसे मूलाधार की ओर फेकना। इस दिव्य ज्योति का रग विद्युत के समान होगा। इसके सयोग से मूलाधार मे रक्तवर्ण अथवा पीतवर्ण अथवा श्वेतवर्ण की एक और विशेष ज्योति प्रकट होगी जो भीतर मे आपके सारे शरीर को

प्रकाशित कर देगी। इसके द्वारा आप अपने सारे स्थूल शरीर को अन्दर से देख सकेंगे। जिस प्रकार से डाक्टर शरीर को चीर-फाडकर भीतर से नस, नाडी, अस्थि, मज्जा आदि को देख लेता है उसी प्रकार से आप इस ज्योति के द्वारा सब कुछ स्थूल शरीर मे देख सकेंगे। शरीर के भीतर आपको सब चीजे प्रत्यक्ष दिखाई देंगी और आपको उस शरीर का वास्तविक ज्ञान हो जाएगा जिससे मनुष्य का भारी ममत्व होता है।" स्वामीजी ने जब त्राटक के पश्चात् ब्रह्मरध्र मे प्रवेश किया तब महती दिव्य ज्योति प्रकट हुई। उस दिव्य ज्योति का स्वामीजी को प्रबल धक्का लगा और वे २-३ फीट ऊचे उठकर भूमि पर गिर गए। ऊचे उठते समय तथा नीचे गिरते समय इनका आसन यथावत् बधा हुआ था। चोट तो किसी प्रकार की नही लगी किन्तु आखे खुल गईं। महाराजजी ने पूछा, "क्या हुआ ?" स्वामीजी ने कहा, "आपकी ओर से एक दिव्य ज्योति ने मेरे अन्दर प्रवेश किया। उसमे बडी शक्ति और बल था। उसे मैं सहन न कर सका अत उसने मुझे उठाकर फेंक दिया। मुझे चोट बिलकुल नही लगी और मेरा शरीर मुझे बहुत हलका प्रतीत हो रहा है।" महाराजजी ने आज्ञा दी, "सावधान होकर बैठो। इस बार थोडी शक्ति का प्रयोग किया जाएगा।" श्री आनन्द स्वामीजी पूर्ववत् स्थिर होकर बैठ गए। सर्वप्रथम ब्रह्मरध्र मे मन्द-मन्द ज्योति प्रकट हुई और शनै -शनै तेज होती गई। इसे मूलाधार मे प्रवेश करके सारे शरीर का साक्षात्कार किया। दूसरे दिन के अभ्यास मे सारे चक्रो का प्रत्यक्षीकरण हुआ। तीसरे दिन के अभ्यास मे प्राणविज्ञान, उसकी गति, विधि, व्यापार और १० स्थानो मे इसके कार्य, रग, रूप इत्यादि को प्रत्यक्षरूपेण देखा। चौथे दिन के अभ्यास से ब्रह्मरध्र की दिव्य ज्योतियो और सूक्ष्म शरीर मे मनोमय कोष का साक्षात्कार किया। पाचवे दिन सूक्ष्म भूतो (पच तन्मात्राओं) और स्थूल भूतो का प्रत्यक्ष किया। इनके सब कार्य-कारणो और व्यापारो को देखा। छठे दिन ब्रह्मरध्र मे विज्ञानमय कोष का प्रत्यक्ष विज्ञान और उसका मनोमय कोष मे प्रत्यक्षीकरण, और ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियो के कारण तथा कार्य को प्रत्यक्ष रूप से देखा। सातवें दिन आनन्दमय कोष मे प्रवेश करके सूक्ष्म प्राण, अहकार और चित्त के कार्यों का तथा स्वरूपो का साक्षात्कार किया। आठवें दिन कारणरूप प्रकृति और चित्त मे आत्मा के स्वरूप को दिखाया गया और अपने स्वरूप मे स्थिति करवाकर कई घण्टे की समाधि मे स्थिर किया। कई घण्टे की समाधि से उठने के पश्चात् श्री स्वामीजी ने महाराजजी के चरणारविन्दो को स्पर्श करके कहा, "महाराजजी ! आपकी अपार कृपा से आज मैं कृतकृत्य होगया। आपने जन्म-जन्मान्तरो की मेरी अध्यात्मपिपासा को शान्त कर दिया। आज मेरी इच्छा पूर्ण हुई है। आज मैने इस मानवजीवन को सफल समझा है। जिस उद्देश्य से गृह-त्याग करके सन्यास धारण किया था वह आज प्राप्त हुआ है। वास्तव मे मुझे आज ही यह बात समझ मे आई है कि मेरा यथार्थ स्वरूप क्या है। मैं कब से इस स्वरूप-स्थिति के लिए भटक रहा था। आज आत्मदर्शन पाकर इधर-उधर भटकना शान्त होगया। आप कृपा करके इतना आशीर्वाद मुझे और दीजिए कि यह विज्ञान स्थायी हो जाए।" महाराजजी ने कहा, "कुछ काल के अभ्यास के पश्चात् यह दृढभूमि हो जाएगा। अब परमवैराग्य अवशेष है जो आपको स्वय करना होगा। अभी आपको आधा विज्ञान ही प्रदान किया गया है। अभी आप इतने के ही अधिकारी है। जब आपका यह विज्ञान दृढभूमि हो जाएगा तब आपको ब्रह्म-विज्ञान प्रदान किया

जाएगा। जब यह विज्ञान दृढभूमि हो जाए तब इसे उचित अधिकारी को ही प्रदान करना, किसी अन्य को नही।" इस पर स्वामीजी ने निवेदन किया, "महाराजजी! आपको तो आपके पूज्य गुरुदेवजी ने केवल १७ घण्टे की समाधि मे ही दोनो विज्ञान प्रदान कर दिए थे।" महाराजजी ने कहा, 'हमारे और आपके जीवन मे बहुत अन्तर है। हम बालब्रह्मचारी है और सारा जीवन इसी योग-साधना मे लगाया है। हमारे कई पूर्वजन्मो का यह प्रयत्न है। इस जीवन मे भी बहुत तप, त्याग, वैराग्यपूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करके अनेक साधनाए की है। आपने अपनी शक्तियो का गृहस्थाश्रम मे व्यय कर दिया है। इसलिए आपकी और हमारी तुलना नही हो सकती। आपको भी आठ दिन मे १६ घन्टे मे साधना करवाकर स्वरूप का साक्षात्कार करवाया गया है। ब्रह्मविज्ञान इसके दृढभूमि होने पर जब अवसर आएगा और आप अधिकारी बन जाएगे तब प्रदान किया जाएगा।" स्वामीजी महाराज ५ मास तक गगोत्री ठहरे और प्राप्त आत्मविज्ञान को दृढभूमि करते रहे। स्वामीजी ने गुरुदीक्षा प्राप्त करने के उपलक्ष्य मे पाच सौ रुपया महाराजजी को भेट करना चाहा किन्तु इन्होने स्वीकार नही किया क्योकि इन्होने किसी साधु या सन्यासी से भेट न लेने की प्रतिज्ञा ले रखी थी। जिस समय दोनो मे इस प्रकार का विवाद चल रहा था उसी समय स्वामी दयालमुनिजी वहा आगए और कहा कि इस विवाद को मिटाने के लिए यह ५०० रु० मुझे दे दिया जाए जिससे योग-निकेतन मे स्वामीजी के लिए एक कुटिया बना दी जाएगी। दोनो इस बात पर सहमत होगए। थोडे ही दिनो मे यह कुटिया बनकर तैयार हो गई। उस पर स्वामीजी महाराज का नाम लिखा गया और वह आनन्द कुटी के नाम से प्रसिद्ध है।

१९५१ मे तपोवन मे साधना-शिविर

अक्तूबर मास मे महाराजजी और स्वामीजी ने उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया और वहा पर पजाबी क्षेत्र मे ठहरे। स्वामीजी महाराज ने योगीराजजी से निवेदन किया, "आप इस बार दो मास के लिए साधना-शिविर देहरादून स्थित तपोवन मे लगाने की कृपा करे।" महाराजजी ने दिसम्बर तथा जनवरी मास मे तपोवन मे साधना-शिविर लगाने की स्वीकृति दे दी। आनन्दस्वामीजी महाराज ने तपोवन पधार कर साधना-शिविर की सारी व्यवस्था कर दी और सब पत्रो मे इस विषय की सूचना निकलवा दी और सर्वत्र घोषणा करवा दी। श्री महाराजजी नवम्बर के अन्त मे देहरादून पधार गए। यहा पर बाबू दौलतरामजी के पास २-४ दिन ठहरकर तपोवन पधारे।

श्री आनन्दस्वामीजी ने गगोत्री से कई लेख पत्रो तथा पत्रिकाओ मे लिखकर भेजे थे। इनमे गगोत्री तथा यहा के सन्तो की महिमा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया था। महाराजजी से विज्ञान प्राप्ति के विषय मे भी कई लेख आपने प्रकाशित करवाए थे। इससे लोगो मे योग और आत्म-विज्ञान के प्रति रुचि जागृत हुई। इसलिए तपोवन मे योगाभ्यास के लिए सैकडो की सख्या मे लोग आए। यहा पर साधको के निवास तथा भोजन की व्यवस्था बहुत अच्छे ढग पर की गई थी। श्रीमती धर्मदेवी तथा श्रीमती भाग्यवन्ती तपोवन मे दर्शनार्थ आई और निवेदन किया, "महाराजजी! आनन्द स्वामीजी ने अपने व्याख्यान मे कहा था, 'महाराजजी ने मुझे तो कृतकृत्य कर दिया

है। मेरा कल्याण होगया है। मैं उनका वडा ऋणी हू। उन्होने आत्म-विज्ञान प्रदान करके मुझपर महान उपकार किया है।' आपने हर की पौडी पर वचन दिया था कि आपकी समाधि लगवाकर आपको आत्म-विज्ञान करवा देगे, पर अभी तक आपने कृपा नही की।" महाराजजी ने फरमाया, "स्वर्गाश्रम मे दो मास का साधना-शिविर लगेगा। वहा पर आपकी इच्छा की पूर्ति की जाएगी।" तपोवन मे योग प्रशिक्षण के सम्वन्ध मे प्रात ४ वजे से ही कक्षाए प्रारभ होती थी। पहली कक्षा दो घण्टे तक लगती थी। इसके पश्चात् ढाई घण्टे की कक्षा और फिर एक-दो घण्टे की कक्षा लगती थी। इस प्रकार से प्रात चार से साढे दस वजे तक योग प्रशिक्षण कार्य होता था। भिन्न-भिन्न अध्यात्म स्तर के लोगो के लिए अलग-अलग कक्षाए लगाई जाती थी। भारतवर्ष के योग सम्वन्धी साहित्य में कही पर भी इस प्रकार से योग सिखाने की पद्धति का उल्लेख नही है। यह नवीन प्रणाली है। यह महाराजजी के अपने ही दिमाग की सूझ है। नया आविष्कार है। नवीन अनुसधान है। इस पद्धति से आध्यात्मिक पथ के पथिको को महान लाभ हुआ है। जो अभ्यासी और साधक जिस स्तर पर होता था उसे उसी स्तर के साधको के साथ वैठकर साधना करनी होती थी। साधनाभ्यास के कई वर्ग वने हुए थे। जो जिस वर्ग के योग्य होता था उसे उसी वर्ग के साथ योग की शिक्षा दी जाती थी। तपोवन मे वहुत से साधक ठहरे हुए थे। देहरादून से भी प्रतिदिन अभ्यामार्थी आते थे। प्रति रविवार को सायकाल महाराजजी का दो घण्टे तक व्याख्यान होता था। हजारो नर-नारी इस उपदेशामृत का पान करने के लिए दूर-दूर से आते थे। एक दिन एक विद्वान् डाक्टर ने महाराजजी से पूछा, "क्या आप अपने श्रोताओ को मैस्मराईज़ कर देते हैं? लोग नितान्त शान्त होकर आपके उपदेशो का श्रवण करते है। उनके सास लेने तक की भी आवाज सुनाई नही देती।" महाराजजी ने कहा, "मै तो मैस्मरिज़म जानता नही। हा, मेरे योगवल से प्रभावित होते हो तो यह दूसरी वात है।" इन दिनो महाराजजी के भाषण प्राय अष्टाङ्ग योग पर हुआ करते थे।

रायसाहिव विश्वेश्वरनाथदत्तजी को आरोग्य-दान—देहरादून से श्रीमती शीलादेवीजी दर्शनार्थ आई। इन्होने महाराजजी के योग तथा मानसिक शक्ति के विषय मे वडी प्रसिद्धि सुनी थी। नगर मे सभी लोग इनके भाषणो की भूरि-भूरि प्रशसा करते थे। इससे प्रभावित होकर इन्होने महाराजजी से प्रार्थना की, "महाराजजी! मेरे पतिदेव आपके दर्शनार्थ आना चाहते है।" महाराजजी ने कहा, "पूछने की क्या आवश्यकता है? वे जव चाहे आ सकते है।" इस पर शीलादेवी ने कहा, "यहा आने मे चढाई चढनी पडती है। वे वडे शक्तिहीन होगए हैं। चिरकाल से वीमार है। घोडे पर भी उनकी चढने की हिम्मत नही होती, वरना घोडे पर ही आ जाते।" महाराजजी ने वावा गुरमुखसिंहजी से कहकर डाण्डी का प्रवध करवा दिया। शीलादेवी के पति का नाम विश्वेश्वरनाथदत्त था। भारत सरकार मे नौकरी करते थे। १६००रु० वेतन पाते थे। राज्य-सेवा से निवृत्त होकर वीमार रहने लग गए थे। अत्यन्त दुर्वल होगए थे। अनेक उपचार करवाए किन्तु किसी से भी लाभ नही हुआ। महाराजजी की प्रशसा सुनी थी कि वे वडे सिद्ध पुरुष है, हिमालय के योगी हैं। गगोत्री से आए हैं। इनके आशीर्वाद से ही भयकर रोगो के रोगी भी ठीक हो जाते है। इसलिए इनके मन मे भी इनसे आशीर्वाद प्राप्त करने की इच्छा हुई। इसी भावना से महाराजजी के

दर्शन की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होगई। महाराजजी ने डाण्डी भेजकर दत्तजी को बुलवा लिया। इन्होने आकर अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से प्रणाम किया और हाथ जोडकर प्रार्थना की कि "मैं आपकी योग-साधना की कक्षा मे प्रवेश पाना चाहता हू।" वास्तव मे इनकी इच्छा आरोग्य लाभ करने की थी। योग-साधना को तो केवल निमित्त बनाना चाहते थे। इससे एक पन्थ दो काज हो जाते थे, अर्थात् योग-साधना भी करते और आरोग्यता का भी लाभ हो जाता। महाराजजी ने आज्ञा प्रदान कर दी और बाबा गुरमुखसिंह से डाण्डी के लिए चार आदमियो का भी प्रबध करवा दिया। कोमलता, दयालुता और सहानुभूति साधु-महात्माओ के सहज गुण होते है, इसलिए दत्तजी को महाराजजी ने बडे स्नेह, प्यार तथा वात्सल्यभाव से अपनाया। धीरे-धीरे दत्तजी की योगसाधना मे अच्छी प्रगति होने लगी और स्वास्थ्य भी सुधरने लगा। शरीर मे शक्ति आने लगी। पाच-सात दिन बाद उन्होने महाराजजी से निवेदन किया कि अब उन्हे पालकी की आवश्यकता नही क्योकि अब वे घोडे पर सवार होकर आने मे सक्षम होगए थे। थोडे दिनो मे ये पैदल आने मे भी समर्थ होगए। यह सब महाराजजी की कृपा का परिणाम था। इन्होने अपने योग-बल से इनमे शक्ति का सचार किया और इन्हे नीरोग कर दिया। शारीरिक उन्नति के साथ-साथ साधना मे भी उन्नति हुई। अब अभ्यास मे इनकी कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर शरीर और चक्र विज्ञान और प्राण विज्ञान होगया था। महाराजजी के प्रति वे सदैव अपनी कृतज्ञता प्रकट करते थे और इनके प्रति बडी श्रद्धा और भक्ति होगई थी। वे इस बात को खूब समझते थे कि महाराजजी की कृपा से ही वे स्वस्थ हुए है और इन्होने ही जीवन-दान दिया है, अत इन्हीके चरणो मे रह कर शेष जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया।

ब्रह्मचारी जगन्नाथजी का आगमन—इन्ही दिनो मे ब्रह्मचारी जगन्नाथजी कई वर्षो के पश्चात् पुन साधना मे आए और दो मास यहा साधना की। इन्होने ब्रह्मरध्र विज्ञान मे विशेष सफलता लाभ की और महाराजजी के चरणो मे रह कर ही अपना कल्याण समझा। अपना यह निश्चय करके महाराजजी के प्रत्येक चार मास के शिविर मे आना प्रारम्भ कर दिया और कई वर्ष की कठिन साधना के पश्चात् आत्मविज्ञान मे विशेष सफलता प्राप्त की।

कैप्टेन जगन्नाथजी का आगमन—कैप्टेन श्री जगन्नाथजी सेवा से निवृत्त होकर सीधे तपोवन के शिविर मे पहुचे और महाराजजी से हाथ जोड कर प्रार्थना की, "मेरी धर्मपत्नी का स्वर्गवास होगया है। पुत्र और पुत्रियो के विवाह कर दिए है। सब अपने-अपने स्थान पर सुखी है, इसलिए परिवार का मुझे कोई बधन नही है। मुझे पेन्शन मिलती है इसलिए निर्वाह की भी कोई चिन्ता नही है। आपके दर्शन कर मैं अपने को बडा गौरवान्वित समझता हू। अब मैं आपके श्रीचरणो मे निवास करके योग द्वारा आत्मविज्ञान प्राप्त करना चाहता हू। मै कई वर्षो से किसी योग्य और विद्वान् योगी की तलाश मे था। आज आप जैसे महान् योगी ससार मे दुर्लभ है। मेरे किसी पुण्यकर्म के विपाक से आज आपके दर्शन हुए है। मैं अब आपके श्रीचरणो मे अपने को समर्पित करता हू और इसी मे अपना कल्याण समझता हू।" श्री महाराजजी ने इन्हे आज्ञा प्रदान की। इन्होने भी कई वर्ष की कठिन साधना के उपरान्त आत्म-विज्ञान लाभ किया।

तपपूत महात्मा प्रभु आश्रितजी का आगमन—इसी अवसर पर महात्मा प्रभु आश्रितजी (भूतपूर्व महात्मा टेकचन्दजी) तपोवन आए। इन्होने महाराजजी के दर्शन स्वर्गाश्रम मे किए थे। ये बडे अच्छे लेखक है और कई ग्रथो के लेखक है। सिंध, पजाब तथा अन्य प्रान्तो मे यज्ञ तथा गायत्री जाप के विशेष प्रचार तथा उपदेश द्वारा जनता का बडा कल्याण किया है। गृहस्थाश्रम के पश्चात् कई वर्ष तक वानप्रस्थाश्रम मे रहे। अनेक बार मौन तथा अन्य कठिन साधनाओ द्वारा अनेक सिद्धिया प्राप्त कर ली थी। उनकी वाणी और व्यक्तित्व मे विशेष आकर्षण था, इसलिए इनके हजारो शिष्य तथा शिष्याए थी। हजारो साधक और साधिकाए इनके पास भक्ति का सन्देश तथा उपदेश लेने आते थे। कुछ वर्ष तक वानप्रस्थाश्रम मे रह कर इन्होने आर्य जाति की सेवा और प्रचार का बहुत काम किया। यज्ञमय जीवन का सदेश देश के कोने-कोने मे पहुचाने के लिए इन्होने कई ऐसे योग्य शिष्य तैयार किए जिन्होने अपना सारा जीवन उस महान् कार्य मे लगाने का निश्चय किया है। जब उनकी वैराग्य भावना ने उत्कट रूप धारण कर लिया तब इन्होने सन्यास धारण किया और अपना नाम प्रभु आश्रित रख कर अपना शेष सपूर्ण जीवन सर्वशक्तिमान परमात्मा के अर्पण कर दिया। इन्होने भी साष्टाग दण्डवत करके महाराजजी से योग-साधना की स्वीकृति मागी। योगीराजजी उनकी भक्ति और तप तथा प्रचार कार्य मे बडे प्रसन्न थे अत तुरन्त उनको स्वीकृति दे दी। इन्होने तीन वर्ष तक साधना-शिविरो मे महाराजजी के पास योग-साधन द्वारा आत्म-विज्ञान प्राप्त किया और उस प्राप्ति मे अपने को कृतकृत्य समझा। महाराजजी के सब शिष्यो मे अत्यन्त विनम्र है। उनकी ईश्वर और गुरु मे अनन्य भक्ति है। जब आते है तभी महाराजजी के श्रीचरणो मे ही बैठते है, कभी उच्चासन पर नही बैठते। दिन हो अथवा रात, जब भी अपने गुरुदेव के पास आते है जूते बहुत दूर खोल कर दण्डवत करके विनयावनत होकर खडे रहते है, आज्ञा मिलने पर नीचे बैठ जाते है। रात्रि को प्रणाम और दर्शन के बिना कभी नही सोते। जब कभी महाराजजी के पास रहने का अवसर आता तो नित्यप्रति रात्रि को उनके चरण दबाने के लिए आते। महाराजजी के बार-बार निषेध करने पर भी अपने इस कर्तव्य मे च्युत नही होते थे। एक बार ये योगीराजजी के पास उत्तरकाशी मे निवास कर रहे थे। ये आयु मे इनसे बडे है किन्तु इनके सामने सदैव अपने को बालक ही समझते है। वहा पर नित्य ही रात्रि मे अपने गुरुदेव के चरण दबाने के लिए जाते थे। एक दिन महाराजजी ने इनसे कहा, "देखो! आप मेरी बात मानो, आप मेरे पैर दबाने का कष्ट मत किया करो। मै बहुत बूढा नही हू, कमजोर भी नही हू। आयु मे आपसे छोटा हू। किसी प्रकार की थकावट भी मुझे नही होती। अत आप यह कष्ट मत किया करो।" इसी विचार से महाराजजी ने अपना द्वार ६ बजे से पूर्व ही बन्द कर दिया। जब महात्माजी नित्यप्रति की भाति महाराजजी के चरण दबाने आए तो दरवाजा बन्द देखकर वही खडे होगए। नौकर ने कहा, "महाराजजी आपको चरण दबाने का कष्ट नही देना चाहते, इसीलिए आज दरवाजा जल्दी बन्द कर दिया है।" यह सुनकर महात्माजी को बडा दु ख हुआ और महाराजजी के किवाडो की चौखट को ही गुरुदेव के चरणकमल समझकर पूरा एक घण्टा तक दबाते रहे। प्रात काल योगीराजजी के सेवक विजय ने महात्माजी का सब समाचार उन्हे निवेदन किया। जब ये महाराजजी को प्रात नमस्कार करने

आए तब इन्होने पूछा, "आप गत रात्रि एक घण्टा तक दरवाजे को ही दबाते रहे।" महात्माजी ने बडा सुन्दर उत्तर दिया, "आपने इन श्रीचरणो की सेवा से मुझे वञ्चित कर दिया था अत मैं आपके चरणो की भावना रखकर दरवाजे को ही दबाता रहा।" महाराजजी ने इनके सामने अपनी पराजय स्वीकार की और वे जो चाहते थे उन्हें करने दिया। महात्माजी के शिष्य भी इनकी गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति तथा सेवाभाव को देख कर बडे विनम्र होगए थे और गुरु के प्रति अटल भक्ति रखते थे।

ठाकुरदत्तजी वैद्य का सपत्नीक शिविरागमन—श्री ठाकुरदत्त वैद्य तथा इनकी धर्मपत्नी तपोवन के साधना-शिविर मे नित्य आते थे और सारे कार्यक्रम मे भाग लेते थे। इन दोनो ने इस शिविर से बहुत लाभ उठाया। इनकी पत्नी श्रीमती पूर्णा देवी बडी श्रद्धालु, भक्ति और निष्ठा युक्त देवी थी। इनकी अभ्यास मे बडी ऊची स्थिति होगई थी। इनको नाना प्रकार के चमत्कारो का अनुभव होने लगा था और बहुत देर तक इनकी समाधि लग जाया करती थी। महाराजजी इन वैद्यजी की कोठी पर प्राय ठहरा करते थे।

सेठ झब्बालालजी सर्राफ की अनन्य भक्ति—देहरादून के सेठ झब्बालालजी सर्राफ महाराजजी के अनन्य भक्त बन गए थे। कई वर्ष तक इन्होने साधना-शिविरो मे अभ्यास करके बहुत ऊची अवस्था प्राप्त कर ली थी। महाराजजी के पास उत्तर-काशी तथा गगोत्री जाकर भी साधना करते रहे थे।

अन्यान्य भक्त—चौधरी जयरामसिह और इनका सब परिवार दो वर्ष तक महाराजजी के साधना-शिविर में तपोवन मे आते रहे। बडी लगन के साथ अभ्यास करके अच्छी प्रगति कर ली थी।

बलदेवमित्र बहल और इनकी पत्नी सुमित्रा भी महाराजजी के योग-शिविर मे कई वर्ष तक साधना करते रहे। उपरोक्त महानुभावो के अतिरिक्त देहरादून के प्राय सभी गण्य-मान्य और प्रतिष्ठित महानुभाव साधना-शिविरो से लाभ उठाते रहे।

बाबा गुरमुखसिहजी की भक्ति—बाबा गुरमुखसिहजी की दानप्रियता अनुकरणीय है। आपने ही लाखो रुपया लगाकर तपोवन का निर्माण किया था। इनकी महाराजजी के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। गायत्री को वे अपना प्राण समझते थे। नित्यप्रति इस महामत्र का जाप करते थे और ध्यान किया करते थे। अभ्यासकाल मे इन्हे अनेक सिद्धो के दर्शन होते थे और ये प्राय उनके भाषण सुना करते थे।

शिविर समाप्ति—दो मास तक न केवल देहरादून की जनता ने ही साधना-शिविर से लाभ उठाया, अपने आध्यात्मिक स्तर को ऊचा किया और योग मे प्रगति की, किन्तु सैकडो नर-नारी अन्य नगरो से भी यहा इस शिविर मे सम्मिलित हुए और अपने जीवन को उन्नत किया। जनता मे योग के प्रति अभिरुचि जागृत हुई और जहा भी ये लोग गए वही पर योग तथा साधना-शिविर के सन्देश को पहुचाया।

इस साधना-शिविर का समाप्ति-समारोह बडी धूमधाम से मनाया गया। श्री महात्मा आनन्दस्वामीजी ने तथा बाबा गुरमुखसिहजी ने शिविर-समाप्ति के उपलक्ष्य मे एक वृहद् यज्ञ तथा उत्सव की भारी योजना बनाई। कई प्रख्यात प्रकाड पण्डितो को इस अवसर पर व्याख्यान देने के लिए विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया।

बृहद्-यज्ञ—यज्ञ के लिए विधिपूर्वक एक बहुत बडी वेदी को मदिर के रूप मे निर्माण किया गया तथा पत्रो और पुष्पो से सुसज्जित किया गया। इसके चारो ओर चार मार्ग बनाए गए थे। कर्मकाण्ड के धुरधर विद्वानो ने इस यज्ञ को निष्पन्न किया था। इस यज्ञ मे इतना आकर्षण, रोचकता और माधुर्य था कि सैकडो की सख्या मे नर-नारी इस यज्ञ मे सम्मिलित हुए। कई घण्टे तक जनता ने इस यज्ञ का सुखलाभ किया। पूर्णाहुति का दृश्य वास्तव मे दर्शनीय था।

बृहद्-सभा का आयोजन—आगन्तुक महानुभावो के बैठने की व्यवस्था बडे उत्तम ढग से की गई थी। लगभग २०-२५ हजार नर-नारी इसमे उपस्थित हुए थे। इतनी बडी सभा मे व्यवस्था और अनुशासन बनाए रखना कोई आसान काम न था, किन्तु महात्मा आनन्दस्वामीजी के प्रभाव से सब प्रबन्ध बहुत उत्तम रहा और जनता ने शान्तिपूर्वक अपना पूर्ण सहयोग दिया।

प्रबन्धको ने सर्वसम्मति से पूज्य महाराजजी को ही सभा का अध्यक्ष बनाना स्वीकार किया। इनसे योग्य इस सभा के सभापतित्व के लिए और हो ही कौन सकता था! स्वामीजी तथा बाबा गुरमुखसिह के बहुत आग्रह करने पर महाराजजी ने इस पद को ग्रहण किया।

सभा मे अनेक सारगर्भित भाषणो मे महाराजजी की भूरि-भूरि प्रशसा की गई। इस शिविर से देहरादून की जनता मे ही नही किन्तु दूर-दूर के लोगो मे भी योग के प्रति अभिरुचि जागृत हुई। इस समारोह की प्रबन्ध-समिति ने महाराजजी के चरणो मे हार्दिक धन्यवाद अर्पण किया। इसके पश्चात् योगीराजजी ने अध्यक्षीय भाषण दिया और यज्ञ, उत्सव तथा अभ्यास मे आने वाले सब स्त्री-पुरुषो को धन्यवाद देते हुए कहा —

यह आश्रम आप सबका बडा अनुगृहीत है। आपने इन तीनो कार्यों मे आकर इसकी शोभा को बढाया है। आप लोगो ने अभ्यास, सत्सग और यज्ञ से लाभ उठाकर अपने जीवनो को पवित्र बनाया है। दो मास तक यहा निवास करते हुए मैंने सैकडो स्त्री-पुरुषो को सत्सग और अभ्यास से जीवन मे आध्यात्मिक भावना को जगाकर आत्मसाक्षात्कार के पथ पर चलाकर शान्ति और आनन्द को उपलब्ध करवाया है। यहा की जनता मे योगसाधन के लिए बडी भारी रुचि, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम देखकर हमे बडी प्रसन्नता हुई है। ५-६ मील से अभ्यासी लोग नित्य चलकर आते थे। इससे स्पष्ट है कि आप लोगो मे तत्त्व-ज्ञान की जिज्ञासा है। आप मे से कइयो ने तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति मे विशेष उन्नति की है। यह बडे हर्ष की बात है। इस युग मे योग ही ऐसा सुगम, सरल और सुबोध मार्ग है जिस पर चलकर बहुत शीघ्र एक ही जन्म मे आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। तत्त्व-ज्ञान प्राप्ति के लिए हमने जो ध्यान तथा समाधि के उपाय और साधन इन दो मासो मे बताए है उन पर आपको अनुष्ठान करना चाहिए। इस मानव जीवन के दो भाग है। यदि हमारी आयु सौ वर्ष की हो तो ५० वर्ष तक लोकसग्रह और शेष ५० वर्ष तत्त्वज्ञान और मोक्षप्राप्ति करनी चाहिए। सारा जीवन ही लोकसग्रह मे लगे रहना कोई बुद्धिमत्ता की बात नही है। यह तो पशुपक्षी भी सारा जीवन करते रहते है। मनुष्य जीवन की विशेषता इसी मे है कि अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त करके अपने स्वरूप को

समझे। दो मास तक इस लोक तथा परलोक के सुधार के ही सब साधन बतलाए गए हैं। जिन साधनो के द्वारा पशु से मनुष्य और मनुष्य से प्राणी देवता बन सकता है। इसका सबसे बडा साधन अष्टाङ्ग योग है। जिसको ससार के दु खो से मुक्त होने की चाह है उसे इन सभी साधनो को अपनाना चाहिए। इनके द्वारा ही तत्त्व-ज्ञान और वैराग्य होकर परम शान्ति और आनन्द प्राप्त हो सकता है। मैं आशा करता हू कि आप लोग इस योग-पथ पर चलकर इस मानव जीवन के यथार्थ उद्देश्य को अवश्य पूरा करेंगे और सर्व दु खो से मुक्त होगे।

आप लोगो के लाभ के लिए वैदिक आश्रम ने आपकी बहुत सेवा की है। अपना समय और शक्ति तथा धन लगाकर साधको और दर्शनार्थियो तथा सत्सग मे आने वाले सज्जनो को सभी प्रकार की सुविधाए प्रदान की हैं, अत इस साधना-शिविर के प्रबन्धक सबसे अधिक धन्यवाद के पात्र है। आप लोग जो इतना कष्ट उठाकर यहा आए हैं, आप भी धन्यवाद के पात्र है।

उत्सव समाप्त होने के पश्चात् पण्डित ठाकुरदत्तजी वैद्य श्री महाराजजी को राजपुर रोड पर स्थित अपनी कोठी पर लेगए। इस कोठी पर एक सप्ताह साधना-शिविर रखने और उपदेशामृत का पान कराने के लिए सैकडो व्यक्तियो ने प्रार्थना की। देहरादून की जनता योगीराजजी के उपदेशो से बडी प्रभावित हुई थी। लोगो के अत्यधिक अनुरोध, अनुनय तथा विनय करने पर महाराजजी ने दस दिन का शिविर 'अमृतधारा' पर लगाना स्वीकार कर लिया। प्रतिदिन प्राय एक सौ से अधिक नर-नारी इस योग साधन मे सम्मिलित होते थे। सायकाल ३ से ५ बजे तक महाराज का उपदेश होता था। सैकडो लोग इस उपदेशामृत का पान करने के लिए नित्य आते थे।

अढाई मास तक देहरादून मे अमृत की वर्षा करके और अध्यात्म की गगा बहा कर श्री महाराजजी ऋषिकेश पधारे। हजारो लोगो ने बडी श्रद्धा से और भक्ति-पूर्वक योगीराज को विदाई दी। यहा पधारकर महाराजजी ने दो मास का साधना-शिविर लगाया। यहा पर भी देहरादून के अभ्यासी साधनार्थ आए। इनमे विशेष उल्लेखनीय श्री उबराय और इनकी धर्मपत्नी है।

श्री महाराजजी के मनोबल का प्रभाव—श्री चौधरी जयरामसिह उबराय, तथा इनकी धर्मपत्नी की महाराज मे बडी भक्ति और श्रद्धा थी। ये देहरादून के साधना-शिविर मे आते थे। ये इस समय मे बडे सकट मे थे। इनके ऊपर दो मुकद्दमे थे—एक देहरादून की अदालत में और दूसरा इलाहाबाद की हाईकोर्ट में। इन मुकद्दमो मे इनकी हार हो जाना इनके अकिंचन हो जाने के समान ही था। अत इन्होंने महा-राजजी से सहायता के लिए प्रार्थना की। इस परिवार की अत्यधिक श्रद्धा और भक्ति देख कर महाराजजी को इस परिवार पर बडी दया आई। महाराजजी ने उबरायजी से कहा कि मुझे शहर मे ले जाकर जज साहिब को दिखा दो। उबरायजी तागे मे बिठाकर जज की कोठी के सामने ले गए, जब उसने कचहरी मे जाना था। इनको देखकर वापिस तपोवन मे आगए। दो दिन पश्चात् मुकद्दमे की तारीख थी। महाराजजी ने प्रात का दूध भी न पिया और जज पर प्रयोग करने की तैयारी करने लगे। दस बजे अदालत मे मुकद्दमा पेश होना था। महाराजजी ने मुकद्दमे के दिन, पास एक जगल में बैठकर अपने मनोबल से जज को प्रभावित करके चौधरी जयरामसिह

जी के अनुकूल बना दिया। इसके परिणामस्वरूप मुकद्दमे का फैसला जयरामसिंह जी के अनुकूल होगया। दूसरा मुकद्दमा इलाहाबाद मे था। वहा के जज की फोटो मगवाकर प्रयोग किया था।

महाराजजी ने अपने मनोबल मे चौधरी जयरामसिह के दूसरे मुकद्दमे का, जो इलाहाबाद की हाईकोर्ट मे था, फैसला भी इनके अनुकूल करवा दिया। मुकद्दमे के फैसले के दिन महाराजजी ने कई घण्टे तक मौन रखा और दोपहर का भोजन भी नही किया जिससे शक्ति-पात का कार्य सुचारु रूप से हो सके। इस मुकद्दमे मे विजय इसी शक्तिपात का परिणाम था। इन दोनो मुकद्दमो मे विजय के कारण इस परिवार की श्रीमहाराजजी मे अनन्य श्रद्धा और भक्ति मे और भी वृद्धि होगई। इस परिवार ने महाराजजी की आज्ञा का अक्षरश पालन करना प्रारम्भ कर दिया। अब ये अपना अधिक समय अभ्यास तथा सत्सग मे ही व्यतीत करने लगे। उवराय की पत्नी कृष्णा की महाराज के प्रति अगाध श्रद्धा थी। वह इन्हे कृष्ण भगवान के समान समझती थी। इस श्रद्धा और विश्वास के कारण इसे अभ्यास मे विशेष सफलता प्राप्त होने लगी। यह अन्य लोको की बाते करने लगी। भविष्यवाणी भी करती थी और अपने को भगवान् के अत्यन्त समीप समझती थी। इसके पति उवराय इसकी अभ्यास मे आशातीत प्रगति देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए और इन्होने भी स्वर्गाश्रम मे अभ्यासार्थ आना प्रारम्भ कर दिया। श्री नारायणदासजी कपूर, इनकी धर्मपत्नी सावित्रीदेवी, माता मेनादेवी, शान्ता, और शीला भी साधना शिविर मे सम्मिलित होने के लिए देहली से आगए। अमृतसर से लाला गुरुचरणदत्त, इनकी धर्मपत्नी तथा परिवार के अन्य सदस्य देवियां और सज्जन भी इस अवसर पर आए।

सरलादेवी का शिविर मे आना—अमृतसर निवासिनी श्रीमती सरलादेवी की महाराजजी के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। ये महाराजजी के श्रीचरणो मे बैठकर कई बार अभ्यास कर चुकी थी। इनकी ६-७ घण्टे तक शून्य समाधि लग जाया करती थी और ७ मिनिट तक कुभक प्राणायाम करने का अभ्यास था। युवावस्था मे ही इनके पतिदेव का स्वर्गवास होगया था। इनके एक पुत्र था। ये रात दिन पति-वियोग मे रुदन किया करती थी। इनकी माता इन्हे अमृतसर मे बाबू मुलखराजजी की कोठी पर महाराजजी के दर्शनार्थ लाई थी जिससे उनके शान्तिदायक उपदेश से इसे शान्ति-लाभ हो। श्रीमहाराजजी के सत्सग से थोडे ही दिनो मे इस देवी के जीवन मे एक महान् परिवर्तन होगया। इसने योग-पथ पर चलना प्रारम्भ कर दिया। अब यह शोक, चिन्ता तथा दु ख से विमुक्त होगई। इसने अब अपने को प्रभु-चरणो मे समर्पित कर दिया और दिन रात इन्ही की भक्ति मे निरत रहती थी। जब स्वर्गाश्रम मे श्रीमहाराजजी साधना-शिविर लगाते थे तब यह लाला गुरुचरणदत्तजी के साथ बराबर साधना-शिविर मे आती रहती थी। यह बहुत ऊची आध्यात्मिक स्थिति मे पहुच गई थी। इनके सास और ससुर अमेरिका मे रहते थे। कुछ वर्ष के पश्चात् ये लोग इन्हे और इनके पुत्र जगदीश को भी अमेरिका ले गए।

महाराजजी के योग-बल का चमत्कार

जिन दिनो स्वर्गाश्रम मे साधना-शिविर चल रहा था उन दिनो महाराजजी के पास रणवीरजी, मुख्य सपादक 'मिलाप', का तार आया। इसमे लिखा था कि

उनका भाई युद्धवीर बीमार है और उसकी अवस्था बडी चिन्ताजनक है। मैं उसके पास हवाई जहाज से हैदराबाद जा रहा हू। मैं आपका परमभक्त और आपका प्रिय शिष्य हू अत विनम्र प्रार्थना है कि आप इस महती विपत्ति से मेरे भाई की रक्षा करे। इसे अपना आशीर्वाद दे जिससे यह शीघ्र ही रोगमुक्त होजाए। इस तार को पढकर रणवीर की माताजी, उनकी बहिन और बहनोई बहुत घबरा गए और चिन्तातुर हुए। महाराजजी ने कहा, मैंने युद्धवीर को कभी देखा नही। उसके रग-रूप तथा आकृति से परिचित नही। अत प्रयोग करने मे बडी कठिनाई होगी। इसलिए नारायणदास कपूर को अपने सामने बैठने का आदेश दिया क्योकि ये युद्धवीर की आकृति और रग-रूप से परिचित थे। इन्हे युद्धवीर की आकृति का ध्यान करने की आज्ञा दी, और उनके ऊपर अपनी मानसिक शक्ति का प्रयोग किया। यह शक्ति आपके द्वारा युद्धवीर पर प्रभाव डालेगी। कपूर साहिब को बिठाकर महाराजजी स्वय खडे होकर शक्ति का प्रयोग करने लगे। यह दिन के दस बजे की बात है। आधा घटा इस प्रयोग के लिए रखा गया। कपूर साहिब के द्वारा महाराजजी ने अपनी शक्ति को युद्धवीर के पास प्रेषित किया। जब महाराजजी ने प्रयोग करना प्रारम्भ किया तब सर्वप्रथम ध्यान मे एक कमरा आया, फिर उसमे एक पलग दृष्टिगोचर हुआ और तत्पश्चात् एक शुभ्र चादर ओढकर लेटा हुआ युद्धवीर दिखाई दिया। इनके पास इनकी पत्नी सीता तथा एक सेवक भी बैठा हुआ नज़र आया। अब महाराजजी को युद्धवीर की आकृति, रग-रूपादि सब दिखाई देने लगा। युद्धवीर बिलकुल अचेत था। योगीराजजी के शक्ति-प्रयोग से इसके शरीर मे कुछ चेतना-सी आई और शरीर मे चेष्टा होने लगी। इन्हे लगभग २० मिनिट मे होश आगया। सकेत द्वारा बैठने की इच्छा प्रकट की। पलग पर तकिए के सहारे से इन्हे बिठा दिया गया। महाराजजी ने कपूर साहिब से कहा कि युद्धवीर अब ठीक है। तार देकर इसका पता लगा लो। ऐक्सप्रेस तार देकर पूछने पर विदित हुआ कि अब वे स्वस्थ हैं। रणवीरजी ११ बजे हवाई जहाज से हैदराबाद पहुचे। युद्धवीर को चारपाई पर बैठा देख वे बडे आश्चर्यान्वित होकर कहने लगे कि मुझे तो तुम्हारी बीमारी का तार मिला था और मुझे शीघ्र बुलाया गया था। कुछ घण्टे पहिले तुम्हारी शारीरिकावस्था चिन्ताजनक थी। इतनी जल्दी तुम ठीक भी होगए। तुम्हारा तार पढकर मेरे तो होश गुम होगए और मैं आतुर और व्याकुल होगया था। सीता ने बताया कि १० बजे रोगी की अवस्था ठीक ऐसी ही थी जैसी आपको तार मे लिखी गई थी। बडे आश्चर्य की बात है, प्रभु की यह अपार कृपा है कि एक घण्टे के भीतर ही इनकी दशा सुधर गई, होश मे आगए और उठकर बैठ गए। औषधोपचार मे भी किसी प्रकार का परिवर्तन नही किया गया। बेहोशी दूर होगई, अपने आप करवट बदली और खाना मागने लगे। यह उस सर्वशक्तिमान का एक अलौकिक चमत्कार है। रणवीरजी ने महाराजजी को जो तार दिया था उसका सब समाचार सीता को सुनाया। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि उनका भाई योगीराजजी के शक्ति-प्रयोग से स्वस्थ हुआ है। इन्होने सीता से कहा, "इसको स्वास्थ्य प्रदान करने वाले तो योगाश्रम मे विराज रहे है। उनकी हमारे परिवार पर विशेष कृपा है।" इन्होने महाराजजी को तार द्वारा रणवीर की पहुच और उनके आशीर्वाद से स्वास्थ्य लाभ की सूचना दी। कपूर साहिब ने भी रणवीरजी को युद्धवीर के ऊपर महाराजजी के शक्ति-प्रयोग करने की सूचना

तार द्वारा दी। अब रणवीरजी ने महाराजजी को हैदराबाद से निम्नलिखित पत्र लिखा :—"पूज्य गुरुदेव! मैं आज प्रत्यक्ष रूप में आपकी अतुल महान शक्ति को देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हूं। युद्धवीर कई दिन से बेहोश पड़ा था और वह मरणासन्न हो रहा था। वह २-३ घण्टे के अन्दर घूमने-फिरने के योग्य होगया है। मैं आपकी इस महती दया का अत्यन्त आभारी हूं। आपका यह उपकार सदैव मेरे हृत्पटल पर अंकित रहेगा। आपके इस महान ऋण से मैं जन्म-जन्मान्तरों तक भी उऋण नहीं हो सकता। किन शब्दों में मैं आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करूं! न मैं इसे वाणी से आपके समक्ष कह सकता हूं और न लेखनी से लिख सकता हूं। हृदय आपके प्रति कृतज्ञता के भावों से भरा हुआ है किन्तु भाषा इन्हें व्यक्त करने में असमर्थ है। आपने मेरे भाई को जीवन-दान दिया है इसके लिए मेरा सारा परिवार आपका सदा ऋणी रहेगा। युद्धवीर अब पूर्ण स्वस्थ है, इसलिए मैं कल देहली वापिस जा रहा हूं।"

श्रीमती धर्मवती को कोष-साक्षात्कार—श्रीमती धर्मवती तथा भाग्यवन्तीजी भी स्वर्गाश्रम में दो मास के साधना-शिविर में सम्मिलित हुईं। धर्मवतीजी पर अभी वेदान्त ग्रंथों के अध्ययन का बड़ा प्रभाव था। इन्होंने विशेष प्रयत्न के साथ विचार-सागर, योगवशिष्ठ, अद्वैतसिद्धि, वृत्तिप्रभाकर, वेदान्तदर्शन तथा उपनिषदादि ग्रंथों को गुरुमुख से अध्ययन किया था। श्री महाराजजी ने इस प्रकार से साधना का क्रम बताया जिससे इनकी कई-कई घण्टे की निर्विकल्पावस्था हो जाती थी। इस वर्ष इनको कुण्डलिनी जागरण, षट् चक्र वेधन, प्राण-विज्ञान और ब्रह्मरंध्र में सूक्ष्म शरीर का व्यापार और विज्ञान का साक्षात्कार करवाया गया। धर्मवती ने महाराजजी से निवेदन किया, "इन अनात्म पदार्थों के दर्शन से क्या लाभ होगा?" महाराजजी ने कहा, "ये बुद्धि को सूक्ष्म करने के साधन हैं। इन अनात्म पदार्थों में ही आत्मा का अनुभव होगा। ऋतम्भरा प्रज्ञा का प्रादुर्भाव होगा और इसके द्वारा आत्म साक्षात्-कार लाभ होगा। जो हम बताते हैं, आप इसे श्रद्धा, विश्वास और धैर्य के साथ करती रहो। जब क्रमपूर्वक विज्ञान द्वारा आपकी अपने स्वरूप में स्थिति हो जाएगी तब आप समझेंगी कि आत्मा एक है या अनेक, और आप ब्रह्म से भिन्न हैं या अभिन्न।"

श्रीमती भाग्यवन्तीजी को कोष-विज्ञान—श्रीमती भाग्यवन्तीजी को योग में बड़ी रुचि थी। साधना-शिविरों में प्रायः भाग लेती थीं। महाराजजी ने जब योग प्रशिक्षण का कार्य प्रारम्भ किया था तो सर्वप्रथम शिविर मोहन आश्रम में लगाया था। इस शिविर में भाग्यवन्तीजी ने अभ्यास किया था। इनकी योगीराजजी में अटूट श्रद्धा तथा अनन्य भक्ति थी। ये बड़े परिश्रमपूर्वक योग-साधना करती थीं। इन्होंने भी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोषों का साक्षात्कार किया और सदैव इस विज्ञान को दृढ़भूमि करने का प्रयत्न किया।

इस वर्ष साधना-शिविर में चालीस अभ्यासियों ने भाग लिया। प्रायः सभी ने सन्तोषप्रद प्रगति दिखाई और अपने आध्यात्मिक स्तर को उन्नत करने में सफल हुए। पूर्ववत् इस शिविर की समाप्ति पर भी एक वृहद् प्रीतिभोज किया गया। इसके पश्चात् सब अभ्यासियों को विदा कर दिया गया।

हरिद्वार मे निवास

इस वार हरिद्वार मे कुभ का मेला होने वाला था। इसके लिए वडी तैयारी की जा रही थी। सेठ तुलसीरामजी वम्वईवाले इस अवसर पर हरिद्वार आए हुए थे। वे स्वर्गाश्रम से महाराजजी को अपनी मोटरकार मे हरिद्वार मे अपने मकान पर ले गए और यहा ठहर कर लोगो को कथामृत पान करवाने के लिए निवेदन किया। महाराजजी प्रतिदिन दो घण्टे कथा किया करते थे। कुभ के कारण यात्री वहुत आए हुए थे, इसलिए कथा मे सैकडो नर-नारी एकत्रित होते थे और इनके उपदेशामृत का पान करके अपने को धन्य मानते थे। इसी वीच मे नारायणदासजी कपूर हरिद्वार मे आए और श्रीमहाराजजी को कार मे देहली ले गए। ये और रणवीरजी वी ब्लाक कनाट प्लेस मे निवास करते थे। महाराजजी ने हसते हुए रणवीरजी से कहा, "अव तो आपके परिवार मे सन्यास लेने की परम्परा चल पडी है। आप भी समय आने पर अपने पूज्य पिताजी का अनुकरण करना।" रणवीर ने खुश होकर कहा, "अवश्य महाराज, आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दे।" योगीराजजी ने उनके लिए प्रार्थना करने का वचन दिया और कहा, "भगवान् आपका सदैव मगल करे।" रणवीरजी महाराजजी को अपनी कार मे हरिद्वार छोड आए। यहा आकर सेठजी के मकान पर इन्होने दस दिन तक कथा की।

इस वार माता मेलादेवी और भाग्यवन्तीजी ने महाराजजी से गगोत्री जाने की इच्छा प्रकट की। इन्होने आज्ञा प्रदान कर दी। श्री आनन्दस्वामीजी ने भी जून मास मे वहा जाने के लिए महाराजजी से निवेदन किया। इन्होने स्वामीजी को माता मेलादेवी और भाग्यवन्तीजी को भी साथ लाने की आज्ञा दी।

गंगोत्री प्रस्थान

कुभ के कारण हरिद्वार मे वहुत भीडभाड थी। सेठ तुलसीराम के मकान मे भी उनके अपने इष्टमित्र और परिचित लोग तथा महाराजजी के श्रद्धालु भक्तो के ठहरने के कारण वहुत भीड थी। नगर मे हेजे का प्रकोप होगया। श्री महाराजजी के ऊपर भी इसका कुछ प्रभाव हुआ किन्तु ठीक समय पर उपचार हो जाने के कारण रोग का शीघ्र ही निवारण होगया। कुभ के पश्चात् महाराजजी पुन स्वर्गाश्रम चले गए और वहा पर १०-१५ दिन तक निवास किया और इसके पश्चात् उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया। यहा पर केवल पाच-सात दिन के लिए पजावी क्षेत्र मे ठहर कर गगोत्री पधारे।

सेठ रमणलाल तथा केशवलाल का गंगोत्री मे आगमन—सेठ रमणलाल और केशवलाल अपने इष्ट-मित्रो सहित गगोत्री आए। इनके साथ सेठ रमणलाल लल्लू-भाई और सेठ भोगीलाल चालाभाई शाहजी अहमदावादवाले भी आए। ये सव महाराजजी के दर्शनार्थ आए और योग-निकेतन को देखकर वडे प्रसन्न हुए। सेठ रमणलाल ने अपने निवास के लिए योग-निकेतन मे एक कुटिया के लिए प्रार्थना की। महाराजजी ने इस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार किया। ये अकेले अपने सेवक के साथ यहा पर तीन-चार मास तक ठहरे। रमणलाल लल्लूभाई और भोगीलाल दोनो ने मिलकर ३००रु० सालाना साधु-महात्माओ को भोजन करवाने के लिए देने का वचन

दिया। बारह साल से बराबर वे इस कार्य के लिए यह धनराशि भेज रहे हैं। सेठ रमणलाल ने ४००० रु० दो बड़ी कुटियाएं बनाने के लिए श्री महाराजजी की सेवा में भेंट किया। सेठजी दयालमुनिजी के सुपरिचित थे। इन्होंने सेठजी को विश्वास दिलाया कि आपके यहां निवास काल में ही ये कुटियाएं बनकर तैयार हो जाएंगी। सेठजी ने प्रतिवर्ष ग्रीष्मकाल में गंगोत्री आने का निश्चय कर लिया। इनकी सन्तों तथा साधुओं के प्रति बड़ी श्रद्धा थी, विशेषकर हिमालय के सन्तों के प्रति तो इनकी अत्यधिक भक्ति थी। स्वामी तपोवनजी तथा स्वामी कृष्णाश्रमजी को उनके व्यय के लिए प्रतिवर्ष रुपया कई वर्षों से भेज रहे थे।

सेठ रमणलाल को जीवन-दान—सेठजी को कई ज्योतिषियों ने बताया था कि आगामी वर्ष उनकी मृत्यु का योग है। वे स्वयं भी ज्योतिषी थे। उनके हिसाब से भी मृत्यु का योग बैठता था। उन्होंने महाराजजी से उपरोक्त बात निवेदन की और गंगोत्री में ही शरीर छोड़ने की इच्छा प्रकट की। महाराजजी ने उन्हें समझाया कि इसमें चिन्ता की क्या बात है। एक न एक दिन तो इस संसार से विदा होना ही है। यदि १०-२० साल और जीवित रह जाएंगे तो भी यही प्रश्न उठेगा। जो बात अवश्यम्भावी है उसके लिए चिन्ता करना बुद्धिमानों का काम नहीं है। सेठजी ने निवेदन किया, "कई बार आप जैसे सन्तों के उपदेशों में यह भी सुना है कि महात्मा लोग कभी-कभी आयु में वृद्धि करके लोगों को जीवन-दान किया करते हैं।" महाराजजी ने सेठजी को आगामी वर्ष गंगोत्री आकर इनके पास निवास करने की आज्ञा दी और मृत्युयोग का निवारण करने का उन्हें विश्वास दिलाया और कहा, "आपको आगामी वर्ष मरने नहीं दिया जाएगा। आप निश्चिन्त रहें।" भगवान् की ऐसी कृपा हुई कि सेठजी का मृत्यु का योग टल गया और १२ वर्ष से वे जीवित हैं। इन सेठजी की अपने जीवनदाता के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति होगई और इन्होंने गंगोत्री में २०००० रु० दान किए। चार मास तक ये योग-निकेतन में ठहरे थे। इन चार मास में प्रत्येक पर्व पर इन्होंने यहां के सभी सन्तों, संन्यासियों और साधुओं के लिए पक्का भण्डारा करवाया। लकड़ी के दो पुल बनवाए—एक गंगा पर और दूसरा केदार गंगा पर। योग-निकेतन में चार हज़ार रुपया लगाकर दो बड़ी-बड़ी कुटियाएं बनवाईं। सब सन्तों को कम्बल और चादरें वितरित कीं। प्रथम वर्ष २०००० रुपया दान दिया तथा दूसरे वर्ष १४००० रु०। सेठजी बड़े ईश्वरभक्त और उदार दानशील हैं। प्रातःकाल ४ बजे से ११ बजे तक पूजा-पाठ में लगे रहते थे। ११ से १२ बजे तक नियमानुसार नित्य महाराजजी के पास आते थे। महाराजजी के पास बैठकर ध्यान करते थे। एक घण्टा तक निर्विकल्प-सी अवस्था होकर समाधि लग जाया करती थी और आनन्द की अनुभूति होती थी। इन्होंने १५०० रु० व्यय करके योग-निकेतन के लिए एक छोटी-सी नहर निकलवाई थी। तीन वर्ष तक ये गंगोत्री में रहे और तीनों वर्ष हज़ारों रुपया दान में दिया। अपनी मिल में से चौथा भाग ये पहिले दान में दिया करते थे, फिर उसकी आय में से भी चौथा भाग देने लग गए थे। ये बड़ी उदारता से दान देते थे। इनके द्वार से कोई याचक कभी भी खाली नहीं गया।

श्री आनन्दस्वामीजी की गुरुभक्ति—श्री आनन्दस्वामीजी, माता मेलादेवीजी तथा भाग्यवन्तीजी गंगोत्री में अभ्यासार्थ आए। इनकी महाराजजी के प्रति अनन्य

भक्ति थी। वास्तव मे महानात्माओ मे तदनुरूप ही महान गुण होते है। योग-निकेतन मे काम करने के लिए एक-दो सेवक सदा ही रहते है, किन्तु गुरुदेव की सेवा के लिए स्वामीजी गगाजी से नित्यप्रति दो-तीन घडे जल के महाराजजी की रसोई के लिए लाते थे। इन्हे गगोत्री-वास बडा पसन्द था। कई वर्ष ग्रीष्म-ऋतु मे आकर निवास करते रहे और इस समय को आत्म-विज्ञान के दृढ करने मे लगाते रहे। यही पर आपने दो ग्रथो की रचना भी की। महाराजजी ने अपने प्रयत्न से इस साल गगोत्री मे एक डाकखाना भी खुलवा दिया था। आनन्दस्वामीजी को उत्तरकाशी मे निवास के लिए कोई उपयुक्त स्थान नही मिलता था अत महाराजजी से एक योग-निकेतन वहा पर भी बनाने के लिए प्रार्थना की जिससे वहा निवास के कष्ट का निवारण हो सके। आनन्दस्वामीजी तथा दयालमुनिजी रोगियो को औषध देने का कार्य करते थे। उत्तरकाशी से भी रोगी उपचार के लिए योग-निकेतन मे आते थे। इसके अतिरिक्त कोई औषधालय उत्तरकाशी से यहा तक नही था। इस औषधालय से लोगो का बडा कल्याण-साधन होता था। भाद्रपद और आश्विन मास मे स्थानीय साधु-महात्माओ के लिए क्षेत्र चलता था। पाच मास तक चाय का क्षेत्र भी चलता था। सेठजी, आनन्दस्वामीजी, माता मेलादेवीजी तथा भाग्यवन्तीजी ने सितम्बर मास के प्रारम्भ मे गगोत्री से प्रस्थान किया। महाराजजी ने गगोत्री से अक्तूबर मास मे प्रस्थान किया। उत्तरकाशी आकर पजाबी क्षेत्र मे निवास किया। इसके समीप ही एक बडा भूभाग खाली पडा हुआ था। इन्होने पजाबी क्षेत्र के प्रबन्धक इन्द्रदत्त से इस भूमि को खरीदने के लिए कहा। इन दिनो भूमि के भाव बडे सस्ते थे। इन्द्रदत्तजी से महाराजजी ने कहा कि आप जमीन के लिए बातचीत करें, जब सौदा तय हो जाए तो मुझे स्वर्गाश्रम मे पत्र लिख देना, मैं रुपया भिजवा दूगा। ये एक मास तक उत्तरकाशी ठहरकर स्वर्गाश्रम पधारे।

माता मनसादेवीजी का भूमि खरीदने और कुटिया निर्माणहेतु दान

जब माता मनसादेवी को महाराजजी के अपनी कुटिया के लिए जमीन खरीदने के विषय में पता चला तो उसने इन्हे लिखा कि भूमि खरीदने और कुटिया के निर्माण मे जो रुपया खर्च होगा वह सब मैं दूगी। इन्होने १६०० रु० भूमि खरीदने और ६००० रु० मकान बनाने के लिए प्रदान किया। इन दिनो महाराजजी के निजी व्यय के लिए भी सारा खर्चा ये ही माताजी देती थी। सन् १९५२ मे उत्तरकाशी मे योग-निकेतन के लिए भूमि खरीदी गई।

तपोवन मे पुनः साधना-शिविर

सन् १९५२ मे श्री आनन्दस्वामीजी ने गगोत्री मे महाराजजी से पुन तपोवन में साधना-शिविर लगाने की प्रार्थना की क्योकि प्रथम शिविर से देहरादून की जनता मे योग के प्रति अत्यधिक रुचि जागृत होगई थी और इसका बडा प्रभाव पडा था। सैकडो व्यक्तियो ने अभ्यास से महान् लाभ उठाया था और हज़ारो ने महाराजजी के उपदेशामृत का पान करके अपने जीवन को ऊचा उठाया था। महाराजजी ने १५ नवम्बर से १५ जनवरी तक साधना-शिविर तपोवन मे लगाने की स्वीकृति दे दी। ये १० नवम्बर को तपोवन पधारे और गत वर्ष की भाति ऊपर वाली कुटिया

में विराजे। स्वामीजी महाराज ने शिविर के लिए समुचित व्यवस्था कर दी थी। 'मिलाप' के सम्पादक श्री रणवीरजी ने महाराजजी के कई सहस्र फोटो खिचवाकर अपने दैनिक 'मिलाप' के द्वारा जनता में वितरित किए। अपने पत्र में महाराजजी के जीवन, योग, आध्यात्मिक शक्ति और मनोबल के विषय में लेख भी लिखे। पूर्ववत् सैंकड़ों पुरुष और स्त्रियां बड़े चाव और उमंग के साथ शिविर में अभ्यासार्थ सम्मिलित होने के लिए एकत्रित होगए। अभ्यास का कार्यक्रम निम्न प्रकार से था। योग प्रशिक्षणार्थियों का वर्गीकरण किया गया। इन सबको चार कक्षाओं में विभक्त किया गया। सर्वोत्तम कक्षा के योग्य केवल थोड़े ही अभ्यासी थे। इनकी कक्षा प्रातः ४ से ६ बजे तक लगती थी। इस कक्षा में उच्च-स्तर पर योग साधना करवाई जाती थी। दूसरी कक्षा तपोवन के निवासियों की थी। यह कक्षा ६ से ८ बजे तक लगती थी। तीसरी कक्षा में नगर के आध्यात्मिक मुख्य-मुख्य लोगों को प्रविष्ट किया गया था। इस कक्षा का समय ८ से ९ बजे तक था। चतुर्थ वर्ग नगर के साधारण स्तर के लोगों के लिए था। यह कक्षा धूप में साल वृक्षों के नीचे मैदान में लगाई जाती थी। दस से साढ़े ग्यारह बजे तक महाराजजी को लोग मिलने के लिए आया करते थे। डेढ़ बजे भोजन करके महाराजजी ३ बजे तक विश्राम करते थे। ३ से ५ बजे तक का समय दर्शनार्थियों को दिया जाता था। ५ से ६ बजे तक महाराजजी भ्रमणार्थ चले जाते थे। मिलने वालों का तांता भ्रमण में भी लगा रहता था। योगीराजजी का चरित्र, अध्यात्म, योग तथा मनोबल और व्यक्तित्व इतना ऊंचा और आकर्षक था कि सभी लोग इनके पुण्य दर्शन का लाभ उठाना चाहते थे, अतः प्रायः सारा दिन ही भीड़ लगी रहती थी। रात्रि को ६ से ९ बजे तक दो योग प्रशिक्षण की कक्षाओं को योग सिखाते थे। कुटिया के बरांडे में २०-२५ अभ्यासियों से अधिक नहीं बैठ सकते थे। जो शेष रह जाते थे उनकी कक्षाएं इस समय लगाई जाती थीं। प्रत्येक रविवार को अनध्याय रखा जाता था। २ से ४ बजे तक अष्टाङ्ग योग पर श्री महाराजजी का बड़ा सारगर्भित भाषण होता था। भाषण सदैव अत्यन्त गहन विषय पर होता था। लगभग डेढ़ हज़ार नर-नारी व्याख्यान सुनने के लिए आते थे और इस वचनामृत का पान कर चुकने के बाद प्रेय मार्ग से हटकर श्रेय मार्ग के पथिक बनने का प्रयत्न करते थे। गत वर्ष के समान प्रमुख अभ्यासी ये थे :—महात्मा प्रभु आश्रितजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, रायसाहिब बी० एन० दत्तजी, कैप्टेन जगन्नाथजी, पं० ठाकुरदत्तजी अमृतधारावाले, बलदेवमित्रजी सपत्नीक, बाबा गुरमुखसिंहजी, हंसराज कुंदरा, दीवानचन्द, ब्रजलाल, हरप्रकाशजी, गुरुदित्तामल, भरतसिंह, ज्ञानचन्द, रामावतारजी, प्रकाशचन्द्र, श्रीराम, रामकिशन, आनन्दपाल, आनन्दलाल, हरिराम, बिशनदासजी, रामकृष्णजी, सेठ झब्बालालजी, गोकुलनाथजी, मोतीरामजी, शान्तिस्वरूपजी, सत्यदेवजी, शान्तानन्दजी, जगन्नाथजी फिरोज़पुरवाले, ब्रजबिहारी, रामलाल नारंग, भीमसेनजी, ठाकुर वनमाली कृष्णजी, ज्योतिप्रसादजी, हेमराजजी, ईश्वरदासजी, हरजसराय, कन्हैयालालजी, दीनानाथदत्तजी, मुरारीलाल, इन्द्रसेनजी, बनारसीदास, रामचन्द्र, विमलचन्द, रामदित्तामल, हरदत्तामल, संसारचन्द और भोलानाथ आदि। इनके परिवारों की देवियां भी अभ्यासार्थ आती थीं। एक सौ से अधिक संख्या स्त्री और पुरुषों की योगसाधना शिविर में प्रविष्ट की गई थी। प्रवेशार्थियों की संख्या तो बहुत थी किन्तु व्यवस्था के अभाव के कारण सबको प्रवेश देना असंभव

था। श्री महाराजजी के समान उदारचेता तथा परोपकारी महात्मा ससार मे बहुत कम है। ये जनता के कल्याणार्थ प्रात तीन बजे से साढे ग्यारह बजे तक और रात्रि को ६ से ६ बजे तक नित्यप्रति अपना समय देते थे। दर्शनार्थियो को समय इससे अतिरिक्त दिया जाता था। रात्रि को दस से साढे दस बजे तक महात्मा प्रभु आश्रितजी महाराजजी के सिर मे बादाम रोगन की मालिश किया करते थे।

नारायणदास कपूर के पिता को आरोग्यता प्रदान—नारायणदास कपूर के पिता चिरकाल से बीमार थे। अत्यन्त कृश और दुर्बल होगए थे। शक्तिहीनता के कारण उनसे चला-फिरा नही जाता था। कोई उठाए तो उठते थे और कोई लिटाए तो लेटते थे। पारिवारिक जन सेवा करते-करते थक गए थे। अनेकोपचार किए किन्तु उनका रोग न मिटा। नारायणदास देहली से देहरादून श्री महाराजजी से अपने पिता की नीरोगता के लिए प्रार्थना करने के लिए आए। महाराजजी ने उनकी फोटो देखकर फरमाया "कुछ दिन तक प्रयोग करेगे। बिलकुल तो रोग-मुक्त नही हो सकते। चलने-फिरने के योग्य हो जाएगे और कुछ वर्ष और जीवन धारण करेंगे।" श्री कपूर महाराजजी के परमभक्त और प्रधान शिष्यो मे से थे। महाराजजी के प्रति इनकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। ये सदैव तन, मन तथा धन से इनकी सेवा करते थे। श्री महाराजजी ने चार दिन तक अपनी शक्ति का प्रयोग करके कपूरजी के पिताजी को स्वस्थ कर दिया और ये ५-६ साल तक जीवित रहे।

बाबा गुरमुखसिहजी की रोग-मुक्ति—श्री बाबा गुरमुखसिहजी आवश्यक कार्य वश ३-४ दिन के लिए देहली चले गए थे। वहा जाकर ज्वर पीडित होगए और पेशाब बिलकुल बन्द होगया। कई प्रकार के उपचार किए गए। किन्तु इन्हे आराम नही हुआ। इनकी स्थिति बडी चिन्ताजनक होगई। आस-पास के सभी लोग, सम्बन्धी और परिवार के सदस्य आतुर और व्याकुल हो उठे। क्या किया जाए यह किसी की समझ मे नही आता था। सभी किकर्तव्यविमूढ हो रहे थे। पारिवारिक जनो ने इसकी सूचना तार द्वारा महाराजजी के पास भेजी और आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की। महाराजजी तार पढकर वही शान्त भाव से बैठ गए। अपनी दिव्य-दृष्टि को बाबाजी के ऊपर फेका और मानसिक प्रयोग करना प्रारभ किया। बाबाजी को उसी समय आराम होना आरम्भ होगया। ज्वर जाता रहा और पेशाब आने लग गया।

शिविर समाप्ति का समारोह—महाराजजी ने इस उत्सव के सभापति के आसन को अलकृत किया। आनन्दस्वामीजी तथा अन्य महापुरुषो के भाषण हुए जिनमे महाराजजी की भूरि-भूरि प्रशसा की गई और इन्हे मानपत्र भेट किया गया जो निम्न प्रकार से है —

ॐ

नम शान्ताय तेजसे

श्रद्धेय श्री सकलशास्त्रपारगत निखिलयोगरहस्योत्तारणसुगसेतु

करतलामलकीकृतात्मज्ञानतत्त्व

बालब्रह्मचारी योगीराज श्री १०८ व्यासदेवजी महाराज के

पवित्र चरणारविन्दो मे सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्रम्

महाराज !

हमारे ज्ञानकोष मे वे शब्द नही जिनसे हम आपकी गुण-स्तुति कर सकें। गंगोत्री के चित्ताकर्षक दृश्य तथा जलवायुमण्डल से आपको देहरादून तपोवनीय भूमि मे यद्यपि आकर्षण-साधन न भी हो तदपि 'जायन्ते विरला लोके जलदा इव सज्जना' इस उक्ति को चरितार्थ करने वाला आपका स्वाभाविक गुण भक्त साधक मण्डली को कृतार्थ करने के लिए विवश कर देता है। यह हमे पूर्ण विश्वास है। आपने अपनी अपार अनुकम्पा से इतना कष्ट उठाकर जो यहा गतवर्ष की भाति पधारकर योगाभ्यास-जिज्ञासु जनता को प्रवचन तथा प्रयोगात्मक शिक्षा द्वारा अनुगृहीत किया है, हम उसके लिए नितान्त आभारी है। वर्षों से उस शान्ति गवेषणा मे भटकते हुए अधिकारी पात्रो को इतने सकुचित समय मे बडी सुगमता से राजयोग मार्ग पर ले जाना, यह गुण आपके अतिरिक्त अन्यत्र नही पाया। इसका प्रधान कारण हमको यह प्रतीत होता है कि जहा आप आध्यात्मिक शिक्षा के प्रकाण्ड पण्डित है, वहा लिप्सा, सेवा-शुश्रूषा, प्रचारणादि दैन्यो पर पूर्ण विजय प्राप्ति भी है। आज हमने यह प्रत्यक्ष अनुभव करके देख लिया है कि अच्छे क्षेत्रो मे बीज सब ससार बो सकता है, पर यहा तो अनेक ऊसर क्षेत्रो को उर्वरा बनाकर स्थायी रूप प्रदान कर दिया गया है।

यतिवर ! उपर्युक्त महत्वपूर्ण योग्यताओ के अतिरिक्त आपके सौजन्य, निरभिमानिता, स्पष्टभाषिता तथा सरलतादि गुणो पर जनता मुग्ध है, इसमे रचक मात्र भी अत्युक्ति नही है। वैदिक साधनाश्रम की प्रबन्धन्यूनता के होते हुए भी आपने उस पर ध्यान न देते हुए जो कृपा की है, इसके लिए कमेटी आपकी अतिकृतज्ञ है। आपके आशीर्वाद से हमे पूर्ण आशा है कि वे शीघ्र ही ठीक हो जाएगी। आज तक लगभग दो सौ साधको ने जो इस आश्रम मे आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त की है उसके मूल व निमित्त कारण आप ही है। हमे यह श्रेय कभी प्राप्त नही होता यदि आपका ध्यान इस ओर न होता। चलते-फिरते जहा कही हम देखते हैं आपकी प्रशसा के गीत सुनाई देते है।

भगवन् ! पढी-लिखी जनता प्राय प्रेय मार्ग व नास्तिकता की ओर आकृष्ट रहती है। उसमे आध्यात्मिकवाद की धारा प्रवाहित करके नए युग का प्रारम्भ करना आप सरीखे अखण्ड ब्रह्मचारी के अतिरिक्त अन्यत्र असभव ही था। इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा अध्यात्म ज्ञान के पिपासु जिज्ञासुओ को अधिक लाभ प्राप्त हुआ है। इसके लिए हम आपके साथ बधाई के पात्र है कि आश्रम को आपकी छत्रछाया का परम महान श्रेय प्राप्त है। उस अन्तर्यामी से करबद्ध प्रार्थना है कि इस परम पवित्र साधना प्रचार के लिए आपको सहस्र वर्षों तक दीर्घ जीवन प्रदान करे। अन्त में यह निवेदन करते है कि इसी प्रकार भविष्य मे भी आप कृपा करते रहें।

ओ३म् शम्

देहरादून
२८-१०-५२

हम है आपके नितान्त कृतज्ञ एव उपकृत
वैदिक साधनाश्रम (तपोवन) के समिति सदस्य

स्वर्गाश्रम मे शिविर

उत्सव की समाप्ति पर महाराजजी चौधरी जयरामसिंह की कोठी पर पधार गए और वहा तीन-चार दिन ठहरकर स्वर्गाश्रम पधारे। वहा जाकर दो मास के लिए साधना-शिविर प्रारम्भ कर दिया। महात्मा प्रभु आश्रितजी अपने शिष्य आचार्य सत्य-भूषणादि को साथ लेकर इस शिविर मे भी सम्मिलित हुए। आपके कई एक व्रत बहुत कठिन थे। वे गाय का ही दूध पीते थे और इसीका घी खाते थे। जिनके घरो मे यज्ञ नही होता था उनके घरो मे भोजन नही करते थे। नारदमुनि का भी यही नियम था। वे भी जिस घर से यज्ञ का धूआ नही निकलता था उसके घर मे कभी भोजन नही करते थे। महात्माजी ने गायत्री मन्त्र, जाप और पच महायज्ञो का बहुत प्रचार किया है। ये ब्रह्मनिष्ठ, तपोपूत, मान-अपमान, हर्ष-शोक, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि द्वन्द्वो से अतीत, सेवापरायण, गुरुभक्तिनिष्णात अत्यन्त अपरिग्रही तथा सरलस्वभाव और उच्चकोटि के महात्मा है। आपने ४८ ग्रथो की रचना की है।

एक दिन महाराजजी ने महात्माजी से कहा कि आप महाराजा पटियाला के समान चमत्कारपूर्वक विज्ञान प्राप्त करना चाहते है या दृढ और स्थायी। महात्माजी ने कहा, "मुझे तो इसका ज्ञान ही नही कि चमत्कारी विज्ञान कैसा होता है तथा दृढ और स्थायी कैसा होता है।" महाराजजी ने सारी बात बताई। एक बार महाराजा पटियाला इगलैड गए और एक दिन सम्राट् जार्ज पचम की बडी प्रशसा करने लगे कि 'आपके राज्य मे कभी सूर्यास्त नही होता। आप ससार मे सबसे अधिक वैभवसम्पन्न है। मैं आपका राजकोष देखना चाहता हू जिससे मैं अनुमान लगा सकू कि आपके पास कितनी धन-सम्पत्ति है।" सम्राट् ने कहा, "मैं पार्लियामेट की आज्ञा के बिना ऐसा नही कर सकता।" महाराजा पटियाला के बहुत आग्रह करने पर सम्राट् ने पार्लिया-मेट से आज्ञा प्राप्त कर ली। पार्लियामेट ने इस शर्त पर स्वीकृति दी कि महाराजा को आखे बाधकर कोष के भीतर ले जाया जाए और आखे बाधकर ही बाहिर लाया जाए जिससे उन्हे मार्ग का पता न लग सके। महाराजा पटियाला ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। पटियाला नरेश जब भीतर प्रवेश करने लगे तब उनकी आखे बाध दी गई और जब वे भीतर प्रविष्ट होगए तब खोल दी गई। वे इगलैड के राजकोष को देख-कर आश्चर्यचकित होगए। बडे-बडे कमरे बने हुए थे। किसी मे सोने की ईटे भरी हुई थी और किसी मे चादी की, तथा किसी मे हीरे, जवाहिरात, मोती, पन्ने तथा नीलम भरे हुए थे। जब वे सब कुछ देख चुके तब उनकी आखे बाधकर गाडी मे बिठाकर दूर एक बाज़ार मे उतार दिया। पटियाला नरेश वहा आश्चर्यस्तभित से होकर खडे रहे। उन्हे ऐसा मालूम हुआ मानो उन्होने कोई स्वप्न देखा हो। इस सब मामले की यथार्थता पर उन्हे विश्वास नही होता था। उन्हें ऐसे लगता था मानो उन्हें किसी ने मैस्मराईज़ किया हो। इस पर महात्माजी ने महाराजजी के चरण पकड लिए और निवेदन किया, "महाराजजी, मैं तो दृढ, स्थायी और निर्भ्रान्त विज्ञान द्वारा आत्म-दर्शन करना चाहता हू।" महाराजजी ने उन्हें समझाया कि आप धैर्य तथा शान्ति-पूर्वक अभ्यास करते जाइए, कुछ वर्षों मे दृढ, स्थायी, और निर्भ्रान्त विज्ञान प्राप्त हो जाएगा। महात्माजी ने पुन निवेदन किया, "मैं तो इस जीवन को आपके श्रीचरणो मे समर्पण कर चुका हू। जब आपकी इच्छा हो तब प्रदान करना।" श्री बी० एन०

दत्तजी अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से अभ्यास मे लगे हुए थे। महाराजजी की सेवा अन्न, धन, वस्त्रादि से करने के वडे इच्छुक थे। किन्तु महाराजजी इसे स्वीकार नही करते थे क्योकि इनको अपने सारे व्यय के लिए रुपया अन्यत्र से प्राप्त हो रहा था। जब दत्तजी ने बहुत आग्रह किया तो समय आने पर लेने के लिए कह दिया। दत्तजी थोडे समय के अभ्यास मे ही स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के सभी पदार्थों का विज्ञान प्राप्त करके कारण शरीर मे प्रवेश करने लग गए थे। इसी प्रकार जगन्नाथजी ब्रह्मचारी, कैप्टेन जगन्नाथजी भी बहुत शीघ्र इस विज्ञान को प्राप्त करके विज्ञानमय कोष मे पहुच गए थे। कई वर्ष तक अभ्यास करके इन्होने इस विज्ञान को दृढभूमि किया। ब्रह्मचारी अगस्तमुनिजी प्राय मौन ही रहते थे। कई-कई मास का आकार मौन और काष्ठ मौन धारण करके, नमक और मीठे का परित्याग करके कठिन तप द्वारा प्राप्त विज्ञान को दृढभूमि करने मे सलग्न रहते थे।

श्रीमती शान्ता, शीलादेवी, माता मेलादेवी, ओमप्रकाशजी और रणवीरजी, नारायणदासजी, गुरुचरणदत्त तथा किशनचन्द इत्यादि बहुत से अभ्यासी आए हुए थे। सबने अभ्यास मे सन्तोषप्रद उन्नति की। शिविर की समाप्ति प्रीतिभोज और महाराजश्री के उपदेश मे की गई।

एक आश्चर्यजनक घटना—श्री महाराजजी ने शिविर समाप्ति के पश्चात् एक मास तक स्वर्गाश्रम मे और निवास करने का विचार किया। जब महाराजजी के गगोत्री जाने मे केवल आठ-दस दिन ही शेष थे तब उबराय और उनकी धर्मपत्नी कृष्णादेवीजी तथा इनका लघु पुत्र महाराजजी के दर्शनार्थ आए और गगोत्री जाने से पूर्व दो-चार दिन के लिए देहरादून पधारने के लिए निवेदन किया, किन्तु इन्होने स्वीकृति नही दी। इससे उनको वडी निराशा हुई। जब महाराजजी प्रात साय अभ्यास के लिए बैठते तो ये दोनो भी इनके साथ बैठ जाते। एक दिन महाराजजी और उबरायजी एक घटा अभ्यास करके उठ गए किन्तु कृष्णादेवीजी सात बजे से लेकर साढे दस बजे तक ध्यानावस्था मे निश्चेष्ट समाधिस्थावस्था मे बैठी रही। उबरायजी ने बडी कठिनाई से उठाया। इन्होने न दूध पीया और न कुछ खाया, अपने पलग पर जाकर लेट गई। ये बडी उदासीन सी अवस्था मे थी। प्रात काल अपने पति के साथ अभ्यास मे नही आई। जब महाराजजी और उबराय अभ्यास मे बैठे हुए थे तब कृष्णा चारपाई पर लेटे-लेटे ही जोर से चिल्ला कर कहने लगी, "हे मेरे भगवान्, हे मेरे कृष्ण, तू कहा चला गया है ? हे कृष्ण भगवान्, तू मुझे छोडकर कहा चला गया है ?" अनेक नामो से सबोधन करके भगवान् को पुकारने लगी। उबराय ने आसन बिछा कर इसे बिठा दिया। वह बहुत देर तक इस आसन पर बैठी रही, फिर वह उठकर जगल की ओर चल दी और वहा पर एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ होकर बैठ गई। जब बहुत देर तक उसका पता नही चला तब उबराय, उनका लडका और महाराजजी उसे वन मे ढूढने के लिए चल दिए। उसे एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थावस्था मे बैठे पाया। उबराय ने इसे हाथ पकडकर उठाया। वह उठ तो गई किन्तु आखे नही खोली। वे बलपूर्वक धीरे से अपने साथ कमरे मे ले आए किन्तु तब भी उसने आखें नही खोली। उसको चटाई पर लिटा दिया। इसे होश मे लाने के लिए महाराजजी ने बडा यत्न किया किन्तु उसने आखें नही खोली। कभी-कभी भगवान् कृष्ण को जोर-जोर से पुकारने लगती थी।

कृष्णा की एक सहेली भी इन दिनो आई हुई थी। कृष्णा के पति वडे चिन्तित थे। कृष्णा की सहेली ने इन सब से कहा, "आप घबराए नही। मेरा सारा जीवन साधु-महात्माओ के सत्सग मे ही व्यतीत हुआ है। आप स्त्रियो को नही जानते। मैंने बहुत देखी है। यह स्वय ही ठीक हो जाएगी।" भोजन परोसा गया। महाराजजी और उवराय खाने लगे। कृष्णा ने महाराजजी की थाली मे से कुछ भाग उठाकर उवराय की थाली मे रखकर कहा, "यह प्रसाद है, इसे खाओ। इनके प्रसाद से आपका कल्याण हो जाएगा। मेरे समान समाधि लग जाएगी और साक्षात् भगवान् के दर्शन हो जाएगे।" कृष्णा को भोजन करने के लिए बाध्य किया गया। चार-पाच ग्रास खाने के पश्चात् पुन इसने अपनी आखे बन्द कर ली। जैसे-तैसे फिर उसकी आखे खुलवाई गई और भोजन के लिए कहा गया तो कुछ भोजन कर लिया। महाराजजी ने इसकी बाह्य वृत्ति करवाने के लिए इसे बर्तन साफ करने का आदेश दिया। कुछ देर तक तो उसने बर्तन साफ किए और फिर बर्तन छोडकर अपने मुह को ही राख से रगडने लगी। महाराजजी कृष्णा की इस प्रकार की स्थिति देखकर बडे चिन्तित हुए। वह अत्यन्त श्रद्धालु तथा भावुक थी। इसके दिल और दिमाग पर भावुकता का अधिक प्रभाव पड गया था। इसी भावावेश के कारण इसे अपनी सुधबुध नही रही थी। अधिक भावावेश मे आकर भक्त कुछ उन्मत्तो जैसा और ज्ञानियो जैसा व्यवहार करने लग जाया करते है। अमृतसर मे मैंने इस प्रकार का आचरण करते हुए कई भक्तो को देखा है। अब कृष्णा को महाराजजी के कमरे मे लाया गया। उवराय ने महाराज-जी को इसके ऊपर कुछ प्रयोग करने के लिए निवेदन किया। अब तक इसने आखे नही खोली थी। उवराय उठाए तो उठ जाती थी, बिठाए तो बैठ जाती थी, लिटाए तो लेट जाती थी, और यदि पकडकर चलाए तो अस्तव्यस्त पग धरती हुई बेहोशी की हालत मे चलती थी। कभी-कभी भगवान् कृष्ण का नाम लेकर पुकारती थी और कभी रुदन करने लग जाती थी। जिस प्रकार भक्त भगवान् के विरह मे रोने लगता है इसी प्रकार से यह रो रही थी। कभी यह स्तब्ध हो जाती थी और कभी इसके शरीर मे रोमाच हो जाता था। कभी-कभी आखे बन्द करके चलने लगती थी। कभी शून्य सी हो जाती थी। अनेक प्रकार के सात्विक भाव-विकार उत्पन्न हो रहे थे। कृष्णा को दरी पर लिटा दिया और महाराजजी ने इस पर प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। कृष्णा अब होश मे आगई और स्वय ही उठकर बैठ गई और कहा, "नेत्र बन्द करके मैं न जाने किस लोक मे चली गई थी। वह श्रीकृष्ण भगवान् का गोलोक था। वहा मैंने जो आनन्द पाया उसे कैसे वर्णन करू।" इतनी बात कहकर वह धाराप्रवाह से बडे ऊचे विज्ञान का वर्णन करने लगी। लगभग डेढ घण्टे तक व्याख्यान देती रही। अनेक प्रकार के विज्ञानो का कथन किया। पूछने पर विदित हुआ कि इसने पहिले कभी भाषण नही दिया। आज इस प्रकार का भाषण देने का इसका प्रथम अवसर था। १५ वर्ष इसका विवाह हुए होगए, कभी इसने कोई भाषण नही दिया और न इसमे इतनी योग्यता ही है। कृष्णा ने अपने पति के पूर्व जन्म के दो सम्बन्ध बताए। श्री आनन्दस्वामीजी का पूर्व जन्म मे अपने साथ सम्बन्ध बताया। महाराजजी के साथ भी पूर्व जन्म के सम्बन्ध बताए और कहा कि आप कई जन्म से मेरे गुरु चले आरहे है और मैं आपकी शिष्या। महाराजजी, उवराय तथा उनका पुत्र कृष्णा के भाषण को मूकवत् सुनते रहे। लगभग एक घण्टा तक व्याख्यान देकर वह चुप होगई। जब

वह भाषण दे रही थी तब उसके मुखमण्डल पर तेज टपक रहा था, कण्ठ सुरीला होगया था, वाणी मे माधुर्य आगया था, भाषा प्रभावशाली थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् सरस्वती उपदेश दे रही हो। भाषण के उपरान्त वह महाराजजी के चरण पकडकर रोने लगी और कहा, "मेरे पूज्य गुरुदेव ! आपने मुझे क्या-क्या दिखा दिया ! मै तो इस योग्य न थी। मुझ पापिष्ठा पर आपने अपार कृपा की है। मै आपका ऋण कभी नही चुका सकती।" महाराजजी ने कहा, "तुम्हारा पुत्र तुम्हारी इस प्रकार की अवस्था देखकर बहुत घबरा गया है। इसे प्यार करो, सान्त्वना दो, स्नेह और प्यार से इसे अपनी गोद मे विठाओ।" कृष्णा ने कहा, "मेरे पति और पुत्र के सब सम्बन्ध समाप्त होगए है। मेरे सब बधन कट गए है। अब मैं घर नही जाऊगी। हिमालय मे गमन करूगी।" उबरायजी से कहा, "यदि आप चाहे तो मैं आपका विवाह अपनी छोटी बहिन से करवा सकती हू। मेरा आपसे पति और पत्नी का सम्बन्ध समाप्त होगया है। अब मै हिमालय मे जाकर अपने प्यारे भगवान् की भक्ति मे अपना शेष जीवन व्यतीत करूगी।" इतना कहकर वह बडे जोर से रोने लगी। उसने अपने पतिदेव के साथ जाने से बिलकुल इन्कार कर दिया और पुन भगवान् को उसके अनेक नामो से पुकार-पुकारकर रुदन करने लगी। बहुत देर तक राधा के समान भगवान् के विरह मे विलाप करती रही। उबरायजी स्वामी शिवानन्द-आश्रम से डाक्टर को बुला कर लाए। डाक्टर ने कृष्णा के सारे शरीर का भली प्रकार से निरीक्षण किया। कोई शारीरिक कष्ट उसे न था। इन्होने महाराजजी से पूरा वृत्त कृष्णा का निवेदन किया और कहा "कि इन देवियो को आप कीर्तन, भजन तथा जाप ही सिखाया करे। इनका हृदय कोमल होता है। इन पर आपके मनोबल का प्रभाव अधिक पड गया है। इसे ये सहन नही कर सकी है।" कृष्णा डाक्टर से बहुत नाराज हुई और उसे वहा से चले जाने को कहा क्योकि उसे केवल महाराजजी मे ही विश्वास था और वह उन्हे ही अपना डाक्टर समझती थी। उसका उपचार उन्हीके पास था, अन्य किसी के पास नही। इसने आधा घण्टे तक महाराजजी के समक्ष डाक्टर को अग्रेजी मे उपदेश दिया। उसे विश्वास था कि डाक्टर योग और समाधि के विषय मे कुछ नही जानता। योग सीखने का स्त्रियो को पूर्ण अधिकार है। वे इसकी शीघ्र ही अधिकारिणी बन जाती है। देविया पुरुषो की अपेक्षा समाधि के रहस्य और तत्त्व को अधिक समझती है क्योकि इनका हृदय निष्पाप, कोमल, सरल और सात्विक होता है। इनका ससार बहुत छोटा होता है अत इनके मन मे सकल्प और विकल्प कम उत्पन्न होते है। इसलिए शीघ्र ही समाधि मे स्थिति हो जाती है। इसी प्रकार का उपदेश बहुत देर तक देती रही। डाक्टर ये सब बाते सुनकर लज्जित-सा हो रहा था और उबराय आश्चर्य मे डूबा जाता था क्योकि उसने कृष्णा को कभी ऐसी शु. अग्रेजी बोलते नही सुना था। आज प्रथम बार ही उन्होने इस प्रकार धारावाही अंग्रेज़ी बोलते सुना था। उबराय ने डाक्टर से कृष्णा के व्यवहार के लिए क्षमा-याचना की। उसका दिमाग ठीक नही था, इसीलिए जो उसके मन मे आया बकती चली गई। डाक्टर ने कहा, "इनको शारीरिक रोग नही है। इन्हे किसी प्रकार की दवाई की आवश्यकता नही है। महाराजजी ही इन्हे ठीक कर सकते है।" ये योगीराजजी के सुपरिचित थे अत उबरायजी से फीस नही ली। डाक्टर के चले जाने के पश्चात् कृष्णा पुन अन्तर्मुख होगई। सायकाल होगई थी, महाराजजी और उबराय-

जी सध्या करने के लिए बैठ गए और दो घण्टे तक ध्यानस्थ रहे। महाराजजी ने कृष्णा को पुन होश मे लाने के लिए प्रयोग किया। रात्रि के लगभग १० वजे इसे होश आई। इसने उवरायजी को अपने शरीर पर हाथ नही लगाने दिया क्योकि वह समझती थी कि वह अभी देवलोक से आई है अत उसका शरीर शुद्ध और पवित्र है। उसके पतिदेव के स्पर्श से वह अपवित्र हो जाएगी। महाराजजी ने इसे कुछ दूध और मिठाई खाने के लिए दी और उसे सोने के लिए आदेश दिया। वह रात मे भली प्रकार सोई, प्रात उठी तो महाराजजी ने उसे अपने घर जाने की आज्ञा दी। देहरादून जाकर पुन वह पूर्ववत् होगई। वह पुन पूर्ववत् भगवान को पुकार-पुकारकर अचेत होगई। पारिवारिक जन सभी इससे वडे परेशान होगए। कुछ दिनो वाद उवरायजी इसे देहरादून से दिल्ली इसके माता-पिता के पास लेगए। वहा लेजाने का उद्देश्य इसका मन-बहलाव था। वहा जाकर भी इसकी वृत्ति अन्तर्मुखी रही। किन्तु वहा पर कुछ दिन रहने के पश्चात् इसकी स्थिति ठीक होगई। इस प्रकार की अन्तर्मुखी वृत्ति कृष्णा की न कभी हुई थी और न भविष्य मे होने की सम्भावना थी।

गंगोत्री प्रस्थान

अवकी वार महाराजजी ने मसूरी होते हुए उत्तरकाशी जाने का विचार किया था। प० ठाकुरदत्त वैद्य की मसूरी मे कई कोठिया थी। एक कोठी की चावी उनसे ले ली। कृष्णा के मकान पर उसका हाल पूछने गए, किन्तु वहा नौकर के अतिरिक्त कोई नही था। उसीसे सब समाचार विदित हुआ। महाराजजी १५ दिन तक मसूरी विराजे। यहा पर भी इनके कई भक्त थे जो नित्य सत्सग मे आते रहे। इसके पश्चात् ये धनौटी, कानाताल, नन्दालगाव तथा धरासू होते हुए उत्तरकाशी पधारे। वहा पर एक सप्ताह पजाबी क्षेत्र मे ठहरकर गगोत्री प्रस्थान किया।

इस वर्ष गगोत्री मे श्री आनन्दस्वामी सरस्वतीजी तथा सेठ रमणलालजी भी आए हुए थे। उत्तरकाशी मे योगनिकेतन के लिए जो भूमि खरीदी गई थी उस पर कुटिया वनाने के लिए महाराजजी ने दयालमुनिजी को आदेश दिया कि इस साल शीतकाल मे लकडी और पत्थर का प्रवन्ध किया जाना चाहिए। दो कमरे नीचे तथा दो ऊपर और चारो के आगे वराण्डे वनाने का निश्चय किया गया। इसके लिए माता मनसादेवी ने ६००० रु० प्रदान किया। अगस्त के अन्त मे स्वामीजी और सेठजी उत्तरकाशी चले गए और महाराजजी अक्तूबर में पधारे। ये पजाब सिंध क्षेत्र मे ठहरे। इस वर्ष भी स्वमीजी ने महाराजजी से तपोवन मे साधना-शिविर लगाने के लिए निवेदन किया, किन्तु इन्होने इस साल के लिए इन्कार कर दिया। एक मास उत्तरकाशी मे निवास करके महाराजजी स्वर्गाश्रम पधारे।

स्वर्गाश्रम साधना-शिविर

१५ नवम्बर से साधना-शिविर चालू कर दिया गया। अभ्यास मे जिन साधको ने भाग लिया उनमे से मुख्य ये थे —महात्मा प्रभु आश्रितजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, वी० एन० दत्तजी, कैप्टेन जगन्नाथजी, सेठ रामकिशोरजी वरेलीवाले, ब्रह्मचारी अगस्त्यमुनि, श्री गुरुचरणदत्तजी, श्रीमती धर्मवती, सरलादेवी, भाग्यवन्ती, माता मेलादेवी, इनकी पुत्रवधू शीला और शान्ता, सेठ तुलसीराम और इनकी धर्मपत्नी माता

मनमादेवी, इनके पुत्र हरिकिशनदास और अमीरचन्द, नारायणदास कपूर और इनकी पत्नी, योगेन्द्रपाल तथा इनकी धर्मपत्नी, वैद्य कृष्णदयालजी, जयकिशनजी सपत्नीक, शान्ता शास्त्री, बलदेवमित्र और इनकी पत्नी सुमित्राजी। प्रात ४ वजे से ७ वजे तक दो योग शिक्षण की कक्षाए लगाई जाती थी। सायकाल ६ वजे से ८ वजे तक दोनो कक्षाओ को सम्मिलित अभ्यास करवाया जाता था। प्रात ८ से ६ वजे तक आसन, प्राणायामादि सिखाया जाता था। महाराजजी जिस व्यक्ति को ध्यान काल मे विशेष अभ्यास करवाना चाहते थे उसका नाम लेकर पुकारा करते थे। जिसका नाम लिया जाता था वह सावधान हो जाता था। तव ये जैसा आदेश देते थे वैसा ही अभ्यासी को करना होता था। नित्यप्रति अभ्यासियो को क्रमपूर्वक विज्ञान करवाते थे। जो अभ्यासी जिस प्रकार की प्रार्थना अभ्यास के सम्वन्ध मे करता था ये वैसा ही विज्ञान का अभ्यास उसे करवा देते थे। सवके मन समाहित रहते थे। इच्छानुसार सवको विज्ञान प्राप्त हो जाता था। सभी साधक सन्तुष्ट थे। सवकी उन्नति हो रही थी। इन सवमे महाराजजी का मनोवल काम कर रहा था। ये जिसको जो ज्ञान करवाना चाहते थे वह हो जाता था। सव साधको के पास एक-एक डायरी थी। सभी अपने-अपने अनुभव इसमे लिखते जाते थे। एक दिन महाराजजी ने सब अभ्यासियो को निद्रा का ध्यान करने का आदेश दिया। उस दिन अन्य किसी विज्ञान का ध्यान न करके केवल निद्रा के स्वरूप का ही ध्यान करना था। यह कैसे और कव आती है, उस समय मन, वुद्धि और इन्द्रियो की कैसी अवस्था होती है, इत्यादि विज्ञान प्राप्त करके निद्रा के स्वरूप मे ही स्थिर हो जाने का आदेश था। सभी अभ्यासी निद्रा के स्वरूप मे स्थिर होगए अर्थात् सव साधना मदिर मे ही सो गए। कभी-कभी सभी साधक केवल सकल्प-विकल्पो के अभाव करने का ही अभ्यास करते थे। किसी प्रकार के सस्कार अथवा विचार का प्रवेश मन और वुद्धि मे नही होने देते थे। शरीर और अन्त करण को विलकुल शून्य वना देते थे। विचार और वृत्तियो से रहित होकर सवके शरीर और अन्त करण जडवत् हो जाते थे। किसी को कुछ भी ज्ञान नही रहता था। जो अभ्यासी मूर्ति मे विश्वास करते थे वे जिस देवता या भगवान् के अवतार श्री कृष्णचन्द्रजी, विष्णुभगवानादि जिसके भी दिव्य रूप मे दर्शन करना चाहते थे उनके सामने उसी देवता की मूर्ति आकाश मे सामने आकर खडी हो जाती थी और वे अपनी इच्छानुसार जव तक चाहते थे दर्शन करते रहते थे। इन साधको मे महात्मा प्रभु आश्रितजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, वी० एन० दत्तजी, कैप्टेन जगन्नाथजी, रामकिशोरजी, सेठ तुलसीरामजी, एन० डी० कपूर और श्रीमती धर्मवतीजी हृदय प्रदेश के पदार्थो का साक्षात्कार कर रहे थे और शेष अभ्यासी ब्रह्मरध्र के पदार्थो का, अन्नमय तथा प्राणमय कोषो का अभ्यास कर रहे थे। इन सव विज्ञानो का वर्णन महाराजजी ने अपने ग्रन्थो 'आत्म विज्ञान' 'वहिरग योग' तथा 'ब्रह्म विज्ञान' मे किया है। वहा पर देखे। ये तीन ग्रन्थ तीन अमूल्य निधिया है जिनकी रचना विश्व-कल्याण के लिए की गई है।

इन्द्रा की रोगमुक्ति—इन्द्रा एन० डी० कपूर की कनिष्ठा भगिनी है। सारे परिवार का उससे वडा प्यार था। वह लगभग डेढ साल से वीमार थी। उसके पाव मे अत्यधिक पीडा रहती थी। विलकुल चल-फिर नही सकती थी। दिन-रात पलग पर

पडी रहती थी। अनेक उपचार किए गए किन्तु बेचारी को आराम नही हुआ। उसकी ससुराल पक्ष के लोग उस के पतिदेव का दूसरा विवाह करने के लिए समुद्यत होगए थे। श्री कपूर बडे चिन्तित थे। एक दिन अत्यन्त दु खित होकर महाराजजी से अपनी व्यथा सुनाई और अपने मानसिक बल प्रयोग द्वारा उसे स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए महाराजजी से निवेदन किया। इनकी मानसिक शक्ति इन दिनो बडी प्रबल थी। जिस कार्य को वे करना चाहते थे वह अवश्य पूरा हो जाता था, जबतक वह पूर्ण नही होता था इन्हे चैन नही पडती थी। उसी पदार्थ का रूप-सा बन जाते थे। इसके साथ ही इनकी निश्चयात्मिका बुद्धि भी बडी बलवती थी। जिस बात का निर्णय कर लेते थे उसे पूरा करके ही छोडते। दृढनिश्चयी मनुष्य सदा सफलता लाभ करता है। महाराजजी पूर्ण दृढनिश्चयी थे, इसीलिए सफलता देवी सदा उनके सामने हाथ बाधे खडी रहती थी। एन० डी० कपूर की करुणाजनक प्रार्थना को सुनकर महाराजजी द्रवीभूत होगए और कुछ काल ध्यानावस्थित होने के उपरान्त कहा, "बेटी स्वस्थ हो जाएगी, उसका रोग जाता रहेगा। आप चिन्ता न करे। किन्तु डेढ-दो वर्ष मे चलने-फिरने के योग्य होगी।" महाराजजी ने इन्द्रा की फोटो मगवाकर उस पर प्रयोग करना प्रारभ कर दिया और वह डेढ साल मे पूर्ण स्वस्थ होगई और अपने पतिदेव भीमसेन के साथ योगीराजजी के दर्शन करने के लिए स्वर्गाश्रम गई।

सुमित्रा को वरदान— महाराजजी महान् योगी है, सिद्ध पुरुष है, कई प्रकार की सिद्धिया इन्हे प्राप्त हैं। मनोबल इनका अपूर्व है। दयालुता तथा उदारता अपार है। बात की बात मे रोगियो को रोगमुक्त कर देते है। दु खियो के दु ख को एक क्षण मे दूर करते है तथा पतितो का परित्राण करते है। सकटो के निवारक और पापियो के उद्धारक हैं। निर्धनो को धनवान, निर्बलो को बलवान तथा नि सन्तानो को पुत्रवान बना देना आपके बाए हाथ का खेल है। हजारो आदमियो को विविध प्रकार के सकटो से आपने मुक्त करके उनके जीवनो को सुखी बनाया है। सुमित्रादेवी महाराज की शिष्या तथा भक्ता है। तीन-चार साल से अभ्यास करने आती है। इसके पतिदेव आध्यात्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति नही है। इसी देवी की प्रेरणा से उनकी इस ओर रुचि हुई है। वे भी प्रतिवर्ष साधना शिविर मे सम्मिलित होते है। सन्तान के अभाव के कारण दोनो चिन्तित और दु खी रहते थे। एक दिन सुमित्रादेवी ने इस सम्बन्ध मे महाराजजी से प्रार्थना की। महाराजजी ईश्वर-भक्ति मे इसकी रुचि देखकर प्रसन्न थे। वे नही चाहते थे कि यह कीचड़ में फसे। सन्तान की ममता मे एक बार फसकर फिर उससे बाहिर निकलना बडा कठिन हो जाता है। सारा जीवन सन्तान के पालन, पोषण, शिक्षण, आजीविका, विवाहादि मे ही व्यतीत हो जाता है। इस झझट से मनुष्य कभी मुक्त नही हो सकता। इन्होने उसे बहुत समझाया किन्तु उसमे बडी प्रबल पुत्रेषणा थी। उसने स्वय भी दुबारा आशीर्वाद के लिए निवेदन किया और अपनी सुपरिचित देवी शान्ता से भी निवेदन करवाया। महाराजजी ने सुमित्रा से पूछा, "एक ओर सन्तान की ममता तथा दूसरी ओर योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार, इन दोनो मे से तुम किसे पसन्द करती हो?" सुमित्रा ने पुन निवेदन किया, "महाराजजी, हम गृहस्थी है, बालबच्चो के बिना घर सूना और वन के समान लगता है। मातृऋण को पूरा करना भी एक महान कर्त्तव्य है। सन्तान

के बिना गृहस्थाश्रम का उद्देश्य भी पूरा नहीं होता। वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् ज्ञान, ध्यान, योग, तप तथा जपादि किए जा सकते हैं। गृहस्थाश्रम में तो सन्तान होनी ही चाहिए।" उसके आग्रह को देखकर महाराजजी ने एक पत्र अपने भक्त वैद्य धर्मचन्द्र को सुमित्रा के उपचार के लिए लिख दिया जिससे उसके सन्तानोत्पत्ति हो सके। सुमित्रा यह जानकर बड़ी हर्षित हुई। उसने समझा अब सब चिन्ताएं चली जाएंगी। महाराजजी का वरदान प्राप्त होगया। सब आशाएं पूर्ण होगईं। उनका आशीर्वाद अवश्य सफल होगा। पत्र को लेकर वैद्यजी के पास अमृतसर गई। उपचार हुआ और उसने एक कन्या को जन्म दिया। उसका नाम प्रमिला रखा और सुमित्रा उस बच्ची को लेकर अपने पति बलदेवमित्र के साथ स्वर्गाश्रम में श्री महाराजजी के चरण स्पर्श करने के लिए गई। सन्तान तो उत्पन्न होगई किन्तु ईश्वर-भक्ति से वंचित रह गई। अमूल्य हीरे के स्थान पर काच मणि खरीद ली।

गंगोत्री के लिए प्रस्थान

चार मास का साधना-शिविर समाप्त करके महाराजजी ने एक मास तक स्वर्गाश्रम में निवास किया और तत्पश्चात् गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में कुछ दिन तक उत्तरकाशी में ठहरे और फिर गंगोत्री पधारे। महाराजजी का योग निकेतन स्वामी दयालमुनिजी के परिश्रम से बनकर तैयार होगया था। कुटियाएं एक दूसरी से कुछ फासले पर बनाई गई थीं जिससे ध्यान और जाप में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो। उसमें बारह कुटियाएं, चार रसोइयां, एक औषधालय, तीन स्नानघर तथा चार शौचालय बनाए गए। कुटियाओं के सामने अच्छा बड़ा सहन है। शाकादि तथा फूल लगाने के लिए पर्याप्त भूमि खाली छोड़ दी गई है। यह योग विद्या का प्रशिक्षणालय अथवा योग-साधना केन्द्र उन पूज्य गुरुदेव की स्मृति में बनाया गया था जिनसे इनको ६७ घण्टे में सम्पूर्ण आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान की प्राप्ति हुई थी। प्रशिक्षणालय के अभाव में योग-प्रशिक्षण का कार्य सुचारुरूपेण चलना असंभव था। उस महान कार्य के लिए एक निजी भवन की परमावश्यकता थी। उत्तरकाशी में योग-निकेतन के लिए भूमि खरीद ली गई थी और उस पर भवन निर्माण प्रारम्भ होगया था। ऋषिकेश में मौनी की रेती पर एक ऊंची पहाड़ी पर भवन निर्माण हो रहा है। योग-प्रशिक्षणालयों की स्थापना पूज्य महाराजजी की विश्व को एक अपूर्व देन है। उन प्रशिक्षणालयों में सैंकड़ों व्यक्ति प्रतिवर्ष लाभ उठा रहे हैं, जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मार्ग दर्शन प्राप्त कर रहे हैं।

गंगोत्री के योग निकेतन के निर्माण में महाराजजी ने ३०००० रुपया व्यय किया। यह निकेतन एकान्त और शान्त स्थान पर भागीरथी के तट पर बनाया गया है। १६५३ में यह आश्रम बनकर तैयार होगया था। यहां के वातावरण में आध्यात्मिकता के परमाणु ओतप्रोत हैं। हजारों वर्षों से उस पुण्यभूमि पर ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तों, योगियों और भक्तों ने उस भूभाग में रहकर अध्यात्म चिन्तन करके तत्त्वार्थाधिगम किया है। गगन मण्डल में परिपूर्ण उनकी विचारधाराएं आज भी साधकों तथा अभ्यासियों को अध्यात्म-पथ पर चलने की प्रेरणाएं प्रदान करती हैं और अध्यात्म का मार्ग जो 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' है वह सुगम्य, सुबोध और प्रसन्न हो जाता है। उस आश्रम में निवास करने वाले साधक प्रतिपल परमात्मा के

सान्निध्य का अनुभव करते हैं। श्री अरविन्द के शब्दो मे वे सदैव उसके साहचर्य मे निवास करते है।

स्वर्गाश्रम गमन

दशहरे के पश्चात् महाराजजी उत्तरकाशी पधार गए। वहा पर एक मास निवास करके स्वर्गाश्रम पधारे और वहा पर पूर्ववत् एक नवम्बर से साधना शिविर प्रारभ कर दिया। इस वर्ष गगाजी के तट पर कानपुरवाली धर्मशाला मे साधना-शिविर का कार्यक्रम चालू किया गया। इसमे अभ्यासियो की कक्षाए लगाने के लिए दो बडे-बडे कमरे थे। यह स्थान नितान्त एकान्त और शान्त था। अभ्यासियो का भोजन बनाने के लिए महाराजजी ने इस वर्ष एक पृथक् सेवक का प्रबध कर दिया था। इस भोजनालय तथा भण्डार की व्यवस्था कैप्टन जगन्नाथजी के सपुर्द की गई। निर्धन सन्यासी, वानप्रस्थी तथा ब्रह्मचारी साधको को नि शुल्क दूधादि दिया जाता था। शेष अभ्यासी जो भोजन करते थे उनमे जो कुछ व्यय होता था समान रूप से बाट दिया जाता था।

दत्तजी की महाराज के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। इन्होने एक दिन महाराजजी से निवेदन किया, "आपने मेरी प्रार्थना पर कुछ ध्यान नही दिया। मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि मेरे पास जो भी कुछ है वह धर्मपूर्वक अर्जन किया हुआ है। आपके चरणो मे मैं अपना तन, मन तथा धन अर्पण कर चुका हू। मैं आपको अपना आराध्य देव मानता हू। मै आपके कुल खर्चे का उत्तरदायित्व लेना चाहता हू और जीवनपर्यन्त आपका भोजन, वस्त्र, सेवक, यात्रादि का सब खर्चा दूगा। जबसे मैंने आपके श्रीचरणो का आश्रय लिया है आप मेरे गुरु ही नही पिता भी हैं। मेरे लडके की पर्याप्त आय है। उसको मुझसे रुपया लेने की आवश्यकता नही है और पत्नी के खर्च का अलग प्रबन्ध किया हुआ है। मुझे ४०० रु० मासिक पैन्शन मिलती है। मेरा खर्च हो जाने के पश्चात् मेरे पास बहुत रुपया बच जाता है। इसके अतिरिक्त शूगर मिल मे मेरे कई शेयर है। इनकी आय को मैं आपके चरणारविन्द मे अर्पण करना चाहता हू। माता मनसादेवी से जो आपको रुपया मिल रहा है उसे आप बन्द कर दे और मुझसे लेने की कृपा करे।" इनकी बाते सुनकर महाराजजी ने कहा, "तुलसीरामजी ने मुझसे दीक्षा ली है। वे मेरे विधिपूर्वक शिष्य बने है। गुरु पर रुपया व्यय करना शिष्य का कर्त्तव्य है अत मैं उनकी पत्नी को रुपया भेजने से किस प्रकार इन्कार करू ?" इस पर दत्तजी ने पुन निवेदन किया, "महाराजजी, आप मुझे भी मन्त्र-दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लीजिए। मैं तो जबसे आपके चरणारविन्दो मे उपस्थित हुआ हू तभी से आपको अपना गुरु मानता चला आ रहा हूं।" महाराजजी ने कहा, "गुरु का शिष्य के प्रति महान कर्त्तव्य होता है। उसके कल्याण की चिन्ता करनी पडती है। उसके इस लोक तथा परलोक का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। उसके हानि, लाभ, सुख, दु खादि की चिन्ता रखना गुरु का कर्त्तव्य होता है। जितना परिवार बढता है उतना ही बधन अधिक हो जाता है, अत आप इस विषय मे बहुत आग्रह न करे।" महाराजजी के उत्तर से दत्तजी बडे दु खी हुए। सदैव चिन्ताग्रस्त रहने लगे। अभ्यास की भी उन्नति रुक गई। पागलो की सी चेष्टाए करने लगे। इनका स्वभाव बडा कोमल है। प्रकृति बडी शान्त है। किसी की निन्दा तथा चुगली

कभी नही करते। जहा महाराजजी को देखते वही इनका चरण स्पर्श करते थे और इन्हे अपना जीवनदाता समझते थे। महाराजजी ने कैप्टन जगन्नाथजी को इनका ध्यान रखने का आदेश दिया। उन दिनो दत्तजी तथा कैप्टन साहेब दोनो गगा धर्मशाला मे ही रहा करते थे। एक दिन दत्तजी ने रात्रि के साढे दस बजे महाराजजी का दरवाजा खटखटाया। महाराजजी आए और पूछा, "आप इस समय यहा क्यो आए है ? यह मिलने का समय नही है।" जब महाराजजी को पता चला कि ये अपनी पुरानी प्रार्थना लेकर आए है तब उन्होने उनसे कहा कि प्रात इस पर विचार किया जाएगा, अभी आप जाओ। दूसरे दिन महाराजजी ने बडे स्नेह और प्यार से इनको वसन्त पचमी पर दीक्षा देने के लिए कहा, और आदेश दिया कि परसो से यज्ञ प्रारभ किया जाए। गायत्री का जाप करे। ब्राह्मणो के द्वारा यज्ञ करवाया जाए और स्वय यजमान बने। एक मास तक बराबर यज्ञ होता रहा और वसन्त पचमी पर पूर्णाहुति हुई। उसी दिन उपनयन विधि सम्पन्न की गई। महाराजजी ने अपने सारगर्भित उपदेश मे गुरु और शिष्य के कर्तव्यो पर प्रकाश डाला। मन्त्र-दीक्षा दी गई। इस अवसर पर दत्तजी ने पुन अपना तन, मन तथा धन श्री महाराजजी के चरणो मे समर्पित कर दिया। इन्होने फिर रुपयो के लिए प्रार्थना की। महाराजजी ने केवल १२५ रुपये मासिक लेना स्वीकार किया। दत्तजी को १९५८ मे दीक्षा दी गई थी, तभी से ये यह रुपया महाराजजी को भेट कर रहे है। इस अवसर पर दत्तजी ने कहा, "महाराजजी, मेरे पिताजी का मेरे बाल्यकाल मे ही स्वर्गवास होगया था, अत मैं पितृसुख से वचित रहा। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप प्रथम मेरे पिता है और फिर गुरुदेव।" इसी वर्ष महाराजजी ने दत्तजी को पूर्णरूपेण आत्म-विज्ञान करवा दिया।

इस वर्ष महात्मा प्रभु आश्रितजी साधना शिविर मे सम्मिलित हुए थे। ये सब साल भर से आकर साधना कर रहे थे। सपूर्ण रूप से इन्हे आत्म-साक्षात्कार होगया था। इन्हे महाराजजी ने अन्य लोगो को आत्म-विज्ञान प्रदान करने का अधिकार दे दिया।

श्री ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, कैप्टन जगन्नाथजी और रामकिशोरजी को भी विशेष रूप से पचकोशो का साक्षात्कार करवा कर आत्म-स्वरूप मे स्थिति करवाई गई।

१५ मार्च से ८ मास के साधना शिविर की समाप्ति हुई। सबको प्रीति-भोजन करवा कर विदा की गई। पूर्ववत महाराजजी शिविर के पश्चात् एक मास तक और स्वर्गाश्रम मे विराजे। उन्ही दिनो तुलसीरामजी के सुपुत्र अमीरचन्दजी दर्शनार्थ आए। इन्होने कुछ दिन तक एकान्त निवास करके महाराजजी के पास साधना की। थोडे दिनो मे ही इन्होने बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब ये जाने लगे तब महाराजजी से निवेदन किया कि "मै आपसे कई वर्षो से प्रार्थना कर रहा हू कि आप मेरी आर्थिक सेवा स्वीकार करे किन्तु आपने अब तक प्रार्थना स्वीकार नही की है। आप मुझसे २००० रुपये वार्षिक लेने की कृपा करे।" महाराजजी को इनके माता-पिता बहुत रुपया देते थे अत, उन्होने अमीरचन्दजी से रुपया लेना उचित नही समझा। जब इन्होने बहुत ही आग्रह किया तब महाराजजी ने १००० रुपये वार्षिक लेना स्वीकार किया।

४ मई १९५५ में उत्तरकाशी मे योग निकेतन का उद्घाटन—स्वर्गाश्रम मे एक मास तक रहने के पश्चात् श्री महाराजजी उत्तरकाशी पधारे। यहा पर योग

निकेतन का भवन निर्माण हो चुका था। ४ मई १९५५ को इसके उद्घाटन की व्यवस्था की गई। इस अवसर पर सभी गण्य, मान्य तथा प्रतिष्ठित महानुभाव पधारे। उत्तरकाशी के सब सन्तो को भोजन खिलाया गया। वृहद् यज्ञ करवाया गया। सबको यथायोग्य दान-दक्षिणादि दी गई। नगर से जो महानुभाव पधारे थे उनका भी यथोचित सम्मान किया गया और मिष्टान्न बाटा गया। आश्रम का उद्घाटन श्री आनन्दस्वामी सरस्वतीजी महाराज से करवाया गया। इस शुभावसर पर ब्रह्मचारी अगस्त्यमुनिजी, श्रीमती धर्मवती तथा श्रीमती भाग्यवन्तीजी भी आई थी।

गगोत्री प्रस्थान

उत्तरकाशी के योग निकेतन के उद्घाटन के पश्चात् महाराजजी गगोत्री पधारे। दो वर्ष से महाराजजी ने १५ जून से १५ सितम्बर तक ३ मास का साधना शिविर यहा पर भी प्रारम्भ कर दिया था। जो अभ्यासी यहा पर आते थे उन्हे साधना करवाई जाती थी। इस वर्ष महाराजजी गगोत्री ४ मास तक रहे। श्री आनन्द स्वामीजी २ मास तक रह कर ही चले गए और अगस्त्यमुनिजी महाराजजी के साथ ही नीचे गए। योगीराजजी ४० दिन तक उत्तरकाशी विराजे। इसके पश्चात् ७ नवम्बर को स्वर्गाश्रम मे पधारे और साधना-शिविर की सब व्यवस्था करवाई। १५ नवम्बर से पूर्ववत् अभ्यास प्रारम्भ करवा दिया गया। इस वार लगभग ३० साधक अभ्यास के लिए आए थे।

सेठ तुलसीरामजी को जीवन दान

दिसम्बर मास मे अमीरचन्दजी और हरिकृष्णदासजी के पत्र आए जिनमे सूचित किया गया था कि सेठ तुलसीरामजी दो मास से वहुत वीमार हैं। ज्वर वना रहता है, अत्यधिक अजीर्ण रहता है। वार-वार वमन होता है। प्राय वेहोशी की हालत मे पडे रहते है। अपने शरीर का परित्याग करने के लिए उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे है और इसके लिए दिन और तारीख भी नियत कर रखी है। इस अवसर पर गुरुदेव का पास होना अत्यन्त आवश्यक है, आप अवश्य पधारे। हमे मालूम है कि ऋषिकेश से नीचे न उतरने का आपने एक नियम सा वना रखा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी महाभारत के युद्ध मे शस्त्र न ग्रहण करने का नियम वनाया हुआ था परन्तु जब उनके शिष्य अर्जुन के प्राण सकट मे पड गए तव उन्होने भी अपने प्रिय शिष्य अर्जुन की रक्षार्थ अपने सुदर्शन चक्र को उठा लिया था। महाराजजी से इन पत्रो का उत्तर न पाकर इन्होने ४-५ तार दिए। चिट्ठियो और तारो को सब अभ्यासियो को सुनाकर महाराजजी ने उनकी सम्मति मागी और कहा, "सेठ तुलसीराम को गुरु-दीक्षा देते समय हमने सकट काल मे उनकी पूरी सहायता करने का वचन दिया था।" सभी अभ्यासियो ने एक स्वर से महाराजजी को बम्बई जाने की सम्मति दी और कहा कि "हम सब आपकी अनुपस्थिति मे आपकी फोटो के समक्ष वैठकर साधना करते रहेगे।" सेठ तुलसीरामजी की भी प्रवल इच्छा थी कि उत्तरायण प्रारम्भ होने पर एकादशी के दिन जब प्राण निकले उस दिन गुरुदेव का वरद हाथ उनके वक्षस्थल पर रहे और वे जिस लोक में चाहे वही उन्हे भेज दें।

उन दिनो दैनिक मिलाप के प्रधान सम्पादक श्री रणवीरजी भी एक मास के लिए अभ्यासार्थ स्वर्गाश्रम मे आए हुए थे। यह भी महाराजजी के साथ बम्बई जाने के लिए समुद्यत होगए। उन्होने सोचा कि अभ्यास नही तो श्री महाराजजी का सत्सग तो रहेगा। यह दोनो स्वर्गाश्रम से हरिद्वार गए और वहा सेठजी के मकान आनन्द निकेतन मे ठहरे और वहा से टेलीफोन करके सेठ तुलसीरामजी के स्वास्थ्य के बारे मे पूछा और अपने पहुचने की भी सूचना दी। रात्रि के दस बजे रेलगाडी मे सवार होकर दिल्ली पहुचे। वहा से बम्बई हवाई जहाज से जाने का विचार था किन्तु बडे दिनो की छुट्टिया होने के कारण उसमे स्थान नही मिल सका, अत रेलगाडी से जाने का निश्चय कर लिया। रणवीरजी के सब पारिवारिक जन महाराजजी के दर्शनार्थ स्टेशन पर उपस्थित हुए। महाराजजी के हरिद्वार से नीचे न उतरने के नियम को तोडने पर सबको आश्चर्य हो रहा था और अपने मन मे विचार कर रहे थे कि सेठ तुलसीराम पर उनकी विशेष कृपा होगी, तभी तो इस नियम को तोडा है। रणवीरजी ने अपने उपस्थित पारिवारिक सदस्यो से कहा, "कई वर्षो के पश्चात् बडी कठिनाई से कार्यालय से अवकाश प्राप्त हुआ था। सोचा था, महाराजजी के चरणो मे रहकर जीवन का कुछ सुधार करूगा। एकान्त और शान्त वातावरण मे रहने का अवसर लाभ होगा। परन्तु यह भाग्य मे नही था, अत २-३ दिन मे ही वापिस लौटना पडा और दिल्ली की अपेक्षा अधिक प्रवृत्ति के स्थान बम्बई मे जा रहा हू। विधाता के नियमो का किसको ज्ञान है! मनुष्य कुछ सोचता है और विधाता कुछ और। सच है, मेरे मन मे कुछ और थी विधाता के मन और।" दिल्ली से फर्स्ट क्लास की दो टिकट लेकर बम्बई के लिए प्रस्थान किया। दो दिन मे बम्बई पहुचे। वहा पर सेठजी का सारा परिवार फूल मालाए लेकर महाराजजी के स्वागत के लिए स्टेशन पर आया हुआ था और उन्हे मैरीन ड्राईव पर प्रेमकुटी मे ले गए। यही पर सेठजी बीमार थे। सेठजी बेहोश थे, महाराजजी ने उनकी बेहोशी मिटाने के लिए बहुत जोर से आवाज लगाई। वे होश मे आए और महाराजजी को देखकर रुदन करने लगे। बडी कठिनता से हाथ जोडकर प्रणाम करने का प्रयत्न किया। उनकी लडकी ने उनके दोनो हाथ जोडकर उनकी छाती पर रख दिए। बहुत देर तक सेठजी की आखो से अश्रुधारा प्रवाहित होती रही। महाराजजी ने अपना स्नेहसिंचित वरद हाथ सेठजी के सिर पर रखकर कहा, 'मुझे पत्रो और तारो द्वारा विदित हुआ है कि आप अपने शरीर को अब निकम्मा और निरर्थक समझकर ५-६ दिन मे त्यागना चाहते है। आपने अपनी सब सम्पत्ति तो अपने पुत्रो और पुत्रियो को बाट दी है। अब जाते समय अपने गुरु को भेंट मे क्या दोगे? अब तो आपका शरीर ही आपके पास शेष है, आप इसे ही गुरु की भेंट कर दो।" महाराजजी ने पुष्पा से गगाजल मगवाया और सेठजी के हाथ मे देकर सकल्प मत्र पढकर जल को छुडवाया और सेठजी से उनका शरीर ले लिया और सेठजी से कहा, "अब इस शरीर पर आपका कोई अधिकार नही रहा है। अब यह हमारा हो चुका है। अब हम इसको जाने नही देगे, जब तक हमारी इच्छा होगी इसे अपने पास रखेगे।" परिवार के तथा अन्य सब लोग महाराजजी के वचनो पर बडा आश्चर्य कर रहे थे और साथ ही हर्षित भी हो रहे थे। सेठजी से महाराजजी ने कहा, "एक सप्ताह मे शरीर त्यागने की भावना अब आपको अपने मन मे से निकाल देनी चाहिए। अब यह शरीर हमारा हो चुका है। हम इसे कही जाने नही देगे।" सभी

महाराजजी की आश्चर्यजनक लीला को देखकर अचम्भित हो रहे थे। महाराजजी ने जितने लोग वहा उस कमरे मे थे सबको बाहिर जाने का आदेश दिया क्योंकि अब वे सेठजी पर अपने मनोबल का प्रयोग करने वाले थे। इन्होने सबको विश्वास दिलाया कि हम सेठजी को पूर्ण स्वस्थ करके बम्बई से जाएगे। महाराजजी ने बराबर एक घण्टा तक प्रयोग किया और भगवान् से इनकी नीरोगता के लिए प्रार्थना की। इसके परिणामस्वरूप सेठजी ने अपनी आखे स्वय खोल ली और कहा, 'मुझे भूख लगी है।' खिचडी खाने की इच्छा प्रकट की। महाराजजी ने नर्स को बुलाया और शीघ्र खिचडी बनाने के लिए आदेश दिया। जब खिचडी बनकर आगई तब महाराजजी के आदेश से नर्सो ने उन्हे तकिए के सहारे से बिठा दिया और सेठजी को स्वय महाराजजी ने अपने हाथो से खिचडी खिलाई और मुस्कराते हुए कहा, "अब ये नवजात बालक हैं, इसलिए इन्हे खिचडी हम खिला रहे है। इनकी मृत्यु को हमने लौटा दिया है। आज इनका नया ही जन्म समझना चाहिए।" यह देखकर सारा परिवार आश्चर्य से स्तभित सा हो रहा था। महाराजजी ने स्वय अपने हाथ से खिचडी खिलाई। सेठजी बहुत देर तक बैठे रहे। वमन नही हुआ। आज दो मास पश्चात् सेठजी ने अन्न ग्रहण किया था। इसके पश्चात् सेठजी ३-४ घण्टे तक सोते रहे। रणवीरजी यह सब कुछ अपनी आखो से देखकर बडे आश्चर्यान्वित हो रहे थे। महाराजजी के साथ भोजन करके ये अपने भाई सर्वमित्र से मिलने चले गए और सेठजी का परिवार अपने-अपने काम मे लग गया। इन्ही दिनो श्री आनन्दस्वामीजी भी एक वर्ष तक अफ्रीका मे आर्यसमाज का प्रचार करके वापिस बम्बई आगए थे। सायकाल ये महाराजजी से मिलने आए। सेठजी अब कुछ-कुछ बाते भी करने लग गए थे। स्वामीजी ने सेठजी से कहा, "आपको महाराजजी ने बचा लिया है। अब ये आपको पूर्ण स्वस्थ करके जाएगे। अब आप बिल्कुल निश्चिन्त हो जाए।" सेठजी की पाचन शक्ति अब ठीक होगई। साधारण भोजन पचने लग गया। पलग पर बैठना प्रारम्भ कर दिया। महाराजजी दिन मे तीन बार आधा-आधा घण्टा सेठजी के ऊपर मानसिक प्रयोग करते थे। तीन चार दिन में ही ये स्वस्थ होगए।

प्रेमकुटी के नीचे एक सत्सग भवन था। स्वामी प्रेमपुरीजी इन दिनो यही निवास कर रहे थे। यहा इन्होने एक फ्लैट मोल ले लिया था। स्वामी निर्मलजी भी प्रात काल यहा सत्सग किया करते थे। सेठ हरिकृष्णदास ने महाराजजी से निवेदन किया कि नीचे सत्सग भवन के सब सत्सगी आपके दर्शन करना चाहते हैं। आप नीचे पधारकर सबको दर्शन देने की कृपा करें। जब ये नीचे पधारकर मंच पर विराजे तब हरिकृष्णदासजी ने महाराजजी के विषय मे निम्न प्रकार से कहा, "श्री योगाचार्य बालब्रह्मचारी व्यासदेवजी महाराज सर्व शास्त्रो के विद्वान् और योग मे पारंगत है। बहुत वर्षो तक गगोत्री हिमालय मे निवास करके यहा पधारे हैं। आप ४ मास का साधना शिविर स्वर्गाश्रम मे लगाने के लिए गगोत्री (हिमालय उत्तराखण्ड) से शीतकाल मे आया करते है। ये बहुत वर्षो से हरिद्वार से नीचे नही उतरते थे। आप मेरे पूज्य पिताजी के गुरु है अत हमारे सारे परिवार के ही गुरु हैं। मेरे पिताजी तथा हम सबने कई बार इनके चरणो मे बैठकर साधना की है। मेरे पिताजी को दीक्षा देते समय आपने वचन दिया था कि यदि आपके ऊपर कोई विशेष सकट उपस्थित

हो तो मुझे स्मरण कर लेना, मै आपके सकट का निवारण करने पहुच जाऊगा। मेरे पिताजी के जीवन की आशा जाती रही थी। उन्होने अपने प्राण-त्याग का दिन भी निश्चित कर लिया था। महाराजजी के वचन का स्मरण करके हम सब बहिन और भाइयो ने उन्हे पत्र और तार देकर बुलाया है। उन्हें यहा पधारे आज ४ दिन होगए है। आपने अपनी विशेष कृपा मे मेरे पिताजी को जीवन दान किया है। मेरी माताजी महाराजजी से यही वरदान मागा करती थी कि मेरी मृत्यु मेरे पतिदेव की मृत्यु से पूर्व हो। मै ससार मे विधवा होकर नही रहना चाहती। उस पतिव्रता साध्वी देवी ने गत वर्ष परलोक गमन किया है। महाराजजी के योग और मनोबल तथा विविध प्रकार की सिद्धियो को अनेक बार देखा है। हम आपके सदा कृतज्ञ रहेंगे और प्राण-धन से आपकी सेवा के लिए सदैव समुद्यत रहेगे।" श्री हरिकृष्णदासजी के भाषण को सुनकर सभी श्रोतागण आश्चर्यपूर्ण नेत्रो से पूज्य महाराजजी के दर्शन कर रहे थे। उनके पश्चात् अन्य लोगो ने भी महाराजजी के प्रति प्रशसात्मक, श्रद्धा और भक्ति पूर्ण भाषण दिए। इसके बाद सभा विसर्जित होगई।

सेठ हरबसलालजी का समागम—सेठ हरबसलालजी सरवाह प्रेमकुटी मे महाराजजी के दर्शनार्थ पधारे। उन्होने श्री आनन्दस्वामीजी महाराज से आपकी बहुत प्रशसा सुनी थी। उससे प्रेरित होकर ये प्रेमकुटी मे दर्शन करने के लिए आए थे। महाराजजी के महान व्यक्तित्व, योग तथा मनोबल, ब्रह्मवर्चस्व तथा आध्यात्मिक शक्ति, तप तथा त्याग, और उदारता तथा दयालुता से बहुत प्रभावित हुए। ये नित्य सान्ताक्रुज से महाराजजी के दर्शन करने के लिए आते थे। उन्हे नित्य ही अपनी कार मे इधर-उधर घुमाने जाने के लिए प्रार्थना किया करते थे जिससे ये उनके सान्निध्य से लाभ उठा सके। ये अपनी अनन्य श्रद्धा और भक्ति महाराजजी के प्रति बढा रहे थे। इन्होने महाराजजी को तथा आनन्दस्वामी सरस्वतीजी को अपनी कोठी पर भोजनार्थ निमन्त्रित किया और वही पर महाराजजी का प्रवचन भी करवाया और इनसे स्वर्गाश्रम मे अभ्यागमार्थ जाने के लिए निवेदन किया। महाराजजी के बम्बई मे कई भक्त रहते थे, उन सब ने उन्हे भोजन के लिए निमन्त्रित किया। लाला शिवसहायमल की सुपुत्री सीतादेवी के सुपुत्र मोहनलाल राजकुमार की कोठी पर भी पधारे। महाराजजी अपनी परमभक्ता श्रीमती आशावतीजी को भी चर्चगेट पर मिलने पधारे।

महाराजजी को बम्बई पधारे ६ दिन हो चुके थे। सेठ तुलसीरामजी ने पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर लिया था, इधर अभ्यागियो के स्वर्गाश्रम से तार आरहे थे, अत इन्होने सेठजी से कहा कि "कल आपका मृत्यु योग समाप्त हो जाएगा, इसलिए हम परसो यहा से चले जाएगे। अब आपके शरीर मे किसी प्रकार का कोई रोग नही रहा है। केवल थोडी कमजोरी शेष रही है। यह भी खान-पान से शीघ्र जाती रहेगी और आप बाहिर भ्रमणार्थ जा सकेगे।" इसी बीच मे महाराजजी के परम भक्त रामजी लड्डा दलाल तथा महाराजजी की शिष्या श्रीमती रम्भादेवी इनके दर्शनार्थ आए। रामजी अफ्रीका मे व्यापार करते थे। उनकी कोठी पास ही थी। इन्होने आमन्त्रित किया और अपने मकान पर उपदेश करवाया। तत्पश्चात् हरिकिशनदासजी तथा स्वामी निर्मलजी महाराजजी को सैर करवाने लेगए और अधेरी, थाना आदि स्थान दिखाए। महाराजजी और स्वामी निर्मलजी मे लगभग दो घटे तक योग तथा

वेदान्त के लिए विचार-विमर्श होता रहा। एक दूसरे से परस्पर शका समाधान करते रहे। इन दोनो का आपस मे बहुत पुराना परिचय था।

बम्बई से स्वर्गाश्रम के लिए प्रस्थान—अमीरचन्दजी ने महाराजजी के लिए हवाई जहाज मे सीट रिजर्व करवा दी। रणवीरजी ४-५ दिन तक बम्बई रहकर वापिस चले गए थे। विदाई के अवसर पर सेठ तुलसीरामजी ने साश्रु महाराजजी से अपने पास शीघ्र बुला लेने के लिए निवेदन किया। अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक पूर्ण स्वास्थ्य लाभ होने के पश्चात् महाराजजी ने इन्हे हरिद्वार जाने के लिए कहा। इनके सब भक्त, सेवक और सेविकाए महाराजजी को एरोड्रोम पर पहुचाने आए। बड़े भारी समारोह और सम्मान के साथ इन्हे विदा किया। बम्बई से साढे तीन घटे में महाराजजी दिल्ली पहुच गए। दिल्ली मे रणवीरजी अपने परिवार को साथ लेकर, नारायणदासजी कपूर और उनका परिवार तथा महाराजजी के प्रमुख भक्त और सेवक सपरिवार इनके स्वागत के लिए एरोड्रोम पर पहुचे। महाराजजी रणवीरजी के मकान पर ठहरे। नारायणदासजी कपूर अपनी कार मे महाराजजी को दिल्ली मे घुमाने के लिए लेगए थे। दिल्ली से प्रस्थान करके ये ऋषिकेश पहुच गए। स्वर्गाश्रम मे सब अभ्यासियो को अपनी साधना मे पूर्ववत् निरत देखकर महाराजजी बडे प्रसन्न हुए।

स्वर्गाश्रम मे साधना

महाराजजी ने यहा पधारकर पूर्ववत् अभ्यास और साधना प्रारम्भ करवा दी। इन्ही दिनो ब्रह्मचारी अगस्त्यमुनिजी भी कुछ दिनो के लिए अभ्यासार्थ वहा पर आगए थे। मुनिजी को महाराजजी के सपर्क मे आए लगभग १५ साल होगए थे। जब ये सर्वप्रथम महाराजजी के पास आए तभी इन्होने अपने भावी जीवन के लिए निश्चित कार्यक्रम निर्धारित करने के लिए प्रार्थना की थी। और यह भी पूछा था कि इन्हे किस मार्ग पर चलकर पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। इनकी माता प्राय इन्हें विवाह के लिए आग्रह किया करती थी किन्तु ये सदा अपनी अनिच्छा प्रकट किया करते थे। महाराजजी ने इनकी माता को समझाने का वायदा किया और इन्हे आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने का आदेश दिया, जिससे ये आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त कर सके। योग के द्वारा ही दोनो प्रकार का ज्ञान शीघ्र प्राप्त किया जा सकता है। इसी पथ पर स्वय चलकर औरो को भी चलाने का प्रयत्न करना चाहिए। श्री महाराजजी की आज्ञानुसार अब ये कठिन तपश्चर्या के द्वारा योग-साधन करने के लिए कटिबद्ध होगए। कई-कई मास का मौन व्रत धारण किया। कभी-कभी तो ८-१० महीने तक मौन करते थे। नितान्त विरक्त भाव से रहते थे। विद्वान् तो थे ही, अत समय-समय पर अपने भाषणो और उपदेशो से जनता का कल्याण करने लगे। महाराजजी ने ब्रह्मचारी अगस्त्यमुनिजी को आदेश दिया कि ८ मास तक तो मौन रहकर अपने प्राप्त विज्ञान को दृढभूमि करते रहे और ४ मास तक साधको को अभ्यास करवाया करे। इसके पश्चात् महाराजजी की आज्ञानुसार ये बडी श्रद्धापूर्वक इसी कार्य मे लग गए। ये अब अभ्यासार्थियो को २ मास हरिद्वार मे तथा २ मास कश्मीर मे देने लगे। महात्मा प्रभु आश्रितजी को भी इसी प्रकार का आदेश महाराजजी ने दिया—४ मास मौन व्रत और ८ मास प्रचार कार्य करने की आज्ञा प्रदान की।

श्री आनन्दस्वामीजी से कहा कि आप चलता-फिरता योग-साधना-शिविर लगाया करे। जहा कही भी एक दो सप्ताह ठहरने का अवसर प्राप्त हो वही साधना करवाना प्रारम्भ कर दिया करे। इन्ही दिनो श्री दत्तजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी तथा कैप्टन जगन्नाथजी को भी नए अभ्यासार्थियो और साधको को अभ्यास करवाने का आदेश दिया जिससे महाराजजी के पास कुछ काल साधना करने के बाद साधक अभ्यास के लिए आए और इन लोगो को साधना करवाने के विधि-विधान से भी परिचय हो जाए, जिनमे ये लोग इनकी अनुपस्थिति मे भी साधना-शिविर का सचालन विधिपूर्वक करते रहे। ये तीनो वारी-वारी मे बीस-बीस दिन तक नवीन साधको को साधना करवाया करते थे। कई-कई वर्ष तक अभ्यास करने के पश्चात् इन्होने आत्म-विज्ञान प्राप्त किया था अत उस ऋण मे उऋण होने का यही एकमात्र साधन था। अत दूसरो को आत्म-ज्ञान करवाना और विनयपूर्वक साधन करवाना इनका कर्त्तव्य था।

श्री हरवसलाल का शिविर मे प्रवेश—इस अवसर पर सेठ हरवसलालजी सरवाह बम्बई से फरवरी के दूसरे सप्ताह मे पधारे। ये २०-२५ दिन तक साधना-शिविर मे अभ्यास करने के लिए आए थे। महाराजजी ने अपने मनोबल से अभ्यास मे इनकी बहुत उन्नति करवाई। इनमे दिव्य ज्योति उत्पन्न होकर नाना प्रकार के पदार्थो को प्रकाशित करने लगी। थोडे ही दिनो मे इन्हे बहुत विज्ञान प्राप्त होगया। इन्हें बडा सन्तोष हुआ और महाराजजी के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होगई।

श्री महाराजजी की उपदेशामृत वर्षा—१५ फरवरी को अभ्यास की समाप्ति पर श्री महाराजजी ने अपने सब शिष्यों को सम्बोधन करते हुए कहा, "इस युग मे लडके तथा लडकिया अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन नही करते है। शिष्य और शिष्याओ मे गुरु-आज्ञा-पालन का अभाव है, और न गुरुजनो के प्रति अपना कुछ कर्त्तव्य ही समझते है। इसलिए उन्हें साधना मे सफलता नही प्राप्त होती है। वास्तव मे माता-पिता की सम्पत्ति और गुरु-ज्ञान का वही पुत्र और शिष्य अधिकारी हो सकता है जो उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति रखे। उनकी सेवा-सुश्रूषा करे और उनकी आज्ञाओ का पालन करे। जब भक्त भगवान् की भक्ति, प्रार्थना तथा उपासना अनन्य भक्तिभाव से करता है तब भक्तवत्सल भगवान् उस पर प्रसन्न होकर भुक्ति और मुक्ति प्रदान करते है। भगवान् पुण्य कर्म, भक्ति, श्रद्धा, साधना, उपासना, तप और त्याग के बिना प्रसन्न नही होते, अपना साक्षात्कार नही करवाते, कृपा नही करते और मोक्ष प्रदान नही करते। यही नियम मानव समाज पर भी लागू होता है। इतिहास इसका साक्षी है। इन्द्र, विरोचन, उत्तङ्क, सत्यकाम, उपमन्यु आदि परम विद्वान् शिष्यो ने आचार्य कुल मे वर्षो तक रहकर गुरु-सेवा, तपश्चर्या और कठिनतम साधना के उपरान्त आत्म-विज्ञान प्राप्त किया था। गुरु सदैव आत्म-ज्ञान के अधिकारी को ही आत्म-ज्ञान प्रदान करते हैं। अनधिकारी कभी उसको प्राप्त नही कर सकता। जिस गुरुदेव से ब्रह्म-विज्ञान रूपी सर्वोत्तम निधि प्राप्त की जाती है उसके प्रति शिष्य का महान कर्त्तव्य है। जिस पूज्य गुरु से उपदेश ग्रहण करके भवसागर को पार किया जाता है, क्या उसके प्रति शिष्य का कुछ भी कर्त्तव्य नही है ? आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-ज्ञान रूपी अमूल्य निधि को प्राप्त करने के लिए यदि अपना सर्वस्व भी समर्पण करना पडे तो भी यह सौदा सस्ता है। साधन-चतुष्टय सम्पन्न होकर ही जिज्ञासु शिष्य आचार्य कुल मे रहकर

ज्ञान और वैराग्य को दृढ कर सकता है। ज्ञान और वैराग्य उस परलोक वाहन के दो पहिये है जिसमे बैठकर मोक्ष-धाम मे पहुचा जा सकता है। एक पहिये की गाडी लडखडा कर खड्डे में गिरा सकती है। वह कभी गन्तव्य पथ पर नही पहुचा सकती। इससे उद्देश्य तक कभी नही पहुचा जा सकता। जो साधक केवल आत्म-विज्ञान को प्राप्त करके उसका अभ्यास करते रहते है, जिनकी चित्तवृत्ति उपरामता को प्राप्त नही होती, जो सासारिकता से ऊपर नही उठते है और जिनको शम, दम, तितिक्षा के द्वारा परम वैराग्य नही हुआ है, वे कभी भी अध्यात्म पथ पर चलने मे समर्थ नही हो सकते और न ही कभी सफलता लाभ कर सकते है। इसलिए अभ्यास के साथ वैराग्य का होना परम आवश्यक है। अत आप लोग दोनो के लिए प्रयत्नशील रहे।"

शिष्यो को हार्दिक आशीर्वाद देकर महाराजजी ने अपना उपदेश समाप्त किया।

शान्ति की विजय—महाराजजी कानपुर वाली धर्मशाला मे साधना शिविर लगाते थे। इसमे शिविर लगाते अभी दो वर्ष ही हुए थे। वैसाखी के पश्चात् ये १५ या १६ अप्रैल को गगोत्री पधार जाया करते थे। अभ्यास के पश्चात् महाराजजी प्राय. कुछ दिवस स्वर्गाश्रम मे विराजकर विश्राम किया करते थे। गीता भवन के प्रबधक श्री चिरजीलालजी इन दिनो कानपुर वाली धर्मशाला को स्वर्गाश्रम से माग लिया करते थे। इस वार इन्होने वैसाखी से पूर्व ही यह धर्मशाला खाली करने के लिए महाराजजी को कहला भेजा। महाराजजी ने स्वर्गाश्रम के प्रबधक द्वारा १५ अप्रैल को खाली कर देने के लिए कहला भेजा। परन्तु चिरजीलालजी इतने दिन तक रुकना नही चाहते थे। स्वर्गाश्रम के मैनेजर ने सेठ जयदयालजी को भी कहा। महाराजजी के गगोत्री जाने मे अब केवल ८-१० दिन ही रह गए थे। जयदयालजी के पास अभी कई मकान खाली थे। इनको कार्य मे लिया जा सकता था किन्तु गीता भवन के प्रबधक तथा सेठ साहब दोनो अपनी जिद पर अडे रहे। स्वार्गाश्रम के मैनेजर ने वडे विनम्र भाव से पुन सेठजी से कहा, "व्यासदेवजी वडे विद्वान् योगी है, प्रतिष्ठित महापुरुष है, वहुत वर्षो से यहा निवास करके साधना शिविर लगाते है और योग प्रशिक्षण करते है। अब इनके गगोत्री पधारने मे केवल ८ दिन ही शेष रहते है। इनसे यह मकान खाली करवाना उचित नही है।" सेठजी ने उत्तर दिया, "हमने स्वर्गाश्रम से इस धर्मशाला को इस्तेमाल करने की लिखित आज्ञा प्राप्त की हुई है। हमारे सत्सगी इसमे ठहरेगे।" इस पर मैनेजर ने पुन निवेदन किया, "आप ८ दिन के लिए इन्हे अपनी ओर से ही रहने के लिए आज्ञा प्रदान कर दे।" पर वे नही माने। महाराजजी चाहते तो इस मकान मे गगोत्री प्रस्थान करने तक रह सकते थे। उन्हे वलपूर्वक निकालने की हिम्मत तो किसी मे हो नही सकती थी। किन्तु इन्होने पूर्ण शान्ति रखी और अपनी सरलता तथा साधुता का परित्याग नही किया। यदि इनमे व्यवहार कुशलता का अभाव है, यदि इनमे शिष्टता और सौजन्य नही है, तो इसके लिए हमे अपने सौजन्य और शिष्टता का त्याग नही करना चाहिए। वास्तव मे हमे इनकी बुद्धि के अनौचित्य पर दया आ रही थी। इन्होने स्वर्गाश्रम के प्रबधक के द्वारा कार्यालय के ऊपर के उन कमरो को खाली करवा लिया जिनमें वे पहले विराजा करते थे। अपना बिस्तर उठाकर वहा चले गए। ये नितान्त अपरिग्रही थे। आवश्यकता से अधिक कोई सामान अपने पास नही रखते थे, अत धर्मशाला खाली करने मे कुछ भी विलम्ब

नही लगा। एक पत्र महाराजजी ने स्वर्गाश्रम के मत्री श्री गोस्वामी गणेशदत्तजी को इस दुर्व्यवहार और अशिष्टता के विषय मे लिखा और एक उपमत्री प० देवधरजी को। ये दोनो महाराजजी का बडा आदर और सम्मान करते थे और इनके प्रति इन दोनो की बडी श्रद्धा थी।

दूसरे वर्ष जब जयदयालजी को पता चला कि महाराजजी कानपुर वाली धर्मशाला मे विराज रहे है तो ये उनके दर्शनार्थ आए। सभव है, श्री गणेशदत्तजी अथवा पं० देवधरजी ने उन्हे उनकी अशिष्टता के विषय मे कुछ लिखा हो। महाराजजी ने सेठजी का सत्कार किया और कहा, "सेठजी, आपने गत वर्ष अच्छा कार्य नही किया। आपने मुझे धर्मशाला मे गत वर्ष एक सप्ताह भी रहने नही दिया और मुझे अपमानित करके निकाला, यद्यपि आपके पास अपने अतिथियो को ठहराने के लिए अन्य कई मकान थे। मेरा तो इसमे कुछ बिगडा नही, किन्तु आपके लिए यह बडी लज्जा की बात है। आपने मुझे बहुत ही साधारण व्यक्ति समझा। मैं बहुत वर्षो से इस धर्मशाला मे रहता आता था। आपको मेरे साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार नही करना चाहिए था। मानवता से नीचे गिरना नही चाहिए था। मैं चाहता तो इस प्रकार की कई धर्मशालाए बना सकता था किन्तु मैं और अधिक प्रवृत्ति मार्ग मे फसना नही चाहता। मेरे पास भी सैकडो साधक प्रतिवर्ष केवल स्वर्गाश्रम मे ही नही अपितु गगोत्री और उत्तरकाशी मे भी आते है। मैं आपसे आयु, विद्वत्ता, साधना तथा योग मे ऊचा दर्जा रखता हू। मेरी मान और प्रतिष्ठा आपसे किसी प्रकार भी कम नही है। आपने अपने धनाभिमान मे आकर मेरा अपमान किया यह आपके लिए कोई शोभा की बात नही है। मेरा क्या बिगडा, मैं तो साधु हू। रगडा-झगडा तथा विरोध करना और बल प्रदर्शन करना मैंने उचित नही समझा और ये सब बाते साधु के लिए अशोभनीय है, इसलिए मैंने अपना बिस्तर उठाया और अन्यत्र चला गया। अपनी मन शान्ति को किसी भी प्रकार से भग नही होने दिया और आप सबके साथ शान्तिपूर्वक व्यवहार किया।" सेठजी बडे लज्जित हुए और महाराजजी की सब बाते चुपचाप सुनते रहे। अन्त मे जब सेठजी जाने लगे तब योगीराजजी से हाथ जोडकर अपने अपराध की क्षमा मागी और कहा, "महाराजजी! मैंने आपके समान स्पष्टवक्ता अपने जीवन मे आज तक नही देखा। अब कभी आपको मकान खाली करने के लिए नही कहूगा। आप भले ही इसमे जीवनपर्यन्त निवास करे।" महाराजजी ने कहा, "सेठजी, यह आपकी महानता है कि आप अपनी भूल को स्वीकार करते है और उस पर पश्चात्ताप कर रहे है।" स्वामीजी को सादर प्रणाम करके सेठजी चले गए। इस दिन से चिरजीलाल महाराजजी का बडा आदर और सम्मान करने लगे और आसन तथा प्राणायाम सीखने के लिए प्रतिदिन महाराजजी के पास आना प्रारभ कर दिया।

विचित्र घटना—सदा की भाति इस बार भी श्री महाराजजी ने १५ नवम्बर से १५ मार्च तक साधना शिविर लगाया। सेठ हरबसलाल ने गत वर्ष अभ्यास मे सतोष-प्रद प्रगति की थी, इससे उत्साहित होकर ये इस वर्ष भी साधना शिविर मे अभ्यासार्थ आए। अब भी इन्होने अपने अभ्यास मे खूब उन्नति कर ली थी। इनकी आत्म-विज्ञान मे उन्नति देखकर महाराजजी इन पर कुछ विशेष दयादृष्टि रखने लग गए। इससे बरेली वाले रामकिशोरजी को बडा दु ख-सा पैदा होगया और रोते हुए महाराजजी

से निवेदन किया, "मैं आपके पास इतने वर्षो से अभ्यास कर रहा हू । ये सेठ हरवसलाल दो वर्ष मे ही मुझसे बहुत आगे निकल गए हैं । आपने मुझे इनकी अपेक्षा बहुत कम सिखाया है । इन पर आपकी विशेष कृपा है । मुझे आपने अपनी दया का पात्र अभी पूर्ण रूप से नही वनाया है ।" इन शब्दो के साथ वे फूट-फूट कर रुदन करने लगे । महाराजजी ने रामकिशोरजी को वहुत समझाया और कहा, "हम तो सवको समान भाव से ही बताते हैं, सवको समान रूप से उपदेश देते है और समझाते है, किन्तु ज्ञान की प्राप्ति सवको अपनी बुद्धि, योग्यता, पुरुषार्थ अथवा भाग्य के अनुसार होती है । आपका पुरुषार्थ निष्फल नही जाएगा । कुछ देर के पश्चात् या कालान्तर मे फल अवश्य ही प्राप्त होगा । ये पूर्वजन्म के योगभ्रष्ट हैं अत इन्हें शीघ्र सफलता हो रही है । आप वर्तमान मे योग-साधन करने लगे हैं अत आप भी कुछ काल के अभ्यास से इनके समान हो जाएगे । अभी कुछ प्रारव्ध कर्म फल-वाधक वने हुए है । इसे इस दृष्टान्त से समझने का प्रयत्न करो —

एक दिन विष्णु भगवान् और लक्ष्मीजी वन मे विचरण कर रहे थे । लक्ष्मीजी ने कहा, 'महाराज, भगवान् के घर मे वडा अन्याय है । देखिए, सामने जो लकडहारा जारहा है, यह बेचारा वडे परिश्रम से लकडी काटता है, अपना पसीना वहाता है, तव कही इसे दो आने प्राप्त होते हैं । इसीसे अपने परिवार का भरण और पोषण करता है । दूसरी ओर एक राजा है जो गद्दी-तकियो पर वैठा रहता है । कोई परिश्रम नही करता, किन्तु सव प्रकार के सुखो और ऐश्वर्यो का उपभोग करता है ।' विष्णु भगवान् ने इसका वडा सुन्दर उत्तर दिया, 'भगवान् तो सवको समान रूप से ही देते है किन्तु लोग उसे अपने-अपने भाग्य के अनुरूप ही प्राप्त करते हैं ।' दूसरे दिन विष्णु भगवान् एक अमूल्य हीरा लकडहारे के मार्ग पर फेंक कर अन्तर्ध्यान होगए । चलते-चलते उस लकडहारे के मन में एक वडा विचित्र विचार आया कि वेचारे अन्धे न जाने कैसे मार्ग मे चलते होगे । मैं आखे वन्द करके चलू और इसका अनुभव करके देखू । वह आखें वन्द करके चलने लगा । उसके पैर की ठोकर से हीरा दूर जा पडा और वह चलता रहा । आगे जाकर आखे खोलकर कहने लगा—भगवन् ! किसी को अधा मत वनाना, अधो को चलने मे वडी कठिनाई होती है । अव भगवान् ने लक्ष्मीजी से कहा, 'देवी ! देखा, इसके भाग्य में हीरा प्राप्त करना नही था । हीरा इसके सामने आया किन्तु वह ठोकर मार कर चला गया । भगवान् ने तो इसके सामने लाकर रखा था पर उसके भाग्य मे इसकी प्राप्ति नही थी ।' " यह दृष्टान्त सुनाने के पश्चात् महाराजजी ने कहा, हम तो सवको समान रूप से ही विद्या प्रदान करते है किन्तु दुर्भाग्य इसमें विक्षेप डाल देता है । इससे सेठ रामकिशोरजी को सन्तोष हो गया ।

सेठ हरवसलालजी मरवाह अपने अभ्यास मे किसी कारणविशेष से विघ्न उपस्थित हो जाने के कारण वडे चिन्तित थे । अत्यन्त परिश्रम करने पर भी साधना मे पूर्व स्थिति नही आसकी थी । महाराजजी ने कहा, यह विघ्न शीघ्र दूर नही होगा, आप केवल मत्र जाप किया करो । सेठजी वम्वई पधार गए और वहा जाकर ६ मास का मौन व्रत धारण करके गायत्री का पुरश्चरण प्रारभ कर दिया ।

हिमालय के योगी का चमत्कार—महाराजजी के शिष्य पडित ठाकुरदत्तजी वैद्य अमृतधारावाले इस वर्ष बहुत रोगी होगए । अनेक उपचार करने पर भी वे

जव स्वस्थ न हो सके तव महाराजजी को अपने योगवल से रोग मुक्त करने के लिए निवेदन किया गया। वैद्यजी का पोता स्वर्गाश्रम से अपनी कार मे इन्हे ले आया। सेठ हरवसलाल तथा नारायणदास कपूर भी इनके साथ आए क्योकि ये दोनो लाहौर से ही वैद्यजी के पुराने सुपरिचित थे। पण्डितजी के पौत्र कार लेकर महाराजजी को लेने चले गए। योगीराजजी इनके साथ देहरादून पहुचे। पण्डितजी की पुत्री ने महाराजजी का नाम लेकर इन्हे वडे जोर से पुकारा। इन्होने वडी देर के वाद होश मे आकर अपनी आखे खोली और साश्रु महाराजजी को निर्निमेष नेत्रो से देखते रहे। योगीराजजी ने कहा, "अव रोने और ववराने की आवश्यकता नही। अव मैं आगया हू और आपको शीघ्र ही नीरोग कर दूगा।" पारिवरिक जन इनके जीवन की आशा छोड वैठे थे अत इन्हे महाराजजी की वात का विश्वास ही नही होता था। महाराजजी ने सवको कमरे से वाहर भेज दिया, मानसिक प्रयोग प्रारभ किया और भगवान् से प्रार्थना की। महाराजजी ने आधा घण्टा तक प्रयोग किया। पण्डितजी ने कई दिनो से अपने-आप करवट नही वदली थी। इस प्रयोग के वाद इन्होने स्वय करवट वदली और अपने मे प्रथम वार शक्ति का अनुभव किया। इस समय इनको वेदना भी कुछ न्यून होगई थी। महाराजजी ने वैद्यजी के लिए खिचडी वनाने का आदेश दिया। जव यह तैयार होकर कमरे मे लाई गई तो योगीराजजी ने वैद्यजी को पलग पर वैठकर खाने का आदेश दिया। इन्हे तकिए के सहारे विठा दिया गया और इनकी पुत्री ने इन्हे खिचडी खिलाई। लगभग दो घटे मे इनमे कुछ स्वस्थ से होने के चिन्ह दिखाई देने लगे। महाराजजी जव वापिस स्वर्गाश्रम पधारने लगे तव हर तीसरे दिन वहा कार भेजने का आदेश दिया जिससे प्रति तीसरे दिन वैद्यजी की स्वास्थ्य मे प्रगति को देखते रहे। स्वर्गाश्रम मे भी इनके स्वास्थ्य के लिए प्रयोग करते रहे। ये १५-२० दिन मे स्वस्थ होगए, केवल दुर्वलता ही शेप रह गई थी। ठीक २० दिन वाद ही वैद्यजी का जन्म-दिवस था। महाराजजी ने सव पारिवारिक जनो से कहा कि वैद्यजी इस अवसर को स्वय वडी धूमधाम से मनाएगे। इस स्वास्थ्य-प्राप्ति से पूर्व पण्डितजी स्वामी सत्यानन्दजी महाराज को अपना गुरु मानते थे, किन्तु इस चमत्कार को देखकर अव पूज्य महाराजजी को भी अपना गुरुदेव मानने लग गए। योगीराजजी ने अपने योगवल से वैद्यजी को जीवन-दान दिया था। इसीलिए इनके प्रति पण्डितजी की वडी निष्ठा होगई थी। स्वास्थ्य-प्राप्ति पर वैद्यजी ने एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया। स्वामी सत्यानन्दजी भी इस अवसर पर पधारे। अपने सारे स्टाफ, कन्या गुरुकुल की छात्राओ तथा अपने सभी इष्ट मित्रो को आमन्त्रित किया। वडी धूमधाम से यज्ञ को सम्पन्न किया गया। खूव दान-दक्षिणा दी गई।

उत्तरकाशी-गंगोत्री प्रस्थान

साधना शिविर की समाप्ति पर एक मास तक स्वर्गाश्रम मे निवास करके महाराजजी उत्तरकाशी पधारे। इस वार कैप्टन जगन्नाथजी भी इनके साथ आए।

ग्रन्थ निर्माण करने का विचार—महाराजजी उत्तरकाशी मे सवा मास तक विराजे। कैप्टन जगन्नाथजी आश्रम के निर्माण कार्य मे वरावर सहयोग देते रहे। पूज्य महाराजजी जून मास के प्रारम्भ मे गगोत्री पधारे। सेवक विजय भी इनके साथ था। गगोत्री मे चार मास तक रहकर ये विज्ञान के प्रमुख विपयो पर विचार करके सक्षेप

मे लिखते रहे। गुरुदेव के सभी शिष्य विज्ञान को विधिपूर्वक लिपिबद्ध करके प्रकाशित करवाने के लिए बार-बार प्रार्थना कर रहे थे क्योकि योगीराजजी का योग सम्बन्धी विशेष विज्ञान इनका स्वानुभव था। इस प्रकार का क्रम और विज्ञान अन्य ग्रथो मे कही भी उपलब्ध नही है। इसलिए इस विज्ञान को पुस्तकाकार मे लाना अत्यन्त आवश्यक था। जिस प्रकार दर्शनशास्त्र आज विश्व का प्रदर्शन कर रहे है, इसी प्रकार से पुस्तकाकार प्राप्त कर लेने पर आपका विज्ञान विश्व को लाभ पहुचा सकेगा। गुरुदेव के योग, आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान को विश्व के कोने-कोने मे पहुचाने का एक-मात्र यही साधन है। सभी शिष्यो की प्रार्थना को स्वीकार करके पूज्य योगीराजजी ने आत्मा सम्बन्धी तथा ब्रह्म सम्बन्धी स्वानुभूतियो को ग्रथ का रूप देने का निश्चय कर लिया। कई वर्ष से प्रयोगात्मक ढग से अभ्यासियो को पूज्य महाराजजी साधना करवा रहे थे अत सारा विज्ञान इन्हे हस्तामलक हो रहा था। इसको लिख डालना एक सहज सी बात थी। शिष्यो मे केवल विश्वेश्वरनाथ दत्त इस बात का विरोध कर रहे थे। उनका विश्वास था कि गुरुदेव का विज्ञान पुस्तक मे नही लिखा जा सकता। यह तो स्वय अन्त करण से ही ग्रहण किया जा सकता है। यह तो ऋषियो तथा मुनियो के पावन हृदयो मे ही परम्पराओ से पनपता आ रहा है। इसकी पवित्र परम्परा इसी प्रकार से चलनी चाहिए। महाराजजी अपने किसी शिष्य के नाम मे इस महत्त्वपूर्ण ग्रथ को प्रकाशित करना चाहते थे किन्तु शिष्यो ने इस बात को स्वीकार नही किया। क्योकि गुरुदेव प्रसिद्ध योगीराज तथा योगपारगत है, वर्षों तक हिमालय निवास करके योग साधना की थी और साधको को योगाभ्यास करवाया था, अत इन्ही के नाम से पुस्तक का प्रकाशन अभीष्ट माना गया।

गगोत्री से आकर महाराजजी ने जो विज्ञान के सम्बन्ध मे सक्षेप रूप मे लिखा था उसे ब्रह्मचारी जगन्नाथजी को देकर उसे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय ५ कोषो के आधार पर क्रमबद्ध करने का आदेश दिया जिससे सभी सक्षिप्त सामग्री का क्रम के अनुसार सग्रह हो सके। पाच कोषो का समावेश स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर मे करने की भी आज्ञा प्रदान की। कैप्टन जगन्नाथजी को योग निकेतन का कार्य दिल्ली जाकर करने का आदेश दिया अर्थात् 'साधना शिविर' लगाने की वहा व्यवस्था की जाए क्योकि अब इन्होने अपने विज्ञान को दूसरो को प्रदान करने की योग्यता प्राप्त कर ली थी। दत्तजी को भी देहरादून मे जाकर योगाभ्यास करवाने का आदेश दिया जिससे वहा की जनता भी लाभ उठा सके किन्तु वे महाराजजी के चरणश्री को छोडकर कही अन्यत्र जाना नही चाहते थे। वे कोई ऐसी सेवा चाहते थे जो गुरुदेव के चरणारविन्दो मे बैठकर की जा सके। अत महा-राजजी ने नए साधको को अभ्यास करवाने की आज्ञा दी और यह भी फरमाया कि जब आप अभ्यास करवाने बैठो तब मुझसे आदेश लेकर जाया करो। दत्तजी ने इसी प्रकार से साधना करवानी प्रारम्भ कर दी।

युवक अभ्यासियों पर अविश्वास

पूज्य महाराजजी युवक ब्रह्मचारियो और अभ्यासियो पर विश्वास नही करते थे। बहुत से युवक विद्यालय अथवा महाविद्यालय छोडकर भाग आते थे। जिनका पढाई मे मन नही लगता है, जो अध्ययन मे परिश्रम नही कर सकते है, जो परीक्षा

मे उत्तीर्ण हो जाते है, जो अध्ययन का व्यय वहन नही कर सकते, अथवा जो अपनी अशिष्टता, दुर्व्यवहार, और दुराचार के कारण बदनाम हो जाते है, प्राय वे ही अपने घरो से भाग जाते है और अन्य कही भी स्थान न मिलने से आश्रमो मे आ जाया करते है। माता-पिता से नाराज होकर, अथवा पत्नी का देहान्त हो जाने पर, या आजीविकोपार्जन के लिए साधनाभाव के कारण, अथवा किसी भी कार्य मे मन के न लगने के कारण भी युवक घर छोडकर भाग जाया करते है। महाराजजी के पास जब कभी इस प्रकार के भगोडे युवक आते थे तब ये उन्हे समझा-बुझाकर वापिस उनके घरो मे भेज दिया करते थे। उनमे उनके माता-पिता का सारा पता ज्ञात करके उन्हे सूचित कर देते थे और वे आकर इन्हे ले जाया करते थे। जब इस प्रकार के युवक अपने माता-पिता तथा अध्यापक के अनुशासन मे रहना पसन्द नही करते तो श्री महाराजजी के अनुशासन मे किस प्रकार रह सकते थे। ये बेलगाम घोडे के समान होते है। नियन्त्रण मे रहना नही चाहते। आज्ञा पालन करना नही जानते। उच्छृङ्खलता प्रिय होते है। उद्दण्ड होते है। अनुशासन मे उन्हे बधन, आज्ञापालन मे मानहानि, माता-पिता तथा गुरुजनो का सम्मान करने मे अपना अपमान और विनम्रता मे अपना पतन दिखाई देता है। ऐसे युवक आश्रमो मे रहने के योग्य नही होते। थोडा सा अभ्यास करने के पश्चात् कही अन्यत्र भाग जाते है। मानसिक चचलता और अस्थिरता के कारण ये कही भी स्थायी रूप से टिक नही सकते। स्वेच्छाचारिता के कारण इधर-उधर भटकते रहते है। किसी-किसी को क्षणिक वैराग्य हो जाता है तो ससार से विरक्त रहने लगता है और छद्मवेश बनाकर फिरने लगता है। एक कठिन समस्या और है। यदि इन भगोडो को आश्रमनिवासी गुरुजन प्रेमपूर्वक अपने पास रखे, अच्छा खिलाए, अच्छा पहिनाए, कभी ताडना न करें, इनसे सेवा कुछ न ले, तब ये गुरु के भी गुरु बन बैठते है। इन्हे यह दुरभिमान होने लग जाता है कि ये अब बहुत बडे महात्मा हो गए है, इसीलिए गुरुजी से इतना सम्मान प्राप्त हो रहा है। इस अभिमान के कारण इनकी विद्या, बुद्धि तथा सूक्ष्मदर्शिता का स्रोत बन्द हो जाता है। अपनी उद्दण्डता के कारण आश्रमो से भी भाग निकलते है। पूज्य महाराजजी को इन बेलगाम घोडो का और उच्छृङ्खल युवको का कई वर्षो से बडा कटु अनुभव हुआ था, इसीलिए वे शीघ्र किसी युवक का विश्वास नही करते थे। इनके प्रति बडी उपेक्षा वृत्ति भी रखते थे।

स्वर्गाश्रम मे ४ मास के साधना शिविर की समाप्ति पर उपदेश

४४ मार्च को साधना-शिविर का समाप्ति समारोह मनाया गया। महाराजजी ने सब साधको को प्रीतिभोज के उपरान्त विदाई देते हुए निम्न उपदेश दिया —

यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है कि आप लोगो की जिज्ञासा आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान के विषय मे है किन्तु इस मन्द गति से शीघ्र पूर्ण सफलता प्राप्त न होगी। जिस प्रकार से आप लोगो ने यहा रहकर ४ मास तक यम-नियम का पालन किया है, अनुशासन मे रहे हो, सयम व्रत को धारण किया है, और बडी लगन के साथ अभ्यास किया है, इसे अपने-अपने स्थान पर भी इसी प्रकार जारी रखो जिससे बहुत शीघ्र ज्ञान और वैराग्य प्राप्त होकर मानव जीवन का उद्देश्य शीघ्र ही पूर्ण हो

जाएगा। आप लोग अपनी यह भ्रांति दूर करदे कि आपको अनेक जन्मो के बाद तत्त्व-ज्ञान प्राप्त होगा। यदि निश्चयात्मक बुद्धि से कटिबद्ध होकर इस अध्यात्म मार्ग पर अग्रसर हो जाओगे तो इसी जन्म मे आत्म-विज्ञान लाभ कर सकते हो। शम, दम, उपरति, तितिक्षादि साधन-चतुष्टय से सम्पन्न होकर श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा और विश्वास पूर्वक और आलस्य तथा प्रमाद को त्याग कर श्रेय पथ के पथिक बना जाए तो इसी जन्म मे अपवर्ग प्राप्त हो सकता है। आप सबको लोकेषणा, पुत्रेषणा और वित्तेषणा इन तीनो एषणाओ का परित्याग करके वैराग्य की भावना को दृढ करना चाहिए। आप अभ्यास तो खूब करते है किन्तु जीवन मे वैराग्य की कमी है। अभ्यास और वैराग्य दोनो ही सफलता के मुख्य साधन है। इसलिए आपको अपने ज्ञान और वैराग्य दोनो को दृढ करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य सुख, शान्ति और आनन्द की खोज मे लगा हुआ है परन्तु इनकी प्राप्ति का एक ही मार्ग सुगम, सरल और निष्कटक है और वह है योग। योग के बिना आनन्द की उपलब्धि नही हो सकती। मनुष्य सदा चलता तो प्रेय-मार्ग पर है और इच्छा करता है आनन्द प्राप्ति की। यह कैसे हो सकता है! श्रेय पथ का पथिक ही वास्तविक आनन्द लाभ कर सकता है। प्रेय मार्ग का सुख आपात् रम्य है, क्षणिक स्थायी है। किन्तु स्थायी आनन्द प्राप्ति के लिए तो श्रेय मार्ग का अवलम्बन करना होगा। अत यद्यपि श्रेय पथ 'क्षुरस्य धारा' है किन्तु इसके बिना कल्याण नही हो सकता। कल्याण चाहते हो तो इस मार्ग पर चलने के लिए आज ही कटिबद्ध हो जाओ। मगलमय मगलरूप भगवान् तुम्हारा सदैव मगल करे!

श्री रणवीरजी को उपदेश—दैनिक मिलाप के प्रधान सपादक साधना शिविर की समाप्ति पर दर्शनार्थ आए। पूज्य महाराजजी के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा और भक्ति थी। एक दिन इन्होने योगीराजजी से प्रश्न किया कि "महाराजजी, मैंने आपकी अनेक सिद्धिया देखी है। आपने कइयो को रोगमुक्त किया है, कइयो को मुकद्दमे में जिताया है तथा कइयो को जीवन-दान किया है। आपने मेरे भाई युद्धवीर को, बम्बई वाले सेठ तुलसीराम को, प० ठाकुरदत्त शर्मा अमृतधारावालो को, नारायणदास के पिता और भगिनी को तथा माता मनसादेवी आदि कइयो को जीवन-दान किया है। आप रोगी को देखते ही उस को कह देते है कि मैं आपको निश्चयपूर्वक रोगमुक्त और स्वस्थ कर दूगा। इस बात की आप सबके सामने घोषणा कर देते है, जैसे कि उस रोगी का जीवन और मरण आपके ही हाथ मे हो। क्या यह भगवान् के न्याय मे और कर्मफल प्रदान मे हस्ताक्षेप नही है?" पूज्य महाराजजी ने इनकी बात का समाधान करते हुए कहा, "कर्मफल प्रदान करने का अधिकार भगवान् को ही है क्योकि वह त्रिकालदर्शी और सर्वज्ञ है, एकदेशी अल्पज्ञ जीव को नही क्योकि अनन्त कर्मो की स्मृति जीव को नही रहती। इसलिए यह कर्मफल का विभाग नही कर सकता। किन्तु जैसे न्यायाधीश न्यायालय मे बैठकर लोकमर्यादा अथवा व्यवस्था ठीक रखने के लिए अपराधी को दण्ड देता है, यह भी भगवान् के कर्मफल प्रदान करने में हस्तक्षेप ही है। इसी प्रकार योगी भी कर्मफल का विधान या कर्मफल प्रदान कर सकता है। कर्मफल भोगना तो कर्ता को पडता ही है। अब किसी को स्वस्थ करने के विषय मे सुनो। वास्तव मे रोगी को स्वस्थ होना ही होता है जिसे सर्वसाधारण समझ नही सकते, किन्तु योगी अपनी दिव्य दृष्टि से इस बात को जान लेता है, समझ जाता है।

इसीलिए वह निश्चित रूप से उसके स्वास्थ्य-लाभ के लिए कह देता है। कभी-कभी रोगी के भविष्य को देखकर भी उसके रोगमुक्त होने की घोषणा कर देता है और कह देता है कि तुम स्वस्थ हो जाओगे अथवा मैं तुम्हें स्वस्थ कर दूगा। कभी-कभी योगी रोगी के रोग-भोग को कुछ हल्का-सा कर देता है जिसे वह आसानी से भोग सके। अपने मनोबल से उस भोग को कुछ आगे-पीछे भी कर देता है। यदि वह चाहे तो स्वय भी रोगी के भोग को बटा सकता है। उसके रोग-भोग को स्वय अपने ऊपर ले सकता है। भोग मे सहायक बन सकता है। भविष्य की ओर मनोबल से धक्का देकर फेंक सकता है। अपना मनोबल प्रदान करके उसे रोग-भोग की सामर्थ्य भी प्रदान कर सकता है। कालान्तर मे भोगने के लिए भविष्य की ओर भी ले जा सकता है। एक महात्मा परोपकारी जब जाति और देश के लिए कोई अच्छा कर्म करता है तो जनता भी उसके अच्छे कर्म का उपभोग करती है, और यदि परोपकार बुद्धि से उससे कोई अहितकर कार्य हो जाता है तो भविष्य मे उसका दुष्परिणाम सारे राष्ट्र को भोगना पड़ता है। बहुत से ज्ञात-अज्ञात कर्मों के फलों की व्यवस्था भगवान् ही करता है और कुछ ज्ञात कर्मों के फलों की व्यवस्था मनुष्य या योगी भी कर देता है, अत इससे भगवान् के फल प्रदान करने मे हस्तक्षेप नही होता।

ब्रह्मचारी प्रेम का योग निकेतन मे प्रवेश

सन् १९८७-८८ मे ब्रह्मचारी प्रेम परमार्थ निकेतन मे स्वामी सुखदेवानन्दजी के पास रहकर शिक्षा प्राप्त कर रहा था। गगातट पर बैठकर कुछ जाप भी करता था। इसकी अवस्था १७ या १८ वर्ष की थी। कभी-कभी यह सत्सग के लिए महाराजजी के पास भी आया करता था। स्वामी सुखदेवानन्दजी को यह पसन्द नही था, अत वे इससे कहा करते थे कि "तुम इधर-उधर साधुओ के पास सत्सग के लिए मत जाया करो। हम मे क्या कमी है? हम तुम्हे सब कुछ सिखा सकते हैं।" उनके निषेध करने पर भी यह योगी-त्यागी महात्माओ के पास सत्सग के लिए चला जाता था। वास्तव मे यह योग शिक्षा प्राप्त करने के लिए घर से आया था। स्वामी सुखदेवानन्दजी ही इसे इसके घर से लाए थे किन्तु इसकी योग-साधना की पूर्ति स्वामीजी के पास नही हो सकती थी। कुछ बालको की प्रकृति स्वाभाविक ही चचल होती है। वे प्रतिबध और अनावश्यक अनुशासन को सहन नही कर सकते। इसकी इच्छा महाराजजी के पास जाकर योगाभ्यास करने और योग कक्षा मे बैठने की होती थी किन्तु स्वामीजी इसे आज्ञा नही देते थे। अत यह इस बधन से मुक्त होना चाहता था। एक दिन यह दोपहर को महाराजजी के पास आया। उस समय उनके २-३ भक्त दर्शनार्थ आए हुए थे। इसने दो-तीन शकाओ का समाधान पूछा। महाराजजी ने विशद व्याख्या करके सब समझाकर इसका सन्तोष कर दिया। इसके चले जाने के पश्चात् महाराजजी के एक भक्त श्रीकृष्णजी सखा ने कहा, "यह लडका पढा-लिखा और बुद्धिमान् है। आप इसको अपने पास रखकर योग सिखाये।" महाराजजी अन्तर्यामी है। अपने योगबल से सबके मन की बात को जान लेते है। इनसे कोई बात छिपाई नही जा सकती। इन्होने सखाजी के सुझाव का उत्तर देते हुए कहा, "योग सिखाना तो कठिन नही है। मैं इसे सब कुछ सिखा दूगा, किन्तु यह अधिक काल तक टिकेगा नही। योग सीखकर चलता बनेगा। जब यह अपने पालन-पोषण करने वाले माता-पिता

को छोडकर भाग आया और फिर जो भगाकर लाया उसके पास से भी भागने के उपाय कर रहा है तो यह हमारे पास भी कैसे रह सकेगा ? जैसे सैकडो को योग सिखाया है ऐसे इसे भी सिखा देंगे लेकिन इस आशय से नही कि यह हमारे पास रहेगा।" परमार्थ निकेतन मे भजन, कीर्तन, सत्सगादि तो बहुत होता था किन्तु प्रेम का मन वहा से ऊब गया था। वह अरण्य, गिरि-गुहाओ तथा गगा के तट पर निर्जन स्थानो मे जाकर योग-साधना किया करता था। एक दिन इसने महाराजजी से निवेदन किया, "आप मुझे अपने पास अकेले मे दिव्य-ज्योति के दर्शन करवाने की कृपा करे, कुछ ठीक-ठीक मार्ग-दर्शन करदें क्योकि स्वामीजी मुझे आपकी कक्षा में आने से रोकते है। अन्य साधुओ तथा सन्तो के सत्सग में भी नही जाने देते।" महाराजजी ने कहा, "यह काम एक-दो दिन का नही है। जब तक तुम विधिपूर्वक कक्षा मे बैठकर कुछ काल तक निरन्तर अभ्यास नही करोगे तब तक कुछ भी प्राप्ति नही हो सकेगी।"

गगोत्री प्रस्थान—१६ अप्रैल को महाराजजी उत्तरकाशी पधारे। कुछ दिनो के पश्चात् प्रेम भी इन्कमटैक्स कमिश्नर श्री बाबूलालजी के साथ गगोत्री यात्रा का निमित्त बनाकर तथा स्वामीजी की आज्ञा प्राप्त करके उत्तरकाशी पहुच गया। स्वामीजी ने एक मास के लिए इसे गगोत्री यात्रा के लिए आज्ञा दी थी। प्रेम बाबूलालजी के साथ महाराजजी से मिला। यह उत्तरकाशी मे नितान्त एकान्त तथा प्रशान्त योग निकेतन के वातावरण, दृश्य तथा गगा का सुरम्य तट देखकर मुग्ध सा होगया। टिहरी के डी० एम० बाबूलालजी के मित्र थे। ये भी उत्तरकाशी तक इनके साथ आए थे। इनको कीर्तन मे बडी रुचि थी, अत रेस्ट हाऊस मे इसका आयोजन किया गया और दो घण्टे तक कीर्तन होता रहा। दूसरे दिन पुन प्रेम महाराजजी के पास आया और कहा, मुझे बहुत ऋद्धिया और सिद्धिया प्राप्त होगई हैं। महाराजजी ने इनको दिखाने के लिए कहा। उसने निवेदन किया, देखिए न, कमिश्नर और डी० एम० जैसे बडे-बडे अफसर मेरे भक्त बन गए है। यह सुनकर महाराजजी बडे जोर से हसे। बाबूलालजी और यह गगोत्री चले गए और वहा पर डाक बगले मे ठहरे। वहा का योग निकेतन इसे बहुत आकर्षक मालूम हुआ। जब यह गगोत्री से वापिस आया तब महाराजजी के श्रीचरणो मे रहने की इच्छा प्रकट की और कहा, एक बार स्वर्गाश्रम जाकर शीघ्र ही वापिस लौट आऊगा।

ब्रह्मचारी श्रीकंठ का योग निकेतन में प्रवेश

इसी अवसर पर श्रीकठ नामक एक आसाम प्रदेश का ब्रह्मचारी उत्तरकाशी मे श्री महाराजजी के पास आया। इसने भी योग सीखने की जिज्ञासा प्रकट की। महाराजजी ने इसको गगोत्री के योगसाधना-शिविर मे सम्मिलित होने का आदेश दिया। गगोत्री मे १५ जून से १५ सितम्बर तक साधना-शिविर लगाने का आयोजन किया गया था। यह जून के प्रारम्भ में वहा पहुच गया और स्वामी प्रज्ञानाथजी के स्थान पर निवास करके योग निकेतन मे साधना करता रहा। ब्रह्मचारी प्रेम भी जून मास के अन्त तक यहा पहुच गया। श्री महाराजजी के साथ बी० एन० दत्त तथा सेठ हरबसलाल मरवाह भी गगोत्री आ गए थे। इन्होने ने भी कई मास तक अभ्यास किया। ब्रह्मचारी जगन्नाथजी को भी अपने साथ ले आए थे। दत्तजी ने अपनी धर्मपत्नी शीलाजी के साथ और सेठ हरबसलाल ने गत वर्ष भी गगोत्री आकर योग निकेतन

मे रहकर ४ मास तक साधनाभ्यास किया था। प्रेम को गगोत्री का जलवायु अनुकूल नही आया।

महाराजजी सितम्बर के अन्त मे गगोत्री से वापिस उत्तरकाशी पधारे। यहा एक मास विराजकर ये स्वर्गाश्रम पधार गए। १५ नवम्बर से ४ मास का योगसाधना शिविर प्रारभ कर दिया गया। महाराजजी ने प्रेम तथा श्रीकण्ठ को विशेष रूप से अभ्यास करवाना प्रारभ कर दिया। सब प्रकार के आसन और प्राणायाम इन्हे सिखाये गए। युवावस्था होने के कारण इनके शरीर कोमल और लचकीले थे, इसलिए प्रत्येक आसन को बडी आसानी के साथ करने लगे। सभी क्रियाओ और प्राणायामो को भी शीघ्र सीख गए। नारायणदास तथा एक युवक सन्त ने भी इनके साथ ही योग साधना की।

'आत्म-विज्ञान' प्रकाशन कार्य

श्री बाबूलाल दीक्षित, श्री मुरारीलाल श्रोत्रिय तथा वैद्य विद्याभूषण तीनो अच्छे विद्वान् थे और महाराजजी के पास गत दो वर्ष से योगाभ्यास कर रहे थे। इनसे हस्त-लिखित 'आत्म-विज्ञान' मे यत्र-तत्र भाषा का सशोधन करवाया गया था। इनके पश्चात् आनन्दस्वामी सरस्वतीजी तथा अमृतानन्दजी को 'आत्म-विज्ञान' की हस्तलिखित प्रति दिखा दी गई थी। तत्पश्चात् श्री रामकिशोर तथा वी० एन० दत्त को दिल्ली भेज कर उसके प्रकाशन का प्रबन्ध करवाया गया। दो मास मे इस ग्रन्थ के विभिन्न चित्र तैयार हुए। एक चित्रकलाविशारद को ८ रु० प्रतिदिन देकर रखा गया और इसने सब चित्र बनाए। ब्रह्मचारी जगन्नाथजी भी चित्र-निर्माण मे इसकी सहायता करते रहे। १६५६ मे उस ग्रथ का यूनिवर्सिटी प्रेस मे मुद्रण हुआ। 'मिलाप' के प्रधान सपादक श्री रणवीरजी तथा उनके भाई ओमप्रकाशजी ने इस कार्य मे अपना महान योग-दान दिया।

गगोत्री प्रस्थान—'बहिरङ्ग योग' ग्रथ की योजना

स्वर्गाश्रम के साधना-शिविर के समाप्ति-समारोह के पश्चात् पूज्य महाराजजी ने गगोत्री के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे डेढ मास के लिए उत्तरकाशी विराजे। उन्होने सेठ हरवंसलालजी मरवाह को गगोत्री जाने के लिए आदेश दिया जिससे उनके अभ्यास मे कुछ परिवर्तन होने की सभावना देखकर आगे प्रगति का यत्न किया जाए। हरवंसलालजी उत्तरकाशी आगए और यहा से महाराजजी के साथ ४ जून को गगोत्री पहुच गए। ब्रह्मचारी प्रेम और श्रीकण्ठ भी इनके साथ ही आए थे। पूज्य योगिराजजी ने इन तीनो को वात्स्यायन-भाष्य सहित न्यायदर्शन तथा उपस्कार-भाष्य सहित वैशेषिक दर्शन का अध्ययन करवाया। गत वर्ष व्यास-भाष्य सहित योग दर्शन तथा विज्ञानभिक्षु-भाष्य सहित साख्य दर्शन पढाए थे। तीन मास तक अभ्यास भी करवाया गया था। ब्रह्मचारी प्रेम, श्रीकण्ठ तथा सुन्दरानन्दजी को विविध प्राणा-यामो, आसनो और हठयोग की क्रियाओ का विशेष रूप से अभ्यास करवाया गया। इन ब्रह्मचारियो के शरीर नरम, कोमल और लचकदार थे। कई उपायो से इन्हे कोमल और लचकदार बनाया गया था जिससे ये कठिनतम आसन और प्राणायाम कर सके। 'आत्म-विज्ञान' ग्रथ सर्वसाधारण की समझ मे नही आया था, इसलिए

पूज्य महाराजजी ने 'बहिरङ्ग योग' नामक एक अन्य ग्रथ की रचना करने की योजना बनाई। 'आत्म-विज्ञान' मे धारणा, ध्यान तथा समाधि के विषय का ही विशेष रूप मे विवेचन था। इसके लिए एक ऐसे ग्रथ की रचना की आवश्यकता समझी गई जिसमे योग के प्रथम पाच अङ्गों अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का पूरा विवेचन हो। विविध प्रकार के आसनो और प्राणायामो को चित्रो द्वारा इस ग्रथ में समझाने की आवश्यकता थी, अत इन तीनो ब्रह्मचारियो को योग के दोनो अगो की पूर्ण शिक्षा देकर पारगत किया गया जिससे आसन और प्राणायाम करते हुए इनके विविध चित्र लिए जा सकें।

स्वर्गाश्रम गमन

श्री महाराजजी ने अक्तूबर १९६० के प्रथम सप्ताह में गगोत्री से प्रस्थान किया। मार्ग मे ४० दिन तक उत्तरकाशी में विराजे और फिर स्वर्गाश्रम पधारे। ४ मास का साधना-शिविर १५ नवम्बर से प्रारभ कर दिया गया।

योग निकेतन ट्रस्ट

महाराजश्री ने उत्तरकाशी और गगोत्री के योग निकेतनो का एक ट्रस्ट बना दिया था। इस ट्रस्ट के निम्नलिखित सदस्य बनाए गए थे .—

प्रधान—पूज्य महाराजजी

मत्री—श्री बी० एन० दत्त

सदस्य —

१ सेठ हरबसलाल मरवाह
२ सेठ अमीरचन्द
३ सेठ मोहनलाल बागडी
४ सेठ अमृतलाल रमणलाल
५ श्री जगदीशचन्द्र डाबर
६ श्री नारायणदास कपूर
७ स्वामी दयालमुनिजी

श्री स्वामीजी के अतिरिक्त ट्रस्ट के सभी सदस्यो को वार्षिक चन्दा देना होता था।

श्री महाराजजी सन्यास धारण करने का विचार कर रहे थे, इसीलिए उपरोक्त ट्रस्ट बनाना आवश्यक समझा गया था।

दोनो आश्रमो का वार्षिक व्यय लगभग ३००० रु० होता था। ट्रस्टियो के चन्दे से यह व्यय किया जाता था।

अब महाराजजी ने २३ घण्टे प्रतिदिन मौन रखने और केवल एक घण्टा सायं-काल अभ्यासियों से बात करने का निश्चय कर लिया था। ४० दिन तक तो यह व्रत

निर्विघ्न रूप से चलता रहा, किन्तु जब अभ्यासियो ने बहुत आग्रह किया तो इन्हे यह व्रत समाप्त करना पडा। इनमें से बहुत से अभ्यासी लोग बहुत दूर-दूर से आए थे और अपने कारोबार छोडकर श्री महाराजजी की शरण मे आए थे, अत वे इनके उपदेश के बडे इच्छुक थे और एक घटे से उन्हें सन्तोप नही होता था।

भक्त की कारावास से मुक्ति

महाराजजी को दैनिक पत्र 'मिलाप' से विदित हुआ कि कराची मे युद्ध-कालीन विधान चालू हो रहा है और इसके तहत मे जगदीशचन्द्र गिरफ्तार होगए हैं और इन्हे जेल मे भेज दिया गया है। इस समाचार से श्री महाराजजी चिन्तित होगए। जगदीशचन्द्र इनके अनन्य भक्तो मे से थे। दूर देश है, कभी वहा की पुलिस को नही देखा, जज को नही देखा, उन पर मानसिक प्रयोग करें तो कैसे करें! अत महाराजजी ने डावरजी को ही अपने मानसिक प्रयोग का लक्ष्य बनाया। अपने मनोबल द्वारा जेल से बाहिर आकर्पण करने का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। यह दिन के ११ बजे की बात है, लगभग ४ बजे महात्मा प्रभु आश्रितजी तथा आचार्य सत्यभूषणजी का जगदीशचन्द्रजी के गिरफ्तार होने के सम्बन्ध मे तार आया जिसमें महाराजजी से भगवान् से प्रार्थना करने तथा अपने मनोबल के प्रयोग से उन्हें जेल से छुडाने की प्रार्थना की गई थी। योगीराजजी ने उन्हें तार दिया और पत्र द्वारा सूचित किया कि वे कल तक कारावास से मुक्त हो जाएगे। महाराजजी ने इस दिन दोपहर को भोजन नही किया था और कई बार बलपूर्वक मानसिक प्रयोग किया। दूसरे दिन ही आचार्य सत्यभूपण का तार आया जिसमे लिखा था कि जगदीशचन्द्र मुक्त होगए हैं। इनका पत्र महाराजजी के पास गिरफ्तारी के ५ दिन पश्चात् आया जिसमे सब समाचार लिखा था। यह भी सूचित किया था कि अब उन पर मुकद्दमा चलेगा। महाराजजी ने उन्हें उत्तर दिया कि आप किसी प्रकार की चिन्ता न करे। न तो आप दुबारा जेल जाएगे और न आप पर किसी प्रकार का जुर्माना ही किया जाएगा। मुकद्दमा ज़रूर चलेगा किन्तु आप निर्दोप साबित होगे और आपके पक्ष मे मुकद्दमे का फैसला होगा। पत्र मे विस्तारपूर्वक सब समाचार पढते ही महाराजजी ने जब अपने योगबल से प्रयोग करना प्रारम्भ किया तब इनके समक्ष दो आकृतिया उपस्थित हुई—एक सरकारी वकील की तथा दूसरी जज की। इन्होने जगदीशचन्द्र को इनका रग, रूप, कद, आयु तथा आकृति लिखकर भेज दी। वे पत्र पढकर आश्चर्यचकित होगए। इतनी दूर बैठे हुए अपनी दिव्य-दृष्टि से महाराजजी ने इन्हें कैसे देख लिया, इस बात पर वे बडा अचम्भा कर रहे थे। इन्होने योगीराजजी को पत्रोत्तर मे लिखा कि आपने ठीक समझा और देखा है। इनके ध्यान और प्रयोग काल मे आकाशमण्डल मे जो आकृतिया सामने आई थी, वे सब ठीक निकली। जगदीशचन्द्र को आदेश दिया गया कि जिस दिन और समय मुकद्दमा प्रारम्भ हो इसकी सूचना तार द्वारा दी जाय जिससे उसी दिन और समय पर प्रयोग किया जा सके। इस मुकद्दमे के दौरान ३-४ जजो का स्थानान्तर होगया अत महाराजजी को प्रत्येक जज पर प्रयोग करने पडे और इसमे उनकी बडी शक्ति लगी। इस मुकद्दमे के झझट से मुक्त होकर जगदीशचन्द्र महाराजजी के दर्शन करने और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उत्तरकाशी गए।

सेठ जुगलकिशोर बिरला से सम्पर्क

श्री महाराजजी ने 'आत्म-विज्ञान' नामक स्वरचित ग्रथ को सेठ जुगलकिशोरजी विरला के पास प्रसाद रूप मे भेजा था। इसका सेठजी के ऊपर वडा प्रभाव पडा। इन्होने आद्योपान्त इस ग्रथ को पढा और इसकी वहुत प्रशसा की। इनकी श्री महाराजजी से सम्पर्क वढाने की इच्छा उत्पन्न हुई। इन्होने महाराजजी को ३०० रुपये भेजे और इस ग्रथ को साधु-महात्माओ मे वितरित करने के लिए प्रार्थना की जिससे निर्धन सन्त भी इससे लाभ उठा सके। इन्होने भारतवर्ष और आर्य-जाति के भविष्य के वारे मे भी इनसे अनेक प्रश्न पूछे थे और श्री महाराजजी ने इन सव प्रश्नो के समाधान लिखकर भेजे थे।

श्री पडित देवधरजी स्वर्गाश्रम ट्रस्ट के उपमन्त्री थे। ये महाराजजी का वडा सम्मान करते थे। इनके आग्रह पर अपने योगवल के प्रभाव से महाराजजी ने इन्हे स्वर्गाश्रम के दो मुकद्दमो मे विजय दिलवाई।

पत्रो द्वारा सपर्क वढ जाने के कारण महाराजजी ने सेठ विरलाजी को अपनी फोटो भेजने के लिए लिखा जिसके आधार पर आवश्यकता पडने पर ये अपनी शुभ-कामना युक्त मनोवल के द्वारा सहायता कर सके। श्री सेठजी की सन्तो-महात्माओ के प्रति वडी श्रद्धा थी, विशेपकर हिमालय के योगियो के प्रति। इन्होने अपना चित्र भेज दिया और साथ ही महाराजश्री के दर्शन की जिज्ञासा भी प्रकट की। श्री महाराजजी गगोत्री पधारने वाले थे, तव सेठजी स्वर्गाश्रम महाराजजी के दर्शन करने पधारे। सेठजी के पारिवारिक जन उन्हे वडे वावूजी कह कर पुकारते है। इन्होने अपने पधारने की सूचना पडित देवधरजी द्वारा भिजवा दी थी। आप लगभग ४ वजे श्री महाराजजी के निवास-स्थान पर पधारे। लगभग दो घटे तक स्वदेश और आर्यजाति के भावी उत्थान और ईश्वरभक्ति के विपय मे सेठजी ने इनसे प्रश्न किए और शकाए उठाई। महाराजजी ने सवका युक्तियुक्त, तर्कसगत और विद्वत्तापूर्ण समाधान किया। हिन्दू जाति के सेठ विरला वडे पालक और पोपक है। धर्म, समाज, शिक्षा, राजनीति आदि कोई क्षेत्र ऐसा नही है जिसपर आपके दान की वर्षा न होती हो। जव ये योगीराजजी से धर्म के विपय मे वार्तालाप कर रहे थे तव विदित हुआ कि हिन्दू शास्त्रो का अध्ययन आपने किया है, सव सिद्धान्तो से परिचित है। भगवान् के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति है, वडी आस्था और विश्वास है। विदा होते समय सेठजी ने महाराजजी से एक ही प्रार्थना की—"आप सन्त-महात्मा है, हिमालय के योगी हैं। आप नित्यप्रति भगवान् से यह प्रार्थना करे कि इस आर्यजाति का भविष्य उज्ज्वल हो, राम-राज्य की स्थापना हो, महात्मा गाधी के स्वप्न साकार रूप धारण करें, भ्रष्टाचार का समुन्मूलन हो, राज-पुरुप शिष्ट और धर्मात्मा हो, राष्ट्र आचार-वान् हो और आर्य धर्म उन्नति करे, फूले और फले।" महाराजजी ने ३ वर्ष तक नित्य प्रति शुभ-कामना और प्रार्थना करने का वचन दिया।

श्री महाराजजी १८ अप्रैल को उत्तरकाशी पहुच गए। इनके साथ ब्रह्मचारी प्रेम और श्रीकठ भी गए। महाराजजी के परमभक्त सेठ तुलसीरामजी के वड़े पुत्र सेठ गोपालदासजी तथा उनकी पत्नी और दिल्ली से ओमप्रकाशजी तथा उनकी पत्नी शान्ता और छोटा पुत्र नवीन सभी अपनी-अपनी कारो मे उत्तरकाशी पहुचे।

ओमप्रकाश टेपरिकार्डर अपने साथ लाए थे। ये लोग १० दिन तक उत्तरकाशी में रहे। नित्य सत्संग होता रहा। सेठ गोपालदास ने योगनिकेतन में उत्तरकाशी के सभी सन्तों और महात्माओं को भोजन खिलाया और योगनिकेतन में सत्संग-भवन के निर्माण के लिए ६००० रु० महाराजजी की भेंट किया।

सेठ जुगलकिशोर विरला की बीमारी को अपने ऊपर लेना—श्री महाराजजी के पास पंडित देवधर ने पत्र द्वारा सेठ जुगलकिशोर विरला की सख्त बीमारी की सूचना दी, और उन्हें अपने आशीर्वाद से स्वस्थ करने के लिए भी लिखा। इस पत्र को पाकर महाराजजी ने तुरन्त अपना प्रयोग और भगवान् से प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी। सेठजी को लक्ष्य वनाकर प्रयोग किया। इस प्रयोग का प्रभाव महाराज के ऊपर ही उल्टा पड़ गया और इन्हें स्वयं को ही हाई ब्लडप्रेशर होगया। महाराजजी को कभी आज तक यह रोग नहीं हुआ था। सेठजी ४-५ दिन में ही ठीक होगए किन्तु इनपर ८-१० दिन तक इसका प्रभाव रहा। इन्होंने डाक्टर को बुलाकर ब्लडप्रेशर की जांच करवाई और रुधिर की भी। थोड़े दिनों में ये ठीक होगए। महाराजजी ने पं० देवधर को पत्र द्वारा पूछा कि क्या अभी सेठजी को हाई ब्लडप्रेशर है। उन्होंने लिखा कि हां, सेठजी को हाई ब्लडप्रेशर ही था किन्तु अव आपके आशीर्वाद से ठीक होगया है। महाराजजी ने सेठ विरलाजी का हाई ब्लडप्रेशर अपने ऊपर ले लिया था और उन्हें रोगमुक्त कर दिया था।

गंगोत्री-प्रस्थान

भक्तों ने महाराजजी को एक सप्ताह वीमारी के कारण गंगोत्री-प्रस्थान स्थगित करने के लिए निवेदन किया, किन्तु इन्होंने अपने कार्यक्रम में परिवर्तन नहीं किया और प्रस्थान कर दिया। मार्ग में चलते-चलते ही हाई ब्लडप्रेशर जाता रहा। महाराजजी के मनोवल के प्रयोग के उपरान्त सेठजी को कभी हाई ब्लडप्रेशर नहीं हुआ किन्तु इन्हें तीन वार इस प्रयोग के पश्चात् हुआ। सेठ जुगलकिशोरजी ने महा-राजजी को धन्यवादात्मक पत्र लिखा। सेठजी को किसी वड़े सन्त ने विश्वास दिलाया था कि आपके जीवन को चार वर्ष तक कोई खतरा नहीं है, उन्होंने इसकी सत्यता के विषय में भी इनसे पूछा। महाराजजी ने भी इसकी पुष्टि की।

उत्तरकाशी के पं० उषापति भट्ट, डी० एम० उत्तरकाशी, से महाराजजी का विशेष परिचय होगया था। ये एक वार इनके पास आए। लगभग दो घण्टे तक आध्यात्मिक विषयों पर वार्तालाप होता रहा। भट्टजी धार्मिक विचारों के और ईश्वर-भक्त हैं। धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय भी किया है। इनकी योग में विशेष निष्ठा थी।

महात्मा श्री प्रभु आश्रितजी भी यहां एक मास के लिए आए हुए थे। आश्रम में नित्य सत्संग होता रहता था। महात्माजी और व्रह्मचारी प्रेम भी कभी-कभी कथा किया करते थे।

श्री महाराजजी ने २ जून को उत्तरकाशी से गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया। इनके साथ सेठ झव्वालाल, व्रह्मचारी श्रीकण्ठ तथा व्रह्मचारी वसन्तदासजी भी गंगोत्री गए। व्रह्मचारी प्रेम ने उत्तरकाशी से एक मास पश्चात् आने के लिए प्रार्थना की थी। ५ जून को ये सव गंगोत्री पहुंच गए। प्रातः ८ से साढ़े ६ वजे तक आसन,

प्राणायाम अभ्यासार्थियो को सिखाए जाते थे और सायकाल एक घण्टा महाराजजी साधनाभ्यास करवाते थे।

महाराजजी ने 'वहिरङ्ग योग' के लिए कई नूतन आसनो का निर्माण किया था। इनका अभ्यास ब्रह्मचारियो को करवाया करते थे। इनकी विधि और लाभ भी साथ लिखते जाते थे। गगोत्री और उत्तरकाशी मे विराज कर महाराजजी ने इस ग्रथ को लिख डाला। गगोत्री मे महाराजजी व्यास-पूजा को वडी धूमधाम से मनाया करते हैं। इस अवसर पर सव सन्तो और महात्माओ को पक्का भण्डारा दिया जाता था। रुपया, मेवा, मिठाई तथा वस्त्रादि भी इनको वाटा जाता था। इस अवसर पर प्रेम भी उत्तरकाशी से आगया। सव शिष्यो ने महाराजजी की विधि-पूर्वक अर्चना, वदना तथा स्तुति की।

महाराजजी प्रेम तथा श्रीकण्ठ दोनो को दर्शनशास्त्र पढाया करते थे। इन दिनो इनका चित्त सव ओर से कुछ उपराम सा होता जाता था। अभ्यास करवाना, अध्ययन करवाना, उपदेश देना तथा अन्य व्यवहार करना सभी वन्धन के हेतु प्रतीत होते थे। वे यही चाहते थे कि सव व्यवहार छोडकर कही एकान्त स्थान मे जाकर रहू और मौन हो जाऊ। प्रेम आदि ब्रह्मचारियो ने महाराजजी से ब्रह्म-विज्ञान नामक ग्रथ को लिखने के लिए कई वार पूछा तो महाराजजी ने कहा, "अभ्यासियो को चिरकाल तक अभ्यास करवाने के पश्चात् जिस प्रकार 'आत्म-विज्ञान' लिखा गया था उसी प्रकार से ब्रह्म-विज्ञान लिखा जाएगा। महाराजजी प्रेमादिक से कहा करते थे कि आत्म-विज्ञान को जीवन मे घटाना चाहिए और आत्म-ज्ञानियो की तरह से रहना चाहिए। तुम्हारे सपर्क मे आने वाले सभी इस वात को अनुभव करे कि आपको वास्तव मे आत्म-विज्ञान हो चुका है, आपका जीवन और आचरण ठीक रूप से आत्मज्ञानियो के समान है। आत्म-ज्ञानी का जीवन और व्यवहार कपट, दभ तथा छल रहित होता है। भोग और विपयो से उपरति होनी चाहिए। कर्म और व्यवहार मे विशेष आसक्ति न हो। शत्रु और मित्र मे समानभाव रहे। किसी के अपकार करने पर भी प्रतिकार की भावना जागृत न हो। आत्म-ज्ञानी कभी किसी भी प्राणी से राग और द्वेष नही करता। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार का दमन करता है। कभी किसी की निन्दा और चुगली नही करता। उसकी सभी शकाए और जिज्ञासाए शान्त हो जाती हैं। वह सुख और दुःख दोनो को समान समझता है। वह सव प्रकार की ममता को त्याग देता है। जो उसे प्राप्त है उसी मे सन्तुष्ट रहता है। हर्ष, भय, शोक मे साम्य भाव रखता है। उसके चित्त मे क्षोभ का लेश भी नही रहता। वह सदा एकरस रहकर आत्म-चिंतन करता है। उसकी मन और वुद्धि स्थिर रहती है। भगवन्निष्ठ होता है। जो सकट और विपत्ति मे क्षुब्ध नही होता। जिसने अपने स्वरूप की स्थिति को समझा है। जड और चेतन से जिसका अनुराग जाता रहा है। जिसकी आसक्ति इहलोक तथा स्वर्गलोक के भोगो से जाती रही है। इन सब लक्षणो से युक्त आत्मज्ञानी योगी जीवन्मुक्त हो सकता है।

यह उपदेश श्री महाराजजी ने व्यास-पूजा के अवसर पर सन् १९६० मे दिया था। इन दिनो मे ये 'वहिरङ्ग-योग' भी लिख रहे थे और साधको को अभ्यास भी करवाते थे। इस ग्रथ मे ब्रह्मचारी प्रेम, श्रीकण्ठ तथा सुन्दरानन्द के तथा

अपने चित्र देने की व्यवस्था की गई थी, अत: कठिन-कठिन आसनो और प्राणायामो का इन्हे नित्य अभ्यास करवाते थे जिससे ये भली प्रकार सीख जाए और इनके ठीक-ठीक चित्र लिए जा सके।

३० सितम्बर तक यहा निवास करके महाराजजी अपनी सारी मडली के साथ उत्तरकाशी चले गए। यहा पर भी पुस्तक लेखन और ब्रह्मचारियो को आसन और प्राणायाम आदि का अभ्यास भी करवाते रहे। लगभग डेढ मास तक यही कार्य क्रमश: चलता रहा।

स्वर्गाश्रम में साधना शिविर

८ नवम्बर को उत्तरकाशी से प्रस्थान करके स्वर्गाश्रम पहुच गए। वहा पर कानपुर वाली धर्मशाला मे निवास किया। शिवानन्दाश्रम के चित्रकारो से आसनो और प्राणायामो के चित्र उतरवाने का प्रबन्ध किया गया। लगभग एक मास चित्र खिचवाने मे लगा। लगभग ३०० आसनो के और ५० प्राणायामो के चित्र खिचवाए गए। प्रकाश तथा स्टूडियो का ठीक-ठीक प्रबन्ध न होने के कारण चित्रो मे कई दोष रह गए थे।

मार्च सन् १९६० मे 'बहिरंग योग' का प्रकाशन—पहली मार्च सन् १९६० ई० को 'बहिरग योग' ग्रथ के प्रकाशनार्थ दत्तजी को दिल्ली भेजा गया। महाराजजी दो मास तक तो कानपुर वाली धर्मशाला मे विराजे और फिर 'रानी की कोठी' मे निवास करने लगे। यही पर साधको को अभ्यास करवाना भी प्रारभ कर दिया। योग निकेतन ट्रस्ट का कार्य भी उसी कोठी मे होने लगा। इस वर्ष दो देविया अमेरिका से, एक सज्जन फ्रास से, तथा एक डोनेशिया से अभ्यासार्थ आए। ४ मास का साधना शिविर समाप्त होने पर ब्रह्मचारी श्रीकण्ठ बनारस अध्ययनार्थ चले गए, सुन्दरानन्द जयपुर गए और प्रेम ने स्वर्गाश्रम मे कैलाशानन्दजी के पास रहने का निश्चय किया। क्योकि हिमालय का शीतप्रधान प्रदेश उसके अनुकूल नही था, अत इसने हिमालय का वास छोड दिया और कैलाशानन्द के पास स्थायी रूप से रहने लगा और फिर अपनी कुटिया का अलग निर्माण करवा लिया।

गगोत्री गमन—श्री महाराजजी ने २० अप्रैल को स्वर्गाश्रम से प्रस्थान करने का निश्चय किया था किन्तु दैनिक 'मिलाप' के प्रधान सपादक श्री रणवीरजी अपनी कार से उत्तरकाशी पहुचाने के लिए आगए। इनके साथ इनकी पत्नी तथा पुत्री भी थी। धर्म बहन भी इनके साथ थी। श्री महात्मा प्रभु आश्रितजी अपने बहुत से शिष्यो के साथ महाराजजी को विदा करने के लिए आए। एक दिन ऋषिकेश में कालीकमली वाले की धर्मशाला मे ठहरकर प्रात काल प्रस्थान कर दिया। स्वर्गाश्रम से प० देवधरजी शर्मा और हरवशलालजी सेठी भी उन्हे विदा करने के लिए आए थे। प्रात ८ बजे चलकर सायकाल ४ बजे उत्तरकाशी पहुच गए।

रणवीरजी ने उत्तरकाशी मे निवास किया और तत्पश्चात् दिल्ली चले गए। ६० दिन तक उत्तरकाशी मे विराजकर महाराजजी गगोत्री पधारे। वहा ४ मास निवास करके अक्टूबर के प्रारभ मे उत्तरकाशी चले आए और २५ अक्टूबर को स्वर्गाश्रम पधार गए।

साधना शिविर—इस बार साधना शिविर १ नवम्बर से १ मार्च तक लगाना प्रारंभ कर दिया क्योकि १३ अप्रैल सन् १९६२ मे हरिद्वार मे कुभ था। साधको की सुविधा के लिए ऐसा किया गया था जिससे मार्च मे साधना समाप्त करके कुभ के मेले मे वे सम्मिलित हो सके।

इस अवसर पर श्री महाराजजी ने सन्यास धारण करने का पक्का निश्चय कर लिया। साधना शिविर के सचालन और साधको को अभ्यास करवाने के लिए ब्रह्मचारी जगन्नाथजी तथा कैप्टन जगन्नाथजी को नियत कर दिया। महाराजजी यह भी देखना चाहते थे कि इनकी अनुपस्थिति मे साधना शिविर का सचालन किस प्रकार से किया जाता है। 'वहिरग योग' के प्रकाशन की व्यवस्था करने के कारण मौन धारण करने की इच्छा होने पर भी महाराजजी मौनव्रत न कर सके। साधना शिविर १ मार्च को समाप्त होगया। इस अवसर पर ६५ नए साधको ने साधना की। शिविर समाप्ति पर सबको प्रीतिभोज दिया गया। महाराजजी ने इस अवसर पर साधको को अपने उपदेशामृत का पान करवाया। सबको सम्बोधन करके आदेश दिया —

"यह योग का युग है। इसके लिए भारतीय हृदयो मे ही नही अपितु विदेशी लोगो मे भी जिज्ञासा उत्पन्न हो चुकी है। इसीलिए इस वर्ष ८ विदेशी साधक अभ्यासार्थ आए है और इसीलिए आप सब भी योग जिज्ञासा लेकर योग-साधनार्थ आए हैं। यदि अपने-अपने स्थान पर भी आप इसी प्रकार अभ्यास करते रहे, सयम तथा अनुशासनपूर्वक रहे तो महती सफलता मिल सकती है। आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान का साधन मुख्य रूप से योग ही है, अत इसकी सिद्धि के लिए सपूर्ण जीवन की आहुति लगा देनी चाहिए।" इसके पश्चात् कई साधको ने श्री महाराजजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए अभिनन्दन-पत्र पढे। एक साधिका श्रीमती कलावतीजी ने इस विदाई के उपलक्ष्य मे निम्नलिखित बडी सुन्दर कविता पढी —

गुरुदेव से विदाई

हमारी आपसे गुरुवर! विदाई आज होती है।
जो थे अभ्यास के साथी, जुदाई आज होती है॥
कभी यह हर्ष था दिल मे, चलें गुरुदेव चरणो मे।
वे दिन अब होगए पूरे, विदाई आज होती है॥
बनाया शान्त जीवन को, मिला आनन्द हम सबको।
रहे गुरु छत्र छाया मे, विदाई आज होती है॥

इसके पश्चात् सब अभ्यासी भोजन करके विदा होगए।

सन्यास की तैयारी

पूज्य महाराजजी का कोई सन्यास गुरु नही है। इन्हे अब गुरु की आवश्यकता भी नही थी, क्योकि अब इनके लिए अध्ययन करने, सीखने अथवा जानने के लिए कुछ शेष नही रहा था। अब कोई अभिलाषा, कामना, ऐषणा अथवा जिज्ञासा शेष नही रही थी। यदि लोकमर्यादा के पालन के लिए कोई गुरु बनाया भी जाए तो खोजने पर भी ऐसा गुरु नही प्राप्त हो रहा था जिससे ये सन्यास की दीक्षा ले सकते। इसलिए इन्होने विद्वत्-सन्यास लेने का विचार किया। विद्वत्-सन्यास मे किसी

प्रकार के कर्मकाण्ड अथवा विजयाहोमादि की आवश्यकता नही होती किन्तु दान और यज्ञ की भावना से महाराजश्री ने महारुद्र यज्ञ करने का विचार किया। इसी मे विजयाहोम भी आ जाता है। पडित वालकरामजी अग्निहोत्री ऋषिकेश मे उच्च-कोटि के मीमासक प्रसिद्ध हैं, अत इन्ही से महाराजश्री ने यज्ञ के विषय मे विचार-विमर्श किया। इन्होने अपने एक शिष्य रामगोपालजी को इस यज्ञ के आचार्य वनकर सपूर्ण करने का आदेश दिया क्योकि इनकी नेत्र रोग के कारण दृष्टि मन्द होगई थी। महाराजजी ने रामगोपाल आचार्य तथा रामकृष्ण शास्त्री से यज्ञ की सपूर्ण सामग्री लिखवा देने के लिए कहा जिससे उसका प्रवन्ध किया जा सके और चैत्र मास के प्रथम नवरात्र से यज्ञ प्रारभ किया जा सके। यज्ञ का आनुमानिक व्यय छ हजार आका गया था, किन्तु इस यज्ञ पर लगभग आठ हजार रुपया व्यय हुआ था।

महारुद्र यज्ञ का प्रारभ—प्रथम नवरात्र ता० ५-४-६२ को यज्ञशाला वनकर तैयार होगई। प० रामगोपालजी आचार्य ने यज्ञ कराने के लिए सायकाल ४ वजे से सारी तैयारी प्रारभ कर दी। पूजा-पाठ आरभ कर दिया गया और देवता-पूजन भी। मण्डप तैयार होगया, चौक पूरा गया। कुल १६०००० आहुतिया देनी थी इसलिए प्रति-दिन २०००० आहुतिया देने का निश्चय किया गया। ४ घण्टे प्रात तथा ४ घण्टे साय-काल यज्ञ करने का निर्णय किया गया। आठ दिन तक यज्ञ होता रहा और रामनवमी पर पूर्णाहुति रखी गई। १०,११ तथा १२ अप्रैल को मध्यान्ह काल के अन्त मे विजया-होम करने का निश्चय हुआ। नित्यप्रति विख्यात विद्वानो के व्याख्यानो की भी योजना वनाई गई थी किन्तु हवा के आधिक्य के कारण शामयाना ठहर नही सका, अत इस कार्य-क्रम को स्थगित करना पडा। अव प्रतिदिन सायकाल पूज्य महाराज-जी के भापण होते रहे। १२ और १३ तारीख को महात्मा प्रभु आश्रितजी तथा श्री आनन्दस्वामीजी सरस्वती के भापण सायकाल को हुए। महाराजजी के हजारो शिष्य इस अवसर पर पधारे। भोजन की व्यवस्था वडी उत्तम थी। यज्ञ वडी धूमधाम से होता रहा। नित्यप्रति सैकडो दर्शक यज्ञ के दर्शन करने तथा उपदेशामृत का पान करने के लिए आते थे। प्रवन्धको को महाराजजी ने कठोर आदेश दे रखा था कि कोई भी व्यक्ति यहा आकर विना भोजन किए न जाने पावे, अत दर्शको को भी भोजन करवाया जाता था। यज्ञ के समय वेदमन्त्रो की ध्वनि से गगनमण्डल गूज उठता था। नित्यप्रति डेढ मन सामग्री और १० सेर घी से यज्ञ किया जाता था। पूज्य महाराजजी यजमान के आसन से घृत की आहुतिया तथा पडित लोग सामग्री मे आहुतिया दे रहे थे। जव महाराजजी किसी अन्य कार्य मे लगे होते थे तव इनके शिष्य शकरलालजी शर्मा यज्ञ मे इनका प्रतिनिधित्व करते थे। १३ अप्रैल को यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। इस अवसर पर सैकडो स्त्री-पुरुपो ने पूर्णाहुतिया डाली और वडे समारोह के साथ महारुद्र यज्ञ की समाप्ति हुई और ब्राह्मणो को दान-दक्षिणा देकर विदा किया गया।

हर की पौड़ी पर वैशाख संक्रान्ति १३ अप्रैल १९६२ को संन्यास ग्रहण—पूज्य महाराजजी ने वसो, कारो आदि का पूर्ण प्रवध कर लिया था। सैकडो नर-नारी इनमे वैठकर महाराजजी के साथ हरिद्वार गए। ये अपने शिष्यो तथा भक्तो के साथ १० वजे हरिद्वार मे हर की पौडी पर जा पहुचे। घण्टाघर के पास पूज्य महाराजजी

ने हर की पौडी पर पहुच कर स्नान किया, शिखा-सूत्र को उतार कर गगाजी मे प्रवाहित कर दिया और भगवे वस्त्र धारण करके अपना नाम श्रीमुख से स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती घोषित किया। सारी जनता ने हर्ष ध्वनि करते हुए श्री महाराजजी का नाम लेकर उनकी जय-जयकार मनाई। इसके पश्चात् मिष्टान्न वितरण किया गया। इस कार्य मे लगभग एक घण्टा लगा। इसके पश्चात् स्वर्गाश्रम पधारे। यहा पर एक बडा भारी भण्डारा किया गया जिसमे लगभग ६०० स्त्री-पुरुष और साधु सम्मिलित हुए। सायकाल ४ बजे से ७ बजे तक तीन व्याख्यान हुए। महात्मा प्रभु आश्रितजी, श्री आनन्दस्वामी सरस्वतीजी और पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी के बडे सारगर्भित भाषण हुए। पूज्य महाराजजी ने लोगो को अपने सन्यास-ग्रहण का कारण बताया। महाराजजी का प्रवचन दो दिन तक होता रहा।

१४ अप्रैल को महाराजजी ने निम्न उपदेश दिया था। इसका विषय था 'मैंने सन्यास क्यो ग्रहण किया।' श्री महाराजजी ने अपना प्रवचन वेद-मन्त्र से प्रारभ किया और कहा —

"मै बाल्यकाल से ही ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके योग साधन करता रहा हू। जब मै मोहनाश्रम मे पढा करता था उस समय मेरे दो साथी भी वहा पढा करते थे। ये दोनो सन्यासी थे। एक का नाम विज्ञानभिक्षु था और दूसरे का शिवानन्द भारती था। दोनो ही युवक सन्यासी थे। इन्होने विद्या-प्राप्ति के पश्चात् सन्यासाश्रम का परित्याग करके गृहस्थाश्रम मे प्रवेश किया था। मैंने ऐसे बीसियो साधु देखे हैं जिन्होने सन्यास ग्रहण करके कुछ ही वर्षों के पश्चात् गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश कर लिया था, इसलिए मैंने ब्रह्मचर्याश्रम मे ही रहना उपयुक्त समझा, और जब ७५ वर्ष की आयु होने लगी तब सन्यासाश्रम मे प्रवेश किया।

"मेरे प्रथम गुरु स्वामी रामानन्दजी गिरि थे। इनकी विचारधारा आर्यसमाज की विचारधारा से मिलती-जुलती थी। मेरे दूसरे गुरु स्वामी परमानन्दजी अवधूत थे। ये उदासी सन्त थे। और मेरे तीसरे अध्यात्म-गुरु पूज्य आत्मानन्दजी महाराज थे। ये अयोध्या के आस-पास के रहने वाले थे और वैष्णव सन्त थे। बहुत वर्षो से ये तिब्बत मे ही निवास कर रहे थे। इस प्रकार से मेरे तीन अध्यात्म-गुरु थे। मेरे विद्या-गुरु छ थे। जिन गुरुओ से मैंने संस्कृताध्ययन किया उनमे प्रमुख प० हरिश्चन्द्रजी थे। इनसे कई वर्ष तक मैंने दर्शन-शास्त्र और उपनिषदादि महत्वपूर्ण ग्रथो का अध्ययन किया था।

"मैंने सर्वदा सब धर्मो के सार और तत्त्व को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है और सभी का समानरूपेण सम्मान किया है। किसी धर्म या सम्प्रदाय का तिरस्कार अथवा अपमान मैंने कभी नही किया। सभी मतो और सम्प्रदायो के व्यक्ति मेरे शिष्य हैं। मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन, आर्यसमाजी, सनातनधर्मी आदि सभी विचार-धाराओ के व्यक्ति मेरे शिष्य हैं, और सभी समानरूपेण मुझे अपना पूज्य मानते है। कई विदेशी ईसाई भी मेरे पास योग सीखने के लिए आया करते है। मैं अपने सभी शिष्यो को, चाहे वे किसी भी मत या सम्प्रदाय के क्यो न हो, समान दृष्टि से देखता हू और सबको समान रूप से योग-शिक्षा प्रदान करता हू। सभी सम्प्रदायो के लोगो की मुझमे निष्ठा और भक्ति है। मैं यम और नियमो के पालन पर सदैव बडा बल

देता रहा हू । वास्तव मे यम और नियमो को ही सार्वभौम धर्म कहा जा सकता है । इन्हे प्राय सभी सम्प्रदायो के लोग मानते है । इसीलिए मैंने किसी एक सम्प्रदाय के गुरु से सन्यास न लेकर स्वय ही विद्वत्-सन्यास ग्रहण किया है ।

"मैंने वर्ण और आश्रम की मर्यादाओ को सम्मुख रखते हुए सन्यास ग्रहण किया है । यद्यपि आश्रम के मर्यादा-क्रम से मुझे ब्रह्मचर्य से गृहस्थ मे प्रवेश करना चाहिए था किन्तु मेरा विश्वास है कि यदि मै गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करता तो मैं इतना कार्य कभी नही कर सकता था । ४० वर्ष तक योग शिक्षा देता रहा और दो ग्रथ 'आत्म-विज्ञान' और 'वहिरङ्ग योग' लिखे और अब 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रथ लिखने का विचार कर रहा हू । यह सब कार्य नही हो सकते थे । जिस तत्त्व-ज्ञान अर्थात् आत्म-विज्ञान को और ब्रह्म-विज्ञान को मैं प्राप्त कर सका हू उससे भी उस अवस्था मे वचित ही रहना पडता और अनेक जन्म-जन्मान्तर मे आत्म-विज्ञान, प्रकृति-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान की जो अभिलाषा थी वह भी पूरी न हो पाती । लोगो को यह जानकर आश्चर्य होता है कि मै ब्रह्मचर्य काल मे भी, सन्यासी वनने से पूर्व भी, क्रियारूप से सन्यासियो के समान आचरण करता था । लगभग ५० साल से घरवार छोडकर पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके नगरो से दूर जगलो और पर्वतो मे रहकर योग के उस कठिनतम मार्ग पर चलता रहा हू जिस पर वहुत वडे सन्त ही चल सकते है । वहुत से सन्यासी ब्रह्मचर्याश्रम को छोटा मानकर मेरे ज्ञान से लाभ उठाने मे सकोच करते थे, अब सन्यासी होने के नाते से वे भी लाभ उठा सकेगे ।"

इसके पश्चात् श्री आनन्दस्वामीजी ने भाषण दिया । इन्होने कहा—"मै आत्म-विज्ञान मे श्री महाराजजी को अपना गुरु मानता हू । इन्होने ही मुझे योग द्वारा आत्म-ज्ञान प्रदान किया है । आश्रम के लिहाज से मै इनसे वडा हू और १२ साल पूर्व सन्यासी वन चुका हू । हम सवको इन्हें ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज कहकर पुकारना चाहिए । अब आप वद्रीनाथ जाएगे और अज्ञात रूप से मौन व्रत धारण करेंगे । योग निकेतन ट्रस्ट वनाकर आप सव वन्धनो से मुक्त होगए है ।"

पूज्य महाराजजी का शिष्यो और सत्सगियों को उपदेश

कल मेरा द्विज धर्म समाप्त होगया । कल से ही ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यो की भी समाप्ति हो गई । मेरे अब सव कर्त्तव्य समाप्त होगए । अब मैं सन्यास धर्म का पालन करूगा । यज्ञ, दान तथा अध्यापनादि कार्यों के प्रति मेरे उत्तरदायित्व सव समाप्त होगए । अब शेष जीवन आत्म-ज्ञानियो और ब्रह्म-ज्ञानियो के समान वनाने का यत्न करूगा और वैसा ही आचरण भी करूगा । मै ५० वर्ष से अपने भक्तो और शिष्यो को उपदेश दे रहा हू, परन्तु खेद है कि कोई विशेष परिवर्तन इनमे मुझे दृष्टिगोचर नही हो रहा । कई भक्त और शिष्य प्राय कहा करते है, 'महाराजजी, अब आप नीचे के प्रदेशो मे भी भ्रमण करके अपने शिक्षा-प्रद उपदेश देने की कृपा करे । अब आप अपना हिमालय से नीचे के प्रदेशो मे न जाने का प्रण छोड दीजिए ।' इसका उत्तर मै सदा यही देता हू कि जव इतने साल तक उपदेशो का श्रवण करके आपका कल्याण नही हुआ तो अब भी क्या आशा है । अब वहुत उपदेश सुनने की जरूरत नही है, अब तो सुने हुए उपदेशो पर आचरण करने की जरूरत है । आचरण करने वालो के लिए एक ही उपदेश पर्याप्त होता है, और यदि अमल न

करना हो तो फिर हजारो उपदेश निरर्थक है। इन सब बातो से अब मेरा चित्त उपराम होगया है। भगवान् तुम्हारा कल्याण न कर सके, बडे-बडे ऋषि और मुनि तुम्हारा कल्याण न कर सके तो इस योगेश्वरानन्द से भी क्या हो सकेगा! साधक सुनते बहुत है किन्तु करते बहुत कम है। अब तक तो हमारे सारे उपदेश ग्रामोफोन के रिकार्ड ही साबित हुए है। कोई विरला ही वर्णाश्रम धर्म तथा मर्यादा का पालन करने मे समर्थ होता है। जिस घर मे जन्म लिया है लोग प्राय उसी मे मरना पसन्द करते है। वृद्धावस्था मे भी घर मे पडे-पडे पुत्रो तथा पुत्रवधुओ से अपमानित होते रहते है किन्तु वानप्रस्थ अथवा सन्यास ग्रहण नही करते। घर मे मरना आर्यों के लिए एक पाप कर्म माना गया है। यदि आश्रम-मर्यादा का यथार्थ रूप मे पालन किया जाए तो वानप्रस्थियो की वन मे और सन्यासियो की देश-देशान्तरो मे मृत्यु होना परम-धर्म माना गया है। परिवारो मे रहकर राग और मोह का अभाव नही हो सकता। राग, मोह तथा अविद्या का अभाव वनस्थ अथवा सन्यस्त महापुरुष प्राप्त कर सकते है। अत हम इस हिमालय मे रहकर ही योग और समाधि द्वारा जनता का कल्याण कर सकते है। जिनको लाभ उठाना होगा, कल्याण की कामना होगी, आत्म-ज्ञान की सच्ची जिज्ञासा होगी, वे वही आ जाएगे। देश-देशान्तरो मे घूम-फिर कर उपदेश देने की अपेक्षा एक स्थान मे रहकर क्रियात्मक योगसाधन द्वारा आत्म-साक्षात्कार करवाना अधिक श्रेष्ठ कार्य है। साधक का साधना-काल मे चरित्र का निर्माण अत्यन्त अच्छे ढग से हो सकता है। तप, त्याग, ज्ञान तथा वैराग्य की भट्ठी मे तप कर वह स्वर्ण के समान निर्मल होकर चमत्कृत हो जाता है। लोक-व्यवहार करते हुए तप, त्याग, ज्ञान और वैराग्य की भावना पनपने नही पाती, उन्नति की ओर विशेष रूप मे प्रगति नही होती। अनेक विघ्न-बाधाए आकर उपस्थित होती रहती हैं। जिस प्रकार एक दुकानदार या कारखानेदार के लिए उसका व्यवहार विक्षेप का हेतु होता है, उसी प्रकार अभ्यास करवाना, आश्रमो का सचालन करना तथा उपदेशादि देना भी बंधन का हेतु है, अत अब मुझे भी इन सब प्रकार के बधनो से मुक्त होना होगा। जो मैं आपसे करवाना चाहता हू उसे मैं स्वय भी तो करू। मुमुक्षु को सर्व प्रकार के व्यवहार और सपर्क का परित्याग करना चाहिए, सर्व प्रकार की आसक्ति का अत्यन्ताभाव करना चाहिए। मेरे जीवन का तीसरा भाग समाप्त हो रहा है और चतुर्थ भाग प्रारभ हो रहा है, अत मुझे अब हिमालय मे रह कर जीवन-मुक्ति के सुख का उपभोग करना चाहिए। अन्तर्यामी भगवान् आपको सुमति प्रदान करे जिससे आप दृढसकल्प और कटिबद्ध होकर श्रेय-पथ पर चलकर परमानन्द का उपभोग करे!

श्री महाराजजी के निम्नलिखित शिष्य कई वर्षो से नियमपूर्वक शिविर पर अभ्यासार्थ आ रहे है —

१. रायसाहब बिश्वेश्वरनाथदत्त, आचार्य योगनिकेतन
२ कैप्टन जगन्नाथ, आचार्य योग-निकेतन
३ रामकिशोर, आचार्य योगनिकेतन
४ ब्र० श्रीकण्ठ, हठयोग आचार्य योगनिकेतन
५ बाबू प्यारेलाल मित्तल, लखीमपुर
६ बासीलाल मुख्त्यार, सम्बल
७ सेठ हरबसलाल मरवाह, बम्बई

८ शकरलाल शर्मा, दिल्ली
९ वावूलाल दीक्षित, प्रोफेसर, अतरौली
१० मुरारीलाल श्रोत्रिय शास्त्री अतरौली
११ सत्यभूषण वैद्य शास्त्री
१२ आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री, दिल्ली
१३ नारायणदास कपूर, दिल्ली
१४ ओमप्रकाश, मिलाप, दिल्ली
१५ शान्तिस्वरूप एम० ए०, मेरठ
१६ रायसाहब फतेचन्द
१७ महावीरप्रसाद, दिल्ली
१८ प्रीतमचन्द विज, दिल्ली
१९ ब्रह्मचारी सानव, योगनिकेतन
२० किशोरीलाल, स्वर्गाश्रम
२१ विलायतीराम, धूरी मण्डी
२२ ला० सत्यप्रकाश, लुधियाना
२३ भव्वालाल, देहरादून
२४ किशनलाल, दिल्ली
२५ गगासहाय, मेरठ
२६ जुगलकिशोर पेडीवाल, गगानगर
२७ सीताराम महेश्वरी, दिल्ली
२८ श्रीकृष्ण, अमृतसर
२९ वैद्य मङ्गूलाल, सिहारा
३० हरिसिंह, सिहारा
३१ वानप्रस्थी धर्मदेव
३२ राम उदासीन
३३ देवीदयाल दीवान, गीताभवन
३४ ओम्प्रकाश, रोहतक
३५ वानप्रस्थी अमरदेव
३६ माईकल स्मिथ, न्यूजीलैण्ड
३७ स्वामी शङ्करानन्द
३८ राजपालसिंह
३९ स्वामी हरिप्रसाद, अहमदावाद
४० वल्लभभाई पटेल, गुजरात
४१ सत्यकाम वेदवागीश, चित्तौड
४२ सूर्यलाल शर्मा
४३ पूर्णचन्द चौरासिया
४४ ला० कर्मचन्द दिल्ली
४५ चक्खनलाल वेदार्थी
४६ घनश्याम, ऋषिकेश
४७ योगेन्द्रपाल, गुरुदासपुर
४८ स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती
४९ जगदीशचन्द्र डावर
५० पण्डित दुर्गाप्रसाद पाण्डे
५१ ब्र० प्रेमप्रकाश

अभ्यासार्थ आने वाली मुख्य-मुख्य देविया —

१ धर्मवतीदेवी, उत्तरकाशी
२ शीला दत्ता, देहरादून
३ रामप्यारी, लुधियाना
४ कलावती, दिल्ली
५ कौशल्या मित्तल
६ दुर्गादेवी, स्वर्गाश्रम
७ ईश्वरादेवी, वरेली
८ वीरादेवी मरवाह, वम्बई
९ शान्ति गोयल, हापुड
१० ब्रह्मशक्तिदेवी, गुरुकुल नरेला दिल्ली
११ शान्तिदेवी, गुरुकुल नरेला
१२ शान्तादेवी, मिलाप, दिल्ली
१३ रतनदेई, आगरा
१४ लीलावती, दिल्ली
१५ डाक्टर विमलादेवी
१६ डाक्टर विद्यावती, जालन्धर
१७ प्रेमवती वलीराम तनेजा, धनवाद

१८ लज्जावती महता, हरिद्वार
१९ ओंकारेश्वरी, स्वर्गाश्रम
२० कमला आस्वानी, सूरत
२१ मिस साक इजराईल
२२ रामप्यारी, व्यास आश्रम
२३ श्रीमती धर्मचन्द, दिल्ली
२४ शकुन्तला, गुरुदासपुर
२५ यशवती, पठानकोट
२६ उषा पण्डित, कश्मीर
२७ डाक्टर रामप्यारी शास्त्री

श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज का इस समय का चित्र सामने है।

'हिमालय का योगी' ग्रंथ मे
'योग प्रशिक्षण' नामक
चतुर्थ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मनिष्ठ योगीप्रवर श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज
(सन्यास लेने के पश्चात)

उत्तरार्द्ध

पचम अध्याय

ब्रह्म-विद्या का प्रचार

श्री पूज्य ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज ने सन्यास धारण करने के पश्चात् लगभग १५-२० दिन स्वर्गाश्रम मे निवास किया । स्वामीजी महाराज के कई भक्तो की यह इच्छा थी कि वे अब हिमालय से नीचे उतरकर सर्वत्र भ्रमण करें और अपने उपदेशामृत से जनता का कल्याण करे, किन्तु पूज्य महाराजजी को नितान्त एकान्त और प्रशान्त उत्तराखण्ड मे निवास करना अधिक प्रिय था । प्रवृत्ति-परक नगरो मे जाना इन्हे पसन्द नही था । अपने भक्त पडित शकरलालजी शर्मा और सेवक रामनाथ को साथ लेकर मई के प्रथम सप्ताह मे मोटर द्वारा बद्रीनाथ के लिए रवाना होगए । ऋषिकेश से चलकर रुद्रप्रयाग पहुचे । उस पडाव पर यात्रियो की बहुत भीड थी । यहा से एक मार्ग केदारनाथ को जाता था और दूसरा बद्रीनाथ को, इन दोनो तीर्थों पर जाने वाले यात्री यहीं एकत्रित होते थे । अत्यधिक भीड के कारण यहा निवास के लिए स्थान मिलना भी बडा कठिन था । जब पूज्य महाराजजी बाजार मे इधर-उधर टिकने के लिए स्थान ढूढ रहे थे तब उनके पास एक ब्राह्मण आया और निवेदन किया कि "आपके लिए रहने की व्यवस्था हो जाएगी और आपको किसी प्रकार का कष्ट नही होगा । जब तक मै आपके लिए कमरा साफ करता हू तब तक आप जाकर अपना सामान उठवा लाये ।" रात्रि को वहा जाकर विश्राम किया किन्तु खटमलो के कारण निद्रा न आ सकी । दूसरे दिन सायकाल जोशीमठ पहुचे और वहा पर बिरला-भवन मे ठहरे । यहा के प्रबन्धक को सेठ जुगलकिशोर बिरला ने इनके जोशीमठ और बद्रीनाथ मे निवास की व्यवस्था करने के लिए लिख दिया था । पूज्य स्वामीजी महाराज २५ मई तक जोशीमठ ठहरे और इसके पश्चात् बद्रीनाथ के लिए प्रस्थान किया ।

'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थ की रचना और काष्ठ मौन

बद्रीनाथ पहुचकर अलकनन्दा के किनारे 'बिरला हाउस' मे निवास किया । पूज्य महाराजजी ने जून मास की पहली तारीख से काष्ठ मौन व्रत धारण कर लिया । शर्माजी ने भी आकार मौन का व्रत ले लिया । महाराजजी केवल पूर्णिमा और अमावस्या को एक घण्टे के लिए आकार मौन रखते थे । शेष दिनो मे काष्ठ मौन बराबर चलता रहा । यहा रहकर 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थ की रचना करने का महाराजजी का दृढ निश्चय था । कुछ कागज तो जोशीमठ से ही अपने साथ ले आए थे और शेष बद्रीनाथ से खरीद लिया गया । शर्माजी ने आकार मौन के साथ ५ लाख गायत्री मन्त्र के जाप का पुरश्चरण करना प्रारम्भ कर दिया ।

काष्ठ मौन काल के लिए पूज्य स्वामीजी महाराज ने अपने लिए निम्नलिखित समय-विभाग बना लिया था —

प्रात ३ बजे—जागरण

४ से ७ बजे तक—ध्यान

८ से १२ बजे तक—ग्रथ लेखन

यदि ब्रह्म-विज्ञान का कोई विषय कठिन, गहन अथवा सूक्ष्म होता था तो उसे सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा समाधानपूर्वक निर्णय कर लिया करते थे।

सन्यास धारण करने से पूर्व पूज्य गुरुदेवजी का विचार ब्रह्म-विज्ञान को किसी दूसरे ही रूप मे लिखने का था। उस समस्त विज्ञान को सक्षिप्त रूप से लिख भी लिया था, किन्तु उसे किसी ने चुरा लिया और उसने यह प्रसिद्धि कर दी कि उसने ब्रह्म-विज्ञान ग्रथ की रचना की है और वह उसे शीघ्र ही प्रकाशित करवाएगा। इसलिए पूज्य महाराजजी ने उस क्रम को छोडकर दूसरे ही रूप मे इस विज्ञान को लिखना प्रारभ कर दिया। यह ब्रह्म-विज्ञान इनकी स्वानुभूति थी, इसलिए ये अपनी इच्छानुरूप जिस ढग तथा क्रम से चाहते, लिखने मे समर्थ थे। अत ३३ पदार्थों मे प्रत्येक पदार्थ की पाच अवस्थाओ को और उनके १५७ भेदो मे ब्रह्म के स्वरूप और व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध को दर्शाते हुए ब्रह्म साक्षात्कार का वर्णन महाराजजी ने किया है। इनमे से अन्तिम कुछ पदार्थों के केवल ३ या ४ ही भेद बनते हैं, इसलिए कुल मिलाकर १५७ भेद ही बनते है। ब्रह्म-विज्ञान मे प्रकृति की परिणत होती हुई ३२ अवस्थाओ का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। इस प्रकार का विज्ञान-क्रम, जहा तक हमारे पढने और सुनने मे आया है, वृहद् प्रकृति का किसी भी देश के साहित्य मे किसी महापुरुष ने नही किया है। इस युग मे यह श्रेय भारत के महान योगी पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज को ही प्राप्त हुआ है। ब्रह्म की निर्गुण सिद्धि ब्रह्म-विज्ञान की बडी विशेषता है। आधुनिक विद्वानो मे इससे बडी हलचल पैदा होगई है। प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानो ने निर्गुण ब्रह्म को सगुण मान कर उसमे अनेक गुणो का वर्णन किया है। इनको महाराजजी ने ब्रह्म मे आरोपित माना है। ये सब गुण वास्तव मे प्रकृति मे ब्रह्म के सन्निधान से उत्पन्न होते हैं और उनका आरोप ब्रह्म मे किया गया है। श्री महाराजजी ने भी अपने ब्रह्म-विज्ञान ग्रंथ मे कही-कही गुणो का कथन किया है परन्तु वे आरोपित गुण ही माने जाने चाहिए, ब्रह्म मे उत्पन्न होने वाले अथवा उसके नित्य गुण नही।

हम श्री महाराजजी की दिनचर्या का वर्णन कर रहे थे। ये लगभग १२ बजे कुछ थोडा भोजन करते थे। सेवक चुपचाप उनके पास आकर रख जाता था। काष्ठ मौन व्रत लेने से पूर्व ही पूज्य योगीराजजी ने अपने भोजनादि के विषय मे श्री शर्मा जी तथा सेवक गणनाथ को समझा दिया था। इसलिए सब व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रही। ये प्रात ८ बजे और रात्रि के ९ बजे दूध लेते थे। दो बजे तक विश्राम करके फिर अपनी लेखनी उठाकर लिखने बैठ जाया करते थे और सायकाल ६ बजे तक लिखते रहते थे। इन आठ घटो मे केवल छ घटे तक ही लिखते होगे क्योकि जब कोई कठिन या गहन विषय आ जाता था तो उसे समाधिस्थ होकर साक्षात् करते

थे और निश्चयात्मक ज्ञान हो जाने पर उसे लिखते थे जिससे किसी प्रकार का कोई सशय न रहने पाए।

सायकाल ६-७ बजे तक भ्रमणार्थ जाते थे। जब बाहिर जाते थे तो मुख को कपडे से ढककर नीचे दृष्टि रखते थे जिससे किसी को देख न सकें। काष्ठ मौन केवल वाणी का ही मौन न था अपितु मन का भी था। मार्ग मे जाते समय यदि किसी पर दृष्टि पड गई तो मन कही उसके विषय मे सकल्प-विकल्प न करने लग जाए इसीलिए मुह ढापकर चलने की विधि पूज्य स्वामीजी महाराज ने निकाली थी। अलखनन्दा के पार माणा गाव की ओर और कचनगगा की ओर लगभग दो-दो मील के लम्बे मैदान है। इन्ही मे भ्रमण करके लौट आते थे। ७ बजे से ६ बजे तक अभ्यास मे बैठकर ब्रह्म-विज्ञान के पदार्थों के विषय मे ध्यान, समाधि द्वारा विशेष अनुभव प्राप्त किया करते थे। उसके पश्चात् दूध पीकर १० बजे सो जाया करते थे। इन दिनो प्राय ब्रह्म-विज्ञान के विषयो का मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार करने मे ही सारा समय व्यतीत होता था। शकरलाल शर्माजी को दलिया बहुत अच्छा लगता था, अत व्रत के ६-७ दिन बाद से ही उन्होने रात्रि को दलिया खाना प्रारभ कर दिया और पूज्य महाराजजी को भी देना प्रारभ कर दिया। दलिए मे दूध आधा सेर से भी कम डालते थे। तीन मनुष्यो के लिए दलिए मे आधा सेर दूध कुछ कम सा ही था। सेवक गणनाथ युवक था और शर्माजी भी श्री महाराजजी से आयु मे २० वर्ष छोटे थे। आकार-प्रकार अच्छा था, शरीर पुष्ट था और शक्ति और बल मे भी कुछ कम न थे। नित्यप्रति सूखा मेवा भी अपनी इच्छानुरूप खाते थे और भ्रमण भी खूब करते थे, किन्तु यह दलिया महाराजजी के अनुकूल सिद्ध नही हुआ। एक सप्ताह मे ही इनके दोनो घुटनो मे दर्द प्रारभ होगया। चलने-फिरने तथा उठने-बैठने में भी इन्हे कष्ट मालूम होने लगा। हिमालय प्रदेश मे जहा चारो ओर हिमाच्छादित पर्वतमालाए हो वहा पर दूध मे मात्रा से अधिक पानी मिलाकर बनाया हुआ दलिया अनुकूल नही आ सकता था क्योकि उसकी तासीर ठण्डी हो जाती है। शकरलाल शर्माजी और सेवक दोनो को ही देश, काल और प्रकृति का ज्ञान नही था। उनका उद्देश्य स्वाद लेना और उदरपूर्ति करना मात्र ही था। स्वामीजी महाराज के घुटनो मे दर्द होते १६ दिन होगए। औषध सेवन भी कर रहे थे, किन्तु आराम नही आया। एक दिन भ्रमण से लौटने के पश्चात् स्वय ही रसोई का ताला खोला। इसमे केवल एक पाव ही दूध रखा था। उन्होने उसे स्वय आग जलाकर गरम किया और इसके साथ औषध-सेवन की। सुबह और रात्रि के लिए दूध प्रात काल ही ले लिया जाता था क्योकि रात्रि को दूध वाला दूध नही देता था। महाराजजी के दूध पीने से शर्माजी और सेवक दोनो समझ गए कि महाराजजी को दलिया पसन्द नही है, अत इन्होने पूज्य योगीराजजी को दलिया देना बन्द कर दिया और दूध देना प्रारभ कर दिया। स्वामीजी महाराज ने आयुर्वेद का भी अध्ययन किया हुआ था, अत देश और काल के अनुसार जो भोजन हितकर होता था उसे ही वे खाते थे। यथासभव अपना उपचार भी स्वयमेव ही कर लेते थे। जहा पधारते औषधियो को अपने साथ ले जाते थे और आवश्यकतानुसार इस्तेमाल किया करते थे। घुटनो की पीडा से महाराजजी लगभग डेढ मास तक पीडित रहे किन्तु नियमपूर्वक अपना सब कार्य यथाविधि करते रहे। 'बिरला हाऊस'

नितान्त एकान्त और शान्त था। यात्री इसमे बहुत कम आते थे। पूज्य गुरुदेवजी ने सम्पूर्ण ब्रह्म-विज्ञान तीन मास मे लिखा और एक मास इसका पुनरावलोकन तथा सशोधन मे लगाया। इन्होने बडे नियम और सयम से ४ मास का व्रत समाप्त किया। व्रत की समाप्ति दो अक्तूबर को पूर्णिमा के दिन की गई थी। व्रत समाप्ति पर बद्रीनाथ के सब सन्तो तथा साधुओ को भोजन करवाया और सबको पाच-पाच रुपये दक्षिणा मे दिए। इसके अतिरिक्त १०० रु० कालीकमली वाले क्षेत्र को दिये, ५० रु० ब्रद्रीनाथ के मदिर मे चढाए और २५ रु० पजाबी क्षेत्र को प्रदान किए। इसके पश्चात् महाराजजी ४-५ दिन बद्रीनाथ मे ठहरे और इतस्तत घूम-फिर कर ऐतिहाहिक दृष्टि से जो स्थान प्रसिद्ध थे उन्हे देखते रहे। इनके पुराने भक्त और सेवक यहा भी इनके दर्शनार्थ आते रहे। लगभग आठ अक्तूबर को श्री बद्रीनाथ से प्रस्थान किया और जोशीमठ मे पधार कर बिरला-भवन मे विराजे। यहा २-३ दिन विराजकर केदारनाथ की यात्रा करने का विचार कर लिया, किन्तु यहा पर २-३ परिचित व्यक्तियो से, जो अभी-अभी केदारनाथ की यात्रा करके आए थे, पता चला कि वहा पर अत्यधिक हिम-पात हुआ है, सारे पर्वत हिम से आच्छादित हो रहे है, शीत अत्यधिक बढ गया है, अत आप वहा न पधारे, इसलिए वहा की यात्रा का विचार स्थागित कर दिया गया और बस द्वारा उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान कर दिया। उत्तरकाशी के योगनिकेतन मे एक सप्ताह निवास करने के पश्चात् स्वर्गाश्रम के योगनिकेतन मे चले गए।

श्री महाराज के अद्भुत मनोबल के प्रभाव से आक्रामको का पीछे हटना

इन दिनो भारत और चीन का लद्दाख मे बडा सघर्ष चल रहा था। भारत और चीन की सीमा पर इधर-उधर दोनो पक्षो के सैनिक युद्ध करते थे किन्तु युद्ध करने का आदेश नही दिया गया था। २० अक्तूबर को चीन ने भारत के साथ युद्ध की घोषणा की। तिब्बत से स्पर्श करती हुई भारत की १५०० मील लम्बी सीमा पर सब ओर से युद्ध के बादल मण्डलाने लगे। उधर आसाम की सीमा पर मेकमोहन लाईन नेफा मे भी युद्ध प्रारम्भ होगया। चीन और भारत का मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। यह मित्रता अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही थी। भारत से ही बौद्ध धर्म चीन मे फैला था। चीन और भारत का धार्मिक सम्बन्ध बहुत पुराना है। ऐसा भी एक समय था जब चीन भारत को एक तीर्थ-स्थान समझता था और इत्सिग, फाह्यान, ह्यूनचाग आदि अनेक चीनी विद्वान् बौद्ध धर्म के साहित्य का अध्ययन करने और गौतम बुद्ध का जिन स्थानो से विशेष सम्पर्क था उनके दर्शन करने को भारत मे आते थे। कई चीनी विद्वानो ने यहा आकर देववाणी सस्कृत का अध्ययन किया और सस्कृत के बौद्ध ग्रन्थो की प्रतिलिपिया बनाकर लेगए। अभी कल की बात है, हम लोग 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के नारे लगाते थे। चीन और भारत का धार्मिक और सास्कृतिक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस बात की कभी कल्पना भी नही हो सकती थी कि इन दोनो देशो मे कभी युद्ध छिड जाएगा। चीन प्रकट रूप मे तो मैत्री दर्शाता रहा किन्तु छिपे-छिपे वह वर्षों से भारत के साथ युद्ध करने की तैयारी कर रहा था, किन्तु भारत को कभी ऐसी आशका नही हुई। उधर तिब्बत मे तीन वर्ष से गडबड चल रही थी। चीन तिब्बत के दलाई लामा को कैद करके सर्वप्रकारेण तिब्बत पर अपना अधिकार जमाना चाहता था। अत दलाई लामा बन्दी होने के भय से अथवा मृत्यु के भय से

अपनी राजधानी लासा को छोडकर चुपके से आसाम मे आगया। इसलिए भी चीन भारत के प्रति क्षुब्ध होगया था। कश्मीर तथा आसाम की सीमाओ पर चीन और भारत मे भयकर युद्ध चल रहा था। चीन बराबर आगे बढता जा रहा था। भारत को सर्वत्र निराशा दृष्टिगोचर हो रही थी।

चीन को आगे बढता हुआ देखकर पूज्य स्वामीजी महाराज को बडी चिन्ता हुई। उन्होने दैनिक 'मिलाप' के प्रधान सम्पादक श्री रणवीरजी के द्वारा ५०० रुपये सहायतार्थ भारत के प्रधानमन्त्री पडित जवाहरलाल नेहरूजी के पास भेजे और रणवीरजी को चीन के राष्ट्रपति माओत्सेतोग, प्रधानमन्त्री चाऊएन-लाई तथा रूस के प्रधानमन्त्री श्री ख्रुश्चेव के फोटो शीघ्र भेजने के लिए लिखा क्योकि इन फोटो के आधार पर ये अपने योगबल से इन लोगो के मनो मे परिवर्तन लाना चाहते थे। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि इस कार्य मे इन्हे पूर्ण सफलता लाभ होगी।

श्री रणवीरजी ने दिल्ली मे तीनो के फोटो शीघ्र ही भेज दिए और प्रधान-मन्त्री प० जवाहरलालजी को ५०० रुपये भेट करते हुए कहा, "यह ५०० रुपये मेरे गुरुदेव पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्दजी महाराज ने युद्ध मे लडने वाले सैनिको की सहायतार्थ भेजे है और मुझे उस पत्र मे लिखा है कि मै उनकी ओर से आपको विश्वास दिलाऊ कि घबराने की कोई बात नही है, विजय अन्त मे भारत की ही होगी। पूज्य महाराजजी अपने मनोबल से शत्रुओ के भावो को बदलकर पीछे हटा देंगे। मैने कई बार उनके योगबल को देखा है।" इनकी बातो को सुनकर पडितजी बडे आश्चर्यान्वित हुए और कहा, "क्या यह सम्भव हो सकता है ? क्या आज भी ऐसे योगी भारतवर्ष मे विद्यमान है ?" रणवीरजी ने कहा, "मुझे तो पूज्य योगीराजजी की बातो पर पूर्ण विश्वास है। ये जो चाहे कर सकते है। असाध्य रोगो से पीडित तथा मृत्यु शय्या पर पडे हुए रोगियो को इन्होने अपने योगबल से स्वस्थ किया है। इनमे से कई तो यहा दिल्ली मे ही निवास कर रहे है। आप कुछ दिनो मे ही प्रत्यक्ष देखेगे कि चीन स्वय पीछे हट जाएगा।"

उपरोक्त तीनो फोटो के आधार पर तीनो व्यक्तियो पर अपने मनोबल का प्रयोग करने का पूज्य गुरुदेव ने बडा प्रयत्न किया। इन्होने अन्न खाना छोड दिया। केवल फल और दूध पर ही अपना निर्वाह करने लग गए। साथ ही मौन व्रत भी धारण कर लिया। साधना शिविर मे अभ्यासार्थ जो साधक आए हुए थे उन्हे अभ्यास करवाना भी बन्द कर दिया। यह कार्य कैप्टन जगन्नाथ और दत्तजी को सौप दिया। अपने भक्त और सेवक श्री शकरलालजी शर्मा को अपना पूजा-पाठ, ध्यानाभ्यास छोडकर इस सकट काल मे भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जो कुछ सभव हो उसे करने का आदेश दिया और कहा कि यह ऐसा समय है जब प्रत्येक भारतीय को तन, मन और धन से देश की सेवा मे जुट जाना चाहिए। भारत के स्वातन्त्र्य-सग्राम मे शर्माजी इससे पूर्व भी कार्य कर चुके थे और कई बार जेल मे भी जा चुके थे। भारत के बडे ऊचे दर्जे के क्रान्तिकारियो के साथ इन्होने काम किया था। पूज्य गुरुदेवजी से आदेश पाकर प्रथम तो शर्माजी दिल्ली गए किन्तु वहा पर किसी ठोस कार्य की योजना ये नही बना सके। अत पजाब मे चले गए और पजाब के मुख्यमत्री सरदार

प्रतापसिंह कैरो से, जो इनके पुराने मित्रो मे से थे, कहा, "मुझे मेरे गुरुदेवजी ने आपके पास, भारत के वर्तमान सकट के निवारणार्थ आपने जो योजना वनाई हे उसमे मेरे योग्य कोई काम हो तो उसे करने के लिए भेजा है। आप मुझे जो सेवा प्रदान करेगे उसे मैं अवैतनिक रूप से परिश्रमपूर्वक करूगा। मुख्यमत्री ने शर्माजी को होम गार्ड का डी० आई० जी० वना दिया और इन्होने रात-दिन महान परिश्रम करके इसका सगठन किया और हज़ारो नवयुवको को सैनिक प्रशिक्षण दिलवाया।

श्री महाराजजी ने इन तीनो चित्रो को सामने रखकर माओत्सेतोग, चाऊ-एनलाई और ख्रुश्चेव तीनो को लक्ष्य वनाकर इनके मनो को परिवर्तन करने का अभ्यास किया। जव पूज्य योगीराजजी को किसी का दमन करना होता है अथवा किसी के मन को वदलना या भ्रान्तियुक्त करना होता है तव इन्हे आवेश मे या क्रोध मे आना पडता है और दमन करने के लिए प्रताडना भी करनी पडती है। हम नित्य प्रति के व्यवहार मे देखते है कि लोग अपराधी व्यक्ति पर क्रोध करते है, कठोर वचनो का प्रयोग करते है और विविध प्रकार से धमकाते, डाटते और फटकारते हैं। उसी प्रकार से पूज्य योगीराजजी को भी दूसरे के मन को दमन करने के लिए क्रोध की भावना लानी पडती है। इससे मस्तिष्क पर वडा जोर पडता है। जव तक वह व्यक्ति इनके प्रभाव मे नही आता, इनके अनुकूल उसका मन नही होता, इनकी आज्ञा पालन करने नही लगता, तव तक इन्हे वेचैनी-सी लगी रहती हे। रात-दिन उसके दमन की चिन्ता लगी रहती हैं। उसके मन मे परिवर्तन लाने के लिए वार-वार प्रयत्न करते रहते हैं। जिन दिनो इस प्रकार का प्रयोग करते है उन दिनो अपने खान-पानादि की भी सुध नही रहती। योगवल का प्रयोग करने का जव दृढ निश्चय हो जाता है तव वे, जव तक उस कार्य मे सिद्धि लाभ नही हो जाती, ये उसीके तद्रूप हो जाते हैं। दिन हो अथवा रात, कई-कई वार समाहित होकर अपने मनोवल से दूसरे के मन को परिवर्तित करते रहते है। पूज्य महाराजजी को जितनी चिन्ता भारत पर चीन के आक्रमण की हुई थी ऐसी चिन्ता जीवन मे कभी नहीं हुई थी। इनका स्वदेश के प्रति वडा अनुराग है। देश के सकट का निवारण करना अपना कर्त्तव्य समझते हे। आर्य सभ्यता और सस्कृति मे इनकी वडी निष्ठा है। विधर्मियो द्वारा इसे नष्ट होना ये देख नही सकते थे। युद्ध के परिणामस्वरूप महान नर-सहार से देश की रक्षा करना चाहते थे। हजारो युवतियो को वैधव्य दु ख से वचाना चाहते थे। वालको तथा वालिकाओ को अनाथ वनकर दर-दर का भिखारी ये देखना नही चाहते थे। देश, धर्म, समाज, सभ्यता और सस्कृति के विधर्मियो द्वारा नष्ट होने की कल्पनामात्र से इनका दिल दहल रहा था। इसलिए ये रात-दिन चीन के आक्रमण को रोकने के लिए अहर्निश प्रयत्नशील थे। तिव्वत के लामा साधुओ और वहा की जनता पर चीनियो ने जिस नृशसता के साथ अत्याचार किए थे इसकी करुण-कहानी थोलिङ्ग-मठ से भागकर आए हुए एक लामा ने हरसिल मे नेत्रो से अश्रु प्रवाहित करते हुए सुनाई थी। यह स्थान गगोत्री से १४ मील नीचे है। यहा पर वहुत से शरणार्थी तिव्वत से भागकर आए थे। इन्होने चीनियो के महान अत्याचारो की दु ख-गाथा सुनाई थी। इन पाशविक अत्याचारो को सुनकर चीनियो के प्रति महान घृणा उत्पन्न होती थी।

श्री महाराजजी नीचे आसन पर अथवा कुर्सी पर बैठकर समाहित होकर दिन मे कई-कई बार चीन के शासको का मन परिवर्तन करने के लिए अपने योगबल का प्रयोग करते थे। युद्ध का समाचार, समाचारपत्रो से विदित होता रहता था। भारत की सेनाओ ने लद्दाख मे आक्रमणकारियो का डटकर सामना किया। चुशोल के हवाई जहाज के अड्डे की रक्षा के लिए घमासान युद्ध करके शत्रु-सेना को पीछे धकेल दिया परन्तु नेफा के युद्ध मे भारतीय सेनाओ को बहुत पीछे हटना पडा और चीन के सैनिको ने भारत के नेफा क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया। आसाम मे पैट्रोल के स्रोत से चीनी सेना केवल ८० मील ही दूर रह गई थी। अमेरिका और इङ्गलैंड ने इस युद्ध मे भारत की सहायता की। इसी बीच रूस ने चीन को पैट्रोल देना बन्द कर दिया। २२ नवम्बर को चीन ने युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी। जब महाराजजी ने इस घोषणा का समाचार सुना, तब इन्होने अपना मानसिक प्रयोग करना बन्द किया। एक मास तक महाराजजी ने मानसिक प्रयोग किया। मौन रखा और अन्न नही खाया। जब युद्ध-विराम होगया तब इन्होने मौन व्रत समाप्त किया और अन्न खाना प्रारम्भ किया। इन्होने चीन के शासको के मनो को बदलने, रूस का मन चीन से फेरने और आक्रमणो के रोकने के लिए अपने योग तथा मनोबल के प्रयोग मे जितना परिश्रम किया उतना अपने जीवन मे कभी नही किया था। इससे इनके मस्तिष्क पर बडा जोर पडा और ये कमजोरी सी अनुभव करने लग गए थे।

मनोबल से मध्यस्थ तथा कर्मचारियो को अनुकूल बनाना

एक दिन ओमप्रकाशजी तथा श्रीमती शान्तादेवी पूज्य महाराजजी से मिलने आए। वे उन दिनो बडे सकट मे थे। इनके प्रेस के सब कर्मचारियो ने हडताल कर दी थी। उनकी मागें इतनी अधिक और भारी थीं कि सारे प्रेस को बेचकर भी पूरी नही की जा सकती थी। यदि इस प्रकार से प्रेस बन्द करना पडता तो उनका निर्वाह होना कठिन हो जाता। गवर्नमेण्ट ने जो इस झगडे को निपटाने के लिए मध्यस्थ नियत किया था, वह भी कर्मचारियो का ही पक्ष ले रहा था। कर्मचारी बडे आवेश मे आ रहे थे और ओमप्रकाशजी की हत्या करने की धमकी दे रहे थे। ओमप्रकाशजी तथा उनकी पत्नी शान्ता ने सारी व्यथा महाराजजी से निवेदन की। इनकी उनके ऊपर बडी कृपा थी। इन्होने उन्हे हडताल के नेताओ और मध्यस्थ की फोटो दिल्ली से भेजने का आदेश देकर उन्हें वापिस भेज दिया। साथ ही मुकद्दमे की तारीख और समय से भी उससे दो दिन पूर्व सूचित करने की आज्ञा दी। ओमप्रकाशजी को विश्वास दिलाया कि मुकद्दमा तुम्हारे अनुकूल होगा। हडताल के नेताओ और मध्यस्थ को तुम्हारे अनुकूल बना दिया जाएगा। ओमप्रकाशजी ने दिल्ली जाकर हडताल का नेतृत्व करने वाले २-३ कर्मचारियो और मध्यस्थ के फोटो भेज दिए और मुकद्दमे की तारीख और समय से भी सूचित कर दिया। श्री महाराजजी ने अपनी दिव्य दृष्टि से उस स्थान और दिशा को देख लिया जहा पर मुकद्दमा चल रहा था और अपने मनोबल के प्रयोग से मध्यस्थ और कर्मचारियो के मनो को प्रभावित करने का प्रयत्न किया। मध्यस्थ ने दोनो दलो को परस्पर समझौता करने की सलाह दी। वास्तव मे इसी मे दोनो पक्षो की भलाई थी। इसके लिए तारीख निश्चित कर दी। किन्तु इन दोनो मे कोई समझौता न हो सका। कर्मचारी बडे उत्तेजित होगए। दूसरी तारीख

पर दोनो पक्षो मे खूब गर्मागर्म बहस हुई, वहुत तनातनी रही और ओमप्रकाशजी का पक्ष कुछ कमजोर पड गया। ये बहुत घबराए और सारा मामला पत्र द्वारा महाराजजी से निवेदन किया। महाराजजी ने पूरा आश्वासन दिया और दो-तीन पेशियो के पश्चात् मध्यस्थ ने अपना निर्णय ओमप्रकाशजी के पक्ष मे दिया। ओमप्रकाशजी इस झगडे मे कर्मचारियो को जो कुछ स्वय प्रसन्नतापूर्वक देना चाहते थे, मध्यस्थ ने उससे भी कम देने का निर्णय दिया था। ओमप्रकाशजी तथा शान्तादेवीजी महाराजजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए स्वर्गाश्रम आए।

योगबल से सेठ जुगलकिशोर बिरला की पीठ-पीड़ा अपहरण

दिसम्बर मास मे सेठ जुगलकिशोरजी की पीठ मे अत्यधिक दर्द होने लगा। उनका उठना, बैठना, चलना-फिरना तथा करवट वदलना तक कठिन होगया। इन्होने इस वार पूज्य महाराजजी को कष्ट देना उचित नही समझा क्योकि पहिले जव इनके हाई ब्लडप्रेशर के रोग को महाराजजी ने अपने मनोवल से मिटा दिया था तव इनके अपने ऊपर भी कई दिन तक इसका असर रहा था और तकलीफ उठानी पडी थी, यद्यपि सेठजी के ऊपर उसके वाद से कभी भी इस रोग ने आक्रमण नही किया। इस वार सेठजी ने अपने कर्म-फल-भोग को स्वय ही भोगने का निश्चय किया और महाराजजी को किसी प्रकार का कष्ट देना नही चाहा, किन्तु पण्डित देवधर शर्मा ने सेठजी के पीठ-दर्द का सव समाचार योगीराजजी को लिख दिया और मानसिक प्रयोग करने के लिए निवेदन किया। महाराजजी ने अपनी दिव्य दृष्टि सेठजी के ऊपर फेंकी और अपने मनोवल से पीठ का दर्द मिटा दिया। ३-४ दिन मे पीठ-पीडा को ७० प्रतिशत आराम आगया और एक सप्ताह मे इनकी पीठ मे विलकुल दर्द न रहा, किन्तु स्वामीजी को स्वय पीठ मे दर्द होने लगा। जनवरी सन् १९६२ मे उपवासादि करने तथा पीठ मे दर्द हो जाने के कारण इस वार अभ्यासियो को महाराजजी अभ्यास नही करवा सके। इस कार्य को श्रीदत्तजी तथा कैप्टन जगन्नाथजी ने किया।

पूज्य महाराजजी पर मस्तिष्क रोग का प्रकोप

२२ जनवरी १९६३ को पूज्य गुरुदेव अपने शिष्यो के साथ भ्रमण करके सायकाल ६ वजे नीचे कोठी के सामने चबूतरे पर कुछ काल बैठकर ऊपर चले गए। ५-७ मिनिट के बाद फिर नीचे उतर आए। उस समय धर्मदेवीजी भी नीचे चबूतरे पर बैठी थी और सब अभ्यासी साधना भवन मे अभ्यास कर रहे थे। महाराजजी ने धर्म बहन से कहा, "मेरी तवीयत कुछ खराव होगई है, क्या रोग है इसका कुछ पता नही चल रहा है। ऐसा मालूम हो रहा है जैसे मेरी स्मृति जाती रही है, मन मे भी कुछ परेशानी और बेचैनी सी हो रही है।" श्रीमती धर्मवतीजी इन्हे ऊपर ले गईं, पलग विछाकर लिटा दिया और दत्तजी को सूचना देने के लिए नीचे चली गईं। दत्तजी ने शीघ्र ही स्वर्गाश्रम के वैद्य को बुलाया। उसने महाराजजी को देख कर यह निर्णय दिया कि मेदे मे गैस ने उत्पन्न होकर मस्तिष्क पर प्रभाव डाला है और उससे विस्मृति सी होने लगी है। इस रोग का औषधोपचार किया गया और गर्म जल मे पैर रखवाए गए। दत्तजी, कैप्टन जगन्नाथजी, प्रीतमचन्द और महावीर-

प्रसाद तथा श्रीमती धर्मवती आदि सभी सेवा कर रहे थे। सायकाल ६ बजे से रात्रि के २ बजे तक क्या-क्या हुआ, महाराजजी को बिलकुल स्मरण नही रहा था। रात्रि के २ बजे इन्होने फरमाया कि दरवाजा खडखडा रहा है, इसे बन्द कर दो। तब सब एकत्रित लोगो ने समझा कि अब महाराजजी की तबीयत ठीक है। ८ बजे तक वे भली प्रकार से सोए। उसके बाद थोडा सा जगकर फिर सो गए और ६ बजे तक बहुत अच्छी तरह से सोए। जब प्रात काल ६ बजे डाक्टर हसराज आए तो उनसे श्री महाराजजी ने कहा कि रात्रि को मुझे कोई भी बात स्मरण नही रही। प्रात काल सिर मे कुछ थोडा सा दर्द था और मुझे अपना मस्तिष्क कुछ खाली सा प्रतीत हो रहा था। डाक्टर के पूछने पर महाराजजी ने बताया कि मैने तीन मास तक अपने मस्तिष्क की शक्ति से अत्यधिक काम लिया। चीन के राजपुरुषो के मन परिवर्तन करने, एक मुकद्दमे को अनुकूल बिठाने और सेठ जुगलकिशोर जी की बीमारी को हटाने के लिए मुझे अपने मस्तिष्क की शक्ति को बहुत व्यय करना पडा था, आहार बहुत कम लिया और चिन्ता अधिक रही, इससे मालूम होता है कि शरीर और मस्तिष्क दोनो दुर्बल होगए हैं। मस्तिष्क के ज्ञान-वाहक तन्तुओ, स्नायुओ और नाडियो पर बहुत दबाव पडा है। मुझे उनमे कुछ कठोरता सी मालूम होती है। दूसरो के मनो का दमन करने और उन्हे अपने प्रभाव मे लाने मे मेरे बल और शक्ति का बडा ह्रास हुआ है। लगभग एक मास तक सिर-पीडा होती रही। १४ जनवरी से स्वास्थ्य-लाभ करने पर साधको को अभ्यास करवाना प्रारभ कर दिया। इस बार चीन से युद्ध हो जाने के कारण अभ्यासी भी कम सख्या मे ही साधना शिविर मे आए थे। ३१ मार्च को शिविर की समाप्ति हुई। सब साधको को सदैव की भाति प्रीतिभोज दिया गया और पूज्य महाराजजी ने विदाई के समय अभ्यासियो को निम्नलिखित उपदेश दिया —

प्रिय आत्मन, साधको और साधिकाओ ! आज अभ्यास का अन्तिम दिवस है। आप सबने चार मास साधना शिविर मे रहकर साधना की है। यम-नियमो का पालन किया है। ब्रह्मचर्य धारण करके तप, त्याग और वैराग्य का जीवन व्यतीत किया है। इन सबसे आपका जीवन उसी प्रकार से उज्ज्वल हो जाएगा जिस प्रकार भट्टी मे तप कर सोना कुन्दन बन जाता है। प्राचीन काल मे ऋषियो तथा मुनियो ने इसी प्रकार वनो मे रहकर अनेक प्रकार की साधनाओ के द्वारा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त किया था। इसी की पुष्टि उपनिषद् मे इस प्रकार की गई है "तप श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वासो भैक्षचर्या चरन्त । सूर्यद्वारेण ते विरजा प्रयान्ति यत्रामृत स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥" इस मत्र मे साधना का विशेष रूप से वर्णन किया है। आपने जो कुछ तत्त्व-ज्ञान यहा निवास करके प्राप्त किया है इसको अपने घरो मे, आश्रमो मे अथवा अन्यत्र किसी एकान्त और शान्त वातावरण मे रहकर दृढभूमि करना आपका विशेष कर्तव्य है। आपने यहा जो साधना की है और आशिक तत्त्व-ज्ञान प्राप्त किया है वह कुञ्जरस्नानवत् नही हो जाना चाहिए। हाथी ग्रीष्म ऋतु मे नदी मे प्रवेश करके खूब स्नान करता है किन्तु ज्योही बाहर निकलता है अपनी सूड से मिट्टी धूल-कर्कटादि उठाकर अपने शरीर पर डालकर पुन गदा हो जाता है। यहा से जाने के बाद आपको प्राप्त विवेक मे अधिक वृद्धि करना और अपने जीवन को उन्नति

के पथ पर अग्रसर करना है। मानव जीवन बडा अमूल्य है। तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करना इसका उद्देश्य है। अपना शेष जीवन इस उद्देश्य की पूर्ति मे व्यय करो, तभी आपका जीवन सफल समझा जाएगा। हमारे योग-निकेतन के समान अन्यत्र कही भी क्रियात्मक साधनो के द्वारा आत्म-साक्षात्कार और ब्रह्म-साक्षात्कार की पद्धति नही है। किसी भी सप्रदाय का व्यक्ति यहा आकर तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर सकता है। हमारे यहा किसी प्रकार का भेदभाव नही है। सबको समान भाव से योग-साधन करवाया जाता है और सबको समान दृष्टि से देखा जाता है। हमारे योग-विद्यालय मे मनुष्य मात्र को तत्त्व-ज्ञान की शिक्षा दी जाती है। यहा के अभ्यास और साधना मे सब अभ्यासी सन्तुष्ट होकर जाते है और सभी आध्यात्मिक उन्नति लाभ करते है। जिस प्रकार लौकिक विद्या की प्राप्ति के लिए स्कूल, पाठशाला और कालिज शिक्षा देते है, इसी प्रकार इस योग विद्यालय मे आध्यात्मिक शिक्षा देकर क्रियात्मक रूप मे आत्म-साक्षात्कार करवाया जाता है।

गगोत्री प्रस्थान

पूज्य महाराजजी हिमालय प्रदेश से नीचे कभी नही जाते थे। अपनी साधना के काल मे प्राय सर्दी मे अमृतसर और गर्मी मे काश्मीर रहते थे और अब प्राय तीन स्थानो पर रहते थे। स्वर्गाश्रम मे नवम्बर से अप्रैल तक, उत्तरकाशी मे मई मास तक और गगोत्री मे जून से सितम्बर तक, और वहा से स्वर्गाश्रम पुन जाते समय अक्तूबर मास तक उत्तरकाशी मे विराजते थे। स्वर्गाश्रम के साधना शिविर के पश्चात् गगोत्री के लिए प्रस्थान किया। रात्रि को ऋषिकेश मे नैशनल बैंक आफ लाहौर के मैनेजर बलदेवमित्रजी के मकान पर निवास किया और प्रात काल ऋषिकेश से बस द्वारा ३ बजे के लगभग उत्तरकाशी पहुचकर योगनिकेतन मे ४० दिन तक विराजे और १ जून १९६३ को उत्तरकाशी से गगोत्री पधार गए। अब की बार प० राजेन्द्रनाथ शास्त्री तथा दिल्लीनिवासी प्रीतमचन्दजी भी इनके साथ थे। गगोत्री मे शास्त्रीजी से ब्रह्म-विज्ञान की प्रतिलिपि प्रेस मे भेजने के लिए बनवाई। प० राजेन्द्रनाथ महाराजजी के योग्य शिष्य थे। स्वर्गाश्रम के साधना शिविर मे दो-तीन वर्षो से अभ्यासार्थ आते रहे थे और बहुत कुछ विज्ञान प्राप्त कर चुके थे। गगोत्री जाने का भी मुख्योद्देश्य तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति तथा उसे दृढभूमि करना था। प्रीतमचन्दजी और पडितजी घोडे की सवारी नही कर सकते थे, अत ये दोनो पैदल ही गगोत्री पहुचे थे। श्री महाराजजी घोडे पर पधारे थे।

जब बस से उतर कर पैदल चलने लगे तो प्रीतमचन्दजी गगनचुम्बी विशाल पर्वतो को देखकर घबरा गए। इनको पार करना इन्हे असभव सा प्रतीत हो रहा था। केवल एक मील चलकर ही इन्होने अपनी हिम्मत हार दी और महाराजजी से पीछे लौटने के लिए आज्ञा मागी। पूज्य स्वामीजी महाराज ने इन्हे अपना खद्दर का एक तौलिया कमर पर बाधने के लिए दिया और कहा कि गायत्री का जाप करते चलो, अब तुम नही थकोगे। महाराजजी मार्ग मे इन्हे कथा-वार्ता सुनाते गए। इससे प्रीतमचन्दजी का ध्यान दूसरी ओर बट गया और थकान अनुभव नही हुई। जब ये सब लोग कही पर बैठ कर दम लेने लगते थे तो महाराजजी अपने घोडे को

ठहरा लेते थे और उनकी प्रतीक्षा करते थे। पडितजी और प्रीतमचन्दजी शनै-शनै महाराजजी के साथ यात्रा मे चल रहे थे। गगणानी, भाला, हरसिल मे ठहरते हुए धराली पहुचे। धराली मे ठाकुर कुन्दनसिह महाराजजी के लिए दूध लाए। गगोत्री के क्षेत्र के लिए सारी रसद ये ही दिया करते थे। महाराजजी पर इनकी बडी श्रद्धा थी। जब से उन्होने गगोत्री मे निवास प्रारम्भ किया था इनके पिता ठाकुर नारायणसिह बराबर रसद दिया करते थे। भैरो चट्टी पर कुछ देर तक आराम किया। सारे मार्ग पर महाराजजी इन दोनो का उत्साह बढाते रहे। ठीक १ बजे ये सब गगोत्री पहुच गए। स्वामी दयालमुनिजी ने एक घण्टे मे भोजन तैयार कर दिया। भोजनोपरान्त सबने विश्राम किया।

पूज्य महाराजजी यहा पर अभ्यासियो को प्रति सायकाल डेढ घण्टा अभ्यास करवाते थे। थोडे ही समय मे यहा के नितान्त एकान्त और प्रशान्त वातावरण मे साधना करके अभ्यासियो ने उन्नति करना प्रारम्भ किया। ब्रह्मचारी श्रीकण्ठ तथा राजेन्द्रनाथजी ने कुछ ही दिनो मे बहुत सफलता लाभ की। प्रीतमचन्दजी १०-१५ दिन तो ठीक रहे, उसके पश्चात् अस्वस्थ होगए और वापस चले गए। प० राजेन्द्रनाथजी ने 'ब्रह्मविज्ञान' की प्रतिलिपि दो-ढाई महीने मे समाप्त कर दी। आपने आनन्दमय कोश मे स्थिर होकर आत्म-ज्ञान लाभ किया।

आषाढ पूर्णिमा के अवसर पर पूज्य महाराजजी गगोत्री के सब सन्तो को प्रतिवर्ष प्रीतिभोजन, वस्त्र, रुपये, मेवादि प्रदान किया करते थे। इनके शिष्य यथाशक्ति, इनको भेट दिया करते थे। अनेक शिष्य तो व्यास-पूजा के दिन नीचे से भी गगोत्री आकर उनकी पूजा करके भेट दिया करते थे। प० राजेन्द्रनाथ शास्त्री ने गुरु-पूजा के अवसर पर पूज्य गुरुदेवजी को भेट दी और उनकी स्तुति मे देववाणी मे निम्न अत्यन्त सुन्दर रचना भी अभिनन्दन-पत्र के रूप मे भेट की —

गुरुवराणा ब्रह्मनिष्ठयोगिप्रवरब्रह्मर्षिश्रीयोगेश्वरानन्दमहाराजानाम्
भूतपूर्वयोगाचार्यश्रीब्रह्मचारीव्यासदेवमहामुनीनाम्
चरणारविन्दाभिनन्दनम्

यति योगेश्वरानन्द, व्यासदेव महामतिम्।
प्रणमामि गुरुदेव, कर्त्ता योगप्रवर्तकम् ॥१॥
फणीशो वेत्ति योग वै, व्यासोऽपि भाष्यकारश्च।
योगेश्वरदयानन्दौ, वेत्तोऽन्यो वेत्ति वा न वा ॥२॥
विशोका ज्योतिरेषा हि, पावनी योगरोगिणाम्।
विदुषा शेमुषीजुषाम्, मूर्खाणाञ्चापि मादृशाम् ॥३॥
वनस्थाश्च गृहस्थाश्च, निर्धना धनिनस्तथा।
सन्यासिनो व्रणिनश्च, मूर्खामूर्खा जडाजडा ॥४॥
वृद्धा यौवनसम्पन्ना, नार्यो नरा बलाबला।
लभन्ते हि महाराजात्, विशोका मोक्षदा सदा ॥५॥
षट्चक्रान्त करणानाम्, कारणस्थूलसूक्ष्माणाम्।
प्रकाशिका समस्तानाम्, विशोका योगविद्यैषाम् ॥६॥

अखण्डब्रह्मदर्शनम्, अखण्डयोगधारणम् ।
अखण्डब्रह्मचर्यञ्च, ब्रह्मापित्वेऽस्तु सावकम् ॥७॥
नूतनमात्मविज्ञानम्, स योगो वहिरङ्गो यो ।
गुह्यञ्च ब्रह्मविज्ञानम्, मोक्षदा नस्त्रिलोकगा ॥८॥
त्र्यम्बकस्त्व शिवोऽसि न, चक्रधरो विष्णुरसि ।
ब्रह्मासि श्रुतिश्रावक, त्वा ऋते नास्ति गतिर्न ॥९॥
रत्नौघैरसि पूज्यस्त्व, तपस्विनो वय वन्या ।
सुमनोभिस्त्वमनोभि, स्तुम पादश्रिय नता ॥१०॥

श्रीमच्चरणान्तेवासी
आचार्यो राजेन्द्रनाथ शास्त्री
सस्थापक श्रीदयानन्दवेदविद्यालयस्य

गुरु-पूर्णिमा
वैक्रमाब्द. २०२०

योगनिकेतन मे सब स्थानीय साधुओ और सन्तो के लिए चार मास चाय और डेढ मास अन्न का क्षेत्र श्री महाराजजी की ओर से चलाया जाता है। एक धर्मार्थ औषधालय भी है। श्री दयालमुनिजी रोगियो का उपचार करते थे। क्षेत्र चलाने की सब व्यवस्था भी ये ही किया करते थे। इस वर्ष पूज्य स्वामीजी महाराज ने सेठ जुगलकिशोर बिरला से १०००० रुपये लेकर गगोत्री के मदिर का जीर्णोद्धार भी दयालमुनिजी द्वारा करवाया था। इन्हे किसी कार्य के लिए धराली भेजा गया था। एक गृहस्थी ने इन्हे भोजन के लिए आमन्त्रित किया। भूल से कोई ऐसी वस्तु खाने मे आगई जिससे इनका पेट फूल गया और अतिसार होगया, इसलिए इन्हे वहां पर तीन-चार दिन तक रुकना पडा। इसके बाद से इन्हे मन्दाग्नि रहने लग गई। अनेक उपचार किए किन्तु आराम नही हुआ। इस विषैली वस्तु का इनके मस्तिष्क पर भी बुरा प्रभाव पडा जिससे इन्हें उन्माद रोग होगया। अमृतसर मे इलाज कराने से दयालजी स्वस्थ होगए।

स्वर्गाश्रम प्रस्थान

श्री महाराजजी, शास्त्रीजी तथा अन्य ३-४ सन्तो को साथ लेकर उत्तरकाशी पधारे। यहा पर बीस दिन तक निवास करके स्वर्गाश्रम के लिए प्रस्थान किया। वहां पहुचकर 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रथ का प्रकाशन करवाने के लिए श्री दत्तजी और कैप्टनजी को दिल्ली भेजा गया। इधर श्री महाराजजी ने दिल्ली से एक चित्रकला विशारद को बुलाकर 'ब्रह्म-विज्ञान' के चित्रो को बनवाया और १५-२० दिन मे यह काम समाप्त होगया। 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रथ के छपवाने के लिए सेठ जुगलकिशोर बिरलाजी ने ५००० रुपये का कागज दिया था। इसी अवसर पर 'आत्म-विज्ञान' का दूसरा सस्करण निकाला गया और इसका अग्रेजी अनुवाद 'सायस आफ सोल' के नाम से प्रकाशित किया गया। श्री कैप्टन जगन्नाथजी ने ७-८ मास तक दिल्ली रहकर प्रकाशन का सारा प्रबन्ध किया। श्री ओमप्रकाशजी की सहायता से यह काम शीघ्र सम्पन्न होगया। 'सायस आफ सोल' के प्रकाशन का सब व्यय बम्बई निवासी श्री अमीरचन्द गुप्तजी ने प्रदान किया।

स्वर्गाश्रम मे साधना-शिविर—पूज्य गुरुदेव गत वर्ष से अभ्यासियो को ब्रह्म-विज्ञान का विशेष रूप से अभ्यास करवा रहे थे और अभ्यासार्थियो को इसमे सफलता लाभ हो रही थी। अभ्यास से पूर्व श्री महाराजजी ने सब अभ्यासियो को सम्बोधन करते हुए कहा—"आपकी बुद्धि इतनी सूक्ष्म हो जानी चाहिए कि आप प्रत्येक पदार्थ के अन्तिम छोर को भी देख और समझ सकें। ऋतम्भरा बुद्धि ही ब्रह्म-ज्ञान का अभ्यास करने मे तथा साक्षात्कार करने मे सहायक हो सकती है। आप सब सावधान होकर मन तथा इन्द्रियो को समाहित करके अपनी दिव्य दृष्टि को इस पृथ्वी मे प्रवेश करे। इसमे परिवर्तित होती हुई अवस्थाओ और पदार्थों का अवलोकन करें। जिस प्रकार अपने स्थूल शरीर मे प्रवेश करके इसके भीतर की रचना को दिव्य-दृष्टि से आप देखते है उसी प्रकार इस भूमि मे भी प्रवेश करके इसके भीतर की गति-विधि को प्रत्यक्ष करे। यदि आपने अपने अन्दर अपने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है तो आत्मा के समान एक चेतन तत्त्व इस पृथ्वी के गर्भ मे भी अन्तर्यामी रूप से इसमे व्याप्त चेतन सत्ता की अनुभूति होगी। इसी प्रकार आकाश मण्डल मे जो लोक-लोकान्तर है ये सब ही समष्टि पृथ्वी तत्त्व के अश है। इनमे भी आप अपनी दिव्य दृष्टि को फैलाकर उनका साक्षात्कार करें। इसी प्रकार स्थूल जगत् और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करे। इस पृथ्वी की परिणत होती हुई स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्त्व अवस्थाओ, इसके उपादान कारण और निमित्त कारण पर ब्रह्म का साक्षात्कार करे।" उपरोक्त अभ्यास साधक और साधिकाए निरन्तर कई दिन तक करते रहे। कई अभ्यासियो ने अपनी-अपनी बुद्धि के आधार पर इस विषय मे बहुत कुछ प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। इसी प्रकार प्रत्येक समष्टि भूत के साक्षात्कार करने मे कई मास तक अभ्यास करवाया गया। तत्पश्चात् सूक्ष्म समष्टि भूतो के साक्षात्कार करवाने के लिए भी बहुत समय तक अभ्यास करवाया। यह सूक्ष्म भूतो का विषय आहकारिक समष्टि सृष्टि के अन्तर्गत था। सन् १९६२, ६३, ६४ मे कार्य-कारणात्मक प्रकृति और इन सब मे व्याप्त ब्रह्म-ज्ञान का अभ्यास करवाया गया। यह सब विज्ञान तीनो शरीरो के बाहर का था। समष्टि पदार्थों मे ब्रह्म की व्यापकता और निष्क्रिय तथा निर्गुण ब्रह्म का यह ज्ञान था। पूज्य गुरुदेवजी से अभ्यास के पश्चात् एक जिज्ञासु शिष्य ने प्रश्न किया "जब आप ब्रह्म को निर्गुण मानते है तब इस दृश्यमान जगत् का निर्माण किस प्रकार से हुआ तथा किसने किया?" इसका उत्तर पूज्य गुरुदेव ने बडे विस्तार से अपने उपदेश मे समझाया।

पूज्य गुरुदेव का ब्रह्म के विषय मे उपदेश

सगुण ब्रह्म मानने मे अनेक दोष उपस्थित होते है। इस सिद्धान्त को मानने मे ब्रह्म के जितने गुण माने जाएगे उतने ही इसके रूप भी मानने पडेंगे क्योकि प्रत्येक गुण मे अवस्थान्तर परिणाम मानना पडेगा। एक गुण के बाद दूसरे गुण का प्रादुर्भाव मानना पडेगा। तब ब्रह्म अवस्थान्तर भाव को प्राप्त होता हुआ एक गुण को उत्पन्न करेगा क्योकि गुण का प्रादुर्भाव क्रमपूर्वक ही होगा। यदि एककालावच्छेदेन सर्व गुणो की उत्पत्ति माने तब ब्रह्म विकारी सिद्ध होता है और यदि क्रमपूर्वक गुणो की उत्पत्ति माने तब भी यह विकारी सिद्ध होता है और यदि ब्रह्म मे ये सब गुण नित्य मान ले तब यह शका होती है कि गुण और गुणी का भेद है या अभेद। यदि भेद

मानते है तो ब्रह्म से गुण पृथक मानना पडेगा और यदि अभेद स्वीकार करते हो तो ब्रह्म मे गुणो का होना, अवस्थान्तर और अनेकरूपत्व मानना पडेगा। दो विरुद्ध धर्मो का समावेश ब्रह्म मे सिद्ध नही होता। वह सगुण और निर्गुण दोनो नही हो सकता।

इस पर जिज्ञासु ने पुन शका की—"आप प्रकृति मे नित्यत्व और अनित्यत्व दो धर्म मानते है। आप इसे कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य मानते हैं। अत आप ब्रह्म के नित्यत्व और अनित्यत्व मे क्यो आपत्ति उठाते हैं ?" पूज्य महाराजजी ने इस शका का निम्न प्रकार से समाधान किया —

प्रकृति सावयव और परिणामिनी है और ब्रह्म की अपेक्षा स्थूल है। इसीलिए ब्रह्म प्रकृति को व्याप्त करके रहता है। कारण रूप प्रकृति का कभी विनाश नही होता और क्योकि यह सत् होते हुए परिणामिनी है इसलिए इससे जगत् की उत्पत्ति होती है। इसके वास्तविक कारण रूप का कभी अभाव या विनाश नही होता। यह कारण रूप प्रकृति अवस्थान्तर रूप से कार्यभाव को प्राप्त होती रहती है और सदा अपने कार्य मे अनुस्यूत रहती है, जिस प्रकार स्वर्ण कटककुडल, मणिवधादि मे अनुस्यूत रहता है। स्वर्ण का यहा स्वरूप से विनाश नही है किन्तु अवस्थान्तर परिणाम है। इसी प्रकार प्रकृति का भी स्वरूप से विनाश नही होता, उसका अवस्थान्तर होता है, और यही कार्य रूप परिणाम है। यदि हम ब्रह्म को भी ऐसा मान लें तव यह भी प्रकृति के समान विकारी सिद्ध होगा। कारणगुणपूर्वक ही कार्यगुण होता है। जो गुण कारण मे होते है वे कार्य मे भी अवश्य आवेंगे। ब्रह्म का जो कार्यान्तर परिणाम या अवस्थान्तर परिणाम होगा उसमे भी ब्रह्म के अनेक गुण उसके कार्य मे मानने पडेंगे। उसका कार्य आप जीवात्मा को या ईश्वर को ही कहेगे क्योकि इनमे ही चेतनत्व है। इसलिए ब्रह्म भी प्रकृति की तरह सत् और परिणत होकर रह जाएगा। वहा जड रूप से परिणाम है और यहा चेतनत्व, अत प्रकृति और ब्रह्म मे किसी प्रकार का भेद या अन्तर नही रहेगा। इसलिए ब्रह्म को निर्गुण, निष्क्रिय, निरवयव तथा असङ्ग मानकर केवल ब्रह्म के सन्निधान मात्र से प्रकृति मे जगत्-सृजन रूप क्रिया माननी चाहिए। निर्गुणत्व, निष्क्रियत्व, असङ्गत्व, निरवयवत्वादि ब्रह्म के गुण नही है। ब्रह्म तो केवल चेतन स्वरूप है। इसमे कभी विकार या परिणाम नही होता, इसलिए नित्य निष्क्रिय कहा गया है। जिसमे क्रिया है या व्यापार है वहा परिणाम-क्रम अवश्य मानना पडेगा। अत ब्रह्म को निर्गुण मान कर ही सिद्धान्त का प्रतिपादन युक्तियुक्त और तर्कसगत है। ब्रह्म के निर्गुण होने से इसमे कर्तृत्वादि धर्म भी सिद्ध नही होते। ब्रह्म को जगत् के प्रति निमित्त कारण अवश्य माना जा सकता है। निमित्त कारण दो प्रकार का होता है। कुलाल वर्तन वनाने मे निमित्त कारण है, परन्तु ब्रह्म सृष्टि की रचना करने मे इस प्रकार का निमित्त कारण नही है। वह केवल सन्निधान मात्र से निमित्त कारण सिद्ध होता है, कर्ता रूप मे नही। अत ब्रह्म के सन्निधान मात्र से प्रकृति गतिशील होकर समष्टि पदार्थों को उत्पन्न करने लगती है। ये समष्टि ३२ पदार्थ प्रकृति की परिणत होती हुई अवस्था विशेष है। परिणत होती हुई प्रकृति अन्त मे पृथ्वी महाभूत पर आ कर ठहर जाती है, इसके पश्चात् और कोई विशेष परिणामान्तर नही होता।

इस उपदेश को सुनने के अनन्तर एक साधक ने प्रश्न किया—"गुरुदेव ! जब आप ईश्वर या ब्रह्म को कर्ता नही मानते तो श्रुति मे जो कहा है कि 'तस्मात्यजुरजायत' क्या यह गलत है ? इस विषय मे आप प्रकाश डालने की कृपा करे।

पूज्य महाराजजी ने इस शका का निम्न प्रकार से समाधान किया —

वेद के प्रति उपादान कारण कौन है ? यदि वेद-ज्ञान का उपादान कारण ईश्वर को मानते है तव वह विकारवान् सिद्ध होता है। इसके वाद यह भी शका हो सकती है कि यह ज्ञान उससे भिन्न है या अभिन्न। यदि भिन्न है तो उसका उपादान कारण और कोई पदार्थ होना चाहिए और यदि अभिन्न है तो क्या इसमे कारण-कार्यात्मक अभिन्नता है ? जिस प्रकार प्रकृति अपने सब कार्यों मे कारण रूप से वर्तमान रहती है, क्या ईश्वर भी वेद-ज्ञान मे कारणरूप से वर्तमान रहता है ? इससे ईश्वर प्रकृति के समान विकारवान् सिद्ध होता है। यदि ईश्वर और वेद-ज्ञान का गुण-गुणी भाव सम्वन्ध मानते हो तो यह मानना पडेगा कि वह गुण उसी ईश्वर का अवस्थान्तर परिणाम है अथवा इसका आश्रय-आश्रयी सम्वन्ध है। आश्रय-आश्रयी भाव सम्वन्ध भिन्न पदार्थों का होता है। अत वेद-ज्ञान को ईश्वर से अलग मानना पडेगा और उसका उपादान कारण किसी अन्य को मानना होगा। यदि आप निमित्त कारण केवल सन्निधान मात्र से मानते है तव वेद-ज्ञान के प्रति उपादान कारण कोई और ही होना चाहिए। सन्निधान मात्र से कर्तृत्व धर्म ईश्वर मे वेद-ज्ञान के प्रति सिद्ध नही होता। यदि आप केवल वेद-ज्ञान के प्रति उत्पत्ति मे सन्निधान मात्र ही मानते है तव वेद-ज्ञान का कर्ता ईश्वर सिद्ध नही होता, क्योकि निर्गुण होने से उसमे कर्तृत्व गुण सिद्ध नही होता। अत वेद-ज्ञान का कर्ता न ब्रह्म ही है और न प्रकृति ही। अव यहा यह प्रश्न हो सकता है कि वेद-ज्ञान का कर्ता कौन है तथा इसकी उत्पति कहा से और कैसे होती है। इसका उत्तर ध्यान से सुनिए। जिस ज्ञानयुक्त पदार्थ मे परिणाम-क्रम है उसीमे अवस्थान्तर रूप से ज्ञान का प्रादुर्भाव मानना पडेगा। सृष्टि के आदि मे जव ब्रह्म के सन्निधान मात्र से प्रकृति मे परिणाम-क्रम होता है तो वह प्रकृति सत्व रूप मे, अर्थात् ज्ञान रूप मे, परिणाम भाव को प्राप्त होती है। इस पर आप यह शका करेंगे कि जव प्रकृति ज्ञानरूप मे परिणाम भाव को प्राप्त होती है, तो क्या पहले भी वह ज्ञान स्वरूपा ही थी ? इस शका का निवारण इस प्रकार से है। प्रकृति तीन गुणो वाली है—सत्व, रज और तम। ये तीनो पदार्थ भी है और गुण भी। जव तक ये विषम भाव मे रहते हैं तव तक ये अवस्थान्तर अथवा कार्यान्तर भाव को प्राप्त होते रहते है और जव ये समभाव को प्राप्त होते है तव इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति होता है। ये अपने कारण प्रकृति मे विलीन हो जाते है किन्तु इनका स्वरूप से विनाश नही होता, केवल कारण मे स्थिति या विलीनता होती है, क्योकि सत्कार्यवाद मे हमारा विश्वास है। हम किसी भी वस्तु का सर्वथा नाश नही मानते, कार्य के कारण मे विलीन हो जाने को आप भले ही विनाश समझे। सत्व का अर्थ ज्ञान, रज का अर्थ क्रिया और तम का अर्थ स्थिति या वल है। ये प्रकृति के गुण भी है और पदार्थ भी। ये परिणत होती हुई अवस्थाए भी हैं। सभव है, आप यह कहे कि प्रकृति जड है। ज्ञान इसमे चेतन भगवान् से आता है। भगवान् मे आना-जाना रूप अथवा गमनागमन रूप धर्म नही हैं। उसके चेतन होने से आपने भगवान् को ज्ञान रूप भी

कह दिया है। ज्ञान उसका गुण नही है जो अन्य पदार्थ मे जा सके या मिल सके अथवा उससे निकलकर प्रकृति मे चला जाए या मिल जाए। यदि ज्ञान को आप उपादान कारण मानोगे तव ही ज्ञान मे गमनागमन और वृद्धि तथा ह्रास हो सकता है। अत ज्ञान का उपादान कारण प्रकृति ही है, ब्रह्म नही। ब्रह्म के सन्निधान से जब प्रकृति ने महत्तत्व को उत्पन्न किया तो उससे समष्टि चित्त उत्पन्न हुआ। समष्टि चित्त से अनन्त व्यष्टि चित्तो की उत्पत्ति हुई। ये अनन्त चित्त भी ज्ञानप्रधान ही उत्पन्न हुए। ये व्यष्टि चित्त ही वेद-ज्ञान की परम्परा को चलाते है अर्थात् ये ज्ञान को लेकर गमन करते है। इसको आप इस प्रकार से समझे —

आधुनिक काल मे कई योगी अथवा तत्त्वज्ञानी, वेद-ज्ञान के ज्ञाता विद्वान् लोग, जब मृत्यु को प्राप्त होगे तो ये वेद-ज्ञान के सस्कारो को अपने अन्त करण अर्थात् वुद्धि या चित्त मे धारण करके परलोक मे गमन करेगे और फिर ये ही इस ज्ञान को लेकर दूसरे शरीरो मे जाएगे, वहा जाकर लोगो को वेद-ज्ञान प्रदान करेंगे। जब तक इनका मोक्ष नही होगा तब तक ये जन्मजन्मान्तरो तक ससार के लोगो को वेद-ज्ञान देते रहेगे। जब सृष्टि का सहार होगा अथवा प्रलयावस्था आएगी तब ये योगी, ज्ञानी और वेदज्ञ इस वेद-ज्ञान को साथ लेकर अथवा अपने चित्तो मे धारण करते हुए प्रलय काल मे उसमे प्रवेश कर जाएगे। इन तत्त्वज्ञानियो के अन्त करणो मे वेद-ज्ञान प्रसुप्त सी अवस्था मे ठहर जाएगा। ये अन्त करण उस ज्ञान को अपने गर्भ मे धारण करके अपने कारण रूप समष्टि चित्त मे चले जाएगे और समष्टि चित्त अपने महत् सत्व मे तथा महत् सत्व अपनी प्रकृति की साम्यावस्था मे विलीन हो जाएगा।

प्रलयकाल के पश्चात् सृष्टि के आदि मे उपरोक्त योगियो, तत्त्वज्ञानियो, वेदज्ञो, जीवन्मुक्तो मे, अर्थात् जिनका मोक्ष नही हुआ था किन्तु मोक्ष के निकट पहुचे हुए थे पर अभी इनके कुछ जन्म अवशेष थे उनमे, वेद-ज्ञान का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव होता है। ये ही उस वेद-ज्ञान को अपने अन्त करण मे धारण करके आते हैं और ये ही वेद-ज्ञान की परम्परा चलाते हैं। इन्ही मे से जिन्होने सर्वप्रथम यह ज्ञान दूसरे ऋषियो तथा मुनियो को प्रदान किया उनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा हैं।

इस प्रकार ज्ञान की परम्परा ऋषि-मुनियो की ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा चलती रहती है। इसमे ईश्वर की आवश्यकता ही नही है। किसी वेद-ज्ञान अथवा अन्य किसी ज्ञान को भगवान् उत्पन्न नही करता। हम इस लोक मे वुद्धि द्वारा विवेक प्राप्त करते हैं अथवा गुरुजनो से प्राप्त करते हैं। यह सब वुद्धि का ही विषय है। वुद्धि ही इसे धारण करती है, इसलिए यह सब वुद्धि के विकास ही का परिणाम है।

जब वुद्धि एक जन्म से दूसरे जन्म मे ज्ञान लेकर जाती है तो प्रलय काल मे भी लेकर जाएगी ही, तब सृष्टि के आदि मे ऋतम्भरा वुद्धि या ज्योतिष्मती वुद्धि अथवा सम्प्रज्ञात की अवस्था मे उत्पन्न हुई वुद्धि एव धर्ममेघोत्पन्न वुद्धि सृष्टि के आदि काल मे ऋषि-मुनियो के अन्त करण मे वेद-ज्ञान को लिए हुए विकास भाव को प्राप्त हो जाएगी, अत सृष्टि के आदिकाल मे भी भगवान् से वेद-ज्ञान के उत्पन्न होने की बात सिद्ध नही होती। जब इस लोक मे विज्ञान वुद्धि का धर्म है तो आदि सृष्टि मे भी वुद्धि का ही धर्म होना चाहिए। अत वेद-ज्ञान न तो ईश्वर का धर्म या गुण है और न ही वह इसका कर्ता है। इस समय जो चार वेद उपलब्ध है इन्ही मे सम्पूर्ण

ज्ञान समाप्त नही हो जाता। क्योकि ज्ञान भी अनन्त है अत जीवो की अनन्त बुद्धियो मे निवास करेगा। ये अनन्त जीवो की अनन्त बुद्धिया ज्ञान की परम्परा को धारण करके चलती रहेगी, वहन करती रहेगी, क्योकि ज्ञान इनका ही परिणाम विशेष है। ये ही तत्त्वज्ञान की उपादान कारण बनेगी और वर्तमान काल मे भी है और भूतकाल मे भी थी। विज्ञान बुद्धि का परिणाम है। ब्रह्म भी चेतन होने से ज्ञान रूप ही है परन्तु उसका ज्ञान परिणाम और विकार रहित है। उसमे विकास, वृद्धि तथा ह्रास नही होता। अत वेद-ज्ञान भी बुद्धि का ही धर्म-विशेष या परिणाम-विशेष ही है, ईश्वर का नही, क्योकि ईश्वर निर्गुण है, निर्विकार है। निरवयव है और असङ्ग है। इसे सङ्ग दोष नही होता। हा, प्रकृति इसके सान्निध्य को प्राप्त होकर विकारवान् होती है और तब परिणामभाव को प्राप्त हो जाती है।

इस वर्ष श्री महाराजजी, रामकिशोरजी और दत्तजी साधको को अभ्यास करवा रहे थे। ५ मास की साधना समाप्त करके दो अप्रैल को महाराजजी ने नीचे जाने का विचार किया। पूज्य गुरुदेवजी के सैकडो भक्त कई वर्ष से नीचे बुला रहे थे। ये बहुत वर्षों से हरिद्वार मे नीचे नही पधारे थे। भक्त बार-बार यह आग्रह कर रहे थे कि महाराजजी नीचे पधारे और नगरो मे साधना-शिविर लगाए जिससे इनसे नागरिक जनता भी सत्सग और साधना से लाभ उठा सके।

३१ मार्च १९६४ को शिविर की समाप्ति पर एक विशाल सहभोज साधको को दिया गया और इसके उपरान्त कई सारगर्भित उपदेश हुए। श्री महाराजजी ने अपने सब शिष्यो को विदा करते समय उपदेश दिया जो निम्नलिखित है।

योग की सार्वभौमिकता

यम-नियम—योग सार्वभौम-धर्म है जो मनुष्यमात्र के लिए परम उपयोगी है। यह ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी दोनो के लिए उपयुक्त है और मानवमात्र का कल्याण करने वाला है। इस अष्टाग योग को सभी धर्म और सम्प्रदाय मानते है। योग के प्रथम और द्वितीय अग अर्थात् यम और नियम योग की आधार-शिला है। इन पर आचरण करने से प्रत्येक नर-नारी का जीवन उन्नत होता है और शरीर, इन्द्रियो तथा मन पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक प्राणि के प्रति मित्रता की भावना उत्पन्न होती है। मनुष्यमात्र के प्रति हित और उपकार भावना जागृत हो जाती है। दुखियो के प्रति दया का उदय होता है। आर्तों की आर्ति हरण की सामर्थ्य प्राप्त होती है और असहायो की सहायता करने के लिए शरीर मे शक्ति का सचार होता है। तब मनुष्य पापियो से घृणा नही करता, उनके प्रति उदासीनता की भावना रखता है। उनके पाप से घृणा करता है, उनसे नही। पुण्यात्माओ को देखकर हर्षित होता है। हिंसा का परित्याग, सत्यप्रियता, चौर्यत्याग, परस्त्रीगमन निषेध, तथा विषयोन्मुखी इन्द्रियो का निरोध सभी धर्मों और सप्रदायो के नर-नारियो के लिए कल्याणकारी है, सुख और शान्ति को देने वाले है। इसलिए यम और नियम का पालन प्रत्येक स्त्री और पुरुष को सयमशील और जितेन्द्रिय बनाता है। इनसे मन में एकाग्रता आती है और यह एकाग्रता पूर्ण शान्ति को प्रदान करती है। सभी सप्रदायो के जितने भी बडे-बडे सन्त हुए है सबने यम-नियम को धर्म माना है, अपनाया

है, और इनके पालन करने, इन पर आचरण करने पर वल दिया है। इनका पालन करने से ही उनके जीवन मे महती विशेपता आई थी और नेतृत्वशक्ति प्राप्त हुई थी, अत आप लोगो को भी यम-नियम का पालन करना चाहिए। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वनस्थ और सन्यासी सभी के लिए इन पर अनुष्ठान करना अनिवार्य है। जिस मकान की वुनियाद कमजोर रहती है वह चिरस्थायी नही हो सकता। उसके शीघ्र ही गिर जाने की सभावना रहती है। इसी प्रकार जो योगी यमो और नियमो का पालन नही करता वह पथभ्रष्ट होकर योगभ्रष्ट हो जाएगा।

आसन तथा प्राणायाम—इसी प्रकार आसन और प्राणायाम भी योग-पथ के पथिक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आसनो के द्वारा शरीर पर विजय लाभ होती है और प्राणायाम से प्राण तथा मन वशीभूत हो जाते हैं और प्रकाश पर जो आवरण छाया हुआ होता है वह दूर हो जाता है तथा ज्योतिष्मती वुद्धि उत्पन्न हो जाती है। प्राण की गति के मन्द हो जाने से मन और इन्द्रियो मे उत्तेजना उत्पन्न नही होती। ध्यान और समाधि की योग्यता उत्पन्न हो जाती है। ब्रह्मरध्र मे दिव्य-ज्योति का प्रादुर्भाव होता है। दीर्घकाल तक आसन की स्थिरता हो जाने पर शरीर की सब चेष्टाए शान्त हो जाती है। विपय तथा विकारो से मन हट जाता है और ध्यान तथा समाधि मे सहायक होता है।

प्रत्याहार—इसी प्रकार योग का पाचवा अङ्ग प्रत्याहार सव इन्द्रियो पर वशित्व पैदा करता है। विश्व के सभी धर्मो तथा मत-मतान्तरो की प्रत्याहार मे निष्ठा है। सभी प्रत्याहार द्वारा मन और इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करने पर वल देते हैं। इन पर विजय प्राप्त किए विना इस लोक तथा परलोक मे किसी प्रकार भी सिद्धि लाभ नही हो सकती। नास्तिक तथा आस्तिक सभी लोग इसमे विश्वास करते हैं। अध्यात्मप्रिय लोगो के लिए इसका अनुष्ठान अत्यन्त आवश्यक है।

धारणा, ध्यान, समाधि—अष्टाङ्ग योग को ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी सभी मानते है। जव अनीश्वरवादी समाधि मे पदार्थो का साक्षात्कार करते है तव इनके लिए भी समाधि से पूर्व धारणा तथा ध्यान को सिद्ध करना परमावश्यक होता है। आत्मा, परमात्मा अथवा प्रकृति और इसके कार्यात्मक पदार्थ सव समाधि के द्वारा ही साक्षात्कार का विषय वनते हैं। सारा विश्व इस समाधि को ही तत्त्वज्ञान का साधन मानता है। आधुनिक भौतिक विज्ञानवादी इसी का आश्रय लेते है। इसलिए योग को सार्वभौम-धर्म मानना ही पडेगा। गीताकार ने "योग कर्मसु कौशलम्" कहा है। वुद्धिपूर्वक, युक्तियुक्त, नियम और सयम से जो कर्म किया जाता है वह भी योग है। एकाग्र और समाहित चित्त होकर श्रेष्ठ कर्म करना भी योग है। किसी कार्य मे कटिवद्ध होकर लग जाना, जुड जाना, उसी मे दत्तचित्त हो जाना भी योग है। इस लोक और परलोक के लिए जो सात्विक तथा श्रेष्ठ कर्म एकचित्त होकर किया जाता है वह भी योग ही है। पुराणो मे भी योग की वडी प्रशसा की गई है —

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेप पापपञ्जरम्।
प्रसन्न जायते ज्ञान ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति ।।

इसका भाव यह है कि योगरूपी अग्नि बहुत शीघ्र सपूर्ण पापो को भस्म कर देती है और तत्त्व-ज्ञान को उत्पन्न करके मोक्ष प्रदान करती है। योग ही वस्तु के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार करवाने का सर्वोत्तम साधन है। अन्यत्र भी कहा है—"ध्यानयोगेन सम्पश्येद् गतिमस्यान्तरात्मन । सूक्ष्मता चान्वेक्षेत योगेन परमात्मन ।" ध्यान-योग के द्वारा आत्मा के अर्थात् अन्त करण मे स्थित आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करें। योग के द्वारा आत्मा की सूक्ष्मता का अनुभव करे या प्रत्यक्ष करे। योगी एकान्त तथा शान्त स्थान मे रह कर निरन्तर समाधि द्वारा आत्मा को प्रत्यक्ष करे। इसका प्रतिपादन गीता मे 'योगी युञ्जीत सततमात्मान रहसि स्थित' कहकर किया गया है। योग के द्वारा आत्म-साक्षात्कार करने वाला योगी तपस्वियो से भी बडा माना गया है, कर्म करने वालो से भी बढकर माना गया है और ज्ञानियो से भी वह महान् है। इसलिए योग करने वाले योगी की और योग की सर्वत्र प्रशसा की गई है।

सन् १९६४ का शिविर समाप्त होने के पश्चात् श्री महाराजजी ने २ अप्रैल को दिल्ली जाने का निश्चय किया क्योकि सेठ जुगलकिशोरजी का आग्रह था कि पूज्य स्वामीजी महाराज हिमालय से नीचे उत्तर कर सर्वप्रथम राजधानी मे ही पधारे। महाराजजी के निवास और भोजनादि की सब व्यवस्था दिल्ली मे सेठ साहिब ने ही की थी। बिरलाजी की दिल्ली मे कई कोठिया है इसलिए इन्होने योगीराजजी से किसी भी कोठी तथा उद्यान मे निवासार्थ निवेदन किया। 'मिलाप' वाले ओमप्रकाशजी और कैप्टन जगन्नाथजी को स्थान निश्चित करने के लिए भेजा गया। इन दोनो ने पूज्य महाराजजी के लिए बिरला मदिर स्थित सन्त-कुटी को पसन्द किया। सेठजी ने उस कुटिया मे बिजली के पखे आदि लगवा कर उसे ठण्डा रखने का पूर्ण प्रबन्ध कर दिया था क्योकि महाराजजी सदा से ही अधिकतर हिमालय मे ही विराजते थे। गर्मी से ध्यान तथा समाधि मे विघ्न पडता था।

दिल्ली प्रस्थान

पूज्य गुरुदेव को दिल्ली ले जाने के लिए एक कार बिरलाजी ने भेजी और श्री जगदीशचन्द्रजी टावर भी अपनी कार लेकर आगए। स्वर्गाश्रम से श्री महाराजजी के शिष्यो तथा भक्तो ने बडे सम्मान से इन्हे विदा किया। सर्वप्रथम वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर पहुचे। वहा इनके बडे योग्य सन्यासी शिष्य महात्मा प्रभुआश्रितजी ने कई मास से मौनव्रत धारण किया हुआ था। श्री महाराजजी के दर्शन करके ही इस व्रत को खोलना चाहते थे। सैकडो वानप्रस्थी तथा आस-पास के लोग दर्शनार्थ उपस्थित हुए और आपका उपदेशामृत पान करवाने के लिए बार-बार प्रार्थना की। श्री महाराजजी ने महात्माजी को सम्बोधन करते हुए एकत्रित सैकडो नर-नारियो को आध घण्टा तक मौनव्रत के लाभ बतलाते हुए निम्न उपदेश दिया —

"मौन सर्वार्थसाधकम् ।" आश्रमो की शोभा तप, जप, सयम, अभ्यास और मौनव्रत धारण करने वाले सन्तो तथा महात्माओ से होती है। सन्तों और महात्माओ के आश्रम अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त करने के मुख्य केन्द्र होते हैं। श्री महात्माजी ने अदृश्य मौन कई मास से किया हुआ था। मौन दो प्रकार का होता है—आकार मौन और काष्ठ मौन। आकार मौन का अभिप्राय है कि मुह से न बोलना, अत्यन्तावश्यकता आ पडने पर हाथ या आखादि के इगित द्वारा

अथवा लिखकर अपने मतलब को समझा देना। काष्ठ मौन मे अपने भावो को किसी भी प्रकार से व्यक्त नही किया जाता। यह भी तीन प्रकार का होता है—शारीरिक, वाचिक, और बौद्धिक। बहुत काल तक एक ही आसन पर निश्चेष्ट होकर बैठ जाना, किसी भी अग मे चेष्टा न होने देना शारीरिक मौन है। वाणी द्वारा अपने मानसिक भावो को व्यक्त न करना वाचिक मौन है। कर्म और ज्ञान की चेष्टा का या गति का अथवा क्रिया का नितान्त अभाव करके शून्य कर देना मन और बुद्धि का मौन कहलाता है। बुद्धि अपने निर्णयो का मन के द्वारा ही आदान प्रदान करती है। जब बुद्धि की चेष्टा, चिंतन अथवा विचार का अभाव हो जाता है तब मन का कोई भी अवलम्बन नही रहेगा, अत वह शान्त होकर बैठ जाएगा। यह मौन अत्यन्त कठिन है। इसको कोई विरला योगी ही धारण कर सकता है। यह सर्व सस्कारो का निरोध करने मे बडा सहायक होता है और स्वरूप मे स्थिति का हेतु होता है। किसी के सामने न होना और न जाना अदृश्य मौन है। इसमे भी वाणी का कोई व्यवहार नही होता और न कोई इशारा ही किया जाता है। केवल सेवक पर किसी अन्य प्रकार से इच्छा प्रकट की जा सकती है। ये मौन शरीर, मन, वचन और कर्म की तथा अन्त करण की शुद्धि करने वाले है। भक्ति, वैराग्य और ज्ञान को उत्पन्न करने वाले है। मोक्ष के पथ पर ले जाकर जन्म और मरण के बधन से मुक्त करने वाले हैं।

श्री महाराजजी ने अनेक प्रकार से मौन व्रत के लाभ समझाए।

सन्त-कुटी मे निवास—ज्वालापुर से प्रस्थान करके साढे बारह बजे दिल्ली की सीमा पर पहुचे। यहा पर द्वारिकानाथजी सोधी सपरिवार अपने कारखाने मे स्वागतार्थ उपस्थित थे। मुख्य द्वार पर इनका स्वागत करके अपने कारखाने मे लेगए। सोधीजी ने बिरला मदिर मे महाराजजी के पधारने की सूचना भिजवा दी और यह भी कह दिया कि ये १०-१५ मिनिट मे यहा से प्रस्थान करके वहा पहुच रहे हैं। कारखाने मे उपस्थित सभी लोगो को महाराजजी ने आशीर्वाद दिया और अपनी शुभ-कामना प्रकट की। सोधीजी ने स्वामीजी महाराज के पधारने के उपलक्ष्य मे सबको प्रसाद बाटा और जलपान करवाया। लगभग डेढ बजे बिरला मदिर पहुचे। यहा पर भी पण्डित देवधरजी तथा अन्य कई सज्जन स्वागत के लिए उपस्थित थे। स्वागत के पश्चात् लोग महाराजजी को मदिर मे दर्शनार्थ लेगए। दर्शन करने के बाद सन्त-कुटी मे पधारे। लगभग दो बजे सबने इकट्ठे बैठकर भोजन किया। एक घण्टा विश्राम करने के पश्चात् आगन्तुक भक्तो को दर्शनार्थ और शका समाधान के लिए समय दिया गया। सेठ बिरलाजी ने महाराजजी के दिल्ली पधारने की सूचना 'हिन्दुस्तान' मे निकलवा दी थी जिससे लोग इनके दर्शन और सत्सग से लाभ उठा सके। इसी प्रकार की सूचना श्री ओमप्रकाशजी ने भी अपने दैनिक 'मिलाप' मे भी निकलवा दी थी। बहुत भारी तादाद मे दर्शन करने, शका समाधान करवाने तथा सत्सग से लाभ उठाने के लिए लोगो ने आना प्रारभ कर दिया। पडित शकरलालजी शर्मा पूज्य महाराजजी के सेक्रेटरी थे। दिल्ली मे इनके भक्त, सेवक, श्रद्धालु सैकडो ही थे। अत दोपहर का भोजन यही होता था। दर्शनार्थ तथा शका समाधान के लिए लोगो का सारा दिन ताता सा बधा रहता था।

दिल्ली मे पूज्य गुरुदेवजी के उपदेश—प्राय प्रतिदिन महाराजजी को कई-कई घण्टे दर्शनार्थियो को देने पडते थे। लोग आपका उपदेशामृत पान करने के लिए लालायित हो रहे थे। अत सायकाल ४ बजे से ६ बजे तक इनके उपदेशो का आयोजन किया गया और प्रात ९ से ११ बजे का समय लोगो को मिलने के लिए नियत कर दिया गया। दिल्ली तथा इसके आस-पास की जनता ने आठ दिन तक पूज्य स्वामीजी महाराज के उपदेशो मे लाभ उठाया। हजारो की सख्या मे लोग आपके उपदेश श्रवण के लिए आते थे। कई ध्वनि प्रसारक यन्त्र लगाए गए जिससे दूर-दूर मे भी जनता भली प्रकार से सुन सके। महाराजजी के योग तथा आध्यात्मिक गूढ और गहन विषयो पर नित्य प्रवचन होते थे। अनेक व्यक्तियो ने आपके भाषणो को टेपरिकार्डर मे भी लिया। यहा पर इनके जितने उपदेश हुए थे उनका सारांश सक्षेप रूप से निम्न प्रकार है —

उपदेश

ब्रह्म-ज्ञान प्रदाता—गुरुआत्मज्ञानार्थ गुरु की आवश्यकता—जिसने स्वय आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर लिया है और जो स्वय ससार के बन्धनो से मुक्त हो चुका है, ऐसे गुरु के पास समित्पाणि होकर जाए। समित् का अर्थ है समिधा और पाणि का अर्थ है हाथ, अर्थात् हाथ मे समिधा लेकर जाए। ऐसा गुरु कौन हो सकता है? सन्यासी तो हो नही सकता। ऐसा गुरु वानप्रस्थी ही हो सकता है, क्योकि वानप्रस्थी ही यज्ञादिक कर्म किया करते है। प्राचीन मर्यादा के अनुसार एक सस्कार तब होता था जब बालक गुरुकुल मे अध्ययनार्थ जाता था और दूसरा सस्कार तब होता था जब वह ब्रह्म-विज्ञान की जिज्ञासा लेकर किसी अरण्यवासी ब्रह्म-ज्ञानी के पास जाता था। ब्रह्म-ज्ञानी गुरु सर्वप्रथम उसका दूसरी बार उपनयन किया करता था। इसके पश्चात् वह आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश देना प्रारम्भ किया करता था। इससे यह सिद्ध होता है कि यह विधि अरण्यवासियो की ही थी क्योकि समिधा लेकर जाने की तो उन्ही के पास आवश्यकता थी। वे ही यज्ञादि कर्म किया करते थे। शास्त्र का यह विधान है कि जिसका सर्व प्रकार से भोग और कर्म से निर्वेद (वैराग्य) हो चुका हो वही आत्मज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान का अधिकारी है। अब हम आपसे पूछते है कि आपमे से कितनो को निर्वेद हुआ है और कितने आत्म-ज्ञान के अधिकारी हो चुके है। जो भी पास आते है वे आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान से नीचे की बात तो करते ही नही परन्तु उनकी प्राप्ति से पूर्व तो पूर्ण वैराग्य की आवश्यकता है। क्या आप बता सकते है कि आपमे से कितनो को वैराग्य हुआ है।

ज्ञान-प्राप्ति की पात्रता—शास्त्र के आदेश के अनुसार इस ज्ञान का अधिकारी वही हो सकता है जिसने साधन-चतुष्टय का पालन किया है। अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान के लिए चार प्रकार के साधनो को अपना कर ही अधिकारत्व प्राप्त किया जा सकता है।

साधन-चतुष्टय—आत्म-ज्ञान का अधिकारी वही हो सकता है जो वीतराग हो और साधन-चतुष्टय से सम्पन्न हो। साधन-चतुष्टय किसे कहते है? शम, दम, उपरति तथा तितिक्षा, यह साधन-चतुष्टय है।

शम—शम का अर्थ है मन को शान्त करना। भोगो से जब तृप्ति होगई हो, ससार के विषयो से उपरामता प्राप्त होगई हो तथा मन विरक्त होने लग गया हो,

तभी प्रथम साधन 'शम' मे स्थिति सभव है। तृतीय आश्रम वानप्रस्थ मे प्रवेश पाने के इच्छुक गृहस्थी को इसकी भूमिका गृहस्थाश्रम मे ही तैयार करनी चाहिए। गृहस्थ मे ही उसकी भोग और विलास के प्रति अरुचि और उदासीनता सी होनी प्रारम्भ हो जानी चाहिए। गृहस्थ के सुखो और भोगो से उसका मन शान्त होने लग जाए क्योकि 'शमवानेव राज्यते', अर्थात् शमवान् ही प्रकाश अर्थात् ज्ञान को प्राप्त करता है।

दम—दूसरा साधन है 'दम'। इसका अर्थ है इन्द्रियो पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना। वेलगाम घोडे के समान इन्द्रियो को कभी स्वेच्छाचारणी न होने देना चाहिए। जिसने अपनी इन्द्रियो पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है, वही वास्तव मे आत्म-ज्ञान का अधिकारी बन सकता है। इन्द्रियो पर वशित्व होने के पश्चात् ही प्रत्याहार-सिद्धि प्राप्त होती है। यह योग का पाचवा अग है। इस वशित्व की तैयारी गृहस्थाश्रम मे ही होनी चाहिए।

उपरति—बुद्धि या चित्त का ऐहिक और पारलौकिक दोनो प्रकार के विषयो से विरक्त होना या उपराम हो जाना। ऐहिक विषयो का अर्थ है पाच भौतिक विषय अर्थात् स्थूल इन्द्रियो के विषय। इनके प्रति उपरति होनी चाहिए। इतना ही नही किन्तु स्वर्गीय विषयो, जिनको सूक्ष्म या दिव्य भोग कहा जाता है उनके उपभोग की भी इच्छा न रहे। जो ऐसा कर सकते है उन्हीको प्रत्याहार सिद्धि लाभ होती है। इसीका नाम 'वशीकार सज्ञा वैराग्य' है। योगदर्शनकार महर्षि पातजलि ने इस वैराग्य का लक्षण "दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसज्ञावैराग्यम्" किया है। स्थूल इन्द्रियो के विषय दृष्ट कहलाते है और दिव्य विषय स्वर्गीय विषय हैं। इन्हे सूक्ष्म शरीर के द्वारा भोग किया जाता है। इन दोनो प्रकार के विषयो से जिनकी बुद्धि उपराम होगई है वे ही आत्म-ज्ञान के अधिकारी है।

तितिक्षा—तितिक्षा का अर्थ है सर्व प्रकार के द्वन्द्वो का सहन करना। मान-अपमान को समान समझना। हानि-लाभ को बराबर जानना। हर्ष मे प्रफुल्लित होकर नर्तन करने नही लगना और शोक मे व्याकुल न होना। मन साम्य सदैव स्थिर रहना चाहिए। प्रतिकार की भावना का उदय ही न होने देना। कष्टो, दु खो तथा आपत्तियो को सहन करना। कभी क्षुब्ध न होना। सदैव एक रस रहने का प्रयत्न करना। सभी प्रकार की विषमताओ को सहन करना। शीत, उष्ण, भूख, प्यास को बर्दाश्त करना। वेदना तथा पीडा मे क्षोभ को प्राप्त न होना। मन और बुद्धि मे एक शान्त भाव बनाए रखना। सर्व प्रकार के आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधि-दैविक दु खो को सहन करते हुए इनके निवारण के लिए पुरुषार्थ करना 'तितिक्षा' कहलाती है। इन चारो प्रकार के साधनो से सम्पन्न व्यक्ति ही आत्म-ज्ञान का अधिकारी हो सकता है।

मनःशान्ति—सब लोग शिकायत करते हैं, विशेषकर गृहस्थी, कि "महा-राजजी, हमारा मन शान्त नही होता।" हम आपसे पूछते है कि आपके पास शाति को प्राप्त करने के साधन कौन से हैं। शान्ति प्राप्ति के साधन तो ये शम, दम, उपरति और तितिक्षा ही है। आपके पास जो साधन उपलब्ध हैं वे तो सारे अशान्ति के ही हैं। सारा दिन इतने व्यवहार मे डूबे रहते हो कि न दिन को चैन है और न रात

की नींद । जब तक शम, दम, उपरति और तितिक्षा का आचरण नही करोगे तब तक शान्ति की प्राप्ति नही हो सकती ।

आज का युग बडे संघर्ष का है । आप लोगो की कामनाए इतनी अधिक बढी हुई है, जिनकी पूर्ति के लिए रात-दिन संघर्ष मे लगे रहना पडता है । तब भी आपकी आवश्यकताओ की पूर्ति नही होती । इन संघर्षो का अन्त तब होगा जब आप अपनी आवश्यकताओ को कम करेगे और सन्तोष धारण करेगे । ऐहिक और स्वर्गीय विषय भोगो से चित्त को उपराम बनावेंगे । जब तक ऐसा नही होगा तब तक शान्ति की अवस्था नही आवेगी । जब तक इन्द्रियो और मन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त नही होता तब तक शान्ति की उपलब्धि नही होगी । ससार के सर्व भोग्य पदार्थ पास होते हुए भी उनके भोगने की इच्छा न रहे, यह भावना दृढ होनी चाहिए । अनमिले के तो सभी त्यागी और वैरागी बन जाते हैं । सर्व प्रकार के भोग्य पदार्थ पास होते हुए भी इनका भोग न करने का नाम ही उपरति, वैराग्य अथवा त्याग है । भोगी और विलासी तथा विषयो में आसक्त लोग आकर जिज्ञासा करते हैं कि मन शान्त नही होता । शान्ति प्राप्त करने के उपरोक्त साधनो को अपनाओ, उन पर आचरण करो, तभी मन शान्त होगा । जो व्यक्ति रात और दिन विषय और भोगो के उपार्जन मे लगा रहता है, जिसके पास सन्तोष नाम की कोई चीज है ही नही, जिसकी तृष्णा की कोई सीमा नही और न निवृत्ति की कोई अवधि ही निश्चित की है, जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त लोक-सग्रह मे ही लगा रहता है, सारा जीवन हाय-हाय करता हुआ ससार से खाली हाथ चला जाता है, उसको शान्ति कैसे लाभ हो सकती है ! वह मृत्यु के समय अपने साथ अनेक प्रकार की अधूरी और अपूर्ण कामनाए लेकर जाता है और उन्ही के अनुसार दूसरा जन्म धारण करता है । इसी प्रकार के जन्म और मरण के चक्र मे पडकर भटकता रहता है । यह मानव देह बडे पुण्य कर्मो से प्राप्त हुआ था । उसका सदुपयोग न करके इसका दुरुपयोग किया । इसका सदुपयोग था आत्म-ज्ञान प्राप्ति द्वारा मोक्ष लाभ । वह किया नही । खरीदना तो था ब्रह्म-ज्ञान रूपी सोना और भ्रांति तथा अज्ञान वश खरीद बैठा पीतल । यह पीतल क्या है ? ससार के भोग और विलास । मानव देह की प्राप्ति का उद्देश्य तो वास्तव मे मोक्षलाभ करना था पर वह नही किया । ससार के भोग तो दूसरी योनियो में भी भोगे जा सकते है और मन तथा इन्द्रियो की तृप्ति भी हो सकती है । जिस प्रकार आप बढिया स्वादिष्ट मिठाई तथा नाना प्रकार के व्यजन खाकर तृप्त होते है, इसी प्रकार शूकर विष्ठा खाकर तृप्त हो जाता है । अब आप ही बताए कि उस शूकर और मनुष्य मे क्या अन्तर है ? उस मनुष्य देह का उद्देश्य तो ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करना था, इस ओर तो ध्यान नही दिया । जो कर्त्तव्य था उसका पालन नही किया और व्यर्थ इधर-उधर विषयो के पीछे-पीछे भटक-भटककर जीवन बर्बाद कर दिया और ब्रह्म-ज्ञान से वचित होकर ही ससार से जाना पडा । हीरे के समान अमूल्य जीवन को गुजा के बदले दे बैठे । परन्तु हमे समझ नही आ रही है । सारा जीवन वेद-शास्त्रो की बातें सुनते होगया । बूढे होगए है, किन्तु टस से मस नही होते । प्रतिवर्ष यहा पर सैकडों विद्वान् आते हैं और उपदेश देकर चले जाते हैं, किन्तु खेद है कि आप एक कान से सुनते है और दूसरे से निकाल देते है । आपके जीवन पर उसका कुछ भी प्रभाव नही पडता । जैसे

आप यहा पर बैठे सुन रहे है ऐसे ही सारा जीवन सुनते-सुनते होगया है। यहा पर हमे एक दृष्टान्त स्मरण हो आया है। एक समय की वात है कि एक महात्मा एक सभा मे ज्ञान और वैराग्य पर उपदेश दे रहे थे। सव श्रोता सुन रहे थे। एक राजकुमार भी वहा पर भ्रमण करता हुआ आ निकला। वह घोडे पर सवार था, इसलिए वाहिर खडा होकर ध्यानपूर्वक महात्मा के उपदेश को सुनता रहा। राजकुमार का अन्त करण अत्यन्त निर्मल था इसलिए उस पर महात्मा के उपदेश का वहुत अच्छा प्रभाव पडा। वह उसी समय अपना घोडा छोडकर वन मे तपस्या करने चला गया और यह प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार का उपदेश यहा सुना है मैं उसी प्रकार आत्म-ज्ञान प्राप्त करूगा। यह सवसे वडा राजकुमार था। इसी को गद्दी प्राप्त करने का अधिकार था, किन्तु इसने राजसिहासन को भी ठुकरा दिया और ईश्वर प्राप्ति के लिए वन मे चला गया। वन मे रहकर कई वर्ष तक योग-साधन द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त किया। इसके पश्चात् उसके मन मे यह विचार आया कि जिस महात्मा के सदुपदेश से मुझे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हुई है उस पूज्य गुरुदेव के चरणो मे धन्यवाद अर्पण करना चाहिए। वह उस महात्मा के आश्रम मे गया। उसने वहा देखा कि गुरुदेव पूर्ववत् उपदेश दे रहे है और प्राय वे ही श्रोतागण जिन्हे उसने कई वर्ष पूर्व देखा था उनके उपदेश को सुन रहे है। राजकुमार ब्रह्मचारी था। जटाए वढी हुई थी। पूर्ण जितेन्द्रिय था। राजकुमार ने सत्सग मे प्रवेश किया और वहा वैठे जो लोग उपदेश सुन रहे थे उनमे से प्रत्येक का सिर हिलाया और जव १०-२० व्यक्तियो का सिर हिला चुका तव गुरुदेव ने पूछा, "महात्माजी ! आप यह क्या कर रहे हैं ?" राजकुमार ने कहा, "महाराज, मैं यह देख रहा हू कि ये श्रोतागण मिट्टी या पत्थर की मूर्तिया है या जीते-जागते मनुष्य है। १२ वर्ष इनको उपदेश सुनते होगए, किन्तु इनके ऊपर उपदेश का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नही हो रहा है और न इनके जीवन मे ही किसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई दे रहा है। मैंने तो आपका उपदेश केवल एक घण्टा ही सुना था, मैं तो उसी मे कृतकृत्य होगया।"

राजकुमार के समान मनुष्य ही आत्म-ज्ञान का अधिकारी हो सकता है, विपयासक्त नही। मुझे जिस गुरुदेव से आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त हुआ था, धन्य है वे महात्मा ! इतना तत्त्वज्ञान प्राप्त करके भी वे केवल भोजपत्र की कौपीन ही धारण किए हुए थे। लकडियो पर मिट्टी विछाकर एक छोटा-सा आसन वनाया हुआ था। वस, यही उनका विस्तर, आसन और घर था। अव उन्हे इस प्रकार के आत्यन्तिक त्याग और तपश्चर्या की आवश्यकता नही थी। उनके लिए मखमली गद्दे और भोजपत्र दोनो समान थे। वे अत्यन्त ऊचे दर्जे के वीतराग और समदर्शी थे।

प्रवृत्ति का हेतु राग—राग प्रवृत्ति का हेतु होता है। जव तक राग की निवृत्ति न हो तव तक मन शान्त नही हो सकता। जब तक मनुष्य विपयो की अग्नि से सतप्त रहता है तव तक उसे वैराग्य किस प्रकार हो सकता है ! और जव तक वैराग्य नही होता तवतक शान्ति भी प्राप्त नही हो सकती। आप लोगो को उपदेश सुनते वर्षो वीत गए किन्तु वडे खेद की वात है कि आपके चित्त चिकने घडे के समान है, इसलिए उनपर किसी भी उपदेश का असर नही होता। जिस प्रकार चिकने घडे पर एक बूद भी पानी की नही ठहरती, उसी प्रकार आपके चित्तो पर उपदेशो का किंचित्

मात्र भी असर नही होता। बूढे होने पर भी घर मे ही मरना पसन्द करते है। पुत्रो पर भाररूप होकर रहना अधिक रुचिकर मालूम होता है। परिवार के सब सदस्य इनसे तग आ जाते हैं क्योकि वे इनकी सेवा कर-कर के तग आ जाते हैं। सेवा करें भी कैसे, क्योकि सेवा की भावनाए उनमे पैदा ही नही की जाती। आजकल के स्कूलो और कालिजो मे धार्मिक शिक्षा दी नही जाती। इसीलिए आजकल के माता-पिता अपनी सन्तानो की सेवा से वचित रहते हैं। विवाह होते ही युवक पुत्र अपनी पत्नियो को लेकर पृथक् हो जाते हैं और वृद्ध माता-पिता उनकी सेवा से वचित रह जाते है। इतना कष्ट होते हुए भी ये घर में ही पडे रहते है। युवक जैसी शिक्षा प्राप्त करते हैं वैसी ही भावनाए उनमे पनपती है। जब तक विद्यालयो मे हमारी प्राचीन सभ्यता और सस्कृति की शिक्षा नही दी जाएगी तब तक युवको के अन्दर धार्मिक भावनाए और आध्यात्मिक विचार उत्पन्न नही हो सकते। हमारी तथा विदेशी सभ्यता और सस्कृति तथा धर्म और शिक्षा मे महान् अन्तर है। हमे आख बन्द करके तथा बिना सोचे-समझे पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण नही करना चाहिए। हम सभ्यता तो पश्चिमी अपना रहे हैं और सुख तथा शान्ति भारत की चाह रहे हैं। प्राचीन भारत मे केवल गृहस्थी धनोपार्जन करता था और वही ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमो का पालन करता था। आधुनिक गृहस्थियो की योरुप की देखादेखी आवश्यकताए इतनी बढ गई है कि वे अपनी आय मे अपना ही जीवन सुखपूर्वक व्यतीत नही कर सकते। उनमे दूसरे आश्रमो की सेवा अथवा पालन-पोषण की क्या आशा की जा सकती है!

जो लोग ससार के विषय-भोगो मे लिप्त हैं, जिनकी बुद्धि निश्चयात्मक नही हुई है, जो साधन-चतुष्टय सम्पन्न नही हुए है, और जिन्होने समाधि के पूर्व की स्थिति प्राप्त नही की है, ऐसे मनुष्य आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त नही कर सकते। आप नित्य विज्ञान तो सुनते हैं अरण्यवासियो का, किन्तु दिनरात ससार के भोग मे आसक्त रहते हैं। हमे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप लोगो को ब्रह्म-विज्ञान का उपदेश देना बकरी के आगे बीन बजाना अथवा अरण्यरोदन ही है। सारा जीवन उपदेश सुनते रहेगे परन्तु करेंगे कुछ नही। जब करना ही कुछ नही तो भले ही आप हजार वर्ष तक उपदेश सुनते रहे, जन्मजन्मान्तरो तक सुनते रहे, तो भी कुछ प्राप्त नही होगा। यदि आचरण किया जाए तो एक दिन का ही उपदेश पर्याप्त होता है। राजकुमार ने एक घण्टा ही तो उपदेश सुना था। इससे उसके जीवन मे महान् परिवर्तन होगया। उसने वन मे जाकर कठिन तप और साधना करके आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया। हम यह नही कहते कि आप राजकुमार की तरह अभी वन मे भाग जाओ, किन्तु हम इतना अवश्य चाहते है कि ५० वर्ष तक गृहस्थ भोगने के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करके और ससार के भोगो से उपराम होकर आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए यत्न करो। आप शान्ति की बातें तो करते है परन्तु उसके साधनो को जीवन मे चरितार्थ नही करते। शान्ति कैसे प्राप्त हो! बूढे-बूढे भी दिनरात भोगो मे आसक्त रहते है। आखिर इन भोगो का कभी अन्त तो होना चाहिए। शरीर तथा इन्द्रियो के शिथिल होने पर यदि अन्त हुआ तो इसमें क्या विशेषता है! महत्व की बात तो तब है कि युवा अवस्था मे ही अधिकारपूर्वक त्याग किया जाए। अन्यथा

मरने के बाद तो ये स्वय ही छूट जाएगे । अभी कुछ पूर्व ही मैंने साधन-चतुष्टय की व्याख्या की थी परन्तु इतना और बता देते है कि तितिक्षा के द्वारा ज्ञान और वैराग्य को दृढभूमि किया जाए । जीवन मे इतनी सहनशीलता आ जाए कि आपत्ति आई हो, मुसीबत मे फस गए हो, दुःख या सकट मे ग्रस्त होगए हो, उस समय उद्यम, साहस, बल, बुद्धि, पराक्रम, धैर्यादि बना रहना चाहिए । इनके स्थिर रहते हुए आपके उद्देश्य की पूर्ति भी हो जाएगी और सब क्लेश भी दूर हो जाएगे तथा शान्ति लाभ होगी।

अधिकारी गुरु तथा शिष्य—साधन-चतुष्टय सम्पन्न होकर किसी आत्म-ज्ञानी गुरु की शरण मे जाना चाहिए । इस सम्बन्ध मे उपनिषद् का वचन है —

परीक्ष्य लोकान् कर्मचित्तान् निर्वेद ब्राह्मणो निर्वेदमापन्नास्त्यकृत कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम् ॥

इसका भावार्थ यह है कि ससार के भोग और कर्मों को भली प्रकार सोच विचार कर परीक्षा करके इस विद्वान् को वैराग्य हुआ है । इस विद्वान् को आत्म-ज्ञान और ब्रह्म की प्राप्ति के लिए समिधा लेकर गुरु के पास जाना चाहिए । वह गुरु कैसा हो, इस विषय मे उपनिषद् कहता है कि वह पूर्ण विद्वान् हो । आत्म-ज्ञानी और ब्रह्म-ज्ञानी हो । जब शिष्य श्रद्धा और भक्ति पूर्वक ऐसे गुरु के पास जाता है तब वह इसे आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान प्रदान करता है । गुरु के विषय मे उपनिषद् का कथन है —

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षर पुरुष वेद सत्य प्रोवाच्य त तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥

श्री भगवान् कृष्णचन्द्रजी के आत्म-ज्ञान के गुरु ब्रह्मर्षि उपमन्यु थे । जब ये ऋषि अपने गुरु गौतम के पास गए तब उन्होने श्री गौतम से आत्म-ज्ञान की जिज्ञासा की, तब गौतम ने इन्हे आदेश दिया कि हमारी गौशाला की गायो को वन मे चराने के लिए ले जाओ । जब इनकी सख्या एक हजार हो जाए तब लौट कर आना । उस समय यदि योग्य समझेंगे तब तुम्हे आत्म-ज्ञान प्रदान कर दिया जाएगा । उपमन्यु गायो को चराने वन मे चले गए । उस वन के समीप कोई बस्ती नही थी जहा से वे भिक्षा मागकर लाते, अत भोजन का कोई अन्य साधन न देखकर वे गायो के दूध से उदरपूर्ति कर लेते थे । कुछ काल के पश्चात् गौतम ने उपमन्यु को बुलाया और गायो का सब समाचार पूछने के उपरान्त उनके भोजन की व्यवस्था के बारे मे पूछने पर विदित हुआ कि उपमन्यु आवश्यकतानुसार बछडो के पी लेने के उपरान्त गायो का दूध पीकर निर्वाह कर लेते थे क्योकि भिक्षाचर्या के लिए वन के आसपास कोई गाव नही था । महर्षि गौतम से आज्ञा प्राप्त किए बिना ही ये गायो का दुग्धपान करते रहे थे, अत गुरुदेव ने इन्हे गायो का दूध पीने से मना कर दिया । उन्हे यह सदेह हो गया था कि कही उपमन्यु के प्रति दया भाव रखकर बछडे स्वय दूध कम पीकर अधिक दूध उसके लिए छोड देते हो । गुरु ने शिष्य को पुन गायो को चराने के लिए वन मे जाने का आदेश दिया । जब उपमन्यु को भूख लगी और उसे कोई अन्य साधन क्षुधा को शान्त करने का वन मे उपलब्ध नही हुआ तब उसे एक उपाय सूझा । अब उसने गायो का दूध तो नही पीया, किन्तु दूध पीने के उपरान्त बछडो के मुह से जो दूध की झाग सी निकलकर भूमि पर गिर जाती थी उसे उठाकर खाना प्रारम्भ कर

दिया। नीचे गिरी हुई झाग किसी काम तो आ नहीं सकती थी। व्यर्थ ही जाती, अतः इससे अपनी क्षुधा शान्त की। जब उपमन्यु को वन में गए बहुत दिन होगए और वह कहीं दिखाई नहीं दिया तब गौतम महर्षि ने अपने ब्रह्मचारियों के द्वारा उसे बुलवाया और उसका सब समाचार ज्ञात किया। पूछने पर मालूम हुआ कि उपमन्यु अब दूध नहीं पीते किन्तु दूध पीते समय बछड़ों के मुंह से जो झाग नीचे ज़मीन पर गिर जाती है उसे खाकर निर्वाह करते रहे हैं। गुरुजी ने कहा, "बछड़े आप पर दया करके बहुत झाग गिराते होंगे और स्वयं भूखे रह जाते होंगे, अतः आपके लिए झाग खाना उचित नहीं है, आज से झाग मत खाया करना।" वह गुरु-आज्ञा पाकर पुनः गायों को चराने के लिए वन में चला गया। कई दिन तक उसने कुछ नहीं खाया। खाता भी क्या! वहां खाने के लिए कुछ था ही नहीं। एक दिन वह अत्यन्त क्षुधार्त होगया। वन में वृक्षों के पत्तों और घासफूसादि के अतिरिक्त कुछ नहीं था, अतः गायों के समान इसने भी पत्ते खाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों में पतझड़ ऋतु आगई। वृक्षों के सब पत्ते सूख गए। पेड़ों के सब पत्ते झड़ गए। अब जंगल में कुछ खाने के लिए नहीं रहा। कई दिन तक कुछ नहीं खाया। शरीर अत्यन्त कृश होगया। शक्ति कम होगई। क्षुधा के मारे अत्यन्त व्याकुल होगए। इन्हीं दिनों वसन्तागम होगया। सर्वप्रथम इस ऋतु में अर्क की कोंपलें निकलनी प्रारम्भ हुई। उपमन्यु ने इन्हें ही खाकर अपनी क्षुधा निवृत्ति करना प्रारम्भ कर दिया। जब भूख लगती तो वे इन नए-नए पत्तों को भक्षण करके दिनों ही तक अपनी क्षुधा शान्त करते रहे। लगातार कई दिनों तक पत्तों के खाने से उनके शरीर में अत्यन्त खुश्की होगई और उष्णता भी बहुत बढ़ गई। इसके परिणामस्वरूप इनकी नेत्रज्योति नष्ट होगई और दीखना बिल्कुल बन्द होगया। ऐसी अवस्था में एक गाय की पूंछ पकड़कर गायों को चराने के लिए जाने लगे। जिधर वह गाय जाती उधर ही वह चले जाते थे। ये गायें सब झुण्ड में ही चलती थीं और एक ही स्थान पर एकत्रित होकर बैठ जाती थीं। दैवयोग से एक दिन बड़ी भारी आंधी आई और वर्षा भी होने लगी। सभी गायें इधर-उधर भागने लगीं। इसी गड़बड़ में दुर्भाग्यवशात् उपमन्यु के हाथ से गाय की पूंछ छूट गई। गायों को एकत्रित करने के लिए जब वह इधर-उधर भटकता फिर रहा था तब एक कूएं में गिर पड़ा। वहां पर उसे कुछ थोड़ा सा अवलम्ब मिल गया, उसी के सहारे वहां टिका रहा। इसी प्रकार कई दिन व्यतीत होगए। गुरुजी ने अपने शिष्यों को उपमन्यु को ढूंढकर पास बुलाने के लिए वन में भेजा। उन्हें वह कहीं भी वन में दिखाई न दिया, अतः निराश होकर लौट आए। तब ब्रह्मर्षि गौतम स्वयं ढूंढने के लिए गए और वन में जाकर उपमन्यु को ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें लगाईं। इसने गुरुजी की आवाज़ को पहिचान लिया और कूएं में से ही चिल्लाकर कहा, "गुरुजी, मैं कूएं में गिरा पड़ा हूं।" गुरुजी ने तुरन्त उसे कूएं से निकाला और उसे अंधा देखकर बहुत दुःखी हुए। उसे एक श्रुति का मंत्र उच्चारण करने का आदेश दिया। मन्त्रोच्चारण करते ही उसकी आंखों में पूर्ववत् ज्योति आगई और इसके पश्चात् गुरुजी ने ज्योंही उसके मस्तक पर हाथ फेरा त्योंही वह समाधिस्थ होगया और आत्म-साक्षात्कार लाभ हुआ।

आचार्य लोग कठिन परीक्षा लेने के उपरान्त जब शिष्य को आत्म-ज्ञान का अधिकारी समझते थे तभी आत्म-साक्षात्कार करवाते थे। एक आप हैं जो घर में

आराम से बैठकर सभी प्रकार के लौकिक सुखो का उपभोग करते हुए आत्म-साक्षात्कार करना चाहते है। आप घर मे ही रहकर भोग और मोक्ष दोनो को प्राप्त करना चाहते हैं। ये दोनो साथ-साथ नही चल सकते। जहा भोग है वहा मोक्ष नही और जहा मोक्ष है वहा भोग नही। भोग का फल दु ख और दु खो से छुटकारा मोक्ष है।

साधन के अनुरूप प्राप्ति--आप तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति के लिए वलिदान कुछ नही करना चाहते और प्राप्ति का लक्ष्य बहुत ऊचा वनाए बैठे है। इस प्रकार के बहुत ऊचे तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमारे ऋषियो और मुनियो ने गृह परित्याग करके ऐहिक सुखो से मुह मोडकर वर्षों ही वनो मे वास करके तप और साधना की थी। उनमे भी किसी विरले को ही तत्त्व-ज्ञान लाभ होता था। गीता मे इसी वात का प्रतिपादन किया गया है —

मनुष्याणा सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये।

आप मेरे ही जीवन को देखे। मैं १४ वर्ष की आयु से ही घर के सव प्रकार के सुख, आराम तथा भोगो का परित्याग करके आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान के अनुसधान मे लगा हुआ हू। इतने दीर्घकाल तक अनेक सघर्षों का सामना किया है। तप, त्याग, शम, दम, उपरति तथा तितिक्षा को जीवन मे चरितार्थ करने के लिए महान् प्रयत्न किया है। इसके परिणामस्वरूप मुझे जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति हुई है और तत्त्व-ज्ञान लाभ करके परम सन्तोप प्राप्त हुआ है।

जो व्यक्ति जिस प्रकार की कामना अथवा उद्देश्य को लेकर प्रयत्न करता है उसको उसकी प्राप्ति अवश्य होती है। सासारिक लोग ससार के भोग और ऐश्वर्य की उपलब्धि के लिए प्रयत्न करते है, उनमे से अधिकाश को ये अवश्य प्राप्त होते है। जो मोक्ष-प्राप्ति के लिए यत्नशील होते हैं और तदनुकूल साधनो को अपनाते है उन्हे मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

श्रेय और प्रेय मार्ग--ससार मे दो प्रकार के मार्ग है। एक श्रेय तथा दूसरा प्रेय। आप लोगो ने प्रेय-मार्ग को अपनाया है और इसी मार्ग पर चल रहे है। यह मार्ग देखने मे अत्यन्त प्रिय मालूम होता है किन्तु इसका अन्तिम परिणाम दु खदायी होता है। यह 'विषकुभ पयोमुखम्' की तरह से है। यह मार्ग इस प्रकार का घडा है जिसके भीतर विष ही विष भरा है किन्तु उसके मुह पर थोडा सा दूध है। इस थोडे से दूध के लालच मे फसकर जो दूध पीना चाहता है उसे विप पान भी करना पडता है। ससार के विषय और भोग सेमर के फल के समान है जो दूर से देखने मे वडा सुन्दर प्रतीत होता है किन्तु जव उसे चखने लगते है तो कुछ भी हाथ नही आता। उसके अन्दर तो रूई होती है जो हाथ लगाते ही उड़ जाती है। इसके विपरीत दूसरा मार्ग श्रेय-पथ है। यही मार्ग ऐसा है जिस पर चलकर सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है। इसका समर्थन उपनिषद् इस प्रकार करता है —

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेन
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

यदि वास्तव में सच्ची जिज्ञासा और हार्दिक इच्छा तत्त्व-ज्ञान और मोक्ष प्राप्ति की आप लोगों की है तो इस श्रेय-मार्ग पर चलकर कल्याण के भागी बनें। हमारे जीवन का अनुभव तो यह है कि गुरु के बिना आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। जिस प्रकार विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में गुरुओं के पास पढ़ कर लौकिकी-विद्या प्राप्त की जाती है इसी प्रकार अध्यात्म-विद्या भी ब्रह्म-ज्ञानी गुरुओं से प्राप्त की जाती है। अभी-अभी मैंने आपको बताया था कि उपमन्यु ने ब्रह्मर्षि गौतम से आत्म-ज्ञान प्राप्त किया था। इसी प्रकार इन्द्र ने प्रजापति से, नचिकेता ने यमाचार्य से इस ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त किया था। इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण आपको वैदिक साहित्य के अध्ययन से मिलेंगे। आप भी किसी आत्म-ज्ञानी गुरु की शरण में जाकर अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त करें। तभी आप मानव जीवन की सफलता लाभ करके कृतकृत्य हो सकते हैं।

आत्म-ज्ञान प्राप्ति का क्रम

पिछले व्याख्यानों में मैंने, आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के अधिकारी बनने के लिए किस प्रकार की योग्यता मनुष्य में होनी चाहिए इस विषय पर आपको समझाया था। अब आप साधन-चतुष्टय सम्पन्न होकर आत्म-द्वार पर पहुंच गए हैं। इसलिए आज आत्म-ज्ञान की प्राप्ति तथा उसकी प्राप्ति के साधनों पर प्रकाश डाला जाएगा।

आत्मा के तीन दुर्ग—इस आत्मा के तीन दुर्ग हैं अथवा तीन द्वार हैं। प्रथम दुर्ग स्थूल शरीर है। दूसरा दुर्ग सूक्ष्म शरीर तथा तीसरा कारण शरीर है। ये तीनों दुर्ग आत्मा के ऊपर एक प्रकार के कोष के रूप में हैं। इन तीनों शरीरों में अन्तिम जो कारण शरीर है, इसमें चित्त वर्तमान है। इसी में आत्मा का निवास स्थान है। प्रथम दुर्ग स्थूल शरीर है। इसमें दो प्रवेश द्वार हैं। एक को मूलाधार कहते हैं और दूसरे को भ्रूमध्य या त्रिकुटि। जब अभ्यासी साधक ध्यान-योग में बैठे तब इन्द्रियों और मन को समाहित करके नेत्रों को बन्द करे तथा मस्तिष्क को ढीला छोड़ दे। भ्रूमध्य में एक प्रकार की शान्त, मधुर और कोमल सी दृष्टि डाले। एक प्रकार के अलौकिक दिव्य प्रकाश की भावना पैदा करे अथवा कल्पना सी करे। इस भावना के आधार पर कुछ काल के अभ्यास से एक दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव होगा। यह दिव्य ज्योति क्या है और किसकी है? यह दिव्य ज्योति वास्तव में सूक्ष्म नेत्र या दिव्य नेत्र की ज्योति है। जब स्थूल नेत्र खुले होते हैं तब ये स्थूल नेत्र बाहिर के पदार्थों को दिखाते हैं। वास्तव में इन स्थूल नेत्रों में जो प्रकाश आया है वह सूक्ष्म नेत्र का ही है। इनके बन्द होने पर सूक्ष्म नेत्र भीतर के पदार्थों को दिखाने लगता है। स्थूल नेत्रों से जब हम बाहिर के पदार्थों को देखते हैं तब बाहिर का प्रकाश—सूर्य, चन्द्र, दीपकादि सहायक होते हैं और जब स्थूल नेत्रों को बन्द कर लेते हैं तब सूक्ष्म नेत्र के देखने में अन्दर के आलोक सहायक होते हैं। वे भीतर के आलोक कौन से हैं? स्थूल शरीर में जो अग्नि तेज के रूप में सहकारी उपादान कारण बना वह तेज हमारे शरीर के भीतर अग्नि के रूप में भी विद्यमान है। दूसरा तेज रूप तन्मात्रा भी हमारे भीतर है। ये ही अन्दर के स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के पदार्थों को दिखाने में सहायक होंगे। इस अभ्यास के अन्दर एक और 'विशोका ज्योतिष्मती'

नामक वुद्धि उत्पन्न होती है जो अन्दर के अतीन्द्रिय पदार्थों का यथार्थ साक्षात्कार करवाने मे सहायक होती है। योगदर्शन मे 'विशोका वा ज्योतिष्मती' इसका लक्षण बताया है। इसका भावार्थ यह है कि इस अभ्यास से वुद्धि अत्यन्त ज्ञानयुक्त और प्रकाशयुक्त हो जाती है और पदार्थों के स्वरूप का यथार्थ निर्णय देने मे समर्थ हो जाती है। इस प्रकार की वुद्धि या सूक्ष्म नेत्र का दिव्य प्रकाश भ्रूमध्य मे अनुभव होने लगता है। यदि जिज्ञासु नेत्र खोलकर भ्रूमध्य मे ध्यान करता है तव भी उसे यह ज्योति दिखाई देती रहती है। आख खोलकर जो ध्यान किया जाता है उसे 'उन्मुनी मुद्रा' कहते है। यदि 'उन्मुनी मुद्रा' द्वारा योगी अन्दर प्रवेश नही करना चाहता तब वह नेत्र वन्द करने से जो अन्दर विशोका नाम की ज्योतिष्मती वुद्धि उत्पन्न हुई है उस ज्योति को लेकर सूक्ष्म नेत्र से शरीर मे प्रवेश करे। यदि वह सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश नही करना चाहता और स्थूल शरीर के भीतर के पदार्थो को देखना चाहता है तव वह इसी ज्योति से या विशोका नाम की ज्योतिष्मती वुद्धि के प्रकाश से स्थूल शरीर के भीतर हृदय, अस्थि, मज्जा, मेद, नस, नाडिया, ज्ञानवाहक सूक्ष्म तन्तुओ का साक्षात्कार कर सकता है। चक्र-विज्ञान, प्राण-विज्ञानादि को भी देख सकता है, समझ सकता है और उनका साक्षात्कार कर सकता है। इसके अनन्तर स्थूल शरीर का भान या अध्यास समाप्त होने लगता है और योगी अपने को ऐसा समझने लगता है मानो इस दिव्य ज्योति से उसका सारा शरीर देदीप्यमान होगया है। ऐसा अनुभव होने लगता है मानो अव वह हाड-मासादि के शरीर से ऊपर उठ गया है और उसका शरीर दिव्यज्योतिर्मय होगया है। वह अत्यन्त स्वच्छ, निर्मल तथा सात्विक भावनाओ से भरपूर होगया है।

सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश—स्थूल शरीर के भीतर के पदार्थों का साक्षात्कार कर चुकने के वाद इसी दिव्य ज्योति के सहारे सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश करे। यह १७ तत्त्वो का बना हुआ है, अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रिया, ५ कर्मेन्द्रिया, ५ तन्मात्रा, मन और वुद्धि। कई आचार्यों ने पच तन्मात्राओ के स्थान पर पच प्राणो को लिया है परन्तु पंच प्राणो की यहा कोई उपयोगिता नही है क्योकि सूक्ष्म प्राण तो सदा ही सूक्ष्म शरीर मे रहता ही है। इसलिए इन स्थूल प्राणो की आवश्यकता सूक्ष्म शरीर को नही रहती। ये तो वायु महाभूत का कार्य होने से इस स्थूल शरीर के साथ ही समाप्त हो जाते हैं। सव आचार्यो ने इस शरीर को पाचभौतिक माना है। इन पचभूतो मे प्राण के रूप मे पाचवा भूत वायु है। यह प्राण रूप से इस शरीर की रचना मे सहकारी कारण रूप से प्रविष्ट हुआ है। हमने स्थूल प्राण को सूक्ष्म शरीर मे स्थान नही दिया है। इनके स्थान मे हमने पचतन्मात्रा को सूक्ष्म शरीर मे माना है क्योकि पचतन्मात्रा सूक्ष्म शरीर के निर्माण मे उपादान कारण हैं। जिस प्रकार पचभूत स्थूल शरीर के निर्माण मे उपादान कारण हैं उसी प्रकार पचतन्मात्राए सूक्ष्म शरीर के निर्माण मे उपादान कारण हैं। अत पचप्राणो का सूक्ष्म शरीर मे मानना निरर्थक है। जो सूक्ष्म शरीर मे पचप्राण मानते है उनसे पूछना चाहिए कि इस सूक्ष्म शरीर के निर्माण मे उपादान कारण क्या है ? वे इस प्रश्न का उत्तर नही दे सकते।

सूक्ष्म शरीर का निर्माण—अव आपको यह वताया जाता है कि इस सूक्ष्म शरीर का निर्माण कैसे होता है। जव ईश्वर के सान्निध्य से व्राह्मी सृष्टि की उत्पत्ति

होती है तब उसमे तीन प्रकार की आहकारिक सृष्टि उत्पन्न होती है—सात्विक, राजस और तामस। सात्विक तथा राजस अहकार दोनो मिलकर समष्टि मन को उत्पन्न करते है और सत्वप्रधान अहकार से समष्टि ज्ञानेन्द्रियो की उत्पत्ति होती है और रज प्रधान अहकार से कर्मेन्द्रिया उत्पन्न होती है। मुख्य रूप से तम प्रधान अहकार और गौण रूप मे राजस और सात्विक अहकार पचतन्मात्राओ की उत्पत्ति करते है। मन, ज्ञानेन्द्रियो तथा कर्मेन्द्रियो मे भी दूसरे अहकार गौण रूप से सहकारी उपादान कारण बनते है अर्थात् मन के निर्माण मे सत्व और रज प्रधान किन्तु तम गौण रूप मे सहायक उपादान कारण है, ज्ञानेन्द्रियो के निर्माण मे सात्विक अहकार प्रधान किन्तु राजस और तामस गौण रूप से है, कर्मेन्द्रियो के निर्माण मे रज प्रधान अहकार मुख्य और सात्विक तथा राजस अहकार गौण रूप से सहकारी उपादान कारण है। इन समष्टियो मे व्यष्टि की उत्पत्ति होती है। तम प्रधान अहकार से उत्पन्न हुई तन्मात्राए अथवा सूक्ष्म भूत इस शरीर के निर्माण मे उपादान कारण है। इसके पश्चात् इन पचतन्मात्राओ से पच स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं और स्थूल शरीर का निर्माण करते है। इन पचतन्मात्राओ से निर्मित सूक्ष्म शरीर सकोच-विकास वाला होता है। जिस किसी शरीर मे यह प्रवेश करता है उसी के आकार-प्रकार का बन जाता है। चीटी से लेकर हाथी पर्यन्त जितने भी शरीरो मे यह प्रविष्ट होता है उन्ही के बराबर छोटा अथवा बडा बन जाता है। हाथी के शरीर मे प्रविष्ट होगा तो विकास भाव को प्राप्त होकर बडा हो जाएगा और चीटी मे प्रवेश करेगा तो सूक्ष्म भाव को प्राप्त होकर छोटा हो जाएगा। नवजात बालक ज्यो-ज्यो बडा होता जाता है त्यो-त्यो यह सूक्ष्म शरीर भी विकास भाव को प्राप्त होता जाता है और उसी के आकार के समान बढ जाता है। शरीर मे जो स्थूलेन्द्रिया—हाथ, पैर, आख, नाकादि हैं ये बाहिर के गोलक है, ये स्वतन्त्र रूप से कार्य करने मे असमर्थ है। इस स्थूल शरीर के अन्दर जो सूक्ष्म शरीर है, उसके अन्दर जो सूक्ष्मेन्द्रिया है, वे ही इन स्थूल इन्द्रियो को कर्म और ज्ञान करवाती है। मृत्यु के समय यह सूक्ष्म शरीर ही धर्माधर्म के सस्कारो को लेकर पुनर्जन्म धारण करवाने के लिए गमन करता है। सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर का सदा सयोग-सम्बन्ध बना रहता है। जिस प्रकार स्थूल शरीर का सूक्ष्म शरीर के साथ सम्बन्ध बना रहता है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर का कारण शरीर के साथ सम्बन्ध बना रहता है। जब तक स्थूल शरीर रहेगा तब तक इसमे सूक्ष्म शरीर अवश्य रहेगा और जब तक सूक्ष्म शरीर रहेगा तब तक कारण शरीर भी इसके साथ रहेगा, क्योकि पाप और पुण्य के, धर्म और अधर्म के सस्कार चित्त मे रहते है और चित्त कारण शरीर मे रहता है।

योगी का सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश—जब योगी आत्मा के पास पहुचना चाहता है अथवा जब आत्म-साक्षात्कार करना चाहता है तब उसे स्थूल शरीर का भान अथवा अध्यास जाता रहता है। उसका विस्मरण हो जाता है। तभी यह सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश पाता है। उस समय उसे ऐसी अनुभूति होती है जैसे कि उसका सारा शरीर अत्यन्त देदीप्यमान होगया हो। इसके देदीप्यमान सूक्ष्म शरीर के लिए योगदर्शनकार ने उस सूक्ष्म शरीर के दर्शन का इस प्रकार वर्णन किया है–'मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्।' मूर्द्धा में बहुत काल तक ध्यान करने से आकाश मे गमन करने वाले सूक्ष्मशरीरा-

भिमानी योगियो के दर्शन होते है। ध्यान काल मे दिव्यशरीरधारी स्वर्गनिवासी भगवान् कृष्ण या शकर अथवा विष्णु भगवान् या अन्य योगी अथवा गुरुजन भले ही वे दिव्य लोक वासी हो उन सबके दर्शन होते है। जिस प्रकार यह स्थूल सृष्टि पचभूतो के लोक मे विद्यमान है उसी प्रकार सूक्ष्म सृष्टि पचतन्मात्रा के लोक मे सूक्ष्मशरीराभिमानियो की विद्यमान है।

पचतन्मात्राओ का लोक—सूक्ष्मशरीराभिमानियो की सूक्ष्म सृष्टि पचतन्मात्राओ के लोक मे, इस दिव्य तन्मात्रा के लोक मे सूक्ष्मशरीराभिमानी व्यक्ति सूक्ष्म जगत् के भोगो को भोगता है क्योकि यह भी भोगप्रधान स्थान ही है। यहा केवल सकल्प मात्र से ही दिव्य गध, दिव्य रूप, दिव्य रसादि की उपलब्धि होती है। किसी प्रकार के प्रयत्न विशेष की आवश्यकता नही होती। यह भी एक प्रकार से भोगप्रधान योनि ही है। इसमे सत्व प्रधान होता है। स्थूल जगत् मे भी पशु-पक्षी आदि भोग-योनिया है। इनमे तम प्रधान होता है। भोग की दृष्टि से ये दोनो समान है। केवल सत्वगुण तथा तमोगुण का ही भेद है। पचतन्मात्राओ के लोक मे जो सूक्ष्मशरीराभिमानी योनिया है वे सत्वप्रधान है और स्थूल जगत् मे पशु-पक्षी आदियो की योनिया तम प्रधान है। ये स्वर्गवासी दिव्य आत्माए दिव्य तन्मात्राओ का उपभोग करके अनेक मन्वन्तरो के पश्चात् इसी मानव देह को धारण करके परम वैराग्य प्राप्त करते है जिसके कारण दिव्य भोगो से भी विरक्त होकर उस परमधाम को प्राप्त करते है जहा किसी भी प्रकार का भोग नही है। वहा किसी शरीर का सम्बन्ध नही रहता है। न सूक्ष्म शरीर से कुछ सम्बन्ध होता है और न कारण शरीर से ही। यही वास्तव मे यथार्थ मोक्ष है जहा न भोग है, न सुख है और न दु ख है। वहा न राग है न द्वेष है। वहा अन्त करण का कोई धर्म नही। उस समय आत्मा की स्व-स्वरूप मे स्थिति होती है। इसी को कैवल्य भाव कहा गया है। यह कैवल्य भाव जब तक ३६ हज़ार बार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय नही हो जाती तब तक बना रहता है।

मैं आपको उस श्रेय-पथ पर ले जाना चाहता हू, जिसका मैंने आपसे अभी-अभी ज़िक्र किया था। यही वास्तविक कल्याण का मार्ग हे। यही आत्म-ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है और इसी मार्ग पर चलकर ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। इसी से निवृत्ति की ओर प्रवृत्ति होगी और इसी पथ के पथिक बनने से सर्व दु खो से विमुक्त हो सकोगे।

आत्म-प्राप्ति के प्रथम दुर्ग को पार करके अब हम इसके दूसरे दुर्ग सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश पा चुके है। जिस अवस्था या ध्यान काल मे तुम्हारा शरीर तुम्हे तेजोमय प्रतीत होने लगे उस समय पूर्ण-रूपेण सूक्ष्मशरीर मे अपनी स्थिति की भावना करें। इस समय नाना प्रकार के सूक्ष्म दृश्य सामने आने लगते हैं। अलौकिक सौन्दर्य से परिपूर्ण वन, उपवन, नदिया, झरने, स्रोतादि तथा विविध प्रकार के तेजोमय दिव्य प्रकाश, दिव्य पुरुष, आकाश मे गमन करते हुए जटाधारी महापुरुष अथवा दिव्य आत्माए दृष्टिगोचर होती हैं। इस सूक्ष्म शरीर मे सूक्ष्म जगत् के अनेक पदार्थ ध्यान तथा समाधि मे योगी को दिखाई देते है। योगी को इन दृश्यो की उपेक्षा नही करनी चाहिए अपितु अपनी सूक्ष्म मेधा से अनुसंधानपूर्वक वास्तविक विज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

जिन सूक्ष्म शरीरो ने अभी जन्म धारण नही किया, जिनके लिए अभी देश, काल, सामग्री या माता-पिता आदि भोक्तव्य साधन उपस्थित नही हुए, वे सूक्ष्म-शरीराभिमानी भी आकाश मे विचरते रहते है तथा स्वर्गवासी दिव्यशरीराभिमानी भी गगनमण्डल मे विचरा करते है। इनमे परस्पर क्या अन्तर है? इनका गमना-गमन आकाश मण्डल मे क्यो होता है? इसका विज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। जैसे इस लोक मे स्थूल पदार्थों का विज्ञान प्राप्त करके उनका ठीक-ठीक उपयोग किया जाता है, इसी प्रकार सूक्ष्म जगत् के पदार्थों का तथा सूक्ष्म शरीर का विज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए और इनके उपयोग का भी ज्ञान होना चाहिए। इस सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश पाने के बाद आत्म-विज्ञान का प्रारम्भ होना है, क्योकि आत्मा अतीन्द्रिय पदार्थ है और सूक्ष्म शरीर के पदार्थ भी अतीन्द्रिय हैं। इन पदार्थों को देखने, समझने और साक्षात्कार करने से बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म और ऋतम्भरा बन जाती है। यही आत्म-साक्षात्कार करवाने मे मुख्य हेतु होती है। अतीन्द्रिय तथा सूक्ष्म पदार्थ मोटी बुद्धि के साधारण पुरुष के न देखने मे आते है और न वह इन्हे समझ ही सकता है। मन, बुद्धि, चित्त तथा सूक्ष्मेन्द्रियादि का व्यवहार तो नित्यप्रति करते है किन्तु इनके विज्ञान से हम अनभिज्ञ है। इस विज्ञान को योगी सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश पाकर ही प्राप्त कर सकता है क्योकि ये मन, बुद्धि आदि सूक्ष्म शरीर के ही अग है। इनका और सूक्ष्म शरीर का अगागीभाव है। जब योगी सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश करता है तब इन सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों का साक्षात्कार करता है।

ब्रह्मरध्र प्रवेश—इस सूक्ष्म शरीर मे योगी को सर्वप्रथम ब्रह्मरध्र मे प्रवेश करना चाहिए। यहा पर सबसे पहिले उसे ज्ञान और कर्मेन्द्रियो के केन्द्र दृष्टि-गोचर होगे। ये छोटी-छोटी तारिकाओ के समान दिखाई देंगे। इनसे छोटी-छोटी सूक्ष्म किरणे भी निकलती हुई दिखाई देती है। इस स्थान मे ज्ञानेन्द्रिया तथा कर्मेन्द्रिया, मन और बुद्धि सभी प्रकाशमय हैं। इन सबसे दिव्य ज्योतिया निकलती रहती है। जब योगी उनके पारस्परिक व्यवहार को होते हुए देखता है तब उनकी गतियो और व्यापारो को देखकर महान् आश्चर्य करता है। इन सबका व्यापार अत्यन्त शीघ्र होता है। एक ही क्षण मे सारा व्यापार सम्पन्न हो जाता है। इतने सूक्ष्म समय मे उनकी गति और व्यापार को देखना, समझना अत्यन्त कठिन हो जाता है क्योकि ये सब एककालावच्छेदेन सब अपने-अपने कर्म और व्यापार मे लगे रहते हैं। उनका सब व्यापार होता तो क्रमपूर्वक ही है किन्तु यह सब अत्यन्त द्रुतगति से होता है और देखने वाले को आलातचक्र के समान ऐसा मालूम होता है मानो एक ही समय मे एक ही क्षण मे यह सब कुछ एक साथ ही हो रहा है। योगी को अपनी ध्याना-वस्था मे किसी स्पर्शेन्द्रिय के व्यापार को स्वय देखना चाहिए। ध्यानावस्था मे वह जिह्वा के व्यापार को भली प्रकार से प्रत्यक्ष कर सकता है। जिह्वा को तालू से स्पर्श करके ब्रह्मरध्र मे दिव्य दृष्टि से देखे कि वहा सूक्ष्मस्पर्शेन्द्रिय पर इसका क्या प्रभाव पड रहा है और किस प्रकार उसमे कम्पन, गति तथा स्पन्दन हो रहा है, किस प्रकार स्थूलेन्द्रिय ने विषय को ग्रहण करके सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय को दिया है। फिर मन ने इस स्पर्श रूप विषय को लेकर बुद्धि को प्रदान करके एक क्षणार्ध से भी कम समय मे बुद्धि से यह निर्णय करवाकर कि यह किस वस्तु का कैसा स्पर्श है इसको पुन सूक्ष्मेन्द्रिय

और तत्पश्चात् स्थूलेन्द्रिय के द्वारा बाहिर फेंक देता है। इस प्रकार से विषय के ज्ञान का कर्म व्यापार प्रत्यक्ष अनुभव करके देखने से पदार्थों के साक्षात्कार के साथ-साथ आत्म-दर्शन की योग्यता भी प्राप्त हो जाएगी।

जब योगी समाधि की अवस्था मे होता है तब स्थूलेन्द्रिय पर बाहिर के विषय का जब आघात होता है तब इस विषय का प्रभाव स्थूलेन्द्रिय के ज्ञान और गतिवाहक सूत्रो पर पडता है। ये उस विषय को लेकर ब्रह्मरध्र मे जाकर सूक्ष्मेन्द्रियो पर फेंक देते है। इन ज्ञान और गतिवाहक तन्तुओ मे वह विषय परिणाम भाव को प्राप्त होकर सूक्ष्म तन्मात्रा के रूप मे हो जाता है। तभी सूक्ष्मेन्द्रिया इसे ग्रहण करती है। सूक्ष्मेन्द्रिया इस विषय को लेकर क्रियाशील हो जाती है। इनके कम्पनो का प्रभाव मन पर पडता है और मन इनके कम्पनो के बिम्ब को ग्रहण करके बुद्धि के मण्डल मे गतिशील हो जाता है तथा बुद्धि उस प्रतिबिम्बित मन के विषय का निर्णय क्षणार्ध मे ही कर देती है। विद्युत् की चमक के समान यह सब मन और बुद्धि का व्यापार होता है। मन इस व्यापार का ज्ञानयुक्त सस्कार हृदय मे फेंक देता है, शेष निर्णय किए हुए विषय को पुन उसी क्रम से बाहर फेंक देता है जिस क्रम से इस विषय ने सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया था। बाहिर पहुच कर यह विषय इन्द्रियो और शरीर के भोग का विषय बन जाता है और यही सुख-दु ख, धर्माधर्म का हेतु बनता है।

कर्म तथा ज्ञानेन्द्रियो, मन तथा बुद्धि के ज्ञान की आवश्यकता—कर्मेन्द्रिया कर्म को करवाती हैं और ज्ञानेन्द्रिया ज्ञान को करवाती है। यह ज्ञान और कर्म का समन्वय है। ब्रह्मरध्र मे अथवा सूक्ष्म शरीर मे इनके साथ मन और बुद्धि के व्यापार का साक्षात्कार होता है। इनके विज्ञान से ही बुद्धि ऋतम्भरा बनती है। आगे चल कर यही ऋतम्भरा आत्म-साक्षात्कार करवाने मे समर्थ होती है। आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है। इसके दर्शन और ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है। चिरकाल तक ब्रह्मरध्र मे अभ्यास करने से ब्रह्मरध्रगत सूक्ष्म पदार्थो के साक्षात्कार से समाधि की अवस्था मे मेधा अत्यन्त तीक्ष्ण हो जाती है और आत्म-साक्षात्कार करवाने के योग्य हो जाती है।

सूक्ष्म शरीर का निर्माण और उसका कार्य

इस लोक मे जिस प्रकार माता-पिता के रज और वीर्य से स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है, इस प्रकार से सूक्ष्म जगत् मे सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति नही होती। भले ही माता-पिता के रज और वीर्य से शरीर उत्पन्न होते हो परन्तु इस रज-वीर्य में भी तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश के सूक्ष्म अश है। इन भूतो के बने हुए अन्नादि पदार्थ ही तो रज और वीर्य को बनाते है, इसलिए वास्तव मे पचभूत ही शरीरो के निर्माण मे उपादान कारण हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म जगत् मे सूक्ष्म पंचतन्मात्रा सूक्ष्म शरीर के उपादान कारण हैं—जिस प्रकार माता-पिता स्थूल शरीर को बनाने मे हेतु हैं इस प्रकार यह नही समझ लेना चाहिए कि सूक्ष्म जगत् मे भी सूक्ष्मशरीराभिमानी आत्माए सूक्ष्म शरीरो को जन्म देती होगी। वहा ऐसा नही होता क्योंकि वहा कोई ऐसा संसार नही है जहा माता-पिता हो और पुत्र-पुत्रिया भी हो। फिर तो इस लोक और स्वर्गलोक या सूक्ष्म जगत् मे कोई अन्तर ही नही रहेगा। जब ईश्वर के सन्निधान

से ब्राह्मी सृष्टि की उत्पत्ति होती है तब स्वयं ही पंचतन्मात्राएं सूक्ष्म शरीर के निर्माण में प्रवृत्त हो जाती हैं। जिस प्रकार ये अन्य पदार्थों का निर्माण करती हैं इस प्रकार सूक्ष्म शरीरों का भी निर्माण करती हैं। जैसे माता-पिता इहलोक में निमित्त कारण हैं उसी प्रकार सूक्ष्म जगत में केवल सन्निधान मात्र से अथवा अपने सर्वव्यापक भाव से ब्रह्म निमित्त कारण होता है तथा पंचतन्मात्राएं उपादान कारण होती हैं। सूक्ष्म जगत् में माता-पिता की जरूरत नहीं है। वहां तो केवल चेतन ब्रह्म ही निमित्त कारण है। आप कहेंगे कि वे देवता क्यों न इस कार्य को कर दें जो सूक्ष्म जगत् में निवास करते हैं? नहीं, ऐसे नहीं हो सकता। वहां जो भी आत्माएं रहती हैं उनका स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी अथवा माता-पिता के समान कोई सम्बन्ध नहीं होता। बेटे-बेटियों आदि के सम्बन्ध तथा सारे संसार के भोग-विलासों से विरक्त होने के पश्चात् इन्होंने देवत्व लाभ किया है, फिर इसी झगड़े में क्यों फंसें? अतः वहां इस प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता। वहां स्त्री तथा पुरुष में कोई भेदभाव नहीं है। वहां पर भोग-विलास की कोई बात नहीं। ये सूक्ष्म शरीर हमारे ही शरीरों में से निकलकर सूक्ष्म लोक में जाते हैं। वहां और नए सूक्ष्म शरीर उत्पन्न करने की क्या आवश्यकता है? सृष्टि के आदि-काल में सब सूक्ष्म शरीर ब्राह्मी सृष्टि में ब्रह्म के सान्निध्य से उत्पन्न हो ही चुके थे, अतः इन सूक्ष्म शरीरों को पुनः उत्पन्न करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

ब्रह्मरंध्र में इन्द्रियों के स्वरूप और मन तथा बुद्धि के स्वरूपों का साक्षात्कार करके इन पर पूरा अधिकार हो जाने पर ही वशीकारसंज्ञा वैराग्य उत्पन्न होता है। इस वैराग्य का वर्णन पूर्व कर चुके हैं। सूक्ष्म शरीर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके यदि वशीकारसंज्ञा वैराग्य उत्पन्न न हो तब साधक में दिव्य भोगों के भोग की इच्छा उत्पन्न हो जाती है, इसलिए योगी के लिए यह आवश्यक है कि वह इन दिव्य भोगों के प्रति भी विरक्त हो जाए। जिस प्रकार स्थूल भोगों को बंध का कारण समझकर त्याग दिया था उसी प्रकार सूक्ष्म जगत् में पहुंचकर इन सूक्ष्म दिव्य भोगों के प्रति भी वैराग्य-भावना अत्यन्त आवश्यक है। उपरोक्त दोनों प्रकार के भोगों के प्रति तीव्र वैराग्य हो जाने पर ही मोक्ष-लाभ हो सकता है, अन्यथा नहीं। इन दिव्य भोगों का वर्णन श्री मुहम्मद तथा श्री ईसामसीह ने भी किया है। हमारे इतिहास, पुराण, दर्शन, उपनिषदादि ने भी इनका बड़ा विशद् वर्णन किया है। किन्तु चारवाक तथा भौतिक विज्ञानवादी इन दिव्य भोगों को नहीं मानते हैं। हम इनसे कहते हैं कि आपने मन के स्वरूप को तो देखा नहीं है किन्तु आप इसको व्यवहार में लाते हो। इसी प्रकार ये सूक्ष्म पदार्थ, बुद्धि, सूक्ष्म कर्म तथा ज्ञानेन्द्रियादि का व्यवहार तो आप करते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से आपने इन्हें देखा नहीं है और नाही ये किसी मशीन का विषय हैं और न किसी प्रकार के प्रतिबिम्ब का। इसी प्रकार स्वर्ग और स्वर्ग के विषय भी सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं। ये आपकी स्थूल आंखों का विषय नहीं बन सकते। इनको सूक्ष्म दिव्य नेत्रों से ही देखा जा सकता है, समझा जा सकता है। पश्चिम के भौतिक विज्ञानवादी अपने विविध विज्ञानों और इन भूतों के कार्यात्मिक भोगों से बहुत परेशान होगए हैं, तंग आ गए हैं। इन्हें सर्वत्र विनाश ही विनाश दिखाई दे रहा है। वे लौकिक भोगों से सन्तप्त हो उठे हैं। सुख और शान्ति का एकमात्र मार्ग ईश्वरभक्ति ही है।

पश्चमीय विद्वान् सुख और शान्ति के लिए भारत के योगियो की ओर निर्निमेष नेत्रो से निहार रहे है। उनमे योग सीखने के लिए उत्कट अभिलाषा जागृत हो चुकी है। उनके अन्दर तीव्र जिज्ञासा है परन्तु वे अभी तक योग के महत्व और स्वरूप को नही समझ सके हैं। वे अभी तक केवल आसनो को ही योग समझे बैठे हैं। आसन तो अष्टाग योग का केवल एक अग है। शेष सात अगो के ज्ञान से वे नितान्त शून्य है। भारत में भी ऐसे लोगो की कुछ कमी नही है। योग का वास्तविक अर्थ तो चित्त-वृत्ति निरोध करके आत्म-साक्षात्कार और ब्रह्म-साक्षात्कार है। वह समय दूर नही है जब कि दूसरे देशो के लोगो मे भी धारणा, ध्यान, समाधि के विषय मे भी जिज्ञासा उत्पन्न होगी और वे इसकी पूर्ति के लिए, अपने दु खो से मुक्ति लाभ करने के लिए और भौतिकवाद से छुटकारा पाने के लिए भारत के योगियो की शरण मे आएगे। हम स्वर्गाश्रम मे १ नवम्बर से ३० मार्च तक ५ महीने का साधना-शिविर लगाते हैं और गगोत्री मे १५ जून से १५ सितम्बर तक साधना होती है। अब तक सहस्रो भारत-वासियो तथा कितने ही विदेशियो ने इससे लाभ उठाया है, आध्यात्मिक उन्नति की है और कईयो ने आत्म-ज्ञान तथा ब्रह्म-ज्ञान लाभ किया है। इन शिविरो मे प्राय विदेशो से लोग आते रहते हैं और तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करते हैं। इससे स्पष्ट है कि विदेशियो के अन्दर भी योग सीखने की जिज्ञासा है। विदेशो मे हमारे ब्रह्मरन्ध्र का प्राय उपहास हुआ करता था परन्तु जब से वे हमारे साधना-शिविरो मे प्रविष्ट हुए और अभ्यास प्रारम्भ किया और ध्यान काल मे दिव्य ज्योति प्राप्त की तब मे इन्हें अपनी भूल और अज्ञानता पर पश्चात्ताप हुआ। भारत आदि-काल से अध्यात्म-विज्ञान में विश्व-गुरु रहा है और अब इस पतन के युग मे भी यह सारे संसार को अध्यात्म-सुधा पिला सकता है। आज भी अपने वैज्ञानिक आविष्कारो के मद मे चूर किन्तु आध्यात्मिकता से कोसो दूर विदेशी भारत मे आते है और सन्तुष्ट होकर जाते हैं। हमने विदेशियो मे एक विशेषता देखी है, वह यह कि ये लोग जिस कार्य को करना चाहते हैं उसमे पूरी तरह से जुट जाते है और उसे करके ही सास लेते है। मुझे यह कहते हुए बडा खेद होता है कि हमारे भारतीयो मे इस गुण का सर्वत्र अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है।

इस उपदेश को सुनने वालो मे कई ७०-८० वर्ष के हो चुके हैं और उन्होने सभी लौकिक भोग भोग लिए है। वे अब इस बात का निश्चय करें कि वे अपना शेष जीवन आत्म-ज्ञान प्राप्त करने मे लगाएगे। अब आप लोगो का निवास घर मे नही होना चाहिए। अब आपका निवास वानप्रस्थाश्रमो मे होना चाहिए, जहा पर आप नित्य महापुरुषो का सत्सग करे। अभ्यास और साधना करे। तप, त्याग, भक्ति तथा भजन करे। वही पर आपको यथार्थ शान्ति और आनन्द प्राप्त होगा। उन आश्रमो मे आप जाए जहा सदाचारपूर्वक जीवन व्यतीत किया जाता है। जितेन्द्रिय बनना सिखाया जाता है। जहा आचार की शुद्धता तथा व्यवहार की पवित्रता की शिक्षा दी जाती है। जीवन मे एक प्रकार की क्राति पैदा की जाती है। आत्म-ज्ञान प्राप्ति के साधन बताए जाते हैं।

मैं तो बहुत वर्षो के पश्चात् हिमालय से उतर कर इधर आया हू, और आया इसलिए हू कि आपको अध्यात्म-ज्ञान तथा योग द्वारा आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान का ढिढोरा पीट कर अपना सन्देश सुनाऊ और चेतावनी देकर सावधान करू कि 'अयन्तु

परमो धर्म यत्योगेनात्मदर्शनम्।' आप जागो, अब कुभकर्ण निद्रा का त्याग करो, चेतो, बहुत समय बीत गया है, थोडा ही शेष रहा है। कम से कम इसे तो हाथ से मत निकलने दो। इसे भगवच्चरणारविन्दो मे अर्पण करो। उसके चरणो मे आत्म-समर्पण करो और शाश्वत सुख लाभ करो।

कारण शरीर मे प्रवेश और उसका ज्ञान

सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश करने की विधि और उसमे जो पदार्थ है उनके साक्षात्कार की विधि आपको बताई जा चुकी है। आज आपको हृदयस्थ कारण शरीर मे प्रवेश करने की विधि बताने का प्रयत्न किया जाएगा। कारण शरीर मे ६ पदार्थ है —जीवात्मा, चित्त, अहकार, सूक्ष्म प्राण, सूक्ष्म प्रकृति और ब्रह्म। ब्रह्म ने इन सब पदार्थो को आच्छादित किया हुआ है। जब योगी कारण शरीर मे प्रवेश करता है तब उसके सामने एक महान् दिव्यालोक आता है। उसे समाधि की अवस्था मे अनुभव होता है कि मेरा यह दिव्य कारण शरीर एक महान् प्रकाश का पुज है, देदीप्यमान है और ज्योतिस्वरूप है। सूक्ष्म प्राणो के रूप मे अन्दर से निकलती हुई जीवनी शक्ति का अनुभव करता है। थोडा आगे बढने पर चित्त और आत्मा के ऊपर अहकार का आवरण दृष्टिगोचर होता है। तब योगी अपने ध्यान बल अथवा समाधि बल से उस आवरण को हटा देता है और उसका उल्लघन करके आगे बढता है। तब वह स्वच्छ, पवित्र, स्फटिक के समान निर्मल, सत्वप्रधान चित्त मे प्रवेश करता है और बहुत काल तक अभ्यास द्वारा चित्त पर पडे अनेक सस्कारो के आवरण को छिन्न-भिन्न करके जब चित्त बिलकुल निर्मल हो जाता है तब वह उसमे आत्मतत्त्व की खोज करता है। उस अवस्था का नाम सप्रज्ञात समाधि है। इसमे मलिन सस्कारो को हटा कर चित्त को शुद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है क्योकि चित्त मे दोनो प्रकार के सस्कार विद्यमान रहते है। उनसे चित्त मे सदा विक्षोभ बना रहता है। निरोध करने से मलिन सस्कार दब जाते है, केवल शुद्ध सस्कार ही शेष रह जाते है। जब तक चित्त और आत्मा का सम्बन्ध होता है तब तक सस्कार तो रहते ही है और ये प्रवृत्ति का हेतु होते है। शुद्ध सस्कार विशेष रूप से आवरण का हेतु नही होते अपितु ये चित्त मे सात्विकता उत्पन्न करने और आत्म-ज्ञान प्राप्ति के साधन होते है। आत्म-साक्षात्कार होने पर इनका असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा परम वैराग्य से निरोध होगा। इस अवस्था मे चित्त के सत्वप्रधान होते हुए भी उसमे आत्मा की खोज करने मे देर लगती है। आत्मा की अपेक्षा चित्त अत्यधिक विस्तृत होता है। इसमे आत्मा को ढूढना विशाल सरोवर मे पडी हुई हीरे की कणी को ढूढने के समान है। गोताखोर यत्र-तत्र-सर्वत्र गोते लगाते है, बहुत गहरे जाते है, तब कही किसी अज्ञात स्थान मे वह सूक्ष्म किन्तु अत्यन्त प्रकाशमान हीरे की कणी प्राप्त होती है। इसी प्रकार इस चित्तरूपी सरोवर मे आत्मारूपी हीरे की कणी की खोज करना कोई साधारण बात नही है। आप चित्त को करोड परमाणुओ का एक समुदाय समझे और इस परमाणु राशि मे एक अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुरूप आत्मा को समझे। यह आत्मा विजातीय होने से ही दर्शन का विषय बन जाएगा क्योकि उसका रग-रूप, आकार-प्रकार, प्रभा और प्रकाश तथा चेतनत्व चित्तस्थ करोडो परमाणुओ से भिन्न प्रकार का है। यदि अन्य परमाणुओ के समान ही यह भी होता तो उसको देखना, अनुभव करना, इसकी प्राप्ति तथा दर्शन

दुर्लभ नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य हो जाते। चित्त की सात्विकता भी आत्मा पर एक आवरण रूप ही होती है, अत आत्म-दर्शन मे समाधि की अवस्था मे भी एक वडी कठिन समस्या उपस्थित हो जाती है। चित्त स्वय सर्वत्र एक ही समान, स्वच्छ, निर्मल, पवित्र तथा सत्वप्रधान होता है। इसमे आत्मा को ढूढे तो कहा ढूढे ! ऐसी स्थिति मे समाधिस्थ योगी अपनी दिव्य दृष्टि से इस चित्त के उस स्थान मे देखे जहा से चित्त मे सूक्ष्म गति, क्रिया, ज्ञान, चेष्टा तथा क्षोभ प्रारभ हो रहे हो। जिस स्थान से गति प्रारभ हो रही हो उसे ही आत्मा का निवासस्थान समझना चाहिए। अत्यन्त सूक्ष्म और गहन सम्प्रज्ञान की दिव्य दृष्टि से चित्त के केन्द्र में आत्मा को देखे। यही आत्मा के साक्षात्कार का मुख्य स्थान है। यहा ही चित्त-सयुक्त या चित्त-विशिष्ट आत्मा का साक्षात्कार होता है। अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष होता है। चित्त और आत्मा दोनो सूक्ष्म प्रकृति के कारणरूप कोप या गर्भ मे स्थित होते है। यदि इस कारण-रूप आवरण को योगी अपनी समाधि की दिव्य सूक्ष्म दृष्टि से भेदन कर दे तो अत्यन्त समीप उस ब्रह्म का भी साक्षात्कार करके ब्रह्म मे प्रविष्ट हो जाता है। यह अत्यन्त समीप ही प्रकृति मे व्याप्त होकर ठहरा हुआ है, ऐसा अनुभव होता है अथवा प्रकृति-विशिष्टब्रह्म का दर्शन होता है। इस अवस्था मे पहुचकर योगी अपने आपको कृत-कृत्य समझता है। उसके सब सशयो का विच्छेद हो जाता है। ऐसे ही परमयोगी के लिए उपनिषद् कहता है—'भिद्यते हृदयग्रथिश्छिद्यन्ते सर्वसशया'। अब योगी को जो कुछ प्राप्त करना था वह प्राप्त कर लिया। उसके उद्देश्य की पूर्ति होगई। जीवन लक्ष्य को उसने पूरा कर लिया। अव उसके लिए कुछ ज्ञातव्य शेप नही रहा क्योकि 'यस्मिन् विज्ञाते सर्व विज्ञात भवति।' उस एक को जान लेने से सभी कुछ जान लिया जाता है। वही ब्रह्म ज्ञातव्य है। जब उसको जान लिया तब और ज्ञातव्य शेप ही क्या रहा !

इसके अनन्तर योगी असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा उन चित्तस्थ सस्कारो का अभाव करता है या निरोध करता है जो अनादि काल से रागयुक्त प्रकृति के कार्यकारणात्मक रूप से चले आ रहे है। इनको क्षीण करने के लिए धर्ममेघ समाधि के अभ्यास द्वारा उनका भी निरोध करने मे योगी समर्थ होता है। इनके निरुद्ध हो जाने से वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। धर्ममेघ समाधि मे इन सस्कारो का निरोध होने से जो सचित सस्कार है वे भोग देने मे असमर्थ हो जाते है और अपनी प्रकृति मे लौट जाते हैं। आत्मा अपने स्वरूप मे स्थित हो जाएगा तथा कैवल्य भाव को प्राप्त होकर मुक्त हो जाएगा। मैंने आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान को आपके लिए सरल, सुगम और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है। इस पर आचरण करने से एक ही जन्म मे आत्म-साक्षात्कार और ब्रह्म-साक्षात्कार लाभ करके मोक्ष प्राप्त करने के आप अधि-कारी बनेंगे और आवागमन के दु खद चक्र से छूट जाएगे।

सेठ जुगलकिशोरजी बिरला का नित्य महाराजजी के पास समागम

सेठ जुगलकिशोरजी विरला नित्यप्रति प्रात ८ वजे तथा दोपहर को १ वजे पूज्य महाराजजी के दर्शनार्थ तथा जिज्ञासासमाधानार्थ आते थे। आर्य जाति की उन्नति और समृद्धि तथा राजनैतिक और आध्यात्मिक विषयो पर प्राय बातचीत किया करते थे। इनका भगवान् के प्रति वडा विश्वास, श्रद्धा और भक्ति थी। वे कहा

करते थे कि जब कभी मुझसे कोई अच्छा कार्य बन पडता है उसे मैं भगवान् के चरणो मे अर्पण कर देता हू और जब कभी कोई पाप कर्म मुझसे हो जाता है उसे इसके फलभोग के लिए अपने पास रख लेता हू। जिस प्रकार भगवान् प्रकृति और इसके कार्यों को प्रेरणा देता है उसी प्रकार मेरे अन्त करण को भी वह प्रेरित करता रहता है। पुण्य कर्म सदा भगवान् की प्रेरणा से होते हैं और पाप कर्म मेरी अपनी मूर्खता से। मै तो अपने को भगवान् के हाथ मे एक कठपुतली के समान समझता हू।

एक दिन सेठजी के, मन की चञ्चलता के अभाव करने के उपाय पूछने पर पूज्य महाराजजी ने उन्हे बतलाया कि चञ्चलता मन का सहज स्वभाव है। जब तक आत्मा का उससे सम्बन्ध रहेगा तब तक उसमे क्रिया या चञ्चलता बनी ही रहेगी। उसे सदा किसी न किसी कर्म या व्यापार मे लगाए रखना आवश्यक है। भगवान् की भक्ति, उसका ध्यान, उसकी अर्चना, उसकी पूजा सर्वश्रेष्ठ कर्म है। यदि भगवान् के स्मरण मे वह लगा रहे तो यह कर्म मुक्ति का हेतु बन जाएगा, अत आप इसकी चञ्चलता की ओर ध्यान न देकर इसको भगवन्नाम स्मरण मे लगाए रखें। यही सर्वदु खनिवृत्ति और कल्याण का हेतु है। सेठजी के यह पूछने पर कि आप भगवान् को नितान्त निर्गुण मानते है, पूज्य गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा, "गुण ही विकार का हेतु बनते है, अत आप भी निर्गुण बनने का प्रयत्न करें। सगुणता बध का कारण बनेगी और निर्गुणता सदा मुक्ति का हेतु बनेगी।"

श्री बिरलाजी ने जिज्ञासा की कि कर्म और अज्ञान मे कौन बधन का हेतु है ? उसका समाधान करते हुए पूज्य महाराजजी ने कहा कि ये दोनो ही बध का हेतु हैं। कर्म सयोग से उत्पन्न होता है और यह सयोग बध का कारण है। कर्म पाच प्रकार का होता है—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुचन, प्रसारण और गमन। जिसमे ये धर्म या गुण हो वह विकारवान् मानना पडेगा, अत आत्मा और परमात्मा मे उपरोक्त पाच कर्म मानना अज्ञान है, इसलिए यह भी बध का हेतु है क्योकि इनके द्वारा ही मनुष्य अपने को कर्ता और भोक्ता मान लेता है। वास्तव मे आत्मा मे कर्तृत्व धर्म नही है। जिसमे कर्तृत्व धर्म है वहा भोक्तृत्व धर्म भी मानना पडेगा। यह मानना अज्ञान है, अत कर्म और अज्ञान दोनो ही बधन का हेतु है।

बिरलाजी ने पुन प्रश्न किया कि आप भगवान् को कर्ता बताते हुए भी सदा मुक्त कहते है। इस पर पूज्य महाराजजी ने फरमाया, "जो आचार्य ईश्वर को कर्ता मानते हुए भी सदा मुक्त कहते है उनके पूर्व-पक्ष को उठाकर हम ऐसा कभी-कभी कह दिया करते है कि आपका भगवान् सृष्टि का कर्ता होते हुए भी सदा मुक्त रहता है, तब हमारा आत्मा भी तो कर्ता होते हुए मुक्त हो सकता है। ऐसे अवसर पर यह भी कह दिया करते है कि कर्म बध का हेतु नही है। वास्तव मे कर्म आत्मा तथा परमात्मा मे नही होता। आत्मा के सग से कर्म अन्त करण मे होता है और इसका आरोप आत्मा मे कर दिया जाता है। इसी प्रकार से परमात्मा के सग से कर्म प्रकृति मे होता है और आरोप परमात्मा मे कर दिया जाता है। इन दोनो का सग होते हुए भी आत्मा और परमात्मा असग रहते है। इनमे गतिरूप धर्म नही है। गति का अर्थ है क्रिया या कर्म।" इस प्रकार का ज्ञान-विज्ञान के विषय मे वार्त्तालाप श्री सेठ बिरलाजी से दिल्ली मे १२ दिन तक होता रहा। ११ अप्रैल सन् १९६४ को महराजजी

ने अपना आठ दिन का प्रवचन और शका-समाधान समाप्त किया। पूज्य गुरुदेव एक दिन पाच-पाच सात-सात मिनट के लिए अपने शिष्यो और भक्तो को आशीर्वाद देने उनके निवास-स्थानो पर गए। कई भक्तो के आग्रह से एक दिन के लिए आगरा और वृन्दावन भी पधारे। प० देवधर, ओमप्रकाश सूरी, शान्ता, शीला भी साथ गई थी। लुधियाना से महाराजजी के शिष्य ला० सत्यप्रकाशजी मित्तल कई दिनो से महाराजजी को लेने के लिए आए हुए थे। दिल्ली मे इनके सैकडो भक्त है। प्राय सभी ने भोजनार्थ निमत्रित किया किन्तु ये कही नही गए क्योकि अवकाश ही नही मिलता था। दिन का अधिक समय शका-समाधान और अध्यात्म विषयो पर वार्त्तालाप करने और लोगो को समझाने मे व्यतीत होता था। केवल सेठ जुगलकिशोरजी विरला के निमत्रण पर विरला हाऊस मे भोजन करने पधारे।

पजाब भ्रमण—दिल्ली से पजाब जाने का विचार था। सेठ विरलाजी ने अपनी कार इन्हे पजाब जाने के लिए दी, किन्तु महाराजजी को पजाब मे लगभग डेढ मास तक रहना था, अत उनकी कार लुधियाना पहुच कर लौटा दी। १४ अप्रैल को पूज्य महाराजजी को इनके भक्तो, शिष्यो, श्रद्धालुओ और प्रशसको ने वडी भक्ति और श्रद्धा के साथ तथा वडे सम्मान और समारोह के साथ दिल्ली से विदा किया। यहा से प्रस्थान करके ये पानीपत मे श्री लाला मदनमोहन महाजन की फैक्टरी मे पहुचे। इन्होने पूज्य महाराजजी का वडा स्वागत किया। अपना कारखाना और नूतन निर्मित निवासस्थान दिखाया। पानीपत मे इनके वहुत पुराने भक्त वावू अमरनाथजी की पुत्री कुलदीपा रहती थी, उसके मकान पर उसे आशीर्वाद देने पधारे। पानीपत से प्रस्थान करके अम्वाला पहुचे। वहा पर श्री शकरलाल की पुत्री लक्ष्मीदेवी के घर पर उसे आशीर्वाद देने के लिए पधारे।

लुधियाना गमन—एक वजे के लगभग लुधियाना पहुचे। वहा पर लाला सत्यप्रकाशजी के मकान पर एक वहुत वडी भीड महाराजजी के स्वागत और दर्शनार्थ उपस्थित थी। लगभग आधा घण्टा तक एकत्रित महानुभावो को उपदेश दिया। सायकाल पाच बजे से सात वजे तक पूज्य गुरुदेव का प्रवचन हुआ जिससे सैकडो अध्यात्म के जिज्ञासुओ ने लाभ उठाया। गुरुदेव लुधियाना मे ४ दिन तक विराजे यहा के गण्यमान्य तथा प्रतिष्ठित लोग प्राय सभी इनके भक्त थे। उनकी प्रार्थना पर यहा इतने दिन तक रुकना पडा। चारो दिन महाराजजी के प्रवचन हुए जिनसे जनता मे अध्यात्म का वडा प्रचार हुआ। इनका अन्तिम प्रवचन प्रेम तथा सगठन के विषय मे था। इस प्रवचन का यहा के लोगो पर वहुत प्रभाव पडा। जिनमे परस्पर झगडे वर्षो से चल रहे थे उन्होने अपने मनोमालिन्य और वैमनस्य को पश्चात्ताप के आसुओ से धो डाला। एक वृहद् प्रीतिभोज का आयोजन किया गया जिसमे सबने एक दूसरे के गले मे हार पहिनाए और प्रीतिपूर्वक परस्पर एक दूसरे को अपने गले से लगा कर मिले और महाराजजी के समक्ष भविष्य मे किसी प्रकार का झगडा न करने की प्रतिज्ञाए की। दिल्ली की भाति यहा पर भी थोडी-थोडी देर के लिए अपने सब भक्तो और शिष्यो को आशीर्वाद देने के लिए गए। धूरी से लाला विलायतीराम पुरुषोत्तमजी कुछ घण्टो के लिए महाराजजी को वहा ले जाने के लिए आए थे। महाराजजी ने इनके साथ धूरी जाने के लिए प्रस्थान भी कर दिया था

किन्तु मार्ग में मोटर के इंजिन में कुछ खरावी हो जाने के कारण लुधियाना ही लौट आना पड़ा। इनके वहां के भक्तों और शिष्यों को वड़ी निराशा हुई।

जालंधर-प्रस्थान : डाक्टर विद्यावती तथा डा० नारायणसिंह के पास निवास—डाक्टर विद्यावतीजी और डाक्टर नारायणसिंहजी महाराजजी के वहुत पुराने श्रद्धालु भक्त हैं। जव से इन्होंने सुना था कि ये पंजाव में भ्रमण करने आरहे हैं तभी से दोनों पति-पत्नी जालंधर पधारने के लिए वार-वार प्रार्थना कर रहे थे। इन्होंने लुधियाना से महाराजजी को जालंधर लिवा लाने के लिए अपने सुपुत्र रमेशचन्द्र को कार में भेजा। यहां से कार द्वारा जालंधर पधारे और वहां चार दिन तक विराजे। डा० नारायण-सिंहजी की कोठी पर ठहरे। इनकी कोठी पर महाराजजी ने दो प्रवचन दिए। महा-राजजी को जालंधर में कई भक्तों ने भोजनार्थ निमंत्रित किया किन्तु इन्होंने 'हिन्दी मिलाप' के संपादक श्री यश तथा श्री वालकिशन सोंधी के निमंत्रण ही स्वीकार किए।

होशियारपुर गमन—डाक्टर विद्यावतीजी की कार में होशियारपुर पधारकर चौधरी ज्योतिसिंहजी के पास ठहरे। वहुत वर्ष पहिले इनके सुपुत्र वलवीरसिंह, विक्रम-सिंह और सुपुत्री सीता को महाराजजी योग का अभ्यास करवाया करते थे तथा शीत-काल में कई-कई मास इनके पास ठहरा करते थे। इनके भाई डाक्टर मोतीसिंह और इनके पुत्र रणवीरसिंह महाराजजी के अनन्य भक्त थे। श्री चौधरी ज्योतिसिंहजी ने भक्ति और प्रेम से साश्रु होकर इन्हें प्रणाम किया और निवेदन किया कि वहुत वर्षों में आपके दर्शन हुए हैं। वस, अव यह अन्तिम ही दर्शन समझता हूं क्योंकि वहुत वृद्ध हो गया हूं और शारीरिक अवस्था अव ठीक नहीं रहती है। उनका कथन सत्य ही निकला क्योंकि कुछ मास पश्चात् ही इन्होंने तथा इनकी पत्नी किसनदेवीजी ने शरीर त्याग दिया। महाराजजी और धर्मनिष्ठासम्पन्न डा० विद्यावतीजी ने दोपहर का भोजन होशियारपुर किया और सायंकाल जालंधर लौट आए।

अमृतसर प्रस्थान—अमृतसर के लाला खुशीराम महाजन वहुत वर्षों से स्वर्गाश्रम में मार्च के महीने में अभ्यासार्थ आया करते थे। इन्होंने २३ तारीख को प्रातःकाल अपनी कार जालंधर महाराजजी को लेने के लिए भेज दी। डाक्टर विद्यावतीजी तो अपने वाल्यकाल से ही इनसे परिचित थीं और ज्यों-ज्यों इनकी आयु वढ़ती गई त्यों-त्यों इनकी श्रद्धा और भक्ति इनके प्रति अधिकाधिक वढ़ती गई क्योंकि इनकी भगवान् के प्रति वड़ी निष्ठा और विश्वास है। वड़ी धार्मिका और परोपकारपरायणा हैं। पूज्य महाराजजी के उपदेशों से सर्वाधिक लाभ इन्होंने ही उठाया है और पत्रों द्वारा भी अपनी धार्मिक और साधना सम्वन्धी जिज्ञासाओं का समाधान करवाती रहती हैं। कुमारी लज्जावतीजी, आचार्या कन्या महाविद्यालय जालंधर, की भी महाराजजी के प्रति वड़ी श्रद्धा और भक्ति है। ये दोनों भी इनके साथ अमृतसर गईं। जालंधर निवासियों ने पूज्य गुरुदेव को वड़े सम्मान के साथ विदा किया। २३ ता० को दस वजे लाला खुशीराम की कोठी पर पहुंच गए। अमृतसर में सैंकड़ों आपके भक्त तथा श्रद्धालु हैं। महाराजजी के प्रारम्भिक तथा इसके पश्चात् साधना काल में अमृतसर का वड़ा महत्त्व है। यहां पर कई वर्ष तक इन्होंने निवास करके साधना की थी। यहां हज़ारों व्यक्ति इनके दर्शनार्थ आए। जव तक महाराजजी यहां विराजे तव तक प्रति सायंकाल पांच वजे से साढ़े छः वजे तक विविध आध्यात्मिक विषयों पर प्रवचन करके

अमृतसर की जनता को उपकृत करते रहे। सैकडो लोग प्रवचन मे आते थे और ज्ञानामृत का पान करते थे। लाला खुशीराम की कोठी पर सारा दिन दर्शनार्थियो तथा जिज्ञासुओ की भीड लगी रहती थी। इनके परम भक्तो मे से लाला खुशीराम, लाला गुरुचरणदत्त, बाबू मुलखराज और लाला हीरालाल आदि अनेक भक्त और शिष्य महाराजजी के साथ भ्रमण करने जाया करते थे। लाला खुशीरामजी के सुपुत्र द्वारिकानाथ, इनकी धर्मपत्नी, इनकी बहिन कैलाशवती और माता दुर्गादेवी बडी ईश्वरभक्त थी और प्राय ईश्वरभक्ति सम्बन्धी जिज्ञासाओ का समाधान करवाती रहती थी। आठ दिन तक प्रवचन के पश्चात् महाराजजी अपने पुराने श्रद्धालु भक्तो को आशीर्वाद देने के लिए दो दिन तक उनके निवासस्थानो पर गए। इसके पश्चात् इन्होने कश्मीर जाने का विचार किया। इन दिनो शेख अब्दुल्ला के कारावास से छूट जाने के कारण उसने तथा उसके दल ने कश्मीर मे कुछ गडबड सी मचा दी थी, इसलिए महाराजजी के भक्तो ने उन्हे वहा न पधारने के लिए प्रार्थना की, किन्तु ये तो भूत और भविष्यत् दोनो के ज्ञाता थे। इन्होने अपने योगबल से जान लिया था कि वहा पर कुछ नही होगा और अपने शिष्यो और भक्तो को इसका विश्वास दिलाया। फिर लाला खुशीराम ने इन्हे १५-२० दिन तक डलहौज़ी मे उनकी अपनी कोठी मे निवास करने का आग्रह किया और महाराजजी ने इनकी प्रार्थना स्वीकार करके कुछ दिन तक डलहौजी विराजकर कश्मीर जाने का निश्चय कर लिया। लाला खुशीराम, इनकी पत्नी तथा दो बच्चे भी इनके साथ गए।

डलहौजी प्रस्थान—दो मई को अमृतसर की जनता ने महाराजजी को बडे समारोह के साथ विदा किया। वहा से प्रस्थान करके ये पठानकोट पहुचे। यहा पर लाला महेन्द्रपाल अग्रवाल के पास ठहरे। श्री महेन्द्रपाल, इनकी पत्नी तथा दो बालक भी अपनी कार मे इनके साथ डलहौजी गए। वहा पर सभी लाला खुशीरामजी की कोठी पर ठहरे।

डलहौजी महाराजजी १५ दिन तक विराजे। यहा भी सत्सग होता रहा। इसके पश्चात् पठानकोट लौट आए। श्री महेन्द्रपाल अपनी कार मे इन्हे जम्मू छोड आए और वहा से ये १६ मई को ११ बजे हवाईजहाज़ मे श्रीनगर पहुच गए।

श्रीनगर निवास—श्रीनगर मे लाला विश्वनाथ इन्द्रनाथ अपनी कार मे श्री महाराजजी को अपने निवासस्थान पर लेगए। यहा पर एक जून तक निवास करने का विचार था। लाला विश्वनाथ ने १२ दिन तक उपनिषदो की कथा करने के लिए महाराजजी से निवेदन किया। सबको सूचना दे दी गई। इन्होने महोपनिषद् की कथा प्रारम्भ कर दी। लगभग सात सौ नर-नारी कथा श्रवण करने आए थे। इस उपनिषद् मे जगत् के उपादान कारण का प्रेरक अथवा निमित्त कारण भगवान् को नारायण के रूप मे माना है, इसलिए सर्वप्रथम नारायण शब्द की व्याख्या प्रारम्भ की गई और फरमाया कि भगवान् एक है। विभिन्न लोगो ने इसको विभिन्न नामो से पुकारा है। महापुरुषो ने उसे जिस रूप या अश मे देखा वैसा ही वर्णन कर दिया। इसी हेतु से ईश्वर और उसके ज्ञान की अनन्तता सिद्ध होती है। जो यह दावा करता है कि मैने उस ईश्वर के स्वरूप को ठीक-ठीक समझ लिया है, दूसरो ने नही समझा है, यह उसका दुराग्रह तथा दुरभिमान है। सभी महापुरुषो ने अपनी श्रद्धा, विश्वास,

भक्ति और प्रतिभा के अनुसार उसे समझने का प्रयास किया है, उसका अनुभव किया है और विश्वास किया है। जिस प्रकार ५ और ५ का जोड़ सदा १० रहेगा, जो भी इस संख्या को जोड़ेगा उसका परिणाम १० ही निकलेगा, इसी प्रकार से भगवान् को भी सभी महापुरुष एक ही स्वरूप में देखेंगे। जो नाना रूप से उसे देखता है वह भ्रान्त है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म उस अनन्त और चेतन के स्वरूप को पहिचानने में असमर्थ रहा है। सबसे बड़ा प्रश्न जो हमारे सामने है वह ह इस सृष्टि का स्रष्टा कौन है ? जैसे यह जगत् महान् है ऐसे ही इसका स्रष्टा भी महान् होना चाहिए। मनुष्य तो इसकी रचना कर नहीं सकता। इसके बनाने वाला कोई और ही होना चाहिए। उपनिषद् ने इस जटिल समस्या और महती जिज्ञासा को सुलझाते और समाधान करते हुए कहा है:—

निरीच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोकः प्रवर्तते।
सत्तामात्रे परे तत्त्वे तथैवायं जगद्गणः॥
अतश्चात्मनि कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च वै मुने।
निरीच्छत्वादकर्ताऽसौ कर्ता सन्निधिमात्रतः॥
ते द्वे ब्रह्मणी विन्देत कर्तृताकर्तृते मुने।
यत्रैवेपचमत्कारस्तमाश्रित्य स्थिरो भव॥

अपने शिष्य निदाघ को उपदेश देते हुए ऋषि ने उपरोक्त वचन कहे हैं। हे सौम्य निदाघ ! जैसे किसी स्थान या खान में कोई अमूल्य हीरा रखा हो उसको प्राप्त करने के लिए सांसारिक लोग प्रवृत्त होते हैं, उसी प्रकार सत्तामात्र चेतन तत्त्व परब्रह्म को प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु लोग प्रवृत्त होते हैं। इसलिए आत्मा में कर्तृत्व और अकर्तृत्व समझना चाहिए। आत्मा में कोई इच्छा नहीं है इसलिए इसे अकर्ता कहा गया है और सन्निधान मात्र से कर्ता माना गया है, किन्तु कर्तृत्व धर्म इसमें नहीं है। सान्निध्य मात्र से उसमें कर्तापन सिद्ध नहीं किया जा सकता। आत्मा के साथ चित्त का सान्निध्य है अतः आत्मा भी कर्ता नहीं है। मन, बुद्धि, चित्त, ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियां सब जड़ हैं। केवल मात्र आत्मा ही चेतन है। इस चेतन तत्त्व के सान्निध्य से चित्त में गति और क्रिया होने लगती है और सूक्ष्म प्राणों के द्वारा यह गति और क्रिया सारे शरीर में फैल जाती है। शरीर में सारा व्यापार और कार्यजात चित्त, मन, बुद्धि आदि पदार्थ करते हैं किन्तु इनका आरोप निष्क्रिय आत्मा में कर दिया जाता है। ब्रह्म भी निर्गुण चेतन तत्त्व है। इसके सान्निध्य से प्रकृति में गति उत्पन्न होती है और सत्त्व, रज तथा तम की साम्यावस्था नें विषमता आने लगती है और प्रकृति सृष्टि सृजन करने लगती है। ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय है। केवल सन्निधान मात्र से उसे कर्ता मान लिया गया है। वास्तव में ईश्वर या ब्रह्म में कर्तृत्व धर्म सिद्ध नहीं होता। जिज्ञासुओं को समझाने के लिए ब्रह्म के भी दो स्वरूप कह दिए गए हैं—कर्ता और अकर्ता। जगत् के कारणरूप प्रकृति के साथ ब्रह्म का सन्निधान है, इसलिए उसे कर्ता कह दिया गया है। वास्तव में तो वह अकर्ता ही है। इस जगत् अथवा इसके उपादान कारण प्रकृति में जो भी कार्य हो रहे हैं उनके वास्तविक स्वरूप को न समझकर कई आचार्यों ने इस जगत् के तथा इसके उपादान कारण प्रकृति के गुणों का ईश्वर और ब्रह्म में आरोप कर दिया है। वास्तव में आत्मा और परमात्मा दोनों अकर्ता हैं।

अन्त करण मे, आत्मा और प्रकृति मे, ब्रह्म के सन्निधान से कर्तृत्व धर्म उत्पन्न होता है क्योकि अन्त करण और प्रकृति मे ही परिणाम धर्म उत्पन्न हुआ है। अज्ञानता या भ्राति वश मनुष्य अपने को सुखी या दु खी मानता है तथा अपने को भोक्ता या कर्ता मानता है। इस अज्ञानता और भ्राति को दूर करने की आवश्यकता है। वास्तव मे सुख, दु ख, कर्तृत्व और भोक्तृत्व सव अन्त करण के धर्म है जिन्हे वह अपने मान रहा है। इसी प्रकार कर्तृत्व धर्म प्रकृति का है किन्तु भ्रातिवश इसे ब्रह्म मे आरोपित कर दिया जाता है। ब्रह्म मे कर्तृत्व नही है। वह तो निर्गुण और निष्क्रिय है। इसके सन्निधान मात्र से प्रकृति मे गति उत्पन्न होती है और उससे सारी सृष्टि का सृजन होता है। इस सन्निधान मात्र से भ्रातिवश ब्रह्म को ही स्रष्टा मान लिया गया है, वास्तव मे यह प्रकृति का कार्य है, ब्रह्म का नही। प्रकृति के धर्म का ब्रह्म मे आरोप अज्ञानतावश किया गया है। इस भ्राति के दूर होने पर ही आत्मा और परमात्मा का यथार्थ, निर्भ्रान्त और वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। तभी मनुष्य की आत्मा और परमात्मा विषयक जिज्ञासा की पूर्ति होगी। पूज्य महाराजजी ने विभिन्न दृष्टान्तो और प्रमाणो से इस सिद्धान्त की पुष्टि की। १२ दिन तक निरन्तर कथा होती रही। नित्यप्रति सव श्रोताओ को फल अथवा मिश्री प्रसाद रूप से बाटी जाती थी। जनता ने इस उपदेशामृत का पान करके अपने को धन्य समझा।

गुलमर्ग प्रस्थान—श्री महाराजजी पहिले कई वर्ष तक काश्मीर मे निवास कर चुके थे। प्राय प्रति ग्रीष्म ऋतु मे यहा आया करते थे, इसलिए सैकडो लोगो से परिचित थे और सैकडो ही यहा पर इनके शिष्य तथा भक्त थे। प० शम्भुनाथजी तिक्कू महाराजजी के प्रति वडी श्रद्धा और भक्ति रखते थे। इन्होने ४०० रुपये पर सारी गर्मी के मौसम के लिए एक कोठी गुलमर्ग मे नितान्त एकान्त और शान्त स्थान मे लेकर दी थी। इसी मे महाराजजी सारी ग्रीष्म ऋतु विराजे थे। श्रीनगर मे कथा समाप्त करके ये हारवन, शालामार, निपात, चश्माशाही आदि स्थानो का भ्रमण करते रहे। दो जून को गुलमर्ग पधारे। यह स्थान श्रीनगर से लगभग ३० मील है। इसकी ऊचाई लगभग ८-९ हजार फीट होगी। पहलगाव की अपेक्षा यह अधिक शान्त और एकान्त था। महाराजजी के भक्त लाला विश्वनाथ और इन्द्रनाथ प्रत्येक रविवार को महाराजजी के दर्शन और सत्सग के लिए आया करते थे। फल सब्जी आदि तथा अन्य खाद्य सामग्री भी भिजवाते रहते थे। प० द्वारिकानाथजी दरवाग और प० राधाकृष्णजी तिक्कू महाराजजी के प्रति वडी श्रद्धा और भक्ति रखते थे। प० द्वारिकानाथजी प्रति १५ दिन के पश्चात् अपने वागो से सब्जी, फल आदि भिजवाते रहते थे। प० शम्भुनाथजी गुलमर्ग मे ठेकेदार थे, अत ये और इनका परिवार महाराजजी की सव प्रकार से सेवा करते रहते थे। इनके कई भक्त सत्सग और अभ्यास के लिए आए हुए थे। दिल्ली से डाक्टर विमला तथा इनकी माताजी और चाची सत्यवतीजी आई हुई थी। अमृतसर से गुरुचरणदत्त महाजन और भाग्यवन्तीजी, दिल्ली से लाला महावीरप्रसाद, इनकी पत्नी और पुत्री, लुधियाना से लाला सत्यप्रकाश, इनकी पत्नी और पुत्र, पठानकोट से लाला महेन्द्रपाल, इनकी पत्नी और दो वालक, गुरुदासपुर से लाला योगेन्द्रपाल, इनकी पत्नी शकुन्तलाजी आदि काश्मीर आए थे। इन सबने महाराजजी के सत्सग और इनके पास अभ्यास करके

बहुत लाभ उठाया। व्यास-पूजा के अवसर पर लगभग सौ शिष्य महाराजजी के पास आए थे। इस पावन पर्व पर पूज्य गुरुदेवजी तथा आनन्दस्वामीजी सरस्वती के गुरु-पूजा के विषय में सारगर्भित भाषण हुए और एक बड़ा भण्डारा दिया गया। बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ यह पर्व मनाया गया। श्री महाराजजी अपने शिष्यों को साथ लेकर गुलमर्ग के मैदानों में लगभग दो घण्टे तक सैर किया करते थे और आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान के विषय में उन्हें समझाते भी रहते थे। कभी-कभी घूमते-घूमते खिलनमर्ग तथा अलपत्थर भी चले जाया करते थे। श्री आनन्द स्वामी सरस्वती गुरु-पूजा के लिए ही पधारे थे।

पहलगांव प्रस्थान—साढ़े तीन मास तक गुलमर्ग में निवास करके श्री महाराजजी श्रीनगर पधारे और यहां पर वजीरवाग्रस्थ गुरुसहायमल की कोठी पर ठहरे। यहां पर एक दिन निवास करके पहलगांव पधारे। वहां पर लाला गुरुसहायमल तथा लाला केदारनाथ बहुत दिनों से इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इन्होंने एक कोठी महाराजजी के लिए इनके वहां पधारने से पूर्व ही ले ली थी। श्री विश्वनाथजी इन्हें अपनी कार में पहलगांव पहुंचा गए थे। यहां पर आठ दिन रहने का विचार था जिसमें चार दिन तक तो पहलगांव और तीन दिन अमरनाथ तथा एक सप्ताह कुक्कड़नाग। पहलगांव में श्री महाराज इन दोनों परिवारों को उपदेश सुनाते रहे और अभ्यास भी करवाते रहे। २१ सितम्बर को महाराजजी ने अमरनाथ के लिए प्रस्थान किया। इनके साथ सूरतराम सेवक और अमृतसर के एक लालाजी थे। घोड़े इनके साथ थे। प्रथम दिन शेषनाग के किनारे डाक बंगले में ठहरे। प्रातःकाल चायपान करके भोजन अपने साथ लेकर तीनों अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर चल दिए। सब सामान यहीं छोड़ दिया था क्योंकि सायंकाल यहीं लौट कर आना था। शेषनाग की ऊंचाई १३—१४ हज़ार फीट थी, अतः घोड़े पर बैठे-बैठे भी पांव निःसंज्ञ से होरहे थे। शेषनाग की झील बड़ी सुन्दर है। एक बार यहां आकर फिर वापिस जाने को दिल नहीं चाहता। आस-पास के पर्वतों का दृश्य बड़ा अनुपम था। अत्यधिक शीत के कारण कूल का पानी जम गया था। कुछ मील आगे चलने पर पंचतरणी एक बड़े मैदान में पहुंचे। इसमें पांच छोटी-छोटी नदियां बहती हैं। यहां पर विज्जू की किस्म के सैंकड़ों जानवर दिखाई दिए। इनके चमड़े के कोट, दस्ताने, जूते आदि बनाए जाते हैं। शेषनाग से घोड़ों पर सवार होकर अन्य यात्री भी साथ आए थे। साढ़े ग्यारह बजे सब अमरनाथ की गुफा में पहुंचे। यहां पर आराम किया तथा गुफा के आस-पास का सब दृश्य देखा। इस समय यहां कोई कबूतर दृष्टिगोचर नहीं हुआ। किन्तु कोयल के समान एक काली चिड़िया गुफा में अवश्य दिखाई दी। हाथ में किशमिश रखकर इसे खाने के लिए बुलाते तो झट आकर प्रेमपूर्वक किशमिश खाने लग जाती थी। इस समय गुफा में बर्फ का कोई शिवलिंग भी न था। सब प्रतिमाएं गल कर समाप्त हो गई थीं। गुफा के बीच में कहीं-कहीं पानी टपकता था। आज कल लोहे का एक जंगला गुफा में लगा दिया गया है। इन दिनों न तो कोई यहां रहता था और न कहीं स्वच्छता ही दिखाई देती थी। एक घण्टा तक सब गुफा में ठहरे। ऊंचाई पर भूख कम लगती है, अतः भोजन साथ होते हुए भी किसी ने नहीं खाया क्योंकि किसी को भी भूख नहीं लगी थी। सब साथी लगभग एक घण्टे तक पूजा-पाठ

करते रहे और गुफा तथा इसके आस-पास के सौन्दर्य की सराहना करते रहे। एक बजे यहा से प्रस्थान करके सायकाल पाच बजे शेषनाग पहुच गए। यहा से अमरनाथ लगभग बारह मील होगा। प्रात काल यहा से चल कर चन्दनवाडी होते हुए चार बजे पहलगाव पहुच गए। लाला गुरुसहायमल और केदारनाथजी को अपनी यात्रा का समस्त वृत्त सुनाया जिसे सुनकर वे वडे प्रसन्न हुए। दूसरे दिन ये तीनो कुक्कड-नाग के लिए रवाना होगए। इसके लिए सबने श्रीनगर से अपनी-अपनी कारे मगवा ली थी। इनकी पत्निया तथा बच्चे भी साथ थे। २४ सितम्बर को कुक्कडनाग पहुचे। वहा पर दो बगले किराये पर लिए गए। छ दिन तक यही सत्सग और अभ्यास होता रहा। ३० सितम्बर को श्रीनगर वापस आगए। श्री महाराजजी चार दिन तक केदारनाथजी की कोठी पर ठहरे। इसके पश्चात् ६–७ दिन के लिए हारवन चले गए। केदारनाथजी इन्हे प० द्वारिकानाथजी के पास अपनी कार मे छोड आए थे। यहा पर महाराजजी नित्य ही कथा किया करते थे। ब्राह्मणो के प्राय सभी परिवार प्रतिदिन कथा सुनने के लिए आया करते थे। श्रीनगर से बहुत से लोग उपदेश सुनने आते थे। बहुत से तो नगर से आकर सत्सग के लिए गाव मे ही रहने लग गए थे। प० द्वारिकानाथजी के घर पर प्राय मेला सा लगा रहता था। महाराजजी के कई मुसलमान भक्त थे। ये भी नित्य मिलने आया करते थे। ये महाराजजी को अपना पीर और गुरु मानते थे। ३०-३५ वर्ष पूर्व महाराजजी यहा के लोगो मे औषधिया बाटा करते थे और इन लोगो का इलाज भी किया करते थे, इसलिए इनके प्रति इनकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। इस प्रदेश के हिन्दु और मुसलमान दोनो महाराजजी का बडा सम्मान करते थे। एक सप्ताह यहा रह कर पुन श्रीनगर चले गए और लाला गुरुसहायमल सहगल की कोठी मे आठ दिन तक कथा की और २० अक्टूबर को यहा से ऋषिकेश के लिए प्रस्थान किया।

महात्मा लक्ष्मणजी का समागम––श्री महाराजजी इन महात्माजी से मिलने गए। ये इनके बहुत पुराने मित्रो मे से थे। जब महाराजजी हारवन मे रहते थे तब ये सप्ताह मे एक दो बार अवश्य मिलने जाया करते थे। कभी-कभी दोनो मिलकर शिकारगाह मे सैर करने भी जाया करते थे। दोपहर का भोजन महात्माजी की कोठी पर ही किया। इनके शिष्यो ने बडे सम्मानपूर्वक भोजन करवाया। इनकी दो शिष्याए बडी विदुषी, सती-साध्वी और सौम्य मूर्ति थी। ये दोनो सहोदरा थी। इनमे से एक का नाम शारिकादेवी तथा दूसरी का प्रभादेवी था। ये बहुत वर्षों से महात्माजी के सपर्क मे रहकर आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए कठिन साधनाए कर रही थी। महात्माजी प्रति रविवार को सत्सग लगाते थे। भजन, कीर्तन, अध्ययन तथा उपदेश कई घण्टे तक होता रहता था। महात्माजी और महा-राजजी का कई घण्टे तक आध्यात्मिक विषयो पर विचार होता रहा। सायकाल ६ बजे ये वहा से लौट आए।

श्रीनगर में पुनः कथा––श्रीनगर मे पुन १० से १७ अक्टूबर तक महोपनिषद् की कथा की। बीच-बीच मे योग सम्बन्धी और अनेक आध्यात्मिक विषयो का वर्णन करते रहे। लगभग सात सौ श्रोता प्रतिदिन आते थे। सैकडो लोग नित्यप्रति मिलने आते थे। चाय और भोजन का गुरुसहायमलजी के मकान पर एक प्रकार का लगर

सा लगा रहता था। इनकी पत्नी बडी उदारता से आगन्तुक महानुभावो का सत्कार करती थी।

१८ अक्टूबर को महाराजजी रैनावारी मे अपने भक्त प० राधाकृष्ण दीनानाथ निक्कू के घर पर भोजन करने गए। रैनावारी के बहुत से भक्त दर्शनार्थ आए। १९ अक्टूबर को प० गोपीनाथ विश्वनाथ के पुत्र शभुनाथ अमरनाथ के मकान पर भोजन करने पधारे। यहा पर भी बहुत से स्त्री-पुरुष दर्शनार्थ एकत्रित हुए थे। इन सबको प्रेम तथा सगठन का उपदेश दिया। परिवार के स्तर को ऊचा उठाने और पारिवारिक जीवन को सुखमय तथा स्वर्ग बनाने के उपाय विविध उदाहरण और दृष्टान्त देकर समझाये। लोगो पर उनका बडा अच्छा प्रभाव पडा।

जम्मू-गमन—लाला केदारनाथजी महाराजजी को जम्मू अपनी कोठी पर ले जाना चाहते थे। अत २० अक्टूबर को प्रात ६ बजे अपनी कार लेकर आगए। लाला गुरुसहायमल के परिवार, अन्य शिष्यो, भक्तो और श्रद्धालुओ ने बडे सम्मान के साथ महाराजजी को विदाई दी। प्रात साढे सात बजे चलकर सायकाल जम्मू पहुच गए। यहा पर उनकी कोठी पर ठहरे। इन्होने महाराजजी की बहुत सेवा की और योगनिकेतन मे एक कुटिया बनवाने की अनुमति प्राप्त की क्योकि अब इनका चित्त कुछ उपराम सा होता जा रहा था और वे महाराजजी के पास रहकर आत्म-ज्ञान लाभ करना चाहते थे। २३ अक्टूबर को लालाजी अपनी कार मे योगीराजजी को पठानकोट पहुचा गए। यहा पर लाला महेन्द्रपाल के पास ठहरे। भोजनोपरान्त केदारनाथजी वापिस चले गए। महाराजजी दो दिन तक पठानकोट ठहरे। २६ अक्टूबर को लाला योगेन्द्रपाल उन्हे गुरुदासपुर ले गए। यहा पर दो दिन तक महाराजजी का योग के विषय मे प्रवचन हुआ। ये अपनी पत्नी सहित कई बार स्वर्गाश्रम मे अभ्यासार्थ आया करते थे। २८ अक्टूबर को यहा से योगेन्द्रपालजी अमृतसर पहुचा गए। यहा पर सतीशचन्द्रजी के पास ठहरे। कई भक्त दर्शनार्थ आए। अमृतसर से रात्रि के आठ बजे हरिद्वार गाडी जाती थी, उसमे सवार होकर हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया। जालन्धर और लुधियाने के स्टेशनो पर महाराजजी के अनेक भक्त दर्शनार्थ आए। ज्वालापुर के स्टेशन पर महात्मा प्रभुआश्रितजी के बहुत से शिष्य दर्शनार्थ आए। उन्होने वानप्रस्थ आश्रम मे पधारने के लिए बहुत प्रार्थना की, अत प्रथम आश्रम मे पधारे। वहा पर महात्माजी को आशीर्वाद तथा उपदेश दिया। वहा दुग्धपान करके टैक्सी द्वारा ऋषिकेश पहुचे। यहा पर नैशनल बैक आफ लाहौर के मैनेजर श्री बलदेवमित्र के पास भोजन किया। लगभग ७ मास की यात्रा के पश्चात् पूज्य गुरुदेव सायकाल स्वर्गाश्रम पहुचे।

स्वर्गाश्रम मे साधना शिविर—१ नवम्बर १९६४ को साधना शिविर प्रारभ होगया। अभ्यासी बहुत से आ चुके थे और कुछ अभी आने को थे। शिविर की सब व्यवस्था ठीक-ठीक होगई थी। श्री कैप्टन जगन्नाथजी, रायसाहेब विश्वेश्वरनाथजी तथा लाला रामकिशोरजी योग-प्रशिक्षणार्थ आगए थे। इस वर्ष गगोत्री मे अन्न-क्षेत्र की व्यवस्था करने के लिए प० शकरलालजी शर्मा को भेजा था। इनके साथ ब्रह्मचारी श्रीकठ भी गए थे। ये सितम्बर मास मे गगोत्री से लौट आए थे किन्तु उत्तरकाशी मे ४० दिन काष्ठ मौन व्रत करने के कारण वहा नही रहे।

श्री महाराजजी ने १ नवम्बर मे अभ्यास प्रारम्भ करवाया। प्रथम दिन अभ्यासियो की सख्या लगभग १५-१६ थी। प्रात काल तो योग कक्षा महाराजजी स्वय लेते थे और सायकाल को कैप्टन जगन्नाथजी लेते थे। अभ्यासियो की सख्या नित्यप्रति वढ रही थी। १० नवम्बर को जव शर्माजी आए तव महाराजजी ने इन्हे आश्रम के लिए जो जमीन खरीदी गई थी उसकी हदवन्दी करवाकर आश्रम के निर्माण का आदेश दिया। ये प्रात और साय अभ्यास करते और दिन मे निर्माण कार्य। ऋषिकेश या स्वर्गाश्रम मे योगनिकेतन का अपना निजी स्थान न होने के कारण अनेक प्रकार की कठिनाइया होती थी। अभी तक कोई अनुकूल भूमि प्राप्त नही हो रही थी, यद्यपि कई वर्ष से इसके लिए प्रयत्न किया जा रहा था।

योगनिकेतन के भवन निर्माण के लिए भूमि खरीदना—सन् १९६३ मे यह पता लगा कि रामेश्वरसहायजी, जो टिहरी गढवाल के चीफ कजरवेटर आफ फोरेस्ट थे, अव सेवा निवृत्त होगए है और लखनऊ मे निवास करते है। इनकी जमीन मुनि की रेती मे स्वामी शिवानन्दजी महाराज के आश्रम के पास सडक के किनारे गगाजी के तट पर है। इतस्तत पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह भूभाग विकाऊ है। श्री शकरलालजी शर्मा को इनके पास लखनऊ भेजा गया। पहले तो इन्होने इस भूमि के दाम वीस हजार से भी अधिक मागे किन्तु जव शर्माजी ने पूज्य गुरुदेवजी के रचित दो ग्रथ भेट करके इनका पूरा परिचय दिया और योगनिकेतन के उद्देश्यादि वताए और कहा कि यह स्थान योग-विद्या तथा आध्यत्मिक शिक्षा का केन्द्र वनेगा तव इन्होने प्रसन्नतापूर्वक कहा कि आप जो देगे वही मुझे स्वीकार होगा। यह वचन लेकर शर्माजी लौट आए। इस भूमि पर एक छोटी सी कोठी वनी हुई थी। इसका मूल्य वारह हजार रुपया आका गया। इस सम्वन्ध मे श्री रामेश्वरसहायजी को पत्र लिखा गया। इनको १२०० रु० की पेशगी भेज दी गई और सन् १९६४ मे इस भूमि की रजिस्ट्री योगनिकेतन ट्रस्ट के नाम करवा दी गई। इसी साल से भवन निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

अभ्यासियो पर मनोवल का प्रयोग—श्री महाराजजी को प्रात काल अभ्यास करवाते २४ दिन होगए थे। लुधियाने वाले सत्यप्रकाशजी तथा अन्य कई एक शिष्यो ने आकर निवेदन किया, "महाराजजी! अभ्यास मे कुछ विशेष उन्नति नही हो रही है। आप अपने भक्तो और शिष्यो पर कुछ विशेष ध्यान नही दे रहे हैं।" महाराजजी ने फरमाया, "मैं अपने मस्तिष्क और मनोवल से अधिक काम नही लेना चाहता हू। मुझे वहुत वर्ष साधना करवाते होगए है, अत कुछ थकावट सी मालूम होने लगती है और उपरामता भी आती जा रही है।" सत्यप्रकाशजी ने इस पर कहा, "महाराजजी! फिर हमारा कल्याण किस प्रकार होगा?" इन्होने आदेश दिया कि "आपकी आयु ५० वर्ष से ऊपर होगई है। वानप्रस्थ धारण करके अहर्निश निरन्तर अभ्यास का प्रयत्न करो, कुछ काल मे ही कल्याण हो जाएगा। अपने प्रयत्न से जो विज्ञान प्राप्त करोगे वह विशेष उन्नति और सफलता का हेतु होगा। दूसरो से उधार या दान मे ली हुई वस्तु विशेष हितकारी और लाभदायक नही होती। स्वय अपने पुरुषार्थ से प्राप्त किया हुआ धन अथवा विज्ञान दीर्घकाल तक स्थायी

रहेगा, लाभदायक होगा।" इस पर सब उपस्थित अभ्यासियो ने एक स्वर से कहा, "आपने भी तो अपने गुरु से विज्ञान प्राप्त किया था, फिर आप हमारे विषय मे क्यो उपराम होते है ?" इस पर महाराजजी ने हसते हुए कहा, "हमने तो एक गुरु से एक मास मे और दूसरे मे १७ घण्टे मे आत्म-ज्ञान प्राप्त किया था। हमारे पास तो कई अभ्यासी ऐसे भी हैं जो १२ वर्ष से हमारे पास साधना कर रहे है। हमे जो गुरुजनो के पास से ३१ दिन मे आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ था वह इन्हे १२ साल मे भी प्राप्त न हो सका। इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि या तो आप लोग इस ज्ञान के अधिकारी नही है अथवा हमे ही कुछ नही आता अथवा दोनो ही अनभिज्ञ है।" इस पर रामकिशोरजी ने कहा, "आपने श्री आनन्दस्वामीजी को गगोत्री मे आठ दिन मे ही सम्पूर्ण ज्ञान करवा दिया था, हमे तो उतना १२ वर्ष मे भी नही करवाया।" महाराजजी ने पुन मुस्कराकर कहा, "इसमे आनन्दस्वामीजी की विशेषता है या हमारी ?" अभ्यासियो ने कहा, "हम तो इसमे आपकी विशेषता समझते है।" वास्तव मे जिसमे सच्ची जिज्ञासा न हो और जो पूर्ण अधिकारी न हो, जिसमे ब्रह्म-ज्ञान प्राप्ति की पात्रता न हो, वह किस प्रकार इस ज्ञान को प्राप्त कर सकता है ! दूध अमृत के समान गुणकारी, लाभदायक, स्वादु तथा मधुर है। यदि उसे दुर्गन्धियुक्त गली-सडी वस्तुओ से पूर्ण पात्र मे रख दिया जाए तो वह भी विषवत् हो जाएगा। इसी प्रकार तप, त्याग, शम, दम, उपरति, तितिक्षादि साधनसम्पन्न न होने से जिज्ञासु आत्म-विज्ञान का अधिकारी नही हो सकता। इसी कारण आप लोगो को विशेष सफलता प्राप्त नही हो रही है। इतना समझा देने के उपरान्त महाराजजी ने उन्हे विश्वास दिलाया कि आज वे विशेष बल लगाएगे, सब लोग सावधान और समाहित होकर बैठे और अपनी-अपनी साधना करे। जिस-जिस देश या स्थान मे जिसका अभ्यास चल रहा है वह उसी-उसी देश या स्थान मे अभ्यास करे, आज उसे विशेष सफलता लाभ होगी। पूज्य गुरुदेव ने प्रात साढे चार बजे सावधान और समाहित होकर अपने मनोबल से सबको स्तब्ध कर दिया। जो अभ्यासी जहा-जहा अभ्यास कर रहे थे वहा-वहा उस स्थान और पदार्थों का सबको साक्षात्कार होने लगा। सबके अन्दर एक दिव्य ज्योति प्रकट होकर अन्दर और बाहर से सब पदार्थों को दिखाने लगी। लगभग डेढ घण्टा तक अभ्यासियो की यह स्थिति आज के अभ्यास मे रही। प्राय सब साधको को विशेष सफलता, समाहितता, विज्ञान और साक्षात्कार हुआ। सब साधक अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। महाराजजी के प्रति बहुत कृतज्ञता प्रकट करने लगे और सबने हाथ जोड कर निवेदन किया, "महाराजजी ! यदि आप कुछ दिन और इसी प्रकार का अभ्यास करवाए तो हम सबका बेडा पार हो जाएगा।" महाराजजी ने कहा, "हा, तुम्हारा बेडा तो ज़रूर पार हो जाएगा किन्तु मेरा डूब जाएगा।" साधको के यह पूछने पर कि यह कैसे हो सकता है। महाराजजी ने कहा, "आज मुझे अपने मस्तिष्क से बहुत बल लगाना पडा है। मस्तिष्क पर जोर पडने से सिर-दर्द होने लग गया है क्योकि तुम्हारे नटखट मनो को दमन करने मे, उन्हे दमन करके समाहित करने मे और समाहित करके उस-उस स्थान मे लगाए रखने तथा विज्ञान करवाने मे मेरे सिर पर बहुत दबाव पडा है। इससे मस्तिष्क और ज्ञान-वाहक नाडिया, सूक्ष्म तन्तु और शिराए कठोर होगई है, इस कारण सिर मे वेदना होने लग गई है।"

मस्तिष्क रोग—यह सुनकर अभ्यासियो की सारी प्रसन्नता दु ख मे परिणत होगई। ६-३० वजे सब अभ्यासी अपने-अपने स्थान पर चले गए। इस दिन महाराजजी के सिर मे सारा दिन वेदना रही। सायकाल ५ वजे सैर करने के लिए गए और ६ बजे अभ्यास किया। ८-३० वजे श्री सत्यप्रकाश, उनकी धर्मपत्नी तथा धर्मवती महाराजजी को प्रणाम करने आए और ६ वजे चले गए। ६-३० वजे महाराजजी सीढियो का दरवाजा वन्द करने के लिए नीचे उतरे और नीचे के वराडे मे घूमने लगे। धर्मवती ने पूछा, "आज आप यहा वराडे मे क्यो घूम रहे है ?" उन्हे पता चला कि महाराजजी अस्वस्थ है और स्मृति का अभाव सा अनुभव कर रहे हैं। तव ये वहुत घवराई और सत्यप्रकाशजी को बुलवा कर डाक्टर को बुलाने के लिए कहा। महाराजजी को ऊपर ले जाकर लिटा दिया गया। प्रीतमचन्द, जगन्नाथ, महावीर आदि कई अभ्यासी वहा आगए और उपचार करने लगे। डाक्टर हसराज ने आकर १०-३० बजे रक्त-सचार देखकर बतलाया कि रक्त चाप वहुत वढ गया है। इस समय २४० है और स्मृति जाती रही है। बार-बार पेशाव तथा डकारे आने लगी। महाराजजी कभी-कभी वहा उपस्थित भक्तो तथा अभ्यासियो से पूछते थे कि मुझे क्या होगया है और कभी अपने तकिए के नीचे से घडी निकाल कर देखने लगते थे। प्रात चार बजे तक इन्हे निद्रा नही आई। इसके पश्चात् ७ वजे तक कुछ नींद आई। ८ बजे तक रक्त-सचार ठीक होगया था। महाराजजी ने डाक्टर से कहा कि मेरा स्वास्थ्य अब ठीक है। रात्रि के ६-३० वजे से लेकर प्रात ८ वजे तक क्या हुआ, मुझे कुछ भी स्मरण नही है। रात्रि मे डाक्टर हसराजजी के आने का भी उन्हे स्मरण नही था। डाक्टरजी ने इन सब कष्टो का कारण मस्तिष्क से अधिक काम लेना बताया। अभ्यास न करवाकर पूर्ण आराम करने की सलाह दी। रोग का निदान हो ही गया था। डाक्टर साहव ने इन्हे कई एक दवाइयो का प्रयोग करने के लिए कहा। इसके पश्चात् लगभग डेढ मास तक महाराजजी को शिर-पीडा रही। व्याख्यान देने, अधिक बोलने तथा मस्तिष्क से अधिक काम करने से शिर-पीडा वढ जाती थी, अत यह कार्य इन्होने सर्वथा छोड दिए।

एक सप्ताह के पश्चात् महाराजजी ने अभ्यासियो को अभ्यास करवाना प्रारभ किया। शान्त भाव से जाकर चुप होकर बैठ जाते थे। सव भक्तो की यह सम्मति थी कि महाराजजी दिल्ली अथवा बम्बई जाकर अपना उपचार करवाए।

दिल्ली, बम्बई आदि नगरो का पर्यटन

श्री महाराजजी ने दिल्ली, अहमदावाद, वम्वई आदि नगरो के भक्तो को वहा जाने का वचन दिया हुआ था। सर्वप्रथम दिल्ली पधारने का निश्चय हुआ और वहा पर श्री जगदीशचन्द्रजी डावर की कोठी पर निवास करने का विचार किया। श्री डावरजी अपनी कार लेकर २५ दिसवर को ही स्वर्गाश्रम पहुच गए। दो मास के पर्यटन का पूरा प्रोग्राम बनाया गया और आश्रम की पूरी व्यवस्था की गई। अभ्यास का सपूर्ण कार्य श्री दत्तजी और कैप्टन साहव ने सभाला। प्रात काल कैप्टन साहव और सायकाल श्री दत्तजी ने अभ्यास करवाना प्रारभ कर दिया। महाराजजी के सब शिष्यो और शिष्याओ ने बडे सम्मान के साथ इन्हे विदा किया। ज्वालापुर मे वानप्रस्थ आश्रम मे महात्मा प्रभुआश्रितजी से मिलने गए। यहा पर महात्माजी

की शकाओ का समाधान किया और कुछ उपदेश भी दिया। दुग्धपान करके यहा से दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। दोपहर के १ बजे वहा पहुचे। यहा पर अनेक भक्त फूल-मालाए लेकर स्वागतार्थ प्रतीक्षा मे खडे थे। महाराजजी ने सबको उपदेश देकर आशीर्वाद दिया। जनता को सत्सग और दर्शन के लिए ४ बजे से ६ बजे तक का समय दिया गया। सेठ जुगलकिशोरजी बिरला को महाराजजी की अस्वस्थता का पता चल गया था, इसलिए इन्होने बडे-बडे योग्य वैद्यो को उनका उपचार करने के लिए भेजना प्रारभ कर दिया। रोग के निदान के बारे मे प्राय सभी वैद्यो की सम्मति एक थी किन्तु डाक्टरो का इनमे मतभेद था। स्वर्गाश्रम के डाक्टर हसराजजी और दिल्ली के प्रसिद्ध मस्तिष्क रोगो के डाक्टर बलदेवसिंह दोनो की सम्मति रोग के विषय मे एक थी। उन्होने दिमागी काम तथा चिन्ता न करने की सम्मति दी।

जिज्ञासु भक्तो का शका-समाधान—पूज्य महाराजजी ने सत्सगी भक्तो को ४ से ६ बजे तक का समय देना प्रारम्भ कर दिया। जिस विषय मे जो शका जिज्ञासु लोग करते थे उसी विषय के समाधानरूप मे व्याख्यान प्रारभ कर दिया जाता था। दो घटे मे केवल दो-तीन शकाओ का ही समाधान हो पाता था। ये व्याख्यान किसी विशेष विषय या कथा के रूप मे नही होते थे, केवल शका समाधान के रूप मे ही होते थे। इस प्रकार एक सप्ताह तक नाना विषयो पर प्रवचन होते रहे। इस शकासमाधान मे ४-५ सौ स्त्री-पुरुष एकत्रित होते थे।

श्री जगदीशचन्द्र डाबर ने शका उठाते हुए श्री महाराजजी से पूछा, "आप भगवान् को निर्गुण मानते है, फिर प्राणिमात्र के कर्मफल की व्यवस्था कौन करता है? मनुष्य को तो स्मरण भी नही रहता कि मैने कौन-कौन से कर्म किए है और किस कर्म का क्या फल हो सकता है। न्यायाधीश भी लोक मे सब के कर्मफल की व्यवस्था नही कर सकता जबतक कोई व्यक्ति किसी अपराधी के विषय मे न्यायालय मे जाकर दावा दायर न करे। मनुष्य पाप करके स्वय भी उसका दुख रूप फल भोगना पसन्द नही करता, अत आप इसका स्पष्टीकरण करने की कृपा करे।"

प्राणिमात्र के कर्मफल की व्यवस्था—पूज्य महाराजजी ने कर्मफल के विषय मे निम्न प्रकार से इस शका के समाधानरूप मे अपना प्रवचन प्रारभ किया —

यदि हम ईश्वर को कर्मफलदाता मानते है तब कर्मफल प्रदान करना भी उसका गुण विशेष मानना पडेगा, अत इसी प्रकार और भी अनेक गुण उसमे मानने पडेंगे और जिसमे अनेक गुण होंगे उसमे गुणो का क्रमपूर्वक उत्पन्न होना भी मानना पडेगा। प्रत्येक गुण का व्यापार भी क्रमभेद से मानना होगा। जहा क्रमपूर्वक गुणो की उत्पत्ति और क्रमपूर्वक व्यापार होगा उसको विकारवान् मानना पडेगा और विकारवान् पदार्थ परिणामी होता है। ईश्वर निर्गुण है, अत वह सर्व विकारो और सर्व गुणो से रहित और अपरिणामी है। इसलिए ईश्वर कर्मफल की व्यवस्था नही कर सकता। जब हम उसे सृष्टिकर्ता नही मानते तब इसे कर्मफलदाता मानने की क्या आवश्यकता है? जीवात्मा भी इस कार्य को नही कर सकता। जब उसे अपने ही कर्म स्मरण नही रहते तब दूसरो के कर्म को कैसे स्मरण रखकर उनका फल प्रदान करेगा? आत्मा एकदेशी है। वह सारे जगत् के प्राणियो के कर्मफल प्रदान करने मे कैसे समर्थ हो सकता है, अत यह भी कर्मफलप्रदाता नही हो सकता। अनेक

आत्माए मिल कर भी कर्मफल प्रदान नही कर सकती क्योकि उनमे भी एकदेशिता है। सब देशो के प्राणियो के कर्मफल का विभाग किस प्रकार करेंगे ?

कर्म का फल कर्म मे निहित—इसका समाधान इस प्रकार है। कर्म का फल सूक्ष्मरूप से उसमे ही निहित रहता है। एक विद्यार्थी विद्याध्ययन करता है, उसका फल विद्याप्राप्ति होता है। पाचक भोजन बनाता है, उसका फल क्षुधा निवृत्ति होता है। कृषक खेती करता है, उसका फल अन्नोत्पत्ति होता है। एक गृहस्थी विवाह करके पत्नी सहवास करता है, तो इसका फल सन्तानोत्पत्ति होता है। आम या सेव का बीज बोया जाता है, ये अकुरित होकर वृद्धि को प्राप्त होते है और समय आने पर फल देते है। फल आने से प्रथम ही इन बीजो मे अकुर, तना, शाखा, पत्ते, फूल, फलादि निहित थे अर्थात् सूक्ष्म रूप से कारण रूप मे उसमे विद्यमान थे। देश, काल, निमित्त, और सामग्री उपस्थित होने पर स्वय ही फल देने लगते है। अत प्रत्येक कर्म अपने फल को साथ लिए ही होता है। जब उसे देश, काल, निमित्त, सामग्री आदि साधन जुट जाएगे तब ही वह कर्म अपने फल को प्रदान करेगा। कर्मफल प्रदान करने मे ईश्वर की आवश्यकता नही है। जब गन्ने का फल गन्ना और आम का फल आम ही होता है तब इसमे ईश्वर की आवश्यकता भी क्या है और वह करेगा भी क्या ? यदि गन्ने मे आम और आम मे गन्ने लगाने होते, अथवा घोड़े से गाय बनाना होता या बैल को हाथी या गैंडा बनाना होता, तब शायद ईश्वर की जरूरत पडती। इस विपरीत फल के लिए भगवान् की आवश्यकता हो जाती। जब मनुष्य से मनुष्य ही उत्पन्न होता है, हाथी से हाथी और आम के पेड के फल आम ही होते है, तब भगवान् की क्या आवश्यकता है ? जब पाप-कर्म का फल दुख और पुण्य-कर्म का फल सुख ही होता है तब फल प्रदान के लिए ईश्वर की क्या आवश्यकता है ? पाप और पुण्य, अधर्म और धर्म जब देश, काल, निमित्त और सामग्री प्राप्त कर लेंगे तब ही दुख और सुख के रूप मे अपना फल देने मे स्वय ही समर्थ हो जाएगे। इनके लिए ईश्वर की आवश्यकता नही है। यदि आप कहे कि कर्म जड पदार्थ है, अत स्वय फल देने मे समर्थ नही हो सकता, तब इस कर्म-फल की व्यवस्था करने वाला कोई अन्य चेतन होना चाहिए। यदि रूढिवाद से आपकी बात को ही मान ले तब भी चेतन को देश, काल और निमित्त तथा सामग्री की अपेक्षा होगी। फिर उस चेतन तत्त्व ईश्वर का महत्व ही क्या रहा ? हमारे सिद्धान्त के अनुसार कर्म उचित देश, काल, निमित्त और सामग्री पाकर स्वय ही फल प्रदान करने मे समर्थ होता है, ईश्वर की अपेक्षा नही करता। आपका ईश्वर फल प्रदान करने मे इन चारो की अपेक्षा करता है।

देश—देश का अर्थ है भूमि, जिस भूमि मे उपजाने की सामर्थ्य हो। अथवा देश का अर्थ है प्राणियो के शरीर, जिनमे कर्मफल का उपभोग होगा अर्थात् जिनमे कर्मफल भोगने की सामर्थ्य हो। जहा पर ऐसे साधन या उपभोग बहुत मात्रा मे या न्यून मात्रा मे उपलब्ध होते हो अथवा पुरुषार्थ या कर्मवश या प्रारब्धवश जहा पहुचकर भोग अथवा फल भोगने हो अथवा किसी भू-भाग विशेष मे पहुचकर दुख, सुख रूप कर्मफल भोगना हो, उसे देश कहते है।

काल—काल का अर्थ है समय। जैसे वर्षा ऋतु मे विशेष रूप से वनस्पतिया-औषधिया उत्पन्न होती हैं या वसन्त ऋतु मे नवपल्लव, पुष्पादि किनलते हैं अथवा

वर्षा ऋतु मे ही विशेष रूप से वर्षा होती है। अपने नियत समय पर ही वनस्पति, फूल, फल, अन्नादि पककर तैयार होते है। नियत समय पर ही दश मास मे बालक स्वस्थ और भली प्रकार से उत्पन्न होता है। काल कर्मफल का माप तोल करके उसे प्रदान करता रहता है। कर्मफल के लिए उचित काल की प्रतीक्षा करनी होती है।

निमित्त—निमित्त वह है जो देश, काल और सामग्री को सयुक्त कर देता है अथवा सयोग का कारण बन जाता है। निमित्त कारण को भी कहते है, जैसे शरीर मे आत्मा सान्निध्य मात्र मे निमित्त कारण बना हुआ है अथवा जिस प्रकार ब्रह्म प्रकृति के सान्निध्य से सृष्टि रचना का निमित्त कारण बना हुआ है। इन दोनो स्थितियो मे निमित्त का अर्थ सयोग है अथवा निमित्त का अर्थ चेतन भी हो सकता है क्योकि शरीर और प्रकृति दोनो से चेतन निमित्त बने हुए है। इनके सम्बन्ध से शरीर और प्रकृति मे कर्तृत्व धर्म उत्पन्न हो रहे है। ये दोनो कूटस्थ, अचल, निर्विकार, निष्क्रिय, सगदोष से रहित होकर स्थित है। निमित्त का अर्थ यहा जड पदार्थ भी समझा जाता है, जैसे आधी बहुत वेग से चली और एक या इससे अधिक वट या पीपल के बीज को भूमि से उठाकर गगन मण्डल मे से लेजाकर दूर देश मे फेक दिया—किसी दीवार के सुराख मे या किसी पर्वत पर। वहा मिट्टी, जलादि के सयोग से वह बीज उपजकर एक वृहत्काय पेड के रूप मे बन गया। इसमे वायु मुख्य रूप से निमित्त बन जाता है। कर्मफल भोग की प्राप्ति मे कभी-कभी स्त्री-पुरुष, परिवार, ग्राम तथा देश के निवासी भी निमित्त बन जाया करते है। इनके मिलन या सयोग से प्रारब्ध अथवा वर्तमान काल मे किए हुए कर्म के फल की उपलब्धि हो जाया करती है। अत निमित्त भी अनेक अर्थो मे कर्मफल प्रदान करने मे देश तथा काल के समान सहयोगी होता है।

सामग्री—सामग्री का तात्पर्य है उस प्रकार के पदार्थ युक्त साधन जो कर्म-फल प्रदान करने मे सहायक होते है। देश, काल, निमित्त के अनुकूल होने पर भी कभी-कभी काम नही बनता। मान लीजिए, कही बडा आरोग्यप्रद स्थान है। यहा बहुत बडा अस्पताल है। डाक्टर बडा योग्य और कर्त्तव्य-परायण है। परन्तु रोगी के रोग की निवृत्ति के लिए सामग्री रूप औषध का अभाव है। ऐसी स्थिति मे आरोग्यता रूप फल प्राप्त नही हो सकता। अत कर्मफल प्रदान मे औषधिरूप सामग्री की आवश्यकता है। इसे दूसरे प्रकार से भी समझो। फसल बोनी है। हलादि चलाकर भूमि तैयार कर दी गई है। फसल बोने का समय भी आ गया है, अत समय भी अनुकूल है। निमित्त रूप से कृषक जो बीज बोएगा वह भी है। परन्तु कृषक का हल, बैल, फावडादि जो बीज बोने के लिए सहायक सामग्री थी उसे चोर चुराकर लेगए। सामग्री के अभाव मे कृषक को जो विशेषरूप से फसल का लाभ होना था वह नही हो सका। अत कर्मफल-भोग मे सामग्री होना अत्यन्त उपयोगी और सहायक है। इससे यह सिद्ध होता है कि देश, काल, निमित्त और सामग्री कर्मफल प्रदान करने मे समर्थ है। उसके लिए ईश्वर की आवश्यकता नही। भले ही कर्म जड है, परन्तु हम तो इनका फल भी जड रूप मे ही मानते है अर्थात् जड रूप कर्म से जड रूप फल की उत्पत्ति हो रही है और इस फल प्रदान करने मे ये चारो ही कारण बने हुए है। आत्मा और

परमात्मा का चित्त और प्रकृति के साथ सर्वत्र और सर्वदा सान्निध्य तो हम मानते ही है। सान्निध्य होने से कर्तापन या फलप्रदान कर्तापन सिद्ध नही होता।

चेतन के आश्रय से कर्म स्वय फलप्रदाता—चित्त और प्रकृति मे कर्म चेतन के आश्रय से होता है, अत चेतन के आश्रय से ही कर्म स्वय ही अपना फल प्रदान करने मे देश, काल, निमित्त तथा सामग्री के सम्बन्ध से समर्थ हो जाएगा। इस कर्मफल की व्यवस्था करने मे किसी की कर्तृत्वरूप मे या न्यायाधीश के रूप मे आवश्यकता नही है। जब कर्म चित्त का ही एक गुण या धर्मविशेष या क्रियाविशेष या व्यवहारविशेष ही है तो फल भी तो चित्त का ही गुण या धर्म विशेष मानना पडेगा। जिस फल को यह चित्त दु ख या सुख के रूप मे मान रहा है, ये दु ख और सुख फल के रूप मे इसी चित्त के ही धर्मविशेष हैं। इसलिए इस चित्त के कर्मफल प्रदान करने मे किसी चेतन की आवश्यकता नही है। यदि हम चेतन मे कर्म का होना मान ले और उसका फल प्रदान करने वाला किसी अन्य चेतन विशेष को माने तब दोनो ही परिणामवाले सिद्ध हो जाएगे क्योकि दोनो मे कर्म उत्पन्न हो रहा है। एक मे इच्छापूर्वक कर्म उत्पन्न हो रहा है, दूसरे मे फलप्रदान रूप कर्म उत्पन्न हो रहा है। वैशेषिकदर्शन मे कर्म के ५ लक्षण किए है—'उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चन प्रसारण गमनमिति कर्माणि।'

आत्मा और ईश्वर मे कर्म का अभाव—श्री कणाद ने आत्मा और ईश्वर को द्रव्य मान कर इनमे ५ प्रकार के कर्म का अभाव माना है। हमारे सिद्धान्त मे भी आत्मा और परमात्मा दोनो चेतन है, अत इनमे कर्म का अभाव है, क्योकि उत्क्षेपण अर्थात् ऊपर उठना, अवक्षेपण अर्थात् नीचे पडना, गिरना रूप कर्म ईश्वर मे नही होता अथवा आकाश और पाताल मे कर्म करना रूप धर्म भी नही बनता। आकुचन अर्थात् सुकडना तथा प्रसारण व फैलना रूप कर्म आत्मा और परमात्मा दोनो मे ही नही होता। यदि ये दोनो कर्म इनमे मानेगे तो सकोच और विकास रूप होने से विकारवान् बन जाएगे। गमनरूप धर्म भी ईश्वर मे पैदा नही होता और न यह धर्म स्वाभाविक रूप से इसमे है क्योकि गमन एकदेशी मे होता है या जिसमे अवकाशरूप धर्म हो उसमे होता है। गति या गमन वही सभव है। आत्मा और परमात्मा मे अवकाश रूप धर्म नही है। ये दोनो कूटस्थ, निरवयव है। जो सावयव होगा उसी मे अवकाश रूप धर्म पैदा हो सकता है। चित्त और प्रकृति मे ही ऐसा हो सकता है। आत्मा और परमात्मा दोनो निष्क्रिय हैं, इसलिए इनमे कर्तृत्व धर्म या फलदातृत्व धर्म नही है। सभव हो सकता है कि आप जीवात्मा के एकदेशी होने पर यह शका करे कि इसमे गमनागमन रूप धर्म है। इस सूक्ष्म आत्मा को कोई अणु मानते है तथा कई आचार्य परमाणुवत् मानते हैं। कोई इसे बाल के अग्रभाग का दशसहस्रवा भाग मानते है, किन्तु हम इसको इतना सूक्ष्म मानते है जिसमे किसी प्रकार का कोई अवकाश न हो तथा जिसका कोई विभाग न हो सके। यह आत्मा भी इसलिए ईश्वर के समान निरवयव है। इसमे स्वय गमनरूप धर्म नही है। एकदेशी होने से स्थूल, सूक्ष्म कारण-शरीर द्वारा इसका गमन हो जाता है। शरीरो द्वारा उठा कर ले जाया जा सकता है। गमनागमन रूप धर्म शरीरो का है, आत्मा का नही। आत्मा गमनरूप कर्म से रहित है। इससे सिद्ध होता है कि ये पाच प्रकार के कर्म चित्त और सर्व जगत् के उपादान

कारण रूप प्रकृति मे ही होते है, आत्मा और परमात्मा मे नही, क्योकि ये दोनो कूटस्थ और निरवयव है।

श्री जगदीशचन्द्र डावर ने दूसरे दिन यह शका की कि ईश्वर मे अनेक गुण नित्य मानने मे क्या दोष है ?

भगवान् मे नित्य गुणो का अभाव

श्री महाराजजी ने उनकी शका का समाधान करने के लिए निम्नलिखित प्रवचन किया —

सर्वप्रथम यह समझने की आवश्यकता है कि ईश्वर मे ये गुण समवाय सम्बन्ध से रहते है या स्वरूप सम्बन्ध से अथवा तादात्म्य भाव सम्बन्ध से अथवा सयोग सम्बन्ध से रहते है।

समवाय सम्बन्ध—समवाय सम्बन्ध का अभिप्राय यह है कि जहा पर इस सम्बन्ध के होने से कार्य हो और न होने से न हो, जैसे सूत्र और वस्त्र का परस्पर समवाय सम्बन्ध है। सूत्र वस्त्र के प्रति समवायी कारण है और वस्त्र उसका कार्य है। सूत्र का समवायी सम्बन्ध होगा तभी वस्त्र बनेगा, अन्यथा नही। सूत्र अपने कार्य मे वर्तमान है और विकार भाव को प्राप्त होकर कार्यरूप मे विद्यमान है। क्या ईश्वर गुणो के प्रति समवायी कारण है और गुण उसके कार्य है ? यदि ऐसा मानोगे तो कार्य-कारण-भाव होने से ईश्वर परिणामी और परिवर्तनशील हो जाएगा।

स्वरूप सम्बन्ध—स्वरूप सम्बन्ध का तात्पर्य है गुण और गुणी का अभेद सम्बन्ध। इसी अभेद का नाम स्वरूप सम्बन्ध है। पचतन्मात्राओ के सघात से जब पृथ्वी महाभूत उत्पन्न होता है तब इसमे क्रमपूर्वक निम्न धर्म उत्पन्न होते है — आकार, स्थिरता, गुरुता, कठिनता, आच्छादन, विदारण, रुक्षतादि। यहा पृथ्वी और इन गुणो का परस्पर स्वरूप सम्बन्ध है। पृथ्वी गुणी है, गुरुता, कठिनतादि गुण हैं। ये गुण परिणत होती हुई पृथ्वी की अवस्था विशेष है। गुरुत्व परिणत होती हुई अवस्थाओ मे गुण के रूप मे रहता है। गुण और गुणी पृथक् नही रहते। गुण और गुणी मे सदा अभेद रहता है। इस अभेद को ही स्वरूप सम्बन्ध कहा गया है। क्या ये गुण ईश्वर मे कारण रूप से नित्य रहते है ? क्या ईश्वर परिणाम भाव को प्राप्त होकर इन गुणो को क्रमपूर्वक उत्पन्न करता है ? यदि आप नित्य गुणो का अभेद मानते है तो अभेद तभी सिद्ध होगा जब गुणी गुणो मे पहुच कर ठहर जाए। जैसे पृथ्वी गुणी है और गुरुत्व इसका गुण है। पृथ्वी गुरुत्व भाव को प्राप्त होकर गुरुत्व गुण मे स्थित है, इसीलिए इसका गुण से अभेद सिद्ध होता है। गुणी गुणान्तरो के रूप मे परिणत हो गया। क्या आपका ईश्वर इस प्रकार के अभेद रूप मे गुणो मे रहता है ? यदि ऐसा मानोगे तब ईश्वर भी पृथ्वी के समान विकारवान् बन जाएगा।

तादात्म्य-भाव सम्बन्ध—यदि तादात्म्य-भाव सम्बन्ध का अर्थ हम यह करते है कि ईश्वर और गुणो की तद्रूपता है अर्थात् दोनो का अभेद है, एकरूपता है, ईश्वर और उसके गुणो में एकरूपता है, तब उपरोक्त समवाय सम्बन्ध और स्वरूप सम्बन्ध के समान ही या तो कार्यान्तर अर्थात् कारण-कार्य-भाव मानना पडेगा अथवा द्रव्य की परिणत होती हुई अवस्था का परिणामान्तर मानना पडेगा। इसको योग की

परिभाषा मे स्वरूप सम्बन्ध कहते है और वैशेषिक की परिभाषा मे समवाय सम्बन्ध कहते है, वेदान्त की परिभाषा मे तादात्म्य-भाव सम्बन्ध कहते है। जब आप ईश्वर और इसके गुणो का तथा आत्मा और इसके गुणो का परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध मानते है तो एक प्रकार से समवाय सम्बन्ध और स्वरूप सम्बन्ध का यह तादात्म्य सम्बन्ध भी पर्यायवाचक शब्द है और उपरोक्त दोनो के अर्थ का द्योतक है। या तो ईश्वर का अवस्थान्तर रूप परिणाम गुणो को मानो अथवा कार्यान्तर मानो। तादात्म्य-भाव सम्बन्ध भी ईश्वर मे विकार भाव को ही सिद्ध करता है।

सयोग सम्बन्ध--इसका अभिप्राय है दो पृथक्-पृथक् पदार्थो का सम्बन्ध। ईश्वर और गुण दो पृथक्-पृथक् द्रव्य या पदार्थ है। द्रव्य और पदार्थ मे हमारे ग्रथो मे भेद नही माना गया अर्थात् सबको पदार्थ रूप से ही वर्णन किया गया है। न्याय तथा वैशेषिक की परिभाषा मे पृथ्वी, जलादि को द्रव्य माना है परन्तु हमने इन सब को पदार्थ ही माना है। यदि गुणो को अलग मानते हो तो इन दोनो अर्थात् ईश्वर और गुणो का नित्य सयोग होगा।

ईश्वर मे नित्य गुणो के अभाव की सिद्धि--आप पुन शका करेंगे कि इन गुणो का उपादान कारण कौन है ? यदि आप कहोगे प्रकृति है, तब ये गुण प्रकृति के हुए, ईश्वर के नित्य गुण नही हुए, अत ईश्वर के नित्य गुण सिद्ध नही होते। आप कहोगे कि जैसे दाह और प्रकाश अग्नि के स्वाभाविक गुण है, ऐसे ही ईश्वर मे भी उसके गुण स्वाभाविक है। किन्तु आपको यह समझना चाहिए कि अग्नि उत्पन्न हुआ है, अत उसके गुण भी उत्पन्न हुए हैं और उसके साथ ही उत्पन्न हुए है, किन्तु ईश्वर तो उत्पन्न नही हुआ। जिसमे विकार धर्म नही है उसमे गुणान्तर की उत्पत्ति भी नही हो सकती। अग्नि का दृष्टान्त इसलिए दृष्टान्ताभास ही है, यथार्थ दृष्टान्त नही। सयोग सदैव दो पदार्थो का होता है, चाहे वे नित्य हो या अनित्य, इसलिए ईश्वर और गुण दो सिद्ध होते है। सयोग सम्बन्ध मानने से ईश्वर मे भी ममेद की भावना हो जाएगी और वह भी मनुष्य के समान बद्ध हो जाएगा। ईश्वर के विकारवान् हुए बिना गुण उसमे सिद्ध नही होते और यदि होगे भी तो अनित्य होगे, नित्य नही। गुणो मे अनेकत्व है तो क्या ईश्वर भी अनेक प्रकार से विकारी बना रहेगा ? जहा अनेकत्व होगा वहा भेद होगा और नानात्व होगा। क्या ईश्वर मे नित्य गुणो के कारण नानात्व मानोगे ? जहा और जिसमे नानात्व है वहा विकारभाव अवश्य मानना पडेगा।

विकार रहित होने से क्रिया का अभाव--आप उपनिषद् वाक्य का प्रमाण देंगे--"तस्य स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया।" यदि ईश्वर मे ज्ञान, बल, क्रिया स्वाभाविक मानते हो तो क्रिया पाच प्रकार के कर्मो के अन्तर्गत आ जाती है। जहा गति है, कर्म है तथा व्यापार है, वहा परिवर्तन, परिणाम, गमनादि विकार मानने पडेगे। नित्य क्रिया ईश्वर मे रहने से वह भी प्रकृति के समान परिणत होता रहेगा। तब प्रकृति और ईश्वर मे क्या अन्तर रहा ? वह जड होकर परिणत हो रही है, यह चेतन होकर परिणत हो रहा है। अत नित्य निष्क्रिय ईश्वर मे कोई भी नित्य या अनित्य गुण सिद्ध नही होता। इस उपनिषद् वाक्य मे जो ये गुण ईश्वर मे स्वाभाविक कह दिए हैं उसके विषय मे यह समझो कि प्रकृति भी नित्य है और ईश्वर

भी नित्य है। सदा दोनों का व्याप्यव्यापक भाव सम्बन्ध रहता है। तीनों गुण प्रकृति में ही उत्पन्न होते हैं, अतः उनको ईश्वर में आरोप कर दिया गया है, ईश्वर पर थोप दिया गया है, क्योंकि इन दोनों का सदा सम्बन्ध रहता है। इस वाक्य में इनको ज्ञान, बल, क्रिया कहा है और सांख्य में सत्व, तम और रज कहा गया है और ये प्रकृति के ही गुणविशेष या कार्यविशेष अथवा अवस्थाविशेष ही माने गए हैं। इसलिए ये तीनों गुण ईश्वर के न मानकर प्रकृति के मानने चाहिए। ऐसा मानने से ही संसार की उत्पत्ति हो सकती है। ईश्वर को कर्ता मानने की आवश्यकता नहीं है। केवल मात्र ईश्वर की या ब्रह्म की निर्विकार, कूटस्थ रूप में स्थिति रहनी चाहिए। उनके सान्निध्य में संसार के सब कार्य होते रहेंगे। हम चेतन ब्रह्म या ईश्वर का अभाव तो नहीं मानते, हम तो केवल मात्र उसको निर्गुण, निष्क्रिय तथा निरवयव सिद्ध करना चाहते हैं।

सब श्रोतागण पूज्य महाराजजी के पांडित्यपूर्ण, तर्कसंगत और युक्तियुक्त समाधान को सुनकर सन्तुष्ट होगए।

वैदिक भक्ति-साधना-आश्रम रोहतक को प्रस्थान

इसी प्रकार अनेक शंका-समाधानपूर्वक पूज्य महाराजजी के ८ दिन तक सारगर्भित व्याख्यान् होते रहे और दिल्ली निवासियों ने उनसे आशातीत लाभ उठाया। ३१ तारीख को एक बजे के लगभग महाराजजी के सैकड़ों भक्त दर्शनार्थ आए। उनको पूज्य स्वामीजी महाराज ने लगभग एक घण्टा तक अपने उपदेशामृत का पान करवाया। अढ़ाई बजे सबने श्रद्धापूर्वक सम्मान से रोहतक के लिए विदा किया। रोहतक से महात्मा प्रभुआश्रितजी तथा उनके शिष्यों ने बार-बार वहा पधारने के लिए प्रार्थना की थी, अतः वहा जाना आवश्यक था। श्री जगदीशचन्द्र डावर अपनी कार में पूज्य गुरुदेव को रोहतक ले गए थे। स्वामी विज्ञानानन्दजी, ओम्प्रकाशजी तथा माता और कई भक्त, शिष्य और शिष्याएं गईं। वैदिक भक्ति-साधना-आश्रम में महाराजजी का बड़ा भारी स्वागत किया गया। पूज्य गुरुदेव का ईश्वरभक्ति और आत्म-ज्ञान प्राप्ति के साधनों पर उपदेश हुआ। वैदिक भक्ति-साधना-आश्रम की ओर से आपको निम्नलिखित एक अभिनन्दनपत्र भेंट किया गया —

अभिनन्दन-पत्रम्

ओ३म् स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव सचस्व नः स्वस्तये।

श्रीब्रह्मर्षिवरस्य योगिराजस्य श्रीस्वामिनो योगेश्वरानन्दमहाराजस्य सेवायाम् —

अद्य नववर्षारम्भस्य शुभे दिवसे वयं सर्वे रोहतकनिवासिनः परमसौभाग्य-शालिनः यदस्मिन् शुभावसरेऽस्मिन्विदवमाननीयस्य योगिसम्राजो ब्रह्मर्षे श्रीस्वामिनो योगेश्वरानन्दमहाराजस्य शुभदर्शनानि प्राप्य कृतार्थता लभामहे।

भवदीयदर्शनं सम्प्रति न मानसानां दुर्भावनां हरति अतः शुभस्य हेतुः, पुराकृतानां शुभकर्मणां च परिणामः यत् भवदीयदर्शनं अस्माकं त्रैकालिकीं सौभाग्य-समृद्धिं प्रदर्शयति। वयमेतादृशस्य महापुरुषस्य शुभदर्शनं प्राप्नुवन्तः स्म यः अष्टादश-वर्षपर्यन्तं गंगोत्रीपर्वते निवासं कृतवान्, येन चाष्टादशवर्षपर्यन्तं कदाचिदपि

पर्वतादध पद न रक्षितम्, यो वाल्यादेव ब्रह्मचर्यं पालयन् योगसाधनेन विविधा योगसिद्धय प्राप्तवानस्ति, यश्चेश्वरजीवप्रकृतीना साक्षात्कार प्राप्तवान्, येन चामर-ग्रन्था ग्रात्म-विज्ञानम्, वहिरङ्गयोग, ब्रह्मविज्ञानञ्चेति नामानो विरचिता जगतञ्च महानुपकार कृत ।

ग्रात्म-विज्ञान हि हिन्दीभापायामाङ्गलभापाया च ५०० पृष्ठेपु लिखितमस्ति। बहिरङ्गयोगे २५० ग्रासनानि योगसम्वन्धीनि सन्ति। एव ब्रह्मविज्ञाने चातिगुह्यज्ञान विशदीकृतम् यदद्यपर्यन्त केनापि एतावत्या सरलतया न स्पष्टीकृतम् ।

यस्य चोत्तरकाश्या स्वर्गाश्रमे च योगनिकेतनौ स्त यश्च प्रतिवर्प देशे विभिन्न-स्थानेपु योगशिवराणि सस्थाप्य योग प्रचारयति । एतादृश महान्त पुरुप योगिसम्राज वय रोहतकनिवासिनो हार्दिकस्वागतेन समानयाम ग्रभिनन्दयामश्च, तदीयपवित्र-चरणारविन्दयो साष्टाङ्ग दण्डवत्प्रणाम कुर्म । सविनय प्रार्थयामश्च यन्महोदया भवन्त एतादृशमुपदेशामृत पाययन्तु येनास्माक सर्वेपा परमकल्याण भवेत् ।

वैदिक भक्ति-साधना-ग्राश्रम,		निवेदका भवना कृपाभिलापिण
रोहतक		१ १ ६५		रोहतकनिवासिनो जना

सायकाल चायपान करके ग्रपने कई भक्तो के निवासस्थानो पर ग्राशीर्वाद देने गए ग्रौर तत्पश्चात् दिल्ली लौट गए ।

ग्रहमदावाद गमन

यहा से पूज्य महाराजजी को ग्रहमदावाद पधारना था। विदा होने से पूर्व एकत्रित सव भक्तो ग्रौर शिष्यो को उपदेश दिया। हवाईजहाज मे ग्रहमदावाद के लिए स्थान नियत करवा दिया गया था। एरोड्रोम पर श्री जगदीशचन्द्रजी, उनकी धर्मपत्नी, श्री ग्रोमप्रकाशजी, शान्ताजी, द्वारिकानाथजी, सुदर्शनजी, शकर-लालजी, लक्ष्मीदेवीजी ग्रादि वहुत से भक्त ग्रौर शिष्य महाराजजी को सम्मान-पूर्वक विदा करने गए। तीन वजे हवाईजहाज रवाना हुग्रा ग्रौर छ वजे ग्रहमदावाद पहुच गया। वहा पर सेठ रमणलाल लल्लूभाई, सेठ भोगीलाल वालाभाई, सेठ मोहन-लाल फूलचन्द शाहादि ग्रनेक सज्जन स्वागतार्थ ग्राए। सेठ रमणलालजी ने ग्रचले-श्वर महादेव के एकान्त स्थान मे पूज्य महाराजजी को ठहराया तथा भोजन ग्रादि की वडी उत्तम व्यवस्था की। ये १२ वर्ष पूर्व यात्रार्थ गगोत्री ग्राए थे ग्रौर महाराजजी के पास योगनिकेतन मे ३-४ दिन तक ग्रपने मित्रो के साथ रहे थे। तव से ये योग-निकेतन की सहायता करते रहते है। महाराजजी के प्रति वहुत श्रद्धा ग्रौर भक्ति रखते है। इन्होने पूज्य स्वामीजी महाराजजी से ग्रहमदावाद मे कई भापण देने के लिए प्रार्थना की जिससे हिमालय के योगी के विशेप ग्रात्म-ज्ञान सम्वन्धी ग्रनुभवो से ग्रहमदावाद की जनता भी लाभ उठा सके। श्री महाराजजी के कई दिनो से सिर मे पीडा रहती थी इसलिए केवल एक व्याख्यान 'योग द्वारा ग्रात्म-साक्षात्कार' विषय पर रखा गया। सेठ रमणलाल यहा के सन्यासाश्रम के ट्रस्टी थे। इस ग्राश्रम मे नित्य प्रति सत्सग ग्रौर व्याख्यान होते थे। स्वामी कृष्णानन्द मण्डलेश्वर यहा के ग्रध्यक्ष थे। ये सत्सगियो को शास्त्र भी पढाते थे ग्रौर कथा भी करते थे। महाराजजी के

व्याख्यान की सर्वत्र घोषणा करवा दी थी और विज्ञापन भी बटवा दिए गए थे। व्याख्यान सायकाल ६ बजे से ७ बजे तक सन्यासाश्रम मे हुआ।

योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार

लगभग छ हजार की सख्या मे लोग महाराजजी के भाषण मे उपस्थित हुए। इन्होने 'अयन्तु परमो धर्म यत्योगेनात्मदर्शनम्' से अपना प्रवचन प्रारभ किया।

प्रत्याहार—जिज्ञासु को चाहिए कि सर्वप्रथम प्रत्याहार के द्वारा अपनी विषयो मे गमन करती हुई इन्द्रियो को रोके।

धारणा—भ्रूमध्य मे धारणा पक्की करनी चाहिए। कुछ काल तक धारणा के पक्की हो जाने के अनन्तर उसी स्थान पर ध्यान को दृढ करे। इसके दो साधन है। एक तो नेत्रो को खुले रखकर, दूसरा नेत्रो को बन्द करके। दोनो साधनो से ध्यान की दृष्टि को अन्दर की ओर मोडे। कुछ दिनो के पश्चात् एक प्रकाश या ज्योति सी दीखने लगती है। यदि नेत्र खोलकर साधक अभ्यास करता है तब यह ज्योति स्थिर और निर्भ्रान्त सी प्रतीत होती है। यह ज्योति वास्तव मे अन्दर के सूक्ष्म नेत्र की होती है। यदि साधक नेत्र बन्द करके ध्यान द्वारा इसको देखता है तब यह ज्योति बाहर को निकलना चाहती है। नेत्रपटल बन्द होने से यह पटलो के साथ टकरा खा-खाकर फुव्वारे सी या फुलझडिया सी बनकर रग-बिरगे रग-रूप तथा आकार सी दिखाई देने लगती है। नेत्रपटल के साथ टकरा-टकरा कर यह कभी सूर्य के प्रकाश के समान, कभी चन्द्र के प्रकाश के समान, कभी जुगनु के प्रकाश के समान और कभी-कभी छोटे सूर्य और कभी छोटे से चन्द्र के समान दिखाई देने लगती है। वास्तव मे यह सूक्ष्म नेत्र का प्रकाश सूक्ष्म प्रकाश वाहिनी नाडियो के द्वारा स्थूल नेत्र से बाहर निकलकर कुछ देखना चाहता है किन्तु नेत्र बद होने से यह वही टकरा कर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रकाश उत्पन्न करने लगता है। यह कभी-कभी साधक को भ्रान्त सा भी बना देता है और मनोरजन का एक साधन सा भी बन जाता है। इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए अभ्यासी को नेत्र खोलकर अभ्यास करना चाहिए। इसे उन्मुनी मुद्रा कहते है। इस प्रकार नेत्र खोलकर अन्दर भ्रूमध्य और ब्रह्मरध्र मे ध्यान करने से वह ज्योति यथार्थ रूप मे प्रत्यक्ष होने लगती है। उससे जो पदार्थ या दृश्य भीतर देखना चाहता है उसे दिखाने मे वह समर्थ हो जाती है। अपने मनो-बल से उसको शरीर मे जिस ओर को या शरीर के जिस किसी प्रदेश मे ध्यानस्थ साधक घुमा देता है उसी स्थान पर वह उस पदार्थ का ज्ञान करवा देती है। जिस प्रकार बाहर के स्थूल नेत्र बाहर की ओर सब पदार्थों को दिखाते है इसी प्रकार अन्दर का सूक्ष्म नेत्र अन्दर के सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों को दिखाने मे समर्थ हो जाता है। देखे हुए पदार्थ का बुद्धि निर्णय करेगी कि उस पदार्थ का रग-रूप, आकार-प्रकार किस प्रकार का है, अत' अभ्यासी अपने सूक्ष्म नेत्र से, जिसे दिव्य चक्षु या तृतीय नेत्र भी कहते है, काम ले। इसके साथ मन की दूरबीन लगाकर इससे मूलाधार मे देखे। मूलाधार मे साधक के ध्यान बल से दो शक्तिया पैदा होगी —एक प्रकाशात्मक कुण्डलिनी शक्ति और दूसरी स्पर्शात्मक प्राण शक्ति।

कुण्डलिनी शक्ति--कुण्डलिनी शक्ति यहा की सब नाडियो को प्रकाशित कर देगी अर्थात् स्थूल शरीर की सब रचना दिखा देगी।

प्राणोत्थान शक्ति--प्राण शक्ति या प्राणोत्थान शक्ति उत्पन्न होगी, वह स्पर्श करती हुई उर्ध्व गमन करेगी तथा आनन्ददायक स्पर्श करती हुई, रीढ की हड्डी के साथ होती हुई कठ के ऊपर लघु मस्तिष्क से ऊपर को उठकर ब्रह्मरध्र मे जाकर वहा पर मधुर और आनन्ददायक स्पर्श का अनुभव कराती रहेगी। वहुत काल तक स्थिरता और आनन्द स्पर्श दायक समाधि जैसी स्थिति बनाए रखेगी। जब प्राण-शक्ति मूलाधार से उठकर चलती है तब यह स्थूल शरीर की नस-नाडियो और इडा, पिंगला सुषुम्णादि का स्पर्श करती हुई रोमाचित करती हुई सी चलती है और इन सबका स्पर्श के द्वारा ज्ञान करवाती चलती है। ब्रह्मरध्र मे पहुचकर अनेक आनन्द-दायक स्पर्श करवाती रहती है और सब प्रकार के दिव्य स्पर्श की अनुभूति करवाती रहती है। जब यह मूलाधार से गमन करती है तब सब चक्रो के केन्द्रो का स्पर्शानु-भूति द्वारा साक्षात्कार कराती हुई चलती है और सहस्र-दल-कमल मे पहुचकर योगी को दिव्य स्पर्श द्वारा आह्लाद और आनन्द का हेतु वहुत काल तक बनकर विशेष ब्रह्मरध्र के पदार्थों का अनुभव करवाती है। एक चक्षुहीन पुरुष अपने हाथ के स्पर्श द्वारा जिस प्रकार बडे से बडे भवन को स्पर्श के द्वारा जानने मे समर्थ होता है उसी प्रकार प्राणोत्थान शक्ति सारे शरीरगत पदार्थो का स्पर्श के द्वारा अनुभव करवाती है। योगी इस प्राणोत्थान शक्ति द्वारा अर्थात् इसके स्पर्श द्वारा सर्व विज्ञान प्राप्त कर सकता है। यद्यपि यह स्पर्शानुभूति रूप को नही दिखाती पर स्पर्श से सारे विज्ञान को प्राप्त करवाने मे समर्थ है। इस प्रकार से यह स्पर्श द्वारा पदार्थों के प्रत्यक्ष विज्ञान का हेतु बनती है। कुण्डलिनी शक्ति से भी यह अधिक सूक्ष्म शक्ति है और यह शरीर मे वायु महाभूत का कारण स्पर्श तन्मात्रा की दिव्य स्पर्शानुभूति करवाती है। मूलाधार मे प्राणोत्थान होकर दिव्य स्पर्श को पैदा कर देता है। अत यह स्थूल और सूक्ष्म दोनो प्रकार के स्पर्शो का हेतु बन जाता है। स्थूल शरीर मे यह नस-नाडियो आदि की स्पर्श से अनुभूति करवाता है और सूक्ष्म दिव्य स्पर्श से सूक्ष्म शरीर के पदार्थों को प्रत्यक्ष कर देता है। जिन योगियो ने इस प्राण विज्ञान से काम लिया है, इसके स्पर्श द्वारा स्थूल और सूक्ष्म शरीरो के पदार्थो के प्रत्यक्ष करने का अभ्यास किया है, उनको कुण्डलिनी शक्ति द्वारा या दिव्य चक्षु द्वारा दोनो शरीरो को देखने की आवश्यकता नही रहती। उन योगियो को इस दिव्य स्पर्शानुभूति द्वारा सब पदार्थों का साक्षात्कार हो जाता है। जिस प्रकार नेत्रहीन आकारवान् पदार्थों को अपने हाथ के स्पर्श द्वारा देख लेता है, समझ लेता है, उसके आकार-प्रकार को कथन करके बता सकता है, समझा सकता है, उसी प्रकार योगी दिव्य स्पर्श द्वारा पदार्थों को प्रत्यक्ष कर सकता है, समझ सकता है। अत कुण्डलिनी शक्ति जिस प्रकार पदार्थों का प्रत्यक्ष करवाती है इसी प्रकार प्राणोत्थान शक्ति भी स्पर्श के द्वारा पदार्थों का साक्षात्कार करवाती है। प्राण की गति स्पर्श करती हुई चलती है। यदि योगी को इस विद्या का विज्ञान समझ मे आजाए तो इसके द्वारा ही वह सब कुछ प्रत्यक्ष कर सकता है। जैसे नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष करता है ऐसे ही स्पर्शेन्द्रिय द्वारा भी पदार्थों का प्रत्यक्ष कर सकता है। इस प्राण विद्या के विज्ञान का अभाव हो जाने से कुण्डलिनी

शक्ति पर अर्वाचीन योगियों ने विशेष बल दिया है। यह भी अग्नि महाभूत के उपादान कारण रूपतन्मात्रा का ही कार्यविशेष है जिसे कुण्डलिनी शक्ति के नाम से कहा जाता है। इसको अग्नि महाभूत का कार्य या दिव्य तेज ही कह सकते हैं। यह स्थूल शरीर की रचना में सहकारी हुआ है। यह भी प्राण के समान है। अग्नि महाभूत का कार्य तेज स्थूल शरीर की रचना को दिखाता है और रूपतन्मात्रा का कार्य सूक्ष्म की रचना को दिखाता है। यह विज्ञान प्राणोत्थान विज्ञान की अपेक्षा स्थूल है। जिन योगियों को दिव्य चक्षु द्वारा अन्दर के पदार्थों को देखने में कठिनाई होती है या इस विद्या का विज्ञान समझ में नहीं आता है उनको दिव्य स्पर्शेन्द्रिय द्वारा अन्दर के पदार्थों का अनुभव या प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। स्पर्शेन्द्रिय सारे स्थूल शरीर के बाहिर और भीतर व्याप्त सी है, इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में भी स्पर्शेन्द्रिय व्याप्त होकर स्थित है। शरीर के बाहिर तो स्पर्श द्वारा ज्ञान होता ही है परन्तु अन्दर भी स्पर्श की अनुभूति होती है। इस प्राणोत्थान गति द्वारा दश प्रकार के प्राणों का भी प्रत्यक्ष किया जा सकता है।

कुण्डलिनी शक्ति का जागरण या उत्थान—ध्यान की दिव्य दृष्टि से जब योगी मूलाधार में प्रवेश करता है तब यह दिव्य ज्योति प्रकट होती है। यह ज्योति हमारे शरीर में जो स्थूल महाभूत अग्नि के रूप में शरीर के निर्माण में सहयोगी कारण है और इसी का उपादान कारण जो रूपतन्मात्रा है उसीका यह एक कार्यरूप में विशेष दिव्य प्रकाश होता है जो स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर दोनों के पदार्थों को दिखाने में या प्रत्यक्ष करवाने में सहायक होता है। जब योगी मूलाधार स्थित अग्नि का मथन ध्यान की दिव्य दृष्टि से करता है तब वह इसी का सूक्ष्म रूप बनकर पंचतन्मात्रा के रूप में प्रकट होकर ऊर्ध्व गमन करती है अथवा यहीं स्थिर रहकर इस स्थान को प्रकाशित कर देती है। यदि यह रूपतन्मात्रा का कार्य न होती तो यह सूक्ष्म चक्रों को कैसे प्रकाशित कर सकती थी ? ये चक्र प्रकाश के रूप में ही दिखाई देते हैं। ये स्थूल अग्नि का कार्य तो नहीं होते, यद्यपि प्रकट तो नस-नाड़ियों के गुच्छों पर ही होते हैं। जैसे ब्रह्मरन्ध्र में सूक्ष्मेन्द्रियों के कम्पन या क्रिया का प्रभाव सूक्ष्म ज्ञान-वाहक नाड़ियों पर पड़ता है इसी प्रकार दिव्य रूपतन्मात्रा का प्रभाव चक्रों पर पड़ता है, तभी तो ये नाड़ियों के गुच्छे भिन्न-भिन्न रंग के आकारों और प्रकारों के रूप में भासमान होने लगते हैं। अत यह कुण्डलिनी शक्ति भी रूपतन्मात्रा का ही कार्य होती है। इसका सम्बन्ध मुख्य रूप में सूक्ष्म शरीर और गौण रूप में स्थूल शरीर के नस, नाड़ी, ग्रन्थि आदि में है। आप पूछेंगे कि यह अग्निभूत का कार्य है या रूपतन्मात्रा का ? यदि केवल अग्निभूत का ही कार्य होती तो सूक्ष्म शरीर के अंग-प्रत्यंग को दिखाने में समर्थ न होती, केवल स्थूल शरीर को ही अन्दर से दिखाती। परन्तु यह तो सूक्ष्म शरीर के निवास-स्थान ब्रह्मरन्ध्र और हृदय प्रदेश को भी दिखाती है। सूक्ष्म रूपतन्मात्रा सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीरों को दिखाने में समर्थ होती है, किन्तु स्थूल अग्नि नहीं। अत इससे सिद्ध होता है कि यह दिव्य रूपतन्मात्रा का ही रूप होनी चाहिए। अब यह शंका हो सकती है कि दोनों शक्तियां प्राणोत्थान और कुण्डलिनी-उत्थान यहां मूलाधार में ही क्यों प्रकट या उत्पन्न होती हैं ? वास्तव में मूलाधार इनके प्रकट होने का मध्य प्रदेश है। नाभि से लेकर पाद तल तक इन दोनों

का प्रदेश है। ये दोनो यहा तम प्रधान रूप मे वर्तमान रहती हैं। यहा के प्रदेश मे प्राण और अग्नि दोनो ही तम प्रधान रूप मे वास करती है।

कुण्डलिनी स्थूल और सूक्ष्म शरीरो को प्रकाशित करती है—ध्यान वल से उठी हुई यह कुण्डलिनी की शक्ति स्थूल शरीर के भीतर और सूक्ष्म शरीर के भीतर प्रकाश करती है। योगी को इसे लेकर स्थूल शरीर की रचना का और सूक्ष्म शरीर की रचना का साक्षात्कार करना चाहिए। मनुष्य की आख देखने मे समर्थ है क्योकि यह प्रकाशयुक्त है और इसमे देखने की शक्ति है परन्तु इसको भी इतर प्रकाश की अपेक्षा है अर्थात् सूर्य, चन्द्र, दीपकादि की रोशनी की। यदि ये न हो तो यह देखते हुए भी नही देखती। इसी प्रकार से अन्दर का दिव्य-चक्षु भी इतर प्रकाश की अपेक्षा रखता है। यहा इतर प्रकाश का अभिप्राय है रूपतन्मात्रा के अनेक रूपवान् पदार्थ। इतर प्रकाश मे कुण्डलिनी शक्ति का भी रूप है जो सूक्ष्म दिव्य-नेत्र को दिखाने मे सहयोगी होता है। योगी इस मूलाधार मे स्थित तम प्रधान अग्नि-रूपतन्मात्रा का सघर्षण करके प्रदीप्त करता है, तव ये दोनो ज्योतिया इतर पदार्थो के दर्शन मे सहायक हो जाती है। ये दोनो शक्तिया ब्रह्मरध्र और हृदय मे भी विद्यमान है। सात्विक, राजस भेद से प्राण और अग्नि के रूप मे।

इस ज्योति से प्रथम स्थूल शरीर का विज्ञान प्राप्त करो—योगी को इस ज्योति को लेकर सर्वप्रथम स्थूल शरीर का विज्ञान प्राप्त करना चाहिए। आत्मा के ऊपर सवसे प्रथम आवरण स्थूल शरीर का है। इसको भेदन करके प्राणमय कोश मे प्रवेश करे क्योकि इस स्थूल शरीर के जीवन का आधार यह प्राणमय कोश ही है। तत्पश्चात् ब्रह्मरध्र मे मनोमय कोश का प्रत्यक्ष करे। इसमे पाच तन्मात्राओ के स्वरूप और दश कर्म और ज्ञान इन्द्रियो के स्वरूप का साक्षात्कार करे। तदनन्तर मन का प्रत्यक्ष करे। इस प्रकार इस मनोमय कोश मे १६ पदार्थ है। यह ब्रह्मरध्र का दिव्य चक्षु इन सवको दिखाने मे समर्थ होता है। इसके पश्चात् योगी इस मनोमय कोश के तीसरे आवरण को उल्लघन करके आगे विज्ञानमय कोश मे प्रवेश करे। १६ पदार्थ मनोमय कोश के और एक बुद्धि मिलकर विज्ञानमय कोश वनता है। यह ब्रह्मरध्र मे है। इसमे बुद्धि की ही विशेषता है। इसके सम्वन्ध से यह विज्ञानमय कोश सर्व पदार्थों का साक्षात्कार करवा देता है।

ऋतम्भरा बुद्धि—इन पदार्थो के विज्ञान-काल मे ऋतम्भरा बुद्धि उत्पन्न हो जाती है जो आत्म-साक्षात्कार का हेतु वनती है। इस मनोमय तथा विज्ञानमय कोश मे ही स्थूल भूतो और सूक्ष्म भूतो का साक्षात्कार योगी कर लेता है। यहा पर ही योगी सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा आहकारिक सृष्टि का साक्षात्कार करके परम वैराग्य को दृढ करता है। इन सव पदार्थो को वैराग्य द्वारा हेय समझने लगता है। इनके वधन से मुक्त होने की भावना को दृढ करता है। वहुत काल के अभ्यास से यह दृढ़-भूमि होता है। इस सूक्ष्म शरीर ने अपने गर्भ मे कारण-शरीर को धारण किया हुआ है। कोश के लिहाज से आत्मा के ऊपर यह चौथा आवरण है और शरीर के लिहाज से दूसरा आवरण है। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के ही आकार-प्रकार का है।

आनन्दमय कोश—इसके पश्चात् योगी को और आगे वढकर पचम आवरण का भेदन करना चाहिए अर्थात् हृदय प्रदेश में कारण-शरीर को भेदन करे। पचम

कोश मे प्रवेश करे। सर्वप्रथम यहा तीन ज्योतिया दिखाई देगी। प्रथम सूक्ष्म प्राण का मण्डल, दूसरा अहकार का मण्डल, तीसरा चित्त का मण्डल। सूक्ष्म प्राण-मण्डल हलके से गुलाबी रग का होता है और अहकार का मण्डल हलके से नील वर्ण का तथा चित्त मण्डल श्वेत वर्ण का होता है। चित्त के स्फटिक के समान शुभ्र मण्डल के मध्य मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुवत् चेतन तत्त्व के दर्शन होगे। यह दिव्य ज्योतिर्मय है, निष्क्रिय है, अडोल और कूटस्थ है। इस अत्यन्त सूक्ष्म चेतन तत्त्व का पता लगना कठिन है। साधक को चित्त मे अत्यन्त जहा कुछ गति सी हो रही हो, कुछ क्रिया-सी की अनुभूति हो, उसी स्थान पर चेतन तत्त्व की खोज करनी चाहिए। क्योकि चित्त को ज्ञान और क्रिया इस चेतन तत्त्व से ही प्राप्त होती हैं। इसलिए चित्त के जिस भाग मे क्रिया या स्पन्दन सा मालूम हो वही पर चेतन तत्त्व के दर्शन करें। वह स्थान चित्त के मध्य मे है। इस चित्त-रूपी दर्पण पर अहकार-रूपी वृत्ति के द्वारा या भावना के द्वारा जब योगी को अहमस्मि का बोध होता है तब उसे अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। इस आनन्द के विषय मे उपनिषद् मे वर्णन किया है—"न शक्यते वर्णयितु गिरा तदा स्वय तदन्त करणेन गृह्यते।" इसका भाव यह है कि जो आत्मा स्वय अन्त करण के द्वारा साक्षात्कार किया जाता है उसको वाणी वर्णन नही कर सकती। इन चारो तत्त्वो के ऊपर इनको आवरण करके एक और कोश के रूप मे प्रकृति का आवरण है। यह जीवात्मा और परमात्मा का परस्पर भेद सिद्ध करता है। यह प्रकृति का आवरण अहकार व चित्त के गर्भ मे आत्मा को अडे के समान गर्भ मे धारण करके रखता है। यदि प्रकृति का आवरण आत्मा के ऊपर न हो तब आत्म-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व भेद करना, पृथक् जानना या अनुभव करना कठिन हो जाए क्योकि दोनो चेतन तत्त्व समान से ही है। केवल सूक्ष्मता और महानता का ही अन्तर है। योगी आत्म-साक्षात्कार के अनन्तर इस कारण रूप प्रकृति के आवरण को भेदन करके या उल्लघन करके या इसको पृथक् रूप से साक्षात्कार करके ब्रह्म-तत्त्व का साक्षात्कार करता है। उसके स्वरूप को देखकर चेतन आत्मा का अनुभव करता है कि जैसा चेतन तत्त्व मैने आत्मा को देखा था तद्वत् या वैसा ही यह ब्रह्म भी है। योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार करने का मार्ग छोटा और सुगम है। इसके द्वारा आप बहुत शीघ्र अपने वास्तविक स्वरूप का और ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार कर सकेंगे। इसकी अपेक्षा एक और साधन या मार्ग जो बहुत गहन और दुस्तर है, अत्यन्त सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है, उसका वर्णन विस्तारपूर्वक मैने 'आत्म-विज्ञान' और 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थो मे किया है।

पूज्य गुरुदेव के इस उपदेश को अहमदाबाद की जनता ने बडी शान्ति से सुना। इसका बडा प्रभाव पडा और हजारो श्रोताओ ने इससे लाभ उठाया।

श्री महाराजजी को रमणलाल लल्लुभाई नित्यप्रति अढाई बजे से साढे पाच बजे तक अहमदाबाद के मुख्य-मुख्य आश्रमो, मदिरो और ऐतिहासिक स्थानो को दिखाने के लिए ले जाया करते थे। वहा के मण्डलेश्वरो से भी परिचय करवाया। नगर के प्रतिष्ठित सेठ नरसिंहलाल लल्लुभाई, अमृतलाल हरगोविन्ददास, मोहनलाल मूलचन्द शाह, भोगीलाल चालाभाई शाह आदि कई सेठो से परिचय करवाया और

इनके निवासस्थानो पर आशीर्वाद दिलवाने के लिए भी लेगए। यहा पर महाराजजी ५ दिन तक विराजे।

पेटलाद गमन

अब इन्हे पेटलाद पधारना था। वहा से रमणलाल केशवलाल राजमित्र दातार के पुत्र श्री अमृतलाल अपनी कार लेकर पूज्य स्वामीजी महाराज को लेने के लिए आगए। अहमदाबाद के सभी भक्तो, शिष्यो, सेठो और जनता ने बडे सम्मान के साथ महाराजजी को विदा किया। प्रात सात बजे अहमदाबाद से चलकर लगभग ग्यारह बजे पेटलाद पहुच गए। यहा पर तीन दिन निवास करना था। यहा पर सेठ अमृतलाल के पास ठहरे। इनके पिताजी सेठ रमणलालजी के साथ महाराजजी का बडा स्नेह भाव था। इन्होने चार बार गगोत्री आकर योगनिकेतन मे वास किया था। अब ये तीन-चार साल से कही आते-जाते नही थे। शरीर कमजोर और शिथिल होगया था। बडे शात भाव से वीतराग होकर जीवन्मुक्तो के समान रहते थे। दो सेवक इनकी सेवा मे रहते थे। इनको किसी से अब मोह तथा ममता नही रही थी। न इन्हे कोई हर्ष था न शोक। इन्ही के साथ मिलता-जुलता जीवन अहमदाबाद मे नरसिंहलाल लल्लुभाई का था। महात्माओ के दर्शन और सत्सग की रुचि थी। स्वाध्याय से प्रेम था और दान मे प्रवृत्ति थी। अन्य किसी भी सासारिक कार्य मे इनकी रुचि नही थी। श्री अमृतलाल अपना सारा कारोबार छोडकर निरन्तर पूज्य गुरुदेव की सेवा मे रहे क्योकि यह योगनिकेतन ट्रस्ट के मैम्बर थे। इन्होने अपने दोनो कारखाने दिखाए, डाकोरजी के मदिर के दर्शन करवाने लेगए तथा अन्य अनेक दर्शनीय स्थान दिखाए। पेटलाद मे पूज्य महाराजजी के दो व्याख्यान हुए। इनके विषय थे 'ईश्वर भक्ति तथा सुखी गृहस्थ के साधन'।

सूरत प्रस्थान

तीसरे दिन सूरत के सेठ चैतन्यदेव और मगलसेन चोपडा अपनी कार लेकर सायकाल पधारे। इन्होने रात्रि को यही विश्राम किया और प्रात काल सेठ अमृतलाल रमणलाल ने बडे सम्मान के साथ विदा किया। सूरत मे महाराजजी ७ दिन तक विराजे। इन्ही दिनो सेठजी ने श्री आनन्दस्वामी सरस्वती को भी आमन्त्रित किया हुआ था। श्री आनन्दस्वामीजी १२ बजे और महाराजजी भी १२ बजे सूरत पहुचे। दोनो के निवास का प्रबन्ध एक ही स्थान पर किया गया।

सन् १९५२ मे तपोवन मे दोनो गुरु और शिष्य इकट्ठे रहे थे। उसके पश्चात् सूरत मे १९६५ मे समागम हुआ। लगभग एक सप्ताह तक दोनो यहा रहे। सेठजी की धर्मपत्नी श्रीमती कमला, 'जो दिल्ली गई हुई थी, इस अवसर पर दोनो महात्माओ की सेवा और सत्सग के लिए वहा आगई थी। दिन भर दर्शनार्थियो की भीड लगी रहती थी। दोनो महात्माओ के १० से १६ तारीख तक एक मदिर मे छ बजे से आठ बजे तक प्रवचन होते थे। पूज्य महाराजजी का प्रवचन छ बजे से सात बजे तक आत्म-विज्ञान के विषय मे होता था। श्री आनन्दस्वामी सरस्वतीजी का प्रवचन सात बजे से आठ बजे तक होता था। इनका विषय 'ईश्वर-भक्ति और उसकी प्राप्ति के उपाय' था। लगभग दो तीन हजार स्त्री-पुरुष प्रवचन सुनने के लिए आते थे। गुरु और शिष्य

दोनो ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध मे बडे-बडे सूक्ष्म रहस्यो को समझाया। नाना प्रकार के उपाख्यानो और प्रमाणो मे अपने प्रवचनो को अत्यधिक रोचक बनाया। दोनो के प्रवचनो का सूरत की जनता पर बडा प्रभाव पडा। १६ जनवरी को सायकाल साढे आठ बजे श्रोताओ ने बडे हर्ष और सम्मान के साथ दोनो महात्माओ को श्रद्धाजलि भेंट की और धन्यवाद अर्पण किया। महाराजजी और श्री आनन्द स्वामीजी बीच मे एक दिन के लिए नवसारी भी पधारे। श्री आनन्दस्वामीजी सूरत मे ही ठहर गए, क्योकि यहा वार्षिकोत्सव होने वाला था और नवसारी मे उन्हे कथा भी करनी थी। महाराजजी ने १७ तारीख को प्रात काल साढे पाच बजे बम्बई के लिए प्रस्थान किया।

बम्बई प्रस्थान

१७ ता० को सूरत से बम्बई के लिए प्रस्थान किया और साढे दस बजे बम्बई पहुचे। वहा पर इनके भक्त और शिष्य तथा वहा के गण्यमान्य और प्रतिष्ठित सज्जन महाराजजी के स्वागतार्थ स्टेशन पर पधारे। इनमे से प्रमुख ये थे — सेठ हरबसलाल मरवाह, सेठ अमीरचन्द, सेठ मोहनलाल बागडी, सेठ भागचन्द, ओमप्रकाश अग्रवाल। स्वागतार्थ आए हुए सभी महानुभावो को महाराजजी ने आशीर्वाद दिया। ये सेठ हरबसलाल मरवाहा के पास ठहरे। स्वामीजी महाराज ने सेठ मरवाहाजी से व्याख्यान आदि यहा रखने के लिए निषेध कर दिया क्योकि बहुत थके हुए थे। इनसे मिलने का समय ३ बजे से ६ बजे तक नियत कर दिया गया। सेठ मरवाहाजी का परिवार बहुत बडा है. ६-७ भाई और २ बहिनें हैं। कई भाई बम्बई मे ही निवास करते हैं। इन सबकी महाराजजी मे बडी भक्ति है। इनकी श्रद्धा और भक्ति बहुत ऊचे दर्जे की है। किसी ज्योतिषी ने सेठ हरबसलाल मरवाहाजी को बताया था कि मणिपुर (आसाम) मे श्री स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती पूर्वजन्म मे आपके गुरु थे। इसलिए उनकी श्रद्धा इनके प्रति और भी अधिक है। तन, मन तथा धन से सदैव इनकी सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। आपकी धर्मपत्नी वीरादेवी सदैव इनकी सेवा मे रहती थी। ये अत्यन्त सुशीला, साध्वी और सौम्य मूर्ति हैं। कई सेवक होते हुए भी ये महाराजजी का सब काम स्वय अपने हाथो से करती थी। इनके पुत्र श्री गोर्धनदासजी थाना मे निवास करते थे। ये नित्य सपरिवार महाराजजी के सत्सग मे आते थे। मरवाहाजी के पौत्र प्रवीण इनसे नित्यप्रति आसन और प्राणायाम सीखा करते थे, और नवीन भी इनके साथ आया करते थे। मरवाहाजी नित्य आध्यात्मिक विषयो पर महाराजजी से वार्तालाप करते थे और अनेक शंकाओ का समाधान करवाते थे।

सेठ तुलसीरामजी के पुत्रो मे प्रेम सम्बन्ध की स्थापना—महाराजजी के शिष्य सेठ तुलसीरामजी (जिन्हें एक बार इन्होने जीवनदान दिया था) के पुत्रो मे कई वर्षो से आपस मे सम्पत्ति के बटवारे के विषय मे झगडा सा रहता था। इन सभी भाइयो की पूज्य गुरुदेव के प्रति बडी श्रद्धा, भक्ति और प्रेम था। बडे लडके का नाम सेठ गोपालदास, दूसरे का नाम हरिकिशनदास, तीसरे का नाम अमीरचन्द और चौथे का ओमप्रकाश है। चारो भाइयो को बुलाकर इन्होने बहुत उपदेश दिया और विविध प्रकार से समझाया। इनके पिताजी का महाराजजी से गत ३५-४० साल का

सम्बन्ध था। सभी भाइयो ने महाराजजी से निवेदन किया कि "आप सारा मामला भली प्रकार से समझ ले और हम सबकी बात पृथक्-पृथक् तथा सम्मिलित रूप से सुन लें, इसके पश्चात् जो कुछ भी आपका आदेश होगा उसे हम पालन करेंगे। कभी आपकी आज्ञा का उल्लघन नही करेंगे। आपके समक्ष हम सब कोरे कागज पर हस्ताक्षर कर देंगे और उस पर जो निर्णय आप दे देंगे वही हम सबको स्वीकृत होगा।" महाराजजी ने सेठ हरबसलाल को इस कार्य के लिए अपना प्रतिनिधि बना दिया, क्योकि ये इनकी अपेक्षा अधिक व्यवहारकुशल और व्यापारादि और सम्पत्ति के झगडो के विषय मे अधिक समझते थे। चारो भाइयो ने इसे स्वीकार किया। सब भाइयो और उनकी पत्नियो के समक्ष सबकी सम्मति लेकर निर्णय किया गया, समझौता होगया। वकील भी बुला लिए गए थे। फैसले पर सबने अपने-अपने हस्ताक्षर कर दिए। सेठ मरवाहा ने अपनी कोठी पर एक सहभोज रखा। सबने मिलकर प्रीतिपूर्वक भोजन किया। छोटे भाइयो ने तथा उनकी पत्नियो ने बडे भाइयो और भोजाइयो के पाव स्पर्श किए और उन्होने बडे प्रेमभाव से उनका आलिंगन किया। अब सब प्रीतिपूर्वक रहने लगे। सेठ अमीरचन्द की लडकी के विवाह मे सभी भाई सम्मिलित हुए। इस सारे परिवार की महाराजजी के प्रति अनन्य भक्ति है। सब प्रकार से ये इनकी सेवा करते है। योगनिकेतन की भी आर्थिक सहायता बड़ी उदारता से करते रहते हैं।

योगनिकेतन ट्रस्ट की सभा—सेठ अमीरचन्द, सेठ हरबसलाल मरवाहा, तथा सेठ मोहनलाल बागडी योगनिकेतन ट्रस्ट के सदस्य है। पूज्य महाराजजी ने ट्रस्ट के प्रधान की हैसियत से उपरोक्त तीनो महानुभावो की एक सभा बुलाई और उसमे यह प्रस्ताव रखा कि ऋषिकेश या स्वर्गाश्रम मे योगनिकेतन का कोई अपना स्थान न होने के कारण बडी कठिनाई का सामना करना पडता है। गत १८ वर्ष से साधना-शिविर यहा लग रहे है। सैकडो साधक इनमे लाभ उठा चुके है। योगनिकेतन के लिए भूमि ली जा चुकी है, अत आप इस पर भवन निर्माण की योजना बनावे। महाराजजी ने भवन निर्माण की योजना योगनिकेतन की आवश्यकताओ को दृष्टि मे रखकर सभा के सामने उपस्थित की —५०×४० फीट का एक सत्सग भवन, इसके आस पास दो-दो कमरो के मकान जिनमे सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाए प्राप्त हो। इस प्रकार के १२ या १५ मकान हो। इस दृष्टि से एक नक्शा तैयार करवाकर निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया जाए। सेठ हरबसलालजी के छोटे भाई ने नक्शा तैयार करके उसका आनुमानिक व्यय भी बता दिया। सेठ मरवाहा ने महाराजजी के निम्न धनाढ्य भक्तो को बुलाकर कार्य के लिए तैयार किया —सेठ गोपालदास, सेठ अमीरचन्द, सेठ ओमप्रकाश, श्री मनोहरलाल मरवाहा, सेठ भागचन्द मिलक, सेठ मोहनलाल बागडी, श्री हरबसलाल, सेठ गिरधारीलाल, सेठ ताराचन्द, श्री गोर्धनदास मरवाहादि। कई भक्तो ने एक-एक कुटिया का खर्चा देने का वायदा किया। भवन निर्माण का सारा कार्यभार सेठ मरवाहाजी के सुपुर्द किया गया।

इन्ही दिनो आनन्दस्वामी सरस्वतीजी भी सेठ हरबसलाल मरवाहा की कोठी पर १० दिन के लिए पधारे। यहा पुन गुरु और शिष्य का समागम होगया। नित्यप्रति घण्टो तक आध्यात्मिक गूढ विषयो पर विचार होता रहता था। दोनो

महात्माओ के शिष्यो और भक्तो की भीड सी दर्शनार्थ लगी रहती थी। सेठ मरवाहा की धर्मपत्नी बडी आतिथ्यप्रिया थी। जो भी दर्शनार्थ आते थे उनका बडी उदारता से आतिथ्य करती थी। दो यतियो का सगम सेठ मरवाहा की कोठी पर हुआ था, अत जिज्ञासु और भक्त लोग ज्ञान, ध्यान, सत्सग की गगा मे नित्य ही स्नान किया करते थे। भारत के दो महान् योगियो के समागम से लाभ उठाकर सभी भक्त नाना प्रकार की अध्यात्म-सम्बन्धी शकाए लेकर आते थे और उनके समाधान से आत्मतुष्टि अनुभव करते थे। ३१ जनवरी तक यहा पर मेला सा लगा रहा।

श्री महाराजजी नित्य ही एक दो घण्टे के लिए अपने भक्तो और शिष्यो को आशीर्वाद देने जाया करते थे। वहा पर इनके सैकडो भक्त और शिष्य थे। प्रात काल ७ बजे से ८ बजे तक पूज्य गुरुदेव और सेठ मरवाहा दोनो समुद्र के तट पर भ्रमणार्थ जाया करते थे।

सेठ अमीरचन्द की सुपुत्री के विवाह पर वर-वधू को आशीर्वाद देने के लिए पधारे। उनके और उनके भाइयो के कारखाने देखने भी गए। वहा पर सब कर्मचारियो को उपदेश दिया। लाला शिवसहायमल की सुपुत्री गौरादेवी के मकान पर दो वार भोजन करने के लिए पधारे। श्रीमती कैलाश मिलक महाराजजी की वडी भक्त थी। उनके मकान पर भी भोजनार्थ गए। यह देवी योगनिकेतन की धन से सहायता करती रहती थी।

ओमप्रकाशजी की रोग मुक्ति—ओमप्रकाशजी सेठ तुलसीरामजी के कनिष्ठ पुत्र है। उनका यज्ञोपवीत सस्कार महाराजजी ने प्रयाग मे किया था। ओमप्रकाश की इनके प्रति अनन्य भक्ति थी। जव महाराजजी अभी वम्बई मे ही थे तव ये और उनकी पत्नी दिल्ली किसी विवाह मे गए। ये वहा पर होटल मे भोजन कर रहे थे, वही पर उन्हे दिल का दौरा पड गया। तुरन्त उपचार किया गया किन्तु तवीयत ठीक नही हुई। इनकी पत्नी विमला देवी ने महाराजजी को तार दिया और प्रार्थना की कि आप अपने शिष्य को आकर सभालें, तवीयत अत्यन्त खराव है। महाराजजी ने तार द्वारा सूचित किया, ठीक हो जाएगे, घवराओ मत, मेरे आने की आवश्यकता नही है। उन्होने उसी समय अपने योगवल का प्रयोग किया और ओमप्रकाशजी विलकुल स्वस्थ होगए और कुछ दिनो मे वम्बई आगए।

श्री आनन्दस्वामी सरस्वती तो मद्रास पधार गए और महाराजजी ३० जनवरी को कलकत्ता जाने का विचार करने लगे।

शका समाधान—३० ता० की रात को महाराजजी और मरवाहाजी वैठे हुए थे। इनमे प्राय नित्य ही आध्यात्मिक वार्तालाप होता रहता था। यू तो सेठ मरवाहा महाराजजी के सिद्धान्तो से पूर्ण परिचित थे किन्तु उन्होने शका की कि "आपने आत्म-विज्ञान ग्रथ मे प्राणमय कोश पर ही क्यो विशेष वल दिया है, जव कि अन्य भूत भी इस शरीर के उपादान कारण हैं ?" पूज्य गुरुदेव ने इस शका का समाधान करने के लिए निम्न प्रवचन किया —

वैसे तो उपनिषदो मे तथा अन्य आचार्यों ने भी प्राणमय कोश का कोशो मे वर्णन किया है। आग्नेय कोश की अपेक्षा प्राणमय कोश का महत्त्व इसलिए अधिक

है कि यह आत्मा और चित्त के सान्निध्य से जो सूक्ष्म-प्राण की गति या क्रिया प्रारम्भ होती है उस सूक्ष्म-प्राण या जीवनी शक्ति को ग्रहण करके स्थूल शरीर मे यही सर्व-प्रथम जीवन का सचार या प्रसार करता है। इस जीवन का सचार करने मे अग्नि तत्त्व या जल तत्त्व इतने उपयोगी नही है जितना कि यह स्थूल प्राण है। शरीर के जिस-जिस भाग मे प्राण का सचार वन्द हो जाता है वहा रुधिर का सचार होना भी वन्द हो जाता है यद्यपि वहा पर तेज और जल तत्त्व होते है। वायु तत्त्व ही अग्नि, जल और पृथ्वी का वहन करता है। इनकी अपेक्षा यह सूक्ष्म है। इस प्राण की गति ही शरीर मे इतस्तत तेज और रुधिर को पहुचाती है। इसी कारण से शरीर मे सर्वत्र उष्णता और रुधिर का सचार होना है। रुधिर जल का अश तथा परिणाम है। इसी प्रकार पसीना भी जल का ही विकार होता है जो रोम-कूपो से सपूर्ण शरीर से निकलता है। जव शरीर का निर्माण हुआ था, तव सर्वप्रथम प्राण ही ने इसमे प्रवेश किया था। यह वायु का ही कार्य है। जब माता के गर्भ मे वीर्य और रज का आधान होता है उस समय इस रज-वीर्य मे सूक्ष्मशरीराभिमानी जीवात्मा का प्रवेश होता है। इससे पूर्व सूक्ष्मशरीर की गति का हेतु सूक्ष्मप्राण होता है। जव रज और वीर्य गर्भाशय मे स्थिर होता है, उस समय इसमे सूक्ष्मशरीर प्रवेश करता है। इससे रज-वीर्य और स्थूल-शरीर मे गति प्रारम्भ हो जाती है। यहा स्थूल प्राणवायु महाभूत का ही कार्यविशेष होता है जो प्राण के रूप मे शरीर मे प्रविष्ट होता है। तभी वह रज-वीर्य कलल भाव को प्राप्त होकर वढने लगता है। जव शरीर की रचना हो रही थी तव वायु महाभूत प्राण भाव को प्राप्त होकर जीवन का आधार वना और सहकारी उपादान कारण भी। प्राण ही शरीर को धारण किए हुए है। इसके विना शरीर नही रह सकता। यद्यपि इसमे पृथ्वी का तथा जल का अश तो रहता ही है किन्तु प्राण के विना शरीर शव तथा मिट्टी के समान गिना जाता है। यह शरीर भूमि का कार्य है और जल ने इसे संगठित किया हुआ है। इन दोनो का धर्म गुरुत्व है, अत ये तो शरीर के रूप मे मरने पर पडे रहते हैं, परन्तु अग्नि और वायु मे गुरुत्व धर्म नही है इसलिए ये गगनमण्डल मे गमन कर जाते है। इसलिए शरीर मे प्राण की ही विशेषता है। अत इसे विशेष महत्व दिया गया है। वास्तव मे प्राणमय कोष के समान तेज भी शरीर मे एक कोष के ही समान है। जिस प्रकार गुरुत्व होने से पृथ्वी और जल का परस्पर सम्वन्ध है इसी प्रकार लघुत्व होने से तेज और प्राण का भी परस्पर सम्वन्ध है। मृत्यु के समय तेज और प्राण दोनो ही साथ गमन करते हैं और पृथ्वी तथा जल के भाग शरीर के दाह के समय भस्म हो जाते है।

कलकत्ता प्रस्थान

३१ जनवरी को महाराजजी के अनेक शिष्य और भक्त दर्शनार्थ आए क्योकि १ फरवरी को प्रात इन्हे हवाईजहाज़ से कलकत्ता पधारना था। कई भक्त ऐरो-ड्रोम पर भी पहुचे थे। सेठ मरवाहा तथा उनका परिवार ५-३० वजे महाराजजी को साथ लेकर सान्ताक्रुज के हवाई अड्डे पर पहुच गए। जहाज के उडान लेने से पूर्व ही पूज्य गुरुदेवजी ने सवको आशीर्वाद दिया। हवाईजहाज २३००० फीट की ऊचाई पर उडा। मार्ग मे विभिन्न प्रकार के दृश्यो को देखते हुए ९ वजे महाराजजी

कलकत्ता पहुच गए। वहा पर सेठ जुगलकिशोर विरला के निजी सचिव अन्य कई महानुभावो के साथ स्वागतार्थ आए हुए थे। सेठजी ने श्री महाराजजी के भोजन आदि की सब व्यवस्था अपने निवास स्थान पर ही की थी। एक कार इनके इतस्तत भ्रमण करने के लिए नियत कर दी थी। यहा ६ दिन ठहरने का प्रोग्राम बनाया था। सेठजी के छोटे भाई और उनके अन्य सभी पारिवारिक जन नित्य दर्शनार्थ और सत्सग के लिए आते रहते थे। महाराजजी के यहा पर अन्य कई भक्त, शिष्य और परिचित थे जिनमे से प्रमुख ये थे—सेठ केवलचन्द सिमाणी, सेठ राजकुमार बागडी, सेठ रामकुमार, सेठ बालमुकन्द, श्रीमती मीनादेवी, बरकतराम जौहरादि। सेठ विरलाजी के आदमियो ने तारापुर, कम्पनी बाग, वेलोर मठ, चिडियाघर, अजायबघर इत्यादि सभी दर्शनीय स्थान दिखलाए। एक दिन के लिए नवदीप भी गए। सेठ केवलचन्दजी सिमाणी भी साथ गए। वहा पर बडे-बडे मदिरो के दर्शन किए। वहा के भजनाश्रम देखे। एक भजनाश्रम मे दोपहर का भोजन किया। दो बजे गगा के किनारे सन्तो और साधुओ के दर्शनार्थ गए। यहा पर महाराजजी के बहुत पुराने परिचित एक योगी मिले। उनके साथ एक घण्टा तक योग के विषय मे बातचीत की। ये वही योगी थे जो कई-कई घण्टे की समाधि लगाया करते थे। आजकल ये मौनी बाबा के नाम से प्रसिद्ध है। महाराजजी से मिलकर इनको बडी प्रसन्नता हुई और गगोत्री उनके पास आने की इच्छा प्रकट की। इस पर महाराजजी ने इन्हे अपने पास ठहरने के लिए आमन्त्रित किया। अब ये कई-कई दिन की समाधि नही लगाते थे क्योकि युवावस्था मे इसकी अधिक आवश्यकता रहती है, वृद्धावस्था मे उतनी नही रहती। अब ये सब प्रकार से सन्तुष्ट थे। जो बात समझने और जानने के योग्य थी उसे समझ लिया था। अब कुछ और जानने की इच्छा नही रही थी। जीवन की साध पूरी हो चुकी थी। अब कोई अभिलाषा शेष नही रही थी। इनकी आयु ९० वर्ष से ऊपर थी। उन्हे अपने जीवन की कोई चिन्ता नही थी। यदि आज चला जाए तो चिन्ता नही थी और १० साल मे जाए तो भी कोई फिक्र नही था। जब महाराजजी ने उनके निर्वाह के लिए आर्थिक सहायता करनी चाही तो इन्होने कहा, "इसकी आवश्यकता नही है। इस शरीर के लिए सभी व्यवस्था ठीक है।" इसके पश्चात् योगीराजजी सायकाल ४ बजे चलकर ७ बजे कलकत्ता पहुच गए। इससे अगले दिन विरलाजी की मोटर फैक्टरी मे एक मदिर का उद्घाटन करने बगाल के प्रधानमन्त्री पधारने थे, अत विरलाजी के पारिवारिक सदस्य महाराजजी को भी साथ ले गए। उस मदिर का उद्घाटन बडे समारोह के साथ हुआ। कई हजार नर-नारी उपस्थित हुए। सबको मिष्ठान्न वितरण किया गया।

आसनसोल प्रस्थान

७ फरवरी को महाराजजी ने आसनसोल के लिए प्रस्थान किया। डीसरगढ से त्रिलोकचन्द आनन्द, कमलादेवी तथा उसके पति लेने के लिए कलकत्ता आए हुए थे। यहा पर महाराजजी तीन दिन तक विराजे। यहा पर कई कोयले की खाने देखी। एक दिन दामोदर घाटी के बाध को देखने के लिए गए। यहा पर नदी के जल को रोककर झील बनाई गई है और जल से बिजली निकाली गई है। यहा का दृश्य बडा मनोहर था। आनन्द साहब के परिवार ने तीन दिन तक सत्सग से लाभ

उठाया। आनन्द दम्पती के विचार उत्तम हैं और ये वडे सज्जन हैं। महाराजजी मे इनकी वडी भक्ति है।

धनवाद गमन

श्रीमती प्रेमदेवी तनेजा अपनी कार लेकर महाराजजी को स्वय लेने आगई थी। ६ फरवरी सायकाल धनवाद पधारे। इन्होने अपनी ही कोठी पर पूज्य गुरुदेव को ठहराया। इनके सुपुत्र विजयप्रताप तथा नन्दकिशोर दोनो इनके अनन्य भक्त हैं। नन्दकिशोर कलकत्ता कालिज मे विद्याध्ययन कर रहे थे। वडे सौम्य और शान्त प्रकृति के नवयुवक हैं। विजयप्रताप २४ वर्षीय नवयुवक है। वडे भावुक और श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और साथ ही वहुत योग्य है। अपने पिता के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् सारा कारोबार इन्होने वडी योग्यतापूर्वक सभाला हुआ है। इनके पास ५ कोयले की खाने हैं और विशाल फैक्टरी का निर्माण उस समय कर रहे थे। ये श्री महाराजजी को सव परिचितो को आशीर्वाद दिलाने के लिए लेगए थे। श्री प्रेमदेवीजी ने इनके दो स्थानो पर भाषण करवाए। ये महाराजजी की अनन्य भक्त थी और इनको वर्षो से अपना गुरु मानती थी। स्वर्गाश्रम मे कई वार सावना शिविर मे अभ्यासार्थ आती रही है।। प्रथम दिन वडी श्रद्धा और भक्ति के साथ पूज्य गुरुदेव के सामने झोली फैला कर प्रार्थना की "मेरी कोई लौकिक कामना नही है और न कोई लौकिक पदार्थ ही आपसे मागती हू। अनेक जन्मो से आत्म-ज्ञान की पिपासा है। अव वृद्धा होगई हू। मृत्यु के समीप पहुच गई हू। क्या आप इस पिपासा को बुझाने की कृपा नही करोगे ? क्या इस जीवन और इस ससार से मैं निराश ही चली जाऊगी ? आपने आनन्दस्वामी, प्रभुआश्रितजी जैसे अनेको को भवसागर से तरने की योग्यता प्रदान की है। क्या मुझे डूवती हुई देखकर आपको दया नही आवेगी ? मैं कई वर्षो से आशा लगाए वैठी हू कि योगीराजजी मुझे भी भव-पाश से मुक्त करेगे। मेरी कुटिया मे आज आप भगवान् के रूप मे पधारे हैं। मेरी झोली मे आत्म-विज्ञान रूपी अपना प्रसाद डालना ही पडेगा।" इन शब्दो के साथ उसके नेत्रो से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। महाराजजी का हृदय भी द्रवित सा होगया। इन्होने कहा, "वेटी, व्याकुल मत हो, रोना वन्द करो। कल प्रात ५ वजे आपकी आत्म-ज्ञान की पिपासा शान्त कर दी जाएगी।" इन्होने कृपापूर्वक प्रात ५ वजे से ७ वजे तक दो-दो घण्टे अभ्यास मे विठाकर आत्म-साक्षात्कार करवा दिया। प्रेमदेवी को वडा सन्तोश लाभ हुआ और वह अपने को धन्य तथा कृतकृत्य समझने लगी।

ब्रह्मचारी अखिलानन्द का समागम—ब्रह्मचारी अखिलानन्द उत्तरकाशी तथा स्वर्गाश्रम मे कई वार महाराजजी के दर्शन कर चुके थे। इनकी महाराजजी के प्रति वडी श्रद्धा और स्नेह है। इन चार दिनो मे भी यह कई वार दर्शन करने आए। वड़े विद्वान् हैं और बहुत वर्षो से घनबाद मे ही निवास करते हैं। यहा की तथा आस-पास की जनता का आपने वडा उपकार किया है। वडे वीतराग और नि स्पृह व्यक्ति हैं। यह प्राय महाराजजी के साथ भ्रमणार्थ जाते थे। मार्ग मे दोनो मे वडा रोचक वार्तालाप होता था। वार्तालाप का विषय सदैव आध्यात्मिक होता था। धनबाद मे महाराजजी के कई सज्जन प्रेमी भक्त वन गए थे। महेन्द्रप्रताप तथा शाहजी इन्हे अपने घर पर भी ले गए थे।

श्रीमती प्रेमदेवी की श्रद्धा—धनबाद से प्रयाग के लिए प्रस्थान करने से पूर्व श्रीमती प्रेमदेवी ने हाथ जोड़कर पूज्य गुरुदेवजी से गुरुदक्षिणा स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की। उन्होने मुस्कराते हुए कहा, "क्या आत्म-ज्ञान प्रदान करने के लिए रिश्वत दे रही हो ?" यह सुनकर जितने भी दर्शनार्थ भक्त तथा शिष्य वहा उपस्थित थे सब कहकहा लगाकर हसने लगे और कहा—'शिष्या की भेट तो स्वीकार करनी पडेगी।' सभी उपस्थित महानुभावो ने उस भेट को स्वीकार करने के लिए उनसे आग्रह किया, उस पर महाराजजी ने स्वीकृति दे दी। प्रेमदेवी ने निर्माणोन्मुख योगनिकेतन के नवीन आश्रम मे एक कुटिया बनाने का सारा व्यय देने और 'हिमालय का योगी' नामक जिस नए ग्रथ का प्रकाशन होने वाला था, उसके प्रकाशन का कुल व्यय देने का वचन दिया और शेष जीवन हिमालय मे ही व्यतीत करने का निश्चय किया। उनके अतिरिक्त प्रेम तनेजा ने कहा था कि श्री महाराजजी की सेवा मे १०० रु० मासिक जीवन पर्यन्त भेंट के रूप मे पहुचता रहेगा।

प्रेमदेवी के दामाद श्री महेन्द्रप्रताप नारग ने भी एक कुटिया बनवाने का वचन दिया, क्योकि उनके वानप्रस्थ का समय समीप आ रहा था और यह अपना शेष जीवन पूज्य महाराजजी के चरणो मे ही व्यतीत करना चाहते थे।

प्रयाग के लिए प्रस्थान

प्रयाग मे कुम्भ का मेला था, इसलिए महाराजजी १५ ता० को साढे आठ बजे वहा पहुच जाना चाहते थे, अत रात्रि के बारह बजे धनबाद से प्रस्थान किया। दिल्ली वाले श्री द्वारिकानाथजी गोधी भी प्रयाग आए हुए थे। उन्होने स्वामीजी महाराज के निवास का प्रबध अपने एक मित्र के मकान पर पूर्व से ही कर दिया था।

सगम स्नान—सगम पर बडी भीड थी। लाखो नर-नारी स्नानार्थ आए हुए थे। महाराजजी ११ बजे के लगभग सगम पर किश्ती द्वारा स्नान के लिए पधारे। श्री द्वारिकानाथ, योगीराजजी तथा उनके सेवक सूरतराम ने बडे आनन्दपूर्वक स्नान किया और ब्राह्मणो को दान-दक्षिणा भी दी। प्रयाग मे सरदार पी०पी० सिह और सरदारनीजी की सन्तो और महात्माओ के प्रति बडी श्रद्धा थी। इन्होने महाराजजी की बडी सेवा की। सरदारजी द्वारिकानाथजी गोधी के मित्र थे और ये उन्ही के पास ठहरे थे। उन्होने स्वामीजी को भी वही ठहराया।

दिल्ली लौटना

महाराजजी को भ्रमण करते लगभग दो मास होने को थे। अब कुछ श्रान्त से हो गए थे, अत बनारस, कानपुर, लखनऊ, आगरा, मथुरा, वृन्दावनादि जाना अब स्थगित कर दिया और द्वारिकानाथ गोधी के साथ हवाई जहाज से वापिस दिल्ली लौट गए। वहा पर गोधीजी की कोठी पर ही निवास किया। दिल्ली में आपके सैकडो भक्त और शिष्य है। दर्शनार्थियो का बडा तांता सा बधा रहता था। बडी भीड सारा दिन बनी रहती थी, अत सत्सगियो और जिज्ञासुओ के लिए ३ से ६ बजे का समय नियत कर दिया गया था। नित्यप्रति सत्सग और शका-समाधान होता रहता था। मन को एकाग्र करने के नाना प्रकार के साधन पूज्य योगीराजजी साधको, जिज्ञासुओ और सत्सगियो को बताते रहते थे। ५ दिन के पश्चात् द्वारिकानाथजी

सोधी ने ५०० आदमियो को भोजनार्थ तथा महाराजजी का वचनामृत पान करने के लिए निमन्त्रित किया था ।

श्री महाराजजी का दिल्ली मे उपदेश—पूज्य गुरुदेव ने अपना प्रवचन इस वेद मन्त्र से प्रारभ किया —

वेदाहमेत पुरुष महान्तमादित्यवर्ण तमस पुरस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
(यजु० ३१।१८)

अर्थात् आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार किए बिना मृत्यु पर विजय नही पाई जा सकती, सर्व दुखो से निवृत्ति नही हो सकती । मैं बहुत वर्षो के पश्चात् हिमालय से नीचे उतरा हू और ८ मास से भारत के मुख्य-मुख्य नगरो मे अनेक आध्यात्मिक विषयो पर व्याख्यान दिए हैं । बडे-बडे नगरो मे साधना शिविर लगाकर योगाभ्यास करवाने और सत्सग लगाने के उद्देश्य से मैं हिमालय से नीचे उतरा था जिससे हमारे देश की जनता को विशेष लाभ पहुच सके । किन्तु मेरा यह विचार निरर्थक ही रहा । प्रथम तो बडे-बडे नगरो मे कोई एकान्त स्थान ही प्राप्त नही होता । यदि कही पर किसी कोठी अथवा धार्मिक सस्था मे मिल भी जाए तो लोग प्रात ४-५ बजे शीतकाल मे उठकर आ नही सकते । धर्म तथा ईश्वर के प्रति लोगो मे श्रद्धा और भक्ति की भावना ही नही है । डेढ मास हुआ जब मैं यहा से बम्बई गया था, जगदीशचन्द्र डावर की कोठी पर लोगो के बहुत आग्रह पर प्रात ५ बजे मैंने साधना की कक्षा लगानी प्रारम्भ की थी । उसमे केवल १२ स्त्री-पुरुष आते थे । मुझे उस समय दिल्ली की जनता पर बडा तरस आया था । जिस ब्राह्ममुहूर्त मे उठकर उन्हे जाप, पूजा, पाठ और साधना करनी चाहिए थी उस समय को ये आलस्य, प्रमाद, तन्द्रा और निद्रा मे खो रहे थे । इससे तो हमारा योगाश्रम ही श्रेष्ठ है जहा पर कम से कम ४०-५० स्त्री और पुरुष अभ्यास करने आते है । वहा पर सच्चे जिज्ञासु तत्वज्ञान की अभिलाषा लेकर आते है । वहा पर निश्चिन्त होकर साधना करते है और ये बडी सफलता लाभ करते है । हमारा योग साधना शिविर प्रति वर्ष १ नवम्बर से ३१ मार्च तक ५ मास के लिए लगता है । नित्यप्रति तीन बार अभ्यास करवाया जाता है । इसी प्रकार योग निकेतन गगोत्री मे भी १५ जून से १५ सितम्बर तक अर्थात् तीन मास तक साधना शिविर लगाया जाता है । वहा लोगो को विशेष शान्ति और तत्व-ज्ञान की प्राप्ति होती है । सब लोग यम तथा नियमो का पालन करते है और निश्चिन्त भाव से अभ्यास करते हैं तथा मानव जीवन की पूर्ण सफलता लाभ करते हैं ।

भोग और विलास का त्याग—यहा नगरो मे मनुष्य सारा दिन किसी न किसी कारोबार मे लगा रहता है । सारा दिन लौकिक व्यापार करते-करते श्रान्त होकर घर लौटता है । जहा शरीर और मस्तिष्क दोनो अत्यन्त थके हुए हो, भला उनसे ध्यान तथा समाधि की सभावना कैसे की जा सकती है ! यह विज्ञान तो साधन-चतुष्टय-सम्पन्न अर्थात् शम, दम, उपरति, तितिक्षा युक्त साधक ही प्राप्त कर सकता है । इस आठ मास के प्रचार कार्य के समय बडे-बडे सम्पन्न गृहस्थो के पास रहने का अवकाश मिला । प्राय सभी, सत्तर और अस्सी साल के गृहस्थ भी, भोग और विलास का जीवन व्यतीत कर रहे हैं । ५० वर्ष के पश्चात् ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना

चाहिए। इससे विषयासक्ति कम हो जाती है तथा मोह और ममता का अभाव होने लगता है। सदाचार का जीवन बन जाता है। आदर्शयुक्त जीवन का दूसरो के ऊपर भी अच्छा प्रभाव पडता है। "यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तद् तदेवेतरे जना" की मर्यादा साक्षात् रूप धारण कर लेती है। बल, पराक्रम और बुद्धि मे वृद्धि होती है। श्रेय-मार्ग के पथिक बन जाते है और ज्ञान तथा वैराग्य को प्राप्त करते हैं। शास्त्र-मर्यादा का पालन भी ठीक रूप से होने लगता है। ५०-५५ वर्ष की आयु के पश्चात् वानप्रस्थियो के समान जीवन व्यतीत करना चाहिए और ७५ वर्ष की आयु तक अर्थात् २५ वर्ष तक किसी आत्म-ज्ञानी गुरु के पास अथवा किसी अच्छे वानप्रस्थाश्रम मे निवास करके पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण पूर्वक यम-नियम का पालन करते हुए योग साधना करनी चाहिए और धारणा, ध्यान तथा समाधि द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना चाहिए। यदि इस मानव जीवन को सफल बनाना है और यदि आवागमन के चक्र मे मुक्तिलाभ करने की इच्छा है तो भोग और विलास के जीवन का परित्याग करके श्रेय-मार्ग को अपनाओ, जिसे अपनाकर बुद्धिमानो, विद्वानो, सन्तो और महापुरुषो ने सुख, शान्ति और शाश्वत आनन्द प्राप्त किया है। जिस मनुष्य ने नचिकेता के इस वाक्य को पढा और सुना है —

श्वो भावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
सर्वेन्द्रियाणा जरयन्ति तेज ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥

उसकी भोग-विलास के प्रति कभी रुचि नही हो सकती। ये भोग और विलास कभी स्थायी रहने वाले नही हैं। ये इन्द्रियो के तेज को नष्ट करते है। बुद्धिमान् व्यक्ति कभी इनकी कामना नही करते। जिन्होने इस रहस्य को समझ लिया है वे भोगो से उपराम हो जाते हैं और आत्म-साक्षात्कार करने में ही अपने जीवन की सफलता समझते है। वेद बार-बार हमे हमारे कर्त्तव्य का स्मरण दिलाता है 'यस्त न वेद किं तस्य ऋचा करिष्यति' अर्थात् इस मानव देह को प्राप्त करके जिसने आत्म-साक्षात्कार नही किया उसको वेद, शास्त्र तथा अन्य ग्रथ पढने से क्या लाभ है। यह जीवन तो वास्तव मे अपने यथार्थ रूप को जानने और सर्व दु ख निवृत्ति के लिए प्राप्त हुआ है, परन्तु यह मूढ मनुष्य हीरे के बदले काच की मणि खरीदता फिरता है। आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए कही दूर जाने की आवश्यकता नही। वह तो आपके अत्यन्त समीप है। आपके भीतर ही है, आपके भीतर ही आपको इसकी उपलब्धि होगी, किन्तु इसके लिए तपस्या, त्याग, साधना और वैराग्य की आवश्यकता है। आख के अजन को आख स्वय नही देख सकती यद्यपि वह उसके अत्यन्त समीप है। इसको देखने के लिए दर्पण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार आपका आत्मा और परमात्मा आपके हृदय प्रदेश मे चित्त रूपी मण्डल मे विद्यमान है, किन्तु इसका साक्षात्कार ज्योतिष्मती बुद्धि और ऋतम्भरा बुद्धि रूपी दर्पण के बिना होना असभव है। इस बुद्धि की प्राप्ति का साधन ध्यान और समाधि है। इन्ही के द्वारा यह बुद्धि प्राप्त हो सकती है, अन्यथा नही। अत आपको किसी विद्वान् योगी से ऋतम्भरा बुद्धि को प्राप्त

करने के साधन सीखने की आवश्यकता है। इसके प्राप्त होने पर ही आत्म-साक्षात्कार लाभ होगा, स्वरूप की उपलब्धि होगी और मानव जीवन कृतकृत्य हो जाएगा।

ऋतम्भरा बुद्धि की प्राप्ति के साधन—ऋतम्भरा बुद्धि को उत्पन्न करने के लिए सर्वप्रथम ध्यान को भ्रूमध्य मे लगाना चाहिए। कुछ काल के अभ्यास से यहा एक दिव्य ज्योति उत्पन्न होने लगती है। इस प्रकाश को लेकर ऊपर ब्रह्मरन्ध्र मे प्रवेश करे। इस स्थान मे दीर्घ काल तक अभ्यास करने से और मन के समाहित होने मे इस ज्योति द्वारा शनै-शनै ब्रह्मरन्ध्र के स्वरूप और पदार्थो को देखने का प्रयत्न करें। यह प्रयत्न अथवा अभ्यास ऋतम्भरा बुद्धि को उत्पन्न कर देता है। सर्वप्रथम भ्रूमध्य मे जो ज्योति उत्पन्न हुई थी यह पदार्थो को अर्थात् अन्दर के सूक्ष्म पदार्थो को दिखलाने मे काम देगी और ऋतम्भरा बुद्धि इन पदार्थो का निर्णय करेगी और यथार्थ निश्चयात्मक साक्षात्कार करवाएगी और यह नितान्त निर्भ्रान्त होगा। ब्रह्मरन्ध्र मे सूक्ष्म शरीर के पदार्थ जिनका व्यवहार यही पर होता है, अर्थात् दस इन्द्रिया और मन और इनके विषयो का पूर्णरूपेण साक्षात्कार करवा देती है। इसके पश्चात् साधन-चतुष्टय-सम्पन्न योगी इस ज्योति और ऋतम्भरा बुद्धि को लेकर हृदय-प्रदेश मे प्रवेश करे।

आत्मा के तीन आवरण—यहा आपको आत्मा के ऊपर तीन आवरण दृष्टि-गोचर होगे—सूक्ष्म प्राण, अहकार और चित्त। प्रथम आप ऋतम्भरा बुद्धि द्वारा सूक्ष्म प्राण का प्रत्यक्ष करे और इसके पश्चात् अहकार के स्वरूप को देखे जिसके द्वारा 'अहमस्मि' अर्थात् अह-विशिष्ट आत्मा के स्वरूप का बोध होता है। इस अहकार के मण्डल को भेदन करके या इसके स्वरूप को जानकर ऋतम्भरा द्वारा चित्त के मण्डल मे प्रवेश करें।

चित्त मे आत्मा का अन्वेषण—यहा अत्यन्त समाहित होकर सूक्ष्म बुद्धि द्वारा अर्थात् इस ऋतम्भरा ज्ञान द्वारा चित्त मे अपने आत्मा का अन्वेषण करे। यह देखे कि चित्त के किस प्रदेश मे परमाणु से भी सूक्ष्म यह आत्मा निष्क्रिय और अचल होकर निवास कर रहा है क्योकि यह चित्त कभी-कभी विकास भाव को प्राप्त होकर बहुत बडा दिखाई देने लगता है। यदि उस चित्त का विभाग किया जाए तो उसके अरबो हिस्सो के एक खण्ड से भी आत्मा सूक्ष्म है। चित्त की यह अवस्था उस समय होती है जब यह विकास रूप होकर क्रियाशील होता है। तब यह एक समुद्र के समान विशाल मालूम होने लगता है। उस समय इसमे परमाणु से भी सूक्ष्म इस आत्मतत्त्व को ढूढना उतना ही कष्टसाध्य होता है जितना कि विशाल समुद्र मे मोती को ढूढ कर निकाल लाना कष्टसाध्य होता है। परन्तु जब यह चित्त सकोच भाव को प्राप्त होता है तब यह भी बहुत छोटा सा और अत्यन्त सूक्ष्म आत्मा की अपेक्षा कुछ ही बडा होता है, तब आत्म-साक्षात्कार करना सुगम होता है। चित्त की यह सकोचावस्था अत्यन्त सात्विक होती है और विकास की अवस्था रज प्रधान होती है। इसलिए योगी को सात्विक अवस्था मे चित्त और आत्मा का पृथक् पृथक् स्वरूप देखने मे सुविधा होती है और ठीक-ठीक अनुभूति होती है। इस अवस्था मे अपने स्वरूप का जो आभास प्रत्यक्ष होता है, उस समय जो आनन्द की अनुभूति होती है, उसे लेखनी से लिखा नही जा सकता और वाणी से उसका वर्णन नही किया जा सकता। इन चारो पदार्थों की अर्थात् सूक्ष्म प्राण, अहकार, चित्त और आत्मा की प्रकृति के अण्डाकार मे

अगुष्ठमात्र पुरुष के रूप में अनुभूति होती है। यही आनन्दमय कोष या कारणशरीर है। इससे आगे यदि आत्मज्ञानी योगी ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त करना चाहे तो यहा धर्ममेघ समाधि की अवस्था मे इस कोष रूप प्रकृति के आवरण को उल्लघन करके या उसका साक्षात् करके ब्रह्म के मण्डल या स्वरूप मे उपस्थित होता है। वहा पहुच कर आनन्दमय कोष अथवा कारणशरीर का उपादान कारण अर्थात् साम्यावस्था रूप प्रकृति मे ब्रह्म के व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध का प्रत्यक्षीकरण करे। प्रकृति और ब्रह्म के स्वरूप को पृथक्-पृथक् अनुभव करे। इसके मध्य मे उपस्थित होकर उसे आत्म-विस्मृति हो जाती है, वह खोया सा जाता है। वह अपने स्वरूप मे स्थित हो जाता है। यह है आत्मा की मोक्षावस्था। इसको चाहे आप अपने स्वरूप मे प्रतिष्ठा समझे अथवा प्रकृति के रूप मे प्रतिष्ठा समझे या ब्रह्म के रूप मे स्थिति समझे।

विशाल जनसमुदाय जो पूज्य महाराजजी के उपदेशामृत का पान कर रहा था उसकी भी समाधि सी लग गई थी। उपदेश समाप्त होगया था किन्तु सब स्तब्ध होकर बैठे थे। किसी का न उठने को दिल चाहता था, न बोलने को, और नाही हिलने को। जब महाराजजी इस उपदेश को दे रहे थे तब उनके नेत्र बन्द थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि वे अपने भीतर सब कुछ देखकर उपदेश दे रहे थे। ये धारा-प्रवाह से बोल रहे थे और जनता एकाग्र भाव से सुन रही थी। श्रोतागण सभी विद्वान् थे। विशेष निमत्रण देकर सबको बुलाया गया था जिससे बुद्धिमान् और विद्वान् लोग ही आए जो उपदेश का तत्त्व समझ सके। पर तो भी महाराजजी का नाम सुनकर सैकडो लोग बिना निमत्रण के भी उपस्थित होगए थे। सैकडो ही श्रोतागण ने इस बात को अनुभव किया कि इस प्रकार का हृदयग्राही, सारगर्भित तथा आध्यात्मिक उपदेश उन्होने कभी नही सुना था।

स्वर्गाश्रम लौटना

इस उपदेशामृत का दिल्ली की जनता को पान करवाने के पश्चात् पूज्य स्वामीजी महाराज केवल दो दिन वहा और ठहरे और इसके पश्चात् २५-२-६५ को स्वर्गाश्रम के लिए प्रस्थान किया। प्रात ७ बजे द्वारिकानाथजी के परिवार तथा अन्य भक्तो और शिष्यो ने बडे सम्मानपूर्वक महाराजजी को विदा किया। श्री सोधी और श्री तलवाड कार मे उन्हे स्वर्गाश्रम पहुचाने आए। महात्मा प्रभुआश्रितजी ने पूज्य गुरुदेव को वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर मे भोजनार्थ निमत्रित किया था। वहा पहुचकर १२ बजे भोजन करके महात्माजी से कुछ काल वार्तालाप किया। तदुपरान्त २ बजे वहा से प्रस्थान करके ३ बजे स्वर्गाश्रम पहुच गए।

पूज्य योगीराजजी ने २५ फरवरी को स्वर्गाश्रम पहुचकर २६ ता० से साधना-ध्यान करवाना प्रारभ कर दिया। गत दो मास से उनके भक्त तथा शिष्य इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इस समय अभ्यासियो की सख्या ४०-४५ तक थी। एक मास तक अभ्यास करवाने के बाद ३१ मार्च १९६५ को साधना शिविर की समाप्ति पर उत्सव मनाया गया। एक बहुत बडा भण्डारा दिया गया और महाराजजी ने अभ्यासियो को बडा सारगर्भित और शिक्षाप्रद निम्न उपदेश दिया।

पूज्य महाराजजी का उपदेश

उपस्थित ७०-७५ अभ्यासियो को सम्बोधित करते हुए महाराजजी ने कहा — मुझे स्वर्गाश्रम मे अभ्यास करवाते हुए १८ वर्ष होगए हैं। इसके पूर्व मोहन आश्रम मे साधना शिविर लगाया करता था। भारत के विभाजन के समय स्वर्गाश्रम मे निवास प्रारम्भ कर दिया। तव से यही स्थान योग विद्यालय वन गया। ५ वर्ष पूर्व तो ४ मास का शिविर लगाया जाता था और अव ५ महीने तक अभ्यास करवाया जाता है। इस सस्था से सैकडो ही नही किन्तु सहस्रो अभ्यासियो ने लाभ उठाया है। अनेको योगी यहा से तैयार होकर निकले हैं।

शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति—यहा की साधना के द्वारा साधक शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति प्राप्त करते है। आसन, प्राणायाम और योग की क्रियाओ से शरीरिक उन्नति, यम-नियम और प्रत्याहार के द्वारा मानसिकोन्नति तथा धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा आत्मिकोन्नति लाभ करते है। इन साधना शिविरो से जनता का वडा उपकार हुआ है। इन शिविरो से लोक और परलोक दोनो का सुधार होता है। आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष का अधिकारी वनता है। जितने काल तक यहा साधक और साधिकाए निवास करती हैं तव तक पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य का पालन होता है, चरित्र का निर्माण होता है और तप, त्याग और वैराग्य की भावना दृढ होती है।

नि शुल्क शिक्षा—इस योग विद्यालय की यह विशेषता है कि यहा पर किसी भी साधक या साधिका से योग प्रशिक्षण शुल्क नही लिया जाता, अपितु निर्धनो, ब्रह्म-चारियो, वानप्रस्थियो और सन्यासियो की आर्थिक सहायता की जाती है। इस योग विज्ञान की परपरा चलाने के लिए 'वहिरङ्गयोग', 'आत्म-विज्ञान' और 'ब्रह्म-विज्ञान' नामक ग्रथो की रचना करके मनुष्यमात्र का कल्याण-साधन किया है। अनेक प्रकार के सुगम और सरल साधन वताकर सर्व साधको को अध्यात्म ज्ञान करवाया जाता है।

देश तथा विदेश मे योग प्रचार—योगनिकेतन योग विद्यालय ने कई योगाचार्य तैयार किए है जो देश-देशान्तरो मे जाकर योग का प्रचार करते है।

सब मतो और संप्रदायो मे समानता—इस योग विद्यालय मे सव सप्रदायो के जिज्ञासु योग-साधना करने आते हैं। सवको समान रूप से योग शिक्षा दी जाती है। किसी भी प्रकार का भेद-भाव कही भी दृष्टिगोचर नही होता। जैन, वौद्ध, सिख, पारसी, सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, राधास्वामी, इतना ही नही, मुसलमान और ईसाई आदि सभी योग सीखने के लिए आते हैं और सभी यहा से लाभ उठाकर जाते हैं।

योग की सार्वभौमिकता—योग ही एक सार्वभौम धर्म है जिसको वसुधातल पर रहने वाले सभी नर-नारी अपनाते है। योग मनुष्यमात्र के लिए उपयोगी, हित-कारी और कल्याणदायक है।

आज आप सव ५ मास की साधना के उपरान्त यहा से विदा हो रहे है। यहा से जाकर भी आपको इसी प्रकार अभ्यास करते रहना चाहिए। यदि इससे आगे उन्नति सभव न हो तो कम से कम ५ महीने मे यहा जो कुछ सीखा है उसे तो कभी

नही भुलाना चाहिए। इसे दृढभूमि करते रहे। मेरा आशीर्वाद तथा शुभकामनाए सदैव आपके साथ रहेगी। मै आशा करता हू कि आप सब उन्नति के पथ पर अग्रसर होगे और कल्याण के भागी बनेगे।

भवन की आधार-शिला—३१ मार्च को सभी अभ्यासी योगनिकेतन से विदा हो जाते हैं, इसलिए योगनिकेतन का भवन मुनीकीरेती पर गगा के किनारे निर्माण की जो एक बडी योजना बनाई गई थी उसका प्रारभ प्रथम मार्च को ही कर दिया था। इस पावन दिवस पर आश्रम की आधारशिला रखी गई और श्री वी० एन० दत्तजी, कैप्टन जगन्नाथजी तथा शकरलालजी शर्मा ने निर्माण कार्य प्रारभ कर दिया।

उत्तरकाशी गमन—योग विद्यालय बन्द होने के पश्चात् पूज्य गुरुदेव ने एक मास तक स्वर्गाश्रम मे निवास किया और ३० अप्रैल को वहा से चलकर पहली मई को साढे तीन बजे उत्तरकाशी योगनिकेतन मे पहुच गए। महात्मा प्रभुआश्रितजी भी कुछ दिनो के लिए यहा आगए। यहा रहकर कई प्रकार की अपनी शकाओ का समाधान करवाते रहे और ज्ञान तथा विज्ञान मे वृद्धि करते रहे। श्री महात्माजी जब योगनिकेतन पहुचे तब घाट से उतरकर गगाजी मे हाथ-मुह प्रक्षालनार्थ गए किन्तु दैववशात् पैर फिसल जाने से गिर गए और गले की हड्डी (कालर बोन) टूट गई। विधिवत् उनका उपचार करवाया गया और प्रभु-कृपा से इन्हें आराम आगया। महात्माजी अपने एक शिष्य श्री इन्द्रसेनजी को अपने साथ लाए थे। एक दिन इन्होने महाराजजी से निवेदन किया कि "महात्माजी तो बडी भक्ति और श्रद्धा से आपके दर्शन और सत्सग करने आए थे। यह चोट किस कर्म का फल है?" महाराजजी ने हसते हुए उत्तर दिया, "अपना नियम भग करके आए हैं। गुरु की आज्ञा लेकर आना चाहिए था। उसी की यह सजा है। और दर्शन तथा सत्सग की भावना पूरी हो ही रही है।" महात्माजी कुछ दिवस उत्तरकाशी निवास करने के पश्चात् रोहतक पधारगए।

गंगोत्री मे तीन साधको को योगाभ्यास की शिक्षा—इस वर्ष गगोत्री के योग-साधना-शिविर मे दो साधिकाए डाक्टर कुमारी रामप्यारी और श्रीमती शान्ति देवी तथा एक साधक श्री शकरलाल शर्मा सम्मिलित हुए। डा० रामप्यारी की सेविका ललिता बाई भी कुछ दिवस तक अभ्यास मे बैठी किन्तु आसन की अस्थिरता के कारण कुछ दिवस तक अभ्यास करके साधना मे आना तो छोड दिया किन्तु अपनी कुटिया मे अभ्यास करती रही। ३० मई को सब तैयारी करके ३१ मई को प्रात ६ बजे उत्तरकाशी से प्रस्थान करके भटवाडी पहुचे। उससे आगे गगोत्री तक सारी यात्रा पैदल की। भटवाडी से चलकर सायकाल गगणानी पहुच गए, दूसरे दिन हरसिल और तीसरे दिन गगोत्री पहुच गए। ३-४ दिन के पश्चात् डाक्टर कुमारी रामप्यारी शास्त्री तथा श्री शकरलाल शर्मा से पूज्य महाराजजी ने कहा, "आप दोनो को बडी तत्परता के साथ साधना और अभ्यास मे लग जाना चाहिए। और शीघ्र ही आत्म-विज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करे क्योकि आप दोनो को भविष्य मे योगनिकेतन के आचार्य बनकर योग प्रशिक्षण करना होगा। हम बहुत शीघ्र ही आप दोनो को तत्त्व-ज्ञान करवा देंगे, अत अभी से तत्त्व-ज्ञानियो के समान आचरण करना प्रारम्भ कर देना चाहिए।" अभी साधना शिविर के प्रारम्भ होने मे ८ दिन शेष थे परन्तु पूज्य महाराजजी ने ७ जून से ही अभ्यास करवाना प्रारम्भ कर दिया।

श्री शकरलालजी शर्मा—श्री शर्माजी महाराजजी के पास १९६१ के फरवरी मास मे आए थे। आप रावलपिडी निवासी थे किन्तु अब कई वर्षो से दिल्ली मे रहते थे और एलेम्बिक कैमिकल कम्पनी मे कार्य करते थे। एक हजार रुपया इन्हे वेतन मिलता था। इसके साथ कम्पनी ने इन्हे और भी अनेक सुविधाए दे रखी थी। एक कन्या को जन्म देकर युवावस्था मे ही इनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास होगया था। इनकी माता सौतेली थी। श्री शर्माजी यद्यपि युवक थे किन्तु इन्होने द्वितीय विवाह करना उचित नही समझा। अपनी पुत्री को भली प्रकार से सुशिक्षित करके उसका योग्य वर के साथ विवाह कर दिया। यह एक ही इनका उत्तरदायित्व था। इसे पूर्ण करके इनका चित्त कुछ उपराम सा रहने लगा। अध्यात्म ज्ञान की रुचि जागृत होगई, अत अध्यात्म ज्ञान के प्रदाता किसी महापुरुष की खोज करने मे व्यस्त होगए। सर्व-प्रथम विनोबा भावे के पास गए और कुछ काल तक उनके पास निवास भी किया किन्तु किंचिन्मात्र भी आध्यात्मिक उन्नति नही हुई, अत वहा से लौट आए। इनकी पुत्री के श्वसुर कई वर्षो से ऋषिकेश मे रहते थे। श्री शकरलालजी ने अध्यात्म-पथ मे मार्गदर्शन करने के योग्य किसी महात्मा का नाम बताने के लिए कहा। पडित शिवदत्तजी का पूज्य महाराजजी से बहुत पुराना परिचय था। इनकी बडी ख्याति इन्होने सुन रखी थी। अत वे श्री शर्माजी को स्वर्गाश्रम मे योगनिकेतन मे ले आए और इन्हे महाराजजी के अर्पण कर दिया। तब से पडित शकरलालजी शर्मा इनके ही बनकर इनके पास निवास कर रहे है।

डाक्टर कुमारी रामप्यारीजी शास्त्री—डाक्टर कुमारी रामप्यारी देवीजी शास्त्री लुधियाना के पास पायल निवासिनी है। जब इनकी आयु केवल १६-१७ साल की थी तभी से इन्होने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की प्रतिज्ञा की थी। इसके लिए इन्हे अपने माता-पिता तथा परिवार का बड़ा कोप-भाजन बनना पडा और विविध कठिनाइयो को सहन किया, किन्तु ये अपने व्रत पर हिमालय पर्वत के समान अटल रही। आपने १० वर्ष तक कन्या महाविद्यालय जालधर मे शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् हिन्दु विश्वविद्यालय बनारस मे पाच साल तक निवास करके बी०ए०, बी०टी० और शास्त्री परीक्षाए पास की और इतिहास मे एम० ए० प्राईवेट पास किया और राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से पी-एच०डी० की उपाधि ग्रहण की। प्रथम रियासत कोटा के तथा इसके बाद राजस्थान के शिक्षा विभाग मे राजसेवा करती रही है। वर्षो तक चीफ इन्स्पैक्ट्रेस, असिस्टैंट डायरेक्ट्रेस और डिग्री कालेजो के प्रिन्सिपल के पदो पर कार्य कर चुकी है। राजस्थान विश्वविद्यालय की एकेडेमिक कौसिल, सिनेट तथा सिडीकेट की वर्षो तक सदस्या रही है। आप हिन्दी की अच्छी लेखिका हैं और कई ग्रथो की रचना की है। शिक्षा, समाज, धर्म तथा राजनैतिक क्षेत्रो मे आपने बहुत काम किया है। राजसेवा से निवृत्त होने के पश्चात् कन्या महा-विद्यालय जालधर मे एक वर्ष तक आचार्या के पद पर अवैतनिक सेवा की।

पूज्य महाराजजी २८ अक्टूबर १९६४ को काश्मीर से लौट रहे थे। जालधर के स्टेशन पर श्रीमती डाक्टर विद्यावतीजी, जालधर कन्या महाविद्यलय की प्रबध-कर्त्री सभा की उपप्रधाना कुमारी लज्जावतीजी और डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवीजी इनके दर्शन करने आई। स्टेशन पर आने से पूर्व डाक्टर विद्यावतीजी ने डाक्टर

कुमारी रामप्यारीदेवीजी से एक उच्च कोटि के महात्मा के दर्शनार्थ स्टेशन पर चलने के लिए कहा। डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवी ने उपेक्षा दर्शाते हुए कहा, "क्या लाभ होगा? मैंने बहुतेरे सन्तो के पहिले ही दर्शन कर रखे है।" इस पर डाक्टर विद्यावतीजी को कुछ निराशा सी हुई किन्तु इन्होने पुन कहा, "आपने इस प्रकार के महान् सन्त नही देखे होगे। ये हिमालय के योगी है। दर्शन मात्र से तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। बहुत वर्षों से आपकी जो योग सीखने की अभिलाषा है वह पूर्ण हो जाएगी। आपका अन्त करण निर्मल हो जाएगा और मुक्ति लाभ करोगी।" ये बात सुनकर डा० रामप्यारीदेवी भी साथ चलने के लिए तैयार होगई। स्टेशन पर केवल १० मिनट ही दर्शन किए थे। दर्शन करते ही उनका मन आनन्द से प्रफुल्लित हो उठा। योग सीखने की अभिलाषा प्रबल हो उठी। विद्यालय के कार्य को परित्याग करने का एकदम निश्चय किया और आजीवन आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त करने का अटल निर्णय कर लिया। डाक्टर विद्यावतीजी तथा कुमारी लज्जावतीजी साथ ही बडी मर्माहत हुई थी, डाक्टर कुमारी रामप्यारीजी से कहने लगी कि महात्माजी के आपको दर्शन कराने मे हमने बडी भूल की क्योंकि अब आप योग सीखने के लिए चली जाओगी और हम आपसे वंचित ही रह जाएगी। आपने तो एकदम ही अपने भविष्य का कार्यक्रम बना लिया। कुमारी लज्जावतीजी ने विद्यालय मे रहने के लिए बहुत आग्रह किया किन्तु इन्होने उनकी बात नही मानी। विद्यालय के प्रधानाचार्या के पद से त्यागपत्र देने का निश्चय कर लिया। अपना शेष जीवन हिमालय मे रहकर योग द्वारा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करने का दृढ निश्चय कर लिया। पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज के दर्शनो का इनके ऊपर बडा प्रभाव पडा। विद्यालय से प्रथम १५ दिन का अवकाश लेकर स्वर्गाश्रम के साधना शिविर मे सम्मिलित होने का निश्चय किया। पूज्य योगीराजजी से प्रवेश के लिए आज्ञा मागी तथा १५ दिन के लिए योग-साधना-शिविर मे सम्मिलित होगई। इन्होने थोडे ही दिनो मे बडी उन्नति कर ली। भ्रूमध्य मे दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव होगया और स्थूल जगत तथा उनके पदार्थों का साक्षात्कार होने लगा। इससे इन्हे बडी प्रसन्नता हुई और जीवन की सफलता के चिन्ह दिखाई देने लगे।

श्री महाराजजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति और विश्वास उत्पन्न होगया। एक दिन इन्होने महाराजजी से नम्र निवेदन किया कि मै योगनिकेतन मे स्थायी रूप से रहकर आत्म-विज्ञान प्राप्त करना चाहती हू। मुझे पेन्शन मिलती है। सेवा के लिए सेवक या सेविका अपने पास रखूगी, आपके ऊपर मेरा कोई भार नही होगा। आप मुझे अपनी पुत्री समझकर तत्त्व-ज्ञान का उपदेश करे तथा आत्म-ज्ञान के साक्षात्कार का साधन बतावे। मेरी आयु इस समय ६० वर्ष की है। जीवन का कुछ भरोसा नही, अब आप मुझ पर दयादृष्टि करे।

श्री महाराजजी ने कहा, बेटी! एक शर्त पर हम आपको आत्म-ज्ञान का उपदेश देगे और उसका साक्षात्कार भी शीघ्र ही करवा देगे तथा आपको योग की आचार्या बना देगे। वह शर्त यह है कि आप इस विज्ञान को प्राप्त करके योगनिकेतन मे स्थायी रूप से रहकर देवियो को योग की शिक्षा दे। भूली भटकी देवियो को योग मार्ग पर लगा कर आत्मकल्याण प्रदान करो। डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवी ने

पूज्य महाराजजी के समक्ष प्रतिज्ञा की कि मैं आजीवन आपकी आज्ञा का पालन करती रहूगी।

योगनिकेतन मे वहुत वर्षों से स्त्री और पुरुप इकट्ठे ही योग-सावना कर रहे हैं। पुरुप योगाचार्य तो कई तैयार होगए है, किन्तु देवी आज तक कोई तैयार नही हो पाई थी जो देवियो को साधना करवा सके। इसलिए महाराजजी ने डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवीजी को आजन्मब्रह्मचारिणी, विदुषी, सासारिक झण्झटो से निवृत्त, आयु तथा धनवृद्ध, अनेक गुणो से सम्पन्न, उच्चादर्श प्रिय तथा उदात्तभावना युक्त और योग प्रशिक्षण के लिए योग्य जानकर इस कार्य के लिए प्रतिज्ञा ली।

डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवीजी ने स्वर्गाश्रम, उत्तरकाशी तथा गगोत्री के योगनिकेतनो मे साधना करने का नियम वना लिया था। इसीलिए गगोत्री भी अभ्यासार्थ आई थी। महाराजजी सायकाल सव साधको को इकट्ठे ही सावना करवाते थे परन्तु डाक्टर रामप्यारीदेवीजी को दिन के १० वजे मे ११ वजे तक विशेप समय देते थे क्योकि इन्हे शीघ्र योगाचार्या वनाने का ये निश्चय कर चुके थे। यह देवी शीघ्र उन्नति करने लगी। ब्रह्मरध्र और हृदय के विज्ञान मे अच्छी प्रगति होने लगी। विशोका ज्योतिष्मती बुद्धि उत्पन्न होकर ऋतभरा के रूप मे परिणत होने लगी। नाना प्रकार के पदार्थो का साक्षात्कार करने लगी। अव पूज्य गुरुदेव ने विज्ञान के सूक्ष्म रहस्यो को समझाना प्रारभ किया। साधना करवाने के उपाय, दूसरो के मनो पर प्रभाव जमाने के उपाय, अपने अनुकूल दूसरो की वुद्धि को करने के उपाय, अन्त - करणो के गुणो मे परिवर्तन करने की विधि आदि समझाने लगे।

डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवीजी ने एक वार पूज्य गुरुदेवजी से प्रश्न किया कि मुझे किसी-किसी समय ध्यान काल मे या समाधि की अवस्था मे विशेप आनन्द की अनुभूति होती है। यह आनन्द ईश्वर का है या अतमा का अथवा चित्त का ही धर्मविशेष या गुणविशेप है ?

आनन्द धर्म किसका है ?

पूज्य महाराजजी ने शका-समाधान करते हुए उपदेश दिया —

स्थूल शरीर मे आनन्दाभाव—जव योगी वुद्धि की वृत्तियो को समाहित करके सप्रज्ञात समाधि द्वारा स्थूल शरीर मे प्रवेश करता है तो उसको इसके भीतर रस, रुधिर, मास, मेद, मज्जा, नस, नाडिया, अस्थि आदि ही अपनी दिव्य दृष्टि से दिखाई देते हैं। आनन्द का आभास अथवा अनुभूति इस अन्नमय कोप मे नही मिलती।

प्राणमय कोष मे भी अभाव—इसके आगे जव योगी प्राणमय कोप मे प्रवेश करता है तव इसको १० प्रकार के प्राण, इनके स्थान या कार्य अथवा रूप, रग तथा आकार दिखाई देते हैं, परन्तु इस कोप मे भी आनन्द नही प्राप्त होता है।

मनोमय कोष मे भी आनन्द नहीं—यहा से निराश होकर योगी आनन्द की खोज करता हुआ मनोमय कोष मे प्रवेश करता है, परन्तु इसमे भी स्थूल और सूक्ष्म भूत, ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियो का ही प्रत्यक्ष होकर रह जाता है, आनन्द के स्रोत का कही पता नही चलता। यहा पर भी उसकी जिज्ञासा की पूर्ति नही हुई।

विज्ञानमय कोष मे भी अभाव—अब योगी यहा से भी आगे बढता है और विज्ञानमय कोष मे प्रवेश करके भी केवल भूतो, इन्द्रियो, मन तथा बुद्धि के ही स्वरूपो का साक्षात्कार करता है, किन्तु आनन्द उसे यहा भी प्राप्त नही होता। इसकी प्राप्ति की उत्कण्ठा पूर्ववत् बनी रहती है।

आनन्दमय कोष मे आनन्द प्राप्ति—अब योगी सप्रज्ञात समाधि द्वारा और आगे बढता है और आनन्दमय कोष मे प्रविष्ट होता है। जब वह इसमे जाता है तो उसे आनन्द की झलक सी तो आती है परन्तु उसे यह निर्णय नही हो पाता कि इसका वास्तविक स्रोत है कहा। अत वह कुछ भ्रान्त सा हो जाता है। उसके मन मे ऊहापोह, तर्क-वितर्कादि होने लगते है। वह आनन्द के अन्वेषण के लिए प्रयत्न-शील रहता है। आनन्दमय कोष मे मिले-जुले कई पदार्थ है।

सूक्ष्म प्राण मे आनन्द नही—सर्वप्रथम योगी सूक्ष्म प्राण को ही अपनी समाधि का विषय बनाता है, क्योकि इसी के द्वारा जीवन का सचार होता है। जीवनी शक्ति यहा से ही निकल कर ऊपर के कोषो मे सचारित होती है। क्या इसी जीवनी शक्ति या सूक्ष्म प्राण को ही आनन्द का स्रोत समझ ले ? क्या जीवनी शक्ति औ आनन्द मे अन्तर नही ? अन्तर अवश्य मानना पडेगा क्योकि जीवन का स्रोत तो को और ही है, अत आनन्द का स्रोत भी कही और ही होना चाहिए।

अहकार मे भी नही—जब अहकार मे प्रवेश करके देखता है तो योगी को यहा भी आनन्द का स्रोत दृष्टिगोचर नही होता। जिसके द्वारा ममेदम् की भावना होती हो उसमे आनन्द रह ही कैसे सकता है ! अब इसके आगे चार पदार्थ रह जाते है जिनमे योगी को आनन्द के स्रोत का अन्वेषण करना है। आनन्द अनित्य है, शाश्वत नही। यदि यह नित्य होता तो इसकी उपलब्धि सदा बनी रहती। इसलिए आनन्द को उत्पन्न होने वाला मानना पडेगा। अब जो चार पदार्थ अवशेष है वे ये है —चित्त, आत्मा, प्रकृति, और ब्रह्म।

ब्रह्म आनन्द का स्रोत नही—सर्वप्रथम योगी ब्रह्म मे आनन्द की खोज करता है। यहा पर उसने देखा कि यहा किसी प्रकार का कोई परिणाम नही हो रहा जिससे आनन्दरूप धर्म या गुण उत्पन्न हो। समाधि द्वारा चित्त को ब्रह्म के साथ जोडा जाता है, तो क्या इस अवस्था मे आनन्द को ब्रह्म से आया हुआ मान ले ? जब ब्रह्म मे किसी भी प्रकार का विकार ही नही है तो उससे आनन्द का आना कैसे मान लिया जाए ? यदि उसमे आया हुआ माने तब ब्रह्म को विकारवान् मानना पडेगा। वह चित्त या प्रकृति के समान परिणामयुक्त या विकारयुक्त बन जाएगा। आनन्द का कभी उत्पन्न होना और कभी न होना इसके अनित्यत्व को सिद्ध करता है। यदि कोई शका उठावे कि ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, जब-जब चित्त उसके साथ सयुक्त होगा तब-तब ही आनन्द की उपलब्धि होगी, तब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह आनन्द चित्त का है या ब्रह्म का ? इन दोनो मे आनन्द का उपादान कारण कौन हुआ, चित्त या ब्रह्म ? ब्रह्म तो निर्विकार है इसलिए वह किसी का उपादान कारण बन नही सकता और यदि ब्रह्म को आनन्द रूप मान ले तब यह शका होती है कि वह आनन्द उससे भिन्न है या अभिन्न ? यदि भिन्न है तो वह उसका नही हुआ और यदि अभिन्न है तब वह अवस्थान्तर रूप से है या कार्य रूप से ? अवस्थान्तर रूप और

कार्यरूप दोनो ही परिणाम को सिद्ध करते है। यदि कहो, ब्रह्म चेतन रूप है और चेतन ही आनन्द रूप हो सकता है, तो चित्त जड है इसमे आनन्द नही हो सकता। यदि आप चेतन ब्रह्म को ही आनन्द रूप मानते है तो चित्त का सम्बन्ध तो सदा ही ब्रह्म से बना रहता है। सदा ही चित्त मे आनन्द की अनुभूति होनी चाहिए पर यह सदा होती नही। अत आनन्द को अनित्य ही मानना पडेगा। जहा और जिस वस्तु मे प्राप्ति की बात बनती है वहा उस प्राप्ति को भी अनित्य ही मानना पडेगा। क्योकि आनन्द प्राप्त होता है, अत उसको अनित्य और सावधि मानना पडेगा। इसलिए ब्रह्म से आनन्द की प्राप्ति सिद्ध नही होती। यदि ब्रह्म आनन्द रूप है तो आनन्द चित्त मे होता है या ब्रह्म मे? समाधिस्थ योगी समाधि से व्युत्थान होने पर कहता है कि आज मुझे बडा आनन्द लाभ हुआ। आनन्द का आना जाना ब्रह्म मे है या चित्त मे? ब्रह्म तो आनन्द रूप ही है। ब्रह्म यह नही कहता कि मुझे आनन्द आया या प्राप्त हुआ, यह कहने वाला तो चित्ताभिमानी आत्मा है न कि ब्रह्म। इस पर यह शका होती है कि ब्रह्म मे और आत्मा मे कोई अन्तर है या नही? इन दोनो मे अन्तर है और महान अन्तर है। एक अणु है और दूसरा महान है। आत्मा अणु तथा ब्रह्म महान है। अत ब्रह्म भी आनन्द का स्रोत सिद्ध नही होता। उसमे आनन्द निकल कर या बहकर नही जाता है। उसे आनन्द रूप स्रोत का उपादान कारण नही कह सकते है।

आनन्द जीवात्मा का भी धर्म नही—तो क्या जीवात्मा को आनन्द का स्रोत माने? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए योगी पुन सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा जीवात्मा मे आनन्द की खोज करने लगता है। अपने चित्त को आत्मा के साथ जोडता है। समाधि की इस अवस्था मे आनन्द का प्रादुर्भाव तो अवश्य होता है परन्तु यह निश्चय नही हो पाता कि इन दोनो मे से आनन्द किसमे है। यदि आत्मा का आनन्द मानते है तो इसको भी चित्त के समान विकारवान् मानना पडेगा। बहुत से विद्वान् आत्मा को सत् और चित् ही मानते है, आनन्द रूप नही मानते। उनसे पूछना चाहिए कि आप ब्रह्म को ही क्यो आनन्द रूप मानते है? इसका उत्तर वे यह देते है कि ब्रह्म चेतन है, नित्य है, सत् है, अत वह आनन्द रूप भी है। हम भी जीवात्मा को सत्, चित् और आनन्द मानते है। जब चेतन होने से और सत् होने से आपका ब्रह्म आनन्द रूप हो सकता है तो आत्मा भी चेतन होने से और सत् होने से आनन्द रूप हो सकता है। जिन हेतुओ से आप ब्रह्म को आनन्द रूप मानते है उन्ही हेतुओ से हम भी आत्मा को आनन्द रूप मानते है। यदि आप कहे कि तब ब्रह्म और आत्मा मे अन्तर ही क्या हुआ, दोनो एक समान और एक रूप बन गए, तब हमारा कथन है कि समानता दो पदार्थो मे होती है परन्तु एकरूपता नही होती। एकरूपता कार्य की कारण मे या कारण की कार्य मे हो सकती है। आत्मा और परमात्मा का कार्य-कारण-भाव सम्बन्ध भी नही है जिससे एकरूपता मानी जाए। चित्त की भी आत्मा के साथ एकरूपता नही बनती क्योकि दोनो विजातीय है। तब समान जाति वालो की एकरूपता मान ली जाए क्योकि आत्मा और परमात्मा दोनो चेतन है, अत समान जाति वाले होने से एकरूपता हो जाएगी। लेकिन क्या जीवात्मा ब्रह्म से उत्पन्न हुआ था जो उसकी ब्रह्म के साथ एकरूपता सिद्ध हो सके? यदि ऐसा मान भी लिया जाए

तो कार्य-कारणात्मक भाव सिद्ध हो जाएगा और दोनों विकारवान् बन जाएंगे। चेतनत्वेन निःसंदेह ब्रह्म और जीवात्मा की समानता है किन्तु व्यक्तिरूप से दोनों भिन्न हैं। जैसे दो पुरुष हैं, दोनों की जाति तो चेतनत्वेन एक है, किन्तु व्यक्ति तो दोनों भिन्न हैं। अतः ब्रह्म और जीव की जाति तो भले ही एक है परन्तु व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न हैं। जीवात्मा अणु और ब्रह्म महान है। यहां पर महानता और अणुता का भेद है, जाति का भेद नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि जाति एकत्व में रहेगी या अनेकत्व में? जाति को तो अनेकत्व में ही मानना पड़ेगा, जैसे मनुष्य जाति, पशु जाति आदि। तो क्या जीवात्मा और परमात्मा की पृथक्-पृथक् जाति मान लें? जीवात्मा अनेक हैं, अतः उनकी जाति सिद्ध हो जाएगी। परन्तु परमात्मा तो अनेक नहीं है, उसकी जाति कैसे सिद्ध होगी? अतः परमात्मा को भी चेतनत्वेन जीवात्मा की जाति में ही मानना पड़ेगा। शंका—ब्रह्म महान है और प्रकृति भी महान है, अतः उन दोनों को एक जाति वाला मानने में क्या आपत्ति है? इसका समाधान यह है—उनमें एक जड़ है और दूसरा चेतन है, अतः ये दोनों समान जाति वाले नहीं हो सकते। हमने तो जीव और ब्रह्म में अणु और महानता का भेद माना है। अणु और महानता कोई गुण नहीं है, उनके स्वरूप ही हैं, इसलिए अणुत्व और महानता में जाति भेद नहीं हो सकता। पुरुषत्व रूप से एक जाति होने पर भी एक पुरुष वामन होता है और एक खूब लम्बा और ऊंचे कद का होता है, किन्तु पुरुष वे दोनों कहलाएंगे। लघुता और महानता शरीर के धर्म हैं न कि आत्मा के। हम तो चेतनत्वेन जाति मानते हैं न कि शरीरों के छोटे बड़े धर्मों से। अतः जीवात्मा का भी आनन्द धर्म नहीं बनता। यदि उसका धर्म मानोगे तो उसे विकारवान् मानना पड़ेगा। इसमें अनित्य आनन्द की उत्पत्ति माननी होगी। जो दोष ब्रह्म में आनन्द मानने में आते थे वे आनन्द को आत्मा का धर्म मानने में भी उपस्थित हो जाएंगे। इसलिए कोई ऐसा पदार्थ होना चाहिए जिससे आनन्द की उत्पत्ति हो सके और वह विकारवान् हो सके।

प्रकृति में भी आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है—तब क्या आनन्द प्रकृति का ही गुणविशेष है? उस सत्ता को लेकर योगी सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा और आगे बढ़ता है। प्रकृति आत्मा और परमात्मा पर एक प्रकार का आवरण है। प्रकृति का मुख्य रूप से सम्बन्ध ब्रह्म के साथ है। यदि उस सम्बन्ध से आनन्द की उत्पत्ति मानें तो आदि सृष्टि में उस आनन्द का उपभोक्ता किसको माना जाए, क्योंकि उस समय तक जीवों के स्थूल शरीरों की उत्पत्ति ही नहीं हुई होती। यदि उस प्रकृति से उत्पन्न हुए आनन्द का भोक्ता ईश्वर को मानते हैं तब वह भी जीवात्मा के समान बद्ध हो जाएगा और उसमें तथा जीव में कोई विशेषता न रहेगी। जैसे जीवात्मा और चित्त के संयोग से आनन्द की उत्पत्ति होती है इसी प्रकार प्रकृति और ब्रह्म के संयोग से भी आनन्द की उत्पत्ति हो सकती है। परन्तु उस आनन्द का उपभोग करने वाला उस काल में कौन हो? ब्रह्म तो हो नहीं सकता और जीवात्मा ने अभी शरीर ही धारण नहीं किया है। इसलिए उस समय प्रकृति से आनन्द की उत्पत्ति निरर्थक ही हो जाएगी। मूल कारण रूप प्रकृति ही आनन्द का उपादान कारण हो सकती है। यदि इसमें यह गुण न हो तो उसके कार्यों में भी यह नहीं हो सकता क्योंकि जो गुण

कारण मे होते है वे कार्य मे अवश्य होते है। यह आनन्द सूक्ष्म रूप से कारण मे पडा रहता है। इसकी अभिव्यक्ति चित्त रूप कार्यों मे जाकर होती है।

आनन्द चित्त का धर्म है—चित्त मे जैसे और अनेक गुणो की उत्पत्ति होती है, यथा—सुख, राग, स्नेह, चिन्तन, स्मृति, शाति, आदि, इसी प्रकार इसमे आनन्द की उत्पत्ति भी होती है। जव चित्त का सम्वन्ध इन्द्रियो के विपयो के साथ होता है तव सुख की उत्पत्ति होती है। जव इसका सम्वन्ध आत्मा या ब्रह्म के साथ समाधि की अवस्था मे करते है तव इसमे आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। जव सस्कारो या वृत्ति का निरोध करते है तव भी इससे आनन्द की उत्पत्ति होती है। जैसे सुख-शान्ति की अवस्था चित्त की एक स्थिति है या अवस्था है, इसी प्रकार आनन्द भी चित्त की एक अवस्था विशेष या इसका यह धर्म अथवा गुण विशेप है। योगी जव सकल्प और विकल्प का अभाव करके शून्यता मे स्थित होता है तव अन्धकार और शून्यता उत्पन्न होती है। इसके पश्चात् एक दूसरी अवस्था आती है, वह है शून्यता और मन्द-मन्द आलोक या प्रकाश। इसके पश्चात् एक तीसरी अवस्था और आती है जो सत्व प्रधान होती है, वह है शून्यता और आनन्द की अभिव्यक्ति। ये सव चित्त की ही अवस्थाए हैं क्योकि इसमे ही अवस्थान्तर परिणाम होता है। यह आनन्दरूपावस्था इसकी सात्विक और अन्तिमावस्था है। इसकी सत्व प्रधान अवस्था मे ही आत्मा के सान्निध्य से आनन्द की अभिव्यक्ति और आत्म-दर्शन होता है, अत चित्त का ही यह धर्मविशेप मानना पडेगा। यह चित्त की सत्व प्रधान अवस्था होती है। यही इसकी आनन्द रूप अवस्था मानी जाती है। जव इसमे रज प्रधान होता है तव क्रियाशील अवस्था वनी रहती है। जव यह तम प्रधान होता है तव जडता रूप स्थिति या अवस्था होती है। शरीर के रहते हुए इसमे क्रिया का अभाव नही हो सकता। वैसे क्रिया धर्म रजोगुण का है परन्तु उस वक्त रजोगुण दवा हुआ सा मन्द क्रिया का हेतु वना रहता है। ज्ञान रूप या आनन्द रूप अवस्था सत्व की प्रधानता मे ही होती है। इस प्रकार की आनन्द रूप स्थिति को वहुत से योगी आत्मा का ही आनन्द समझ लेते हैं परन्तु वास्तव मे वह आनन्द चित्त मे ही होता है और यह आनन्द चित्त की ही एक अवस्था विशेष है। आत्मा निर्विकार, निरवयव, कूटस्थ, निष्क्रिय है, अत इसमे आनन्द की अभिव्यक्ति नही होती। यह आनन्द चित्त की ही अवस्था है। एकाग्रावस्था या निरोधावस्था मे इस आनन्द की अभिव्यक्ति या उत्पत्ति होती है। यह आनन्द चित्त का धर्म होने से किसी इन्द्रिय का विपय नही होता। न यह रसना का विषय बनता है, न रूप का ही और न स्पर्श और शव्द का ही। इसका कोई रग, रूप, आकार, प्रकार नही होता, इसलिए यह चित्त का ही एक परिणाम विशेप है। जव चित्त मे इस आनन्द की अभिव्यक्ति होती है तव ऐसा मालूम होता है मानो आनन्द का स्रोत बहकर तीनो शरीरो, पाचो कोपो मे प्रवाहित हो रहा है। सूक्ष्म प्राण इसको लेकर चल रहा है और इसके साथ जीवन का सचार कर रहा है। यह आनन्द जव ब्रह्मरध्र मे पहुचता है तव इन्द्रियो और विपयो के साथ मिलता है और तव इसकी सुख सज्ञा हो जाती है। जव यह केवल चित्त मे रहता है और उस समय आत्मा या परमात्मा के साथ चित्त का सपर्क बना रहता है उस समय इसकी मुख्य रूप से आनन्दरूपावस्था कहलाती है। किन्तु वहुत से आचार्यों ने इस आनन्द को

आत्मा या परमात्मा का ही गुण विशेष माना है अथवा आत्मा और परमात्मा मे आरोप किया है। किन्तु हम आत्मा और परमात्मा को निर्गुण, निर्विकार, निष्क्रिय, निरवयव, कूटस्थ, अविचल मानते हैं, प्रकृति और चित्त के संग रहते हुए भी उनका विकारवान् होना नही मानते। अत आनन्द चित्त की ही एक अवस्था विशेष है और चित्त का ही धर्म विशेष है।

पच कोषो का पचकोषात्मक स्थूल-शरीर

पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज ने एक दिन अपने शिष्य शकरलाल शर्मा को गगोत्री मे उपदेश देते हुए बताया कि हमने 'आत्म-विज्ञान' मे स्थूल शरीर के दो ही कोषो का निरूपण किया है, अन्नमय कोष और प्राणमय कोष का। अन्य आचार्यों ने भी इन्ही दो का वर्णन किया है। परन्तु आज हम आपके सामने उस पचकोषात्मक स्थूल-शरीर का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। आप अच्छी तरह से ध्यान देकर श्रवण करे।

वास्तव मे इस दृश्यमान स्थूल शरीर मे पाच कोष है—पार्थिव कोष, जलीय कोष, आग्नेय कोष, वायवीय कोष, और आकाशीय कोष। अन्नमय कोष के स्थान मे पार्थिव कोष और प्राणमय कोष के स्थान मे वायवीय कोष का भिन्न प्रकार से कथन करेंगे। पृथ्वी का कार्य होने से इस शरीर को पार्थिव कोष कहा जाएगा। इस शरीर मे मुख्य भाग पृथ्वी का ही है। अन्नरूप आहार इस शरीर के जीवन का आधार है। अन्न से ही यह पुष्ट और शक्तिशाली होकर बहुत काल तक जीवन धारण करता है। अन्न से ही इसमे वीर्य उत्पन्न होता है जो सन्तानोत्पत्ति का मुख्य हेतु होता है। इसीलिए इसे अन्नमय कोष कह दिया है परन्तु अन्न भी तो पृथ्वी से उत्पन्न हुआ है और पृथ्वी का ही विकार या कार्य है। अत यह शरीर पार्थिव ही सिद्ध होता है। इसमे अस्थि आदि जो पदार्थ है वे भी पृथ्वी के ही कार्य है। इसलिए इसे पार्थिव कोष कहना ही उचित होगा। इसके दस भेद है।

दश प्रकार का पार्थिव कोष

अस्थि दान्त, नख केश दाढी मूछ रोम, मासपेशिए, नाडी आते फुप्फुस, ज्ञान और गति वाहक सूत्र, त्वचा घ्राणेन्द्रिय, रस रुधिर के सूक्ष्म भाग, मेद मज्जा, रज वीर्य के सूक्ष्म भाग, मलादि। इन दश भागो से युक्त पार्थिव कोष कहलाता है। इन पदार्थों की स्थूल शरीर मे प्रधानता है।

१ **अस्थि और दान्त**—मानव शरीर मे कठोरतम भाग अस्थियो का है। इनकी सख्या २०६ है। अस्थियो से मिल कर यह शरीर बना है। यदि इनको मासादि से पृथक् कर दिया जाए तब ककाल या अस्थिपजर कहलाता है। मुह मे कुल ३२ दान्त है। किसी-किसी व्यक्ति के कम भी होते हैं। महात्मा बुद्ध के मुह मे केवल २८ दान्त ही थे। सब इन्द्रियो का सम्बन्ध मृत्यु पर्यन्त बना रहता है परन्तु दान्त पीछे उत्पन्न होते है और प्रथम निकल जाते है।

२. **नख, केश, डाढी, मूछ, रोम**—मनुष्य देह मे २० नख है। इनमे अगुलियो की रक्षा होती है और चीरने, फाडने, कुरेदने आदि के काम आते है। केश, डाढी, मूछ सिर और मुह की रक्षा करते है और शोभा बढाते है। गर्मी और शीत से

बचाते हैं। सिर की प्रहार से रक्षा करते है। रोम कूप से शरीर की शुद्धि होती है जिससे अनेक रोगो का निवारण होता है।

३. मांसपेशियां—शरीर का सब अस्थिपजर मासपेशियो से ढका हुआ है। सारे शरीर मे गतिया या क्रियाए—हाथ पैर गर्दनादि का हिलना चलनादि कार्य इनके द्वारा ही होते हैं। भोजन का परिपाक, आतो मे आहार का गमन, मल-मूत्र वहन, हृदय की धडकनादि सभी इन्ही के द्वारा होता है। मास के छोटे-छोटे टुकडो को पेशिया कहते हैं। ब्रह्मरध्र से नाडियो द्वारा मासपेशियो को गति प्राप्त होती है।

४ नाडी, आतें आदि—नाडियो का सारे शरीर मे जाल-सा फैला हुआ है। इनका सब इन्द्रियो के साथ सम्बन्ध है। सहस्रो की सख्या मे नाडिया शरीर मे विभिन्न कार्य करती है। रक्त परिभ्रमण तथा रक्त को एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे ले जाना इन्ही का कार्य है। सुषुम्ना, इडा, पिंगलादि ज्ञान का सचार करती है। भिन्न-भिन्न अगो की अलग-अलग नाडिया है और भिन्न-भिन्न इन्द्रियो की नाडिया भी पृथक्-पृथक् हैं। इन सबका 'आत्म-विज्ञान' मे विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। शरीर मे इन नाडियो के रग, रूप, आकार प्रकार तथा कार्य भिन्न-भिन्न होते है। ये सारे शरीर मे व्याप्त हो रही हैं। नाडियो के भीतर पोल होता है किन्तु ज्ञान और गति वाहक सूत्र ठोस होते है। उनमे पोल नही होता। खाद्य तथा पेय पदार्थ और श्वास-प्रश्वास का कार्य भी ये नाडिया ही करती है। वास्तव मे पक्वाशय तथा आमाशय भी एक प्रकार की मोटी नाडिया ही हैं। ये अन्नादि के पाकादि का कार्य करती है। इन्हे ग्रथि भी कहते है। पतली तथा बारीक नाडिया रक्त सचार और ज्ञान क्रिया का सचार करती है। इनमे अस्थिया नही होती। ये सारे शरीर को जोड कर बाध कर रखती है। शरीर की सारी अस्थिया इनसे बधी हुई है। मास-पेशिया अस्थियो को बाध कर रखती है, किन्तु नाडिया अस्थियो और मासपेशियो को भी बाध कर रखती हैं। फुप्फुस भी इनके अन्तर्गत आ जाते है क्योकि ये भी कोष्ठ के रूप मे होते है और ये कोष्ठ लाखो की सख्या मे है।

५. ज्ञान और गति वाहक तन्तु—ज्ञान और क्रिया गतिसूत्रो या ज्ञानतन्तुओ का सम्बन्ध मस्तिष्क और सुषुम्ना मे होता है। ये सूत्र विद्युत तार के समान समस्त शरीर मे ज्ञान और क्रिया का सचार करते है। इन्ही के द्वारा सारे शरीर मे जीवन का सचार होता है। ये अन्दर से टेलीफोन के तार के समान ठोस होते है। ब्रह्मरध्र से सवेदन सुषुम्ना द्वारा सारे शरीर मे पहुचते है और सारे शरीर के सवेदन सुषुम्ना द्वारा ब्रह्मरध्र मे पहुचते हैं। ज्ञानप्रधान ब्रह्मरध्र और भावप्रधान हृदय प्रदेश इन दोनो के सवेदन परस्पर आदान-प्रदान करते रहते है। सारा शरीर इन सूत्रो से व्याप्त रहता है। इनके द्वारा सारे शरीर मे ज्ञान और क्रिया का वहन हो रहा है। ये ज्ञान और गति सूत्र नाडियो, ग्रथियो तथा मासपेशियो के सहारे सारे शरीर मे पहुचे हुए है।

ये ज्ञान और गति वाहक तन्तु घ्राणेन्द्रिय के अन्दर बाल से भी सूक्ष्म निकले हुए गन्ध का ज्ञान करवाने मे समर्थ होते हैं, क्योकि गन्ध पृथ्वी का गुण है और इसका वास नासिका मे है। नासिका ही गन्ध को ग्रहण करती है किन्तु सूक्ष्म गन्ध का वहन घ्राणेन्द्रिय मे लगे हुए ये सूत्र ही करते हैं। नासिका के नथनो के अन्दर ब्रह्मरध्र की या मस्तिष्क की ओर को लगभग डेढ इच वर्गफल घ्राणेन्द्रिय के साथ बना हुआ होता

है। साम्वेदनिक सूत्र स्थूलेन्द्रिय और सूक्ष्मेन्द्रिय के साथ सम्बन्ध बनाए रखकर गन्ध ज्ञान का आदान-प्रदान करते-कराते रहते है। इसी प्रकार ये सूत्र सर्वेन्द्रियो के ज्ञान और कर्म व्यापार या सवेदनात्मक ज्ञान और क्रियात्मक गति का कार्य इतस्तत आदान-प्रदान करते रहते है। ज्ञान वाहक सूत्रो का सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियो से, गति वाहक सूत्रो का कर्मेन्द्रियो से होता है। ये दो रग के होते है, श्वेत और धूसर। श्वेत तन्तु कुछ मोटे होते है। क्रिया और गति इनका कार्य है। धूसर रग के सूत्र इनसे कुछ पतले होते है। ये ज्ञान-वाहक है। ये बहुत स्वच्छ होते हैं, इसीलिए ये सवेदना, चेतना या ज्ञान के वाहक होते है। ये ज्ञानात्मक बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियो के कार्य करते है। श्वेत मन और कर्मेन्द्रियो के कार्य करते है।

६. **त्वचा और घ्राण**—त्वचा, अस्थि, मास, नाडी आदि सपूर्ण शरीर का आच्छादन करने और रक्षा के लिए होती है। यह सात प्रकार की है। यह स्पर्शेन्द्रिय का भी काम देती है। नख, रोम, स्वेद ग्रन्थिया त्वचा मे ही होती है। इनके द्वारा शरीर के अनेक प्रकार के विष स्वेद मे मिलकर निकलते रहते है। त्वचा ने सपूर्ण शरीर को व्याप्त किया हुआ है। शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानो मे पतली, मोटी तथा कोमलादि कई प्रकार की होती है। इसके नीचे वसा या चर्वी जमी रहती है जो सदा उसे चिकनी बनाए रखती है। त्वचा ऊपर से पीत, गौर, कृष्ण तथा गुलाबी आदि कई वर्ण की होती है। इससे मानव सौन्दर्य मे वृद्धि होती है। यदि त्वचा किसी प्रकार विकृत हो जाए तो यह शरीर को विकृत बना देती है। कण्डू, श्वेत कुष्ठ, गलित कुष्ठ, दाद, चम्बल आदि अनेक प्रकार के फोडे-फिन्सी आदि रोग इसमे होकर विकार कर देते है। इनसे प्राय कुरूपता हो जाया करती है। त्वचा सारे शरीर की रक्षा भी करती है।

नासिका-घ्राणेन्द्रिय—पृथ्वी गन्धवती है, यह ज्ञान घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ही होता है। घ्राण पृथ्वी का कार्य या अश है। पृथ्वी मुख्य रूप से घ्राण के अन्दर स्थित है। वैसे तो सपूर्ण शरीर मे जो कुछ हम यहा वर्णन कर रहे हैं सब पृथ्वी के ही कार्यरूप है। इसलिए इस प्रकार के भेदो मे घ्राणेन्द्रिय भी एक है। इसी मे गध की उपलब्धि होती है।

७ **रस और रुधिर मे सूक्ष्म पार्थिव भाग**—इन दोनो मे कुछ-कुछ पार्थिव अश रहता ही है। यदि रक्त को सुखाया जाए तो इसमे से जल का भाग सूखकर शेष श्वेत, पीत और लाल द्रव्य पृथ्वी का ही अश है।

८ **मेद, मज्जा**—मेद को वसा कहते है। यह त्वचा के नीचे पीले से रग की चिकनाहट होती है। इसे चर्वी भी कहते है। यह स्त्रियो के शरीर मे अधिक होती है। हथेली, तलवे और वृक मे तो इसकी गद्दिया सी जमी रहती हैं। यह गर्मी और शीत मे शरीर की रक्षा करती है। जो व्यायाम तो करते नही किन्तु खाते बहुत है, उनके पेट, ठोडी के नीचे, कपोलों और नितम्बो में चर्वी भरने लगती है। हृदय मे वसा या चर्वी अधिक हो जाने से रक्त का प्रभाव या गति बन्द हो जाती है और यह मृत्यु का हेतु बन जाती है।

मज्जा—यह अस्थियो के पोले भागो मे पीतवर्ण तरल सी होती है और कसेरुकाओ, घुटने के ऊपर की अस्थियो, कलाई की अस्थियो, वक्षस्थल की अस्थियो

और पसलियो के सिरो पर गुलाबी से रग की होती है। इससे शरीर मे लचक और शक्ति बनी रहती है। जब यह उचित मात्रा से बढ जाती है तब शरीर मे दर्द उत्पन्न कर देती है।

९. वीर्य और रज—इन दोनो मे भी पार्थिव अश होता है। भुक्त-पीत का पाक होकर ४० दिन मे वीर्य बनता है तथा रज का भाग ३० दिन मे बन जाता है। यदि इन दोनो को सुखाया जाए तो जल का भाग सूखकर जो शेप रहता है वह पार्थिव अश होता है। रज और वीर्य मे पार्थिव अश है और यह शरीर के निर्माण मे सहकारी है।

१०. मल—यह भी पृथ्वी का विकार है। इसके बिना भी शरीर नही रह सकता। विषूचिका रोग मे मल के निकल जाने से मृत्यु हो जाती है। शरीर के निर्माण मे यह भी अत्यन्त आवश्यक है। शरीर मे पृथ्वी का यह अन्तिम परिणाम या विकार है।

इस प्रकार से पार्थिव कोष के १० भेद हुए। इसे अन्नमय कोप भी कहते हैं। पृथ्वी शरीर के निर्माण मे मुख्य रूप से उपादान कारण है। इन दस रूपो मे परिणत होकर पार्थिव कोष बना है। यह मनुष्य के भोग और अपवर्ग का हेतु है।

पृथ्वी के ११ गुण—इस कोष मे परिणत हुई पृथ्वी के ११ गुणो का भी अध्यात्म रूप मे समावेश हो जाता है।

१. आकार—जब माता-पिता के सयोग से गर्भाशय मे रज और वीर्य का आधान होता है तब वह बहुत थोडा सा मिलकर सघात को प्राप्त होकर कलल रूप मे वृद्धि को प्राप्त होता है और आकार भाव को प्राप्त कर लेता है।

२. स्थिरता—इसके पश्चात् इसमे स्थिरता रूप धर्म आता है। अपने स्वरूप मे स्थिर रहते हुए वृद्धि को प्राप्त होता है।

३. गुरुत्व—तदनन्तर इसमे गुरुत्व आने लगता है।

४. काठिन्य—तदुपरान्त अस्थि आदिक का निर्माण प्रारभ होता है और शरीर मे काठिन्य आने लगता है।

५ आच्छादन—इसके पश्चात् इसमे आच्छादन रूप धर्म पैदा हो जाता है। इसमे अग-प्रत्यगादि पैदा होने लगते हैं। सूक्ष्म तथा कारण शरीर को अपने भीतर आच्छादन करने की सामर्थ्य उत्पन्न होने लगती है।

६. विदारण—तदनन्तर शक्ति, बल और पराक्रम का प्रवेश होता है और हाथ-पैरो मे तोडने फोडने की सामर्थ्य आती है। इस अवस्था को विदारण रूप धर्म कहा जाता है। इस समय शरीर का परिणाम रूप धर्म चल रहा है, अत यह भी एक प्रकार का विदारण ही है।

७. रूक्षता—शरीर मे खुश्की हो जाना स्वाभाविक ही है।

८. कृशता—शरीर का सूखकर पतला होना। रूक्षता तथा कृशता ये दोनो धर्म साथ मे लेकर उत्पन्न होता है।

९. **आधार**—यह स्थूल शरीर मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों का आधार है। ये सब इसमें ही ओत-प्रोत होकर रहते हैं।

१०. **क्षमा**—इसके अनन्तर इसमें क्षमा रूप धर्म की उत्पत्ति होती है। शीत, उष्ण, भूख, प्यासादि के सहन करने की योग्यता आ जाती है।

११. **सर्वभोग्यता**—यह अन्तिम गुण या योग्यता है जो इसमें आती है। ज्ञान या अज्ञान पूर्वक यह शरीर सब पदार्थों के उपभोग करने के योग्य अथवा सब इन्द्रियों के विषयों का उपभोग करने योग्य अथवा दूसरों से भोगे जाने के योग्य हो जाता है। भोग और अपवर्ग को प्रदान करता है।

उपरोक्त ११ धर्म शरीर में पृथ्वी से आते हैं, क्योंकि कारण के धर्मों का कार्य में आना अवश्यम्भावी है। इस स्थूल शरीर में अन्य भूतों की अपेक्षा पृथ्वी ही प्रधान है। शेष भूत सहकारी कारण हैं। इस प्रकार ११ धर्म तथा दस भेद युक्त पार्थिव कोष बनता है। इसकी विषद व्याख्या दूसरे ढंग से अन्नमय कोष के रूप में 'आत्म-विज्ञान' में की गई है।

पार्थिव कोष अन्य कोषों अर्थात् जलीय कोष, आग्नेय कोष, वायवीय कोष, आकाशीय कोष का आधार है। यह कोष सर्वाधिक स्थूल है, अतः शेष चारों इसमें ही ओतप्रोत हैं।

दश प्रकार का जलीय कोष

शरीर की रचना में जब प्राण और अन्न को आवश्यक मान कर प्राणमय तथा अन्नमय कोष माने गए हैं तो जलीय कोष भी पृथक् क्यों न माना जाए? जल भी तो शरीर के निर्माण में वैसा ही सहायक है जैसे प्राण और अन्न। जल पार्थिव विकारों या तत्त्वों को मिलाता है, संयुक्त करता है। इसके द्वारा पार्थिव तत्त्व संघात को प्राप्त होकर शरीर का रूप बनाते हैं। जल ही बिखरे हुए पार्थिव सूक्ष्म अंशों को संघटित करके धारण करता है। इनमें व्याप्त होकर पिण्डाकार बनता है। यह जल अपने दश भेदों और गुणों से इस शरीर में जलीय कोष के रूप में विद्यमान है। इसके दश भेदों का वर्णन नीचे किया जाता है:—

१. **अमृत**—यह ब्रह्मरंध्र में रहकर मन, इन्द्रिय तथा बुद्धि का तर्पण करता है। खेचरी मुद्रा की अवस्था में एक विलक्षण प्रकार का मधुर तथा आनन्ददायक रस झरता या टपकता हुआ अनुभव हुआ करता हैं। इस रस की अनुभूति योगी को तब हुआ करती है जब वह समाधि अवस्था में खेचरी मुद्रा करता है।

२. **प्रभा**—जल इन्द्रियों, शरीर तथा त्वचा में चमक पैदा करता है। शरीर, मुख और इन्द्रियों पर कान्ति बनाए रखता है। नेत्र और कपोलों पर विशेष रूप से इसकी प्रभा होती है।

३. **रसना**—इसमें से लाला-रस निस्सरण होता रहता है। यह रस ग्रास के साथ मिलकर पाचन-कार्य करता है और जिह्वा, मुख तथा कंठ को तरल रखता है। इस रस को श्वेतसार रस भी कहते हैं। यह जिह्वा की ग्रंथियों से निकल कर ग्रास को तरल बनाता है। यद्यपि जिह्वा पार्थिव तत्त्व से बनी है परन्तु रसनेन्द्रिय होने से इसकी उत्पत्ति जल से ही होती है क्योंकि यही सब रसों का ज्ञान करवाती है।

४. **मधुर**—यह रस यकृत् मे निवास करता है। इस मधुर रस मे अन्य कई क्षार मिले रहते है। यह पाचन-कार्य के लिए बडा उपयुक्त होता है। यह पक्वाशय तथा आमाशय मे पहुच कर पाचन करता है।

५. **क्षार**—आमाशय और पक्वाशय मे रह कर पाचन-कार्य करता है। अन्न को पीसने या गलाने मे सहयोग देकर उसे द्रवीभूत करता है। इसमे अनेक लवण, अम्ल आदि भी मिश्रित रहते है। पक्वाशय मे यह भुक्त-पीत को पतला बना कर रस निकालने मे सहायक होता है। यह कुछ भूरे या पीत वर्ण का होता है। इसीसे रक्त बनता है।

६. **कफ**—यह भी जल का ही परिणाम विशेष है। यू तो यह सपूर्ण शरीर मे ही रहता है परन्तु मुख्य रूप मे इसका वास वक्षस्थल मे है। जब पाचक रस शरीर मे कम होता है अथवा जब मदाग्नि हो जाती है अथवा शीत लग जाता है तब इसकी वृद्धि छाती मे विशेष रूप से हो जाती है। आयुर्वेद मे वात, कफ और पित्त के आधार पर ही रोग का निदान किया जाता है। यदि कफ अधिक बढ जाए तो इससे २० प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है। यह शरीर के निर्माण मे सहायक है।

७ **रक्त**—यह भी जल का ही परिणाम विशेष है। द्रव पदार्थ होने से जल का भाग है। रग इसमे अग्नि के पाक से आया है। शरीर की नाडियो मे बह कर चलता है, इससे भी सिद्ध होता है कि यह जल का ही परिणाम विशेष है। इसके निर्माण मे जिगर, मेदा, तिल्ली, हृदय तथा आन्ते सहायक होती हैं। यह सारे शरीर के जीवन और पोषण का आधार है। हृदय को तो इसीसे पोषण प्राप्त होता है। हृदय से नलिकाओ मे बहकर सारे शरीर मे जीवन का सचार करता है। हृदय रक्त को शुद्ध करता है।

८. **स्नेह**—यह भी जल का ही परिणाम होकर रूपान्तर से स्नेह के रूप मे परिणत हो जाता है। इससे शरीर मे स्निग्ध, मृदुता, लावण्य और चमक पैदा होती है। इसी के कारण से शरीर मे चमक, चिकनापन, लचक आती है। मेद, मज्जा, वीर्य मे इसकी चिकनाहट है। वास्तव मे मेद, मज्जा और वीर्य का यही अपने इस गुण के कारण निर्माण करता है अथवा निर्माण मे सहायक होता है। इसकी स्निग्धता वात तथा पित्त को शान्त बनाए रखती है। यही शरीर मे बल, शक्ति, पराक्रम, उत्साह, कर्मण्यतादि बनाए रखता है।

९. **स्वेद**—यह भी जल का ही कार्य रूप से विकार है। यह शरीर के अनेक दोषो को रोमकूपो से बाहिर निकालता है। शरीर की शुद्धि करता है। अधिक ताप, परिश्रम अथवा भय से यह रोमकूपो से बह निकलता है। त्वचा के सूक्ष्म छिद्रो से भी निकलता रहता है। मस्तिष्क, ग्रीवा, छाती, बगलो और घुटनो के नीचे से अधिक निकला करता है।

१०. **मूत्र**—यह भी जल का ही विकृत रूप या परिणाम है। इसमे सब प्रकार के क्षार और रस मिले होते है। शरीर के अनेक रोगो तथा दोषो को बाहर निकालता है। इसके निर्माण और निवास का स्थान गुर्दे हैं। यह जल का अन्तिम विकृत परिणाम है।

जलीय कोष के १० गुण—इस जलीय कोप में जल के परिणत होते हुए १० गुण या धर्म भी आगए हैं। इसके गुण निम्न हैं :—

१. **स्नेह**—यह वसा, मज्जा और वीर्य में विशेप रूप से है।

२. **सूक्ष्म**—यह शरीर और भूमि में शीघ्र प्रवेश कर जाता है।

३. **शुक्ल**—जल श्वेत ही देखने में आता है। स्वेद और मूत्र के रूप में भी श्वेत ही होता है।

४. **मृदु**—शरीर अन्दर और वाहर से मृदु है, कोमल है। वच्चों और स्त्रियों के शरीर प्रायः कोमल होते हैं। यह कोमलता मृदु गुण के कारण से ही आई है।

५. **गुरुत्व**—शरीर में भारीपन जल और पृथ्वी से ही आया है।

६. **शीतत्व**—शरीर में अग्नि के संयोग से ही उष्णता है। मृत्यु के समय मनुष्य की उष्णता निकल जाती है। उसमें जल का भाग रहता है, इसीलिए वह ठण्डा हो जाता है। जल में शीतता रूप धर्म स्वाभाविक है।

७. **रक्षा**—शरीर की पुष्टि करता है। इसके विना जीवन नहीं रह सकता। तृपा को शान्त करता है।

८. **प्रभा**—शरीर में सर्वत्र इसी की चमक और कान्ति है। स्नानादि करने से इसमें कान्ति आती है।

९. **पवित्रता**—शरीर में इससे ही पवित्रता वनी रहती है।

१०. **सन्धान**—जव तक पार्थिव अंशों के साथ जल का मेल न होगा तव तक ये पिण्डाकार नहीं वन सकते, अतः शरीर में सर्वत्र इसका पार्थिव पदार्थों से मेल ह। इसी कारण से जल शरीर-रचना में सहकारी उपादान कारण वना। यह दश भेद तथा १० गुण युक्त जलीय कोष, पार्थिव कोष में स्थित है। अन्नमय तथा प्राणमय कोपों के समान यह भी अपना कार्य कर रहा है।

दश प्रकार का आग्नेय कोष

हमारे स्थूल शरीर में अन्य कोपों के समान एक आग्नेय कोप भी है। पूर्वाचार्यो ने प्राणमय कोप के समान इस आग्नेय कोप पर ध्यान नहीं दिया। यदि दिया होता तो प्राणमय कोष के समान इसका भी आध्यात्मिक ग्रंथों में वर्णन होता। पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज ने अपने निजी अनुभव के आधार पर पंच भूत निर्मित इस शरीर में कोपों का विशेष रूप से अनुसंधान किया है। इसके दश भेद नीचे दिए जाते हैं :

१. **ओजस**—यह तेज ब्रह्मरंध्र में विद्यमान है। यहां पर यह वुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों को तर्पण करता है। इनमें वल, शक्ति और पराक्रम वनाए रखता है। मानव को वुद्धिमान और ओजस्वी वनने में सहायक होता है। ब्राह्मण प्रायः ओजस्वी होते हैं, अतः उनमें वुद्धिवल अधिक होता है। इसी गुण के द्वारा वेदशास्त्र, उपनिपद्, दर्शनादि के प्रकाण्ड पण्डित होते हैं। यह ओज मनुष्य के तेजस्वी वनने में सहायक होता है। वुद्धि इससे पुष्टि प्राप्त करती है, सूक्ष्मता लाभ करती है तथा ज्योतिष्मती

वनती है। बुद्धि और इन्द्रियो मे दूरदर्शिता उत्पन्न होती है। इसी कारण ब्राह्मणो को मुख या मस्तिष्क के समान दर्जा दिया गया है। शारीरिक और वौद्धिक शक्ति इस गुण के कारण प्राप्त होती है।

२ **भास्वर**—यह तेज या अग्नि ब्रह्मरध्र स्थित वुद्धि, मन, पाच ज्ञान तथा पाच कर्म इन्द्रियो को दीप्तिमान वनाता है। एक प्रकार की विलक्षण सी चमक पैदा करता है। मुख, मस्तिष्क, कपोलो पर इसीका तेज और चमक होती है। शरीर की त्वचा मे भी इसकी चमक होती है। इसका मुख्य स्थान ब्रह्मरध्र मे ही है।

३. **चाक्षुष**—स्थूल आख के गोलक मे जो देखने की शक्ति है वह अग्नि का कार्य है। गोलक पार्थिव है। इसमे देखने की शक्ति अर्थात् रूपवान् पदार्थो को दिखाने की शक्ति अग्नि के तेज से प्राप्त हुई है, अत नेत्रेन्द्रिय की उत्पत्ति अग्नि से ही जाननी चाहिए। अग्नि इसमे मुख्य रूप से विद्यमान है। अग्नि ही नेत्रो मे स्थित होकर रूपवान पदार्थों को दिखाने का कार्य करती है। यह स्थूल नेत्र मे कार्य रूप मे स्थित है और कारण रूप से रूपतन्मात्रा के रूप मे सूक्ष्म या दिव्य नेत्र मे स्थित है। एक वार स्वर्गाश्रमस्थ योगनिकेतन मे अमेरिका के दो डाक्टर आए। ये अमेरिका से एक मशीन लाए थे और भारत के योगियो की समाधि-अवस्था मे उनके मस्तिष्क की गतियो को देखने के लिए उस मशीन से काम लेते थे। श्री महाराजजी ने उनसे कहा कि "हमारे एक शिष्य इस समय हमारे पास अभ्यासार्थ आए हुए है। आप इस मशीन को इनके लगाकर देखें।" उन्होने इन्कार कर दिया क्योकि उस समय वे मशीन अपने साथ नही लाए थे। इसके वाद न वे दुवारा आए और न मशीन लगवाई।

हम ब्रह्मरध्र के तेजो का वर्णन कर रहे थे। चाक्षुप तेज नेत्र को रूप दिखाने का काम जीवनपर्यन्त नेत्र मे करता रहेगा। इस तेज का सम्वन्ध सूक्ष्म नेत्र से लेकर स्थूल नेत्र तक ब्रह्मरध्र मे रहता है। यह रूप-वाहक ज्ञान-तन्तुओ मे भी गमन करता है। जिस प्रकार वाह्य विद्युत तार मे गमन करती है इसी प्रकार यह चाक्षुप तेज ज्ञान-वाहक तन्तुओ मे गमनागमन करता है। यद्यपि ये स्थूल नेत्र पार्थिव है परन्तु इनमे अग्नि रूप के रूप मे निवास करता है। इसी लिए इसे चाक्षुप कहा है।

४. **जठर**—यह तेज या अग्नि यकृत मे निवास करता है। यह यकृत मे माधुर्ययुक्त रस के पाक करने मे सहायक वना रहता है। यह तेज भुक्त-पीत से बनी शर्करा को आमाशय और पक्वाशय मे भेजकर पाचन-कार्य के लिए उपयुक्त होता है। जब यह विकृत हो जाता है तव यह यकृत मे तथा अन्यत्र अनेक रोग उत्पन्न कर देता है। यकृत मे पित्त युक्त शर्करा रस वनता है। यह पीतिमा लिए हुए कुछ हरित से रग का द्रव होता है। इसमे लवण भी मिश्रित रहते हैं। यकृत के दाए-वाए भागो मे पित्त वाहक नालिकाए यकृत मे मिल कर पित्त प्रणाली वनाती है। इनके द्वारा पित्त आमाशय और पक्वाशय की क्रिया को प्रवल कर देता है और स्निग्ध पदार्थों को पचाने मे सहायक होता है। आतो मे पहुचे हुए अम्लयुक्त आहार को क्षारयुक्त वनाता है। यदि किन्ही कारणो से पित्त की कमी या अभाव हो जाएगा तो पक्वाशय और आतो के अन्न-जलादि मे दुर्गंध आने लगेगी और मल मे भी दुर्गंध आने लगती है।

५. **पाचक**—पाचक तेज या अग्नि आमाशय में रहकर भुक्त-पीत को पकाती है। अन्न आमाशय में लगभग ४-५ घण्टे तक रहकर पिसता रहता है। आमाशय की अग्नि आहार को पतला बनाने में सहायक होती है। आहार इसमें रस निकालने के योग्य पतला बन जाता है। यह पाचक अग्नि अन्न को पीसकर रस निकालने में सहायक होती है। यह रस रुधिर बनने में काम आता है।

६. **रंजक**—यह अग्नि या तेज रस से रुधिर बनाने में, रस को पकाकर रक्त-वर्ण करने में सहायक होती है। भुक्त-पीत लेह्य-चोष्यादि से जो रस बनता है इसमें कई प्रकार के लवण, शर्करा, वसा तथा जल मिश्रित रहते हैं। इन सबका परिणत हुआ सा ही रुधिर होता है। रंजक रस के परिवर्तन की क्रिया को करती है। यह क्रिया पक्वाशय और आंतों में होती है। इस रक्त की शुद्धि हृदय में जाकर होती है, अतः रंजक का निवास हृदय तक है।

७. **तैजस**—यह अग्नि या तेज मज्जा, मेद और वीर्य के पाक या निर्माण में सहायक होती है। ये तीनों शरीर की पुष्टि में मुख्य हेतु होते हैं। जिस शरीर में ये तीनों ठीक-ठीक मात्रा में सुरक्षित रहते हैं उसमें आभा, कान्ति, लावण्य, सौन्दर्य प्रचुर मात्रा में होते हैं।

८. **विभाजक**—यह आन्तों में पहुंचे हुए अवशेष को मल और मूत्र के रूप में विभक्त करने में और इनके ठीक निर्माण और पाक में सहायक होती है। गुर्दों तथा छोटी और बड़ी आन्तों में यही काम करती है।

९. **पोषक**—यह अग्नि या तेज शिश्न, योनि और गर्भाशय में कामोत्पत्ति, वीर्य और रज के निर्माण में सहायक होती है। यह गर्भ का पोषण करती है। वीर्य, रज और गर्भ के पाक में भी यह सहायता करती है।

१०. **विसर्जक**—यह अग्नि या तेज रज, वीर्य, मूत्र और मल के त्याग में सहायक होती है। मूलाधार से पाद तल तक इसका निवास है।

यह आग्नेय कोष प्राणमय कोष के समान ही शरीर की रक्षा करता है, इसका पोषक है और जीवन का आधार है तथा शरीर के निर्माण में सहकारी उपादान कारण है।

आग्नेय कोष के ८ गुण—दस प्रकार के भेद से युक्त यह आग्नेय कोष ८ प्रकार के गुणों से युक्त भी सिद्ध होता है। वे निम्न हैं :—

१. **उर्ध्व गमन**—इस गुण के कारण शरीर में उछलकूद की शक्ति रहती है। जब पित्त प्रधान होता है तो सिर दर्द, वमन, आंखों में पीलापन, मुख में कड़वाहट, मस्तिष्क का तपना आदि होने लगता है।

२. **पावक**—शरीर को पवित्र रखता है तथा अनेक प्रकार के दोषों को दूर करके शुद्ध बना देता है।

३. **दग्ध**—भुक्त-पीतादि को तथा विविध दोषों को दग्ध करता है।

४. **पाचक**—आमाशय, पक्वाशय, आंतों के अन्न-जलादि का पाक करता है।

५. **लघु**—शरीर को हल्का रखता है। स्थूल नही होने देता। स्फूर्ति वनाए रखता है।

६. **भास्वर**—शरीर तथा इन्द्रियो मे आभा लाता है।

७. **प्रध्वस**—कफ और वात की वृद्धि का नाश करता है और शरीर के दोषो को भस्मसात् करता है। तोड-फोड की शक्ति इसी गुण से आती है।

८. **ओज**—शारीरिक वल, इन्द्रिय वल तथा वुद्धि वल उत्पन्न करता है। सम्पूर्ण शरीर मे इससे ही वल वना रहता है।

इस प्रकार आग्नेय कोष के दश प्रकार के भेद है और इसके आठ गुण है। यह आग्नेय कोप पार्थिव और जलीय कोपो को व्याप्त करके स्थित है।

वायवीय कोष

इस कोप के दश भेद है। इस कोप का वर्णन 'आत्म-विज्ञान' मे प्राणमय कोष के रूप मे किया जा चुका है। जव सपूर्ण वायु शरीर मे प्राण के रूप मे सहकारी उपादान कारण वना तव इसका आवास शरीर के इन दश स्थानो मे हुआ। इन्ही से यह वायवीय कोप वनता है।

१. **त्वचास्थ प्राण**—यद्यपि त्वचा की रचना मे पृथिवी तत्व ही प्रधान है परन्तु इसमे भीतर वाहर सर्वत्र जो स्पर्श की शक्ति है वह वायु महाभूत परिणाम को प्राप्त होकर अपने मुख्य स्पर्श रूप गुण के द्वारा इस त्वचा मे वर्तमान हुआ है। व्यान प्राण जो कि वायु महाभूत का ही कार्य या परिणाम विशेष है वह त्वचा मे सर्वत्र स्पर्श का सचार करता है। ब्रह्मरध्र मे जो सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय है वहा मे चलते हुए ज्ञान वाहक तन्तु इस त्वचा मे सर्वत्र फैले हुए हैं जो त्वचा मे स्पर्शरूप ज्ञान का सवेदन करते है। इसमे धनजय नामक उपप्राण भी कार्य करता है। अन्य प्राणो का सम्वन्ध भी इसके साथ है। परन्तु इनमे व्यान और धनजय मुख्य है।

२. **मस्तिष्कस्थ प्राण**—व्यान और धनजय सपूर्ण शरीर मे व्यापक हैं। वास्तव मे ये मस्तिष्क या ब्रह्मरध्र से प्रारभ होकर पाद तल तक अपना कार्य करते है। व्यान ही ब्रह्मरध्र से ज्ञानवाहक तन्तुओ द्वारा सारे शरीर मे ज्ञान पहुचाता है। यही सूक्ष्म ज्ञानवाहक तन्तुओ तथा सूक्ष्म नाडियो मे ज्ञान और रक्त का सचार करता है। मस्तिष्क के पास ही नेत्र है, इनमे कूर्म नामक उपप्राण कार्य करता है। आखो को खोलना, बन्द करना, निमेषोन्मेपादि कार्य यह ही करता है। उदान भी मस्तिष्क तक कार्य करता है।

३. **कण्ठस्थ प्राण**—कण्ठ के साथ मुख तथा नासिका का विशेप सम्वन्ध है, अत यहा नाग, कृकल और देवदत्त उपप्राण अपना कार्य करते है। नाग मुख-स्थानीय है। इसका काम डकार लाना है। कठस्थानीय कृकल जभाई लाता है और नासिकास्थानीय देवदत्त छीक लाता है। इसी कण्ठ प्रदेश मे उदान प्राण भी निवास करता है। इसका कार्य आमाशय पर्यन्त होता है। वमन के समय यही भुक्त-पीत को वलपूर्वक खीचकर वाहिर फेक देता है। कुजर क्रिया मे यही जल के निकालने मे सहायक होता है। उदान ही मुख मे जो खाद्य या पेय पदार्थ होता है उसे अन्दर

धकेलता है। यही शरीर को उठाए रखता है, गिरने नहीं देता। जब योगी उदान प्राण पर विजय प्राप्त कर लेता है तब वह जल पर पैरों से चल सकता है और आकाश गमन भी कर सकता है।

४. **हृदयस्थ प्राण**—हृदय में प्राण वायु रहती है। हृदय प्रदेश में जो कारण शरीर है इसमें जीवात्मा के संयोग से चित्त में से जो सूक्ष्म प्राण रूप क्रिया प्रारम्भ होती है इस जीवनी शक्ति रूप क्रिया को लेकर यह प्राण ही सर्वप्रथम इसका प्रसार करता है। श्वास, प्रश्वास के द्वारा इसे अन्दर-वाहिर, ऊपर-नीचे पहुंचाने में सहायक होता है। इसका स्थान हृदय से मुख तक है। हृदय में लुपडुप की क्रिया और रक्तपरिभ्रमण में यह मुख्य रूप से कार्य करता है। श्वास-प्रश्वास के द्वारा जीवन वनाए रखता है। भूख तथा प्यास यही लगाता है। इसीके द्वारा सब प्राणयाम किए जाते हैं। यही रुधिर को रक्तवर्ण वनाता है। शरीर में वल के द्वारा जितने भी कार्य होते हैं वे इसे रोककर किए जाते हैं। सब प्राणों की अपेक्षा इसमें वल और शक्ति अधिक है।

५. **नाभिस्थ प्राण**—हृदय से लेकर नाभि तक समान का कार्य है। किन्तु यकृत, आमाशय, पक्वाशय और आन्तों को नियंत्रण में रखकर कार्य करता है। इसकी सहायता से सब वड़ी ग्रंथियां अपने-अपने कार्य ठीक रूप से करती हैं। शरीर की मध्य-स्थानीय नाभि है, अतः यह ऊपर तथा नीचे के शरीर को नियंत्रण में रखती है। गर्भस्थ वालक इसीके द्वारा रस और प्राण वायु को ग्रहण करके पुष्ट होता है और जीवन धारण करता है। इसीलिए नाभि में स्थित प्राण को विशेष महत्त्व दिया गया है।

६. **वस्तिस्थ प्राण**—वस्ती का स्थान गुदा द्वार से ऊपर है। यह गुर्दे में मूत्र धारण करने का स्थान है। इसमें जो अपान रूप वायु रहती है यह मूत्र का अवरोध या विसर्जन करती है। मूत्र के वेग को धारण करके रखती है अथवा प्रक्षेपण करती है। इसके विकृत हो जाने पर मूत्र को रोकने की शक्ति कम हो जाती है।

७. **गुदास्थ वायु**—नाभि से लेकर पादतल तक अपान प्राण का स्थान है परन्तु मुख्य रूप में मूलाधार के पास गुदा में ही अपान प्राण का वास है। गुदा-स्थानीय अपान प्राण यहां के सब कार्य करता है।

८. **मांसस्थ प्राणवायु**—मांस में प्राण और व्यान कार्य करते हैं, तभी इसकी पुष्टि होती है। रस और रुधिर इसको पुष्ट करते हैं। इसके कम हो जाने अथवा सूख जाने से वल, शक्ति, तेज, पराक्रमादि सब क्षीण हो जाते हैं। यदि इसमें प्राण शक्ति कार्य करती है तो इसका क्षय नहीं होता। इसकी पुष्टि से वड़े-वड़े वलयुक्त कार्य होते हैं। पहलवानों में जो अधिक मांसल होता है उसी में अधिक वल होता है। मांस के शक्तिशाली होने से या पुष्ट होने से प्राणशक्ति ठीक कार्य करती है।

९. **रुधिरस्थ प्राण वायु**—रुधिर में प्राण प्रवेश करके इससे गमन करवाता है। प्राण शक्ति के विना रुधिर का प्रसार नहीं हो सकता। व्यान, धनंजय और प्राण इसके साथ मिल कर गमन करते हैं और संपूर्ण शरीर का पालन, पोषण और तर्पण करते हैं। इससे सिद्ध है कि रक्त में भी प्राण निवास करता है। अहर्निश

प्राण रुधिर मे रहकर अपना कार्य सम्पन्न करता है। जिस व्यक्ति का भार डेढ मन हो उसमे तीन सेर रुधिर रहता है। इसके अभाव मे मनुष्य मृतवत् हो जाता है।

१०. शुक्रस्थ प्राण—शुक्र मे अपान और व्यान दोनो मिल कर कार्य करते है। जिस प्रकार रक्त मानव जीवन का आधार है इसी प्रकार वीर्य भी जीवन का मुख्य आधार है। सप्त धातुओ मे यह सर्वप्रधान धातु है। इसके साथ जीवनी शक्ति मिलकर सपूर्ण शरीर और पाचो कोषो का पोषण करती है। यह सन्तानोत्पत्ति का कारण है। इस शुक्र के अधिक क्षीण होजाने से प्राण मे भी क्षीणता आ जाती है। शरीर निस्तेज हो जाता है। शरीर मे इसका वही स्थान है जो दीपक मे तेल का है। शुक्र से ब्रह्मरध्र की पुष्टि होती है। वल, शक्ति, पराक्रम, तेज तथा वुद्धि की वृद्धि होती है। प्राण इसकी गति का हेतु है। शुक्र की रक्षा करना परम धर्म है। इसकी रक्षा से प्राण भी वलवान होता है और मनुष्य दीर्घजीवी वनता है। शुक्र का अन्तिम परिणाम ओज या वल होता है। ओज को व्यान प्राण लेकर शरीर मे सर्वत्र विचरता है। ओज दो प्रकार का होता है—ज्ञानात्मक और क्रियात्मक। ज्ञानात्मक ओज चित्त, वुद्धि, ज्ञानेन्द्रियो को वल प्रदान करता है और क्रियात्मक ओज अहकार, मन, कर्मेन्द्रियो और शरीर को शक्तिमान और वलवान वनाता है। इस ओज को प्राण ही धारण करता है। इसका प्रथम पोपक और प्रेरक व्यान है, तत्पश्चात् इसका प्रसार दूसरे प्राण तथा उपप्राण करते हैं।

यह प्राण इस प्रकार दश स्थानो मे विभिन्न नामो से रहता है। इसका विस्तृत उल्लेख 'आत्म-विज्ञान' मे भी किया गया है।

वायवीय कोष के ८ गुण—जव वायु महाभूत शरीर की रचना मे सहकारी उपादान कारण के रूप मे परिणाम भाव को प्राप्त हुआ और प्राण के रूप मे शरीर मे प्रवेश कर रहा था उस समय यह अपने अष्ट गुणो को लेकर ही परिणत हुआ था। ये अष्ठ गुण उत्पत्ति काल मे ही इसे प्राप्त हुए थे। उन आठ गुणो का इस वायवीय कोप मे भी समावेश हुआ जो निम्न प्रकार हैं —

१. कम्पन—जव गर्भाशय मे शुक्र और शोणित का आधान होता है उसी काल मे जीवात्मा का प्रवेश सूक्ष्म शरीर के साथ होता है तथा प्राणरूप वायु भी प्रविष्ट होता है। यह प्राण वायु शुक्र और शोणित को गतिशील या कम्पायमान कर देता है। जव तक शुक्र और शोणित मे कम्पन रूप धर्म उत्पन्न नही होगा तव तक उसमे वृद्धि नही होगी। प्राण ही कम्पन को उत्पन्न करता है। प्राण का विस्तार शरीर की वृद्धि के साथ होता रहता है। ज्यो-ज्यो अग-प्रत्यग वनते जाएगे त्यो-त्यो प्राण भी बढता चला जाएगा और अपने दश स्थानो मे शनै -शनै पहुच जाएगा।

२. तिर्यक् गमन—शरीर के हस्त-पाद-मुखादि स्थानो मे प्राण का गमन टेढा या तिरछा होता है। जिस प्रकार सर्प वल खाता हुआ टेढा चलता है तथा आकाश मे वायु टेढी चला करती है, उसी प्रकार से यह चलता है।

३. चचलता—प्रतिक्षण इसमे गति और चचलता वनी रहती है। किसी समय भी शान्त नही रहता। प्राणायाम काल मे भी कुछ समय के लिए ही श्वास-प्रश्वास का निरोध होता है, दूसरे प्राण-अपानादि तो अपना कार्य करते ही रहते हैं।

जब तक जीवन है तब तक प्राण की चंचलता का अभाव नहीं होता। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, समाधि में भी प्राण में कुछ न कुछ गति बनी ही रहती है।

४. **रूक्षता**—वायु में रूक्षता धर्म होने के कारण प्राण में भी रूक्षता धर्म अनिवार्य है क्योंकि कारण के गुण कार्य में अवश्यम्भावी हैं। परिश्रमपूर्वक कार्य करने से प्यास अधिक लगती है। प्राण की गति तेज होने पर यह शरीर में जल का शोषण अधिक करता है। इसी खुश्की के कारण शुष्कता पैदा होती है और प्यास अधिक लगती है। यह रूक्षता धर्म अग्नि और पृथ्वी में भी वायु से ही गया है। भस्त्रिकादि प्राणायाम अधिक करने से शरीर में रूक्षता आती है।

५. **पवित्रता**—प्राण में पवित्रता रूप धर्म का प्रत्यक्ष प्राणायाम करने में होता है। प्राणायाम शरीर के मलों की शुद्धि करता है। बढ़े हुए कफ और वायु को बाहिर निकाल देता है तथा अन्य शारीरिक दोषों को भी दूर करता है। जिस मकान में बहुत दरवाजे, खिड़कियां, रोशनदानादि हों उस मकान का वायु शुद्ध रहता है। और जो बिलकुल बन्द रहता है उसका वायु अशुद्ध रहता है। प्राण की गति ठीक रहने से शरीर स्वस्थ रहता है।

६. **आच्छादनाभाव**—जिस प्रकार वायु किसी पदार्थ को ढकती नहीं, सब पदार्थों के अन्दर से होकर निकल जाती है, सूक्ष्मता के कारण सब पदार्थों में प्रवेश कर लेती है और निकल भी जाती है, इसी प्रकार प्राण भी पार्थिव, जलीय तथा आग्नेयादि कोषों में आता जाता रहता है, इसलिए प्राण में आच्छादन का अभाव है। प्रत्येक नस नाड़ी आदि में प्राण कार्य करता है। इसके लिए कहीं भी रुकावट नहीं है।

७. **बल**—शरीर में प्रधानतया प्राण का ही बल है। जब मनुष्य कोई ऐसा कार्य करता है जिसमें शक्ति की आवश्यकता हो तब वह उस कार्य को प्राणों को कुछ रोककर ही करता है। राममूर्ति जब मोटर रोका करते थे तब पूरक करके आभ्यन्तर कुंभक किया करते थे। मृत्यु के समय जब प्राण की गति मन्द हो जाती है तो बल का सर्वथा अभाव हो जाता है। पूज्य गुरुदेव भी अपनी युवावस्था में अमृतसर में जब नहर के किनारे सन्त बुद्धिप्रकाश के बगीचे में रहते थे तो प्राणायाम करके छाती में श्वास भर कर बड़े-बड़े बलवान् लोगों से छाती पर मुक्के लगवाया करते थे और कभी-कभी प्राणवायु को हाथ में भरकर अपनी कोहनी या हाथ को मोड़ने के लिए कहा करते थे पर कोई भी उनको मोड़ नहीं सकता था। कुंभक करके, दोनों हाथों में रस्सियां बंधवाकर, दोनों ओर से बड़े शक्तिशाली बलवानों से खिचवाया करते थे। हृदय की गति तथा नाड़ी की गति का अवरोधादि सब प्राणायाम के बल पर ही किया करते थे। प्राण में वास्तव में बड़ा बल है।

८. **आक्षेप**—आक्षेप का अर्थ है धक्का देना। हृदय में जब रक्त शुद्धि होती है तब लुपडुप के रूप में प्राण का ही धक्का लगा करता है। प्राण, तथा अपान की गति को रोकना भी आक्षेप है। श्वास-प्रश्वास की गति का प्राण, अपान, और समान से टक्कर खाकर वापस आना भी प्राण का आक्षेप है। पूरक, रेचक तथा अन्य प्रकार के प्राणायामों के करने में भी आक्षेप होता है। आक्षेप धर्म प्राण में वायु महाभूत से आया है।

अन्य कोषों के समान इस प्रकार इसके भी दस भेद तथा आठ गुण हैं।

आकाशीय कोष

आकाश उत्पत्ति धर्म वाला तथा सावयव है, अत इसकी भी कोप सज्ञा होती है, क्योकि इस स्थूल शरीर के निर्माण मे यह भी सहकारी उपादान कारण है। अन्य कोषो के समान इसके भी दस भेद हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है —

१ **ब्रह्मरध्रस्थाकाश**—इस स्थान मे इसके अवकाश मे वुद्धि, मन और इन्द्रिया अपने सब कर्मो का सपादन करती हैं। इनकी गतिविधि, व्यापारादि ब्रह्मरध्र के आकाश मे होते हैं।

२. **कर्णेन्द्रियस्थाकाश**—यद्यपि यह कर्ण-शुष्कली पृथिवी से ही उत्पन्न हुई है, यह पार्थिव तत्व ही है, परन्तु इसमे जो शब्द सुनने की शक्ति है इसके प्रति उपादान कारण आकाश है, अत इस कर्ण-शुष्कली के अवकाश मे शब्द का आघात होने से जो शब्द की प्रतीति होती है यही इस आकाश की विशेपता है। वधिर व्यक्तियो की यह इन्द्रिय काम नही देती, अत शब्द ज्ञान भी नही होता। शब्द की उत्पत्ति आकाश मे ही होती है और इसका ज्ञान कर्णेन्द्रिय मे होता है, इसीलिए कर्णेन्द्रियस्थाकाश को इतना महत्व दिया गया है।

३. **कण्ठ, मुख, आहार, श्वास प्रणाली, नासिकास्थ प्रणाली**—कण्ठ मे आकाश होने से वाणी द्वारा शब्दो का उच्चारण होता है। आहार को चवाकर कठ द्वारा ही नीचे उतारा जाता है। इसके लिए अवकाश रूप आकाश की जरूरत है। मुख और नासिका दोनो मे ही पोल है। इन दोनो के कार्य भी भिन्न-भिन्न हैं। आहार प्रणाली और श्वास-प्रश्वास प्रणाली का सम्वन्ध भी कठ से है। इनमे भी पोल होने से आकाश इनमे वर्तमान है। इस आकाश के कार्य भिन्न-भिन्न हैं। वाणी मे भी मुख्य रूप से आकाश वर्तमान है, इसीलिए शब्दो का उच्चारण ठीक रूप से होता है। वाणी के प्रादुर्भाव के लिए आकाश की जरूरत है, इसलिए इसका उपादान कारण भी आकाश ही है।

४ **फुप्फुस्थाकाश**—फुप्फुस मे अनेक कोष्ठक होते है। दो फेफडे है। ये शाखाओ तथा प्रशाखाओ के रूप मे झाडियो के समान दिखाई देते है। इनमे सहस्रो कोष्ठक है जिनमे से प्राण छन कर आता है। जव वाहर से प्राण आता है तव ये कोष्ठक भर जाते हैं और जव भीतर से वाहर निकलता है तव ये खाली हो जाते है। इन सब मे पोल है, अत इनमे भी आकाश वर्तमान है। इन कोष्ठो मे अवकाश है। भले ही इन कोष्ठो मे प्राण भरता है परन्तु अवकाश होने से यहा आकाश रहता है। यही यहा के आकाश की विशेषता है।

५. **हृदयस्थाकाश**—इसके सम्वन्ध मे उपनिपद मे कहा है—"हृदि ह्येप आकाश।" अर्थात् इस हृदय के आकाश मे कारण शरीर का आवास है, जिसमे आत्मा का निवास है। इसीलिए यहा के आकाश को विशेष महत्व दिया जाता है।

६. **यकृतस्थाकाश**—यकृत एक वहुत वडी ग्रथि है। इसका वजन लगभग दो सेर का है। इसके अन्दर भी पोल है, इसमे आकाश विद्यमान है। इसी ग्रथि को जिगर कहते है। इसमे मधुर रस रहता है। आवश्यकतानुसार यकृत सारे शरीर मे

इसे भेजता रहता है। रक्तादि के शरीर में परिभ्रमण करते हुए अनेक प्रकार के दोष जब इसमें से होकर निकलते हैं तो यह ग्रंथि उन्हें शुद्ध करती है।

७. **आमाशयस्थाकाश**—यह ग्रंथि भी बहुत बड़ी है। इसमें कई सेर तक खाद्य तथा पेय पदार्थ समा जाते हैं। यदि इसमें कुछ दिन तक भोजन अथवा पेय पदार्थ न डाला जाए तो इसमें काफी बड़ा पोल रहता है। इसमें आकाश वर्तमान रहता है। यह अवकाश भोजन के पीसने और पकाने में सहायक होता है।

८. **पक्वाशयस्थाकाश**—आमाशय से भोजन पिसकर पक्वाशय में जाता है। इस ग्रंथि का आकार पिस्तौल के समान है। यह भी बहुत बड़ी ग्रंथि है। इसमें कई प्रकार के क्षारादि के मेल से पाचन कार्य होता है और रस बनकर रुधिर के रूप में परिणत हो जाता है। इसमें भी बड़ा पोल है। यदि इसमें पोल न होता तो आहार इसमें नहीं आ सकता था। इस पोल में आकाश है ही। आकाश ही इसका सहकारी उपादान कारण है।

९. **बड़ी व छोटी आन्तों तथा शरीर की नाड़ियों में स्थित आकाश**—इन सबके अन्दर पोल होने से खाद्य तथा पेय पदार्थों का गमनागमन, पाक तथा रक्त संचार और मल तथा मूत्रादि का निस्सरणादि कार्य होते हैं। ये सब पोल-युक्त होती हैं और इनके पोल में आकाश तत्त्व रहकर इनके कार्यों में सहायक होता है।

१०. **नाभिस्थाकाश**—बड़ी व छोटी आंतों और गुर्दे के अतिरिक्त यहां पोल रहता है और इस पोल में आकाश रहने से यहां आकाश वर्तमान है और यह पाद तल तक अपना कार्य करता रहता है। नाभिचक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मूलाधार चक्र इसी आकाश में स्थित हैं। गुदा, शिश्न तथा योनि के पोलों में यही आकाश इनके कार्यों में सहायक होता है।

आकाशीय कोष के ३ गुण, जो निम्न प्रकार से हैं :—

१. **सर्वत्र गति**—जब शब्द तन्मात्रा से आकाश की उत्पत्ति होने लगती है तब इसमें पहिला परिणामात्मक धर्म सर्वत्र गति रूप में उत्पन्न होता है। इसका अभिप्राय यह है कि इस आकाश में जो भी अन्य पदार्थ उत्पन्न होंगे, चाहे वे किसी भी देश में उत्पन्न हों, उनमें यह अपने सर्वत्र गति रूप धर्म से पहिले ही वर्तमान रहेगा। इसी गुण के कारण यह इस स्थूल शरीर में आकाशीय कोष के दस भेदों में सर्वत्र वर्तमान है। इस शरीर में कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहां आकाश न हो।

२. **अव्यूह**—इस गुण के कारण यह शरीर के प्रत्येक अङ्ग को भेद करने वाला है अर्थात् इसी गुण से इस आकाशीय कोष के दस भेद हो जाते हैं अथवा इस गुण से इस शरीर में पांच कोषों के ५ भेद हो जाते है क्योंकि यह गुण प्रत्येक कोष को एक दूसरे से पृथक् करने में समर्थ होता है। पार्थिव कोष को जलीय कोष से और जलीय कोष से आग्नेय कोष को और आग्नेय कोष से प्राणमय कोष को और प्राणमय कोष से आकाशीय कोष को विभक्त करता है।

३. **अवकाशप्रदानता**—तीसरा गुण परिणामात्मक है। इसमें अवकाशप्रदान उत्पन्न होता है। इसी गुण के आधार पर आकाश सब पदार्थों को अपने अन्दर अवकाश देता है और आगे होने वाले संसार के सब पदार्थों को भी अवकाश देगा।

इसी गुण से इस शरीर मे चारो कोषो को अपने अन्दर धारण किया हुआ है। इस पर शका हो सकती है कि आकाशीय कोष कही पढा और सुना नही है। जब आकाश उत्पन्न होने वाला पदार्थ है तब इसका कोष भी होना अनिवार्य है। यह शका तो तब हो सकती थी जब यह नित्य पदार्थ होता और परिणाम रहित होता। जब यह अनित्य और परिणामी है तब इसका कोष होना ही चाहिए। इसी कारण से हमने इसे दस भेद युक्त तथा तीन गुणो से युक्त आकाशीय कोष माना है। इस प्रकार से स्थूल शरीर के पाच कोष है जिनमे से प्रत्येक के दस भेद होकर कुल ५० भेद हो जाते है और ये सब मनुष्य के बध और मोक्ष का हेतु हैं।

श्री शकरलाल शर्मा पूज्य महाराज के बडे योग्य शिष्यो मे से हैं। अध्यात्म मे इनकी रुचि है और प्राय इस विषय के ग्रन्थो का अध्ययन करते रहते है। ज्ञान और कर्म के विषय मे आचार्यो के विभिन्न मतो को पढकर एक बार ये बडी उलझन सी मे पड गए और इनसे कर्म और ज्ञान के विषय मे जिज्ञासापूर्वक निवेदन किया, "पूज्य गुरुदेव! इन दोनो विषयो पर विद्वानो के भिन्न-भिन्न मत पढकर मेरी बुद्धि मे कुछ अनिश्चयात्मकता सी बढ रही है। किस आचार्य का मत ग्राह्य है और किसका अग्राह्य, इसका मैं कुछ निश्चय नही कर पा रहा हू। आप अपने विचारो के द्वारा मुझे इस उलझन से निकालने की कृपा करे।" इनकी शका का समाधान करते हुए पूज्य महाराजजी ने दो उपदेश दिए—एक कर्म पर तथा दूसरा ज्ञान पर।

पूज्य महाराजजी का कर्म के विषय मे उपदेश

ब्रह्म और प्रकृति के साथ कर्म का सम्बन्ध—कर्म के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम शका होती है कि कर्म नित्य है या अनित्य। जब कर्म की उत्पत्ति सयोग से मानी जाती है तब तो इसे अनित्य ही मानना पडेगा। जब इसे उत्पत्तिमान मान लिया जाता है तब इसका कोई उपादान कारण मानना भी आवश्यक है। जब हम ब्रह्म और प्रकृति के सयोग से कर्म की उत्पत्ति मानते है तब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ब्रह्म और प्रकृति मे से किसको कर्म का उपादान कारण मानना चाहिए। ब्रह्म तो कर्म का उपादान कारण कभी हो नही सकता क्योकि वह निर्विकार और निरवयव है, अत प्रकृति ही इसका उपादान कारण माननी पडेगी। प्रकृति को उपादान कारण मानने से प्रकृति तो कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य माननी पडती है क्योकि इसे हम प्रत्यक्ष रूप से विकारवान् देखते है। विकारवान् होते हुए भी इसका ब्रह्म के साथ नित्य सम्बन्ध है और ब्रह्म के साथ नित्य सम्बन्ध होने से इसमे कर्म को भी नित्य ही मानना पडेगा। प्रलय काल मे जब प्रकृति की साम्यावस्था होती है तब भी इसमे सूक्ष्मरूप से कर्म वर्तमान रहता है क्योकि चेतन ब्रह्म का प्रकृति के साथ नित्य सम्बन्ध है। ब्रह्म की चेतना ही जड प्रकृति मे कर्म का हेतु बनी है। इसलिए यह मानना पडेगा कि प्रकृति मे ही कर्म उत्पन्न होता है। कर्म वास्तव मे प्रकृति का ही गुण विशेष है अथवा इसका अवस्थान्तर रूप है। अब इसमे एक शका उपस्थित होती है कि जब प्रकृति की साम्यावस्था मे भी कर्म वर्तमान था और कार्यरूप अथवा विषमता मे भी कर्म विद्यमान है तब तो कर्म नित्य ही सिद्ध होता है। वास्तव मे प्रकृति की साम्यावस्था मे कर्म सूक्ष्मरूप मे था और प्रकृति की कार्य-रूपावस्था मे प्रकृति की विपमता अथवा स्थूलता के साथ कर्म मे भी विषमता अथवा

स्थूलता आ जाती है। कर्म जड़ है और प्रकृति का गुण विशेष या कार्य विशेष अथवा अवस्थान्तर विशेष है।

कर्म कारण रूप से नित्य तथा कार्य रूप से अनित्य है—उपरोक्त कथन से यह स्पष्टतया सिद्ध होता है कि कर्म कारण रूप से नित्य तथा कार्य रूप से अनित्य है। यह सदा प्रकृति मे ही वर्तमान रहता है। ज्यो-ज्यो प्रकृति अवस्थान्तर को प्राप्त होती हुई चलती जाएगी, कर्म भी इसके साथ चलता जाएगा। यह कर्म ही इसकी विकृति का हेतु अथवा अवस्थान्तर का हेतु बनता चला जाएगा। कर्म सदा चेतन ब्रह्म के सयोग मे ही उत्पन्न होता रहेगा परन्तु यह होगा प्रकृति मे ही। ब्रह्म के अभाव मे प्रकृति मे कभी भी इसकी उत्पत्ति नही हो सकती, अत कर्म के प्रति ब्रह्म निमित्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण है। जब सूक्ष्म कारण रूप प्रकृति सृष्टि का सृजन प्रारभ करती है तब वह विषम भाव को प्राप्त होकर अवस्थान्तर रूप मे परिणत होती हुई अन्त मे पृथ्वी के रूप मे स्थिर हुई। कर्म भी इसके साथ ही परिणत होता गया। यही प्रकृति सर्व जगत् और लोक-लोकान्तरो का उपादान कारण है। पृथ्वी के रूप मे स्थिर हो जाने के पश्चात् इसका अन्य कोई परिणाम नही हुआ। यही प्रकृति का अन्तिम परिणाम है। इसके बाद कोई परिणामान्तर प्रकृति का नही हुआ। कर्म भी इसके साथ ही इसके अन्दर आनकर ठहर गया। आकाश मण्डल मे दृश्यमान ये सब लोक-लोकान्तर सब पृथ्वी के अश है। इन सब मे कर्म हो रहा है और सभी सदा गति करते रहते है। इन सब मे कर्म वर्तमान है और यह सदा बना रहेगा। शकराचार्यादि आचार्यों ने इसी कर्म को अविद्या माना है। जब प्रकृति ही अविद्या रूप है तब इसके कार्य और गुण भी तो अविद्या रूप ही होगे। प्रकृति के साथ ब्रह्म का शाश्वत सान्निध्य होने से कर्म भी सदा नित्य बना रहता है।

जीवात्मा के सम्बन्ध से कर्म का निरूपण—इस दृश्यमान स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म और कारण शरीर है। इन तीनो मे कर्म विद्यमान है। अब यहा पर एक विचार उपस्थित होता है कि शरीर मे प्रत्यक्षरूपेण गमनागमन रूप जो धर्म या क्रिया देखने मे आ रही है यह शरीर का धर्म है अथवा आत्मा का। यदि इसे शरीर का कर्म माने तब तो मृत्यु को प्राप्त हुए शरीर मे भी गमनागमन कर्म होना चाहिए, परन्तु होता नही है। अत यह गमनागमन रूप कर्म स्थूल शरीर का नही है। यदि गमनागमन रूप कर्म आत्मा का धर्म माना जाए तब यह विकारवान् हो जाएगा। वैशेषिक दर्शन मे कर्म के ५ लक्षण बतलाए है—उत्क्षेपण (ऊपर उठना), अवक्षेपण (नीचे आना), आकुचन (सिकुड़ना), प्रसारण (विकसित होना, या फैलना), गमन (जाना), आगमन (आना)। यदि कर्म आत्मा का धर्म माना जाएगा तो उसे सकोच और विकास धर्म युक्त मानना पड़ेगा और विकारवान् भी। बुद्धि और मन के समान उसे भी उत्पत्तिमान और विनाशवान् मानना पडेगा। अत उपरोक्त ५ प्रकार के कर्म का जीवात्मा मे अभाव है।

कर्म चित्त का धर्म है—जब चित्त का आत्मा के साथ सम्बन्ध होता है तब कर्म की उत्पत्ति होती है क्योंकि सयोग ही कर्म का जनक है। आत्मा मे कर्म की उत्पत्ति नही होती, इसे पूर्व सिद्ध किया जा चुका है। चित्त मे ही सकोच और विकास रूप कर्म होता है, इसलिए चित्त ही कर्म का उपादान कारण बनेगा। कर्म की उत्पत्ति

मे आत्मा निमित्त कारण है, उपादान कारण नही। जब आत्मा का सम्बन्ध चित्त से होता है तभी कर्म उत्पन्न होता है। जब तक सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर का सम्बन्ध जीवात्मा के साथ रहेगा तब तक चित्त मे या इन दोनो शरीरो मे कर्म बना रहेगा। यदि आप यह शका उठाए कि जब प्रयलकाल या मोक्ष की अवस्था मे सम्बन्ध विच्छेद होता है तब क्या चित्त मे कर्म उत्पन्न होता है, इसका समाधान यह है कि चित्त का उपादान कारण समष्टि चित्त है और समष्टि चित्त का उपादान कारण महत् सत्व है और महत् सत्व का उपादान कारण प्रकृति है और इसके साथ चेतन ब्रह्म का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। चेतन ब्रह्म के व्यापक रूप सम्बन्ध से प्रकृति मे जो कर्म उत्पन्न हो रहा है वह कर्म इसकी परिणत होती हुई अवस्थाओ मे समष्टि चित्त मे भी पहुचा है। अत जब व्यष्टि चित्त अपने उपादान कारण मे विलीन हो जाता है तब ब्रह्म के सान्निध्य से उस समष्टि चित्त मे जो कर्म हो रहा होता है वही इस व्यष्टि चित्त का भी कर्म हो जाता है और आत्मा प्रलय काल या मोक्ष काल की अवस्था मे स्थित हो जाता है। आत्मा के सयोग के अभाव के कारण चित्त मे भी कर्म का अभाव हो जाता है। केवल ब्रह्म की व्यापकता का ही समष्टि चित्त मे सामान्य कर्म रह जाता है जो समष्टि चित्त के परिणाम का हेतु होता है जिससे समष्टि चित्त अपने उपादान कारण मे प्रवेश कर सके।

कर्म मनुष्य के बध और मोक्ष का हेतु—ब्रह्म या ईश्वर के सान्निध्य से प्रकृति मे तथा जीवात्मा के सम्बन्ध मे चित्त मे जो कर्म होते है वे प्राणियो के बध और मोक्ष का हेतु होते है। कर्म दो प्रकार के होते है—पुण्य कर्म और पाप कर्म। पुण्य कर्म मोक्ष का हेतु होते है और पाप कर्म बध का। ये पाप और पुण्य रूप कर्म चित्त मे उत्पन्न होते है, इसलिए ये चित्त के ही धर्म या गुण विशेष है। इन दोनो प्रकार के कर्मों का अभाव या सम्बन्ध विच्छेद ही मोक्ष है। चित्त का धर्म होने के कारण ये ५ प्रकार की अविद्या के अन्तर्गत आ जाते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश को योगदर्शन मे क्लेश कहा गया है। ये सब बुद्धि और चित्त के ही धर्म विशेष है। चित्त मे जो भी कर्म उत्पन्न होता है वह बध का ही कारण है। जब तक चित्त और आत्मा का सम्बन्ध बना रहता है तब तक इसमे कर्म उत्पन्न होता ही रहेगा। परम वैराग्य ही इस कर्म रूप अविद्या से मुक्त करने मे हेतु बनेगा। राग ही बध को उत्पन्न करता है और कर्म का जनक भी है। सयोग से राग भी उत्पन्न होता है और कर्म भी। ज्ञान और वैराग्य ही इन दोनो का अभाव करने के साधन है। अत सर्व दु खो और कर्म की निवृत्ति के लिए ज्ञान और वैराग्य आवश्यक हैं। ज्ञान और परम वैराग्य के बिना पाप और पुण्य युक्त कर्म का अभाव नही हो सकता, इसलिए मोक्ष के इच्छुक योगी को ज्ञान और परम वैराग्य की प्राप्ति के लिए अहर्निश यत्नशील और सावधान रहना चाहिए। इन दोनो के द्वारा सयोगाभाव होगा, सयोग के अभाव से कर्म का अभाव होगा और इसके अभाव से आत्मा को मोक्ष प्राप्त होगा।

तपः पूत ब्रह्मनिष्ठ महाराजजी का ज्ञान पर उपदेश

ज्ञान के विषय मे भी अनेक प्रकार के प्रश्न उपस्थित होते है। इसका उपादान कारण कौन है ? आत्मा, परमात्मा या प्रकृति ? चित्त के साथ इसका क्या सम्बन्ध

है ? यह नित्य है या अनित्य ? ईश्वर और जीवात्मा का यह गुण विशेष है या इनमे इसका सयोग-सम्बन्ध है ? क्या यह स्वतन्त्र रूप से कोई पदार्थ है अथवा किसी के साथ उसका आश्रय-आश्रयी सम्बन्ध है ? यह जड है या चेतन ?

इन सब शकाओ का समाधान करते हुए पूज्य महाराजजी ने फरमाया —

हम तीन पदार्थ नित्य मानते है—परमात्मा, आत्मा और प्रकृति । इन तीनो के अतिरिक्त कोई भी पदार्थ नित्य नही है । इन तीनो में से ज्ञान किसका कार्य है यही यहा पर विचारणीय विषय है ।

ब्रह्म और प्रकृति के साथ ज्ञान का सम्बन्ध—सर्वप्रथम जब सृष्टि की उत्पत्ति होने लगी तब इस दृश्यमान जगत् का उपादान कारण बिलकुल शान्त और स्थिर था तथा सब प्रकार की विषमताओ से रहित था । इस अवस्था को न्याय और वैशेषिक ने परमाणुरूपावस्था माना है । अद्वैतवादियो ने इस अवस्था को माया अथवा अविद्या कहा है । शून्यवादी इसे शून्य मानते हैं । विज्ञानवादी इसे विज्ञान कहते है और योग तथा साख्य मे इसे प्रकृति की साम्यावस्था कहा गया है । हम प्रकृति की उस साम्यावस्था मे भी सूक्ष्म कर्म का विद्यमान होना मानते हैं । प्रलय काल की अवस्था मे चेतन ब्रह्म का सम्बन्ध प्रकृति के साथ विद्यमान था । इन दोनो का सम्बन्ध ज्ञान और कर्म का जनक बना । जिस प्रकार सयोग से कर्म की उत्पत्ति होती है इसी प्रकार सयोग से ही ज्ञान का भी प्रादुर्भाव होता है । विद्यार्थी गुरु के पास रहकर विद्याध्ययन करते है । यहा गुरु और शिष्य का सयोग विद्यार्थी के ज्ञान की वृद्धि का हेतु होता है । अध्यापक के बिना ज्ञान की उत्पत्ति या वृद्धि नही हो सकती । यदि एक नवजात बालक को आप वन मे छोड दें या किसी ऐसे मकान मे रख दें जहा किसी मनुष्य या पशु आदि का सम्बन्ध उसके साथ न हो सके, ऐसे स्थान मे वह पचासो ही वर्ष तक भले ही क्यो न रहे किन्तु उसे कभी किसी प्रकार का ज्ञान नही हो सकेगा । खाने पीने आदि का सामान्य ज्ञान भले ही हो जाए, क्योकि यह सभी प्राणियो मे समान रूप से होता है । इससे यह सिद्ध होता है कि ज्ञान की उत्पत्ति सयोग से ही होती है । आदि-सृष्टि मे ब्रह्म और प्रकृति के सयोग से ज्ञान की उत्पत्ति हुई और ब्रह्म और प्रकृति ही इसके उपादान कारण हो सकते हैं, किन्तु यदि दोनो को ज्ञान का उपादान कारण मानते है तब ये दोनो ही विकारवान् हो जाते है । जड प्रकृति भी विकारवान् और चेतन ईश्वर भी विकारवान् । ऐसी स्थिति मे इन दोनो मे कोई अन्तर नही रहता । उपादान कारण तो एक ही मुख्य होता है, शेष सभी सहकारी उपादान कारण हुआ करते है । तब क्या जड और चेतन दोनो को उपादान कारण मान ले ? यदि ऐसा मानेंगे तो ज्ञान के दो रूप हो जाएगे । ऐसी स्थिति मे ज्ञान जड भी होगा और चेतन भी । दो विरुद्ध धर्म एक पदार्थ मे नही रह सकते । दो परस्पर विरोधी धर्म ज्ञान मे नही रह सकते । इसमे एक ही धर्म मानना पडेगा । यदि जड मानते हो तब इसका उपादान कारण प्रकृति को मानना होगा और यदि चेतन माना जाए तब ईश्वर उपादान कारण होगा । ईश्वर के विकारवान् होने से वह निर्गुण नही रह सकता । प्रकृति के समान यह भी परिणामी हो जाएगा । यदि ब्रह्म मे उसका आगमन मानते है तब यह प्रश्न पैदा होता है कि यह ज्ञान उसका कार्य है या गुण अथवा उसका अश विशेष है । ऐसा मानने से ब्रह्म सावयव हो

जाएगा और अवस्थान्तररूप से परिणामी हो जाएगा। विकारी होने से प्रकृति के समान हो जायगा। प्रकृति जडत्वेन परिणामी है और ब्रह्म चेतनत्वेन परिणामी हो जाएगा, अत यह मानना पडेगा कि ज्ञान न तो ईश्वर का कार्य है, न उसका अश है और न ही उसका गुण है। जब प्रकृति साम्यावस्था से विषम भाव या कार्यभाव को प्राप्त होने लगी तब इसमे सूक्ष्म रूप से ज्ञान भी विद्यमान था। जिस प्रकार उस अवस्था मे कर्म सूक्ष्म रूप से विद्यमान था उसी प्रकार सूक्ष्म रूप से ज्ञान भी विद्यमान था। जो गुण या धर्म कारण मे होगे वे उसके कार्य मे अवश्य आते हैं। ज्ञानपूर्वक ही सृजन होता है और ज्ञानपूर्वक ही कर्म होता है, अत सर्वप्रथम ज्ञान ही होना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि सर्वप्रथम ज्ञान और क्रिया ही प्रकृति मे प्रकट हुए। ब्रह्म के सर्वव्यापक रूप प्रकृति के सान्निध्य मे रहने से प्रकृति मे विशेष रूप से परिणाम धर्म पैदा होने से आकाश, काल तथा दिशा के अनन्तर ज्ञान महत् सत्व के रूप मे प्रादुर्भूत हुआ। इसी द्वारा आगे चलकर सर्व प्रकार के ज्ञान की व्यवस्था चलेगी। यह ब्राह्मी सृष्टि इस महत् सत्व के आधार पर ज्ञान-पूर्वक चलेगी। ईश्वर तो केवल सन्निधान मात्र से निमित्त कारण बना रहेगा और इसके सन्निधान मे रहकर प्रकृति जगत् का सृजन करती रहेगी। यहा पर यह शका हो सकती है कि क्या ब्रह्म मे ज्ञान का अभाव है जो प्रकृति अपने से उत्पन्न हुए ज्ञान के द्वारा संसार का सृजन और व्यवस्था करती है? इस विषय मे यह विचार-णीय है कि यदि रूढिवाद से हम ईश्वर को सृष्टि का स्रष्टा मानते है तब उसमे सृजन रूप धर्म अथवा गुण मानना पडेगा। इस दशा मे वह निर्गुण सिद्ध नही हो सकता। यदि यह कहा जाए कि भगवान् भले ही निर्गुण न रहे परन्तु सृजन रूप व्यवस्था उसीके द्वारा होती है, ऐसी स्थिति मे उसका कोई करण भी मानना पडेगा। यदि आप कहे कि एकदेशी को करण की आवश्यकता होती है, सर्वदेशी को नही। हम भी तो ईश्वर को सर्वदेशी और सर्वव्यापक मानते है। इसीलिए प्रकृति से सर्वत्र ही उसका सान्निध्य रहता है। ऐसी स्थिति मे ब्रह्म के सन्निधान मात्र से प्रकृति मे सर्वत्र क्रिया या कर्म होता रहेगा। इसलिए ब्रह्म को कर्ता अर्थात् सृष्टि का स्रष्टा मानने की कोई आवश्यकता नही। केवल निमित्त रूप से उसका सान्निध्य बना रहेगा, अत ब्रह्म को किसी प्रकार की व्यवस्था करने की आवश्यकता नही होगी। व्यवस्थापक भी एक-देशी ही होता है। ब्रह्म को व्यवस्थापक मानने से वह एकदेशी हो जाएगा, फिर उसमे सर्वव्यापकता न रहेगी। ब्रह्म का सर्वत्र सान्निध्य है इसलिए उसके कर्ता या व्यवस्थापक बनने की आवश्यकता नही। ज्ञान, गुण, या धर्म ईश्वर में नही अपितु यह प्रकृति का ही गुण या धर्म विशेष है क्योकि यह परिणामात्मक है, इसमे वृद्धि और ह्रास होता है तथा उत्पत्तिमान है। साम्यावस्था मे ज्ञान और कर्म सूक्ष्म रूप से विद्यमान थे, इसी सूक्ष्म रूप से ज्ञान और कर्म का प्रकृति की विषमावस्था मे इनका विस्तार हुआ।

अब तो आपको ब्रह्म के सान्निध्य से प्रकृति मे ज्ञान और क्रिया का प्रादुर्भाव और प्रकृति के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति समझ मे आगई होगी।

आत्म-तत्त्व के सान्निध्य से चित्त मे ज्ञान और कर्म का प्रादुर्भाव

ज्ञान शरीर का धर्म नहीं—यह विषय भी पूर्ववत् गहन है। इसे ध्यानपूर्वक समझने का प्रयत्न करो। ज्ञान शरीर का धर्म नही है। यदि स्थूल शरीर मे ज्ञान

होना तो फिर उसके शव मे इसका अभाव क्यो होता ? शव मे भी ज्ञान रहना चाहिए था। इससे यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि शरीर मे ज्ञान नही होता।

ज्ञान जीवात्मा का धर्म नहीं है—ज्ञान जीवात्मा का भी धर्म नही है क्योकि ज्ञान मे उत्पत्ति और विनाश धर्म है। ज्ञान उत्पन्न होता है और उसका विनाश भी होता है। यदि ज्ञान को आत्मा का धर्म माना जाएगा तो आत्मा को परिणामी मानना पड़ेगा और उसमे परिवर्तनो का होना भी स्वीकार करना होगा। पहिले आत्मा मे ज्ञान नही था, अब पैदा हो गया। बालक जन्म के साथ ही ज्ञानवान् पैदा नही होता। वह अनभिज्ञ होता है। ज्यो-ज्यो उसकी आयु मे वृद्धि होती है त्यो-त्यो उसमे ज्ञान का विकास होता जाना है। शनै-शनै पढ-लिखकर विद्वान् हो जाता है और ज्ञान-वृद्धो मे उसकी गणना होने लगती है। यदि यह उत्पत्ति, विकास और वृद्धि आत्मा मे मानी जाए तब इसमे भी सकोच, विकास, उत्पत्ति और विनाश मानना पडेगा। इस अवस्था मे बुद्धि और आत्मा मे कोई अन्तर नही रहेगा। चेतन होने से *आत्मा ज्ञान स्वरूप है परन्तु उसके ज्ञान मे उत्पत्ति, विनाश, सकोच, विकास, वृद्धि* तथा ह्रास नही होते। इनके ज्ञान मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही होता। इसका ज्ञान सदा एकरस, एकरूप और एक समान रहता है। वह उससे निकलकर कही अन्यत्र आता जाता नही, और किसी के साथ मिलता नही। उसमे से ज्ञान का आना जाना मानने से आत्मा को सावयव और विकारी मानना पडेगा। इसलिए ज्ञान आत्मा का भी गुण या धर्म नही है।

ज्ञान बुद्धि या चित्त का धर्म है—ज्ञान बुद्धि या चित्त का धर्म हो सकता है, क्योकि इनमे ज्ञान, वृद्धि और ह्रास दृष्टिगोचर होते हैं। जब आत्मा के साथ चित्त का सयोग होता है तब चित्त मे ज्ञान रूप धर्म की उत्पत्ति होती है। आत्मा के सयोग मे चित्त मे ज्ञान और क्रिया उत्पन्न होते है। चित्तोत्पन्न ज्ञान और क्रिया के द्वारा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के सर्व कार्यजात सिद्ध होते हैं। ज्ञान के होने पर कर्म उत्पन्न होता है और कर्म के होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है। जब मानव किसी कर्म को करना चाहता है तब सर्वप्रथम बुद्धि द्वारा उसके विषय मे विचार करता है। पहिले ज्ञानपूर्वक विचार करता है तब कर्म करने मे प्रवृत्त होता है। जब तक बुद्धि मे किसी कर्म करने का विचार नही आएगा तब तक मनुष्य कर्म करने मे प्रवृत्त नही होता। चित्त और बुद्धि को हम ज्ञान-प्रधान मानते है। इनके ज्ञान-प्रधान होने से ही तो इनमे ज्ञान की वृद्धि और विकास होता है। जो कारण मे धर्म होता है वह कार्य मे भी आवेगा। आम से आम की ही उत्पत्ति होगी, अनार की नही। इसी प्रकार ज्ञानयुक्त चित्त से ज्ञान की ही उत्पत्ति होगी। चित्त का परिणाम ज्ञान रूप मे ही होगा। जब आत्मा का सयोग चित्त से हुआ तो चित्त मे ज्ञान की ही तो उत्पत्ति होगी। ज्ञान चित्त का धर्म है, आत्मा का नही। चित्त परिणामी है, अत ज्ञान रूप चित्त ज्ञान को ही उत्पन्न करेगा। जिस प्रकार चित्त मे सुख, आनन्द, भय, चिन्तनादि अनेक गुण उत्पन्न होते है इसी प्रकार चित्त मे ज्ञान भी उत्पन्न होता है। इसलिए ज्ञान अनित्य है। ज्ञान ही प्रकृति, आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार का हेतु होता है। इसीसे मोक्ष-लाभ होता है। अनित्य ज्ञान से नित्य मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती और इस अनित्य ज्ञान से मुक्ति भी अनित्य ही प्राप्त होगी। यह ज्ञान भी अन्त मे

अज्ञान रूप ही है क्योकि यह चित्त का धर्म है। चित्त भी तो प्रकृति अथवा अविद्या का ही कार्य है। कार्यात्मक होने से यह भी अविद्यात्मक ही है। चित्त आत्मा के बध का हेतु बना है। अविद्या से ही बध को प्राप्त होता है, अत आत्मा के प्रति ज्ञान और कर्म चित्त के धर्म होने से बध का हेतु बने हैं। जब तक चित्त के साथ आत्मा के सम्बन्ध का विच्छेद नही होगा तब तक आत्मा मुक्त नही होगा। इस सम्बन्ध विच्छेद मे परम वैराग्य ही मुख्य हेतु बनेगा। प्रथम सामान्य ज्ञान से कर्म में प्रवृत्ति होगी, कर्म करने से तत्त्व-ज्ञान लाभ होगा और इसके अनन्तर परम वैराग्य द्वारा मोक्ष प्राप्ति होगी। इससे सिद्ध है कि कर्म और ज्ञान बध और मोक्ष के हेतु होते हैं।

'हिमालय का योगी' ग्रन्थ मे
'ब्रह्म-विद्या का प्रचार' नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त ॥

उपसंहार

'हिमालय का योगी' ग्रथ मे पाच अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय मे ब्रह्मर्षि श्री १०८ स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज के बाल्यकाल की घटनाए, प्रथम पूज्यचरण गुरुदेव श्री स्वामी रामानन्दजी का सत्सग, वैराग्य का उदय, गृहत्याग, हरिद्वार जाकर मोहनाश्रम मे सस्कृताध्ययन, योग-साधना, सत्यव्रतजी से कजली वन मे योग-शिक्षा प्राप्ति, उत्तराखण्ड मे निवास, कठिन तपस्या, स्थानीय तीर्थाटन, दिल्ली मे ४ वर्ष तक सस्कृताध्ययन, काश्मीर मे विद्वान् योगी गुरु की खोज तथा गुरु प्राप्ति, पूज्य गुरुदेव अवधूत परमानन्दजी के दर्शनादि का उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे पूज्य गुरुदेव अवधूत परमानन्दजी द्वारा काश्मीर में अष्टाङ्ग योग की प्राप्ति, प्राथमिक योग-साधना, अमृतसर निवास, यहा पर षड् दर्शन उपनिषदादि ग्रथो का प० हरिश्चन्द्रजी से अध्ययन, सवा करोड गायत्री का पुरश्चरण, काष्ठमौन, कई-कई दिनो की समाधि, भारत के तीर्थस्थानो का कई बार पर्यटनादि का वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में पूर्णात्मज्ञानी गुरु की खोज और पूज्यचरण ब्रह्मनिष्ठ तथा तप पून महान योगी आत्मानन्दजी की प्राप्ति, उनके श्रीचरणो मे १७ घण्टे की सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा आत्मा, प्रकृति और ब्रह्म का साक्षात्कार, कई वर्ष तक इस विज्ञान को दृढभूमि करना आदि विषयो का विशद् वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय मे मोहनाश्रम मे अष्टाङ्ग योग का प्रशिक्षण, गगोत्री, उत्तरकाशी तथा स्वर्गाश्रम में योगनिकेतनाश्रम की स्थापना, 'आत्म-विज्ञान' तथा 'बहिरङ्ग-योग' ग्रथो की रचना, अनेक प्रकार की सिद्धियो तथा ब्रह्मचर्य से सन्यासाश्रम मे प्रवेशादि का उल्लेख है।

पचम अध्याय मे हरिद्वार मे सन् १९६२ की १३ अप्रैल को सन्यास धारण करना, बद्रीनाथ प्रस्थान, ४ मास का काष्ठमौन व्रत, 'ब्रह्म-ज्ञान' ग्रथ की रचना, इसके प्रकाशन का प्रबध, उसके विज्ञान का प्रशिक्षण, सन् १९६४ मे भारत के मुख्य-मुख्य तीर्थो तथा नगरो का ८ मास तक भ्रमण, इन स्थानो पर व्याख्यानो द्वारा योग का प्रचार और साधना करवाना, पुन हिमालय मे निवास, शिष्यो को आत्मज्ञान प्राप्ति की साधना करवाना और आध्यात्मिक सूक्ष्मतम गूढ रहस्यो के उपदेशादि का वर्णन है।

हमारी हार्दिक कामना है कि पूज्यचरण श्री गुरुदेव चिरायु हो। इस ग्रथ के आगामी सस्करणो में हम उनके भावी नवीनतम अनेक प्रकार के गहनतम आध्यात्मिक सूक्ष्म विज्ञानो का समावेश करते रहेगे।

इति शुभम्।

ॐ

योगनिकेतन

स्वर्गाश्रम : मुनिकीरेती ऋषिकेश : उत्तरकाशी : गंगोत्री

—सस्थापक—

श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज
(भूतपूर्व राजयोगाचार्य श्री ब्रह्मचारी व्यासदेवजी महाराज)

योग ही सार्वभौम धर्म है

योगाभ्यास मे आने वाले साधको के लिए सक्षिप्त सूचना

१ योगनिकेतन मे अष्टाग योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के साधनो का विशेष रूप से क्रियात्मक अभ्यास कराया जाता है, इसलिए योग के जिज्ञासु प्रत्येक साधक को यहा आकर लाभ उठाना होता है।

२ कम से कम एक घण्टे तक किसी एक आसन से निश्चल बैठने का अभ्यास करके यहा आना चाहिए।

३ प्रत्येक मुमुक्षु साधक से यह आशा की जाती है कि वह योग मे सर्वथा वर्जित धूम्रपान बीडी आदि, अभक्ष्य मास, मदिरा, प्याज, लहसुन आदि का सेवी और दुर्व्यसनी न हो। वह यहा ब्रह्मचर्य व्रत पालन, तप और योगानुष्ठान के उद्देश्य से आये। प्रत्येक सम्प्रदाय के स्त्री-पुरुष आ सकते है।

४ **योगविद्यालय की साधना मे बैठने का समय :—**

प्रात ४ से ६॥ बजे तक धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा ब्रह्मज्ञान का अभ्यास।

प्रात ८ से ९ बजे तक आसन, प्राणायाम, हठयोग की क्रियाये।

साय ६ से ८ बजे तक आत्म-विज्ञान सम्बन्धी अभ्यास। अन्नमय कोष मे कुण्डली-उत्त्थान, प्राणोत्थान, चक्र-विज्ञान, प्राणमय कोष का विज्ञान। मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष के पदार्थो अर्थात् सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर मे आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान।

५. स्वर्गाश्रम या मुनिकीरेती मे १ नवम्बर से ३१ मार्च तक अभ्यास के शिविर का समय है। मई और अक्तूबर मे उत्तरकाशी मे तथा १५ जून से १५ सितम्बर तक गगोत्री मे अभ्यास होता है।

६ प्रत्येक साधक को यहा पर पूरे ५ मास तक रहना चाहिए। मास दो मास ही रहने वाले साधक स्थायी और विशेष लाभ नही उठा सकते।

७ योगनिकेतन के सब नियम पालन करते हुए प्रत्येक साधक के रहने के लिए एक कुटिया, दोपहर-मध्याह्न मे १२ वजे सात्त्विक सादे भोजन, प्रात व रात्रि को पीने के लिए एक सेर दूध की व्यवस्था है। एक समय के भोजन और दो समय के दूध का दैनिक व्यय लगभग दो रुपया स्वर्गाश्रम में आता है, उत्तरकाशी मे अढाई रुपये और गगोत्री में तीन रुपये। इसके अतिरिक्त अन्य व्यय साधक अपनी शक्ति के अनुसार कर सकता है।

८ १५ दिन से कम समय के लिए अभ्यासी को प्रविष्ट नही किया जाता है, क्योकि इसमें विशेष लाभ नही होता।

९ साधक को शीत के पूरे वस्त्र, छाता, लोटा, विस्तरा, लैम्प, टार्च, रुई की गद्दी का आसन, लगोटा, जाघिया साथ लाना आवश्यक है।

१० योगाभ्यास श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज और उनके शिष्य कराते है।

११ प्रत्येक महानुभाव को स्वीकृति लेकर ही आना चाहिए, स्वीकृति-पत्र साथ मे लायें।

विशेष पूछताछ इस पते पर करें—

व्यवस्थापक —

योगनिकेतन, स्वर्गाश्रम

डाकघर—स्वर्गाश्रम, रेलवे स्टेशन—ऋषिकेश,
जिला देहरादून।

योगनिकेतन, मुनिकीरेती

डाकघर—ऋषिकेश, जिला टिहरी गढवाल।

योगनिकेतन, उत्तरकाशी

जिला उत्तरकाशी।

योगनिकेतन, गंगोत्री

जिला उत्तरकाशी।

(उत्तराखण्ड, हिमालय।)

गंगोत्री के महान् सन्त ब्रह्मज्ञानी योगाचार्य्य श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज (भूतपूर्व बालब्रह्मचारी श्री व्यासदेवजी)

के रचित ग्रन्थ

आत्म-विज्ञान

आत्मा का साक्षात्कार करने की क्रियात्मक व्यवस्था

जिसमे आर्ट पेपर पर २६ पचरंगे चित्र सूक्ष्म और कारण शरीरो तथा उनके अवयवो की वास्तविक अवस्थाओ के दर्शन हैं। कपडे की सुन्दर जिल्द, छपाई तथा सज्जा उत्तम ।

हिन्दी बढिया सस्करण	मूल्य १५) रुपए
हिन्दी साधारण सस्करण	मूल्य १०) रुपए
अंग्रेजी संस्करण	मूल्य १२) रुपए

बहिरंग योग (हिन्दी)

पातञ्जल-योगशास्त्र के यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार अंगो की विशद और अपूर्व व्याख्या । आसनो आदि के ३२५ चित्र आर्ट पेपर पर। ३०० से ऊपर बड़े आकार के पृष्ठ, सुन्दर कपडे की जिल्द । मूल्य १०) रुपए

ब्रह्म-विज्ञान (हिन्दी)

यह पूज्यपाद स्वामीजी महाराज की नवीन कृति है, ब्रह्मदर्शन की प्रक्रिया और जीवन को कृतकृत्य करने का साधन है। सम्पूर्ण सृष्टि का विज्ञान भी इसी मे वर्णन किया है। १८ बहु रंगे चित्र आर्ट पेपर पर, सुन्दर कपडे की जिल्द, पृष्ठ ५०० से ऊपर। मूल्य १४) रुपए

प्रत्येक पुस्तक पर डाक व्यय पृथक् । चारो ('बहिरङ्ग योग', 'आत्मविज्ञान', 'ब्रह्मविज्ञान' और 'हिमालय का योगी') पुस्तकें एक साथ मगवाने पर डाक व्यय पृथक् नही होगा ।

योगनिकेतन ट्रस्ट
डाकघर—स्वर्गाश्रम
रेलवे स्टेशन ऋषिकेश, जि० देहरादून (भारत)